एक ओंकार सतनाम

प्रवचन-क्रम

1. आदि सचु जुगादि सच..2
2. हुकमी हुकमु चलाए राह..23
3. साचा साहिबु साचु नाइ..41
4. जे इक गुरु की सिख सुणी..60
5. नानक भगता सदा विगासु..80
6. ऐसा नामु निरंजनु होइ..97
7. पंचा का गुरु एकु धिआनु...116
8. जो तुधु भावै साई भलीकार...133
9. आपे बीजि आपे ही खाहु...148 10...आपे जाणै आप
.... 166
11..ऊचे उपरि ऊचा नाउ
.... 183
12...आखि आखि रहे लिवलाइ
.... 207
13..सोई सोई सदा सचु साहिबु
.... 225
14..आदेसु तिसै आदेसु
.... 241
15..जुग जुग एको वेसु
.... 259
16..नानक उतमु नीचु न कोइ
.... 277
17...करमी करमी होइ वीचारु
.... 297
18..नानक अंतु न अंतु
.... 317
19...सच खंडि वसै निरंकारु
.... 339
20...नानक नदरी नदरि निहाल
.... 359

1

एक ओंकार सतनाम
पहला प्रवचन

आदि सचु जुगादि सच

मंत्रः
इक ओंकार सतिनाम
करता पुरखु निरभउ निरवैर।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि।।

जपुः
आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।

पउड़ीः 1
सोचे सोचि न होवई जे सोची लख बार।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।
भुखिया भुख न उतरी जे बंना पुरीआं भार।
सहस सियाणपा लख होहि, त इक न चले नालि।
किव सचियारा होइए, किव कूड़ै तुटै पालि।
हुकमि रजाई चलणा "नानक" लिखिआ नालि।

एक अंधेरी रात। भादों की अमावस। बादलों की गड़गड़ाहट। बीच-बीच में बिजली का चमकना। वर्षा के झोंके। गांव पूरा सोया हुआ। बस, नानक के गीत की गूंज।
रात देर तक वे गाते रहे। नानक की मां डरी। आधी रात से ज्यादा बीत गई। कोई तीन बजने को हुए। नानक के कमरे का दीया जलता है। बीच-बीच में गीत की आवाज आती है। नानक के द्वार पर नानक की मां ने दस्तक दी और कहा, बेटे! अब सो भी जाओ। रात करीब-करीब जाने को हो गई।
नानक चुप हुए। और तभी रात के अंधेरे में एक पपीहे ने जोर से कहा, पियू- पियू।
नानक ने कहा, सुनो मां! अभी पपीहा भी चुप नहीं हुआ। अपने प्यारे की पुकार कर रहा है, तो मैं कैसे चुप हो जाऊं? इस पपीहे से मेरी होड़ लगी है। जब तक यह गाता रहेगा, पुकारता रहेगा, मैं भी पुकारता रहूंगा। और इसका प्यारा तो बहुत पास है, मेरा प्यारा बहुत दूर है। जन्मों-जन्मों गाता रहूं तो ही उस तक पहुंच सकूंगा। रात और दिन का हिसाब नहीं रखा जा सकता है। नानक ने फिर गाना शुरू कर दिया।
नानक ने परमात्मा को गा-गा कर पाया। गीतों से पटा है मार्ग नानक का। इसलिए नानक की खोज बड़ी भिन्न है। पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि नानक ने योग नहीं किया, तप नहीं किया, ध्यान नहीं किया। नानक ने सिर्फ गाया। और गा कर ही पा लिया। लेकिन गाया उन्होंने इतने पूरे प्राण से कि गीत ही ध्यान हो गया, गीत ही योग बन गया, गीत ही तप हो गया।
जब भी कोई समग्र प्राण से किसी भी कृत्य को करता है, वही कृत्य मार्ग
बन जाता है। तुम ध्यान भी करो अधूरा-अधूरा, तो भी न पहुंच पाओगे। तुम पूरा- पूरा, पूरे हृदय से, तुम्हारी सारी समग्रता से, एक गीत भी गा दो, एक नृत्य भी कर लो, तो भी तुम पहुंच जाओगे। क्या तुम करते हो, यह सवाल नहीं। पूरी समग्रता से करते हो या अधूरे-अधूरे, यही सवाल है।
परमात्मा के रास्ते पर नानक के लिए गीत और फूल ही बिछे हैं। इसलिए उन्होंने जो भी कहा है, गा कर कहा है। बहुत मधुर है उनका मार्ग; रससिक्त! कल हम कबीर की बात कर रहे थेः
सुरत कलारी भई मतवारी, मधवा पी गई बिन तौले।
नानक वही हैं, जो मधवा को बिना तौले पी गए हैं। फिर जीवन भर गाते रहे।
ये गीत साधारण गायक के नहीं हैं। ये गीत उसके हैं जिसने जाना है। इन गीतों में सत्य की भनक, इन गीतों में परमात्मा का प्रतिबिंब है।

दूसरी बात, जपुजी के जन्म के संबंध में। जिस भादों की रात की मैंने बात कही--तब नानक की उम्र रही होगी कोई सोलह-सत्रह। जपुजी का जन्म हुआ तब उनकी उम्र थी, छत्तीस वर्ष, छह माह, पंद्रह दिन। जिस घटना का मैंने उल्लेख किया, उस भादों की रात वे साधक थे और तलाश में थे। प्यारे की पुकार चल रही थी, पियू-पियू। अभी पपीहा रट लगा रहा था। अभी मिलन न हुआ था।
जपुजी का जब जन्म हुआ--यह मिलन के बाद उनका पहला उदघोष है। पपीहा ने पा लिया अपने प्यारे को। पियू-पियू की रटन पूरी हुई। मिलन हो गया। उस मिलन से जो पहला उदघोष हुआ है, वह जपुजी है। इसलिए नानक की वाणी में जो मूल्य जपुजी का है वह किसी और बात का नहीं। जपुजी ताजी से ताजी खबर है उस लोक की। वहां से लौट कर उन्होंने जो पहली बात कही, वह यही है। उस जगत से इस जगत में आ कर, जो पहले शब्द निर्मित हुए वही जपुजी है।
उस घटना को भी समझ लेना है।
नदी के किनारे रात के अंधेरे में, अपने साथी और सेवक मरदाना के साथ वे नदी तट पर बैठे थे। अचानक उन्होंने वस्त्र उतार दिए। बिना कुछ कहे वे नदी में उतर गए। मरदाना पूछता भी रहा, क्या करते हैं? रात ठंडी है, अंधेरी है! दूर नदी में वे चले गए। मरदाना पीछे-पीछे गया। नानक ने डुबकी लगाई। मरदाना सोचता था कि क्षण-दो क्षण में बाहर आ जाएंगे। फिर वे बाहर नहीं आए। दस-पांच मिनट तो मरदाना ने राह देखी, फिर वह खोजने लग गया कि वे कहां
खो गए। फिर वह चिल्लाने लगा। फिर वह किनारे-किनारे दौड़ने लगा कि कहां हो? बोलो, आवाज दो! ऐसा उसे लगा कि नदी की लहर-लहर से एक आवाज आने लगी, धीरज रखो, धीरज रखो। पर नानक की कोई खबर नहीं। वह भागा गांव गया, आधी रात लोगों को जगा दिया। भीड़ इकट्ठी हो गई।
नानक को सभी लोग प्यार करते थे। सभी को नानक में दिखाई पड़ती थी कुछ होने की संभावना। नानक की मौजूदगी में सभी को सुगंध प्रतीत होती थी। फूल अभी खिला नहीं था, पर कली भी तो गंध देती है! सारा गांव रोने लगा, भीड़ इकट्ठी हो गई। सारी नदी तलाश डाली। इस कोने से उस कोने लोग भागने-दौड़ने लगे। लेकिन कोई पता न चला। तीन दिन बीत गए। लोगों ने मान ही लिया कि नानक को कोई जानवर खा गया। डूब गए, बह गए, किसी खाई-खड्ड में उलझ गए। मान ही लिया कि मर गए। रोना-पीटना हो गया। घर के लोगों ने भी समझ लिया कि अब लौटने का कोई उपाय न रहा।
और तीसरे दिन रात अचानक नानक नदी से प्रकट हो गए। जब वे नदी से प्रकट हुए तो जपुजी उनका पहला वचन है। यह घोषणा उन्होंने की।
कहानी ऐसी है--कहता हूं, कहानी। कहानी का मतलब होता है, जो सच भी है, और
सच नहीं भी। सच इसलिए है कि वह खबर देती है सचाई की; और सच इसलिए नहीं है कि वह कहानी है और प्रतीकों में खबर देती है। और जितनी गहरी बात कहनी हो, उतनी ही प्रतीकों की खोज करनी पड़ती है।
नानक जब तीन दिन के लिए खो गए नदी में तो कहानी है कि वे प्रकट हुए परमात्मा के द्वार में। ईश्वर का उन्हें अनुभव हुआ। जाना आंखों के सामने प्यारे को, जिसके लिए पुकारते थे। जिसके लिए गीत गाते थे, जो उनके हृदय की धड़कन-धड़कन में प्यास बना था। उसे सामने पाया। तृप्त हुए। और परमात्मा ने उन्हें कहा, अब तू जा। और जो मैंने तुझे दिया है, वह लोगों को बांट। जपुजी उनकी पहली भेंट है--परमात्मा से लौट कर।
यह कहानी है। इसके प्रतीकों को समझ लें। एक, कि जब तक तुम न खो जाओ, जब
तक तुम न मर जाओ तब तक परमात्मा से कोई साक्षात्कार न होगा। नदी में खोओ कि पहाड़ में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तुम नहीं बचने चाहिए। तुम्हारा खो जाना ही उसका होना है। तुम जब तक हो तभी तक वह न हो पाएगा। तुम ही अड़चन हो। तुम ही दीवाल हो। तो यह जो नदी में खो जाने की कहानी है--तुम्हें भी खो जाना पड़ेगा; तुम्हें भी डूब जाना पड़ेगा। तीन दिन लगते हैं। इसलिए तो हम, जब आदमी मर जाता है, तो तीसरा मनाते हैं। तीसरा हम इसलिए मनाते हैं कि मरने की घटना पूरी होने में तीन दिन लग जाते हैं। उतना समय जरूरी है। अहंकार मरता है, एकदम से नहीं। कम से कम समय तीन दिन लेता है। इसलिए कहानी में तीन दिन हैं, कि नानक तीन दिन नदी में खोए रहे। अहंकार पूरा गल गया, मर गया। और पास-पड़ोस, मित्रों, प्रियजनों, परिवार के लोगों को तो अहंकार ही दिखाई पड़ता है,

तुम्हारी आत्मा तो दिखाई पड़ती नहीं, इसलिए उन्होंने तो समझा कि नानक मर गए।
जब भी कोई संन्यासी होता है, घर के लोग समझ लेते हैं, मर गया। जब भी कोई उसकी खोज में जाता है, घर के लोग मान लेते हैं, खत्म हुआ। क्योंकि अब यह वही तो न रहा। टूट गई पुरानीशृंखला। अतीत मिटा, अब नया हुआ। बीच में तीन दिन की खाई है। इसलिए तीन दिन का प्रतीक है। तीन दिन बाद नानक लौट आए।
जो भी खोता है वह लौट आता है, लेकिन नया हो कर लौटता है। जो भी जाता है
उस मार्ग पर, वापस आता है। लेकिन जा रहा था तब प्यासा था, आता है तब दानी हो कर आता है। जाता था तब भिखारी था, आता है तब सम्राट हो कर आता है। जो भी परमात्मा में लीन होता है, जाते समय भिक्षापात्र होता है, लौटते समय अपरंपार संपदा होती है बांटने को।
जपुजी पहली भेंट है।
परमात्मा के सामने प्रकट होना, प्यारे को पा लेना, इन्हें तुम बिल्कुल प्रतीक को, भाषागत रूप से सच मत समझ लेना। क्योंकि कहीं कोई परमात्मा बैठा हुआ नहीं है, जिसके सामने तुम प्रकट हो जाओगे। लेकिन कहना हो बात, तो और कुछ कहने का उपाय भी नहीं है। जब तुम मिटते हो तो जो भी आंख के सामने होता है वही परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है; परमात्मा निराकार शक्ति है।
तुम उसके सामने कैसे हो सकोगे? जहां तुम देखोगे, वहीं वह है। जो तुम देखोगे, वही वह है। जिस दिन आंख खुलेगी, सभी वह है। बस तुम मिट जाओ, आंख खुल जाए।
अहंकार तुम्हारी आंख में पड़ी हुई कंकड़ी है। उसके हटते ही परमात्मा प्रकट हो जाता है। परमात्मा प्रकट ही था, तुम मौजूद न थे। नानक मिटे, परमात्मा प्रकट हो गया। जैसे ही परमात्मा प्रकट हो जाता है, तुम भी परमात्मा हो गए। क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
नानक लौटे; परमात्मा हो कर लौटे। फिर उन्होंने जो भी कहा है, एक-एक शब्द बहुमूल्य है। फिर उस एक-एक शब्द को हम कोई भी कीमत दें तो भी कीमत छोटी पड़ेगी। फिर एक-एक शब्द वेद-वचन हैं।
अब हम जपुजी को समझने की कोशिश करें।
इक ओंकार सतिनाम
करता पुरखु निरभउ निरवैर।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि।।
"वह एक है, ओंकार स्वरूप है, सत नाम है, कर्ता पुरुष है, भय से रहित है, वैर से रहित है, कालातीत-मूर्ति है, अयोनि है, स्वयंभू है, गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।"
एक है--इक ओंकार सतिनाम।
जो भी हमें दिखाई पड़ता है वह अनेक है। जहां भी तुम देखते हो, भेद दिखाई पड़ता है। जहां तुम्हारी आंख पड़ती है, अनेक दिखाई पड़ता है। सागर के किनारे जाते हो, लहरें दिखाई पड़ती हैं। सागर दिखाई नहीं पड़ता। हालांकि सागर ही है। लहरें तो ऊपर-ऊपर हैं।
पर जो ऊपर-ऊपर है वही दिखाई पड़ता है, क्योंकि ऊपर की ही आंख हमारे पास है। भीतर को देखने के लिए तो भीतर की आंख चाहिए। जैसी होगी आंख, वैसा ही होगा दर्शन। आंख से गहरा तो दर्शन नहीं हो सकता। तुम्हारे पास आंख ही ऊपर की है। तो लहरों को देख कर लौट आओगे। और लोगों से कहोगे कि सागर हो आया। सागर में जाने का यह ढंग नहीं है। किनारे से तो दिखाई पड़ेंगी लहरें। सागर में हो तो डूबना ही पड़े। इसलिए तो कहानी है कि नानक नदी में डूब गए। लहरों में नहीं है वह, नदी में है। लहरों में नहीं है, सागर में है। ऊपर-ऊपर तो लहरें होंगी। तट से तुम देख कर लौट आओगे, तो तुम जो खबर दोगे वह गलत होगी। तुम कहोगे कि सागर हो आया। सागर तक तुम गए नहीं। तट पर तो सागर नहीं है, वहां से तो लहरें दिखाई पड़ सकती हैं। लहरों का जोड़ भी सागर नहीं है। जोड़ से भी ज्यादा है सागर। और जो मौलिक भेद है वह यह है कि लहर अभी है, क्षण भर बाद नहीं होगी, क्षण भर पहले नहीं थी।
एक सूफी फकीर हुआ जुन्नैद। बहुत प्रेम करता था अपने बेटे को। फिर बेटा अचानक मर गया किसी दुर्घटना में, तो दफना आया। पत्नी थोड़ी हैरान हुई।

पत्नी सोचती थी कि बेटा मरेगा तो जुन्नैद पागल हो जाएगा; इतना प्रेम करता था बेटे को। लेकिन जैसे जुन्नैद को कुछ हुआ ही नहीं। जैसे बेटा मरा ही नहीं। जैसे कोई बात ही नहीं हुई, जुन्नैद वैसा ही रहा। आखिर सांझ होते- होते जब लोग विदा हो गए सहानुभूति प्रगट करके, तो पत्नी ने पूछा कि कुछ दुख नहीं हुआ तुम्हें? मैं तो सोचती थी तुम टूट जाओगे। इस बेटे से तुम्हें इतना प्रेम था। जुन्नैद ने कहा कि एक क्षण को धक्का लगा था, फिर मुझे याद आया, जब यह बेटा नहीं था तब भी मैं था और खुश था। जब यह बेटा नहीं था तब भी मैं था और खुश था; अब यह बेटा नहीं है तो दुख होने का क्या कारण है? फिर वैसे ही हो गया, जैसे पहले था। बेटा बीच में आया और गया। न पहले दुखी था तो अब दुखी होने का क्या कारण? बिना बेटे के मजे में था। अब फिर बिना बेटे के हूं। फर्क क्या है? बीच का एक सपना टूट गया।
जो बनता है और मिट जाता है, वह सपना है। जो आता है और चला जाता है, वह सपना है। लहरें सपना हैं, सागर सच है। अनेक लहरें हैं, एक सागर है। हमें अनेक दिखाई पड़ता है। और जब तक एक न दिखाई पड़ जाए, तब तक हम भटकते रहेंगे।
क्योंकि एक ही सच है।
इक ओंकार सतिनाम।
और नानक कहते हैं कि उस एक का जो नाम है, वही ओंकार है। और सब नाम तो आदमी के दिए हैं। राम कहो, कृष्ण कहो, अल्लाह कहो, ये नाम आदमी के दिए हैं।
ये हमने बनाए हैं। सांकेतिक हैं। लेकिन एक उसका नाम है जो हमने नहीं दिया; वह ओंकार है, वह ओम है।
क्यों ओंकार उसका नाम है? क्योंकि जब सब शब्द खो जाते हैं और चित्त शून्य हो जाता है और जब लहरें पीछे छूट जाती हैं और सागर में आदमी लीन हो जाता है तब भी ओंकार की धुन सुनाई पड़ती रहती है। वह हमारी की हुई धुन नहीं है। वह अस्तित्व की धुन है। वह अस्तित्व की ही लय है। अस्तित्व के होने का ढंग ओंकार है। वह किसी आदमी का दिया हुआ नाम नहीं है। इसलिए ओम का कोई भी अर्थ नहीं होता। ओम कोई शब्द नहीं है। ओम ध्वनि है और ध्वनि भी अनूठी है। कोई उसका स्रोत नहीं है। कोई उसे पैदा नहीं करता। अस्तित्व के होने में ही छिपी है। अस्तित्व के होने की ध्वनि है।
जैसे कि जलप्रपात है; तुम उसके पास बैठो तो प्रपात की एक ध्वनि है। लेकिन वह ध्वनि पानी और चट्टान की टक्कर से पैदा होती है। नदी के पास बैठो, कल-कल का नाद होता है। लेकिन वह कल-कल का नाद नदी और तट की टक्कर से होता है। हवा का झोंका निकलता है, वृक्ष से सरसराहट होती है। लेकिन वह सरसराहट हवा और वृक्ष की टक्कर से होती है। हम बोलते हैं, संगीतज्ञ गीत गाता है, वीणा का कोई तार छेड़ता है, लेकिन सभी चीज संघर्ष से पैदा होती है। संघर्ष के लिए दो जरूरी हैं। तार चाहिए वीणा का, हाथ चाहिए छेड़नेवाला। जितनी ध्वनियां द्वैत से पैदा होती हैं, वे उसके नाम नहीं हैं। उसका नाम तो वही है, जब सब द्वैत खो जाता है, फिर भी एक ध्वनि गूंजती रहती है।
इस संबंध में कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं। विज्ञान कहता है कि सारे अस्तित्व को अगर हम तोड़ते चले जाएं, और गहराई में विश्लेषण करें, तो अंत में हमें विद्युत-ऊर्जा, इलेक्ट्रीसिटी मिलती है। इसलिए जो आखिरी खोज है विज्ञान की, वह इलेक्ट्रान है, विद्युतकण। सारा अस्तित्व विद्युत से बना है। अगर हम विज्ञान से पूछें कि ध्वनि किससे बनी है? तो विज्ञान कहता है, वह भी विद्युत से बनी है। ध्वनि भी विद्युत का एक आकार है, एक रूप है। लेकिन मूल विद्युत है।
इस संबंध में समस्त ज्ञानियों की विज्ञान से सहमति है, थोड़े से भेद के साथ। वह भेद बड़ा नहीं, वह भेद भाषा का है। समस्त ज्ञानियों ने पाया कि अस्तित्व बना है ध्वनि से और ध्वनि का ही एक रूप विद्युत है। विज्ञान कहता है, विद्युत का एक रूप ध्वनि है; और धर्म कहता है कि विद्युत ध्वनि का एक रूप है। इतना ही फासला है।
मगर यह फासला ऐसा ही दिखाई पड़ता है जैसे ग्लास आधा भरा हो; कोई कहे आधा भरा है, कोई कहे आधा खाली है। विज्ञान की पहुंच का द्वार अलग है। विज्ञान ने पदार्थ को तोड़-तोड़ कर विद्युत को खोजा है। ज्ञानियों की पहुंच का मार्ग अलग है। उन्होंने अपने को जोड़-जोड़ कर--तोड़ कर नहीं; अपने को जोड़-जोड़ कर अखंड को पाया है। और उस अखंड में एक ध्वनि पाई है। जब कोई व्यक्ति

समाधिस्थ हो जाता है तो ओंकार की ध्वनि गूंजती है। वह अपने भीतर उसे गूंजते पाता है, अपने बाहर गूंजते पाता है। सब, सारे लोक उससे व्याप्त मालूम होते हैं।
चकित हो जाता है पहली बार, जब घटता है। क्योंकि वह देखता है कि मैं तो बोल नहीं रहा, मैं तो कुछ कर नहीं रहा, यह ध्वनि कहां से आ रही है? तब वह अनुभव करता है कि यह होने की ध्वनि है, यह किसी टक्कर से पैदा नहीं हो रही है। यह आहत ध्वनि नहीं है, यह अनाहत नाद है।
नानक कहते हैं, वही एक उसका नाम है--ओंकार। नानक बहुत बार नाम शब्द का प्रयोग करेंगे। इसे स्मरण रखना कि जब भी वे कहते हैं, उसका नाम; और उसका नाम ही मार्ग है, और उसके नाम की रटन में जो डूब जाएगा, उसके नाम में जो डूब जाएगा वह उसे पा लेगा; तो ध्यान रखना, नाम जब भी नानक कहते हैं, तब उनका इशारा ओंकार की तरफ है। क्योंकि वही एक उसका नाम है जो हमने नहीं दिया, जो उसका ही है। हमारे दिए हुए नाम बहुत दूर न जा सकेंगे। और अगर थोड़े-बहुत जाते भी हैं, तो इसलिए जाते हैं कि हमारे नामों में भी उसके नाम की थोड़ी-सी झलक होती है।
जैसे समझो कि राम। अगर कोई राम, राम, राम, की रटन लगा दे भीतर, तो उसमें ओंकार की थोड़ी-सी झलक है। वह जो म है वह ओम का है। इसलिए राम शब्द से भी थोड़ी दूर तक जा सकेंगे हम। लेकिन अगर तुम धुन को करते ही गए, तो तुम एक दिन अचानक पाओगे कि राम की ध्वनि ओंकार में बदल गई। अगर तुम करते ही जाओगे तो जैसे ही मन शांत होगा, वैसे ही ओम तुम्हारे राम में प्रविष्ट हो जाएगा। और तुम धीरे-धीरे पाओगे कि राम तो खो गया, ओम आ गया। समस्त ज्ञानियों का यह अनुभव है कि उन्होंने किसी भी नाम से शुरू किया हो, लेकिन आखिरी में ओम आ जाता है। जैसे ही तुम शांत होने लगते हो, वैसे ही ओम आने लगता है। ओम सदा मौजूद है, बस, तुम्हारे शांत होने की जरूरत है।
नानक कहते हैं, इक ओंकार सतिनाम।
यह सत शब्द भी समझ लेने जैसा है। संस्कृत में दो शब्द हैं। एक सत और एक सत्य। सत का अर्थ होता है एक्झिस्टेंस, अस्तित्व। और सत्य का अर्थ होता है ट्रुथ। दोनों में बड़ा फर्क है। दोनों की मूल धातु तो एक है। सच, सत्य, सत, सब की मूल धातु एक है। लेकिन थोड़े से फर्क हैं, वे समझ लेने जरूरी हैं। सत्य तो दार्शनिक की खोज है। वह खोजता है कि सत्य क्या है? व्हाट इज ट्रुथ? जैसे, दो और दो मिल कर चार होते हैं, यह सत्य है। कि दो और दो मिल कर पांच नहीं होते; दो और दो मिल कर तीन नहीं होते; दो और दो मिल कर चार होते हैं। यह गणित का सूत्र सत्य है, लेकिन सत नहीं है। क्योंकि यह मनुष्य का ही हिसाब है। दिस इज ट्रू, बट नाट एक्झिस्टेंशियल। दो और दो मिल कर चार होते हैं, यह मनुष्य की ही ईजाद है। यह सत्य तो है, सच नहीं है। सत नहीं है।
तुम सपना देखते हो रात। सपना सत तो है, सत्य नहीं है। सपना है तो! नहीं
तो देखोगे कैसे? होना तो है, लेकिन तुम यह नहीं कह सकते कि सत्य है। क्योंकि सुबह तुम पाते हो कि न होने के बराबर है। लेकिन हुआ जरूर! सपना घटा।
तो दुनिया में ऐसी घटनाएं हैं, जो सत्य हैं और सत नहीं। और ऐसी भी घटनाएं हैं, जो सत हैं लेकिन सत्य नहीं। गणित सत्य है, सत नहीं। गणित का एक निष्कर्ष सत्य हो सकता है, सत नहीं। सपना है; सपना सत है, सत्य नहीं। परमात्मा दोनों है--सत भी, सत्य भी। और इसलिए न तो उसे गणित से पाया जा सकता-- विज्ञान से उसे नहीं पाया जा सकता, क्योंकि विज्ञान खोजता है सत्य को; और न उसे काव्य, कला, आर्ट्स से पाया जा सकता है, क्योंकि कला खोजती है सत को। परमात्मा दोनों है, सत धन सत्य। इसलिए न तो कला उसे पूरा खोज सकती है और न विज्ञान। दोनों अधूरे हैं।
और इसीलिए धर्म की खोज दोनों से पृथक है। धर्म उसकी तलाश है, जो दोनों है, एक साथ है। जो इतना सत्य है जितना कि गणित का कोई भी फार्मूला और जो इतना सत है जितनी काव्य की कोई भी धारणा। वह दोनों है, और दोनों नहीं है। अगर तुम आधे से देखोगे तो चूक जाओगे। अगर तुम दोनों को मिला कर देखोगे तो ही उसे पा सकोगे।
तो जब नानक कहते हैं, एक ओंकार सतिनाम; तो इस सत में दोनों हैं--सत्य और सत। उस परम अस्तित्व का नाम--जो गणित की तरह सच है, और जो काव्य की तरह भी सत

है; जो स्वप्न की तरह मधुर, और गणित की तरह ठीक-ठीक सही है; जो हृदय की भावना की तरह भी है, और मस्तिष्क की प्रतीति की भांति भी है।
जहां मस्तिष्क और हृदय मिलते हैं, वहीं धर्म शुरू होता है। अगर मस्तिष्क अकेला रहे, हृदय को दबा दे, तो विज्ञान पैदा होता है। अगर हृदय अकेला रहे, मस्तिष्क को हटा दे, तो कल्पना का जगत, काव्य, संगीत, चित्र, कला पैदा होती है। और अगर मस्तिष्क और हृदय दोनों मिल जाएं, दोनों का संयोग हो जाए, तो हम ओंकार में प्रवेश करते हैं।
धार्मिक व्यक्ति वैज्ञानिक से बड़ा वैज्ञानिक, कलाकार से बड़ा कलाकार है, क्योंकि उसकी खोज संयुक्त है। विज्ञान और कला द्वंद्व है। धर्म समन्वय है, सिन्थेसिस है।
नानक कहते हैं, इक ओंकार सतिनाम।
"वह एक ओंकार स्वरूप, वह सत नाम, कर्ता पुरुष... ।"
ये जो शब्द हैं, इन्हें ऊपर से समझोगे तो भ्रांतियां होंगी।
ज्ञानियों की एक अड़चन है कि शब्द तो उन्हें तुम्हारे ही उपयोग करने पड़ते हैं। तुमसे बात करनी है, तुम्हारी ही भाषा बोलनी पड़ेगी। और जो वे कहना चाहते हैं, वह भाषा के पार है। जो वे कहना चाहते हैं, वह तुम्हारी भाषा में आ नहीं सकता। तुम्हारी भाषा बहुत संकीर्ण, वह बहुत विराट। जैसे कोई अपने घर में पूरे आकाश को समा लेना चाहे। जैसे कोई अपनी मुट्ठी में सारे प्रकाश को बांध लेना चाहे, ऐसी असमर्थता है। तो तुम्हारे ही शब्द उपयोग करने पड़ते हैं।
और तुम्हारे शब्दों के कारण ही इतने संप्रदाय पैदा हो जाते हैं। क्योंकि बुद्ध नानक से दो हजार साल पहले हुए। तो बुद्ध दूसरी भाषा का उपयोग करते हैं, जो प्रचलित थी, जो लोग समझते थे। कृष्ण और दो हजार साल पहले बुद्ध से हुए। वे और दूसरी भाषा का उपयोग करते हैं, जो लोग समझते थे। मुहम्मद और दूसरी भाषा का उपयोग करते हैं, क्योंकि दूसरी हवा, दूसरा मुल्क, दूसरे ढंग के लोग। महावीर अलग, जीसस अलग।
भाषाओं के भेद हैं। भाषा तुम्हारी वजह से अलग है, अन्यथा ज्ञानियों में कोई भी भेद नहीं। नानक जो भाषा का उपयोग कर रहे हैं, वह नानक के समय समझी जा सकती थी।
तो नानक कहते हैं, कर्ता पुरुष। वही बनाने वाला। लेकिन तत्क्षण हमें ख्याल आता है कि अगर वही बनाने वाला है, और हम बनाए गए हैं, तो द्वैत हो गया। और नानक तो शुरू में ही इनकार कर दिए हैं कि वह एक है। अगर वह बनाने वाला और स्रष्टा है, और सृष्टि अलग है जिसको उसने बनाया, तो द्वैत शुरू हो गया।
हमारी भाषा से अड़चन शुरू होती है। जैसे-जैसे नानक आगे बढ़ेंगे वैसे- वैसे अड़चन शुरू होगी। जो उन्होंने पहला शब्द बोला है समाधि के बाद, वह है-- इक ओंकार सतिनाम।
सच तो यह है कि पूरा सिक्ख धर्म इन तीन शब्दों में समाप्त हो जाता है। इसके आगे तो तुम्हें समझाने की कोशिश है, अन्यथा बात पूरी हो गयी। तुम नहीं समझोगे इससे, इससे आगे फिर विस्तार करना पड़ता है। विस्तार तुम्हारे कारण है, अन्यथा मंत्र तो पूरा हो गया। बात तो पूरी हो गई। इक ओंकार सतिनाम--सब कह दिया। लेकिन तुम्हारे लिए तो अभी कुछ भी नहीं कहा गया। इन तीन शब्दों से क्या हल होगा? कुछ हल नहीं होता। तब तुम्हारी भाषा की शुरुआत होती है।
"कर्ता पुरुष--वह बनाने वाला है।"
लेकिन ध्यान रखना, जो उसने बनाया है वह उससे अलग नहीं है। बनाने वाला, बनायी हुई सृष्टि में छिपा है। कर्ता कृत्य में छिपा है। स्रष्टा सृष्टि में लीन है।
इसलिए नानक ने गृहस्थ को और संन्यासी को अलग नहीं किया। क्योंकि अगर कर्ता परमेश्वर अलग है सृष्टि से, तो फिर तुम्हें सृष्टि के काम-धंधे से अलग हो जाना चाहिए। जब तुम्हें कर्ता पुरुष को खोजना है तो कृत्य से दूर हो जाना चाहिए, कर्म से दूर हो जाना चाहिए। फिर बाजार है, दूकान है, काम-धंधा है, उससे अलग हो जाना चाहिए।

नानक आखिर तक अलग नहीं हुए। यात्राओं पर जाते थे; और जब भी वापस लौटते
तो फिर अपनी खेती-बाड़ी में लग जाते। फिर उठा लेते हल-बक्खर। पूरे जीवन, जब भी वापस लौटते घर, तब अपना कामधाम शुरू कर देते। जिस गांव में वे आखिर में बस गए थे, उस गांव का नाम उन्होंने करतारपुर रख लिया था--कर्ता का गांव। अगर परमात्मा कर्ता है, तो तुम यह मत समझना कि वह दूर हो गया है कृत्य से। एक आदमी मूर्ति बनाता है। जब मूर्ति बन जाती है तो मूर्तिकार अलग हो जाता है, मूर्ति अलग हो जाती है। दो हो गए। मूर्तिकार के मरने से मूर्ति नहीं मरेगी। मूर्तिकार मर जाए, मूर्ति रहेगी। मूर्ति के टूटने से मूर्तिकार नहीं मरेगा। मूर्ति टूट जाए, मूर्तिकार बचेगा। दोनों अलग हो गए। परमात्मा और उसकी सृष्टि में ऐसा फासला नहीं है।
फिर परमात्मा और उसकी सृष्टि में कैसा संबंध है? वह ऐसा है जैसे नर्तक का। एक आदमी नाच रहा है, तो नृत्य है, लेकिन क्या तुम नृत्य को और नृत्यकार को अलग कर सकोगे? नृत्यकार घर चला जाए, नृत्य तुम्हारे पास छोड़ जा सकेगा? नृत्यकार मरेगा, नृत्य मर जाएगा। नृत्य रुकेगा, फिर वह आदमी नर्तक न रहा। दोनों संयुक्त हैं। इसलिए हिंदुओं ने बड़े प्राचीन समय से, परमात्मा को नर्तक की दृष्टि से देखा--नटराज! क्योंकि नटराज के प्रतीक में नर्तक और नृत्य अलग नहीं होते।
कवि भी कविता बनाए तो कविता से अलग हो जाता है। मूर्तिकार मूर्ति बनाए, मूर्ति से अलग हो जाता है। मां बेटे को जन्म दे, जन्म देते ही अलग हो जाती है। पिता बेटे से अलग है। लेकिन परमात्मा सृष्टि से अलग नहीं है। सृष्टि में समाया हुआ है। अगर ठीक-ठीक, तुम्हारी भाषा का उपयोग न किया जाए, तो कहना होगा--द क्रियेटर इज द क्रियेशन, वह जो स्रष्टा है, सृष्टि है। और भी अगर ठीक कहना हो तो, द क्रियेटर इज नथिंग बट द क्रियेटीविटी, स्रष्टा सृजन की प्रक्रिया है। वह स्वयं सृजन है।
इसलिए नानक कहते हैं, कुछ छोड़ कर कहीं भागना नहीं है। जहां तुम हो, वहीं वह छिपा है। इसलिए नानक ने एक अनूठे धर्म को जन्म दिया है, जिसमें गृहस्थ और संन्यासी एक है। और वही आदमी अपने को सिक्ख कहने का हकदार है, जो गृहस्थ होते हुए संन्यासी हो; संन्यासी होते हुए गृहस्थ हो। सिर के बाल बढ़ा लेने से, पगड़ी बांध लेने से कोई सिक्ख नहीं होता। सिक्ख होना बड़ा कठिन है। गृहस्थ होना आसान है। संन्यासी होना आसान है; छोड़ दो, भाग जाओ जंगल। सिक्ख होना कठिन है। क्योंकि सिक्ख का अर्थ है--संन्यासी, गृहस्थ एक साथ। रहना घर में और ऐसे रहना जैसे नहीं हो। रहना घर में और ऐसे रहना जैसे हिमालय पर हो। करना दूकान, लेकिन याद परमात्मा की रखना। गिनना रुपए, नाम उसका लेना।
नानक को जो पहली झलक मिली परमात्मा की, जिसको सतोरी कहें... इस नदी में तीन दिन डूब कर तो जो घटना घटी, वह समाधि की है, उसके बाद तो वे परम पुरुष हो गए। पर उसके पहले अनेक छोटी-छोटी झलकें मिलीं।
जो पहली झलक नानक को मिली, वह मिली एक दूकान पर; जहां वे तराजू से गेहूं और अनाज तौल रहे थे। अनाज तौल कर किसी को दे रहे थे। तराजू में भरते और डालते। कहते--एक, दो, तीन... दस, ग्यारह, बारह... फिर पहुंचे वे, तेरा। पंजाबी में तेरह का जो रूप है, वह तेरा। उन्हें याद आ गई परमात्मा की। तेरा, दाईन, दाऊ--धुन बन गई। फिर वे तौलते गए लेकिन संख्या तेरा से आगे न बढ़ी। भरते तराजू में, डालते और कहते, तेरा। भरते तराजू में और डालते, और कहते, तेरा। क्योंकि आखिरी पड़ाव आ गया। तेरा के आगे कोई संख्या है? मंजिल आ गई। तेरा पर सब समाप्त हो गया। लोग समझे कि पागल हो गए। लोगों ने रोकना भी चाहा, लेकिन वे तो किसी और लोक में हैं। वे तो कहे जाते हैं, तेरा। डाले जाते हैं तराजू से, तौले जाते हैं और तेरा से आगे नहीं बढ़ते। तेरा से आगे बढ़ने को जगह भी कहां है?
दो ही तो पड़ाव हैं, या तो मैं या तू। मैं से शुरुआत है, तू पर समाप्ति है।
नानक संसार के विरोध में नहीं हैं। नानक संसार के प्रेम में हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि संसार और उसका बनाने वाला दो नहीं। तुम इसे भी प्रेम करो, तुम इसी में से उसको प्रेम करो। तुम इसी में से उसको खोजो।

तो नानक जब युवा हुए और घर के लोगों ने कहा शादी कर लो, तो उन्होंने नहीं न कहा। सोचते तो रहे होंगे घर के लोग कि यह नहीं कहेगा, क्योंकि बचपन से ही इसके ढंग, ढंग के नहीं थे। नानक के बाप तो परेशान ही रहे। उनको कभी समझ में न आया कि क्या मामला है। भजन में, कीर्तन में, साधु-संगत में... । भेजा बेटे को सामान खरीदने दूसरे गांव। बीस रुपए दिए थे। सामान तो खरीदा, लेकिन रास्ते में साधु मिल गए, वे भूखे थे। बाप ने चलते वक्त कहा था, सस्ती चीज खरीद लाना और इस गांव में आ कर महंगे बेच देना। यही धंधे का गुर है। दूसरे गांव से सस्ते में खरीदना, यहां आ कर महंगे में बेच देना। यहां जो चीज सस्ती हो खरीदना, दूसरे गांव में महंगे में बेच देना। यही लाभ का रास्ता है। तो कोई ऐसी चीज खरीद कर लाना जिसमें लाभ हो। नानक लौटते थे खरीद कर, मिल गई साधुओं की एक जमात, वे पांच दिन से भूखे थे। नानक ने पूछा कि भूखे बैठे हो! उठो, कुछ करो। जाते क्यों नहीं गांव में? उन्होंने कहा, यही हमारा व्रत है। कि जब उसकी मर्जी होगी, वह देगा। तो हम आनंदित हैं। भूख से कोई अंतर नहीं पड़ता।
तो नानक ने सोचा कि इससे ज्यादा लाभ की बात क्या होगी कि इन परम साधुओं को यह भोजन बांट दिया जाए जो मैं खरीद लाया हूं! बाप ने यही तो कहा था कि कुछ काम लाभ का करो।
बांट दिया। साथी था साथ में, मित्र था साथ में, उसका नाम बाला था। उसने कहा, क्या करते हो, दिमाग खराब हुआ है? नानक ने कहा, यही तो कहा था पिता ने कि कुछ लाभ का काम करना। इससे ज्यादा लाभ क्या होगा? बांट कर बड़े प्रसन्न घर लौट आए।
इसलिए कहता हूं, ढंग के न थे। बाप ने कहा कि मूरख! ऐसे कहीं धंधा हुआ है? तू बरबाद कर देगा। और नानक ने कहा कि आप नहीं सोचते कि इससे ज्यादा लाभ की और क्या बात होगी? लाभ कमा कर लौटा हूं।
लेकिन यह लाभ किसी को दिखाई नहीं पड़ता था। नानक के पिता कालू मेहता को
तो बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता था। उनको तो लगता था, लड़का बिगड़ गया। साधु- संगत में बिगड़ा। होश में नहीं है। सोचा कि शायद स्त्री से बांधने से कुछ राहत मिल जाएगी।
अक्सर ऐसा लोग सोचते हैं। सोचने का कारण है। क्योंकि संन्यासी स्त्री
को छोड़ कर भागते हैं। तो अगर किसी को गृहस्थ बनाना हो, तो स्त्री से बांध दो। पर नानक पर यह तरकीब काम न आयी। क्योंकि यह आदमी किसी चीज के विरोध में न था।
बाप ने कहा, शादी कर लो। नानक ने कहा, अच्छा। शादी हो गई। लेकिन इसके ढंग में कोई फर्क न पड़ा। बच्चे हो गए, लेकिन इसके ढंग में कोई फर्क न पड़ा। इस आदमी को बिगाड़ने का उपाय ही न था, क्योंकि संसार और परमात्मा में इसे कोई भेद न था। तुम बिगाड़ोगे कैसे? जो आदमी धन छोड़ कर संन्यासी हो गया, बिगाड़ सकते हो, धन दे दो। जो आदमी स्त्री छा.ेड कर संन्यासी हो गया, एक सुंदर स्त्री को उसके पास पहुंचा दो, बिगाड़ सकते हो। लेकिन जो कुछ छोड़ कर ही नहीं गया, उसको तुम कैसे बिगाड़ोगे? उसके पतन का कोई रास्ता नहीं है। नानक को भ्रष्ट नहीं किया जा सकता।
इसलिए मैं भी पक्ष में हूं कि संन्यासी तो नानक के ही होने चाहिए।
क्योंकि संन्यासी वही परम है, जिसको भ्रष्ट न किया जा सके। भ्रष्ट तुम उसी को न कर सकोगे जो ठीक तुम्हारे संसार में बैठा है, और फिर भी वहां नहीं है।
तुम उसे कैसे भ्रष्ट करोगे? उसने सब उपाय तोड़ दिए।
वह परमात्मा, जिसे नानक कहते हैं, कर्ता पुरुष, भय से रहित है।
क्योंकि भय तो वहीं होता है जहां दूसरा हो।
पश्चिम में ज्यां पाल सार्त्र का एक वचन बहुत प्रसिद्ध हो गया। वह वचन हैः द अदर इज हेल, दूसरा नरक है। तुम्हारा भी अनुभव यही है। कितनी बार तुम नहीं चाहते हो कि अकेला छूट जाऊं! दूसरा उपद्रव है। मित्र हो तो थोड़ा कम उपद्रव है, शत्रु हो तो थोड़ा ज्यादा उपद्रव है। अपना हो तो थोड़ा कम उपद्रव है, पराया हो तो थोड़ा ज्यादा उपद्रव है। लेकिन दूसरा उपद्रव है। भय क्या है? दूसरे का भय है। कोई छीन न ले। कोई सुरक्षा न तोड़ दे। फिर मौत आ रही है, वह भी दूसरी है। बीमारी आ रही है, वह भी दूसरी है। भय क्या है? तुम दूसरे से घिरे हो, यही तुम्हारा नर्क है। द अदर इज हेल, दूसरा नर्क है।

लेकिन तुम दूसरे से बचोगे कैसे? हिमालय पर भी जा कर बैठ जाओ तो भी तुम अकेले न हो पाओगे। बैठोगे वृक्ष के नीचे, कौवा बीट कर देगा। गुस्सा कौवे पर आ जाएगा। बैठोगे, वर्षा आ जाएगी, धूप आ जाएगी। दूसरे से तुम भागोगे कहां? तुम जहां भी जाओगे, तुम दूसरे को पाओगे। क्योंकि दूसरे से बचने का तो एक ही उपाय है कि तुम उस एक को खोज लो जहां कोई दूसरा नहीं रह जाता। फिर सब भय गिर जाता है। फिर मौत है ही नहीं। फिर बीमारी है ही नहीं। फिर असुविधा है ही नहीं। क्योंकि दूसरा ही न रहा, तुम ही हो। कोई अंतर नहीं है।
भय तब तक रहेगा जब तक तुम्हें दूसरे दूसरे दिखाई पड़ते हैं।
इक ओंकार सतिनाम।
जिसके मन में यह छा गया, उसे कैसा भय? परमात्मा को भय नहीं हो सकता।
किसका भय होगा? वही है अकेला। उससे अन्यथा कोई भी नहीं है।
"अकाल भय से रहित, वैर से रहित, कालातीत, अकाल मूरति।"
कालातीत मूर्ति है। समय के पार है--बियांड टाइम।
इसे थोड़ा समझ लो। समय का अर्थ ही होता है परिवर्तन। अगर कोई चीज परिवर्तित न हो तो तुम्हें समय का पता ही न चलेगा। घड़ी में भी समय का पता चलता है क्योंकि कांटा घूमता है। अगर कांटा न घूमे तो समय का पता न चलेगा। चीजें बदल रही हैं। सूरज उगा, दोपहर हो गई, सांझ हो गई। बच्चा था जवान हो गया, जवान था बूढ़ा हो गया, स्वस्थ बीमार हो गया, बीमार स्वस्थ हो गया। गरीब अमीर हो गया, अमीर का दिवाला निकल गया, परिवर्तन है। सब चीजें बदल रही हैं। नदी बही जाती है। इस परिवर्तन में ही समय है। समय का अर्थ ही होता है, दो परिवर्तन के बीच का फासला।
थोड़ा सोचो, अगर आज सुबह तुम उठो और सांझ तक कुछ भी घटना न घटे, कोई परिवर्तन न हो। सूरज खड़ा रहे, जहां था। तुम्हारी उम्र उतनी ही बनी रहे जितनी थी। घड़ी का कांटा न हिले, वृक्ष बूढ़े न हों, पत्ते कुम्हलाएं न। सब ठहर जाए। तो तुम्हें समय का कैसे पता चलेगा? समय होगा ही नहीं।
तुम्हारे लिए समय का पता चलता है, क्योंकि तुम परिवर्तन से घिरे हो। परमात्मा के लिए कोई समय नहीं, क्योंकि वह सनातन है, शाश्वत है, सदा है। उसके लिए कुछ भी परिवर्तित नहीं हो रहा है। उसके लिए सब ठहरा हुआ है।
परिवर्तन अंधी आंख का अनुभव है। परिवर्तन ऐसे है क्योंकि हमें पूरा नहीं दिखाई पड़ रहा है। अगर हमें पूरा दिखाई पड़ जाए तो हमें परिवर्तन समाप्त हो जाएगा। परिवर्तन के समाप्त होते ही समय खो जाता है। समय परिवर्तन को नापने का माध्यम है। परमात्मा के लिए सब वैसा का वैसा है। कुछ बदलता नहीं। सब ठहरा हुआ है।
"कालातीत, अकाल मूरति, अयोनि, स्वयंभू।"
वह किसी योनि से पैदा नहीं होता। परमात्मा का न कोई पिता है न कोई मां। और जो भी योनि से पैदा होता है, वह परिवर्तन की दुनिया में प्रवेश कर जाता है। तुम्हें भी अपने भीतर उसी को खोजना है, जो अयोनिज है। यह शरीर तो पैदा हुआ है, मरेगा। यह शरीर तो दो शरीरों के जोड़ से बना है, बिखरेगा। जब वे दो शरीर ही बिखर गए तो यह शरीर कैसे बचेगा जो उनसे मिल कर बना है? लेकिन इसके भीतर अयोनिज भी है, जो गर्भ में आया, जो गर्भ के पहले था, और जो अभी छोड़ दे तो शरीर मुरदे की भांति पड़ा रह जाएगा। इस शरीर के भीतर कालातीत प्रवेश किया है। अकाल पुरुष इस शरीर के भीतर भी मौजूद है। यह शरीर जैसे उसका सिर्फ वस्त्र मात्र है। एक घर है, जिसमें ठहर गया है।
लेकिन तुम जब इसे अपने भीतर पाओगे तभी तुम नानक की वाणी समझ पाओगे। तुम्हें अपने भीतर उसको खोजना है, जो न तो परिवर्तित होता है, न बदलता है। अगर तुमने कभी थोड़ा भी आंख बंद कर के बैठने का अभ्यास किया है, तो तुम्हें एक बात ख्याल में आयी होगी कि भीतर कोई उम्र नहीं है। तुम चालीस साल के हो कि पचास साल के, भीतर कुछ पता नहीं चलेगा। तुम जब पांच साल के थे तब भी आंख बंद करते तो भीतर तुम अपने को वैसा ही पाते, जैसा तुम पचास साल के हो कर पाओगे। जैसे भीतर के लिए समय बीता ही नहीं। आंख बंद कर के भीतर देखो, तुम पाओगे वहां कुछ बदलता ही नहीं।
और यह जो भीतर अनबदला है, यह किसी योनि से पैदा नहीं हुआ है। तुम मां- बाप से आए हो, उनसे पैदा नहीं हुए हो। वे तुम्हारे आने के मार्ग हैं, लेकिन वे तुम्हारे जन्मदाता नहीं हैं। तुम उनसे गुजरे हो, क्योंकि तुम्हारे

शरीर को बनाने की व्यवस्था उनके भीतर थी। लेकिन जो उस शरीर के भीतर प्रविष्ट किया है, वह पार से आया है। अपने भीतर जिस दिन तुम अयोनिज को पाओगे, उसी दिन तुम समझोगे कि परमात्मा की कोई योनि नहीं है। हो भी नहीं सकती। क्योंकि परमात्मा का अर्थ है, समष्टि। परमात्मा का अर्थ है, द टोटेलिटी। यह पूरा का पूरा किससे पैदा होगा? पूरे के पार कुछ बचता ही नहीं, जो इसकी मां और पिता बन सके।
इसलिए अयोनि है, स्वयंभू है, अपने आप है। स्वयंभू का अर्थ है, अपने आप है। कोई सहारा नहीं है। किसी कारण से नहीं है। कोई आधार नहीं है। अपना ही आधार है। तुम भी जिस दिन अपने भीतर इस बात की थोड़ी सी झलक पाओगे उसी दिन मुक्त होओगे चिंता से।
तुम्हारी चिंता क्या है? चिंता यही है कि हर चीज का आधार है। और हर चीज
का आधार छीना जा सकता है। छीनने से चिंता है। छीनने के ख्याल से चिंता है। आज धन है, कल न होगा। फिर तुम क्या करोगे? धन के कारण अमीर हो, अपने कारण अमीर नहीं हो।
संन्यासी अपने कारण अमीर है। उससे तुम छीन नहीं सकते। बुद्ध से तुम क्या छीनोगे? नानक से तुम क्या छीनोगे? कुछ भी छीन कर तुम नानक को कम न कर पाओगे। कुछ दे कर ज्यादा न कर पाओगे। कुछ जोड़ नहीं सकते। कुछ घटा नहीं सकते। नानक जो भी हैं, उस परम सहारे के साथ हैं। तुम्हारा कोई सहारा नहीं। और वह परम सहारा अलग नहीं है। परमात्मा निराधार है। तुम भी निराधार हो। और जिस दिन तुम निराधार होने को राजी हो जाओगे, उसी दिन परमात्मा और तुम्हारा मिलन हो जाएगा।
यह जो परमात्मा की व्याख्या है, यह व्याख्या दार्शनिक की व्याख्या नहीं है। यह व्याख्या साधक के लिए है; ताकि तुम समझ जाओ कि परमात्मा के ये- ये लक्षण हैं। अगर तुम्हें परमात्मा को पाना है, तो इन्हीं-इन्हीं लक्षणों को तुम्हें अपनी साधना बना लेना है। छोटे रूप में तुम्हें परमात्मा होने की कोशिश में लग जाना है। जैसे-जैसे तुम उसके समान होने लगोगे, वैसे-वैसे तालमेल बैठने लगेगा। दोनों के बीच धुन बजने लगेगी। "अयोनि, स्वयंभू है, वह गुरु कृपा से प्राप्त होता है।"
क्यों कहते हैं गुरु कृपा से? क्या मनुष्य का अपना श्रम काफी नहीं है?
इस संबंध में एक सूक्ष्म बात समझ लेनी जरूरी है। क्योंकि नानक गुरु पर बहुत जोर देंगे। गुरु के बिना तो मिल ही नहीं सकता परमात्मा, वे कहेंगे। क्या कारण है? अगर परमात्मा मौजूद है, तो सीधा-सीधा मैं उससे मिल क्यों नहीं सकता? गुरु को बीच में लेने की जरूरत क्या है?
कृष्णमूर्ति कहते हैं, गुरु की कोई जरूरत नहीं। बुद्धि को, तर्क को ठीक भी मालूम पड़ता है। क्या जरूरत? जब परमात्मा मौजूद है, मैं भी परमात्मा से पैदा हुआ हूं, गुरु भी परमात्मा से पैदा हुआ है, तो गुरु को बीच में क्यों खड़ा करना? क्या आवश्यकता है? मन तो यह चाहता भी है कि गुरु बीच में खड़ा न किया जाए। इसलिए कृष्णमूर्ति के आसपास अहंकारी लोगों की जमात इकट्ठी हो गई है। कृष्णमूर्ति बिल्कुल ठीक कहते हैं, गुरु की जरूरत नहीं है, अगर तुम अपने अहंकार को खुद ही गिराने में समर्थ हो जाओ।
लेकिन अपने अहंकार को गिराना वैसा ही कठिन है, जैसे अपने ही जूते के बंध को पकड़ कर खुद को उठाना। अपने अहंकार को गिराना वैसे ही मुश्किल है, जैसे कुत्ता अपनी ही पूंछ को पकड़ने की कोशिश करे। जितने जोर से छलांग लगाता है उतनी जोर से पूंछ भी छलांग लगाती है। अपने अहंकार को तुम गिराओगे कैसे? अगर गिरा सकते हो तो कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं। बिल्कुल ठीक कहते हैं। कोई भी जरूरत नहीं है किसी गुरु की।
लेकिन वहीं सारी उलझन है। अगर तुम अपने अहंकार को गिराने में समर्थ
भी हो जाओ और यह कहो कि मैंने अपना अहंकार गिरा दिया, तो यह नया अहंकार पैदा हो गया। यह पुराने से ज्यादा खतरनाक है। गुरु की इसीलिए जरूरत है कि यह दूसरा अहंकार पैदा न हो सके। तुम कहोगे, गुरु प्रसाद से। नहीं तो तुम यह अहंकार बना लोगे कि मैं कितना विनम्र! मुझ जैसा कोई भी विनम्र नहीं है। अब यह मैं ने नए रास्ते पकड़े। यह अहंकार ने नयी तरकीबें खोजीं। कल कहता था मुझ से धनी कोई भी नहीं; अकड़! आज कहता है मुझ से विनम्र कोई भी नहीं; अकड़

वही है। रस्सी जल गई, अकड़ रह गई। अकड़ को कौन मिटाएगा? इसलिए नानक का जोर है।
परमात्मा को पाने में तो कोई अड़चन नहीं, सीधे ही पाया जा सकता है। क्योंकि वह सामने ही मौजूद है। तुम्हारी नाक के बिल्कुल सीध में। जहां तुम जाते हो, सब तरफ वह मौजूद है। लेकिन एक अड़चन है। और वह अड़चन यह है कि तुम भीतर खड़े हो। इसे तुम कैसे गिराओगे?
इसलिए गुरु प्रसाद से। साधक श्रम करेगा, लेकिन धारणा यही रखेगाः होगा गुरु की कृपा से। यह जो गुरुकृपा की धारणा है, यह तुम्हारे अहंकार को बनने न देगी। पुराने को गिरा देगी, नए को बनने न देगी। अन्यथा एक बीमारी जाती है, दूसरी उसकी जगह खड़ी हो जाती है।
और इसलिए एक बड़े मजे की घटना घटी है। कृष्णमूर्ति के पास अहंकारियों
की जमात इकट्ठी हो गयी है। वह जमात उन लोगों की है जो किसी के सामने झुकना नहीं चाहते। उनको बिल्कुल राहत मिल गई। किसी के चरण नहीं छूना चाहते। उनको बड़ा सहारा मिल गया। उन्होंने कहा, गुरु की कोई जरूरत ही नहीं, हम खुद ही पा लेंगे। और यही अड़चन है।
अगर नानक जैसा व्यक्ति कृष्णमूर्ति के पास हो, रामकृष्ण जैसा व्यक्ति कृष्णमूर्ति के पास हो, तो कोई अड़चन नहीं है। लेकिन जो लोग इकट्ठे होते हैं वे वे ही लोग हैं जो अहंकार गिराने में असमर्थ हैं। इनको गुरु की जरूरत है।
यह बड़े मजे की घटना है। कृष्णमूर्ति के पास जितने लोग हैं उनको गुरु
की जरूरत है। नानक के पास जितने लोग थे, बिना गुरु के भी पा सकते थे। तुम कहोगे कि मैं पहेली खड़ी कर रहा हूं। नानक के पास जो लोग थे, बिना गुरु के पा सकते थे, क्योंकि वे तैयार थे गुरुप्रसाद को स्वीकार करने को। वे तैयार थे अपने को छोड़ने को। पाया तो बिना गुरु के ही जाता है, लेकिन गुरु की धारणा तुम्हारे अहंकार को गिराने में सहयोगी हो जाती है। तुम अकड़ से नहीं भरते। नहीं तो तुम कहोगे, शीर्षासन करता हूं तीन घंटे। सुबह ध्यान करता हूं।
एक पत्नी मेरे पास आयी और उसने कहा कि मेरे पति आपके पास आते हैं, उन्हें कुछ समझाइए। अब हद हो गई। सिक्ख हैं पति।
क्या हुआ?
उसने कहा, वे रात दो बजे से उठ आते हैं और जपुजी का पाठ शुरू कर देते हैं। तो घर में सोना मुश्किल हो गया है। न बच्चे सो सकते हैं, न मैं सो सकती हूं। और उनसे कुछ कहो तो वे कहते हैं कि तुम सब उठ कर पाठ करो। तो क्या करना?
मैंने पति को बुलाया, वे मेरे पास आते थे। मैंने उनसे पूछा कि कब उठ कर पाठ करते हो? उन्होंने कहा कि बस सुबह प्रभातकाल में। बस, दो बजे सुबह उठ आता हूं।
उनके लिए दो बजे सुबह है! तो मैंने कहा कि तुम्हारी जो सुबह है, दूसरों
के लिए बहुत खतरनाक हो गई।
वे बोले, वह उनकी गलती है। उनको सबको उठना चाहिए। आलसी हैं, काहिल हैं, सुस्त हैं। और मैं तो सबकी सेवा ही कर रहा हूं। जोर से जपुजी का पाठ करता हूं। मुहल्ले-पड़ोस के लोगों के कान में भी पड़ जाती है आवाज।
मैंने उनसे कहा कि तुम ऐसा करो, थोड़ी कम सेवा करो मुहल्ले-पड़ोस की। तुम चार बजे... ।
धीरे-धीरे लाना उचित है। अन्यथा जो चढ़े हुए लोग हैं उनको उतारना बड़ा कठिन हो जाता है। उन्होंने कहा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप क्या मुझसे मेरा धर्म छीनना चाहते हैं?
अब यही उनकी अकड़ है कि उन जैसा पाठ करने वाला कोई नहीं। और वही अकड़ बाधा है। जीवन भर दोहराते रहो जपुजी को। असली सवाल तो अकड़ का मिटना है। इसलिए नानक बार-बार कहेंगे कि क्या तुम करते हो उससे कुछ भी न होगा, जब
तक कि तुम न मिट जाओ। यह गुरु की धारणा स्वयं को मिटाने की बड़ी कीमिया है। क्योंकि करो तुम कुछ, कहते तुम हो, गुरु प्रसाद से। उसकी कृपा से हो रहा है।
मैं कर रहा हूं--बस! अड़चन खड़ी हो जाएगी। अगर तुम अपने मैं को बिना किसी
के सहारे के गिरा दो, तो गुरु की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन करोड़ में कभी

कोई एक व्यक्ति बिना गुरु के गिरा पाता है। इसलिए वह अपवाद है। उसको हमें गिनती में लेना नहीं चाहिए। उससे कारण नियम नहीं बनाना चाहिए।
कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि कोई व्यक्ति बिना गुरु के गिरा देता है। पर उसके लिए बड़ी गहरी समझ चाहिए, जो तुम्हारे पास नहीं है। उसके लिए इतनी गहरी समझ चाहिए कि वह अहंकार को आंख के सामने खड़ा करके देख ले। और सिर्फ देखने से अहंकार गिर जाए। उसके लिए वैसी आंख चाहिए जैसी शिव के पास है, कि कामदेव को देख लिया और कामदेव भस्म हो गए। इतनी अवेयरनेस, इतना होश चाहिए। कोई बुद्ध, कोई कृष्णमूर्ति कभी इतनी त्वरा से देख लेता है कि उसके देखने की उस तीव्रता में ही सब गिर जाता है। फिर दूसरा भाव पैदा नहीं होता। क्योंकि सब राख ही गिर गई। उसे ख्याल ही नहीं होता कि मैंने कुछ किया है... हुआ!
लेकिन तुम तो कुछ भी करोगे, तो भीतर एक धुन बजती रहती है, मैंने किया है। भजन करो तो मैंने किया है, ध्यान करो तो मैंने किया है, पूजा करो तो मैंने की है, तुम्हारा मैं तो हर तरफ से बनता है।
उस एक को हम छोड़ दें। क्योंकि उस एक को बीच में लाने की कोई जरूरत भी नहीं है। वह पा लेगा। लेकिन वे जो करोड़ों लोग हैं, उन करोड़ों लोगों के लिए पाने का एक ही उपाय है कि वे जो भी करें साधना, भाव यही रखें कि गुरु की कृपा से हो रहा है।
भारत में बड़ी पुरानी लोकोक्ति है कि जब सतयुग था तब गुरु की इतनी जरूरत न थी, लेकिन कलियुग में गुरु की बड़ी जरूरत होगी। क्या कारण है! हिंदू किस हिसाब से बांटते हैं संसार को? सतयुग वे कहते हैं उस समय को जब लोग बड़े सचेत थे, बड़े सावधान थे। और कलियुग कहते हैं उस युग को, जब लोग बड़े सोए हुए हैं, मूर्च्छित हैं।
इसलिए बुद्ध का या महावीर का धर्म उतने काम का नहीं है आज, जितना नानक
का धर्म। नानक का धर्म नवीनतम धर्म है। हालांकि उसको भी पांच सौ साल हो गए। वह भी काफी पुराना हो गया है। और नया चाहिए। क्योंकि बुद्ध और महावीर जिनसे बात कर रहे थे वे हमसे ज्यादा सचेत लोग थे। वे हमसे ज्यादा प्रबुद्ध लोग थे। वे हमसे ज्यादा सरल लोग थे। फिर कृष्ण जिनसे बात कर रहे थे वे और भी सरल लोग थे। जैसे हम पीछे जाते हैं, वैसे सरलता है। जैसे एक आदमी अपने पीछे जाए तो बचपन में सरल होता है, जवानी में थोड़ा कठिन हो जाता है, बुढ़ापे में तो बिल्कुल जटिल हो जाता है। बूढ़े आदमी से तो पार पाना ही मुश्किल है। उसे कुछ भी पता नहीं, लेकिन वह समझता है सब मुझे पता है। जिंदगी की टक्करें खायी हैं, इधर-उधर गिरा है, कहता है अनुभव बहुत है। ठीकरे इकट्ठे किए हैं, लेकिन वह सोचता है बड़े अनुभव से ज्ञान इकट्ठा कर लिया है।
बच्चा सरल, वह सतयुग है। बूढ़ा बहुत जटिल, वह कलियुग है। और बूढ़े की मूर्च्छा बढ़ती ही जाती है। बढ़नी ही चाहिए क्योंकि मौत करीब आ रही है। बच्चे का होश ताजा होता है क्योंकि अभी जीवन का स्रोत बहुत करीब है। बच्चा अभी परमात्मा से निकली लहर की भांति है। बूढ़ा धूल से भर गया, परमात्मा में गिरने के करीब है। बच्चा ताजा फूल है, बूढ़ा मुरझा गया, जाने के करीब है, जीवन ऊर्जा क्षीण हो रही है।
कलियुग का अर्थ है ऐसा समय, जब अंत करीब आ रहा है। जिंदगी बूढ़ी हो गयी।
उस कलियुग में तो गुरु के बिना बिल्कुल न हो सकेगा, क्योंकि तुम हर हालत में अपने अहंकार से भर जाओगे।
जब तुम छोटे-छोटे काम करके अहंकार से भर जाते हो, तो तुम साधना करके कैसे न भरोगे। तुमने एक छोटा सा मकान बना लिया है, तुम अकड़े फिरते हो; कि तुमने एक तिजोड़ी भर ली, तुम अकड़े फिरते हो। जब तुम परम धन की खोज में जाओगे तो तुम्हारी अकड़ तो बहुत हो जाएगी।
तो जो आदमी मंदिर जाता है, मस्जिद जाता है, उसकी अकड़ देखो। वह सबकी तरफ देखता है कि तुम सब नरक में पड़ोगे, सड़ोगे। मैं मंदिर जाता हूं रोज। तुम सब भ्रष्ट, पापी। जो आदमी राम नाम ले लेता है, वह समझता है कि बस! स्वर्ग का द्वार उसके लिए निश्चित हो गया। और शेष सब नरक में पड़ने वाले हैं। मूर्च्छा जितनी होगी, उतनी गुरु की जरूरत है। इसको तुम ऐसा समझ लो जितनी तुम्हारे जीवन में निद्रा हो, उतना गुरु जरूरी। जितनी तुम्हारे जीवन में जागृति हो, उतना गुरु कम जरूरी। अगर तुम परिपूर्ण जागरूक हो,

गुरु की बिल्कुल जरूरत नहीं। अगर तुम बिल्कुल सोए हो तो तुम अपने आप जागोगे कैसे? कोई तुम्हें हिलाएगा, तो ही तुम जग सकते हो। तब भी डर है कि तुम करवट ले कर सो जाओगे।
"वह गुरु की कृपा से प्राप्त होता है।"
आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।
"वह आदि में सत्य है, युगों के आरंभ में सत्य है, अभी सत्य है। नानक कहते हैं, वह सदा सत्य है। भविष्य में भी सत्य है।"
सत्य और असत्य की यही परिभाषा है। असत्य वह जो कभी नहीं था, अब है, और कभी फिर नहीं हो जाएगा। असत्य का अर्थ है दो छोरों पर जो नहीं, और बीच में है! सपना... सुबह तुम उठे तब खो गया, रात तुम जब सोए तब नहीं था। इसलिए तो सुबह तुम कहते हो सपना झूठा था, सच नहीं; क्योंकि सांझ नहीं था, सुबह फिर नहीं है। तुम्हारा यह शरीर एक दिन नहीं था। एक दिन फिर नहीं हो जाएगा। यह शरीर झूठा है। क्रोध आया; एक क्षण पहले नहीं था, और घड़ी भर बाद फिर चला जाएगा। यह क्रोध सपना है, यह सच नहीं है। जो सदा है, वही सत्य है। और अगर तुम इस धारणा को गहरे ले जाओ तो तुम्हारे जीवन में रूपांतरण हो जाएगा। उससे बहुत ज्यादा ग्रसित मत होना जो बदलता है। तुम उसी की तलाश करना जो अबदला है; सदा स्थायी और थिर है।
कौन है तुम्हारे भीतर जो कभी नहीं बदलता? उसको ही खोजो। जरूर वह तुम्हारे भीतर है। क्योंकि सब बदलाहट उसी पर होती है। जैसे गाड़ी का चाक चलता है। तो एक कील पर चलता है, जो ठहरी रहती है। चाक चलता रहता है, कील ठहरी रहती है। तुम कील को अलग कर लो, चाक फौरन गिर जाएगा। जो परिवर्तन हो रहा है वह भी शाश्वत के ऊपर हो रहा है। कील आत्मा की ठहरी हुई है, शरीर का चक्र घूम रहा है। जैसे ही कील अलग हुई, चाक गिर जाता है।
नानक कहते हैं--
आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।
वही सत्य है। वही एक; क्योंकि वह पहले भी था, अभी भी है, कल भी होगा, सदा रहेगा। और शेष सब सपना है। यह एक वचन अगर तुम्हारे मन में गहरा बैठ जाए... जब क्रोध आए, तब दोहराना अपने मन में--
आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।
घृणा आए, लोभ आए, दोहराना। और ध्यान रखना कि जो अभी नहीं था, अभी हुआ, सपना है। खो जाएगा। इसमें ज्यादा ग्रसित होने की जरूरत नहीं है।
साक्षीभाव रखना। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि व्यर्थ अपने आप गिरने लगा, क्योंकि तुम्हारे उससे संबंध टूट गए और सार्थक का जन्म होने लगा। शाश्वत उठने लगा, संसार खोने लगा।
सोचे सोचि न होवई जे सोची लख बार।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।
भुखिया भुख न उतरी जे बंना पुरीआं भार।
सहस सियाणपा लख होहि, त इक न चले नालि।
किव सचियारा होइए, किव कूड़ै तुटै पालि।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।
यह बड़ा कीमती, बहुमूल्य सूत्र है। नानक का सब सार।
"सोच-सोच कर भी हम उसे सोच नहीं सकते। यद्यपि हम लाखों बार सोच सकते हैं।"
सोच-सोच कर उसे कभी किसी ने पाया नहीं। सोच-सोच कर ही तो हमने उसे गंवाया है। जितना हम सोचते हैं उतने ही तो विचारों में हम खो जाते हैं। परमात्मा कोई विचार नहीं है। वह कोई तर्क की निष्पत्ति नहीं है। वह कोई मस्तिष्क का निष्कर्ष नहीं है। परमात्मा तो सत्य है। तुम्हें सोचने का सवाल नहीं, देखना है। सोचने से क्या होगा? सोचने में तो और भटक जाओगे। आंख खोलनी है।
और अगर आंखें विचारों से भरी हैं, तो तुम्हारी आंखें अंधी रहेंगी। आंख निर्विचार चाहिए, तभी दर्शन उपलब्ध होता है। जिसको झेन फकीर कहते हैं,

नो माइंड। जिसको कबीर कहते हैं, उन्मनी दशा। जिसको बुद्ध कहते हैं, चित्त का खो जाना। जिसको पतंजलि ने कहा है, निर्विकल्प समाधि। सब विकल्प और विचार जहां खो गए, वही नानक कह रहे हैं।
"सोच-सोच कर भी हम उसे सोच नहीं सकते, यद्यपि हम लाखों बार सोचते रहें। चुप होने से भी उस मौन को उपलब्ध नहीं हुआ जा सकता, यद्यपि हम लगातार ध्यान में रह सकते हैं।"
क्यों? सोच-सोच कर उसे पाया नहीं जा सकता; चेष्टा कर-कर के मौन साधा नहीं जा सकता। क्यों? क्योंकि जितनी तुम चेष्टा करोगे, उतना ही तुम पाओगे, मौन असंभव हो जाता है। कुछ चीजें हैं, जो चेष्टा से नहीं घटतीं। जैसे नींद नहीं आती किसी को, तो कितनी ही चेष्टा करे नींद नहीं आएगी। सच तो यह है जितनी चेष्टा करेगा उतनी नींद मुश्किल हो जाएगी, क्योंकि नींद का अर्थ ही यह है कि तुम सब चेष्टा छा.ेड दो, तभी आएगी। तुम कोशिश जारी रखोगे, कोशिश तुम्हें जगाए रखेगी। जागने से कहीं नींद आयी है? कोई उपाय नींद लाने का नहीं। क्योंकि नींद आती तब है, जब तुम निरुपाय हो जाते हो। जब तुम कोई उपाय नहीं करते हो। पड़े हो बिस्तर पर निरुपाय, तभी नींद आ जाती है।
तुम अपने को जबर्दस्ती कैसे मौन करोगे? तुम बैठ सकते हो। शरीर को साध सकते हो पत्थर की मूर्ति की तरह; भीतर मन उबलता रहेगा।
नानक एक मुसलमान नवाब के घर मेहमान थे। नानक को क्या हिंदू क्या मुसलमान! जो ज्ञानी है, उसके लिए कोई संप्रदाय की सीमा नहीं। उस नवाब ने नानक को कहा कि अगर तुम सच ही कहते हो कि न कोई हिंदू न कोई मुसलमान, तो आज शुक्रवार का दिन है, हमारे साथ नमाज पढ़ने चलो। नानक राजी हो गए। पर उन्होंने कहा कि अगर तुम नमाज पढ़ोगे तो हम भी पढ़ेंगे। नवाब ने कहा, यह भी कोई शर्त की बात हुई? हम पढ़ने जा ही रहे हैं।
पूरा गांव इकट्ठा हो गया। मुसलमान-हिंदू सब इकट्ठे हो गए। हिंदुओं में तहलका मच गया। नानक के घर के लोग भी पहुंच गए कि यह क्या कर रहे हो? लोगों को लगा कि नानक मुसलमान होने जा रहे हैं। लोग अपने भय से ही दूसरों को भी तौलते हैं।
नानक मस्जिद गए। नमाज पढ़ी गई। नवाब बहुत नाराज हुआ। बीच-बीच में लौट-लौट कर देखता था कि नानक न तो झुके, न नमाज पढ़ी। बस खड़े हैं। जल्दी-जल्दी नमाज पूरी की, क्योंकि क्रोध में कहीं नमाज हो सकती है! करके किसी तरह पूरी, नानक पर लोग टूट पड़े। और उन्होंने कहा, तुम धोखेबाज हो। कैसे साधु, कैसे संत! तुमने वचन दिया नमाज पढ़ने का और तुमने की नहीं।
नानक ने कहा, वचन दिया था, शर्त आप भूल गए। कहा था कि अगर आप नमाज पढ़ोगे
तो मैं पढूंगा। आपने नहीं पढ़ी तो मैं कैसे पढ़ता?
नवाब ने कहा, क्या कह रहे हो? होश में हो? इतने लोग गवाह हैं कि हम नमाज
पढ़ रहे थे।
नानक ने कहा, इनकी गवाही मैं नहीं मानता, क्योंकि मैं आपको देख रहा था भीतर क्या चल रहा है। आप काबुल में घोड़े खरीद रहे थे।
नवाब थोड़ा हैरान हुआ; क्योंकि खरीद वह घोड़े ही रहा था। उसका अच्छे से अच्छा घोड़ा मर गया था उसी दिन सुबह। वह उसी की पीड़ा से भरा था। नमाज क्या खाक! वह यही सोच रहा था कि कैसे काबुल जाऊं, कैसे बढ़िया घोड़ा खरीदूं, क्योंकि वह घोड़ा बड़ी शान थी, इज्जत थी।
और नानक ने कहा, यह जो मौलवी है तुम्हारा, जो पढ़वा रहा था नमाज, यह खेत में अपनी फसल काट रहा था।
और यह बात सच थी। मौलवी ने भी कहा कि बात तो यह सच है। फसल पक गयी है और काटने का दिन आ गया है, गांव में मजदूर नहीं मिल रहे हैं और चिंता मन पर सवार है।
तो नानक ने कहा, अब तुम बोलो, तुमने नमाज पढ़ी जो मैं साथ दूं?
तुम जबर्दस्ती नमाज पढ़ लो, तुम जबर्दस्ती ध्यान कर लो, तुम जबर्दस्ती पूजा-प्रार्थना कर लो, क्या तुम कर रहे हो इसका कोई मूल्य नहीं है। क्या तुम्हारे भीतर चल रहा है? तुम पत्थर की मूर्ति की तरह बैठ जाओ, इससे क्या होगा? शरीर को साध लोगे, इससे क्या मन सधेगा? मन में तो वही चलता रहेगा जो चल रहा था। और भी जोर से चलेगा। क्योंकि जब शरीर काम में लगा था तो शक्ति

बंटी थी। अब शरीर बिल्कुल निष्क्रिय है, सारी शक्ति मन को मिल गई। अब मन में और जोर से विचार उठेंगे।
इसलिए लोग जब भी ध्यान करने बैठते हैं तब ज्यादा विचार उठते हैं। पूजा करने बैठते हैं तब बाजार का बहुत ख्याल आता है। जब भी बैठते हैं, घंटी वगैरह बजाते हैं मंदिर में जा कर, तभी पाते हैं कि भीतर न मालूम क्या खराबी है! ऐसे सब ठीक चलता है। सिनेमा में बैठ जाएं, मौन आ जाता है। थोड़ी शांति हो जाती है। लेकिन मंदिर-मस्जिद में, गुरुद्वारे में बिल्कुल शांति नहीं। बात क्या है?
सिनेमा तुम्हारी वासनाओं से संगत है, वहां वही जगाया जा रहा है, जो तुम हो। वहां वही उभारा जा रहा है, जो तुम्हारे भीतर भरा है। वही कूड़ा- करकट, वही कचरा! तुमसे तालमेल बैठ जाता है। मंदिर में कुछ ऐसी पुकार की जा रही है, जिससे तुम्हारा कोई तालमेल नहीं है। वहां सब गड़बड़ हो जाती है। नानक कहते हैं, चुप होने से भी कुछ न होगा। उस मौन को नहीं पाया जा सकता। यद्यपि हम लगातार ध्यान में रह सकते हैं। बैठे रहो दिनरात! कुछ भी न होगा।
"भूखों की भूख नहीं जाएगी, यद्यपि हम पूड़ियों के पहाड़ ही क्यों न जमा
कर लें।"
क्योंकि यह भूख पूड़ियों से भरने वाली नहीं है। यह जो ध्यान की भूख है,
यह जो परमात्मा की भूख है, यह कोई साधारण भूख नहीं है। इस संसार की कोई भी चीज इसे बुझा न सकेगी। यह तृषा अनूठी है। और परमात्मा ही उतरे धार बन कर तो ही बुझ सकती है।
"किस भांति हम सच्चे बनें? किस भांति झूठ के परदे का नाश हो?"
नानक कहते हैं कि उसके हुक्म, और उसकी मर्जी के अनुसार। जैसा उसने नियत कर रखा है, लिख रखा है, उसके अनुसार चलने से ही यह हो सकता है।
यह वचन अति-ध्यानपूर्वक समझने का है।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिया नालि।
नहीं, तुम्हारे करने से कुछ भी न होगा। तुम जो भी करोगे, तुम ही करोगे।
तुम सच भी बोलोगे तो तुम्हारे झूठे व्यक्तित्व से ही सच निकलेगा। वह सच भी झूठा हो जाएगा। तुम सच लाओगे कहां से? तुम बिल्कुल झूठे हो। इससे कोई फर्क न पड़ेगा।
नानक एक गांव में ठहरे थे। गांव में जो प्रधान था गांव का, उसने निमंत्रण दिया था सारे गांव को भोज का। कोई यज्ञ चल रहा था। नानक को भी बुलाया था। नानक गए नहीं। और एक गरीब आदमी के घर में ठहरे थे। उसका नाम था लालू। गरीब बढ़ई था। उसकी कोई हैसियत न थी। रूखी-सूखी रोटियां थीं। और गांव के अमीर ने निमंत्रण दिया था। अनेक बार आदमी आए बुलाने। नहीं जब माना, अमीर खुद आया। नानक को ले कर गया। नानक ने कहा, तुम चाहते हो तो चलूंगा। उसने पूछा महल में ले जा कर कि मेरे शुद्धतम भोजन को इंकार करते हो? और
उस गरीब का अशुद्ध भोजन--वह ब्राह्मण भी नहीं है! यह शुद्ध ब्राह्मणों ने स्नान करके गंगा जल से इस सबको तैयार किया है। पवित्रतम! और तुम इसे इंकार करते हो?
नानक ने कहा कि तुम अब जिद ही करते हो तो कहूं। थोड़ा भोजन तुम्हारा ले आओ। लालू भी पीछे-पीछे चला आया था। उससे कहा, तू भी अपनी रूखी रोटी ले आ। कहते हैं--प्रतीक कहानी है--कि नानक ने एक हाथ में लालू की रोटी और एक हाथ में हलवा-पूड़ी उस धनपति की ले कर निचोड़ी। तो लालू की सूखी रोटी से तो दूध की धार बही और दूसरे हाथ से लहू की बूंदें टपकीं। नानक ने कहा, तुम अशुद्ध हो तो तुम ब्राह्मणों से भोजन बनवाओ, कि गंगा के पानी को बुलवाओ, कि एक-एक गेहूं को धो कर साफ कर के बनवाओ, इससे कोई फर्क न पड़ेगा। तुम्हारा सारा जीवन शोषण, बेईमानी, चोरी, झूठ का है। तुम्हारी हर रोटी में खून छिपा है।
खून निकला या नहीं, यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है, लेकिन बात तो सच है। तुम कैसे सच्चे होओगे? तुम ही तो सच्चे होओगे न! कौन उपाय करेगा?
तो नानक कहते हैं, तुम्हारे किए कुछ भी न होगा। तुम बेईमान हो, तो तुम्हारी सचाई में भी बेईमानी घुस जाएगी। तुम सच भी ऐसा बोलोगे कि जब तुम्हारी बेईमानी को उससे फायदा होता हो। तुम सच भी इस ढंग से बोलोगे कि

दूसरे को दुख पहुंचे। तुम ऐसे सच की तलाश करोगे जिससे दूसरे के हृदय में छुरा लग जाए। तुम झूठ से लोगों को नुकसान पहुंचाते थे, तुम सच से भी नुकसान पहुंचाओगे। तुम जो भी करोगे वह गलत होगा, क्योंकि तुम गलत हो।
उपाय क्या है? तो नानक कहते हैं, उपाय एक ही है कि उसके हुक्म और उसकी मर्जी के अनुसार सब उस पर छोड़ दो। जैसा वह जिलाए, जीयो। जैसा वह कराए, करो। जहां वह ले जाए, जाओ। उसका हुक्म तुम्हारी एक मात्र साधना हो जाए। तुम अपनी मर्जी हटाओ। उसकी मर्जी को आने दो। तुम स्वीकार कर लो जीवन जैसा हो। परमात्मा ने दिया है, वही जाने। तुम इंकार मत करो। दुख आए तो दुख को भी स्वीकार कर लो कि उसकी मर्जी। और अहोभाव रखो, धन्यभाव रखो कि अगर उसने दुख दिया है तो जरूर कोई राज होगा, कोई अर्थ होगा, कोई रहस्य होगा। तुम शिकायत मत करो। तुम धन्यवाद से ही भरे रहो। वह तुम्हें जैसा रखे। गरीब, तो गरीब। अमीर, तो अमीर। सुख में, तो सुख में। दुख में, तो दुख में। एक बात तुम्हारे भीतर सतत बनी रहे कि मैं राजी हूं। तेरा हुक्म मेरा जीवन है।
और तब तुम अचानक पाओगे कि तुम शांत होने लगे। जो लाख ध्यान में बैठ कर नहीं होता था वह उसकी मर्जी पर सब छोड़ देने से होने लगा। हो ही जाएगा। क्योंकि चिंता का कोई कारण न रहा। चिंता क्या है? चिंता यह है कि जैसा हो रहा है उससे अन्यथा होना चाहिए। बेटा मर गया, नहीं मरना था; यह चिंता है। दिवाला निकल गया, नहीं निकलना था; यह चिंता है। जैसा हुआ, वैसा नहीं होना था; और जैसा हो रहा है, वैसा नहीं होना चाहिए। तुम अपनी मर्जी को थोपने की कोशिश कर रहे हो जीवन पर। यही तुम्हारी चिंता है। फिर इससे तुम परेशान हो। फिर इस परेशानी को भीतर ढोते हुए तुम ध्यान करने बैठते हो। तब तुम खेत में फसल काटोगे, काबुल में घोड़ा खरीदोगे। वह चिंता तुम्हारी जो थी, पीछे रहेगी। वह तुम्हारे ध्यान को भी विकृत कर देगी। तब तुम कैसे शांत हो सकोगे?
शांति का एक ही गुर है। और अगर यह सूत्र तुम्हें ठीक से समझ में आ जाए,
तो पूरब की सारी खोज समझ में आ सकती है। पूरब की सारी खोज यह है, लाओत्से से ले कर नानक तक, कि जो हो रहा है उसे स्वीकार कर लो। टोटल एक्सेप्टीबिलिटी। इसका पुराना नाम भाग्य है। वह शब्द बिगड़ गया। सब शब्द बहुत दिन उपयोग करने से बिगड़ जाते हैं। क्योंकि गलत लोग उपयोग करते हैं, गलत अर्थ जुड़ जाते हैं। अब तो किसी की निंदा करनी हो तो कह दो कि भाग्यवादी है। लेकिन भाग्य... यही तो अर्थ है भाग्य का।
नानक कहते हैं, हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।
जो लिखा है वह होगा। जो उसने लिख रखा है वही होगा। अपनी तरफ से कुछ भी करने का उपाय नहीं है। कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। फिर चिंता किसको? फिर बोझ किसको? जब तुम बदलना ही नहीं चाहते कुछ, जब तुम उससे राजी हो, उसकी मर्जी में राजी हो, जब तुम्हारी अपनी कोई मर्जी नहीं, तब कैसी बेचैनी! तब कैसा विचार! तब सब हलका हो जाता है। पंख लग जाते हैं। तुम उड़ सकते हो उस आकाश में, जिस आकाश का नाम है--इक ओंकार सतनाम। नानक की एक ही विधि है। और वह विधि है, परमात्मा की मर्जी। वह जैसा करवाए। वह जैसा रखे।
ऐसा हुआ कि बल्ख का एक नवाब था, इब्राहीम। उसने बाजार में एक गुलाम खरीदा। गुलाम बड़ा स्वस्थ, तेजस्वी था। इब्राहीम उसे घर लाया। इब्राहीम उसके प्रेम में ही पड़ गया। आदमी बड़ा प्रभावशाली था। इब्राहीम ने पूछा कि तू कैसे रहना पसंद करेगा? तो उस गुलाम ने मुस्कुरा कर कहा, मालिक की जो मर्जी। मेरा कैसा, मेरे होने का क्या अर्थ? आप जैसा रखेंगे वैसा रहूंगा। इब्राहीम ने पूछा, तू क्या पहनना, क्या खाना पसंद करता है? उसने कहा, मेरी क्या पसंद? मालिक जैसा पहनाए, पहनूंगा। मालिक जो खिलाए, खाऊंगा। इब्राहीम ने पूछा कि तेरा नाम क्या है? हम क्या नाम ले कर तुझे पुकारें? उसने कहा, मालिक की जो मर्जी। मेरा क्या नाम? दास का कोई नाम होता है? जो नाम आप दे दें।
कहते हैं, इब्राहीम के जीवन में क्रांति घट गई। उठ कर उसने पैर छुए इस गुलाम के और कहा कि तूने मुझे राज बता दिया जिसकी मैं तलाश में था। अब यही मेरा और मेरे मालिक का नाता। तू मेरा गुरु है। तब से इब्राहीम शांत हो गया। जो बहुत दिनों के ध्यान से न हुआ था, जो बहुत दिन नमाज पढ़ने से न हुआ था, वह इस गुलाम के सूत्र से मिल गया।

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।
सोचो, थोड़ा प्रयोग करो। जैसा रखे, रहो। अपनी तरफ से तुमने बहुत कोशिश करके भी देख ली, क्या हुआ? तुम वैसे के वैसे हो। जैसा उसने भेजा था उससे विकृत भला हो गए हो, उससे सुकृत नहीं हुए हो। जैसे आए थे बचपन में भोले- भाले, उतना भी नहीं बचा हाथ में। स्लेट गंदी हो गई है, तुमने सब लिख डाला। पाया क्या है? सिवाय दुख, तनाव, संताप के क्या तुम्हारे हाथ लगा है? थोड़े दिन नानक की सुन कर देखो। छोड़ दो उस पर।
इसलिए नानक कहते हैं, न जप, न तप, न ध्यान, न धारणा। एक ही साधना है-- उसकी मर्जी। जैसे ही तुम्हें ख्याल आएगा उसकी मर्जी का, तुम पाओगे भीतर सब हलका हो जाता है। एक गहन शांति, एक वर्षा होने लगती है भीतर, जहां कोई तनाव नहीं, कोई चिंता नहीं।
पश्चिम में इतना तनाव और चिंता है। पूरब से बहुत ज्यादा। हालांकि पूरब बहुत गरीब है, दुखी है, बीमार है, रुग्ण है; भोजन नहीं, कपड़े नहीं, छप्पर नहीं। पश्चिम में सब है, फिर भी चिंता, तनाव! इतना तनाव है कि करीब-करीब चार आदमी में तीन आदमी विक्षिप्त हालत में हो गए हैं।
क्या कारण है? क्योंकि पश्चिम ने अपनी मर्जी चलाने की कोशिश की है। आदमी को पश्चिम में भरोसा है, हम सब कर लेंगे। भगवान के कोई सहारे की जरूरत नहीं। भगवान है ही नहीं। आदमी सब कर लेगा। तो उसने बहुत कुछ कर भी लिया है। लेकिन आदमी बिल्कुल खो गया है, पागल हुआ जा रहा है। बाहर बहुत कुछ कर लिया, भीतर सब रुग्ण हो गया। अगर तुम्हारे जीवन में यह सूत्र उतर जाए तो कुछ करने को नहीं बचता। जैसा हो रहा है होने दो।
तुम तैरो मत, बहो। नदी से लड़ो मत। नदी दुश्मन नहीं है, मित्र है। तुम बहो। लड़ने से दुश्मनी पैदा होती है। और जब तुम उलटी धार तैरने लगते हो तो नदी तुमसे संघर्ष करने लगती है। तुम सोचते हो नदी मुझ से दुश्मनी ले रही है। नदी को क्या दुश्मनी? नदी को तुम्हारा पता भी नहीं है। तुम अपने ही हाथ उलटी धारा बह रहे हो। तुम्हारी मर्जी, यानी उलटी धारा। अहंकार, यानी उलटी धारा।
उसकी मर्जी--तुम धारा के साथ एक हो गए। अब नदी जहां ले जाए वही मंजिल है। जहां लगा दे वही किनारा है। डुबा दे, तो वह भी मंजिल है। फिर कैसी चिंता! फिर कैसा दुख! तुमने दुख की जड़ काट दी।
बड़ा कीमती यह सूत्र है! नानक कहते हैं, उसके हुक्म और उसकी मर्जी के अनुसार। जैसा उसने नियत कर रखा है, लिख रखा है, उसके अनुसार चलने से ही यह हो सकता है।
तो नानक ने अहंकार के सब द्वार बंद कर दिए। पहले तो, गुरुप्रसाद। कि तुम जो भी करो, जो भी उपलब्धि हो, वह गुरु की कृपा। और फिर जो भी हो, जीवन की धारा वह जहां ले जाए, उसका हुक्म। फिर कुछ और करने को बचता नहीं।
और तब ज्यादा देर न लगेगी कि तुम्हें भी पता चल जाए--

इक ओंकार सतिनाम
करता पुरखु निरभउ निरवैर।
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि।।

आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।

सोचे सोचि न होवई जे सोची लख बार।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।
भुखिया भुख न उतरी जे बंना पुरीआं भार।
सहस सियाणपा लख होहि, त इक न चले नालि।
किव सचियारा होइए, किव कूड़ै तुटै पालि।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
दूसरा प्रवचन

हुकमी हुकमु चलाए राह

पउड़ीः 2
हुकमी होवन आकार हुकमी न कहिया जाए।
हुकमी होवन जीअ हुकमी मिलै बड़िआई।
हुकमी उत्तम नीचु हुकमी लिखि दुख सुख पाईअहि।
इकना हुकमी बख्शीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि।
हुकमी अंदर सभु को बाहर हुकुम न कोय।
"नानक" हुकमी जे बुझे त हऊ मैं कहे न कोय।

पउड़ीः 3
गावै को ताणु होवै किसे ताणु। गावै को दाति जाणै निसाणु।।
गावै को गुण वड़िआइया चारु। गावै को विदिआ विखम वीचारु।।
गावै को साजि करे तनु खेह। गावै को जीअ लै फिरि देह।।
गावै को जापै दिसे दूरि। गावै को वेखै हादरा हदूरि।।
कथना कथी न आवै तोटि। कथि कथि कथी कोटि कोटि कोटि।।
देदा दे लैदे थकि पाहि। जुगा जुगंतरि खाही खाहि।।
हुकमी हुकमु चलाए राह। "नानक" विगसै बेपरवाह।।

जीवन को जीने के दो ढंग हैं। एक ढंग है संघर्ष का, एक ढंग है समर्पण का। संघर्ष का अर्थ है, मेरी मर्जी समग्र की मर्जी से अलग। समर्पण का अर्थ है, मैं समग्र का एक अंग हूं। मेरी मर्जी के अलग होने का कोई सवाल नहीं। मैं अगर अलग हूं, संघर्ष स्वाभाविक है। मैं अगर इस विराट के साथ एक हूं, समर्पण स्वाभाविक है। संघर्ष लाएगा तनाव, अशांति, चिंता। समर्पणः शून्यता, शांति, आनंद और अंततः परम ज्ञान। संघर्ष से बढ़ेगा अहंकार, समर्पण से मिटेगा। संसारी वही है जो संघर्ष कर रहा है। धार्मिक वही है जिसने संघर्ष छोड़ा और समर्पण किया। मंदिर, गुरुद्वारे, मस्जिद जाने से धर्म का कोई संबंध नहीं। अगर तुम्हारी वृत्ति संघर्ष की है, अगर तुम लड़ रहे हो परमात्मा से, अगर तुम अपनी इच्छा पूरी कराना चाहते हो--चाहे प्रार्थना से ही सही, पूजा से ही सही--अगर तुम्हारी अपनी कोई इच्छा है, तो तुम अधार्मिक हो।
जब तुम्हारी अपनी कोई चाह नहीं, जब उसकी चाह ही तुम्हारी चाह है। जहां
वह ले जाए वही तुम्हारी मंजिल है, तुम्हारी अलग कोई मंजिल नहीं। जैसा वह चलाए वही तुम्हारी गति है, तुम्हारी अपनी कोई आकांक्षा नहीं। तुम निर्णय लेते ही नहीं। तुम तैरते भी नहीं, तुम तिरते हो... ।
आकाश में कभी देखें! चील बहुत ऊंचाई पर उठ जाती है। फिर पंख भी नहीं हिलाती। फिर पंखों को फैला देती है और हवा में तिरती है। वैसी ही तिरने की दशा जब तुम्हारी चेतना में आ जाती है, तब समर्पण। तब तुम पंख भी नहीं हिलाते। तब तुम उसकी हवाओं पर तिर जाते हो। तब तुम निर्भार हो जाते हो। क्योंकि भार संघर्ष से पैदा होता है। भार प्रतिरोध से पैदा होता है। जितना तुम लड़ते हो उतना तुम भारी हो जाते हो, जितने भारी होते हो उतने नीचे गिर जाते हो। जितना तुम लड़ते नहीं उतने हल्के हो जाते हो, जितने हल्के होते हो उतने ऊंचे उठ जाते हो।

और अगर तुम पूरी तरह संघर्ष छोड़ दो तो तुम्हारी वही ऊंचाई है, जो परमात्मा की। ऊंचाई का एक ही अर्थ है--निर्भार हो जाना। और अहंकार पत्थर की तरह लटका है तुम्हारे गले में। जितना तुम लड़ोगे उतना ही अहंकार बढ़ेगा। ऐसा हुआ कि नानक एक गांव के बाहर आ कर ठहरे। वह गांव सूफियों का गांव था। उनका बड़ा केंद्र था। वहां बड़े सूफी थे, गुरु थे। पूरी बस्ती ही सूफियों की थी। खबर मिली सूफियों के गुरु को, तो उसने सुबह ही सुबह नानक के लिए एक कप में भर कर दूध भेजा। दूध लबालब था। एक बूंद भी और न समा सकती थी।

नानक गांव के बाहर ठहरे थे एक कुएं के तट पर। उन्होंने पास की झाड़ी से एक फूल तोड़ कर उस दूध की प्याली में डाल दिया। फूल तिर गया। फूल का वजन क्या! उसने जगह न मांगी। वह सतह पर तिर गया। और प्याली वापस भेज दी। नानक का शिष्य मरदाना बहुत हैरान हुआ कि मामला क्या है? उसने पूछा कि मैं कुछ समझा नहीं। क्या रहस्य है? यह हुआ क्या?
तो नानक ने कहा कि सूफियों के गुरु ने खबर भेजी थी कि गांव में बहुत ज्ञानी हैं, अब और जगह नहीं। मैंने खबर वापस भेज दी है कि मेरा कोई भार नहीं है। मैं जगह मांगूंगा ही नहीं, फूल की तरह तिर जाऊंगा।
जो निर्भार है वही ज्ञानी है। जिसमें वजन है, अभी अज्ञान है। और जब तुममें वजन होता है तब तुमसे दूसरे को चोट पहुंचती है। जब तुम निर्भार हो जाते हो, तब तुम्हारे जीवन का ढंग ऐसा होता है कि उस ढंग से चोट पहुंचनी असंभव हो जाती है। अहिंसा अपने आप फलती है। प्रेम अपने आप लगता है। कोई प्रेम को लगा नहीं सकता। और न कोई करुणा को आरोपित कर सकता है। अगर तुम निर्भार हो जाओ, तो ये सब घटनाएं अपने से घटती हैं। जैसे आदमी के पीछे छाया चलती है, ऐसे भारी आदमी के पीछे घृणा, हिंसा, वैमनस्य, क्रोध, हत्या चलती है। हलके मनुष्य के पीछे प्रेम, करुणा, दया, प्रार्थना अपने आप चलती है। इसलिए मौलिक सवाल भीतर से अहंकार को गिरा देने का है।
कैसे तुम गिराओगे अहंकार को? एक ही उपाय है। वेदों ने उस उपाय को ऋत कहा है। लाओत्से ने उस उपाय को ताओ कहा है। बुद्ध ने धम्म, महावीर ने धर्म, नानक का शब्द है हुकुम, उसकी आज्ञा। उसकी आज्ञा से जो चलने लगा, जो अपनी तरफ से हिलता-डुलता भी नहीं है, जिसका अपना कोई भाव नहीं, कोई चाह नहीं, जो अपने को आरोपित नहीं करना चाहता, वह उसके हुक्म में आ गया। यही धार्मिक आदमी है।
और जो उसके हुक्म में आ गया, वह सब पा गया। कुछ पाने को बचता नहीं। क्योंकि उसके हुक्म को मानना, उसके हृदय तक पहुंच जाने का द्वार है। अपने को ही मानना, उससे दूर हटते जाना है। अपने को मानना है कि तुमने परमात्मा की तरफ पीठ कर ली। उसकी आज्ञा को माना कि तुम्हारा मुख परमात्मा की तरफ हो गया। तुम सूरज की तरफ पीठ कर के जीवन भर भागते रहो तो भी अंधेरे में रहोगे। और तुम सूरज की तरफ मुंह इसी क्षण कर लो तो जन्मों-जन्मों का अंधेरा कट जाएगा।
परमात्मा के सन्मुख होने का एक ही उपाय है और वह यह है कि तुम अपनी मर्जी छोड़ दो। तुम तैरो मत, बहो। तुम तिरो; वह काफी है। तुम अकारण ही बोझ ले रहे हो।
और तुम्हारी सफलताएं-असफलताएं तुम्हारे अहंकार के ही रोग हैं। और तुम्हारी हालत वैसी है, जैसा मैंने सुना है कि एक रथ गुजर रहा था। और एक मक्खी उसके पहिए की कील पर बैठी थी। बड़ी धूल उठती थी। रथ बड़ा था। बारह घोड़े जुते थे। बड़ी भयंकर आवाज, बड़ी धूल उठती थी। उस मक्खी ने आसपास देखा और कहा कि आज मैं बड़ी धूल उड़ा रही हूं। रथ से उड़ रही है धूल। मक्खी कील पर बैठी है, पर सोच रही है, आज मैं बड़ी धूल उड़ा रही हूं। और जब इतनी धूल उड़ा रही हूं तो इतनी ही बड़ी हूं।
तुम सफल भी होते हो उसके ही कारण। जो भी तुम पाते हो उसके ही कारण। तुम
रथ पर बैठी एक मक्खी से ज्यादा नहीं हो। भूल कर यह मत सोचना कि इतनी धूल मैं उड़ा रहा हूं। धूल है तो उसके रथ की है। यात्रा है तो उसके रथ की है। लेकिन तुम अपने को बीच में मत ले लेना।
तुमने सुनी होगी बात उस छिपकली की, कि मित्रों ने उसे निमंत्रित किया
था और कहा कि आओ आज थोड़ा जंगल में घूम आएं। उस छिपकली ने कहा कि जाना मुश्किल है। क्योंकि इस छप्पर को कौन सम्हालेगा? छप्पर गिर जाएगा तो जिम्मेवारी मेरे ऊपर होगी। छिपकली सोचती है कि छप्पर को महल के वही सम्हाले हुए है। छिपकली को लगता भी होगा।
तुमने सुनी होगी कहानी कि एक बूढ़ी औरत के पास एक मुर्गा था। वह सुबह बांग देता था तभी सूरज उगता था। बूढ़ी अकड़ गई। और उसने गांव में लोगों को खबर कर दी कि मुझसे जरा सोच-समझ कर व्यवहार करना। ढंग और इज्जत से। क्योंकि अगर मैं चली गई अपने मुर्गे को ले कर दूसरे गांव तो याद रखना, सूरज

इस गांव में कभी उगेगा ही नहीं। मेरा मुर्गा जब बांग देता है तभी सूरज उगता है।
और बात सच ही थी कि रोज ही मुर्गा बांग देता था तभी सूरज उगता था। गांव
के लोग हंसे। लोगों ने मजाक उड़ाई कि तू पागल हो गई। तो बूढ़ी नाराजगी में दूसरे गांव चली गई। मुर्गे ने बांग दी और दूसरे गांव में सूरज उगा। तो बूढ़ी ने कहा, अब रोएंगे। अब बैठे होंगे छाती पीटेंगे। न रहा मुर्गा, न उगेगा सूरज।
तुम्हारे तर्क भी... बूढ़ी का तर्क भी है तो बहुत साफ। क्योंकि ऐसा कभी नहीं हुआ कि मुर्गे के बांग दिए बिना सूरज उगा हो। लेकिन बात बिल्कुल उलटी है। सूरज उगता है इसलिए मुर्गा बांग देता है। बांग देने के कारण सूरज नहीं उगते। लेकिन बूढ़ी को कौन समझाए? तुमको कौन समझाए? बूढ़ी दूसरे गांव चली गई और उसने देखा कि सूरज अब यहां उग रहा है। और जब यहां उग रहा है तो हर गांव में कैसे उगेगा?
तुम अपनी छोटी बुद्धि से छोटे दायरे में सोचते हो। तुम्हारे कारण परमात्मा नहीं है, परमात्मा के कारण तुम हो। यह श्वास तुम्हारे कारण नहीं चल रही है, उसके कारण चल रही है। प्रार्थना भी तुम नहीं करते हो, वही तुम्हारे भीतर प्रार्थना बनता है।
इस भाव को ख्याल में ले लें, तो नानक के ये बड़े बहुमूल्य शब्द समझ में
आ जाएंगे। एक-एक शब्द कीमती है।
हुकमी होवन आकार हुकमी न कहिया जाए।
"हुक्म से आकार की उत्पत्ति हुई। हुक्म को शब्दों में नहीं कहा जा सकता।"
हुक्म का अर्थ ठीक से समझ लेना--दि कास्मिक ला। वह जो सारे जीवन को चलाने वाला महानियम है, हुक्म का वही अर्थ है।
"हुक्म से ही जीवों की उत्पत्ति हुई। हुक्म से बड़ाई मिलती है।"
हुकमी होवन आकार हुकमी न कहिया जाए।
हुकमी होवन जीअ हुकमी मिलै बड़िआई।
जब तुम जीतो, तो यह मत सोचना कि मैं जीत रहा हूं। और अगर तुम जीत में ही
न सोचोगे कि मैं जीत रहा हूं, तो हार में भी तुम पाओगे कि मैं नहीं हार रहा हूं। वही जीतता है, वही हारता है। उसका ही खेल है। इसलिए हिंदू इस पूरे जगत को लीला कहते हैं। लीला का मतलब है, हारता भी वही, जीतता भी वही। इस हाथ से जीतता है, उस हाथ से हारता है। लेकिन जीतने और हारने वाले बीच में ही सोच लेते हैं; जो उपकरण हैं, जो निमित्त हैं, जो साधन हैं, वे समझ लेते हैं, हम कर्ता हैं।
कृष्ण अर्जुन को गीता में कह रहे हैं कि तू व्यर्थ बीच में अपने को मत ले। वही कर रहा है, वही करवा रहा है। युद्ध उसका आयोजन है। जिनको मारना है वह मारेगा। जिनको बचाना है वह बचाएगा। तू यह मत सोच कि तू मारने वाला है और तू बचाने वाला है। कृष्ण पूरी गीता में जो कहते हैं, वही नानक इन शब्दों में कह रहे हैं।
हुकमी होवन जीअ हुकमी मिलै बड़िआई।
हुकमी उत्तम नीचु... ।
"वही छोटे-बड़े को पैदा कर रहा है।"
यह थोड़ा सोचने जैसा है। अगर वही छोटे-बड़े को पैदा कर रहा है, तो फिर कोई छोटा नहीं कोई बड़ा नहीं। क्योंकि दोनों का बनाने वाला वही है। तुमने एक छोटी सी मूर्ति बनाई, तुमने एक बड़ी मूर्ति बनाई; बनाने वाले तुम ही हो। जब कर्ता एक है, तो कौन छोटा कौन बड़ा? जब दोनों में उसका ही हाथ लगा है-- लेकिन हम सोचते हैं मैं छोटा, मैं बड़ा, और जीवन भर हम पीड़ा उठाते हैं। और तुम इतने बड़े कभी भी न हो पाओगे कि तुम तृप्त हो जाओ। अगर तुमने रूप को देखा, अपने आकार को देखा, तो तुम कभी इतने बड़े न हो सकोगे कि तृप्त हो जाओ। आकार तो छोटा ही होगा, कितना ही बड़ा क्यों न हो।
लेकिन अगर तुमने निराकार के हाथ अपने आकार में देखे, तब तुम तत्क्षण बड़े हो गए। बनाने वाला वही है। एक छोटे से घास को भी वही बनाता है। और दूर आकाश को छूते देवदार के वृक्ष को भी वही बनाता है। अगर दोनों के पीछे उसी का हाथ है, फिर कौन बड़ा कौन छोटा? उसी की हार है, उसी की जीत है। फिर हम सब

शतरंज के मोहरे हैं। जीते तो वह, हारे तो वह। बड़ाई मिले तो उसे, बुराई मिले तो उसे।
ध्यान रखना, तुमने बहुत बार भक्तों के वचन सुने होंगे, पढ़े होंगे। अनेक भक्त तुमने पाए होंगे; कहते हैं, बड़ाई तेरी, बुराई मेरी। ऊपर से देखने पर बहुत अच्छा लगता है। वे कहते हैं कि जो-जो भला है, तेरा; जो-जो बुरा है, मेरा। लगता है बड़े विनम्र हैं। लेकिन अगर बुराई तुम्हारी तो भलाई उसकी कैसे हो सकेगी? यह विनम्रता झूठी है। यह विनम्रता वास्तविक नहीं है। क्योंकि वास्तविक विनम्रता तो सभी दे देगी, कुछ भी न बचाएगी। तुमने अपने अहंकार के लिए थोड़ा सहारा फिर बचा लिया। और तुम कितना ही ऊपर-ऊपर से कहो कि बड़ाई तेरी और बुराई मेरी, लेकिन जब बुराई मेरी है तो बड़ाई तेरी होगी कैसे? असफलता मेरी और सफलता तेरी? यह बात थोथी है। या तो दोनों मेरे होंगे, या तो दोनों तेरे होंगे।
इसलिए झूठी विनम्रता और सच्ची विनम्रता में बड़ा फर्क है। झूठी विनम्रता कहती है कि मैं तो आपके पैरों की धूल हूं, लेकिन हूं जरूर। और जब कोई आदमी कहता है, मैं आपके पैरों की धूल हूं, तब उसकी आंखों में देखना। वह आपसे अपेक्षा कर रहा है कि आप भी कहो कि नहीं-नहीं; आप और कैसे? मैं आपके पैरों की धूल हूं। उसकी आंखों में चाह है। और अगर आप मान लो कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, यही तो मेरा विचार है; तो वह आदमी सदा के लिए दुश्मन हो जाएगा। और कभी आपको माफ न कर सकेगा।
बड़ाई भी उसकी, बुराई भी उसकी। हम बीच में आते ही नहीं हैं। हम तो बांस
की पोंगरी हो गए। वह गीत जैसा गाए उसका। इतनी भी अकड़ क्यों अपनी बचा कर रखना कि अगर भूलचूक होगी तो मेरी--तब तो मैं बच गया। तब तो थोड़ा सा मैंने अपने को बचा लिया। और मैं ऐसा रोग है कि तुम थोड़ा-सा बचाओ, वह पूरा बच जाता है। या तो उसे पूरा छोड़ो, या वह पूरा बचता है। तुम उसकी रत्ती भी बचाओ, तो वह पूरा का पूरा बचा हुआ है। वह कहीं गया नहीं। तुमने छिपाया है।
नानक कहते हैं, "हुक्म से आकार की उत्पत्ति हुई। हुक्म को शब्दों में कहा नहीं जा सकता है।"
जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता। और हुक्म तो सबसे महत्वपूर्ण बात है। उसके पार तो कुछ भी नहीं है। शब्द तो कामचलाऊ हैं। साधारण जीवन का काम चल जाता है। लेकिन असाधारण को शब्दों में प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है। उपाय न होने के कई कारण हैं, वे समझ लेने चाहिए।
एक--उस अलौकिक की प्रतीति मौन में होती है। और जिसे हम मौन में जानते हैं उसे शब्द में कैसे कहेंगे? शब्द और मौन विपरीत हैं। जब उसका अनुभव होता है तब भीतर कोई शब्द नहीं होते। तब परम सन्नाटा होता है। उस परम सन्नाटे में उसकी प्रतीति होती है। तो जिसको शून्य में जाना है, उसको शब्दों में कैसे बांधिएगा? माध्यम बदल गया। शून्य अलग माध्यम है। शून्य निराकार का माध्यम है। शब्द आकार हैं। सब शब्द आकार देते हैं। तो निराकार को आकार में कैसे बांधिएगा?
इसलिए जिन्होंने भी जाना है, उन्हें बड़ी अड़चन है। कैसे कहें उसे? ऐसा
ही समझो कि तुमने एक सुंदर संगीत सुना, और तुम किसी बहरे को समझाना चाहते हो... ।
सूफियों की एक पुरानी कहानी है। ऐसा हुआ कि एक चरवाहा अपनी भेड़ों को
एक पहाड़ के किनारे पर चरा रहा था। दोपहर हो गई। राह देखते-देखते थक गया, उसकी पत्नी भोजन ले कर न आयी। ऐसा तो कभी न हुआ था। भूख उसे जोर से लगी थी। फिर उसे चिंता भी पकड़ी कि कहीं पत्नी बीमार तो नहीं हो गई। कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई। ऐसा कभी हुआ ही न था। लेकिन वह था बिल्कुल वज्र बधिर। सुन नहीं सकता था। उसने आसपास देखा कि कोई आदमी हो। देखा कि एक लकड़हारा लकड़ी काट रहा है। वह झाड़ पर चढ़ा था। वह उसके नीचे पहुंचा। उसने कहा, मेरे भाई! जरा मेरी भेड़ों का ध्यान रखना। मैं जरा घर हो आऊं। पत्नी भोजन नहीं लायी है। दौड़ कर अभी ले आऊंगा।
वह आदमी भी बहरा था, जो लकड़ी काट रहा था। उसने कहा, जा-जा! हमारे पास बातचीत का कोई वक्त नहीं है। मैं अपने काम में लगा हूं, तुझे बातचीत की सूझी।

तो जब उसने कहा, जा-जा! तो यह समझा कि वह कह रहा है कि जा, तू अपनी रोटी
ले आ। मैं तेरी भेड़-बकरी की फिक्र कर लूंगा।
यह भागा हुआ घर गया। रोटी ले कर आया। लौट कर उसने अपनी भेड़ों की गिनती
की, बराबर थी। धन्यवाद देने गया कि आदमी बड़ा प्यारा है, अच्छा है, ईमानदार है, फिक्र रखी, एक भी भेड़ न भटकी। फिर उसको ख्याल आया, धन्यवाद कोरा क्या देना? एक लंगड़ी भेड़ थी उसके पास, उसे आज नहीं कल काटना ही था। सोचा, यह इसे भेंट कर दें।
वह लंगड़ी भेड़ ले कर आया। उसने कहा, मेरे भाई, बड़े-बड़े धन्यवाद। तुम्हारी बड़ी कृपा। यह भेड़ स्वीकार कर लो। ऐसे भी इसे काटना ही था।
दूसरे बहरे ने कहा, तेरा क्या मतलब? मैंने तेरी भेड़ लंगड़ी की?
विवाद बढ़ गया। क्योंकि वह एक चिल्ला रहा था, मैंने तेरी भेड़ देखी नहीं। मुझे मतलब क्या? और दूसरा कह रहा था, मेरे भाई, इसको स्वीकार कर लो।
पर दोनों बहरे थे और बड़ी कठिनाई थी।
एक राहगीर एक घोड़े पर, एक चोर जो घोड़े को चुरा कर जा रहा था, वह रास्ता भटक गया था। वह इन दो आदमियों से पूछने आया था। इन दोनों ने उसको पकड़ लिया। वह भी बहरा था। वह समझा कि पकड़े गए! ये ही घोड़े के मालिक हैं। ये दोनों उससे कहने लगे कि भाई, जरा उसको समझा दो कि मैं भेड़ दे रहा हूं और यह नाहक नाराज हो रहा है, चिल्ला रहा है।
और वह दूसरा बोला कि मैंने इसकी भेड़ों को छुआ भी नहीं। लंगड़े होने का कोई सवाल नहीं। उस तीसरे ने कहा, भाई, घोड़ा जिसका भी हो ले लो। मुझसे जो भूल हो गई, मुझे माफ करो।
यह विवाद चल ही रहा था और कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता था। क्योंकि कोई किसी की सुन ही नहीं रहा था। तब एक सूफी फकीर वहां से गुजर रहा है, उसे तीनों ने पकड़ लिया और कहा कि हमारा मामला सुलझा दो। उसने मौन की कसम ले रखी थी। जीवन भर के लिए चुप हो गया था। समझ लिया उसने तीनों का मामला। लेकिन अब करे क्या? तो पहले उसने जो घोड़े पर सवार चोर था उसकी आंखों में गौर से देखा। उसने इतनी गौर से देखा कि थोड़ी ही देर में घोड़े का चोर बेचैन होने लगा कि यह आदमी या तो सम्मोहित कर रहा है, या क्या इरादे हैं? वह इतना घबड़ा गया कि छलांग लगा कर अपने घोड़े पर चढ़ा और भाग गया।
तब उस सूफी फकीर ने दूसरे आदमी की आंखों में देखा, जो भेड़ों का मालिक था। उसको भी लगा कि यह आदमी तो बेहोश कर देगा। देखे ही जाता है अपलक। वह जल्दी से सिर झुका कर अपनी भेड़ों को खदेड़ कर अपने घर की तरफ चल पड़ा।
तब उसने तीसरे की तरफ देखा। वह तीसरा भी डरा। उसकी आंख बड़ी तेजस्वी थी। जो लोग चुप रहते हैं बहुत देर तक उनकी आंखों में एक अलग तेज आ जाता है। क्योंकि सारी ऊर्जा इकट्ठी होती है और आंख ही अभिव्यक्ति का माध्यम रह जाती है। जब उसने गौर से देखा उस तीसरे की तरफ, वह भी डरा। उसने अपनी लकड़ी का बंडल बांधा और भागा। सूफी हंसता हुआ अपने रास्ते पर चला गया। सूफी ने मामला हल कर लिया तीन बहरों का बिना बोले।
यही संतों की तकलीफ है हमारे साथ। तीन बहरे नहीं हैं यहां, तीन अरब बहरे हैं। और जो भी हम कह रहे हैं वह सब संगत-असंगत, उसमें कुछ भी नहीं है। कोई किसी की नहीं समझ रहा है। जिंदगी में संवाद तो हो ही नहीं रहा है, विवाद चल रहे हैं। संत क्या करें? जिन्होंने मौन रहना सीख लिया है, वे क्या करें? बोलने का कोई उपाय नहीं है। वे कितना ही बोलें। वह सूफी फकीर कितना ही बोलता तो भी वे तीन बहरे कुछ समझ न पाते। तीन की जगह चार उपद्रव वहां हो जाते। उसने सिर्फ आंख से गौर से उन्हें देखा।
संतों ने सिर्फ तुम्हारी तरफ गौर से देखा है और हल करने की कोशिश की है। और जो उनके भीतर समाया है, वह तुम्हारी आंखों में उंडेलना चाहा है। इसलिए साधु-संगत की बात करते हैं नानक। कि साधुओं के साथ रहो अगर समझना है, जो उन्होंने जाना है। संगति करो, सत्संग करो। सुनने-कहने से बहुत न होगा।
कुछ कहा जाएगा, कुछ तुम समझोगे; लोग बहरे हैं। कुछ बताया जाएगा, कुछ तुम देखोगे; लोग अंधे हैं। तुम अपनी व्याख्या करोगे, तुम शब्दों को अपने अर्थ दे दोगे।
नानक कहते हैं, हुकमी न कहिया जाए।

वह कहा नहीं जा सकता। फिर भी इशारे किए जा सकते हैं। ये इशारे हैं। यह कहना नहीं है, ये इशारे हैं। इन शब्दों में वह हुक्म नहीं है। ये शब्द तो मील के किनारे लगे पत्थर की तरह हैं। ये बता रहे हैं कि चले जाओ, आगे है मंजिल। लेकिन बहुत से लोग मील के पत्थर को पकड़ कर बैठ जाते हैं।
वह तुम भी कर सकते हो। तुम भी कर सकते हो कि रोज सुबह उठ कर जपुजी का पाठ करो। और उसको दोहराते रहो। और कंठस्थ कर लो। तुमने मील का पत्थर पकड़ लिया। यह तो इशारा है। इसे कंठस्थ करने से कुछ भी न होगा। इसमें जिस तरफ इशारा है उस तरफ चलना पड़ेगा। यात्रा करनी पड़ेगी। धर्म एक यात्रा है। तुम चाहे जपुजी को पकड़ो, चाहे गीता को, चाहे कुरान को, अगर तुम पकड़ कर बैठ गए, तो तुमने मील के पत्थर को छाती से लगा लिया। समझो और आगे बढ़ो। जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ोगे वैसे-वैसे राज प्रकट होगा।
"हुक्म को शब्दों में नहीं कहा जा सकता। हुक्म से ही जीवों की उत्पत्ति होती है। हुक्म से ही बड़ाई मिलती है। हुक्म से ही कोई छोटा है, कोई बड़ा है। हुक्म से ही सुख-दुख की प्राप्ति होती है।"
थोड़ा सोचो, जब तुम्हें दुख मिलता है तो तुम किसी को जिम्मेवार ठहराते हो। अगर जिम्मेवार ही ठहराना है तो हुक्म को जिम्मेवार ठहराओ। पति दुखी है तो सोचता है कि पत्नी जिम्मेवार है। पत्नी दुखी है तो सोचती है, पति जिम्मेवार है। बाप दुखी है तो सोचता है, बेटा जिम्मेवार है। अगर जिम्मेवारी ही देनी है, तो परमात्मा को दो। उससे छोटे में काम न चलेगा। लेकिन बड़ा मजा है। तुम जब भी दुखी हो, तो अपने आसपास जिम्मेवारी किसी
के कंधे पर टांग देते हो। और जब तुम भी सुखी हो तब तुम खुद मानते हो कि मेरे ही कारण मैं सुखी हूं।
यह तर्क किस भांति का है? सुखी हो तब तुम अपने कारण और दुखी हो तब किन्हीं और के कारण! इस वजह से न तो तुम दुख को हल कर पाते हो और न तुम सुख का राज खोज पाते हो। क्योंकि दोनों हालत में तुम गलत हो। न तो दूसरा जिम्मेवार है दुख के लिए और न तुम जिम्मेवार हो सुख के लिए। दोनों के पीछे परमात्मा जिम्मेवार है। और अगर एक ही हाथ से सुख-दुख आ रहे हैं तो उनमें भेद क्या करना! फर्क क्या करना!
एक मुसलमान बादशाह हुआ। उसका एक गुलाम था। गुलाम से उसे बड़ा प्रेम था, बड़ा लगाव था। वह बड़ा स्वामिभक्त था। एक दिन दोनों जंगल से गुजरते थे। एक वृक्ष में एक ही फल लगा था। सम्राट ने फल तोड़ा। जैसी उसकी आदत थी, उसने एक कली काटी और गुलाम को दी। गुलाम ने चखी और उसने कहा, मालिक, एक कली और।
और गुलाम मांगता ही गया। फिर एक ही कली हाथ में बची। सम्राट ने कहा, इतना स्वादिष्ट है? गुलाम ने झपट्टा मार कर वह एक कली भी छीननी चाही। सम्राट ने कहा, यह हद हो गई! मैंने तुझे पूरा फल दे दिया, और दूसरा फल
भी नहीं है। और अगर इतना स्वादिष्ट है, तो कुछ मुझे भी चखने दे।
उस गुलाम ने कहा कि नहीं, स्वादिष्ट बहुत है और मुझे मेरे सुख से वंचित न करें, दे दें। लेकिन सम्राट ने चख ली। वह फल बिल्कुल जहर था। मीठा होना तो दूर, उसके एक टुकड़े को लीलना मुश्किल था। सम्राट ने कहा, पागल! तू मुस्कुरा रहा है, और इस जहर को तू खा गया? तू ने कहा क्यों नहीं?
उस गुलाम ने कहा, जिन हाथों से इतने सुख मिले हों और जिन हाथों से इतने स्वादिष्ट फल चखे हों, एक कड़वे फल की शिकायत?
फलों का हिसाब ही छोड़ दिया, हाथ का हिसाब है।
जिस दिन तुम देख पाओगे कि परमात्मा के ही हाथ से दुख भी मिलता है, उस दिन तुम उसे दुख कैसे कहोगे? तुम उसे दुख कह पाते हो अभी, क्योंकि तुम हाथ को नहीं देख रहे हो। जिस दिन तुम देख पाओगे सुख भी उसका दुख भी उसका, सुख-दुख दोनों का रूप खो जाएगा। न सुख सुख जैसा लगेगा, न दुख दुख जैसा लगेगा। और जिस दिन सुख-दुख एक हो जाते हैं, उसी दिन आनंद की घटना घटती है। जब तुम्हें सुख-दुख का द्वैत नहीं रह जाता, तब अद्वैत उतरता है, तब आनंद उतरता है, तब तुम आनंदित हो जाओगे।
नहीं! किसी को, पड़ोस में, पति को, पत्नी को, मित्र को, भाई को, दोस्त को, दुश्मन को दोषी मत ठहराना। सब दोषों का मालिक वह है। और जब खुशी आए, सफलता मिले, तो अपने को, अपने अहंकार को मत भरना। सब सफलताओं, सब स्वादिष्ट फलों

का मालिक भी वही है। अगर तुम सब उसी पर छोड़ दो, तो सब खो जाएगा। सिर्फ आनंद शेष रह जाता है।
"हुक्म से कोई ऊंचा कोई नीचा, हुक्म से सुख-दुख की प्राप्ति, हुक्म से
ही कोई प्रसाद को उपलब्ध होता है। हुक्म से ही कोई आवागमन में भटकता है। सभी कोई हुक्म के अंदर हैं। हुक्म के बाहर कोई भी नहीं। नानक कहते हैं, जो इस हुक्म को समझ लेता है वह अहंकार से मुक्त हो जाता है।"
नानक हुकमी जे बुझे त हऊ मैं कहे न कोय।
कि जिसने यह सार की बात समझ ली कि सब उसी का है, तो मैं कहने को बचता ही कौन है?
इसे थोड़ा समझें। तुम अहंकार को अनेक बार छोड़ना भी चाहते हो, क्योंकि उससे पीड़ा मिलती है। फिर भी छोड़ नहीं पाते। क्या कारण होगा? क्योंकि उसी से तुम्हें सुख भी मिलता है, इसलिए अड़चन है। अहंकार से दुख मिलता है, यह जाहिर है। क्योंकि जब कोई गाली देता है, पीड़ा होती है। वह पीड़ा अहंकार को होती है। तुम छोड़ना भी चाहते हो।
मुझसे लोग आते हैं, पूछते हैं कि दुख को कैसे छोड़ें? और यह भी कहते हैं
कि समझ में आता है, अहंकार ही दुख है। कैसे छोड़ें? मैं उनसे कहता हूं, कैसे का सवाल ही नहीं है। अगर तुम्हें सच में दिखाई पड़ता है अहंकार दुख है, तो तुम छोड़ ही देते। पूछना क्या है?
लेकिन बात उलझी हुई है। कोई गाली देता है, अहंकार को दुख मिलता है, तुम छोड़ना चाहते हो। लेकिन कोई फूलमाला पहनाता है तब अहंकार को सुख मिलता है। अहंकार आधा तुम छोड़ना चाहते हो, आधा तुम बचाना चाहते हो। उसी को निंदा अखरती है, उसी को प्रशंसा सुख देती है। भूल हो जाती है तो चोट लगती है, ठीक बात घट जाती है तो भली लगती है। लोग निंदा करते हैं चारों तरफ, अपमान करते हैं, खलता है। लोग प्रशंसा करते हैं, यशगान करते हैं, गीत गाते हैं, गुणगान करते हैं, बड़ा भला लगता है। दोनों ही घटनाएं अहंकार को घट रही हैं।
और तुम्हारी मुसीबत यह है कि तुम अगर अहंकार छोड़ो तो दुख भी मिट जाएगा, सुख भी मिट जाएगा। सुख को तुम बचाना चाहते हो, दुख को तुम मिटाना चाहते हो। यह कभी हुआ नहीं, कभी होगा नहीं। दोनों ही साथ जाएंगे। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक पहलू को तुम बचाना चाहते हो, दूसरे को फेंक देना चाहते हो। यह कैसे होगा! फेंकते हो, उठा लेते हो। क्योंकि यह दूसरा पहलू भी हाथ से जाता है। हाथ में रखते हो, फेंकना चाहते हो। क्योंकि वह दुख वाला पहलू भी हाथ में रह जाता है।
अहंकार को समझो। सुख भी वही देता है, दुख भी वही देता है। और अगर तुम दोनों परमात्मा पर छोड़ दो--जहां से कि वास्तविक स्रोत है जीवन का--अगर तुम सब उसी पर छोड़ दो, तो तुम्हारे मैं को बचने की जगह कहां रह जाएगी? तुम कैसे कहोगे मैं हूं?
मैं कृत्यों का जोड़ है। तुमने जो-जो किया है, उसका इकट्ठा जोड़ मैं। मैं कोई वस्तु नहीं है। सिर्फ बहुत-बहुत कृत्यों की जोड़ी हुई धारणा है। तुम्हारा अतीत, तुमने जो-जो किया है, उसका जोड़ अहंकार है। अगर सारा कर्तृत्व तुम छोड़ दो, और तुम कह दो, कर्ता तू है--कर्ता पुरुख। मैं केवल माध्यम हूं। फिर कैसे अहंकार? जो उसने करवाया वह मैंने किया। जो उसने नहीं करवाया वह मैंने नहीं किया। पापी बनाया तो पापी।
इसे थोड़ा समझो, क्योंकि नानक बड़ी अनूठी बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, हुक्म से ही कोई प्रसाद को उपलब्ध होता है, ज्ञान को। और हुक्म से ही आवागमन में भटकता है। नानक यह कह रहे हैं कि अगर तुम पापी हो, तो भी मत सोचो कि मैं पापी हूं। क्योंकि उसकी मर्जी। यह खतरनाक बात है। क्योंकि तुम कहोगे, ऐसे तो लोग पाप करने लगेंगे। और लोग कहेंगे, उसकी मर्जी।
लेकिन यही तो मजा है कि जिसने जान लिया उसकी मर्जी, उससे फिर जो भी होता है वही पुण्य है। जब तक तुम नहीं जानते हो उसकी मर्जी, तभी तक तुम्हारे उसके बीच एक कलह चल रही है। उस कलह में ही पाप का जन्म है। उस कलह से ही सारा दुख खुद को और दूसरे को देने की स्थिति बनती है। जिस दिन तुमने सब उस पर छा.ेड दिया, उसी दिन पाप तिरोहित हो जाता है। पाप तुम्हारे और परमात्मा के बीच हो रहे संघर्ष का फल है। लेकिन छोड़ना पड़ेगा उसे।

नानक कहते हैं, वह भी उसी के द्वारा हो रहा है। तुम पापी हो तो वही, तुम पुण्यात्मा हो तो वही। न तो तुम सोचो कि पुण्य मैंने किया है, और न तुम सोचो कि पाप मैंने किया है। मैंने किया है, यही बात भ्रांति है। एक ही अज्ञान है--मैंने किया है। और एक ही ज्ञान है--कर्ता पुरुख। कि वह पुरुष कर्ता है, मैं केवल माध्यम हूं।
"हुक्म से बाहर कोई भी नहीं, सभी कोई हुक्म के अंदर हैं।"
हुकमी अंदर सभु को बाहर हुकुम न कोय।
और नानक कहते हैं, "जो उस हुक्म को समझता है, वह अहंकार से मुक्त हो जाता है। कोई उसके बल का गान करते हैं, जिनमें गुणगान करने का बल है। कोई उसके दान का गीत गाते हैं, और दान को उसका प्रतीक मानते हैं। कोई उसके गुण और सुंदर बड़ाइयों को गाते हैं। कोई उस विद्या को गाते हैं जिसका विचार कठिन है। कोई यह गाते हैं कि वह शरीर रचता है और उसे फिर खाक कर देता है। कोई गाते हैं कि जीव फिर उससे ही देह ग्रहण करता है। कोई गाते हैं कि वह बहुत दूर दिखाई देता है। और कोई गाते हैं कि वह हमें देखता है और सर्वव्यापी है। उसके गुणगान का अंत नहीं आता, यद्यपि करोड़ों लोग करोड़ों ढंग से कथन करते हैं। दाता देता ही चला जाता है, लेने वाले लेते-लेते थक जाते हैं। युग-युगांतर से जीव उसको भोग रहे हैं, पर उसका अंत नहीं। वह हुकमी हुक्म से पथ-निर्देश करता है। नानक कहते हैं, वह बेपरवाह है और आनंदित है।"
हजारों वर्णन हैं उसके और सब अधूरे हैं। अधूरा मनुष्य पूरे का वर्णन कैसे कर सकेगा? अधूरा मनुष्य जो भी कहेगा वह अधूरा होगा। अंशी की खबर अंश से कैसे मिलेगी? अंश जो भी कहेगा वह अंश की ही समझ होगी। परमाणु परमात्मा को कैसे जानेगा? जानेगा भी, तो भी परमाणु की ही बुद्धि होगी।
तो जो गीत गा सकते हैं वे उसके गुणों का गीत गाते हैं, लेकिन फिर भी वह
जो अज्ञात है, अज्ञात ही रह जाता है। उपनिषद थक गए, गीता थक गई, कुरान थक गया, बाइबिल थक गई। वह अनिर्वचनीय है, अनिर्वचनीय ही बना है। अब तक हम उसका पूरा गुणगान नहीं कर पाए। सब शास्त्र अधूरे हैं, होंगे ही। अनिवार्यतः होंगे। क्योंकि सभी शास्त्र मनुष्य की चेष्टाएं हैं उस अनंत को प्रकट करने की।
सूर्य निकला है, चित्रकार उसका चित्र बनाता है। कितना ही ठीक बनाए तो
भी उस चित्र से रोशनी तो न मिलेगी। और अंधेरे में रख कर तुम बैठ जाओ तो तुम इस आशा में मत रहना कि घर प्रकाश से भर जाएगा। कोई कवि उस सुबह के निकलते सूरज का मधुर से मधुर गीत गाए, उसके गीत में बड़ी गंभीरता हो, उसके गीत में बड़ी गहराई हो, उसका गीत हृदय को छुए, तुम उस गीत को गाते रहना अंधेरे में बैठ कर तो भी रोशनी न मिलेगी।
परमात्मा के संबंध में गाए गए गीत, रचे गए चित्र, बस ऐसे ही हैं। सब चित्र अधूरे हैं। सब गीत अधूरे हैं। कोई गीत पूरा उसे कह न पाएगा। क्योंकि किसी भी गीत में हम उसकी जीवंतता को न उतार पाएंगे। शब्द थोथे हैं, थोथे ही रहेंगे। तुम्हें प्यास लगी हो तो शब्द पानी से न बुझेगी। तुम्हें भूख लगी हो तो शब्द अग्नि पर रोटी न पकेगी। और तुम्हें परमात्मा की अभीप्सा पैदा हो गई हो तो शब्द परमात्मा काफी नहीं है; काफी उन्हीं को है, जिन्हें अभीप्सा नहीं है।
इसको ठीक से समझ लो। अगर तुम्हें प्यास नहीं लगी है तो शब्द पानी भी काफी है, एच टू ओ भी काफी है। अगर प्यास लगी है तब अड़चन शुरू होती है। तब न तो एच टू ओ काम देगा, न पानी काम देगा, न जल काम देगा, न वाटर काम देगा। तुम दुनिया भर के सब शब्द इकट्ठे कर लो। कोई तीन हजार भाषाएं हैं। तीन हजार शब्द पानी के लिए हैं। सब इकट्ठे कर लो, उनको कंठ से बांध लो, तो भी बूंद प्यास उनसे न बुझेगी। लेकिन अगर प्यास न लगी हो तो तुम शब्दों से खेल सकते हो।
दर्शनशास्त्र उन लोगों का खेल है जिन्हें प्यास नहीं लगी है। और धर्म उनकी यात्रा है जिन्हें प्यास लगी है। इसलिए दर्शनशास्त्र शब्दों से खेलता है। धर्म शब्दों से नहीं खेलता। धर्म तो शब्दों का इशारा जिस तरफ है, उस यात्रा पर जाता है। सरोवर की तलाश है; सरोवर शब्द का क्या करेंगे? जीवन की खोज है; जीवन शब्द से क्या होगा?

कोई गा नहीं पाया उसे पूरा। कोई बता नहीं पाया उसे पूरा। उसकी सब मूर्तियां अधूरी हैं। कोई उसे बना नहीं पाया पूरा। बनाएगा भी कैसे?
थोड़ा इसे समझो। दर्शनशास्त्रियों के सामने एक बड़ा गहन सवाल रहा है।
और वह सवाल है कि अगर एक यात्री हिंदुस्तान आता है, तो हिंदुस्तान का नक्शा हम उसे दे देते हैं। वह जेब में रख लेता है नक्शा। हिंदुस्तान को तो जेब में न रख सकोगे, वह नक्शा जेब में रख लेता है। उस नक्शे से हिंदुस्तान का मेल क्या है? क्या वह नक्शा हिंदुस्तान जैसा है? अगर हिंदुस्तान जैसा है तो हिंदुस्तान जैसा बड़ा होगा। और अगर हिंदुस्तान जैसा नहीं है तो उसे हिंदुस्तान का नक्शा क्यों कहते हो? नक्शे का उपयोग क्या है? अगर वह बिल्कुल हिंदुस्तान जैसा हो तो उसका कुछ उपयोग ही नहीं। क्योंकि उसको जेब में न ले जा सकोगे। उसको कार में बैठ कर उपयोग न कर सकोगे। वह दूसरा हिंदुस्तान हो जाएगा। और अगर वह हिंदुस्तान जैसा नहीं है, तो बड़ी हैरानी की बात है, वह काम कैसे आता है?
नक्शा प्रतीक है। वह ठीक हिंदुस्तान जैसा नहीं है, फिर भी हिंदुस्तान
के संबंध में रेखाओं के माध्यम से कुछ इंगित करता है, इशारे करता है। तुम पूरा हिंदुस्तान घूम कर भी हिंदुस्तान का नक्शा कहीं न देख पाओगे। जहां भी जाओगे, हिंदुस्तान मिलेगा, नक्शा नहीं। लेकिन अगर नक्शा पास है, तो यात्रा सुगम हो जाएगी। लेकिन नक्शे को मान कर चलना पड़ेगा। नक्शे को छाती से रख कर बैठने से कुछ भी न होगा।
और दुनिया भर के धार्मिक लोग नक्शों को छाती से रख कर बैठ गए हैं। जैसे नक्शा सब कुछ है। धर्मशास्त्र नक्शा है, मूर्तियां नक्शे हैं, मंदिर नक्शे हैं। उनमें कुछ इशारे छिपे हैं। अगर इशारे चूक जाएं, तो नक्शे बोझ हैं। हिंदू अपने नक्शे ढो रहा है, मुसलमान अपने नक्शे ढो रहा है। न हिंदू यात्रा कर रहा है, न मुसलमान यात्रा कर रहा है। नक्शे इतने हो गए हैं कि यात्रा अब हो ही नहीं सकती। या तो नक्शों को ढोओ--तो तुम चल नहीं सकते। नक्शे संक्षिप्त चाहिए, छोटे चाहिए। और नक्शों की पूजा करने का कोई अर्थ नहीं है। उनका उपयोग करना है।
नानक ने हिंदू और मुसलमान दोनों नक्शों में जो सार था उसको निचोड़ लिया। नानक को न तो तुम हिंदू कह सकते हो, न तुम मुसलमान कह सकते हो। नानक दोनों हैं, या दोनों नहीं हैं। और नानक को समझने में लोगों को बड़ी मुश्किल हुई। नानक के संबंध में पुरानी उक्ति है--
बाबा नानक शाह फकीर, हिंदू का गुरु मुसलमान का पीर।
वे दोनों हैं। उनके दो खास शिष्य हैं--मर्दाना और बाला। एक मुसलमान,
एक हिंदू। न हिंदू मंदिर में उनको जगह है, न मुसलमान की मस्जिद में उनको जगह है। दोनों जगह संदेह है कि यह आदमी है किस जगह पर? इसको हम किस कोटि में रखें? कहां बिठाएं?
जो भी महत्वपूर्ण था हिंदू में, और जो भी महत्वपूर्ण था मुसलमान में,
उन दोनों नदियों का संगम है नानक। जो भी सार था... इसलिए सिक्ख न तो हिंदू है, न मुसलमान। या तो वह दोनों है और या दोनों नहीं है। वह एक संगम है।
यह जो संगम है, इस संगम को समझना और कठिन हो जाता है। क्योंकि एक नदी
का साफ-सुथरा नक्शा होता है। अब यह दो नदियों का नक्शा इकट्ठा मिल गया। इसलिए कुछ वचन खबर देते हैं इस्लाम की, कुछ वचन खबर देते हैं हिंदुओं की। और दोनों मिल कर और धूमिल हो जाते हैं। यह धूमिलता तभी हटेगी, जब कोई प्रयोग में उतरेगा। तो धीरे-धीरे बात साफ होती जाएगी। अगर तुमने छाती पर रख लिए शास्त्र, जैसा कि हो गया है, सिक्ख पूज रहा है शास्त्रों को। इसलिए गं्रथ ही गुरु हो गया। और बड़े मजे की बात है कि हम भूलों को कैसे पुनरुक्त करते हैं!
नानक मक्का गए, तो मक्का के प्रधान पुरोहित ने आ कर उनको कहा कि अपने पैर दूसरी दिशा में करो। तुम्हारे पैर पवित्र पत्थर की तरफ, काबा की तरफ हैं। तो कहानी है कि नानक ने कहा, परमात्मा जहां न हो, वहां मेरे पैर कर दो। कहानी तो यह है कि जहां-जहां उनके पैर किए गए वहां-वहां काबा हट गया। लेकिन यह प्रतीक है। अर्थ इतना ही है कि तुम पैर कहीं भी करोगे, वहीं परमात्मा है। तो पैर कहां करोगे? वह सब ओर है।

स्वर्ण मंदिर अमृतसर में मुझे निमंत्रण दिया कि मैं आऊं। मैं गया। मैं तो कोई टोपी नहीं लगाता, तो दरवाजे पर ही उन्होंने कहा कि यह तो बहुत मुश्किल है। आपको सिर पर कपड़ा बांधना ही पड़ेगा। यह तो परमात्मा का मंदिर है। इसमें सिर पर टोपी चाहिए। तो मैंने उनसे कहा, तुम भूल गए कि नानक के साथ काबा में क्या हुआ था! तो अभी जहां मैं खड़ा हूं बिना टोपी लगाए, वहां परमात्मा नहीं है? वहां मंदिर नहीं है? पर भूलें वही की वही दोहर जाती हैं। तो मैंने उनसे कहा, मुझे बताओ वह जगह, जहां मैं बिना टोपी लगाए रह सकता हूं। और तुम भी तो स्नान करते होओगे, तब पगड़ी निकाल देते होओगे। उस वक्त परमात्मा का अपमान होता होगा! तुम भी तो रात सोते होओगे, तब पगड़ी अलग कर देते होओगे। उस वक्त परमात्मा का अपमान होता होगा!
तो आदमी की नासमझियां वही की वही हैं। बुद्ध कुछ कहें, बुद्ध को मानने वाला सब लीपपोत देता है। नानक कुछ कहें, नानक को मानने वाला सब लीपपोत देता है। फिर वही जाल शुरू हो जाता है। क्योंकि आदमी की नासमझी में कोई फर्क नहीं। उसके बहरेपन में कोई फर्क नहीं है। सुन लेता है, अपने मतलब निकाल लेता है। अपने मतलब से चलता है, जो सुना है उसके अनुभव से नहीं।
ये जो शब्द हैं, नानक कहते हैं, कोई कितने ही गीत गाए, उसे कोई पूरा नहीं कर पाया। अलग-अलग लोग उसके अलग-अलग गीत गाते हैं। क्योंकि अलग-अलग लोग अलग-अलग तरफ से उसकी तरफ पहुंचते हैं। उनके गीतों में कोई विरोध भी नहीं है। कितना ही विरोध दिखाई पड़े, वेद भी वही कहते हैं जो कुरान कहता है। लेकिन मुहम्मद के पहुंचने का ढंग और; याज्ञवल्क्य के पहुंचने का ढंग और। बुद्ध भी वही कहते हैं जो नानक कहते हैं, लेकिन पहुंचने का ढंग और।
अनंत द्वार हैं उसके। तुम जहां से भी जाओ वहीं उसका द्वार है। और तब तुम अपने द्वार का वर्णन करोगे। और तुम जिस मार्ग से जाओगे उस मार्ग का वर्णन करोगे। दूसरा जिस मार्ग से पहुंचा है उसका वर्णन करेगा। फिर मार्ग से ही फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी समझ, तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारी भावदशा... ।
एक बगीचे में कवि आता है तो गीत गाता है। चित्रकार आता है तो चित्र बनाता है। फूलों का सौदागर आता है तो फूलों के दाम के संबंध में सोचता है, व्यवसाय की बात सोचता है। वैज्ञानिक आ जाएगा तो फूलों का विश्लेषण करके देखेगा कि उनके रासायनिक तत्व क्या हैं। कोई आदमी जो नशे में भरा हो वह गुजर जाएगा, उसे फूल दिखाई ही नहीं पड़ेंगे। वह बगीचे से गुजरा है, इसका भी पता नहीं चलेगा। तुम जो भी देखोगे वह तुम्हारी खिड़की से देखा गया है। तुम्हारी खिड़की का आकार उस पर छा जाएगा।
नानक कहते हैं, कोई उसके बल का गान गाते हैं कि वह महा शक्तिशाली है, परम शक्तिशाली है, ओम्नीपोटेंट--सर्व शक्तिशाली है। कोई उसके दान का गीत गाते हैं कि वह परमदाता। कोई उसके गुण और सौंदर्य का बखान करते हैं कि वह परम सौंदर्य। कोई उसे कहते हैं सत्य, कोई उसे कहते हैं शिव, कोई उसे कहते हैं सुंदर।
रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैंने तो उसे सौंदर्य में पाया। इससे परमात्मा के संबंध में कोई खबर नहीं मिलती, इससे रवींद्रनाथ के संबंध में खबर मिलती है। गांधी कहते हैं कि वह मेरे लिए सत्य है, ट्रुथ इज गाड। इससे परमात्मा के संबंध में कोई खबर नहीं मिलती, गांधी के संबंध में खबर मिलती है। रवींद्रनाथ कवि हैं। कवि को सौंदर्य में परमात्मा है--परम सौंदर्य! गांधी कवि नहीं हैं, गांधी से कम कवि आदमी खोजना मुश्किल है। वे बिल्कुल हिसाबी-किताबी हैं। काव्य नहीं, गणित। तो गणित की दृष्टि से देखने पर परमात्मा सत्य है। प्रेम की दृष्टि से देखने पर प्रेमी, प्रियतम, प्यारा। किस दृष्टि से हम देखते हैं? हमारी दृष्टि की खबर मिलती है उससे। वह सभी है एक साथ, और कोई भी नहीं है। इसलिए महावीर का एक बहुत अदभुत प्रयोग है चिंतन के संबंध में कि जब तक तुम्हारी दृष्टि न छूट जाए, तब तक तुम उसे न जान सकोगे। क्योंकि तुम जो भी जानोगे वह तुम्हारी दृष्टि होगी। महावीर उसको कहते हैं, नय दृष्टि। और दर्शन तब मिलेगा जब सब दृष्टि छूट जाए। लेकिन तब तुम चुप हो जाओगे। क्योंकि बिना दृष्टि के बोलोगे कैसे? जब कोई भी दृष्टि न होगी तब तुम उसी जैसे हो जाओगे। तब बोलोगे कैसे? तब तुम

उतने ही विस्तीर्ण हो जाओगे। तब तुम आकाश के साथ लीन हो जाओगे। तुम बोलोगे कैसे? तुम अलग ही न रहोगे। सब दृष्टियां अलग होने वाले की दृष्टियां हैं। इसलिए नानक सब की दृष्टियां गिनाते हैं। वे यह कह रहे हैं कि ये सभी ठीक हैं और फिर भी कोई पूरा ठीक नहीं है। और जब कोई अधूरे को पूरे ठीक होने का दावा करता है तभी भ्रांति हो जाती है।
संप्रदाय का अर्थ है, तुमने अधूरी दृष्टि को पूरा होने का दावा कर दिया। संप्रदाय को धर्म कहने का अर्थ है कि तुमने अधूरी दृष्टि को पूरी होने की घोषणा कर दी, कि बस यही दृष्टि पूरी है। इसलिए एक संप्रदाय दूसरे संप्रदाय के विरोध में है। सभी संप्रदाय धर्म की दृष्टियां हैं। और कोई संप्रदाय धर्म नहीं है। अगर हम सभी संभव संप्रदायों को मिला दें, तो धर्म पैदा होगा। जो संप्रदाय हुए हैं, जो हैं, और जो होंगे... अगर हम सभी दृष्टियों को इकट्ठा कर दें, तो धर्म होगा। कोई संप्रदाय धर्म नहीं है। संप्रदाय शब्द बड़ा अच्छा है। संप्रदाय का अर्थ है, मार्ग। संप्रदाय
का अर्थ है, पहुंचने का रास्ता। धर्म का अर्थ है, मंजिल। मंजिल एक, मार्ग अनेक हैं।
नानक कहते हैं, कोई बल का गान करता। कोई गुण का गान करता। कोई उसके दान
का गीत गाता। कोई उसके सौंदर्य की चर्चा करता। कोई उस विद्या का वर्णन करता है जिसका विचार कठिन है। कोई यह गाते हैं कि उसने शरीर रचा। फिर वही शरीर को मिटाता है। कोई कहते हैं जीव फिर उससे ही देह ग्रहण करता है। कोई कहते हैं वह बहुत दूर दिखाई देता है। कोई कहते हैं वह बहुत निकट है। कोई गाते हैं वह हमें देखता है और सर्वव्यापी है। उसके गुणगान का अंत नहीं आता।
कथना कथी न आवै तोटि।
"कहते-कहते थक जाते हैं और उसके गुणगान का कोई अंत नहीं आता।"
कथि कथि कथी कोटि कोटि कोटि।
"करोड़, करोड़, करोड़ बार कहने पर भी वह अनकहा ही पीछे छूट जाता है। दाता देता ही चला जाता है। लेने वाले लेते-लेते थक जाते हैं।"
यह बड़ा महत्वपूर्ण वचन है। जीवन वही देता है। श्वास वही चलाता है। धड़कन में वही धड़कता है। वह देता चला जाता है। उसके देने में कोई पारावार नहीं है। उत्तर में हमसे कुछ मांगता भी नहीं है।
इसलिए तो जीवन तुम्हें सस्ता मालूम पड़ता है और चीजें महंगी मालूम पड़ती हैं। तुम जीवन गंवाने को कभी भी राजी हो, धन गंवाने को नहीं। क्योंकि धन लगता है बड़ी मुश्किल चीज है। जीवन तो मुफ्त में मिलता है। वह तुम्हें जो भी दिया है, मुफ्त है। उसके बदले में तुमने कुछ भी नहीं दिया है।
और जिस दिन तुम्हें यह एहसास होना शुरू होगा कि जो भी मुझे मिला है उसमें मेरी पात्रता क्या है? अगर मैं न होता तो हर्ज क्या था? तुम्हारे भीतर जो जीवन की संभावना बनी है और तुम्हारे भीतर चेतना का जो फूल खिला है, अगर न खिलता तो तुम किससे शिकायत करते? और तुम्हारी क्या योग्यता है कि तुम्हें जीवन मिले? तुमने किस भांति इसे अर्जित किया है?
हर छोटी-छोटी चीज के लिए योग्यता चाहिए। तुम एक दफ्तर में क्लर्क हो, उसके लिए योग्यता चाहिए। तुम एक स्कूल में मास्टर हो, उसके लिए योग्यता चाहिए। तुम उसे अर्जित करते हो। तुमने जीवन के लिए क्या अर्जित किया? कैसे अर्जित किया है?
वह दान है। वह तुम्हें ऐसे ही मिला है, तुम्हारी कोई पात्रता के कारण नहीं। और जिस दिन तुम्हें यह प्रतीति होगी, उस दिन प्रार्थना का जन्म होगा। उस दिन तुम कहोगे मैं क्या करूं? मैं कैसे धन्यभाग्य प्रकट करूं? मैं कैसे तेरे ऋण को चुकाऊं? प्रार्थना मांग नहीं है। प्रार्थना जो पहले से ही मिला है उसका धन्यवाद है। और ये प्रार्थना के दो भेद हैं।
तुम जब जाते हो मंदिर तो तुम और मांगने जाते हो। तुम्हारी प्रार्थना झूठी है। नानक भी जाते हैं। वे धन्यवाद देने जाते हैं। वे कहने जाते हैं, जो तूने दिया है वह भरोसे के बाहर है। कोई कारण नहीं मेरे भीतर कि मुझे मिले। कोई मेरी योग्यता नहीं। न मिले, शिकायत करने का कोई उपाय नहीं। और तू देता चला जाता है।

परमात्मा औघड़ दानी है, अस्तित्व दिए चला जाता है। और हम? हमसे ज्यादा कृतघ्न लोग खोजने कठिन हैं। हम धन्यवाद भी नहीं दे सकते। उसके देने का अंत नहीं है और हमारी कृतघ्नता का कोई अंत नहीं। हम कृतज्ञता भी प्रगट नहीं कर सकते। हम यह भी नहीं कह सकते कि धन्यवाद! कि हम आभारी हैं! कि तेरा शुक्रिया! उतना भी हमसे नहीं होता। उतने में भी हमें बड़ी कठिनाई मालूम पड़ती है। हमारा कंठ अवरुद्ध हो जाता है।
तुम क्षुद्र बातों के लिए धन्यवाद दे देते हो। तुम्हारा रुमाल गिर जाए और कोई उठा कर दे दे, तो तुम उससे कहते हो, धन्यवाद। और जिसने तुम्हें जीवन दिया है, तुम उसके लिए धन्यवाद देने भी कभी नहीं गए। और जब भी तुम गए हो, शिकायत ले कर गए हो। जब भी तुम गए हो, तब तुम बताने गए हो कि क्या-क्या तू गलत कर रहा है! कि मेरा लड़का बीमार पड़ा है, कि मेरी पत्नी दुर्व्यवहार कर रही है, कि धंधा ठीक नहीं चल रहा है।
और तुम अपनी शिकायतों को जब बहुत बढ़ा लेते हो, तब तुम्हारी शिकायतों
का अंतिम जोड़ यह होता है कि तुम कहते हो, तू है ही नहीं। क्योंकि अगर है, तो ये चीजें पूरी कर।
नास्तिकता का अर्थ है, तुम्हारी शिकायतें इतनी बढ़ गईं कि अब तुम परमात्मा को मान नहीं सकते। तुम्हारी शिकायतों के कारण तुम परमात्मा की हत्या कर देते हो। आस्तिकता का क्या अर्थ है? आस्तिकता का अर्थ है, तुम्हारा अहोभाव इतना बढ़ गया, तुम्हारा धन्यभाव इतना बढ़ गया, तुम इतनी कृतज्ञता से भर गए हो कि वह तुम्हें सब जगह दिखाई पड़ने लगता है। हर तरफ उसका हाथ, हर जगह उसकी प्रतीति, हर जगह उसका एहसास होने लगता है। आस्तिकता धन्यवाद की परम स्थिति है। नास्तिकता शिकायत का आखिरी रूप है।
जब नानक यह कह रहे हैं कि दाता देता ही चला जाता है। लेने वाले लेते- लेते थक जाते हैं, लेकिन दाता नहीं थकता। युग-युगांतर से जीव उसका भोग कर रहे हैं, पर उसका अंत नहीं है... ।
तुम उसे कितना ही भोगो, तुम उसे चुका न पाओगे। तुम्हारा भोग ऐसे ही है जैसे कोई चम्मच ले कर सागर के किनारे बैठा हो और चम्मच से सागर को खाली कर रहा हो। यह भी हो सकता है कि कभी न कभी वह सागर को खाली कर ले--क्योंकि चम्मच की भी सीमा है और सागर की भी सीमा है--लेकिन तुम परमात्मा को खाली न कर पाओगे, क्योंकि उसकी कोई सीमा नहीं।
अनंत काल से तुम भोग रहे हो। अनेक रूपों में तुम भोग रहे हो और तुम्हारे हृदय से धन्यवाद की आवाज भी नहीं उठी! तुमने एक बार आकाश की तरफ आंखें उठा कर न कहा कि मैं धन्यभागी हूं और तूने जो दिया है वह अपरंपार है। जब भी तुम उसके पास गए, शिकायत ले कर गए। और जब भी तुमने कुछ कहा, नाराजगी जाहिर की। जब भी तुम गए, तुमने ऐसा बताया कि तुम्हारी योग्यता ज्यादा है और तुम्हें मिला कम है।
कुछ दिन हुए, एक बड़े अधिकारी दिल्ली से मुझे मिलने आए। बड़े से बड़े पद
पर हैं। लेकिन जितने बड़े पद पर हों, उतनी शिकायत बढ़ जाती है। क्योंकि वे सोचते हैं, उनको अब मंत्री होना चाहिए। प्रधानमंत्री होना चाहिए। वे मुझसे कहने लगे, और सब तो ठीक है, कोई रास्ता बताएं जिससे कि मेरे साथ जीवन में जो अन्याय हुआ है, उसको मैं सहने में समर्थ हो जाऊं। अन्याय क्या हुआ है? अन्याय यह हुआ है कि जो मुझे मिलना चाहिए था वह नहीं मिला। जिस पद के मैं योग्य हूं उससे नीचे रह गया।
सभी को ऐसा लगता है। इसलिए हर आदमी इसी दुख में जीता है कि जो मुझे मिलना चाहिए था वह नहीं मिला। मैं योग्य तो था कि वाइस चांसलर हो जाता, और पड़ा हूं एक स्कूल में मास्टर हो कर। योग्य तो था कि मालिक हो जाता, बना हूं चपरासी। और यह स्थिति सदा बनी रहती है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जो प्रधानमंत्री बन जाता है वह भी सोच रहा है कि अब मेरी योग्यता तो इससे भी बड़ी है, लेकिन अब विस्तार का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता कि मैं सारी दुनिया का मालिक कैसे हो जाऊं!
तुम सिकंदरों को तृप्त नहीं कर सकते। और सभी सिकंदर हैं, छोटे-मोटे, बड़े; लेकिन सभी सिकंदर हैं। सभी की बड़ी आकांक्षा है। और आकांक्षा तुमसे आगे जाती है। तुम हमेशा पीछे रहते हो। और योग्यता तुम्हें सदा ज्यादा मालूम पड़ती है। यह अधार्मिक आदमी का लक्षण है।

धार्मिक आदमी का लक्षण यह है कि जो मिल जाए, वह मेरी योग्यता से ज्यादा है। थोड़ा सोचो, देखो। जो तुम्हें मिला है, वह तुम्हारी योग्यता से ज्यादा है या कम? वह सदा ज्यादा है। वह सदा ही ज्यादा है। क्योंकि कुछ भी हमने अर्जित नहीं किया है। यह विराट जीवन हमें यूं ही मिला है दान में। हमने मांगा तक नहीं था, बिना मांगे मिला है। फिर भी अहोभाव पैदा नहीं होता।
नानक कह रहे हैं कि उसको युग-युग तक भोग कर भी हम चुका नहीं पाते। वह हुकमी हुक्म से पथ-निर्देश करता है। यह बड़ी गहरी चाबी है। और नानक के विचार का बड़ा महत्वपूर्ण हिस्सा उसमें छिपा है। वह यह है--
हुकमी हुकमु चलाए राह।
"वह हुक्म से दुनिया को चला रहा है।"
और हमेशा तुम्हें हुक्म देता है। अगर तुम्हारे पास थोड़ी भी सुनने की समझ हो तो तुम उसके हुक्म को समझ सकते हो। और उसके अनुसार चल सकते हो। तुम सुनते ही नहीं।
तुम चोरी करने जाते हो, वह भीतर से तुमसे कहता है, मत करो। एक बार कहता है, दो बार कहता है, हजार बार कहता है। तुम जाते ही जाते हो, तुम करते ही जाते हो। फिर धीरे-धीरे वह आवाज भीतर धीमी होती जाती है। तुम बहरे हो जाते हो। फिर तुम्हें वह सुनाई भी नहीं पड़ती। फिर भी वह आवाज दिए जाता है। तुम ऐसा पापी न खोज सकोगे, जिसके भीतर आवाज खो गई हो, हुक्म खो गया हो। तुम ऐसा बुरा आदमी न खोज सकोगे, जिसको वह अब भी आवाज न दे रहा हो। वह कभी थकता नहीं और कभी निराश नहीं होता। तुम कितना ही बुरा करो, परमात्मा तुमसे निराश नहीं है। और वह कभी तुम्हें इस स्थिति में नहीं मान लेता कि अब कुछ भी नहीं हो सकता। तुम असाध्य कभी भी नहीं हो उसके लिए। तुम्हारा रोग कितना ही बढ़ जाए, उसका इलाज संभव है। परमात्मा की अनंत आशा, अनंत संभावना है। वह तुमसे कभी निराश नहीं होता।
ऐसा हुआ; एक सूफी फकीर हुआ, बायजीद। उसके पड़ोस में एक आदमी था, जो बड़ा बुरा आदमी था। लुटेरा, चोर, बेईमान, दगाबाज, हत्यारा, सब तरह के पाप उसने किए थे। पूरा गांव उससे त्रस्त था। एक दिन बायजीद ने प्रार्थना की। परमात्मा से कहा, मैंने तुझ से कभी कुछ नहीं मांगा। लेकिन यह आदमी अब बहुत ज्यादा उपद्रव कर रहा है। इस आदमी को हटा ले। तो बायजीद ने भीतर से आवाज सुनी कि मैं उससे नहीं थका, तो तू उससे क्यों थक गया है? और मुझे जब अब भी उस पर भरोसा है, तो तू भी भरोसा रख।
कितने ही पाप तुमने किए हों, कितने ही जन्मों तक, परमात्मा को तुम थका नहीं सकते। न भोग से चुका सकते हो, न पाप से थका सकते हो। वह अब भी आवाज दिए जाता है। वह कभी निराश नहीं होता। और अगर तुम जरा शांत हो कर सुनो, तो उसकी धीमी आवाज तुम्हें सुनाई पड़ेगी। और जब भी तुम कुछ करते हो, वह आवाज तुम्हें निर्देश देती है।
नानक कह रहे हैं, "वह हुकमी हुक्म से पथ-निर्देश करता है।"
इसलिए तो वे उसको हुकमी कह रहे हैं। क्योंकि उसका हुक्म आता है। तुम्हारे गहरे चेतन में छिपा हुआ जो अंतःकरण है, तुम्हारे हृदय में दबा हुआ जो अंतःकरण है, वह उसकी आवाज का यंत्र है। वहां से वह बोलता है। कुछ भी करने के पहले, आंख बंद करके पहले उसकी आवाज सुन लेना। और अगर तुम उसकी आवाज के अनुसार चले, तो तुम्हारे जीवन में आनंद की अपरंपार वर्षा होगी। अगर तुम उसके विपरीत चले तो तुम नर्क अपने हाथ निर्मित कर लोगे। अगर तुमने आवाज न सुनी तो तुमने पीठ कर दी। तुम बड़ा खतरनाक कदम ले रहे हो। कुछ भी करने के पहले, और कुछ भी निर्णय करने के पहले, आंख बंद करके उससे पूछ लेना। यही तो सारे ध्यान का सूत्र है कि पहले हम पूछेंगे, पहले हम हुक्म खोजेंगे, फिर हम चलेंगे। एक भी कदम हम बिना हुक्म के न उठाएंगे। आंख बंद करके उसकी आवाज पहले सुनेंगे। हम अपनी आवाज से न चलेंगे, उसकी आवाज से चलेंगे।
और एक दफे तुम्हें यह कुंजी मिल जाए, तो यह कुंजी अनंत द्वार खोल देती है। और यह कुंजी तुम्हारे भीतर है। हर बच्चा ले कर आता है। लेकिन बुद्धि का हम विकास करवाते हैं, अंतःकरण का कोई विकास नहीं। वह कांसियन्स, अंतःकरण अधूरा रहा जाता है, अविकसित रह जाता है। और उसके ऊपर हम बुद्धि के

इतने विचार थोप देते हैं, इतनी बड़ी पर्त लगा देते हैं कि आवाज गूंजती भी रहे तो हमें पता नहीं चलती।
भीतर की इस आवाज को सुनने की कला ही ध्यान है। उसके हुक्म का पता लगाना जरूरी है। वह क्या चाहता है? उसकी क्या मर्जी है?
"वह हुकमी हुक्म से पथ-निर्देश करता है।"
और नानक कहते हैं--
हुकमी हुकमु चलाए राह। नानक विगसै बेपरवाह।।
नानक कहते हैं, "वह बेपरवाह है और आनंदित है।"
एक तो परवाह का अर्थ होता है चिंता। वह तुम्हें दिए जाता है, लेकिन दे
कर कोई अपेक्षा नहीं करता। कोई उत्तर नहीं चाहता। आवाज दिए जाता है, तुम सुनो या न सुनो, दिए जाता है। परवाह नहीं करता इस बात की कि तुम नहीं सुन रहे हो। बंद करो, बहुत हो गया, इस आदमी को हटा लो।
परमात्मा को तुम चिंतित नहीं कर सकते। इसलिए जिस व्यक्ति को भी परमात्मा की प्रतीति होने लगती है, तुम उसे भी चिंतित नहीं कर सकते। ही विल बी बोथ साइमलटेनियसली कंसर्न्ड एंड अनकंसर्न्ड। वह तुम्हारी परवाह भी करेगा और बेपरवाह भी होगा। तुम उसे चिंतित नहीं कर सकते।
इधर मैं हूं। न मालूम कितने लोगों की परवाह करता हूं, फिर भी बेपरवाह हूं। तुम आते हो अपना दुख ले कर, मैं पूरी परवाह करता हूं, लेकिन तुम उससे मुझे चिंतित नहीं कर देते। तुम्हारे दुख से मैं दुखी नहीं हो जाता। क्योंकि अगर तुम्हारे दुख से मैं दुखी हो जाऊं तो फिर मैं तुम्हें साथ ही न दे पाऊंगा। जरूरी है कि तुम्हारे दुख को मैं सहानुभूति से समझूं, तुम्हारे दुख के लिए उपाय करूं, उपाय सोचूं, लेकिन परवाह मुझे पैदा न हो। तुम्हारी चिंता मुझे न पकड़े। और यह भी जरूरी है कि कल जो मैंने तुम्हें बताया है, तुम न करो, तो मुझमें नाराजगी न आए, कि मैंने इतनी परवाह ली और तुमने नहीं किया। तुम जब कल आओ बिना किए--और आओगे ही बिना किए--तो फिर तुम्हारी परवाह लूं, लेकिन मैं बेपरवाह रहूं।
परमात्मा को सारे जगत की परवाह है, और बेपरवाह है। वह सदा राजी है तुम्हें उठाने को, लेकिन किसी जल्दी में नहीं है। और तुम अगर सोचते हो कि कुछ देर और भटकने का मजा लेना है, तो वह बेपरवाह है। उसकी परवाह का अंत नहीं है, लेकिन उसकी परवाह अनासक्त है। और इसीलिए तो वह आनंदित है, नहीं तो अब तक किस हालत में हो जाता! पागल हो जाता। तुम सोचो, तुम सरीखे कितने लोग! और कितने तरह के उपद्रव! और परमात्मा एक और तुम अनेक! तुम सबने उसे कभी का पागल कर दिया होता। अस्तित्व बेपरवाह हो, तो ही पागल होने से बच सकता है। लेकिन बेपरवाह का अर्थ इनडिफरेंस नहीं है, उपेक्षा नहीं है। यह बड़ा सूक्ष्म है। तुम्हारे प्रति पूरी की पूरी चेष्टा है। तुम्हें बदलने, रूपांतरित करने, तुम्हें उठाने का पूरा भाव है। लेकिन भाव अनाक्रामक है। वह आक्रमण नहीं करेगा। वह प्रतीक्षा करेगा। ऐसे ही, जैसे सूरज तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रहा है, किरणें तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रही हैं, और तुम दरवाजा बंद किए अंदर बैठे हो तो सूरज जबर्दस्ती नहीं घुसेगा, रुकेगा। और ऐसा भी नहीं कि नाराज हो कर लौट जाए। कि अब इस आदमी का दरवाजा बंद है, चलो। अब कभी यहां नहीं आना। रुकेगा, तुम जब दरवाजा खोलोगे, तब प्रवेश कर जाएगा।
परमात्मा तुम्हारे लिए चिंतित है, अस्तित्व तुम्हारे लिए चिंतित है। होगा ही। क्योंकि अस्तित्व तुम्हें पैदा करता है। अस्तित्व तुम्हें विकसित करता है। अस्तित्व की बड़ी आकांक्षाएं हैं तुममें। अस्तित्व की बड़ी अभीप्साएं हैं तुममें। अस्तित्व तुम्हारे भीतर से चेतन होने की चेष्टा कर रहा है। अस्तित्व तुम्हारे भीतर से बुद्धत्व पाने की चेष्टा कर रहा है। परमात्मा तुम्हारे भीतर कुछ फूल लाने के प्रयास में लगा है। लेकिन अगर तुम देरी कर रहे हो तो उससे वह चिंतित नहीं होगा, परेशान नहीं होगा। वह अस्पर्शित रहेगा। तुम उसकी न सुनोगे, न सुनोगे, न सुनोगे, भटकोगे, और सब करोगे सिवाय उसकी सुनने के, तो भी वह इससे पीड़ित और परेशान न होगा।
तो अगर तुम समझ सको दोनों बातें एक साथ, तभी तुम समझ सकते हो कि अस्तित्व आनंद से भरा है। परमात्मा आनंद है।

नानक कहते हैं, हुकमी हुकमु चलाए राह। देता है हुक्म, राह बताता है। फिर भी, नानक विगसै बेपरवाह। लेकिन फिर भी बेपरवाह है। और परम आनंद में विकसित होता रहता है। खिलता रहता है उसका फूल।
कठिन है हमें। क्योंकि दो बातें हमें आसान दिखाई पड़ती हैं; या तो हम परवाह करते हैं तो चिंता पैदा होती है, या परवाह छोड़ दें तो चिंता छूट जाती है। इसीलिए तो हमने संसार और संन्यास को अलग-अलग कर लिया है। क्योंकि अगर घर में रहेंगे, परवाह करेंगे, तो परवाह करते हुए बेपरवाह कैसे होंगे? पत्नी की फिक्र होगी, बीमार होगी तो चिंता पकड़ेगी, रात सो न सकेंगे। बच्चा रुग्ण होगा तो फिक्र पकड़ेगी, चिंता पकड़ेगी, इलाज करना पड़ेगा। और नहीं ठीक हो सकेगा तो पीड़ा होगी। तो हम भाग जाते हैं। न दिखाई पड़ेंगे पत्नी-बच्चे, भूल जाएंगे। जो आंख से ओझल हुआ, वह चित्त से भी भूल जाता है। तो भाग जाते हैं पहाड़। पीठ कर लेते हैं। धीरे-धीरे विस्मृति हो जाएगी।
दो बातें हमें दिखाई पड़ती हैं। अगर हम संसार में रहेंगे तो परवाह करेंगे। परवाह करेंगे तो चिंता होगी। चिंता में आनंद का कोई उपाय नहीं। तो फिर हम ऐसा करें कि बेपरवाह हो जाएं। छोड़ कर भाग जाएं। वहां चिंता न होगी, तो आनंद की संभावना बढ़ेगी।
लेकिन यह परमात्मा का मार्ग नहीं। इसलिए नानक गृहस्थ बने रहे और संन्यस्त भी। फिक्र भी करते रहे और बेफिक्र भी। और यही कला है, और यही साधना है कि तुम चिंता भी पूरी लेते हो और निश्चिंत बने रहते हो। बाहर-बाहर सब करते हो, भीतर-भीतर कुछ नहीं छूता। बेटे की फिक्र लेते हो, पढ़ाते हो; बिगड़ जाए तो, न पढ़ पाए तो, हार जाए तो... तो इससे चिंता पैदा नहीं होती। और जब तक तुम दोनों को न जोड़ दो--संसार में रहते हुए संन्यस्त न हो जाओ--तब तक तुम परमात्मा तक न पहुंच सकोगे। क्योंकि परमात्मा का भी ढंग यही है। वह संसार में छिपा हुआ और संन्यस्त है। जो उसका ढंग है, छोटी मात्रा में वही ढंग तुम्हारा चाहिए। तभी तुम उस तक पहुंच पाओगे।
बच्चा बीमार है तो दवा दो, पूरी चिंता लो, लेकिन चिंतित होने की क्या जरूरत है? पूरी फिक्र करो, परवाह पूरी करो, लेकिन इससे भीतर की बेपरवाही को मिटाने का क्या कारण है? बाहर-बाहर संसार में, भीतर-भीतर परमात्मा में। परिधि छूती रहे संसार को, केंद्र बना रहे अछूता। यही सार है।
इसीलिए नानक से लोग बड़े परेशान थे। क्योंकि वे थे गृहस्थ और कपड़े- लत्ते पहन लिए थे संन्यासी जैसे। लोग समझ ही न पाते कि मामला क्या है? हिंदू पूछते कि तुम गृहस्थ हो कि संन्यासी? कि तुम बातें संन्यासी की करते हो, तुम्हारा ढंग-डोल संन्यासी का, फिर घर, बच्चे-पत्नी? तुम घर वापस भी लौट जाते हो, बच्चा भी हुआ है, गांव लौट कर तुम खेती-बाड़ी भी करते हो। तुम किस भांति के संन्यासी हो?
स्मरण रहे, वही उनसे मुसलमान पूछते--कि तुम्हारा भेष तो फकीरी का है, फिर तुमने घर-गृहस्थी छोड़ क्यों न दी? अनेक जगह, अनेक गुरुओं ने उनसे कहा कि तुम सब छोड़ कर अब हमारे शिष्य हो जाओ। छोड़ दो सब। लेकिन नानक उस मामले में कभी भी फर्क नहीं लाए। वे सब के बीच रहते हुए सब के बाहर रहने की ही कला को साधते रहे। और वही परमात्मा का ढंग है। और वही साधक का ढंग होना चाहिए। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि आप क्या कर रहे हैं? गृहस्थों को संन्यासी के कपड़े दे रहे हैं?
परमात्मा का ढंग यही है। वह इस संसार में है और नहीं है। और यही तुम्हारा सूत्र भी होना चाहिए।
हुकमी हुकमु चलाए राह। नानक विगसै बेपरवाह।।
विकास कर रहा है, आनंदित हो रहा है, प्रफुल्लित हो रहा है, फूल की तरह खिल रहा है, फिर भी कोई परवाह नहीं। फिक्र करता है तुम्हारी, लेकिन चिंतित नहीं है।
इसे तुम थोड़ा प्रयोग करोगे तो ही समझ में आ सकेगा। इसे थोड़ा जिंदगी में प्रयोग करो। दूकान जाओ, काम करो, लेकिन दूर भी बने रहो। तुम्हारे काम और तुम्हारे होने में एक फासला बना रहे। काम अभिनय हो जाए, नाटक हो जाए, लीला हो जाए। तुम कर्ता न रहो। बस! सूत्र सध गया। तुम अभिनेता हो जाओ। अभिनय की कला तुम्हारे पूरे जीवन का सूत्र बन जाए। क्योंकि वही परमात्मा के होने का ढंग है। वही तुम्हारा साधना-पथ होगा।

एक ओंकार सतनाम
तीसरा प्रवचन

साचा साहिबु साचु नाइ

पउड़ीः 4
साचा साहिबु साचु नाइ। भाखिया भाउ अपारु।।
आखहि मंगहि देहि देहि। दाति करे दातारू।।
फेरि कि अगै रखीऐ। जितु दिसै दरबारु।।
मुहौ कि बोलणु बोलीऐ। जितु सुणि धरे पिआरु।।
अमृत वेला सचु नाउ। वडिआई वीचारु।।
करमी आवे कपड़ा। नदरी मोखु दुआरु।।
"नानक" एवै जाणिए। सभु आपे सचिआरु।।

पउड़ीः 5
थापिया न जाई कीता न होई। आपे आप निरंजन सोई।।
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु। "नानक" गावीऐ गुणीनिधानु।।
गावीऐ सुणीऐ मनि राखीऐ भाउ। दुख परहरि सुखु घर लै जाउ।।
गुरुमुखि नादं गुरुमुखि वेदं। गुरुमुखि रहिआ समाई।।
गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा। गुरु पारबती माई।।
जे हउ जाणा आखा नाहीं। कहणा कथनु न जाई।।
गुरा एक देहि बुझाई--
सभना जीआ का इकु दाता। सो मैं विसरि न जाई।।

साहब सच्चा है, उसका नाम सच्चा है, उसका गुणगान अशेष भावों में किया जाता है। गुणगान करते हैं लोग। और दो, और दो, करके मांग करते हैं; और दाता देता ही चला जाता है। फिर उसके आगे क्या रखा जाए कि उसके दरबार का दर्शन हो? और हम कौन-सी बोली बोलें जिसे सुन कर वह प्यार करे? अमृत वेला में सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो। कर्म से शरीर मिलता है। कृपा-दृष्टि से मोक्ष का द्वार खुलता है। नानक कहते हैं, इस प्रकार जानो कि सत्य ही, परमात्मा ही सब कुछ है।
साहब, नानक का परमात्मा के लिए दिया गया शब्द है। परमात्मा के साथ हम
दो तरह से जुड़ सकते हैं। एक तो दार्शनिकों की परमात्मा के संबंध में चर्चा है। लेकिन उनके शब्द प्रेम से अधूरे हैं। उनके शब्द सूखे हैं। उनके शब्द बौद्धिक हैं, हार्दिक नहीं।
दूसरा भक्त का मार्ग है; उसके शब्दों में रस है। वह परमात्मा को एक सिद्धांत की तरह नहीं, एक संबंध की तरह देखता है। वह उससे कुछ संबंध जोड़ता है। क्योंकि जब तक संबंध न जुड़ जाए तब तक हृदय प्रभावित नहीं होता। परमात्मा का नाम हम कह सकते हैं, सत्य। लेकिन साहब में जो बात है वह सत्य में न होगी। सत्य से हम कैसे जुड़ेंगे? हमारा क्या संबंध होगा? हमारे हृदय और सत्य के बीच कौन-सा सेतु बनेगा?
लेकिन साहब प्यार का संबंध है। साहब होते ही परमात्मा प्रियतम हो गया। अब हम जुड़ सकते हैं। अब रास्ता खुला है। अब हम दौड़ सकते हैं। सत्य कितना भी ठीक हो, फिर भी भक्त के लिए रूखा-सूखा है। भक्त चाहता है कुछ, जिसके साथ स्पर्श हो सके। भक्त चाहता है कुछ, जिसके आसपास नाच सके, गा सके। भक्त चाहता है कुछ, जिसके चरणों में सिर रख सके। साहब प्यारा नाम है। उसका अर्थ है मालिक, उसका अर्थ है स्वामी।
फिर संबंध बहुत ढंग के हो सकते हैं। सूफियों ने परमात्मा को प्रेयसी माना है, तो साधक प्रेमी हो जाता है। हिंदुओं ने, यहूदियों ने, ईसाइयों ने परमात्मा को पिता माना है, तो साधक बेटा हो जाता है। नानक ने परमात्मा को साहब माना है, तो साधक दास हो जाता है।
इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि इन सभी संबंधों का मार्ग भिन्न-भिन्न होगा। प्रेमी के साथ हम एक ही तल पर खड़े होते हैं। प्रेमी न तो ऊपर होता है न नीचे। प्रेयसी और प्रेमी एक ही तल पर खड़े होते हैं। कोई ऊपर नहीं

और कोई नीचे नहीं। पिता और बेटे के बीच जो संबंध है, वह संस्कारगत है। चूंकि हम किसी पिता के घर पैदा हुए हैं, इसलिए एक संबंध है।...
मालिक हम खुद होना चाहते हैं और हमारी चले तो परमात्मा को दास बना लें। तो अहंकार मिटाने के लिए दास की भावना से बड़ी कोई भावना नहीं हो सकती। न तो पिता के संबंध में अहंकार गिरेगा, न प्रेयसी-प्रेमी के संबंध में अहंकार गिरेगा। अहंकार तो गिर सकता है सिर्फ दास की भावना में, कि मैं गुलाम हूं और तू मालिक है।
और यह सबसे कठिन है। क्योंकि यही अहंकार के विपरीत स्थिति है। अहंकार मानता है, मैं मालिक हूं, सारा अस्तित्व मेरा गुलाम है। भक्त कहेगा, सारा अस्तित्व मालिक है, मैं गुलाम हूं। यही वास्तविक शीर्षासन है। सिर को जमीन में करके पैर ऊपर करके खड़े हो जाना असली शीर्षासन नहीं है--अहंकार को नीचे करके! क्योंकि वही सिर है। उसको नीचे करके खड़े हो जाना दास की भावना है। इसलिए दास ही ठीक-ठीक शीर्षासन करता है। वह उलटा हो जाता है। और जैसे तुमने दुनिया को अब तक देखा है मालिक होने के ढंग से, तो दुनिया को तुमने कुछ और ही पाया है।
रास्ते से तुम गुजरते हो, भिखारी तुमसे मांगता है। क्या उसके मांगने
से कभी कोई तुम्हारे मन में और उसके बीच कोई संबंध स्थापित होता है? किसी तरह का लगाव बनता है? उलटी ही हालत होती है। उसके मांगने से तुम खिंच जाते हो। अगर देते भी हो तो बेमन से देते हो। और दुबारा ध्यान रखते हो कि उस रास्ते से संभल कर निकलना है। जब कोई मांगता है तब तुम सिकुड़ते हो, देना नहीं चाहते। और जब कोई मांगता नहीं तभी देने का मन होता है।
तुम जरा अपने को ही समझो तो परमात्मा की तरफ जाने के रास्ते साफ हो जाएं। जब कोई तुमसे मांगता है तब तुम देना नहीं चाहते, क्योंकि उसकी मांग छीन-झपट मालूम होती है। वह आक्रमण कर रहा है। सब मांग आक्रमण है। लेकिन जब तुमसे कोई मांगता नहीं, तब तुम हलके होते हो, तब तुम सहज दे सकते हो। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा है कि जब तुम गांव में भिक्षा के लिए जाओ तो मांगना मत। सिर्फ द्वार पर खड़े हो जाना। अगर कोई प्रति-उत्तर न मिले तो आगे बढ़ जाना; मांगना मत।
और यही तो भिक्षु और भिखारी में भेद है। भिक्षु को हमने महासम्मान दिया, जो हमने सम्राटों को नहीं दिया। और भिखारी को तो हम आखिरी जगह रखे हुए हैं। सम्मान दूर, उसे हम अपमान देने के योग्य भी नहीं मानते। उससे हम नजर बचा कर निकलते हैं। बुद्ध के भिक्षुओं ने पूछा कि बिना मांगे कोई कैसे देगा? बुद्ध ने कहा, बिना मांगे ही दुनिया में चीजें मिलती हैं। मांगे कि मुश्किल में पड़े। क्योंकि जब तुम मांगते नहीं तब तुम दूसरे को आतुर करते हो देने के लिए। जब तुम मांगते हो तब तुम दूसरे में संकोच पैदा करते हो। तुम अपने जीवन के सभी संबंधों में इस कहानी को छिपा हुआ पाओगे। पत्नी कुछ मांगती है, देना मुश्किल हो जाता है। लाते भी हो तो बेमन से सिर्फ कलह टालने को। वह प्रेम का संबंध न रहा। वह सिर्फ उपद्रव से बचने की व्यवस्था हुई। पत्नी मांगती ही नहीं, कभी नहीं मांगती, तब तुम्हारा हृदय प्रफुल्लित होता है। तब तुम कुछ लाना चाहते हो। तब तुम उसे कुछ देना चाहते हो। देना तभी संभव हो पाता है जब कोई न मांगे।
तुम परमात्मा से टूटे हो तुम्हारी मांग के कारण। और तुम्हारी सब प्रार्थनाएं दो, और दो से भरी हैं। तुम परमात्मा का उपयोग एक सेवक की तरह करना चाहते हो। तुम कहते हो, मेरे पैर में दर्द है, दूर करो। तुम कहते हो, आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, ठीक करो। तुम कहते हो, पत्नी बीमार है, स्वस्थ करो। नौकरी खो गयी है, नौकरी दो। तुम परमात्मा के द्वार पर सदा भिखमंगे की तरह पहुंचते हो, मांगते पहुंचते हो। तुम्हारा मांगना ही बताता है कि साहब तुम अपने को समझ रहे हो और परमात्मा को तुम दास समझ रहे हो। वह तुम्हारी जरूरतें पूरी करने के लिए है। और तुम्हारी जरूरतें इतनी महत्वपूर्ण हैं कि तुम परमात्मा को भी सेवा में रत करना चाहते हो।
नहीं, अगर परमात्मा साहब है और तुम गुलाम हो, तो मांग क्या? और मजा यह
है कि तुम मांगते हो और वह देता चला जाता है। ऐसा भी नहीं है कि तुम्हारे मांगने से न मिलता हो, मिलता चला जाता है। लेकिन जितना ही तुम पाते हो उतना

ही तुम उससे दूर हटते जाते हो। क्योंकि तुम और मांगोगे। जितना मिलेगा और मांगोगे। जितना तुम मांगोगे, दूर हटते जाओगे।
मांग कभी भी प्रार्थना नहीं बन सकती। वासना कभी भी प्रार्थना नहीं बन सकती। चाह कभी भी उपासना नहीं बन सकती। प्रार्थना का तो सूत्र ही यही है कि तुम वहां धन्यवाद देने जाते हो, मांगने नहीं। उसने पहले ही बहुत दे रखा है। जितनी जरूरत है उससे ज्यादा दे रखा है। जितनी योग्यता है उससे ज्यादा दे रखा है। प्याली पहले से ही भरपूर है और बह रही है।
वास्तविक भक्त उसे धन्यवाद देने जाता है। उसकी प्रार्थना अहोभाव है।
वह कहता है कि तूने मुझे बहुत दिया है। मेरी योग्यता क्या थी! और तुम कहते हो, देखो मेरी योग्यता को, मेरे साथ अन्याय हो रहा है। मुझे और दो। और यह और कहीं समाप्त न होगा।
नानक कहते हैं, "लोग मांगते रहते हैं और दाता देता चला जाता है, फिर भी उनकी मांग का कोई अंत नहीं होता।"
आखहि मंगहि देहि देहि। दाति करे दातारू।।
और वह दे रहा है। और मांगने वाले मांगते चले जाते हैं। मांग अनंत है। उसके अंत होने का कोई उपाय नहीं। अगर तुम मांगते ही रहे तो प्रार्थना कब करोगे? पूजा कब शुरू होगी? क्योंकि मांग का कोई अंत नहीं है। एक मांग पूरी होती है, दस खड़ी हो जाती हैं। एक वासना समाप्त नहीं हुई कि दस को जन्म दे जाती है। तुम मांगते ही रहोगे, उपासना कब होगी? धन्यवाद कब दोगे? कितने जन्मों से तुम मांग रहे हो, अभी भी तुम भरे नहीं?
तुम कभी भरोगे ही नहीं। क्योंकि भरना मन का स्वभाव नहीं है। मन सदा अतृप्त ही रहेगा। वह उसका स्वभाव है। मन छूट जाए तो तृप्ति होती है। मन रहे तो अतृप्त। मन कभी तृप्त नहीं होता। इसलिए कोई ऐसा आदमी तुम न पा सकोगे जो कहे कि मेरा मन तृप्त हो गया है। और अगर कभी तुम ऐसा आदमी पाओ जो कहे मेरा मन तृप्त हो गया, तो तुम गौर से देखना, उसके पास मन होगा ही नहीं। मन क्या है? मन तुम्हारी सब मांगों का जोड़ है। देहि देहि--दो, और दो, और दो--इन सारी मांगों के जोड़ का नाम मन है। मन से बड़ा भिखमंगा इस जगत में कोई भी नहीं है। कितना ही मिले, कोई अंतर नहीं पड़ता। सिकंदर भी मांग रहा है। रास्ते का भिखारी भी मांग रहा है।
मन का स्वभाव समझ लेना जरूरी है। और मन से तो प्रार्थना कैसे होगी? प्रार्थना का नाम ही अमनी अवस्था है। प्रार्थना का अर्थ है कि तुम मांगने नहीं गए, तुम धन्यवाद देने गए हो। सारी दृष्टि बदल गयी। जैसे ही मन को तुम हटाओगे, तुम पाओगे कि इतना मिला है, अब और क्या चाहिए! मन को बीच में लाए कि लगेगा बिल्कुल कुछ नहीं मिला है, सब चाहिए। मन देखता है अभाव को। मन के हटते ही दर्शन होता है भाव का।
इसे ऐसा समझो, एक आदमी है, उसे तुम गुलाब के फूलों की झाड़ी के पास ले जाओ। उसे सिर्फ कांटे दिखाई पड़ते हैं। वह गिनती करता है कांटों की। उसे फूल दिखता ही नहीं। तुम कितना ही उसे दिखाओ; वह कहेगा, जहां हजार कांटे हैं, वहां एक फूल हुआ भी तो क्या? और जहां हजार कांटे लगे हैं, वह आदमी कहेगा, संभल कर फूल को पकड़ना, वह भी कांटों का ही धोखा होगा।
उसका तर्क ठीक भी है। कि जहां कांटे ही कांटे लगे हैं, पहले तो वहां फूल लगेगा कैसे? कहां कांटे, कहां फूल! और जब हजार कांटों में छिद चुका होगा उसका मन, तो उसे डर पैदा हो जाएगा। वह फूल पर भी भरोसा न कर सकेगा। आस्था न कर सकेगा। वह कहेगा, कोई भ्रम हो रहा है, कोई सपना है। मैं किसी भूल में पड़ा हूं। या कोई मुझे धोखा दे रहा है। या किसी ने फूल को ऊपर से चिपका दिया है। फूल हो कैसे सकता है जहां कांटे ही कांटे हैं? अगर कांटों की गिनती करो तो फूल पर भी श्रद्धा चली जाती है।
अगर फूल की गिनती करो, अगर फूल में लीन हो जाओ, अगर फूल की सुगंध लो, फूल का स्पर्श तुम्हें पुलकित कर दे, तो दूसरी अवस्था पैदा होती है। तुम कहोगे, जहां इतना प्यारा फूल लगा है, वहां कांटे हो कैसे सकते हैं? और अगर हों भी, तो फूल की रक्षा के लिए होंगे। और अगर हों भी, तो फूल के सहयोगी, साथी होंगे। और अगर हों भी, तो परमात्मा की कोई मर्जी होगी। शायद फूल बिना कांटों के नहीं हो सकता, इसलिए कांटे हैं। वे सुरक्षा हैं, वे पहरेदार हैं। वे फूल को बचा रहे हैं।

और फूल में तुम्हारा रस बढ़ता जाए, बढ़ता जाए, तो एक दिन तुम पाओगे कि वही रस फूलों में चल रहा है जो कांटों में बह रहा है। इसलिए उनमें विरोध कैसे हो सकता है?
मन देखता है कांटों को; मन देखता है क्या नहीं है। मन देखता है कहां शिकायत है; मन देखता है कहां भूल है। मन देखता है कहां कमी है। मन देखता है असंतोष, अतृप्ति। मांग खड़ी हो जाती है। इसलिए मन से भरा जो जाता है मंदिर में, वह मांगने जाता है। वह भिखारी है।
अगर तुम मन को थोड़ा अलग कर के देखो तो तुम पाओगे फूलों को; तब तुम पाओगे जीवन की ऊर्जा को; तब तुम पाओगे जीवन के अहोभाव को। इतना मिला है, पहले से ही इतना मिला है, शिकायत का उपाय कहां?
और जिसने इतना दिया है, अगर उसने कुछ बचा रखा है, तो उस बचाने में कुछ राज होगा। अगर उसने कुछ बचा रखा है, तो उस बचाने में कोई कारण होगा। शायद मैं अभी तैयार नहीं। शायद अभी योग्यता चाहिए। शायद अभी मैं पात्र नहीं। और समय के पहले कुछ ऊपर आ जाए तो सुख नहीं लाता, दुख लाता है। हर चीज का समय है। हर चीज की परिपक्वता है। जब मैं पकूंगा तब वह देगा। क्योंकि उसके देने का इतना अपरंपार है मार्ग। उसके हाथ हजारों फैले हुए हैं।
हिंदू परमात्मा की हजारों हाथों से कल्पना करते हैं। उस कल्पना में बड़ा प्यार है। वे यह कहते हैं कि वह हजार हाथों से देता है, दो हाथ नहीं हैं उसके। तुम ले न पाओगे, तुम्हारे दो हाथ हैं। तुम कितना संभालोगे? वह हजार हाथों से दे रहा है। लेकिन ठीक समय, समय की ठीक प्र्रतीक्षा, शिकायत का अभाव--और वर्षा होनी शुरू हो जाती है।
नानक कहते हैं, गुणगान भी करते हैं लोग, तो दो-दो कर मांगते चले जाते हैं। और दाता देता ही चला जाता है। और अंधों को दिखाई ही नहीं पड़ता। वे मांगते ही रहते हैं कि दो, और दो। चारों तरफ वर्षा हो रही है और लोग चिल्लाते रहते हैं कि हम प्यासे हैं। जैसे शिकायत से मोह बन गया है। जैसे दुख से लगाव बन गया है।
"फिर उसके आगे क्या रखा जाए कि उसके दरबार का दर्शन हो?"
यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। नानक कह रहे हैं कि उसने इतना दिया है, मांगने को कुछ छोड़ा नहीं। जब शिकायत हट जाती है और अहोभाव पैदा होता है और हम धन्यवाद देने जाते हैं, तो क्या रखें उसके चरणों में? क्या भेंट ले जाएं उसके द्वार पर?
फेरि कि अगै रखीऐ। जितु दिसै दरबारु।।
उसके दरबार में हम क्या रखें? धन्यवाद देने के लिए क्या भेंट ले जाएं? क्या चढ़ाएं उसके चरणों में? कैसे करें पूजा? कैसे करें अर्चना? तुम फूल ले जाते हो तोड़ कर--उसके ही फूल। बेहतर थे वृक्ष पर; जीवित थे। तुमने तोड़ कर मार डाले। उसके ही फूल मार कर तुम उसी के ही चरणों में चढ़ा आते हो। और तुम्हें शर्म भी नहीं आती! तुम उसे दोगे क्या? सब उसका ही दिया हुआ है। तुम धन लगा कर मंदिर खड़ा कर दो, नया गुरुद्वारा बना दो, मस्जिद निर्मित कर दो, पर तुम कर क्या रहे हो? उसकी ही दी हुई चीजों को उसे वापस लौटा रहे हो। फिर भी तुम अकड़े नहीं समाते हो। तुम कहते हो, मैंने मंदिर बनाया। मैंने इतने गुरुद्वारे बनाए। मैंने इतना भोजन बांटा, इतने वस्त्र बांटे। तुम अकड़ते हो। तुम थोड़ा सा दे क्या देते हो, तुम्हारे अहंकार का अंत नहीं होता।
इससे क्या खबर मिलती है? इससे खबर मिलती है कि तुम समझ ही न पाए कि जीवन ने जो तुम्हें दिया है उसे वापस लौटाने में तुम्हारा क्या है? तुम यह भेंट उसे देने जा रहे हो और शर्मिंदा भी नहीं हो।
उसके चरणों में क्या रखें? नानक पूछते हैं, उसके आगे क्या रखें कि उसके दरबार का दर्शन हो? कि हम उसके निकट आ जाएं, कि हमारी भेंट स्वीकार हो जाए। क्या रखें? केसर में रंगे हुए चावल? खरीदे गए फूल? तोड़े हुए पत्ते? धन, दौलत, क्या रखें?
नहीं, कुछ भी रखने से न चलेगा। अगर तुम यह समझ जाओ कि सभी उसका है, बस! भेंट स्वीकार हो गयी। जब तक तुम यह समझ रहे हो कि कुछ मेरा है, तभी तुम रखने की बात सोच रहे हो। जब तक तुम समझते हो मैं खुद मालिक हूं, चाहूं तो भेंट कर सकता हूं, तभी तक तुम भूल से भरे हो। तुम कुछ भी रख दो, सारा साम्राज्य रख

दो अपना, तो भी कुछ तुमने रखा नहीं। क्योंकि सभी उसका था। तुम उसके हो। तुमने जो कमा लिया, तुमने जो इकट्ठा कर लिया, वह भी उसी का खेल है।
तो नानक कहते हैं, क्या रखें कि तेरे दरबार का दर्शन हो? कि तेरी प्रतीति मिले? कि तेरा साक्षात हो? कि तेरी आंख से आंख मिले? क्या लाएं तुझे चढ़ाने को?
अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए कि सभी उसका है, कुछ ले जाने की जरूरत न रही। फूल वृक्षों पर ही उसी को चढ़े हुए हैं। सब उसी को चढ़ा हुआ है। चांद-तारे उसको चढ़े हुए हैं। तुम्हारे घी के दीए क्या करेंगे और अब? चांद-सूरज उसको चढ़े हुए हैं। तुम थोड़े से घी के दीए जला कर चढ़ा दोगे तो क्या होगा? व्यक्ति अगर ठीक से आंख खोल कर देखे तो सारा अस्तित्व उसकी अर्चना में है। यही तो अर्थ है साहब का। वह सब का मालिक है, सब उसको चढ़ा हुआ है।
इसलिए नानक कहते हैं, क्या लाएं? यह प्रश्न है नानक का, क्या चढ़ाएं?
"मुंह से कौन सी बोली बोलें जिसे सुन कर वह प्यार करे?"
क्या कहें उससे? कौन से शब्दों का उपयोग करें? कैसे उसे रिझाएं? कैसे उसे राजी करें? कैसे हम करें कुछ कि उसका प्यार बरसे?
उत्तर नानक नहीं देते मालूम पड़ते हैं। प्रश्न उठा कर छोड़ दिए हैं। वही कला है। क्योंकि वे यह कह रहे हैं कि हम कुछ भी बोलें, वही हम से बोल रहा है। उसके ही शब्द उसी को चढ़ाएं इसमें क्या कुशलता है? उसका ही बासा कर के उसी को लौटा दें? यह सिर्फ अज्ञानी कर सकता है। ज्ञानी तो पाता है कि चढ़ाने को कुछ भी न बचा, क्योंकि मैं खुद भी चढ़ा हुआ हूं। और ज्ञानी पाता है कि कोई शब्द उसकी प्रार्थना न बन सकेंगे, क्योंकि सभी शब्द उसके हैं। वही बोल रहा है। वही धड़क रहा है हृदय में। वही श्वासों की श्वास है। तो फिर ज्ञानी क्या करे?
नानक कहते हैं, "अमृत वेला में सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो।"
कुछ करने को नहीं है और। समझदार क्या करे?
"अमृत वेला में सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो।"
यह थोड़ा समझ लेना जरूरी है। जिसे हिंदू संध्या कहते हैं, उसे नानक ने अमृत वेला कहा है। संध्या से भी कीमती शब्द अमृत वेला है। हिंदू तो हजारों साल से श्रम कर रहे हैं--जीवन के सत्य की खोज, चैतन्य की खोज, और कहां-कहां से मार्ग हो सकते हैं। ऐसा कुछ भी हिंदुओं ने छोड़ा नहीं है, जो छूट गया हो; जो उनकी जानकारी में न आ गया हो। हजारों साल के बाद हिंदुओं को पता चला धीरे-धीरे--उपनिषद उसकी चर्चा करते हैं--कि चौबीस घंटे में दो संध्या क्षण हैं।
रात जब तुम सोने जाते हो तो सोने और जागने के बीच एक क्षण ऐसा है जब न
तो तुम सोए होते हो, न जागे होते हो। उस समय जैसे तुम्हारी चेतना गेयर बदलती है। अगर तुम कार चलाते हो तो तुम्हें पता है कि एक गेयर से दूसरे गेयर में गाड़ी डालते वक्त बीच को क्षण-भर को गाड़ी न्यूट्रल गेयर से गुजरती है। एक गेयर से दूसरे गेयर में जाते वक्त क्षण भर को गाड़ी किसी गेयर में नहीं होती।
नींद और जागरण दो अवस्थाएं हैं; बिल्कुल अलग, एकदम अलग, जागे में तुम कुछ और थे नींद में तुम बिल्कुल कुछ और हो जाते हो। जागते तुम दुखी थे, रो रहे थे, दीन थे, दरिद्र थे; नींद में तुम सम्राट हो जाते हो। और संदेह भी नहीं आता कि मैं भिखारी कैसे सम्राट होने का सपना देख रहा हूं! तुम बिल्कुल दूसरे गेयर में हो। चेतना का बिल्कुल दूसरा तल है, जिसका पहले तल से कोई संबंध न रह गया। नहीं तो थोड़ी तो याद आती। थोड़ा तो स्मरण होता कि मैं भिखमंगा और यह क्या देख रहा हूं कि मैं सम्राट हो गया? नहीं, जब तुम सपना देखते हो, सपने पर पूरा भरोसा आता है। ऐसा लगता है कि बारह घंटे जाग कर तुमने जो जीवन जीया था, वह जीवन अलग प्रकोष्ठ है। और रात तुम सो कर जो जीवन देख रहे हो, वह अलग प्रकोष्ठ है। तुम दूसरी ही दुनिया में चले आए। दिन में तुम साधु थे, रात तुम असाधु हो। कि दिन में असाधु थे, रात साधु हो गए। संदेह भी पैदा नहीं होता। कभी तुम्हें सपने में संदेह पैदा हुआ है? अगर सपने में संदेह पैदा हो जाए तो सपना उसी वक्त टूट जाएगा। क्योंकि संदेह, जागरण चेतना का हिस्सा है। सपने में संदेह भी पैदा नहीं होता। यह भी ख्याल

नहीं आता कि मैं सपना देख रहा हूं। अगर यह ख्याल आ जाए कि यह सपना है तो सपना तत्क्षण टूट जाएगा।
बहुत सी परंपराएं हैं साधकों की, जो साधक को यह सूत्र देती हैं साधना
का कि तुम रात जब सोओ तो यह ख्याल रखो कि यह सपना है... यह सपना है... यह सपना है। कोई तीन साल लग जाते हैं तब कहीं यह याददाश्त मजबूत होती है। और जिस दिन साधक को पता चल जाता है कि यह सपना है, उसी वक्त सपना टूट जाता है। और न केवल एक सपना टूटता है, उसके बाद सपने आने बंद हो जाते हैं। क्योंकि अब उसके गेयर अलग-अलग नहीं रहे। अब उसके प्रकोष्ठ इकट्ठे हो गए। अब वह सोया हुआ भी जागा हुआ है। यही तो कृष्ण कहते हैं कि योगी उस समय भी जागता है जब तुम सोते हो। उसके जो दो कमरे अलग-अलग थे, उसने बीच की दीवाल हटा दी। दोनों कमरे एक हो गए हैं।
रात जब तुम नींद में उतरते हो, और सोने से सुबह फिर तुम जागते हो--ये दो घड़ियां हैं जब तुम्हारी चेतना बदलती है। एक क्षण को मध्य काल होता है। उसको हिंदू संध्या काल कहते हैं। उसी को नानक ने अमृत वेला कहा है। अमृत वेला इसलिए कहा है... संध्या काल तो वैज्ञानिक शब्द है। संध्या का अर्थ है मध्य का; न यहां का, न वहां का; न इसका, न उसका। उस संध्या काल में क्षण भर को तुम परमात्मा के निकटतम होते हो। इसलिए हिंदुओं की प्रार्थना संध्या काल का उपयोग करना चाहती है। उसी को नानक अमृत वेला कह रहे हैं। अमृत वेला और भी प्यारा शब्द है। क्योंकि उस क्षण तुम अमृत के करीब होते हो।
शरीर तो मरणधर्मा है। शरीर के ही एक यंत्र से तुम जागते हो और शरीर के
ही दूसरे यंत्र से तुम सोते हो। सब सपने शरीर के हैं। सब जागना-सोना शरीर का है। इस शरीर के पीछे तुम छिपे हो, जो न कभी सोता है, न कभी जागता है। क्योंकि जो सोया ही नहीं, वह जागेगा कैसे? न कभी सपने देखता है, क्योंकि सपने देखने के लिए सोना जरूरी है। इन शरीर की अवस्थाओं के पीछे छिपा है अमृत; जो न कभी पैदा होता है, और न कभी मरता है।
अगर तुम संध्या काल को पकड़ने में समर्थ हो जाओ तो तुम्हें शरीर के भीतर छिपे हुए अशरीरी का पता चल जाएगा। दास के भीतर छिपे हुए साहब का पता चल जाएगा। तुम दोनों हो। अगर तुम शरीर को ही देखते हो तो दास हो; अगर शरीर के भीतर छिपे मालिक को देखते हो तो साहब हो।
तो नानक कहते हैं कि बस एक ही काम करने योग्य है। मंदिरों में मांगने
से कुछ न होगा। पूजा-अर्चना चढ़ाने से कुछ न होगा। फूल-पत्ते रखने से कुछ न होगा। क्योंकि उसी का उसी को भेंट कर आने में कौन सी कुशलता है? कौन सी बड़ाई है? एक ही करने जैसी प्रार्थना है, एक ही पूजा-अर्चना है, और वह है-- अमृत वेला में सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो।
अमृत वेला सचु नाउ। वडिआई वीचारु।।
वह जो संध्या काल है... लेकिन एक क्षण का है। और तुम्हारा मन कभी भी वर्तमान में नहीं होता। इसलिए तुम उसे चूक जाते हो। रोज वह आता है। हर बारह घंटे के बाद वह घड़ी आती है जब तुम परमात्मा के निकटतम होते हो। लेकिन तुम उसे चूक जाते हो। चूक जाते हो, क्योंकि तुम्हारी नजर उतने बारीक क्षण को पकड़ने में अभी कुशल नहीं है। तुम वर्तमान में होते ही नहीं।
तुम यहां बैठे मुझे सुन रहे हो या कि तुम जा चुके दफ्तर और तुमने काम शुरू कर दिया? या कि तुम अपनी दूकान पर पहुंच गए और तुमने व्यवसाय शुरू कर दिया है? मैं जो कह रहा हूं वह तुम उसे सुन रहे हो या कि उसके संबंध में विचार कर रहे हो? अगर तुम उसके संबंध में विचार कर रहे हो तो तुम यहां नहीं हो। वर्तमान क्षण से तुम चूक जाओगे।
इस अमृत वेला को पकड़ना हो तो प्रतिपल सजगता से जीना जरूरी है। तुम भोजन करो तो सिर्फ भोजन करो और कोई विचार मन में न चले। तुम स्नान करो तो सिर्फ स्नान करो और कोई विचार मन में न चले। तुम दूकान जाओ तो दूकान ही रहे और कोई विचार ही न चले, घर भूल जाए। घर आओ तो दूकान भूल जाए। तुम एक-एक क्षण में जब जाओ तो पूरे वहां रहो, यहां-वहां नहीं। तब धीरे-धीरे तुम्हारी दृष्टि सूक्ष्म होगी और तुम वर्तमान क्षण को, प्रेजेन्ट मोमेंट को देखने में समर्थ हो पाओगे।

इसके बाद ही अमृत वेला में तुम ध्यान कर सकोगे, क्योंकि वह तो बहुत बारीक क्षण है। एक झटके में बीत जाता है। तुम कुछ और सोचते रहते हो, वह उसी वक्त बीत जाता है।
सोने के पहले पड़े रहो बिस्तर पर। सब तरह से मन को शांत कर लो। विचार यहां-वहां न ले जा रहे हों। नहीं तो जब क्षण आएगा, तब तुम वहां मौजूद न रहोगे। तुम किसी चिंता-विचार में खोए हो। सब तरह से अपने को शांत कर लो। मन बिल्कुल सूना हो जाए, वहां कोई विचार न घूमता हो। कोई बादल न घूमता हो। नील गगन जैसा हो जाए मन--खाली, सूना--और देखते रहो; क्योंकि खाली सूना होने के साथ खतरा है कि तुम सो जाओ। देखते रहो भीतर क्या घट रहा है। बराबर तुम एक खटके की आवाज सुनोगे, जैसे गेयर बदल रहा है। पर गेयर बहुत सूक्ष्म है, अगर विचार चल रहे हैं तो तुम सुन ही न पाओगे। बराबर तुम देखोगे कि जैसे रात दिन में बदल रही है, दिन रात में बदल रहा है, सोना नींद बन रहा है, नींद जागना बन रही है; और तुम दोनों से अलग देखने वाले हो। वह देखने वाला ही अमृत है। तुम देखोगे अपने भीतर, जागरण गया इस द्वार से, निद्रा आयी। तुम सुबह पाओगे, नींद गयी, जागरण आया। और जब तुम नींद और जागरण दोनों को देख सकोगे, तुम दोनों से अलग हो गए। तुम द्रष्टा हो गए। यही अमृत क्षण है। इसे नानक कहते हैं, अमृत वेला में बस उसकी महिमा का भाव रहे।
महिमा का अर्थ है, साचा साहब, साचा नाम। बस, उसकी महिमा का भाव रहे। शब्द भी नहीं। अगर तुम जपुजी दोहराते रहे तो भी चूक जाओगे। इसे भी ख्याल में रख लेना कि महिमा का अर्थ शब्द नहीं है। महिमा एक भावदशा है। तुमने अगर कहा कि तू अपरंपार है, तू महान है, तू ऐसा है, वैसा है--इसी बकवास में तुम चूक जाओगे। वह क्षण बारीक है। पर इसे थोड़ा समझना कठिन है।
तुमने कोई भाव जाना? तुम कभी किसी के प्रेम में उतरे? तो क्या जरूरी
है कहना कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं? जब तुम अपने प्रेमी के पास हो तो क्या बार-बार दोहराना जरूरी है कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, कि तुम बड़े सुंदर हो, कि तुमसे सुंदर और कोई भी नहीं? इन शब्दों से तो बातें थोथी और ओछी हो जाती हैं। सच तो यह है कि तुम जब यह कहते हो, तभी प्रेम की महिमा खो गयी। ये शब्द उस महिमा को नहीं ला सकते।
तुम प्रेमी के पास होते हो तो तुम चुपचाप बैठते हो। लेकिन हृदय में एक भाव गूंजता रहता है प्रेमी की महिमा का। वह भाव है, शब्द नहीं। शब्द तो मस्तिष्क में गूंजते हैं, भाव हृदय में गूंजते हैं। तुम पुलकित होते रहते हो, तुम आनंदित होते हो, तुम अकारण प्रसन्न होते हो। कुछ वजह नहीं होती और तुम पाते हो भरे हुए हो। कुछ खाली नहीं है। तुम परिपूर्ण होते हो। और तुम्हारी यह परिपूर्णता, तुम्हारी यह ओवर फ्लोइंग, बाढ़ की तरह तुम्हारी बहती हुई यह प्रेम की धारा प्रेमी अनुभव करता है।
प्रेमियों को तुम सदा चुप पाओगे। पति-पत्नियों को तुम सदा बातचीत करते पाओगे। क्योंकि पति-पत्नी डरते हैं चुप होने से। चुप हुए तो सब संबंध टूट जाता है। बातचीत का ही सब संबंध है। अगर पति चुप है तो पत्नी समझती है, क्यों तुम चुप हो? क्या बात है? अगर पत्नी चुप है तो पति समझता है, कुछ गड़बड़ है। चुप वे होते ही तब हैं जब वे लड़ते हैं। अन्यथा वे बोलते रहते हैं।
इसे थोड़ा सोचना। तुम चुप होते ही तब हो जब तुम्हारा झगड़ा चल रहा है। बातचीत बंद है। लेकिन जब तुम ठीक होते हो तब तुम एकदम बातचीत करते रहते हो। तुम मौन का उपयोग झगड़े के लिए करते हो। और मौन का उपयोग बड़े से बड़े प्रेम के लिए करना है।
जब दो प्रेमी सचमुच प्रेम में होते हैं, वे इतने गदगद होते हैं कि बोलने को कुछ बचता नहीं। आंसू बह सकते हैं। उस गदगद भाव में वे हाथ एक दूसरे के हाथ में ले सकते हैं। वे एक दूसरे के आलिंगन में हो सकते हैं। लेकिन वाणी खो जाएगी। प्रेमी गूंगे हो जाते हैं। बोलना ओछा मालूम पड़ता है। बोलना भी विघ्न मालूम पड़ता है। बोले तो यह जो गहन शांति घिर गयी है, यह टूट जाएगी। बोले तो जो यह तार बंध गया है हृदय का, यह छिन्न-भिन्न हो जाएगा। बोले कि कंप जाएगी सागर की सतह और लहरें उठ आएंगी। इसलिए प्रेमी चुपचाप हो जाते हैं।

उस क्षण में, अमृत वेला में, महिमा का विचार नहीं करना है, शब्द नहीं बांधने हैं, महिमा का भाव करना है। अहोभाव, मूकभाव, कि परमात्मा ने सब दिया है। और तुम भरे-पूरे हो। कुछ भी नहीं चाहिए। और तुमसे धन्यवाद बह रहा है। "हम मुंह से कौन-सी बोली बोलें कि जिसे सुन कर वह प्यार करे।"
कुछ बोलने को नहीं है। उससे हम क्या कहेंगे? सब कहना व्यर्थ है।
"सत्य नाम की महिमा का ध्यान करो।"
सत्य नाम से भर जाओ। और तुम पाओगे एक तालमेल हो गया। उस बीच के क्षण में, जब दिन जा रहा है, रात आ रही है; जागरण जा रहा है, निद्रा आ रही है; तुम सजग हो गए। तुम चौंक जाओगे। तुम पाओगे तुम प्रकाश की एक लपट हो गए। जिसका न कोई प्रारंभ है न कोई अंत है। जो सदा सच है, जो शाश्वत है। उस लपट में ही जीवन के द्वार खुलते हैं और उस प्रकाश में ही सत्य जो छिपा है, अनावृत होता है।
"कर्म से शरीर मिलता है।"
तब उस घड़ी में तुम जानोगे कि कर्म से शरीर मिलता है।
"और कृपा-दृष्टि से मोक्ष का द्वार खुलता है।"
यह जो शरीर है, यह तुम्हारे किए हुए का फल है। यह तुमने कर-कर के पाया है। यहां कई बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बातः कुछ चीजें हैं जो तुम कर के पा सकते हो, कुछ चीजें हैं तुम कर के कभी नहीं पा सकते हो। क्षुद्र को कर के पाया जा सकता है। विराट को कर के नहीं पाया जा सकता। कबीर ने कहा है, अनकिए सब होय। उस विराट को पाने के लिए तो तुम्हें अनकिए की अवस्था में होना चाहिए। तुम सब पा सकते हो जो क्षुद्र है, कर्तृत्व से। जो विराट है वह अकर्तृत्व से उपलब्ध होता है। दोनों की दिशा अलग है। स्वाभाविक भी है, तर्कयुक्त भी है।

मैं जो भी करूंगा वह मुझसे बड़ा नहीं हो सकता। कैसे होगा? कृत्य कभी कर्ता से बड़ा हुआ है? मूर्ति कभी मूर्तिकार से बड़ी हुई है? कविता कभी कवि से बड़ी हुई है? यह असंभव है। जो तुमसे निकलेगा वह तुमसे छोटा हो सकता है। ज्यादा से ज्यादा तुम्हारे बराबर हो सकता है। लेकिन तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम परमात्मा को कैसे पाओगे? तुम्हारे कर्तृत्व से कुछ भी न होगा। और तुम जितनी पाने की कोशिश करोगे, उतने ही तुम भटकोगे।
इसी भटकाव को छिपाने के लिए तो हमने मूर्तियां गढ़ ली हैं मंदिरों में। मूर्ति हम गढ़ सकते हैं। परमात्मा को गढ़ने का तो कोई उपाय नहीं है। परमात्मा हमें गढ़ता है, मूर्ति हम गढ़ते हैं। परमात्मा हमें बनाता है, मंदिर हम बनाते हैं। मंदिर क्षुद्र है। वह तुम्हारे हाथ की कृति है। तुम्हारी कृति में विराट कैसे पाया जा सकेगा? तुम्हारी कृति तुमसे बड़ी न होगी। तुम्हारी कृति में तुम ही तो रहोगे, तुम्हारे ही हाथ की छाप होगी, उस पर परमात्मा का हस्ताक्षर नहीं हो सकता।
हां, तुम्हारी कृति में भी कभी-कभी परमात्मा का हस्ताक्षर हो सकता है--जब तुम उसके हाथों में अपने को छोड़ दो; वह करे और तुम केवल उपकरण हो जाओ।
बिड़ला के मंदिर में तुम उसको न पा सकोगे। वह मंदिर बिड़ला का है। उसका भगवान से क्या लेना-देना? अगर वह भगवान का मंदिर होता, तो बिड़ला का कैसे हो सकता था? हिंदू के मंदिर में तुम उसे न पा सकोगे, वह हिंदू का मंदिर है। अगर वह परमात्मा का मंदिर होता, तो हिंदू का मंदिर उसे क्यों तुम कहते? सिक्ख के गुरुद्वारे में तुम उसे न पा सकोगे, वह सिक्ख का गुरुद्वारा है। परमात्मा के मंदिर का कोई नाम नहीं हो सकता। वह अनाम है, उसका मंदिर
भी अनाम होगा। तुम जो भी बनाओगे, कितना ही सुंदर बना लो, स्वर्ण मंदिर बना लो, लेकिन आदमी के हाथ की छाप वहां होगी। तुम्हारा मंदिर दूसरे मंदिरों से बड़ा हो, तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम्हारे मंदिर में तभी वह प्रगट हो सकता है जब तुम बिल्कुल अप्रगट हो जाओ। तुम्हारी छाप ही न मिले।
अभी तक हम जमीन पर ऐसा मंदिर बनाने में समर्थ नहीं हो सके जिसमें आदमी
के हाथ की छाप न हो। सब मंदिर किसी के हैं। बनाने वाला बहुत प्रगाढ़ हो कर वहां है। कोई मंदिर उसका नहीं है। सच तो यह है कि उसके मंदिर बनाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि यह सारा अस्तित्व उसका मंदिर है। पक्षियों में वह

कल-कल कर रहा है। वृक्षों में फूल खिला रहा है। हवाओं में बह रहा है। नदियों में उसी का शोर है। गगन उसी का विस्तार है। तुम उसी में उठी हुई लहरें हो। उसका मंदिर तो बड़ा है। तुम कैसे छोटे मंदिर में उसे समाओगे? आदमी कर्म से बहुत कुछ कर सकता है। पश्चिम उसका प्रतीक है। उन्होंने कर्म से बहुत कुछ कर लिया है। अच्छे रास्ते बना लिए, अच्छे मकान बना लिए। वैज्ञानिक उपकरण खोजे। हाइड्रोजन बम बना लिया। मौत का बड़ा आयोजन कर लिया, सब कर लिया। लेकिन परमात्मा से बिल्कुल वंचित हो गए।
और जितना-जितना उन्होंने कृत्य किया, जो-जो चीजें अकर्ता भाव से पैदा होती हैं, वे सब खो गयीं। सबसे पहले पश्चिम से परमात्मा खो गया। तो नीत्से ने सौ साल पहले घोषणा की, गाड इज डेड, ईश्वर मर चुका। पश्चिम के लिए निश्चित मर गया। क्योंकि जब तुम कर्म से बहुत भर गए, तो उससे तुम्हारा सारा संबंध टूट गया, मरे के बराबर हो गया। पहले ईश्वर खो गया और जब ईश्वर खो गया तो प्रार्थना थोथी हो गयी। ध्यान ओछा हो गया। कुछ सार न रहा। किसका ध्यान? कैसा ध्यान? किसलिए? कर्म सब कुछ हो गया। ध्यान तो अक्रिय अवस्था है, जब तुम कुछ भी नहीं करते।
इसलिए पश्चिम में लोग सोचते हैं, पूरब के लोग काहिल हैं, सुस्त हैं। नानक के पिता भी यही सोचते थे कि नानक काहिल और सुस्त है। बैठा-बैठा क्या कर रहा है? पिता के पास व्यवसायी की बुद्धि थी, तो लगता था कि यह लड़का एक उपद्रव है। न कुछ काम करता न कुछ धाम करता, न कुछ कमाता; इसके भविष्य के संबंध में पिता चिंतित थे। कई बार काम खोजे। सब जगह से बेकाम हो कर लौट आया। कुछ नहीं सूझा। पढ़ा-लिखा नहीं, क्योंकि पंडित से विवाद हो गया। और पंडित खुद आ कर लड़के को वापस पहुंचा गया कि अपने बस के बाहर है। क्योंकि यह कहता है, आखिरी शब्द हो गया अब और क्या बचा? और पंडित को भी लगा कि कहता तो ठीक है कि अब इसके पार और क्या पढ़ने को है? और नानक ने पूछा, और पढ़-पढ़ कर क्या होगा? और पढ़-पढ़ कर क्या उसको पाया जा सकता है? तुमने उसे पा लिया? पंडित ने कहा कि पढ़-पढ़ कर तो उसे नहीं पाया जा सकता। मैंने भी उसे पाया नहीं। तो नानक ने कहा, फिर हम वही रास्ता खोजेंगे जिससे उसे पाया जा सकता है।
कबीर कहते हैं--
पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।
तो नानक ने कहा कि हम भी वही ढाई अक्षर पढ़ेंगे, जिसको पढ़ कर लोग ज्ञान
को उपलब्ध हो जाते हैं। अब हम यह इतना लंबा किसलिए पढ़ें!
इस पढ़ाई का तो प्रयोजन भी दूसरा है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने स्कूल जाता था बच्चों को पढ़ाने। अपने गधे पर बैठ कर जाता था। कई वर्षों से उसी गधे पर आ-जा रहा था। स्कूल की हवा गधे को भी लग गयी। एक दिन रास्ते में गधे ने पूछा, मुल्ला! स्कूल किसलिए रोज जाते हो?
मुल्ला पहले तो डरा। फिर उसने सोचा कि कई मैंने बोलने वाले गधे देखे हैं, तो यह गधा भी बोलने वाला गधा मान लेना चाहिए। घबड़ाने की इतनी कोई जरूरत नहीं है। फिर लगता है इसको स्कूल की हवा लग गयी है। गधा बोलने लगा है। अपनी ही भूल है। रोज स्कूल ले जाते रहे, हवा लग गयी।
मुल्ला ने पूछा, क्या करेगा जान कर?
उस गधे ने कहा, मैं जानना चाहता हूं कि रोज स्कूल क्यों जाते हो? जिज्ञासा उठ गयी है।
मुल्ला ने कहा, स्कूल पढ़ाने जाता हूं।
गधे ने पूछा, पढ़ने से क्या होगा?
मुल्ला ने कहा, अक्ल आती है पढ़ने से।
गधे ने पूछा, अक्ल से क्या होगा?
मुल्ला ने कहा, अक्ल से क्या होगा? अक्ल से मैं तुझ पर सवार हूं।
तो गधे ने कहा, फिर मुल्ला, मुझे भी पढ़ा दो और अक्ल दे दो।
मुल्ला ने कहा, ना भाई। क्योंकि फिर तू मुझ पर सवार हो जाएगा। हरगिज नहीं।

इस दुनिया में तो हम जो पढ़ रहे हैं, वह एक-दूसरे पर सवारी करने के उपाय हैं। यहां पढ़ना तुम्हारे संघर्ष का आयोजन है। तुम ठीक से लड़ सकोगे अगर तुम्हारे पास डिग्रियां हैं। तुम दूसरों के कंधों पर सवार हो सकोगे अगर तुम्हारे पास डिग्रियां हैं। ये विद्यालय तुम्हारे हिंसा के फैलाव हैं। इनके कारण तुम ज्यादा कुशलता से शोषण कर सकोगे। दूसरों को व्यवस्था से सता सकोगे। कानून से जुर्म कर सकोगे। नियम से, विधि से वह सब कर सकोगे जो कि नहीं करना चाहिए। सारी पढ़ाई-लिखाई बेईमानी का प्रशिक्षण है। तुम लोगों पर सवार हो सकोगे। इससे कभी कोई ज्ञानी तो नहीं हुआ। इससे ही तो लोग अज्ञानी होते चले जाते हैं। हमारे विद्यालय अविद्यालय हैं। वहां ज्ञान तो कभी घटता नहीं।
तो नानक को उनके स्कूल का अध्यापक पंडित छोड़ गया घर, कि यह अपने बस के बाहर है।
नानक का जनेऊ हो रहा था, तो सारा समारंभ हो गया था। सब लोग आ गए थे। बैंड-बाजे बज चुके थे, पंडित सूत्र पढ़ चुका था। फिर वह गले में जनेऊ डालने लगा तो नानक ने कहा, रुको! इस जनेऊ के डालने से क्या होगा? उस पंडित ने कहा कि इस जनेऊ के डालने से तुम द्विज हो जाओगे। नानक ने पूछा कि द्विज का क्या अर्थ है? द्विज का अर्थ है कि दुबारा जन्म। क्या इस सूत के धागे को डाल लेने से मेरा दुबारा जन्म हो जाएगा? क्या मैं नया हो जाऊंगा? क्या पुराना मर जाएगा और नए का जन्म हो जाएगा? अगर यह होता हो तो मैं तैयार हूं।
पंडित भी डरा। क्योंकि माला गले में डाल लेने से जनेऊ की क्या होने को है? फिर नानक ने पूछा कि यह जनेऊ अगर टूट गया तो? उसने कहा कि बाजार में और मिलते हैं। इसको फेंक देना, दूसरा ले लेना। तो नानक ने कहा कि फिर यह रहने ही दो। जो खुद ही टूट जाता है, जो बाजार में बिकता है, जो दो पैसे में मिल जाता है, उससे उस परमात्मा की क्या खोज होगी? जिसको आदमी बनाता है, उससे परमात्मा की क्या खोज होगी! आदमी का कृत्य छोटा है।
नानक के पिता कालू मेहता को यही लगता था, यह लड़का बिगड़ गया है। सब उपाय
कर डाले। फिर कुछ रास्ता न बचा तो गांव में आखिरी उपाय रहता है कि इसको घर के गाय-भैंस चराने भेज दो। नानक को भेज दिया गाय-भैंस चराने। वे बड़े खुशी से गए, वहां ध्यान लग गया, वृक्ष के नीचे महिमा में डूब गए। गाय-भैंस पड़ोसियों के खेत चर गयीं। दूसरे दिन वह भी रोक देना पड़ा। आखिर बाप को पक्का हो गया कि इससे कुछ होना-जाना नहीं है।
यह बड़े मजे की बात है कि इस दुनिया में जो लोग कुछ कर पाते हैं वे उस दुनिया से वंचित रह जाते हैं। और जो उस दुनिया को पाने के हकदार होते हैं, करीब-करीब इस दुनिया में कुछ भी करने में समर्थ नहीं होते। ऐसा नहीं कि उनसे कुछ होता नहीं, लेकिन उनके होने का ढंग और गुण अलग है। वे उपकरण हो जाते हैं। उनसे बहुत कुछ होता है।
क्या हो जाता अगर नानक ठीक से गाय-भैंस को चरा कर भी लौट आते? बहुत से लोग लौट रहे हैं। क्या हो जाता दुनिया में? क्या होता कि नानक एक दूकान ठीक से चला लेते? बहुत सी दूकानें ठीक से चल रही हैं। लेकिन कृत्य के जगत से हट कर यह व्यक्ति महिमा के जगत में डूब गया।
महिमा का अर्थ है, करने वाला तू है। महिमा का अर्थ है कि मैं क्या कर सकूंगा। और जैसे ही तुम्हें यह लग जाता है कि मैं क्या कर सकूंगा, तुम्हारा अहंकार बूंद-बूंद खोने लगता है। जिस दिन तुम्हें परिपूर्णता से यह प्रतीति हो जाती है कि मैं असमर्थ हूं, मेरे किए कुछ भी न होगा, मैं असहाय हूं, उसी क्षण मोक्ष का द्वार खुल जाता है।
नानक कहते हैं, कर्म से शरीर मिलता है, संसार मिलता है। कृपा-दृष्टि
से मोक्ष का द्वार प्राप्त होता है। नानक कहते हैं, इस प्रकार जानो कि सत्य ही, परमात्मा ही सब कुछ है।
"परमात्मा न तो स्थापित किया जा सकता है"--इसलिए मंदिर कैसे बनाओगे?
"न निर्मित किया जा सकता है"--इसलिए मूर्तियां कैसे गढ़ोगे? "वह निरंजन आप में ही सब कुछ है।" तुम्हें उसे बनाने की जरूरत नहीं है। तुम नहीं थे तब भी था, तुम नहीं होओगे तब भी रहेगा। आदि सचु जुगादि सचु। तुम उसको बनाने की फिक्र छोड़ो। पूजा, मंदिर, मूर्ति, इनसे कुछ होने वाला नहीं है। फिर किससे होगा?

"जिन्होंने उसकी सेवा की, आराधना की, वे महिमा को प्राप्त हुए।"
अगर वही सब कुछ है तो सेवा ही प्रार्थना है। अगर वही सब कुछ है तो सेवा
ही आराधना है। अगर वही सब कुछ है, उसका ही फैलाव है, तो तुम जितनी सेवा में रत हो जाओ, तुम उतने ही उसके निकट पहुंच गए। वृक्ष प्यासा है, पानी डाल दो। गाय भूखी है, घास रख दो। तुम उसी के सामने घास रख रहे हो और तुम उसी की जड़ों में पानी डाल रहे हो।
बड़ी संवेदनशीलता चाहिए प्रार्थना करने के लिए। छोटे-मोटे मंदिर से नहीं होगा। वे तो तरकीबें हैं प्रार्थना से बचने की। यह मंदिर बड़ा है और विराट सेवा की भावदशा चाहिए। क्योंकि वही है।
जीसस ने कहा है... जब जीसस को सूली लगने का वक्त आया तो उनके साथियों ने, संगियों ने पूछा, अब हम क्या करेंगे? जीसस ने कहा, तुम फिक्र मत करो। अगर तुम भूखे को पानी पिलाओगे तो मेरे कंठ में पानी पहुंचेगा। अगर तुम दीन की सेवा करोगे तो तुम मुझे वहां छिपा पाओगे। और जीसस ने कहा है, अगर तुम नाराज हो और किसी से तुमने अपशब्द कहे हैं और किसी पर तुम क्रोधित हुए हो, तो मंदिर आने में अभी कोई सार नहीं है। अगर तुम मंदिर में भी आ गए हो, तुमने घुटने भी टेक दिए और तुम्हें याद आता है कि तुम किसी के प्रति नाराज हो, तो उठो, पहले उससे क्षमा मांग आओ। क्योंकि जब तक उसने क्षमा नहीं कर दिया है, तब तक प्रार्थना कैसे होगी?
चारों तरफ फैला है वही। इसलिए नानक कहते हैं, "जिन्होंने उसकी सेवा की, आराधना की, वे महिमा को प्राप्त हुए।"
कैसी आराधना? सेवा! सेवा शब्द महत्वपूर्ण है। वह जितने गहरे तुम्हारे भीतर उतर जाए उतना अच्छा। लेकिन एक बात ध्यान रखनी जरूरी है, वह फर्क की बात है। तुम जिसकी सेवा कर रहे हो वह परमात्मा है, यह धारणा उसमें महत्वपूर्ण है।
तुम ऐसे भी सेवा कर सकते हो कि दीन है, गरीब है, बेचारे की सेवा कर दो।
जब तुम किसी बेचारे की सेवा करते हो तब तुम ऊपर हो, बिचारा नीचे है। तुम कृपा कर रहे हो, सेवा नहीं। फिर यह साधारण सामाजिक सेवा है। यह सेवा आराधना नहीं है। तुम एक सोशल वर्कर हो। लायन्स क्लब के मेंबर हो, कि रोटेरियन हो; कि वी सर्व, सेवा हमारा लक्ष्य है। मगर तुम बड़ी अकड़ में हो। तुम एक छोटा अस्पताल बना देते हो तो तुम भारी प्रोपेगंडा मचाते हो। सामाजिक सेवा आराधना नहीं है। सामाजिक सेवा में तो तुम टुकड़े फेंक रहे हो भूखों के लिए। बड़ी दया कर रहे हो। एहसान कर रहे हो। तुम ऊपर हो, जिसकी तुमने सेवा की वह नीचे है। और उसे अनुगृहीत होना चाहिए। तब यह आराधना न रही।
सेवा तब आराधना बनती है जब तुम जिसकी सेवा कर रहे हो, वह परमात्मा है।
वह साहब है, तुम दास हो। और अनुगृहीत वह नहीं है, तुम हो, कि उसने मौका दिया। तुमने एक गरीब को रोटी दी और धन्यवाद भी दो।
पुराना हिंदुओं का नियम है कि जब किसी ब्राह्मण को भिक्षा दो, फिर दक्षिणा भी दो। यह दक्षिणा क्या है? उसने भिक्षा ग्रहण की, इसका धन्यवाद है। वह ग्रहण न करता तो तुम क्या करते? तो पहले भिक्षा दो, फिर दक्षिणा दो। दक्षिणा का अर्थ है कि तुम्हारी बड़ी कृपा कि तुमने स्वीकार की मेरी सेवा। जिस दिन तुम अनुगृहीत अनुभव करोगे उसके, जिसकी तुमने सेवा की है, तब आराधना बन गयी। तब सेवा सामाजिक बात न रही, एक धार्मिक कृत्य हो गया।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना। अगर तुम सेवा से अकड़ गए और सेवक हो गए, तो
यह नानक की आराधना न हुई। सेवा तुम्हें विनम्र करेगी। सेवा दीन को परमात्मा करेगी, तुम्हें दास बनाएगी। जो बिल्कुल पीछे खड़ा है वह प्रथम हो जाएगा और तुम पीछे खड़े हो जाओगे। और सेवा का अर्थ है कि जो भी तुम्हें सेवा का मौका दे, तुम उसके धन्यवादी हो।
"वह निरंजन आप ही सब कुछ है।"
थापिया न जाई कीता न होई। आपे आप निरंजन सोई।।
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु।
"और जिन्होंने की सेवा उन्हें बड़ा मान मिला, बड़ी महिमा मिली।"
यह मान तुम्हारा अहंकार नहीं है। क्योंकि यह मान तो तभी मिलेगा जब तुम्हारा अहंकार मर जाएगा।

"तब वे बड़े प्रकाशित हुए।"
तब उनमें बुद्धत्व प्रकट हुआ। तब उनके घर का अंधेरा मिट गया और दिया जला।
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु।
"नानक कहते हैं कि उस गुणनिधान का भजन करो। उसका ही भजन करो, श्रवण करो, उसका ही भाव मन में रखो। इस प्रकार दुख से छूट कर सुख घर ले जाओगे।" उस गुणनिधान का भजन, श्रवण, उसका ही भाव। तुम जो भी करो, उसे परमात्मा
को समर्पित कर दो, तभी यह हो पाएगा। दूकान पर बैठो और ग्राहक आए, तो तुम ग्राहक को मत देखो, उसको ही देखो। और ग्राहक के साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा परमात्मा आया होता तो तुम उससे व्यवहार करते। क्योंकि चौबीस घंटे अगर उसके भाव में डूबना है, तो इसके सिवाय कोई उपाय नहीं। भोजन करो, तो वही भोजन से तुम में प्रवेश कर रहा है। इसलिए हिंदुओं ने कहा, अन्नं ब्रह्म, अन्न ब्रह्म है। तुम ऐसे ही भोजन मत करो। क्योंकि वही खिला है। वही अनाज बना है। तुम बड़े अनुग्रह भाव से उसे ग्रहण करो। और भोजन को, अन्न को जब तुम ब्रह्म मान लोगे--पानी पीओगे और वही पानी में आया है तुम्हारी प्यास को तृप्त करने को--तभी तो चौबीस घंटे उसका भजन होगा। नहीं तो कैसे होगा?
तुम जा कर गुरुद्वारा में, मंदिर में घड़ी भर भजन कर आओगे। लेकिन जब तुम भजन कर रहे हो तब भी मन भागा-भागा है। तब भी तुम बीच-बीच में घड़ी देख लेते हो कि समय ज्यादा हुआ जा रहा है। दूकान खोलने का वक्त हुआ जा रहा है। तुम कैसे उसका भजन करोगे? खंड-खंड भजन नहीं किया जा सकता कि सुबह कर लिया, कि सांझ कर लिया, और चौबीस घंटे साधारण हो गए।
धार्मिक होना चौबीस घंटे का कृत्य है, भाव है। इसे तुम कभी-कभी नहीं
कर सकते। न कोई धार्मिक दिवस है और न कोई धार्मिक घड़ी है। समस्त जीवन उसी का है। सब क्षण उसी के हैं। तो तुम इस ढंग से जीयो--धर्म जीने की एक अलग शैली है--तुम इस ढंग से जीयो कि तुम जो भी करो, वह किसी न किसी रूप में परमात्मा से संयुक्त हो जाए।
नानक कहते हैं, "उस गुणनिधान का भजन करो। उसका ही भजन, श्रवण उसका ही, भाव उसका ही।"
तुम मुझे यहां सुन रहे हो। तुम ऐसे सुन सकते हो जैसे कोई बोलने वाला बोल रहा है, और तुम ऐसे भी सुन सकते हो कि परमात्मा की आवाज आ रही है। और तत्क्षण तुम्हारे जीवन में फर्क शुरू हो जाएगा। उसका ही भाव मन में रखो। "इस प्रकार दुख से छूट कर सुख घर ले जाओगे।"
और तब चौबीस घंटे के बाद, मेहनत श्रम के बाद जब तुम घर लौटोगे तो दुख
की जगह सुख ले जाओगे। अभी तुम दुख लाते हो। अभी ग्राहक तुम्हें लूट ले गया। किसी ने तुम्हारी जेब काट ली। अभी तुमने जो भी खाया वह ठीक न था, शिकायत रही। तुमने जो भी पहना सुंदर न था, मजबूरी रही। अभी तुम दुख इकट्ठा करते हो। अगर तुम्हें परमात्मा सब तरफ दिखाई पड़ने लगे और तुम जो भी करो उस सब में उसकी झलक मिलने लगे, तो नानक कहते हैं, तुम सुख घर ले जाओगे।
और न केवल इस साधारण घर तुम सुख ले जाओगे, मरने के वक्त जब असली घर जाने लगोगे, तब तुम सुख ही सुख ले जाओगे। तुम आपूर जाओगे। तुम भरे-पूरे जाओगे। तब तुम रोते-रोते नहीं, नाचते-नाचते जाओगे।
और मृत्यु अगर नृत्य न बन जाए तो समझ लेना कि जीवन व्यर्थ गया। अगर मृत्यु एक आनंद, उत्सव न बन जाए तो समझ लेना कि जीवन व्यर्थ गया। क्योंकि तुम घर लौट रहे हो। और घर जाते वक्त भी हृदय तुम्हारा आनंद से भरा हुआ नहीं है, तुमने जीवन में सिर्फ दुख ही दुख इकट्ठे किए हैं।
नानक गावीऐ गुणीनिधानु।
गावीऐ सुणीऐ मनि राखीऐ भाउ। दुख परहरि सुखु घर लै जाउ।।
"दुख से छूट कर तुम सुख घर ले जाओगे।"
अगर तुम दुखी हो तो सिर्फ इसीलिए कि तुम परमात्मा को छोड़ कर जिंदगी चला रहे हो। उसे तुमने बाद कर रखा है। तुम अपने को ज्यादा होशियार समझ रहे हो। तुम जरूरत से ज्यादा अपने पर भरोसा कर रहे हो। इसलिए दुखी हो। दुख का और कोई कारण नहीं है।

और सुख का भी और कोई कारण नहीं है। जिस दिन तुम अपनी अक्लमंदी, अपनी होशियारी छोड़ दोगे और उसे देखने लगोगे; और ज्यादा उसमें जीयोगे कम अपने में; और धीरे-धीरे पूरे उसमें जीयोगे, कम अपने में... ।
क्या जरूरत है कि पत्नी में तुम पत्नी देखो, क्यों न परमात्मा देखो? क्या जरूरत है तुम अपने बेटे में, बेटे को अपना देखो, क्यों न परमात्मा का बेटा देखो? जैसे ही दृष्टि बदलती है, वैसे ही सुख आना शुरू हो जाता है। कल अगर तुम्हारा बेटा मर जाएगा तो तुम दुखी होओगे। इसलिए नहीं कि बेटा मर गया, इसलिए कि तुम्हारी दृष्टि भ्रांत थी। तुम सोचते थे, मेरा बेटा। अगर तुमने पहले से ही जाना होता कि परमात्मा का बेटा; तो तुम कहते कि जब उसकी मर्जी थी भेजा, जब उसकी मर्जी हुई उठा लिया। उसका हुक्म। और तुम हर हालत में राजी रहोगे। क्योंकि उसका बेटा था, उसने भेजा। जितने दिन भेजा, उतनी कृपा। शिकायत किससे करनी है? जब उठा लिया उसकी मर्जी। हमारा कुछ है ही नहीं। सब कुछ उसी का है। फिर तुम कैसे रोओगे? कैसे चिंतित होओगे? कैसे संताप करोगे? दे, तो तुम राजी रहोगे। ले ले, तो तुम राजी रहोगे। क्योंकि उसके रास्ते अनूठे हैं। कभी वह तुम्हें देता है और देने के द्वारा तुम्हें निर्मित करता है। और कभी ले लेता है और लेने के द्वारा तुम्हारा विकास करता है। कभी जरूरत होती है कि तुम्हें दुख मिले, क्योंकि दुख तुम्हें चेताता है, होश लाता है। सुख में तो तुम सो जाते हो, खो जाते हो। दुख में तुम जाग आते हो।
एक सूफी फकीर हुआ। हसन उसका नाम था। उसके शिष्य ने एक दिन पूछा कि सुख
है, यह तो समझ में आता है, क्योंकि परमात्मा है, वह पिता है, वह सुख दे रहा है। लेकिन दुख क्यों? दुख समझ में नहीं आता। हसन अपनी नाव में बैठा था और दूसरी पार जा रहा था। उसने शिष्य को भी नाव में बिठा लिया, कुछ बोला नहीं। और एक ही चप्पू से उसने नाव चलानी शुरू कर दी। वह नाव गोल-गोल घूमने लगी। उस युवक ने कहा, आपका दिमाग तो खराब नहीं हो गया है? अगर एक ही चप्पू से नाव चलायी तो हम यहीं भटकते रहेंगे। इसी किनारे पर गोल-गोल घूमते रहेंगे। दूसरा चप्पू खराब है? या आपका हाथ काम नहीं कर रहा? या हाथ में दर्द है तो मैं चलाऊं! हसन ने कहा, तू तो समझदार है। मैं तो समझा कि नासमझ है। अगर सुख ही सुख होगा, नाव वर्तुल में घूमती रहेगी। कहीं पहुंचेगी नहीं। उसको साधने के लिए विपरीत चाहिए। दो चप्पुओं से नाव चलती है। दो पैर से आदमी चलता है। दो हाथ से जीवन चलता है। रात और दिन चाहिए। सुख और दुख चाहिए। जन्म और मृत्यु चाहिए। अन्यथा नाव घूमती रहेगी, भंवर बन जाएगी। तुम कहीं पहुंचोगे ही नहीं।
जब कोई ठीक से देखना शुरू करता है कि सभी में वही है, तब तुम उसके दुख
को भी अहोभाव से अंगीकार करते हो। तब तुम उसके सुख को भी अंगीकार करते हो, उसके दुख को भी। जब तुम दोनों को समान भाव से अंगीकार करते हो, तब न तो सुख सुख रह जाता है, न दुख दुख रह जाता है। उनकी भेद-रेखा खो जाती है। और जब तुम दोनों को समभाव से देखते हो, तुम्हारा लगाव सुख से ज्यादा और दुख का विरोध टूट जाता है, तुम तत्क्षण अलग हो जाते हो। तुम तीसरे हो जाते हो। तुम साक्षी भाव को उपलब्ध हो जाते हो। दुख से छूट कर तब तुम सुख घर ले जाओगे। "गुरुवाणी ही नाद है और गुरुवाणी ही वेद है। वह परमात्मा गुरुवाणी में ही समाया हुआ है। गुरु शिव, गुरु विष्णु, गुरु ही ब्रह्मा है। जो भी मैं जानता हूं, यदि मैं उसे पूरा भी जानता तो भी उसका वर्णन नहीं कर सकता हूं। क्योंकि वह कथन द्वारा नहीं कहा जा सकता। लेकिन एक गुर से सारी पहेली हल हो जाती है। और वह गुर है कि सभी प्राणियों का एक ही दाता है। उसे मैं न भूल जाऊं।"
इन्हें थोड़ा समझने की कोशिश करें। नानक ने गुरु को बड़ी महिमा दी है। सारे संतों ने गुरु को बड़ी महिमा दी है। शास्त्रों से ऊपर गुरु को रखा है। अगर गुरु कुछ कहे और वेद में न मिले, तो वेद छोड़ दो। क्योंकि गुरु की वाणी वेद है। अगर गुरु कुछ कहे और शास्त्र-संगत न हो, तो किसको छोड़ोगे? शास्त्र को छोड़ दो। क्योंकि गुरु जीवित शास्त्र है। गुरु का इतना मूल्य संतों ने किसी कारण से दिया है।
कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात, वेद भी गुरुओं के वचन हैं। लेकिन वे गुरु अब मौजूद नहीं हैं। और न ही वचन शुद्ध रह गया है। न वचन

शुद्ध रह सकता है। क्योंकि संगृहीत करने वाले अपने विचारों को मिलाएंगे ही। वह उनकी मजबूरी है। वे जान कर मिलाते हैं, ऐसा भी नहीं है। वे मिलाएंगे ही। तुमसे अगर मैं कोई बात कहूं और कहूं कि तुम जा कर पड़ोसी को कह दो; बीच में बात से कुछ गिर जाएगा, कुछ जुड़ जाएगा। बात का ढंग बदल जाएगा। अगर तुम शब्द भी वही उपयोग करो, शत प्रतिशत जो मैंने कहे, तो भी टोन, कहने का ढंग, एम्फेसिस बदल जाएगी। फिर तुम जब बोलोगे, तो तुम्हारा अनुभव, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारी समझ उन शब्दों में भर जाएगी।
मैं तुम्हें फूल दे दूं हाथ में, तुम उस फूल को अपने हाथ में ले जाओ किसी को देने, लेकिन तुम्हारे शरीर की गंध भी वह फूल पकड़ लेगा। जैसे तुम्हारा हाथ फूल की गंध को पकड़ता है, वैसा फूल तुम्हारे शरीर की गंध को पकड़ेगा। वह फूल वही नहीं रह गया जो मैंने दिया था। और अगर हजारों हाथों से फूल गुजरा, तो हजार शरीरों की गंध पकड़ जाएगी। और अगर दुबारा वह फूल मेरे पास आए तो मैं भी पहचान न पाऊंगा कि यह वही फूल है जो मैंने दिया था। न तो इसमें अब वह गंध रह गयी होगी जो मैंने दी थी। क्योंकि वह खो गयी हजारों हाथों में लग-लग कर। और यह हजारों हाथों की दुर्गंध इकट्ठी कर लाएगा। न इसकी शक्ल वह रह जाएगी जो मैंने दी थी। वह टूट-फूट जाएगा, इसकी पंखुरियां गिर जाएंगी। अधूरा फूल मेरे पास न लाया जाए, इसलिए लोग दूसरी पंखुरियां इसमें जोड़ लाएंगे, ताकि फूल पूरा हो जाए।
वेद गुरु वचन हैं। जिन्होंने जाना उन्होंने कहा। लेकिन फिर हजारों- हजारों साल बीत गए। उसमें बहुत कुछ जुड़ गया, बहुत कुछ हट गया। इसलिए जीवित गुरु को खोज लेना परम सौभाग्य है। किताब तो बासी हो ही जाएगी।
फिर और बड़े मजे की बात है कि किताब को जब तुम पढ़ोगे, तो तुम ही तो उसका अर्थ निकालोगे। अर्थ कौन निकालेगा? तुम ही पढ़ोगे, तुम ही अर्थ निकालोगे।
अर्थ तुम से तो ज्यादा नहीं हो पाएगा। तुम्हारी समझ से पार नहीं हो पाएगा।
तुम अपने ही अर्थ को किताब पर आरोपित कर दोगे।
तो किताब तुम्हारी गुरु नहीं हुई, तुम ही गुरु हो गए किताब के।
शास्त्र को तुमने नहीं पढ़ा, तुम शास्त्र को ही पढ़ाने लगे। इसीलिए तो इतनी व्याख्याएं हैं। गीता की हजारों व्याख्याएं हैं। जो पढ़ता है, अपना अर्थ करता है। कृष्ण खड़े नहीं हैं बीच में कि रोकें; कि भाई, यह मेरा अर्थ नहीं है। कृष्ण का तो एक ही अर्थ रहा होगा। हजारों अर्थ तो नहीं हो सकते। हजारों अर्थ अगर कृष्ण के थे, तो अर्जुन पागल हो जाना चाहिए। कृष्ण का तो एक सुनिश्चित अर्थ रहा होगा। लेकिन कौन कहे वह अर्थ क्या था? अर्जुन भी नहीं कह सकता जिसने सुना था। क्योंकि वह भी जो कहेगा, वह भी बदल जाएगा।
और फिर यह पूरी की पूरी गीता संजय ने लिखी है। संजय यानी पी.टी.आई, रियूटर रिपोर्टर। इसने बड़े दूर बैठ कर कहीं टेलीविजन से खबर पा कर कही है। वह भी अंधे धृतराष्ट्र को कही है--दूरी बढ़ती जाती है। क्या कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, अर्जुन भी ठीक-ठीक रिपोर्ट नहीं दे सकता। वह अपनी समझ के अनुसार देगा। जो उसे समझ में आया वह कहेगा। वह नहीं, जो कृष्ण ने कहा है। और यह भी खबर संजय इकट्ठी कर रहा है। संजय रिपोर्टर है। वह भी अंधे धृतराष्ट्र को कह रहा है। बहरे सुन रहे हैं, अंधों से कह रहे हैं। फिर हजारों-हजारों साल बीत गए। फिर व्याख्याकार हैं, वे व्याख्या कर रहे हैं। फिर एक-एक शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं। फिर गीता में कोई अर्थ नहीं रह जाता। जो तुम डालो वही अर्थ है। फिर गीता पर तुम अपने को आरोपित करते हो। इसलिए नानक, कबीर, दादू सभी का आग्रह है--क्योंकि इनके समय तक आते-आते सारे प्राचीन शास्त्र बासे और उधार हो गए--इन सब ने एक बात पर जोर दिया है कि जीवित गुरु को खोज लो। उसकी वाणी ही वेद है। और तुम सामने-आमने बैठ कर सुनोगे तो भी बदलाहट तो हो ही जाएगी, लेकिन कम से कम।
"गुरुवाणी ही नाद है। गुरुवाणी ही वेद है। वह परमात्मा गुरुवाणी में समाया हुआ है। गुरु शिव, गुरु विष्णु, गुरु ही ब्रह्मा, वही पार्वती है।"
गुरुमुखि नादं गुरुमुखि वेदं। गुरुमुखि रहिआ समाई।।
गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा। गुरु पारबती माई।।
जे हउ जाणा आखा नाहीं। कहणा कथनु न जाई।।
जिन्होंने अपनी आंख से देखा है उस परमात्मा को, वे भी उसे ठीक से नहीं
कह पाते। पूरा नहीं कह पाते। और तुम परमात्मा को किताब से खोज रहे हो?

गीता, बाइबिल, गुरुग्रंथ--तुम परमात्मा को किताब से खोज रहे हो! जीवित गुरु भी उसे पूरा नहीं कह पाता। नानक खुद अपने संबंध में कहते हैं कि जो मैं जानता भी--पूरा-पूरा जानता--तो भी उसका वर्णन नहीं कर सकता। हूं। क्योंकि वह कथन द्वारा नहीं कहा जा सकता है।
जो कथन द्वारा नहीं कहा जा सकता, उसे तुम कथा द्वारा समझ रहे हो! जो कथन द्वारा नहीं कहा जा सकता, उसे तुम छपे हुए वचनों के द्वारा समझ रहे हो! नहीं, उसकी खबर तो जीवित गुरु के पास ही मिलेगी। वह भी नहीं कि गुरु जो कहता है उससे तुम समझोगे, बल्कि गुरु जो है उससे तुम समझोगे। गुरु की मौजूदगी समझाएगी। गुरु का होना समझाएगा। उसके साथ होना, उसकी हवा, उसकी क्लाइमेट। गुरु के पास होना एक दूसरी हवा में होना है। कम से कम उतनी देर को संसार खो जाता है। कम से कम उतनी देर को तुम दूसरे लोक में होते हो। कम से कम उतनी देर को तुम्हारी चेतना किसी नए ढांचे में हो जाती है। गुरु की खिड़की से थोड़ी देर को तुम झांकने को राजी हो जाओ, उसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं है।
"जो मैं जानता भी, तो उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता था। क्योंकि वह कथन
के द्वारा नहीं कहा जा सकता है।"
जे हउ जाणा आखा नाहीं। कहणा कथनु न जाई।।
"लेकिन एक गुर से सारी बात हल हो जाती है।"
गुर जो दे वही गुरु है। गुर का अर्थ है टेक्नीक, गुर का अर्थ है विधि, गुर का अर्थ है मैथड। और वह जिससे मिल जाए, वही गुरु। एक गुर से सारी बात हल हो जाती है, सारी उलझन हल हो जाती है। और वह गुर, नानक कहते हैं, यह हैः
गुरा एक देहि बुझाई--
सभना जीआ का इकु दाता। सो मैं विसरि न जाई।।
सबका वही एक मालिक है। सबका वही एक निर्माता है। सबका वही एक स्रष्टा है। उसे मैं भूल न जाऊं। इस सत्य को मैं स्मरण रख सकूं कि सबमें वही छिपा है। सब हाथों का हाथ वही। सब आंखों की आंख वही। वही धड़कता, वही जीवन है। इसे मैं भूल न जाऊं। प्रतिपल यह मुझे याद बनी रहे।
यह गुर, यह सीक्रेट पकड़ जाए तो तुम धीरे-धीरे माला के मनकों से हट कर, मनकों के भीतर जो छिपा धागा है, उसको पकड़ लोगे। वही धागा परमात्मा है। तुम मनके हो। तुम्हारे भीतर जो जीवन की धारा बह रही है, जो जीवन का धागा है, वही परमात्मा है। वह धागा मुझमें भी वही है, तुममें भी वही है। वृक्ष में, पशु- पक्षी में, चट्टान-पहाड़ में भी वही है। वही जीता है अनेक रूपों में। वही लहराता है अनेक लहरों में। तो तुम उस धागे को भर न भूलो तो गुर हाथ में आ गया। और सब पहेलियां अपने आप हल हो जाएंगी।
क्या करोगे? कैसे इस गुर को संभालोगे? चौबीस घंटे संभालना है। बड़ी हिम्मत चाहिए। बड़ी अड़चन भी होगी। अगर अड़चन न होती होती, तो दुनिया कभी की धार्मिक हो गयी होती। अड़चन तो है ही और होनी भी चाहिए। क्योंकि बिना अड़चन कुछ मिल जाए तो व्यर्थ है। बिना यात्रा के तुम मंजिल पर पहुंच जाओ, तो तुम फिर भटक जाओगे। मुश्किल से जिसे तुम पाओगे, उसी को तुम संभालोगे। मुफ्त तुम्हें जो मिल जाए, तुम उसे संभाल भी न सकोगे। और फिर इतने विराट सत्य को पाने चले हो तो दांव पर कुछ गंवाना भी होगा।
धर्म एक तरफ से गंवाना है और एक तरफ से पाना है। इसलिए अड़चन है। अगर ग्राहक में तुम परमात्मा को देखोगे तो लूट कैसे सकोगे उसे? जरा मुश्किल हो जाएगा। अगर तुम जेब काटते हो और उसमें परमात्मा को देखोगे तो हाथ ठहर जाएंगे। बुरा कैसे कर सकोगे? अगर तुम्हें वही दिखाई पड़ने लगा तो कैसे किसी को अभिशाप दे सकोगे? कैसे किसी को गाली दे सकोगे, अगर वही दिखने लगा? कैसे होओगे नाराज? कैसे बांधोगे दुश्मनी? किससे बांधोगे दुश्मनी?
अगर वही है, तो तुम थोड़ी मुश्किल में पड़ोगे। तुम्हारे जीवन का ढांचा जगह-जगह से गिरने लगेगा। तुमने जो मकान बनाया है, वह उसके विपरीत है। तुमने उसको भूल कर मकान बनाया है। तुम उसे याद करोगे तो तुम्हारा यह मकान तो नहीं टिक सकता।
हां, एक बात पक्की है कि तुम्हें बहुत बड़ा मकान मिलेगा। लेकिन वह तुम्हें आज दिखाई भी नहीं पड़ सकता। इसीलिए तो जुआरी चाहिए, हिम्मत के लोग चाहिए, कि हाथ में जो है उसे छोड़ दें; उसे पाने को जिसका अभी पक्का भरोसा

नहीं है। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि व्यवसायियों का काम नहीं है धर्म; जुआरियों का काम है। जुआरी दांव पर लगा देता है इस आशा में कि दोहरा हो कर मिलेगा। मिलेगा कि नहीं, कुछ पक्का नहीं है। पासे कैसे पड़ेंगे, कोई भी नहीं जानता है। हिम्मत चाहिए जुआरी की, नानक के साथ चलना हो तो।
इसलिए तो सारे धर्म विकृत हो जाते हैं। क्योंकि हमारे पास जुआरी की हिम्मत नहीं, व्यवसायी का गणित है। और तब इस सूत्र को याद रखना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि यह सूत्र तुम्हारी जिंदगी को आमूल बदल देगा। तुम यही न रह जाओगे। एक छोटा सा सूत्र और तुम्हारी पूरी जिंदगी में आग लग जाएगी। यह जिंदगी न रह जाएगी।
कबीर कहते हैं, जो घर बारै आपना चलै हमारे संग। जो तैयार हो अपने घर में आग लगा देने को, वह हमारे साथ चले।
वह कौन सा घर है? वह घर जो तुमने बना रखा है आसपास अपने--झूठ का, बेईमानी का, क्रोध का, वैमनस्य का, द्वेष का, घृणा का--वह पूरा का पूरा तुम्हारा घर है।
अगर तुम इस एक सूत्र को पकड़ लो, नानक कहते हैंः
गुरा एक देहि बुझाई--
सभना जीआ का इकु दाता। सो मैं विसरि न जाई।।
बस, उसका विस्मरण न हो, कि सबके भीतर एक, सबका मालिक एक, सबका साहब एक। तुम्हारी जिंदगी बदल गयी। कुछ और चाहिए नहीं। न तुम्हें करने की जरूरत है पतंजलि के योगासन; न तुम्हें चिंता करने की जरूरत है यहूदियों के टेन कमांडमेंट्स, दस आज्ञाएं। न तुम फिक्र करो गीता क्या कहती है, कुरान क्या कहता है। एक छोटा सा गुर। तुम्हारी सारी जिंदगी बदल जाए। इस छोटे से गुर से नानक ने पाया, तुम भी पा सकते हो।
लेकिन ध्यान रखना, जो घर बारै आपना चलै हमारे संग।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
चौथा प्रवचन

जे इक गुरु की सिख सुणी

पउड़ीः 6
तीरथि नावा जे तिसु भावा, विणु भाणे कि नाइ करी। जेती सिरठि उपाई वेखा, विणु करमा कि मिलै लई।
मति बिच रतन जवाहर माणिक, जे इक गुरु की सिख सुणी।
गुरा इक देहि बुझाई--
सभना जीआ का इकु दाता, सो मैं बिसरि न जाई।।

पउड़ीः 7
जे जुग चारे आरजा। होर दसूणी होई।।
नवा खंडा विचि जाणीऐ। नालि चलै सभु कोई।।
चंगा नाउ रखाइकै। जसु कीरति जगि लेइ।।
जे तिसु नदर न आवई। त बात न पुछै केइ।।
कीटा अंदरि कीटु करि। दोसी दोसु धरे।।
"नानक" निरगुणि गुणु करे। गुणुवंतिआ गुणु दे।।
तेहा कोई न सुझई। जि तिसु गुणु कोई करे।।

एक रात नानक अचानक घर छोड़कर चले गए। किसी को पता नहीं, कहां हैं। खोजा गया साधुओं की संगत में, मंदिरों में--जहां संभावना थी--पर कहीं भी वे मिले नहीं। और तब किसी ने कहा, मरघट की तरफ जाते देखा है। भरोसा किसी को न आया। मरघट अपनी मर्जी से कोई जाता ही कैसे है? मरघट ले जाने के लिए तो चार आदमियों की जरूरत पड़ती है। बामुश्किल कोई जाता है। मरा हुआ आदमी भी जाना नहीं चाहता, तो जिंदा आदमी के तो जाने का कोई सवाल नहीं। लेकिन जब नानक को कहीं नहीं पाया, तो लोग मरघट पहुंचे।
मरघट में उन्होंने धूनी जमा रखी थी। बैठे थे ध्यान में। घर के लोगों
ने कहा, पागल हो गए हो? घर-द्वार छोड़ कर, बच्चे-पत्नी छोड़ कर यहां क्या कर रहे हो? यह मरघट है, यह पता है?
नानक ने कहा, यहां जो आ गया वह फिर कभी मरता नहीं। और जिसे तुम घर कहते
हो, वहां जो भी है वह आज नहीं कल मरेगा। फिर मरघट कौन सी जगह है? जहां लोग मरते हैं वह मरघट? या जहां लोग कभी नहीं मरते वह मरघट? और फिर जब एक दिन यहां आ ही जाना है, तो चार आदमियों के कंधे पर चढ़ कर क्या आना? शोभा नहीं देता। मैं खुद ही चला आया हूं।
यह घटना बड़ी महत्वपूर्ण है। जो होना ही है, उससे नानक का संघर्ष नहीं है। जो होना ही है उसका स्वीकार है। मृत्यु भी होनी है, उसका भी स्वीकार है। और क्या कष्ट देना दूसरों को वहां तक ले जाने के लिए? खुद उठकर ही चले जाना बेहतर है।
जो होगा, उससे हमारा विरोध बना रहता है। हमारी अपनी चाह है, ऐसा न हो। नानक की अपनी कोई चाह नहीं। जो उसकी चाह है; अगर मृत्यु भी उसकी चाह है, तो वह भी नानक को स्वीकार है।
उस रात नानक को लोग समझा-बुझा कर घर ले आए। लेकिन नानक फिर वैसे ही आदमी न रहे जैसे थे। कुछ उनके भीतर मर ही गया। और किसी नए का जन्म हो गया। जब कोई मरता है भीतर पूरी तरह, तभी नए का जन्म होता है। जन्म की वही प्रक्रिया है। मरघट से गुजरना ही होगा। और जो जान कर गुजर जाए, होश से गुजर जाए, उसे नया जन्म मिलता है। वह नया जन्म नया शरीर का जन्म नहीं। वह नया जन्म नयी चेतना का आविर्भाव है।
तुम डरे हो। और जहां भय है वहां भगवान से कोई संबंध न हो सकेगा। तुम जितने पूजा-पाठ कर रहे हो, वे भय के कारण हैं, भगवान के प्रेम में नहीं। तुम तीर्थ जा रहे हो, स्नान कर रहे हो, धूप-दीप जला रहे हो, वे सब भय के कारण हैं, भगवान के प्रेम में नहीं। तुम्हारा धर्म तुम्हारे भय की औषधि है, तुम्हारे आनंद का उत्सव नहीं। तुम करते हो सब सुरक्षा के लिए, तुम इंतजाम

सब जुटाते हो; जैसे तुम धन जुटाते हो, मकान बनाते हो, बैंक बैलेंस बनाते हो, बीमा करवाते हो, ऐसा ही भगवान भी तुम्हारा बीमा है। तुम्हारे तीर्थ, तुम्हारे स्नान, तुम्हारे पूजा-पाठ, सब तुम्हारी सुरक्षाएं हैं भय की। और भय से कभी कोई उस तक पहुंचा? भय कोई पहुंचने का ढंग है? भय तो टूटने
का ढंग है। प्रेम जुड़ने का ढंग है। भय से तो दूरी होती है, प्रेम से निकटता होती है। और प्रेम और भय कहीं भी नहीं मिलते। जब भय पूरा छूट जाता है तब प्रेम का उदय होता है। जब तक भय बना रहता है तब तक तुम घृणा कर सकते हो, घृणा को साज-संवार सकते हो, लेकिन प्रेम नहीं कर सकते।
कैसे तुम प्रेम करोगे जिससे तुम भयभीत हो? जिससे भय है उससे तुम संघर्ष करोगे; समर्पण कैसे करोगे। और अगर समर्पण भी करोगे, तो वह भी संघर्ष की ही एक नयी तरकीब होगी, कि चलो, शायद इससे ही भय से छुटकारा हो जाए।
लोग तीर्थ जा रहे हैं, स्नान कर रहे हैं, इस स्नान में कोई उत्सव नहीं है। केवल पापों से छुटकारे की आकांक्षा है। जो बुरा किया है, सोचते हैं, गंगा में स्नान से बह जाएगा। लेकिन बुरा तुमने किया है, और गंगा में स्नान से कैसे बह जाएगा? गंगा का दोष क्या है तुम्हारी बुराई में? बुरा तुम करोगे, गंगा किस लिए धोने को बहती रहेगी? और बुराई तुमने जो की है, वह शरीर की तो नहीं है, चेतना की है। गंगा का पानी उस चेतना को छू भी कैसे पाएगा? हां, तुम गंदे हो, गंगा में स्नान से स्वच्छ हो जाओगे। धूल लगी है शरीर पर, गंगा धो देगी। लेकिन धूल लगी है तुम में, वह शरीर पर लगी नहीं है, तो गंगा क्या करेगी?
शरीर को धोने के लिए तो गंगा ठीक, आत्मा को धोने का वह उपाय नहीं। कोई
और गंगा खोजनी पड़ेगी। पुरानी कथा है कि एक गंगा तो जमीन पर बहती है और एक गंगा स्वर्ग में। तुम्हें स्वर्ग की गंगा खोजनी पड़ेगी। क्योंकि पृथ्वी की गंगा शरीर को छुएगी, पृथ्वी की है, शरीर तक उसकी पहुंच है। स्वर्ग की गंगा तुम्हें छुएगी, तुम्हें धो देगी। लेकिन स्वर्ग की गंगा तुम कैसे खोजोगे? कहां खोजोगे? ये सूत्र स्वर्ग की गंगा की खोज के लिए कहे गए हैं। "यदि मैं उसको भा गया, तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया।"
उसको भा जाना स्वर्ग की गंगा को खोज लेना है। उसको भा जाना बड़ा गहरा सूत्र है। इसे समझने की थोड़ी कोशिश करो।
एक तो तुम उसे भाओगे तभी, जब तुम उसके विरोध में नहीं खड़े हो। तुम उसे भाओगे तभी, जब तुमने सब भांति अपने को उसमें लीन कर दिया है। तुम उसे भाओगे तभी, जब तुम्हारा कर्ता-भाव मिट गया है। परमात्मा कर्ता है, तुम निमित्त हो। बस! तुम भा जाओगे।
लेकिन अभी तो तुम्हारे भीतर धुन बजती है कि मैं कर्ता हूं। पूजा भी करते हो तो भी कर्ता तुम ही रहते हो। तीर्थों में स्नान करते हो तो भी कर्ता तुम ही रहते हो। दान करते हो तो भी कर्ता तुम ही रहते हो। सब व्यर्थ हुआ। स्नान भी व्यर्थ गया, दान भी व्यर्थ गया, पूजा बेकार हुई। क्योंकि कर्ता का भाव! अभी तुम सोचते हो, मेरा है।
धार्मिक व्यक्ति में और अधार्मिक व्यक्ति में एक ही अंतर है। धार्मिक व्यक्ति के लिए कर्ता परमात्मा है, अधार्मिक व्यक्ति के लिए कर्ता वह स्वयं है। मेरे किए कुछ हो सकता है, यह भाव ही अधर्म है। उसके किए ही सब हो रहा है, यह भाव धर्म है। तुम उसे प्यारे हो जाओगे।
तुम अपने ही हाथ से उसकी तरफ पीठ किए खड़े हो। तुम्हारा कर्तापन ही तुम पीठ किए हो। जैसे ही तुम कर्तापन छोड़ोगे, सन्मुख हो जाओगे। विमुखता मिट जाएगी।
तुमने किया क्या है? न जन्म तुम्हारा, न जीवन तुम्हारा, न मृत्यु तुम्हारी; सब वही कर रहा है। लेकिन बीच के अंतराल में तुम अपने कर्ता होने का भाव जुटा लेते हो। और वह जो कर्ता का भाव है फिर वह पाप करे तो भी पाप, पुण्य करे तो भी पाप। इसे ख्याल में ले लेना।
तुम सोचते हो पाप करना पाप है और पुण्य करना पुण्य है। तुम गलती में हो। कर्ता होना पाप है, अकर्ता होना पुण्य है। अगर पुण्य करते वक्त भी तुम कहते हो, मैंने किया--मंदिर बनाए, पूजा की, इतने व्रत-उपवास किए, इतनी बार तीर्थ गया, काशी गया, हज गया, हाजी हुआ--यह तुम जितना कहोगे, मैंने किया, सब

पाप हो गया। इसलिए पाप का संबंध कर्म से नहीं, भाव से है। तुम अगर अकर्ता- भाव से कर सको तो इस जगत में कोई भी पाप नहीं है। अगर तुम कर्ता-भाव से करो तो इस जगत में सभी कुछ पाप है।
कृष्ण अर्जुन को गीता में यही कह रहे हैं कि तू कर्ता-भाव छोड़ दे और वह
जो करवा रहा है, वही कर। उसकी जो मर्जी वह होने दे। तू बीच में मत आ। तू अपनी तरफ से चुनाव मत कर। तू विचार मत कर कि क्या ठीक है और क्या गलत है। तू जानेगा भी कैसे कि क्या ठीक है और क्या गलत है? तेरे देखने की सीमा कितनी? तेरी समझ कितनी? तेरा अनुभव कितना? तेरा होश कितना? तू इस छोटे से दीए से देखने की कोशिश मत कर, इसकी रोशनी चार फीट से ज्यादा दूर नहीं पड़ती। और जीवन का विस्तार अनंत है। वह तुझसे जो करवा रहा है तू कर। तू बीच में मत खड़ा हो। तू सिर्फ माध्यम बन जा। जैसे बांसुरी से कोई गीत गाए और बांसुरी केवल राह दे, ऐसी तू राह दे। निमित्त हो जा।
जो निमित्त हो गया वह उसका प्यारा हो गया। जो कर्ता बना रहा वह दुश्मन बना रहा। उसका प्रेम तो फिर भी बरसता रहेगा, क्योंकि उसका प्रेम बेशर्त है। तुम क्या हो, इससे कोई संबंध नहीं। लेकिन तुम ही उसे पाने में असमर्थ हो जाओगे। जैसे घड़ा सीधा रखा हो और वर्षा हो रही हो तो भर जाएगा। वर्षा तो होती ही रहेगी, घड़ा उलटा रखा है तो खाली रह जाएगा। वर्षा तो उलटे घड़े पर भी होती रहेगी, क्योंकि वर्षा तो बेशर्त है। उसका प्रेम किसी शर्त से बंधा नहीं है कि तुम ऐसे हो जाओ तो मैं प्रेम करूंगा।
इसे भी समझ लेना। नानक का यह वचन सुनकर कई लोगों को लगेगा कि मैं ऐसा
हो जाऊं तो वह मुझे प्रेम करेगा। नहीं, उसका प्रेम तो बरस ही रहा है। अगर उसके प्रेम में भी शर्त हो तो मनुष्य और परमात्मा के प्रेम में कोई अंतर न रह जाए। यही तो मनुष्य के प्रेम की पीड़ा है कि हम कहते हैं, तुम ऐसा करोगे तो मैं प्रेम करूंगा, तुम ऐसे होओगे तो मैं प्रेम करूंगा। मेरी शर्तें पूरी करोगे तो मैं प्रेम करूंगा, अन्यथा मैं प्रेम खींच लूंगा। बाप बेटे से यही कह रहा है, पत्नी पति से यही कह रही है, मित्र मित्र से यही कह रहा है कि तुम ऐसा करो। अगर तुम ऐसा किए तो मुझे जंचोगे।
इस कारण, इस प्रेम के अनुभव के कारण, तुम यह मत सोच लेना कि नानक यह कह रहे हैं कि परमात्मा तुम्हें तब प्रेम करेगा जब तुम कुछ शर्तें पूरी करोगे। नहीं, उसका प्रेम तो बरस रहा है। शर्तें पूरी करोगे तो तुम सीधे घड़े की भांति हो जाओगे। उसकी वर्षा हो रही है, भर जाएगी। तुम लबालब हो जाओगे। तुम बहने लगोगे भर कर। न केवल उसका प्रेम तुम्हें मिलेगा, तुमसे औरों को भी मिलने लगेगा।
गुरु हम उसी को कहते हैं कि जिसका घड़ा इतना भर गया परमात्मा के प्रेम
से कि अब समाता नहीं। वही औरों के घड़ों पर भी बहने लगा। गुरु का मतलब ही इतना है कि जिसकी अपनी जरूरत पूरी हो गई। जिसकी चाह बुझ गई। जिसकी तृष्णा शांत हो गई। जिसका घड़ा इतना भर गया कि अब वह देने में समर्थ है। अब वह न दे तो क्या करे? जैसे बादल जब भर जाए पानी से तो बरसेगा, हलका होगा। जब फूल भर जाए गंध से तो गंध बिखरेगी।
ऐसे ही जब तुम्हारा घड़ा भर जाएगा उसके प्रेम से, तुम्हारे चारों तरफ बंटने लगेगा, बहेगा। और उसकी वर्षा का तो कोई अंत नहीं। एक बार तुम्हें पता चल जाए कि सीधे होने से भरना शुरू हो जाता है, वह वर्षा तो होती ही रहती है, तुम कितना ही उलीचो। हजार हाथ से उलीचो तो भी उलीच न पाओगे। तो यह ख्याल रखना कि नानक जब यह कह रहे हैं, तो उनका प्रयोजन तुमसे है।
"यदि मैं उसको भा गया, तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया।"
उसको तो तुम भाए ही हुए हो, अन्यथा तुम होते कैसे? अगर वह एक क्षण को
भी न चाहता तुम्हारा होना, तो तुम तिरोहित हो जाते। तुम्हारी श्वास-श्वास में वही है। तुम्हारी हर धड़कन में वही है। अस्तित्व ने तुम्हें चाहा है। अस्तित्व ने तुम्हें प्यार किया है। अस्तित्व ने तुम्हें बनाया है। तुम कैसे हो, इसकी फिक्र नहीं है, अस्तित्व तुम्हें अभी भी जीवन दे रहा है। उसे तुम तो भाए ही हुए हो। लेकिन तुम उलटे खड़े हो। तुम पीठ किए हो। तुम उसके प्रेम से भी डरे हो। तुम उससे भागे हुए हो। वह तुम्हें भरना चाहता है, तुम बचना चाहते हो।

इसलिए जब नानक कहते हैं, यदि मैं उसको भा गया, तो अर्थ है--जब मैं सीधा हुआ, सन्मुख हुआ। जब मैंने भय छोड़ा।
भय के कारण ही तुम अपने घड़े को उलटा किए बैठे हो कि कहीं कुछ गलत न भर जाए। भय के कारण ही तुमने दरवाजे बंद कर रखे हैं। कि कहीं कोई चोर, दुश्मन भीतर न आ जाए। भय के कारण ही तुमने अपने हृदय को सब तरफ से बंद कर लिया है। लेकिन जब तुम दरवाजे बंद कर लेते हो और चोर-डाकू नहीं आ सकता, तो प्रेमी भी नहीं आ सकता। क्योंकि द्वार तो वही है, जहां से चोर आता है वहीं से प्रेमी आता है। तो यह हो सकता है कि तुमने इंतजाम कर लिया हो चोर के न आने का, लेकिन ध्यान रखना, तुमने प्रेमी के आने का द्वार भी बंद कर रखा है। और वह जिंदगी किस काम की जिसमें प्रेमी न आया? न आया चोर, तो भी किस काम की?
तुम इतने भयभीत हो, इसलिए तुम अपने को उलटा किए हो, कुछ प्रवेश न कर जाए। फिर तुम खाली हो। फिर तुम रोते हो कि मैं खाली हूं, कि मेरे द्वार कोई अतिथि नहीं आता, कि कोई मेरे द्वार पर दस्तक नहीं देता। तुम्हारे भय ने तुम्हें परमात्मा से विमुख कर रखा है।
और मजा यह है कि तुम्हारा सारा धर्म तुम्हारे भय का विस्तार है। तुम्हारे सब तथाकथित भगवान तुम्हारे भय की ही धारणाएं हैं। तुम भय के कारण उन्हें स्वीकार किए हो। तुम डरते हो। तुम संदेह करने में भी डरते हो, इसीलिए संदेह नहीं कर रहे हो। आस्था तुम में पैदा नहीं हुई है। संदेह करने के डर के कारण अगर तुम आस्थावान बने हुए हो, तो तुम्हारी आस्था थोथी है। थोथे से सत्य का क्या संबंध होगा? तुम्हारी आस्था ऊपर-ऊपर है। उस गहनतम से तुम्हारा कैसे मिलन होगा? और आस्था ऊपर हो तो भीतर तो संदेह छिपा ही है। मुल्ला नसरुद्दीन एक चुनाव में खड़ा हुआ। उसे कुल तीन ही वोट मिले। एक उसका खुद का अपना, एक उसकी पत्नी का, और एक किसी अज्ञात व्यक्ति का। तो पत्नी बोली, हूं! संदेह सच निकला, जल्दी बताओ यह दूसरी औरत कौन है?
भीतर तुम्हारे जो पड़ा है, वह कहीं भी बहाना खोज लेगा। तुम भीतर अगर संदेह से भरे हो, तो ऊपर की आस्था, ऊपर का प्रेम कहीं भी टूट जाएगा। कितनी देर लगेगी? जरा सी कोई घटना, और तुम्हारा ईश्वर पर संदेह उठ जाता है। तुम्हारे पैर में कांटा लग जाए, संदेह उठ जाता है। सिर में दर्द हो जाए, संदेह उठ जाता है। नौकरी छूट जाए, संदेह उठ जाता है।
संदेह छिपा ही पड़ा है। फूट आता है मवाद की तरह। जरा सी चोट और मवाद बाहर आ जाती है। इस मवाद को तुम कितना ही छिपाओ आस्था की मलहम से, कुछ हल न होगा। किसे तुम धोखा दे रहे हो? कौन तुम्हारे धोखे में आ रहा है? तुम खुद भी अपने धोखे में नहीं आ रहे हो तो दूसरा तो कोई क्या आएगा? तुम भी भलीभांति जानते हो कि तुम्हारी आस्था भय के कारण है। और भीतर संदेह भरा है।
तो तुम जाओ, तीर्थों में करो स्नान। जाओ मंदिरों में, गुरुद्वारों में, गिरजों में, करो पूजा-प्रार्थना, सब व्यर्थ है। क्योंकि जब तक तुम्हारे हृदय से आस्था का स्वर न उठे, तब तक तुमने उसे पुकारा ही नहीं। और जब तुम भय से जाओगे तो तुम जरूर कुछ मांगोगे। क्योंकि भय हमेशा मांगता है। और जो मांगता है वह मिल जाए, तो आश्वस्त होता है। न मिले तो संदेह गहन होता है। तुम सदा मांगते हो। आस्था सिर्फ धन्यवाद देने जाती है। आस्थावान भी मंदिर जाएगा तो धन्यवाद देने कि तूने पहले ही काफी दिया है। तूने योग्यता से ज्यादा पहले ही दिया है। तेरी कृपा है। तेरी अनुकंपा है। आस्थावान सदा अनुग्रह से भरा रहेगा। और जहां अनुग्रह है, वहां संदेह नष्ट हो जाता है। जहां मांग है, वहां संदेह मौका खोज रहा है। तुम मांगते हो; पूरा हो जाए तो संदेह को छिपाए रखोगे, न पूरा हो तो संदेह बाहर आ जाएगा। मांग शायद परीक्षा है।
जीसस के जीवन में उल्लेख है कि जब वे चालीस दिन की अपनी गहन साधना में गए, तो शैतान उनके पास आया। और उसने कहा कि शास्त्रों में लिखा है कि जब तीर्थंकर, पैगंबर पैदा होता है, तो परमात्मा उसकी रक्षा करता है। तो तुम कूद जाओ इस पहाड़ से। अगर तुम सच में ही पैगंबर हो, तो उसके देवदूत तुम्हें हाथ फैलाए नीचे सम्हालने को मिलेंगे।
जीसस ने कहा, वह तो ठीक है। लेकिन शास्त्रों में यह भी लिखा है कि उसकी परीक्षा केवल वे ही लेते हैं जो संदेह से भरे हैं। मुझे कोई संदेह नहीं

है। देवदूत निश्चित नीचे खड़े मिलेंगे। लेकिन मैं उसकी परीक्षा कैसे लूं? क्योंकि परीक्षा तो संदेह से भरे हुए लोग ही लेते हैं। तुम ठीक कहते हो। देवदूत निश्चित खड़े हैं। लेकिन परीक्षा लेने का मतलब ही क्या होता है? कि मुझे कुछ संदेह था, कि पता नहीं खड़े हैं या नहीं। और पता नहीं कि वह बचाता भी है या नहीं। और पता नहीं कि मैं उसका पैगंबर भी हूं या नहीं।
जहां संदेह है, वहां परीक्षा है। जहां संदेह है, वहां जांच है। जहां संदेह है, वहां तुम मांग खड़ी करते हो। मांग तुम्हारी परीक्षा का उपाय है कि कर दो यह पूरा, अगर तुम हो। अगर पूरा हो जाए, तो तुम हो। अगर पूरा न हो, तो तुम नहीं हो।
आस्थावान व्यक्ति परमात्मा की कोई परीक्षा नहीं लेता। आस्थावान तो अनुगृहीत है, वह मांग नहीं करता। और जिस दिन तुम मांग बंद कर दोगे, तुम्हारा भय समाप्त होने लगेगा। जैसे-जैसे तुम अनुग्रह से भरोगे, मांग हटेगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि तुम्हारा मुख परमात्मा की तरफ होने लगा। घड़ा सीधा हो गया। और जैसे-जैसे तुम सीधे होओगे, थोड़ी-थोड़ी उसके अमृत की वर्षा की बूंदें तुम में पड़ेंगी, तुम्हारा भय मिट जाएगा। तब तुम पाओगे कि वही बरस रहा है, मैं नाहक ही भयभीत था। तब तुम द्वार खुले छोड़ दोगे। क्योंकि वही आता है, मैं नाहक भयभीत था। चोर में भी वही आता है, बेईमान में भी वही आता है। और जब तक तुम सभी में उसको देख न लोगे तब तक तुम उसे देख ही न पाओगे।
नानक कहते हैं, "यदि मैं उसको भा गया, तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया।"
तीरथि नावा जे तिसु भावा, विणु भाणे कि नाइ करी।
"और यदि नहीं भाया उसे, तो नहा-धोकर क्या करूंगा?"
नहीं भाया उसे, तो नहा-धोकर तैयारी भी किस के लिए करनी है? नहीं भाया उसे, तो मेरा नहाना-धोना भी मेरा अहंकार मजबूत करेगा।
तीर्थयात्री को देखो! जब हज से कोई हाजी होकर लौटता है तब उसे देखो! तब
एक अकड़ लेकर लौटता है। विनम्र होकर लौटना चाहिए था। हज अगर सच में हुआ, अगर तीर्थयात्रा हो गई, तो आदमी बदल कर लौटेगा, अहंकार वहीं छोड़कर लौट आएगा। लेकिन वहां से वह अकड़ कर आता है। तीर्थयात्री जब लौटता है, तो आशा रखता है स्वागत-समारंभ की। लोग पैर छुएंगे और कहेंगे कि गजब किया! कि तीर्थ हो आए? बड़ा पुण्य किया।
पुण्य से भी तुम अहंकार को ही भरना चाहते हो। तुम उपवास भी करते हो तो शोभायात्रा की अपेक्षा रखते हो। बैंड-बाजे लोग बजाएं, गांव-गांव खबर हो जाए कि तुमने कितने उपवास किए। वहां भी तुम अहंकार को ही खोज रहे हो। और जितना अहंकार मजबूत होता है, उतने ही तुम विमुख हो जाओगे। तुम जितने ज्यादा, उतने विमुख। इस गणित को ठीक से ख्याल में रख लेना। तुम जितने कम, उतने सन्मुख। तुम बिल्कुल नहीं, वही तुम्हारे द्वार पर खड़ा है। तब चोर भी आए, तो वही आता है। तब भय किसी का भी नहीं रह जाता, क्योंकि वही है।
"यदि मैं उसको भा गया तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया। और यदि नहीं भाया तो नहा-धोकर क्या करूंगा? उसने जितनी सृष्टि की और जो दृश्य है, उसमें कर्म के बिना किसको क्या मिला?"
इस सृष्टि में तो जो भी मिलता है वह कर्म से मिलता है। और इसी से एक बड़ी भ्रांति हो जाती है। भ्रांति यह हो जाती है कि जैसे इस सृष्टि में सब कुछ कर्म से मिलता है, ऐसे ही परमात्मा को भी पाना हो तो कुछ कर्म करना होगा, तब मिलेगा।
इसे थोड़ा समझें। जगत में सभी चीजें कर्म से मिलती हैं; प्रेम कर्म से नहीं मिलता, प्रार्थना कर्म से नहीं मिलती, आराधना कर्म से नहीं मिलती, आस्था कर्म से नहीं मिलती, परमात्मा का सान्निध्य कर्म से नहीं मिलता। क्यों? क्योंकि कर्म से तो कर्ता ही मजबूत होता है। धन कमाना हो तो बैठे- बैठे नहीं मिलेगा। धन कमाना हो तो कर्म करना पड़ेगा। यश कमाना हो तो बैठे- बैठे न मिलेगा। कर्म करना होगा, दौड़-धूप करनी होगी, आपाधापी करनी होगी, चिंतित, परेशान होना होगा। इस संसार में कुछ भी पाना हो तो श्रम ही मार्ग है। तो इससे हमें ख्याल उठता है, जब क्षुद्र को पाने में इतना श्रम करना

पड़ता है, तो विराट को पाने में और कई गुना ज्यादा श्रम करना पड़ेगा। वहीं हमारा गणित गलत हो जाता है।
इस जगत में जो नियम हैं, उस जगत में ठीक उसके विपरीत यात्रा है। इस जगत में कुछ भी पाना है तो परमात्मा की तरफ पीठ करनी पड़ती है, इसलिए श्रम करना पड़ता है।
इसे थोड़ा समझें। जितना उसका सहारा हम छोड़ते हैं, उतनी ही हमें मेहनत उठानी पड़ती है। क्योंकि हम ही को करना पड़ता है जो वह कर देता। तो उसके श्रम की पूर्ति फिर हमको अपने ही श्रम और पसीने से करनी पड़ती है। इस संसार में जाने का अर्थ है, उसकी तरफ पीठ। उसका सहारा कम। उसके अमृत की धारा नहीं बहती। बहती रहती है, हम नहीं उसको उपलब्ध करते। हमारे द्वार बंद होते हैं। हम अपने ही तईं जीना चाहते हैं। हम स्वावलंबी होना चाहते हैं।
इसलिए तो नानक कहते हैं बार-बार कि वह साहब है और मैं दास। स्वावलंबी होने की चेष्टा ही अहंकार की चेष्टा है। तो जितना हम स्वावलंबी होना चाहते हैं, जितना हम चाहते हैं कि मैं कर लूंगा, उतना ही उसकी शक्ति का सहारा हम नहीं ले रहे हैं। ऐसे समझो, जैसे कि कोई आदमी हवा के रुख से विपरीत चप्पुओं से नाव चला रहा है। नानक ने उसका ही गुर दिया है कि जरूरत नहीं है चप्पुओं को चलाने की और विपरीत हवा में जाने की। जिस तरफ उसकी हवाएं ले जाएं, अपनी नाव के पाल उन्हीं हवाओं के सहारे छोड़ दो।
रामकृष्ण कहते थे कि तुम चलाते ही क्यों हो चप्पू? तुम हवा के रुख के साथ क्यों नहीं बहते? खोल दो पाल और विश्राम करो। हवाएं खुद लिए जा रही हैं। हवाएं खुद लिए जा रही हैं उस किनारे की तरफ। ठीक समय और ठीक हवाओं के रुख का ध्यान रखना जरूरी है, बस! कोई और श्रम करने की जरूरत नहीं है। जब हवाएं दूसरे किनारे की तरफ जा रही हों तब नाव को छोड़ दो। जब हवाएं इस तरफ आ रही हों तो फिर नाव को छोड़ दो। तुम व्यर्थ बीच में श्रम क्यों करते हो? हवाओं के विपरीत जाओगे तो श्रम करना पड़ेगा। नदी से उलटे बहोगे तो मेहनत करनी पड़ेगी, फिर भी कहीं पहुंचोगे न, थकोगे। सिर्फ थकोगे। संसार की पूरी दौड़ के बाद आदमी के चेहरे को देखो, सिवाय थकान के तुम वहां कुछ भी न पाओगे। मरने के पहले ही लोग मर गए होते हैं। बिल्कुल थक गए होते हैं। विश्राम की तलाश होती है कि किसी तरह विश्राम कर लें। क्यों इतने थक जाते हो!
आदमी बूढ़ा होता है, कुरूप हो जाता है। तुमने जंगल के जानवरों को देखा? बूढ़े होते हैं, लेकिन कुरूप नहीं होते। बुढ़ापे में भी वही सौंदर्य होता है। तुमने बूढ़े वृक्षों को देखा है? हजार साल पुराना वृक्ष! मृत्यु करीब आ रही है, लेकिन सौंदर्य में रत्तीभर कमी नहीं होती। और बढ़ गया होता है। उसके नीचे अब हजारों लोग छाया में बैठ सकते हैं। सौंदर्य में कोई फर्क नहीं पड़ता। सौंदर्य और गहन हो गया होता है। बूढ़े वृक्ष के पास बैठने का मजा ही और है। वह जवान वृक्ष के पास बैठने से नहीं मिलेगा। अभी जवान को कोई अनुभव नहीं है। बूढ़े वृक्ष ने न मालूम कितने मौसम देखे। कितनी वर्षाएं, कितनी सर्दियां, कितनी धूप, कितने लोग ठहरे और गए, कितना संसार बहा, कितनी हवाएं गुजरीं, कितने बादल गुजरे, कितने सूरज आए और गए, कितने चांदों से मिलन हुआ, कितनी अंधेरी रातें--वह सब लिखा है। वह सब उसमें भरा है। बूढ़े वृक्ष के पास बैठना इतिहास के पास बैठना है। बड़ी गहरी परंपरा उसमें से बही है।
बौद्धों ने, जिस वृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसे बचाने की अब तक कोशिश की है। वह इसीलिए कि उसके नीचे एक परम घटना घटी है। वह वृक्ष उस अनुभव से अभी आपूरित है। वह वृक्ष अभी भी उस स्पंदन से स्पंदित है। वह जो महोत्सव उसके नीचे हुआ था, वह जो बुद्ध परम ज्ञान को उपलब्ध हुए थे, वह जो प्रकाश बुद्ध में जला था, उस प्रकाश की कुछ किरणें अभी भी उसे याद हैं। और अगर तुम बोधिवृक्ष के पास शांत होकर बैठ जाओ, तो तुम अचानक पाओगे ऐसी शांति, जो तुम्हें कहीं भी न मिली थी। क्योंकि तुम अकेले ही शांत नहीं हो रहे हो। उस वृक्ष ने एक अपरिसीम शांति जानी है। वह अपने अनुभव में तुम्हें भागीदार बनाएगा।
बूढ़े वृक्ष सुंदर हो जाते हैं। बूढ़े सिंह में और ही सौंदर्य होता है,
जो जवान में नहीं होता। जवान में एक उत्तेजना होती है, जल्दबाजी होती है,

अधैर्य होता है, वासना होती है। बूढ़े में सब शांत हो गया होता है। लेकिन आदमी कुरूप हो जाता है। क्योंकि आदमी थक जाता है। वृक्ष परमात्मा के खिलाफ नहीं लड़ रहे हैं। उन्होंने पाल खोल रखे हैं। जहां उसकी हवा ले जाए, वे वहीं जाने को राजी हैं। तुम उसके खिलाफ लड़ रहे हो। आदमी अकेला उसके खिलाफ लड़ता है। इसलिए थकता है, टूटता है, जराजीर्ण होता है। अगर जीवन एक संघर्ष है तो यह होगा ही।
इस संसार में जो भी पाना है, उसके लिए कर्म करना पड़ता है। लेकिन परमात्मा को पाने के लिए किसी कर्म की कोई जरूरत नहीं। पूजा नहीं, प्रार्थना नहीं, योग नहीं, तप नहीं, जप नहीं। कर्म से उसे पाया ही नहीं जा सकता। उसे प्रेम से पाया जाता है। प्रेम और कर्म की दिशा अलग-अलग है। प्रेम एक भाव है। और जब तुम प्रेम करते हो, तो ध्यान रखना, दुनिया में
एक ही चीज है जो थकती नहीं--वह प्रेम। बाकी सब चीजें थक जाती हैं। क्योंकि प्रेम कोई श्रम नहीं है। तुम जितना प्रेम करो, उतना ही प्रेम करने में कुशल हो जाते हो। प्रेम की जितनी तुम्हारी अनुभूति बढ़े, उतना ही तुम पाओगे, तुम प्रेम करने में समर्थ हो गए हो। प्रेम बढ़ता ही जाता है। प्रेम के ज्वार में भाटा कभी आता ही नहीं। वह हमेशा चढ़ता है, उतार नहीं है। लेकिन प्रेम एक प्रसाद है। वह तुम्हारा श्रम नहीं है। ठीक से समझो तो प्रेम तुम्हारा विश्राम है। इसीलिए तो जब तुम प्रेम में होते हो, तुम अपने को ताजा पाते हो, विश्राम में पाते हो। साधारण प्रेम में भी! अगर एक व्यक्ति से तुम्हारा प्रेम है, वह तुम्हारे पास बैठ जाता है, तो तुम पाते हो, सब थकान मिट गई। तुम हलके हो गए। ताजे हो गए। प्रफुल्लित हो गए। श्रम की सारी धूल झड़ गयी। तो परमात्मा के प्रेम की तो तुम कल्पना कर सकते हो। जिस दिन उस प्रेम का जन्म होगा उस दिन कैसा श्रम! कैसी थकान! परमात्मा
को प्रयास से नहीं पाया जाता, प्रसाद से पाया जाता है। इसलिए नानक कहते हैं, गुरु प्रसाद। परमात्मा से तुम्हारा सीधा संबंध आज नहीं हो सकता। आंखें उसके लिए तैयार नहीं हैं।
अगर तुम्हें सूरज को देखने के लिए आंखों को तैयार करना हो तो दीए से शुरुआत करनी पड़ती है। दीए की ज्योति पर त्राटक, फिर और बड़ी ज्योति पर त्राटक, फिर और बड़ी ज्योति पर त्राटक। फिर धीरे-धीरे सूरज की तरफ। अन्यथा तुम जैसे हो, अभी तो सूरज तुम्हारी आंखों को अंधा कर देगा।
अगर घड़े को भी सीधा करना हो, तो पहले गुरु की तरफ... । गुरु तैयारी है।
और जब तुम उससे भरने को राजी हो जाओगे और भर कर पुलकित और आनंदित होओगे, और तुम्हारे सब भय विसर्जित हो जाएंगे, तब तुम परमात्मा की तरफ खुल पाओगे। एकदम परमात्मा की तरफ खुलना खतरनाक भी हो सकता है। तुम शायद झेल ही न पाओ उतने बड़े दान को। आकाश से गंगा उतारनी हो तो भगीरथ चाहिए। गंगा को तुम झेल न पाओगे। हर कोई न झेल पाएगा। तुम तो छोटे से डबरे में डूब जाओगे।
इसलिए नानक गुरु पर बड़ा जोर देते हैं। जोर इसलिए है कि गुरु तुम्हें तैयार करेगा। तैयार करेगा गुरु, उससे जो बह रहा है अगर तुम उसे झेलने में धीरे-धीरे समर्थ हो गए, तो तुम भगीरथ हो जाओगे। फिर स्वर्ग की गंगा को भी झेल सकोगे।
परमात्मा पाया जाता है, कृत्य से नहीं। इस सृष्टि में सभी कुछ कर्म से पाया जाता है। परमात्मा कैसे पाया जाता है?
"जो गुरु की एक सिखावन सुन लेता है।"
गुरु की एक सिखावन सुन लेने से परमात्मा मिल सकता है, तुम्हारे कुछ करने से नहीं।
"उसकी मति, जो गुरु की एक सिखावन सुन लेता है, रत्न और जवाहर और माणिक जैसी हो जाती है। बहुमूल्य हो जाती है।"
लेकिन गुरु की एक सिखावन सुनना भी मुश्किल है। क्योंकि गुरु की एक सिखावन सुनने के लिए भी तुम्हें अपना पूरा जीवन रूपांतरित करना होगा। तुम जैसे हो, वहां तो तुम्हें कुछ भी सुनाई न पड़ेगा। गुरु की सिखावन के लिए तुम्हें गुरु की तरफ उन्मुख होना पड़ेगा। तुम्हें उसके पास चुप और शांत बैठने की कला सीखनी पड़ेगी। तुम जब उसके पास आओ तो तुम्हें सिर अपना घर ही छोड़ कर आना पड़ेगा। अगर तुम सिर अपने साथ ले आए तो तुम सुन न सकोगे। सिखावन भी दी जाएगी तो अर्थ तुम अपने निकाल लोगे। तुम्हारा सिर बीच में सब

रूपांतरित कर देगा, बदल देगा। कुछ कहा जाएगा, कुछ तुम सुनोगे। और तुम खाली हाथ आए थे, खाली हाथ वापस लौट जाओगे।
क्योंकि गुरु की सिखावन मस्तिष्क से नहीं सुनी जाती। सिर से उसका कोई लेना-देना नहीं है। गुरु की सिखावन तो हृदय से सुनी जाती है। तुम गुरु की सिखावन सुनते वक्त विचार नहीं करते कि वह ठीक कह रहा है या गलत कह रहा है। इसलिए तो आस्था से सुनी जाती है। गुरु कह रहा है इसलिए ठीक। तुम सोचने वाले नहीं हो। निर्णायक नहीं हो कि वह ठीक कह रहा है कि गलत कह रहा है। अगर तुम अभी भी सोचने वाले हो, तो तुम शिक्षक के पास हो, गुरु के पास नहीं हो। तब तुम विद्यालय में हो, साध-संगत में नहीं। वहां तुम सोचो कि क्या ठीक है, क्या गलत। लेकिन निर्णायक तुम ही हो।
गुरु के पास आने का अर्थ है कि मैं निर्णय कर-कर के थक गया। निर्णय मुझसे नहीं होता। गुरु के पास आने का अर्थ है कि मैं सोच-सोच कर थक गया, मैं कुछ भी सोच नहीं पाता। गुरु के पास आने का अर्थ है कि मैं अपने से परेशान हो गया। और मैं अपने को छोड़ने आया हूं। इसको संक्षिप्त में कहें तो श्रद्धा है।
गुरु के पास तुम तभी आ सकते हो जब तुम अपने से भलीभांति परेशान हो गए हो। अगर तुम अभी भी समझते हो कि तुम समझदार हो, तो गुरु के पास आने का कोई अर्थ नहीं। अभी तुम ही अपने गुरु हो। अभी कुछ दिन और भटको। अभी कुछ और तकलीफ झेलो। अभी संदेह कर-कर के कुछ और पीड़ा इकट्ठी करो। अभी और संताप जरूरी है तुम्हें पकाने को। लेकिन जिस दिन तुम अपने से ऊब जाओ, उसी दिन गुरु के पास आना। कच्चे आने से कोई सार नहीं है।
इसलिए बड़ी कठिनाई होती है। लोग गुरु के पास चले आते हैं और तैयार नहीं होते। तैयारी का मतलब है कि अभी वे अपने पर भरोसा करते हैं। तो गुरु जो कहेगा उसमें सोचेंगे, क्या सही, क्या गलत! उसमें से चुनेंगे। जो जंचेगा वह मानेंगे, जो नहीं जंचेगा वह नहीं मानेंगे। तो तुम अपनी ही मान रहे हो। इसको श्रद्धा मत कहना। इसको समर्पण भी मत समझना। तुमने कुछ भी छोड़ा नहीं है। गुरु के पास जाने का तो एक ही राज है कि तुम अपने को छोड़ कर जाना। फिर वह जो कह रहा है, सही है। फिर तुम्हें निर्णय करने को कुछ बचा नहीं। और तब तुम उसकी सिखावन सुन पाओगे। क्योंकि ऐसे समग्र हृदय से ही सिखावन सुनी जा सकती है। और तभी तुम सिक्ख हो पाओगे। जिसने सिखावन सुनी वह सिक्ख हुआ। सिक्ख शब्द बड़ा प्यारा है। वह संस्कृत के शिष्य से बना है। जो सीखने
को तैयार है वह सिक्ख। जो सिखावन सुनने को तैयार है वह सिक्ख। जो अभी अपनी ही अकड़ से जी रहा है, जो अभी सीखने को तैयार नहीं, वह सिक्ख नहीं है। तुम वस्त्र पहन सकते हो सिक्ख के, उससे कुछ हल नहीं होता। तुम ढंग बना सकते हो सिक्ख का, उससे कुछ हल नहीं होता। क्योंकि सिक्ख होना एक हार्दिक घटना है। कहते हैं नानक--
मति बिच रतन जवाहर माणिक, जे इक गुरु की सिख सुणी।
और हजार बातें सुनने से भी कुछ नहीं होगा। एक ही सुन लेने से सब हो जाता है। और तुम कितना सुन चुके हो, फिर भी कुछ नहीं होता। कितना पढ़ चुके हो, फिर भी कुछ नहीं होता। कारण साफ है। तुमने सुना ही नहीं, जहां से सुनना चाहिए था।
दो रास्ते हैं सुनने के। एक रास्ता है बुद्धि का। जब बुद्धि सुनती है,
तो बुद्धि हमेशा द्वैत से सुनती है। सोचती है, ठीक या गलत। सही, या न सही। मानूं, न मानूं। बुद्धि कभी अहंकार के पार नहीं जाती। बुद्धि हृदय को तो पागल मानती है। बुद्धि हृदय का भरोसा नहीं करती।
इसलिए तो तुम सब ने हृदय को मार डाला है। क्योंकि हृदय का भरोसा नहीं,
कब कौन सा काम करवा दे, जो कि पीछे महंगा पड़े।
रास्ते से निकलते हो, भूखे को देखकर हृदय कहता है, दे दो। बुद्धि कहती है, रुको। पहले पक्का पता लगा लो कि यह आदमी धोखा तो नहीं दे रहा है! यह कोई व्यवसायी भिखारी तो नहीं! और यह भी तो देखो कि यह भला-चंगा है, कमाता क्यों नहीं? बुद्धि हजार बातें कहेगी। हृदय में एक भाव उठा था, बुद्धि उसे दबा देगी।
प्रेम उठेगा, बुद्धि कहेगी, खतरनाक रास्ता है। प्रेम अंधा है। कहां जाते हो? आंख से चलो, होश सम्हाल कर चलो। प्रेम ने कई को बरबाद किया है।

बुद्धि का रास्ता राजपथ की तरह साफ-सुथरा है, प्रेम का रास्ता पगडंडी की तरह है। जंगलों में भटक जाती है। कहां जा रहे हो? रास्ते से मत उतरो। जहां भीड़ चल रही है, वहीं चलो। सब जहां हैं, वहीं ठीक है, अकेले कहां जाते हो? प्रेम अकेले का रास्ता है। इसलिए तो प्रेम प्राइवेसी चाहता है, एकांत चाहता है। प्रेम कहेगा, दे डालो। बुद्धि कहेगी, पहले सोचो, विचारो, सब पता लगा लो, फिर देना। तब तुम कभी न दे पाओगे। प्रेम कहता है, समर्पण कर दो, किसी के चरणों में सिर रख दो और छोड़ दो अपने को। बुद्धि कहेगी, ऐसा कहीं चलेगा! दुनिया में बड़ी धोखा-धड़ी है। श्रद्धा के नाम पर न मालूम कितने लोग लूट रहे हैं।
मगर तुम्हारे पास है क्या जो लुट जाएगा? तुम्हारे पास है क्या जो तुम
दे दोगे और चुक जाएगा? सिवाय दीन-दरिद्रता के भीतर कुछ भी नहीं, लेकिन उसको भी बचाए रखते हो। और बुद्धि की तुम सुन कर जीयोगे तो धीरे-धीरे हृदय सिकुड़ता जाता है। हृदय धीरे-धीरे टूट ही जाता है। इतना फासला हो जाता है कि हृदय की खबर ही तुम तक नहीं आ पाती। बुद्धि इतने बीच में द्वार लगा देती है। फिर तुम प्रेम भी करते हो तो बुद्धि से ही करते हो।
तुमने कभी ख्याल किया? कि तुम्हारा प्रेम भी खोपड़ी से आता है, हृदय से नहीं। तुम भला कहो कि मैं बड़े हृदय से प्रेम करता हूं। लेकिन ये शब्द भी बुद्धि से ही आते हैं। तुम अपने हृदय में जांच-पड़ताल करोगे, वहां कुछ होता नहीं मालूम पड़ता। वहां न कोई पुलक है, न कोई नृत्य है, न कोई संगीत है। वहां कोई कंपन भी नहीं है।
गुरु की सिखावन तो हृदय से सुनी जा सकती है। कबीर ने कहा है, जो सिर को काट कर जमीन पर धर दे, चले हमारे साथ। किस सिर की बात कर रहे हैं? इस सिर को काटने से कुछ नहीं होगा।
बोधिधर्म एक बौद्ध फकीर हुआ। वह चीन गया। वह बड़ा अनूठा आदमी था। वह दीवाल की तरफ मुंह कर के बैठता था, लोगों की तरफ पीठ। वह कहता था, जब कोई शिष्य आएगा तो उस तरफ मुंह कर लूंगा। तुमसे क्या बात करनी? और तुमसे बात करनी या दीवाल से बात करनी बराबर है।
फिर एक आदमी आया, हुईनेंग। वह पीछे खड़ा रहा चौबीस घंटे तक। और उसने कहा कि बोधिधर्म! इस तरफ सिर करो। बोधिधर्म चुप रहा। तो उसने अपना हाथ काट कर बोधिधर्म को भेंट किया। और उसने कहा कि अगर देर की तो सिर काट दूंगा। बोधिधर्म ने कहा, इस सिर को काटने से कुछ भी न होगा। अगर उस सिर को काटने की तैयारी हो... । हुईनेंग ने कहा कि सब तैयारी करके आया हूं। जो कहो, वह करने की तैयारी है।
नौ साल में पहली दफा बोधिधर्म ने किसी व्यक्ति की तरफ चेहरा किया। हुईनेंग उसका उत्तराधिकारी हुआ। लेकिन उसने पहले पूछा कि इस सिर को काटने से कुछ भी न होगा, उस सिर को... !
कौन सा वह सिर है? वह जो भीतर अस्मिता है, अहंकार है। मैं हूं और मैं निर्णायक हूं--तो तुम शिष्य न हो सकोगे, तो तुम सिखावन न सीख सकोगे।
"और गुरु की जो एक सिखावन सुन लेता है, उसकी मति माणिक जैसी हो जाती है।"
उसकी चेतना एक स्वच्छता को, पारदर्शिता को उपलब्ध हो जाती है। वह आर-पार देखने लगता है। विचार वहां हट जाते हैं, क्योंकि हृदय में कोई विचार नहीं है। बुद्धि वहां से बहुत दूर पड़ जाती है। सब धुआं बुद्धि का वहां से हट जाता है। एक स्वच्छता, एक ताजगी! और वही ताजगी स्नान है गंगा का।
नानक ठीक कहते हैं, "यदि मैं उसको भा गया, तो मैंने तीर्थों में स्नान
कर लिया है। और यदि मैं उसे न भाया, तो नहा-धोकर क्या करूंगा?"
वह है एक भीतर का स्नान, जहां जीवन स्वच्छ, चेतना स्वच्छ हो जाती है। जहां तुम सोचते नहीं, जहां तुम सिर को उतार कर रख देते हो। सिर है भी उधार। हृदय तो तुम लेकर आए थे संसार में, सिर संसार ने दिया है। जब तुम पैदा हुए थे तो तुम हृदय थे। तब तुम्हारे पास सिर बिल्कुल न था। भीतर कोई विचार न थे। आकाश खाली और कोरा था, निर्दोष था। फिर एक-एक करके शब्द और विचार तुम्हें दिए गए। फिर समाज ने तुम्हें सिखाया। फिर समाज ने तुम्हें संस्कारित किया, कंडीशंड किया। फिर संस्कार डाल-डाल कर तुम्हारी बुद्धि को तैयार किया। जिन-जिन चीजों की संसार में जरूरत है, उनके लिए तैयार

किया। और जिन-जिन चीजों से संसार में खतरा है, उनको दबाया। तुम्हारे भीतर एक द्वैत निर्मित हुआ। हृदय और बुद्धि अलग-अलग टूट गई।
बुद्धि का अर्थ है, जो समाज ने सिखाया, जो तुम लेकर न आए थे। बुद्धि उधार है, सिर दिया हुआ है। हृदय तुम्हारा अपना है। और यही दुविधा है कि जो अपना है, वह अपना नहीं रहा। और जो पराया है, वह अपना हो गया। जो ऊपर-ऊपर से थोपा गया है, वह तुम्हारा केंद्र बन गया है, और तुम्हारा केंद्र तुम्हें बिल्कुल ही विस्मृत हो गया है।
इसे हटा दो, तो ही तुम सिखावन सुन सकोगे। सिखावन सुनते ही तुम... एक सिखावन काफी है। कोई हजार की जरूरत नहीं। एक बात भी, एक गुर भी काफी है। और वह गुर क्या है?
नानक कहते हैं, "एक गुर से सब हल हो जाता है, कि सभी प्राणियों का दाता
एक है, उसे मैं न भूलूं।"
सभना जीआ का इकु दाता, सो मैं बिसरि न जाई।
बस उसका मुझे विस्मरण न हो, इतनी सिखावन काफी है। इसे थोड़ा समझें। स्मरण और विस्मरण दो शब्द गौर से समझ लें। स्मरण का अर्थ है कि जिसकी सतत प्रतीति भीतर बनी रहे। तुम कुछ भी करो, चलो, फिरो, उठो, बैठो, उसकी सतत प्रतीति बनी रहे।
जैसे एक गर्भिणी स्त्री होती है। काम करती है, खाना बनाती है, बिस्तर लगाती है, लेकिन पूरे वक्त गर्भ का स्मरण बना रहता है। एक नया हृदय उसके शरीर में धड़कना शुरू हुआ है। एक नए जीवन का अंकुर फूटा है, उसकी प्रतीति बनी रहती है। गर्भिणी स्त्री चलती और ढंग से है। तुम स्त्री को चलते देख कर कह सकते हो कि वह गर्भिणी है। वह बात भी करती रहेगी चलते वक्त, तो भी एक स्मरण भीतर बना हुआ है। एक सतत धार भीतर बह रही है कि एक जीवन को सम्हालना है।
स्मरण का अर्थ है कि वह कोई अलग चेष्टा नहीं है। क्योंकि अगर अलग चेष्टा हो तो भूल-भूल जाएगा। खाना बनाओगे, भूल जाएगा। बाजार में दूकान पर बेचने जाओगे सामान, भूल जाएगा। किसी से बात करोगे, भूल जाएगा। तो अगर तुम ऐसा राम-राम, राम-राम, राम-राम जपते हो, वह स्मरण नहीं है। क्योंकि उसको तुम कब तक जपोगे? सोओगे, भूल जाएगा। साइकिल चलाओगे, भूल जाएगा। और अगर उसे न भूले, सड़क पर भी याद रखने की कोशिश की, तो टक्कर खाओगे। किसी का भोंपू बजेगा और तुम्हें सुनाई न पड़ेगा। जो स्मरण तुम चेष्टा से करोगे, जो तुम्हारी बुद्धि में गूंजेगा, वह स्मरण नहीं है।
जो तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाए--उसको नानक अजपा जाप कहते हैं। जिसको जपना भी न पड़े। क्योंकि जपना तो ऊपर ही ऊपर होगा। जो तुम्हारे रोएं- रोएं में समा जाए; तुम उठो, बैठो, चलो, फिरो, कुछ भी करो, जिसकी याद बनी रहे, उस याद का नाम, स्मरण। उसको नानक, कबीर सुरति कहते हैं। इसलिए उनका योग सुरति योग कहलाता है। सुरति का अर्थ है--स्मरण, स्मृति।
और एक दशा है विस्मरण की, विस्मृति की। कि तुम्हें और सब तो याद है, एक बात तुम्हें बिल्कुल भूल गई कि तुम कौन हो! और जिसे यह ही भूल गया है कि मैं कौन हूं, उसे कैसे याद आ सकता है कि यह अस्तित्व क्या है!
गुरजिएफ ने पश्चिम में इस सदी में सेल्फ रिमेंबरिंग, सुरति पर बड़ी मेहनत की। गुरजिएफ की पूरी विधि यह थी कि तुम चौबीस घंटे स्मरण रखो कि मैं हूं। सिर्फ यह स्मरण कि मैं हूं। अगर यह स्मरण सघन होता जाए, तो तुम्हारे भीतर एक केंद्र निर्मित होता है। एक क्रिस्टलाइजेशन होता है। तुम्हारे भीतर कोई चीज सघन हो जाती है। मजबूत हो जाती है। सतत चोट से तुम्हारे भीतर एक संघटित तत्व का उदय होता है।
लेकिन गुरजिएफ की विधि में एक खतरा है, जो खतरा महावीर की विधि में भी है। जो खतरा पतंजलि के योग में भी है। और वह खतरा यह है कि कहीं तुम इस संगृहीत हुए तत्व को अहंकार के साथ न जोड़ बैठो। क्योंकि वे बहुत करीब-करीब हैं। जिसको गुरजिएफ क्रिस्टलाइज्ड सेल्फ कहता है, यह जो नया गठन तुम्हारे भीतर हुआ है, कहीं इस पर अहंकार हावी न हो जाए। कहीं तुम इससे अकड़ न जाओ। कहीं तुम यह न कहने लगो कि मैं ही हूं। यह डर है, कहीं तुम परमात्मा को इनकार न कर दो। तो तुम पहुंच-पहुंच कर भी चूक गए। तुम बिल्कुल किनारे गए और लौट आए। तुम आखिरी जगह पहुंच गए थे और वापस हो गए।

यह खतरा महावीर की विधि में है। क्योंकि महावीर की विधि में भी आत्मभाव को गहन करना है। परमात्मा की कोई जगह नहीं है। महावीर कहते हैं, जब आत्मभाव परिपूर्ण हो जाएगा, तो वहीं से परमात्मा प्रगट होगा। वही परमात्मा हो जाएगा। यह ठीक है। महावीर को ऐसा हुआ। लेकिन महावीर के पीछे चलने वालों को ऐसा हुआ दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए तो महावीर की धारा सिकुड़ गई। उसमें खतरा है। और खतरा यह है कि आत्मा के नाम पर कहीं अहंकार उदघोषणा न करने लगे।
इसलिए जैन मुनि को तुम जितना अहंकारी पाओगे, किसी दूसरे मुनि को उतना अहंकारी न पाओगे। जैन मुनि हाथ जोड़ कर झुक भी नहीं सकता, नमस्कार भी नहीं कर सकता। किसको नमस्कार करे? तुम नमस्कार करो तो वह नमस्कार का उत्तर भी नहीं दे सकता। वह सिर्फ आशीर्वाद दे सकता है। उसके हाथ जुड़ते ही नहीं। विधि बिल्कुल सही है, लेकिन बड़ी सुगमता से खतरा है। हर विधि का खतरा है, वह याद रखना जरूरी है।
नानक की विधि में वह खतरा नहीं है। क्योंकि नानक खुद को स्मरण करने को नहीं कहते। वे कहते हैं कि सभी प्राणियों का एक दाता है, उसे मैं न भूलूं। सब के भीतर एक का ही वास है। अनेक के भीतर एक छिपा है--एक ओंकार सतनाम। पत्ते-पत्ते में वही कंपता है। हवा के झोंके में वही बहता है। बादल में, आकाश में, चांद-तारों में, कण-कण में, मिट्टी में, सबमें वही है। उसे मैं न भूलूं। वह मुझे याद रहे। उसकी याददाश्त घनी होती जाए। उसकी याददाश्त मेरे भीतर क्रिस्टलाइज्ड हो जाए। वह मेरे भीतर एक सघन तत्व बन जाए।
तो इसमें अहंकार का कोई खतरा नहीं है। इसमें तुम कभी अहंकारी न हो सकोगे। इसलिए नानक से विनम्र ज्ञानी खोजना कठिन है। क्योंकि अगर वही है, तो तुम सभी को हाथ जोड़ सकते हो। तुम सभी के पैर छू सकते हो, क्योंकि सभी में वही है। और जिसके तुम पैर छू रहे हो चाहे उसे पता न हो, लेकिन तुम्हें तो पता है।
यह खतरा नानक की विधि में नहीं है, लेकिन एक दूसरा खतरा है। और वह खतरा
यह है कि सभी में वही है, उसकी स्मृति कहीं ऐसा न हो कि आत्मविस्मृति बन जाए। कहीं ऐसा न हो कि वह सबमें है, इसलिए तुम भूल ही जाओ कि मैं भी हूं। तो एक गहरी नींद लग जाएगी। योग-तंद्रा हो जाएगी। तब तुम बेहोश-बेहोश से जीने लगोगे। तुम उसे सब जगह देखोगे, सिर्फ अपने में न देख पाओगे। वह चारों तरफ दिखाई पड़ेगा। दसों दिशाएं उससे भर जाएंगी, लेकिन ग्यारहवीं तुम्हारी दिशा अछूती रह जाएगी। तो तुम उसका गुण-गान करोगे, तुम उसकी महिमा गाओगे, लेकिन तुम खुद उस महिमा से वंचित रह जाओगे। यह खतरा है।
लेकिन यह खतरा पहले खतरे से छोटा खतरा है। क्योंकि जो सोया है उसे जगाया जा सकता है। लेकिन जो अहंकार से भर गया है उसकी नींद भयंकर है। वह कोमा में है। उसे जगाना बहुत मुश्किल है। वह कोई साधारण नींद में नहीं है। उसको तुम हिलाओ-डुलाओ, कोई फर्क न पड़ेगा। तंद्रा तोड़ी जा सकती है। इसलिए योगियों ने उसे अलग से नाम दिया है, योग-तंद्रा। उसको निद्रा भी नहीं कहा। क्योंकि निद्रा को तोड़ने में थोड़ी तकलीफ है। तंद्रा को तोड़ने में जरा भी तकलीफ नहीं है। तुम तंद्रा में हो और कोई ताली बजा दे तो टूट जाएगी।
नानक का मार्ग महावीर के मार्ग से सुगम है। पर खतरे को हमेशा याद रखना चाहिए। हर मार्ग का खतरा तो होगा ही। क्योंकि हर मार्ग पर भटकने की संभावना है, हर मार्ग से च्युत हो जाने की संभावना है। और तुम ऐसे हो कि अगर तुम्हें खतरा न बताया जाए, तो पूरी संभावना है कि तुम भटक जाओगे। महावीर का मार्ग त्याग में भटक गया। नानक का मार्ग भोग में भटक गया। क्योंकि महावीर ने कहा कि संसार को बिल्कुल छोड़ दो। भोग का कणमात्र न बचने दो। तुम परम संन्यस्त हो जाओ। उसका परिणाम यह हुआ कि महावीर के त्यागी संसार के दुश्मन हो कर जीए। और जब तुम किसी के दुश्मन हो कर जीते हो तो जिसके तुम दुश्मन हो, उससे तुम बंधे रह जाते हो। जिससे तुम्हारी शत्रुता है उसे तुम भूल नहीं पाते। उसका स्मरण बना रहता है। तो महावीर का जो त्यागी है वह चौबीस घंटे संसार से लड़ रहा है। लड़ने की वजह से संसार का स्मरण कर रहा है। आत्मा वगैरह का स्मरण तो एक तरफ रह गया है, भोजन, कपड़ा, उठना, बैठना, कहां सोना, नहीं सोना, उस सब में उसकी झंझट लगी हुई है। वह भटक गया त्याग में।

नानक ने ठीक दूसरी बात कही कि सब कुछ वही है। सब कुछ उसी का है। संसार
को छोड़ कर कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं। संसार में ही वह मौजूद है। तो नानक का मानने वाला संसार में भटक गया। नानक ने कहा कि संसार को छोड़कर कहीं जाने की जरूरत नहीं; इसका मतलब यह नहीं कि संसार काफी है। संसार में ही उसको खोजना है।
इसलिए तुम देखो, पंजाबी हैं, सिक्ख हैं, सिंधी हैं, नानक को मानने वाला
जो वर्ग है इस मुल्क में उसको तुम देखो। खाने में, पीने में, कपड़े पहनने में सारा जीवन उसका लगा हुआ है। वह सोच रहा है कि संसार से बाहर तो कुछ है ही नहीं, बस यही सब कुछ है।
संसार में रह कर उसे पाना है। संसार सब कुछ नहीं है। संसार छोड़ कर जाने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन तब खतरा है। तब संसार ही सब कुछ बन जाए। इसलिए नानक के पीछे चलने वाला वर्ग संसारी हो कर रह गया है। उसके देखने- सोचने का सब ढंग संसारी है।
ये बड़े खतरे हैं। हर मार्ग के साथ खतरा है। और अगर तुम खतरे से सचेत नहीं हो, तो सौ में निन्यान्नबे मौके पर तुम खतरे में ही जाओगे। क्योंकि तुम्हारी बुद्धि जैसी है, वह ठीक तो चल ही नहीं सकती। वह तिरछी चलती है। तुमने कभी गधे को चलते देखा? वह कभी बीच रास्ते पर नहीं चलता। वह हमेशा दीवाल, इस तरफ या उस तरफ, अति पर चलता है। बुद्धि को गधा कहना उचित है। तुम बुद्धुओं को गधा कहते हो, लेकिन बुद्धिमानी ही गधापन है। क्योंकि बुद्धि चलती ही किनारे से, एक अति पकड़ती या दूसरी अति। और बुद्धिमान का लक्षण है, मध्य में होना। और वहां खतरा है।
इसलिए नानक की परम गुह्य बातें खो गईं। सिक्ख तो हैं, नानक का सिक्ख कहां? जिसने सिखावन सुनी हो, जिसने अपने सिर को छोड़ा हो, जो श्रद्धा और हृदय से भरा हो। और जिसने एक बात स्मरण रखी हो, "एक गुर से सब हल हो जाता है, कि सभी प्राणियों का एक है दाता, उसे मैं कभी न भूलूं।"
वह स्मरण बना रहे। उसकी सतत प्रतीति बनी रहे। उठते-बैठते वह मुझमें समा जाए। मैं जो भी करूं, वह उसके स्मरण के साथ ही हो। तो तुम संसार में रहते हुए संसार के पार हो जाओगे। यहां रहते हुए वहां पहुंच जाओगे। मंदिर जाने की जरूरत नहीं, घर ही मंदिर हो जाएगा। साधारण कामकाज उसकी विशिष्ट गरिमा से भर जाएगा। तुम्हारा कोई काम साधारण न रहेगा, असाधारण हो जाएगा। जहां भी तुम नहाओगे वहीं गंगा होगी।
लेकिन डर है कि तुम सोच लो, फिर कुछ करने को नहीं बचा। फिर हम जहां नहा रहे हैं वहीं ठीक है। गंगा का सवाल नहीं है, तुम्हारा सवाल है। तुम जब भिन्न होते हो तो गांव की साधारण सी नदी गंगा हो जाती है। और तुम जब भिन्न नहीं होते, तुम गंगा को भी साधारण नदी बना लेते हो। तुम्हारे साधारण और असाधारण होने का सवाल है।
क्या है साधारणपन? साधारणपन है बिना स्मरण के जीना। और असाधारणपन है उसके स्मरण से जीना। और उसका स्मरण मूल्यवान है। उसके लिए कुछ भी खोना पड़े तो तुम तैयार रहोगे, लेकिन उसके स्मरण को खोने को तैयार न रहोगे।
इसलिए नानक कहते हैं, "सिखावन जो सुन लेता, उसकी बुद्धि रत्न, जवाहर और माणिक जैसी हो जाती है।"
क्यों माणिक, रत्न और जवाहर की वे बात कर रहे हैं? वे इसलिए कर रहे हैं
कि अगर जरूरत पड़ेगी तो तुम कुछ और छोड़ दोगे, लेकिन माणिक को न छोड़ोगे। तुम्हारे खीसे में रुपए का नोट है और माणिक पड़ा है; जरूरत पड़ी तो तुम रुपए का नोट छोड़ दोगे। जरूरत पड़ी तो तुम पूरा घर छोड़ दोगे, लेकिन माणिक को न छोड़ोगे। क्योंकि तुम जानते हो, वह सबसे मूल्यवान है। जीवन से सब छूट जाए लेकिन स्मरण न छूटेगा। क्योंकि तुम जानते हो, सब जीवन दो कौड़ी का है। वह स्मरण माणिक की भांति है। वह सर्वाधिक बहुमूल्य है।
"अगर किसी की आयु चारों युगों के बराबर हो जाए, उससे भी दस गुनी हो जाए, अगर नवों खंड के लोग उसे जानते हों और उसके साथ चलते हों, जिसको सुनाम प्राप्त हो, और जिसकी कीर्ति सारे जगत में फैली हो, वह भी अगर उसकी दृष्टि में नहीं जंचता है, तो कोई भी मूल्य नहीं है। उसके पूछ का कोई भी अर्थ नहीं है, उसे कोई भी नहीं पूछता।"
जे जुग चारे आरजा। होर दसूणी होई।।

नवा खंडा विचि जाणीऐ। नालि चलै सभु कोई।।
चंगा नाउ रखाइकै। जसु कीरति जगि लेइ।।
जे तिसु नदर न आवई। त बात न पुछै केइ।।
नानक कहते हैं कि तुम्हारे पास चारों युगों की उम्र हो, सतयुग से लेकर कलियुग तक; जितनी इस सृष्टि की उम्र है, उतनी तुम्हारी उम्र हो, उससे भी दस गुनी हो जाए, नवों खंडों के लोग, सारे सृष्टि के लोग तुम्हें जानते हों, तुम्हारे साथ चलते हों, बड़ा तुम्हारा सुनाम हो, सारे जगत में तुम्हारी कीर्ति हो, फिर भी अगर उसकी दृष्टि में तुम न जंचे, तो कुछ भी सार नहीं है। इसे थोड़ा सोचें। और हमारी यही तलाश है, सारी दुनिया हमें जान ले, सारी दुनिया का साम्राज्य हमारा हो, उम्र हो, धन हो, सुयश हो, सुनाम हो, यही हमारी खोज है। और नानक कहते हैं, तुम सब पा लो, तुम पूरी सृष्टि के मालिक हो जाओ, लेकिन उसे न जंचो, तो कुछ भी सार नहीं है।
क्या बात है? क्या कारण है?
सब पा कर भी तुमने कभी किसी को तृप्त होते देखा? पूछो अरबपतियों से, पूछो सिकंदरों से, हिटलरों से। तुमने कभी उन्हें तृप्त देखा? कभी तुमने उनके आसपास ऐसा भाव, ऐसी हवा देखी, जो खबर देती हो कि सब मिल गया?
उलटी ही हालत है। जितना तुम ऐसे लोगों के करीब जाओगे, उतना ही पाओगे, उनकी दरिद्रता बड़ी है। उनका भिक्षापात्र बड़ा हो गया है, वे और मांग रहे हैं। नवखंड काफी नहीं हैं। चारों युगों की उम्र पर्याप्त नहीं है। उनकी मांग, जो भी मिल जाए, उससे बड़ी है। उनका अभाव अनंत है। वह भरा नहीं जा सकता। उसे भरने का कोई उपाय नहीं। उनकी तृष्णा दुष्पूर है, उनकी चाह की कोई सीमा नहीं है। वह जो भी मिल जाता है, चाह आगे चली जाती है।
चाह आगे ही चलती जाती है। चाह तुमसे मीलों आगे चलती है। तुम जहां जाते हो, वह तुमसे पहले पहुंच जाती है। और जितना ज्यादा तुम्हारे पास होता है, उतना ही तुम्हें एहसास होने लगता है कि तुम किसी गलत मार्ग पर चल रहे हो। क्योंकि तृप्ति तो मिलती ही नहीं। लौट भी नहीं सकते। क्योंकि अहंकार कहता है, कहां लौटकर जाते हो?
दो भिखमंगे एक झाड़ के नीचे विश्राम कर रहे थे। और एक भिखमंगा रो रहा था, शिकायतें कर रहा था। जब सम्राट रोते हैं और शिकायतें करते हैं, तो बिचारा भिखमंगा! वह कह रहा था, यह भी कोई जीवन है। आज इस गांव, कल उस गांव। बिना टिकट सफर करो। कहीं भी उतार दिए जाओ। जो देखो वही उपदेश दे; मांगो रोटी, मिले उपदेश। जो देखो वही कहे, भले-चंगे हो, जाओ काम करो। हर जगह अपमान, हर जगह निंदा, यह भी कोई जीवन है? और खदेड़े जाते हैं हर जगह से। पुलिस वाले सदा पीछे खड़े हैं। जहां सोओ वहीं से उठाए जाओ, रात पूरी नींद भी एक जगह नहीं ले सकते।
तो दूसरे ने कहा, तो फिर तुम यह काम छोड़ ही क्यों नहीं देते? उसने कहा, क्या? क्या मैं स्वीकार कर लूं कि मैं असफल हो गया?
भिखमंगा भी स्वीकार कर नहीं सकता कि वह असफल हो गया है। तो करोड़पति तो कैसे स्वीकार करे? तो राजनीतिज्ञ तो कैसे स्वीकार करे कि असफल हो गया है? नहीं, वह कहता है, सिद्ध कर के रहूंगा। हालांकि आज तक कोई भी सिद्ध न
कर पाया। नहीं तो महावीर, बुद्ध, नानक सब मूढ़ हैं। कोई भी सिद्ध नहीं कर पाया कि मिलने से कुछ मिलता है। लेकिन अहंकार पीछे नहीं लौटना चाहता। अहंकार कहता है, और आगे बढ़ो। शायद थोड़ी ही दूर हो मंजिल। कौन जानता है? दो कदम और। आशा का जाल फैलता चला जाता है। और अहंकार पीछे नहीं लौटने देता, आशा आगे की तरफ खींचती है। आशा भविष्य का रास्ता बनाती जाती है। अहंकार कहता है, इतने चल आए, और अब तक कभी स्वीकार न की कमजोरी कि हम गलत मार्ग पर हैं, अब कैसे स्वीकार करो? ढांक लो, छिपा लो, किसी तरह चलते जाओ। कभी सफलता मिलेगी ही निश्चित।
तुम्हारे सब सफल लोगों के भीतर असफलता के आंसू छिपे हैं। वे प्रकट नहीं करते। इसलिए उनके पब्लिक फेसेस और उनके प्राइवेट फेसेस अलग हैं। उनका जो चेहरा वे दिखाते हैं जनता में, वह अलग है। उनका चेहरा जो वे अपने बाथरूम में आईने में देखते हैं, वह बिल्कुल अलग है। तुम उन्हें रोते पाओगे। जब जनता में देखोगे, तब तुम उन्हें मुस्कुराते पाओगे। उनकी

मुस्कुराहट झूठी है। उस मुस्कुराहट के भीतर कुछ भी नहीं है, सिर्फ आंसू छिपे हैं।
नानक कहते हैं कि सब मिल जाए तो भी तृप्ति नहीं मिलती। तृप्ति तो तभी मिलती है, यदि तुम उसे भा जाओ। और तब नंगे फकीर को भी मिल जाती है। जिसके पास कुछ नहीं है, उसे भी हमने आनंदित देखा है। और जिनके पास सब है उन्हें भी दुखी।
तो जरूर तृप्ति का सूत्र कहीं और है। वह तुम्हारे पास क्या है, इससे उसका कोई संबंध नहीं। तुम्हारा परम-सत्ता से क्या संबंध है, उससे उसका संबंध है। तुम्हारे पास क्या है, इससे निर्णय नहीं होता कि तुम तृप्त हो। तुम और परमात्मा के बीच क्या नाता है, उस दिशा में तुमने कैसे सूत्र बांधे हैं, उससे पता चलता है कि तुम तृप्त हो या अतृप्त हो। अगर उससे नाता बन गया, अगर तुम उसकी तरफ सन्मुख हो गए... और वही है अर्थ इस बात का कि अगर तुम उसे जंच गए।
तुम तो उसे जंचे ही हुए हो, नहीं तो वह तुम्हें पैदा क्यों करे? तुम उसे जंचे ही हुए हो, अन्यथा वह तुम्हें इतना अवसर क्यों दे? तुम उसे जंचे ही हुए हो। लेकिन तुम पीठ किए खड़े हो। जंच जाने का अर्थ है, जब तुम उन्मुख हो जाते हो। और तुम जब उसकी सूरत को सब सूरतों में देखते हो, और तुम हर जगह उसी का वास पाते हो, पत्थर भी तुम्हें धोखा नहीं दे सकता। तुम पत्थर में भी उसी को धड़कते पाते हो। जब तुम सब तरफ उसी को पाते हो, तब तुम जंच गए।
नानक कहते हैं, यदि मैं उसको भा गया, तो मैंने तीर्थों में स्नान कर लिया। उतरी स्वर्ग की गंगा तुम्हारे ऊपर। यह गंगा जो हिमालय से बहती है प्रयाग और काशी छूती हुई, इस गंगा में नहाने से कुछ भी न होगा। उसकी गंगा उतरनी चाहिए। उसको जंच जाना चाहिए। भा गए तुम उसे! स्वीकार हो गए!
"वह भी अगर उसकी दृष्टि में नहीं जंचता, तो कोई उसे नहीं पूछता।"
कितना तुम पा लो, व्यर्थ है। तुम्हारा सब पाना गहरे अर्थों में गंवाना है। तुम्हारी सब संपदा सिवाय विपदा के और कुछ भी नहीं। एक ही संपदा है--उसको जंच जाना। वही जब तुम्हारी खोज बन जाती है, तो तुम संसार में संन्यासी हो गए। करते तुम सब हो, ध्यान उसका रखते हो। घूमते तुम सब तरफ हो, नजर उस पर रखते हो। क्षुद्र, बड़े छोटे काम में लगे रहते हो, लेकिन विस्मरण उसका नहीं होने देते। वह तुम्हारे भीतर है।
यह जो सुमिरन है, यह जो सुरति है, यह जो अजपा जाप है--धीरे-धीरे-धीरे तुम जंच जाओगे। तुम उसे भा जाओगे। और जिस दिन तुम उसे भा जाते हो, उस दिन तुम्हारे जीवन में नृत्य उतरता है, उत्सव उतरता है। उस दिन तुम्हारे पास कुछ भी नहीं होता। और सब कुछ होता है।
"वह कीटों में भी कीट बना दिया जाता है, और दोषी भी उस पर दोष मढ़ने लगते हैं।"
वह जो परमात्मा से वंचित है, सब पा ले, तो भी कीटों में कीट बना दिया जाता है, और दोषी भी उस पर दोष मढ़ने लगते हैं।
"नानक कहते हैं कि वह गुणहीनों को गुणी बना देता है, और गुणवानों को और गुण देता है। प्रभु के सिवाय और कोई नहीं है जो गुण प्रदान कर सके।"
प्रभु के सिवाय और कोई नहीं है जो तुम्हें गुण प्रदान कर सके। तुम उसे अगर चूक गए तो सब चूक गए। वही निशाना है। याद रखो प्रतिपल, वही निशाना है। अगर तुम्हारे जीवन का तीर उस तक न पहुंचा, तो कहीं भी पहुंच जाए, वह असफलता है। एक ही सफलता है, वह परमात्मा को पा लेना है। और सब असफलताएं हैं। एक ही उपलब्धि है, उसे जंच जाना।
तुम कभी सोचो। तुम किसी को प्रेम करते हो और तुम जंच जाते हो, प्रेमी तुम्हें स्वीकार कर लेता है, प्रेमी तुम्हें हृदय से लगा लेता है, तब तुम्हारे जीवन में कैसी पुलक आती है! तब तुम्हारे पैर जमीन पर नहीं पड़ते। तब तुम हवा में उड़ते हो। जैसे तुम्हें पंख लग जाते हैं। और कुछ अज्ञात घूंघर तुम्हारे जीवन में बजने लगते हैं, जो तुमने कभी न सुने। तुम्हारे चेहरे की रौनक बदल जाती है, रंग बदल जाता है। तुम्हारी आंखें किसी और ही बात की खबर देने लगती हैं।
प्रेम को छिपाना इसीलिए तो मुश्किल है। तुम सब छिपा लो, प्रेम को तुम नहीं छिपा सकते। अगर तुम्हें किसी से प्रेम हो गया, तो वह प्रगट होगा ही।

उसको बचाने का कोई भी उपाय नहीं। क्योंकि तुम चलोगे और ढंग से, उठोगे और ढंग से, तुम्हारी आंखें उसकी खबर देंगी। तुम्हारा रोआं-रोआं उसकी खबर देगा। क्योंकि प्रेम एक स्मरण है। साधारण जीवन में भी अगर तुम्हारा प्रेमी तुम्हें स्वीकार कर ले तो तुम इतनी पुलक से भर जाते हो; तुम जरा हिसाब लगाओ, पूरा अस्तित्व तुम्हें स्वीकार कर ले तब तुम्हारी पुलक कैसी होगी? पूरा अस्तित्व तुम्हें प्रेम करे, हृदय से लगा ले, आलिंगन घटित हो, तुम पूरे अस्तित्व के साथ प्रेम में बंध जाओ... ।
यही तो मीरा कह रही है कि कब कृष्ण तुम मेरी शय्या पर आओगे? ये प्रतीक प्रेमी के हैं। मीरा कह रही है, मैंने सेज-शय्या को संवार कर रखा है। फूलों से तुम्हारी सेज बनाई है। कब तुम आओगे? कब तुम मुझे स्वीकार करोगे?
भक्त भगवान के लिए ऐसा ही प्यासा है, प्रेयसी जैसे प्रेमी के लिए, जैसे चकोर स्वाति की बूंद के लिए। प्यासा है, पुकार रहा है, फिर एक बूंद भी तृप्ति बन जाती है। एक बूंद भी मोती बन जाती है। और जब उतनी पुकार और प्यास से कोई जीता है, तो साधारण पानी मोती हो जाता है।
अगर उतनी ही पुकार और प्यास हो, तो गुरु की एक सिखावन माणिक बन जाएगी।
एक बूंद काफी है। एक बूंद सागर हो जाएगी। और जिसने गुरु की सिखावन समझ ली... सिखावन ही क्या है? छोटा सा सूत्र है। समझ लो तो बहुत छोटा है। न समझो, तो अनंत जन्म बीत जाते हैं। छोटा सा सूत्र है, नानक कहते हैं, गुरा इक देहि बुझाई, सारी प्यास बुझा देता है एक गुर।
सभना जीआ का इकु दाता, सो मैं बिसरि न जाई।।
बस, उसको भर मैं विस्मरण न करूं। एक छोटा सा गुर सारी प्यास बुझा देता है। सारी तृष्णा मिटा देता है। सारी चाह खो जाती है।
नानक कहते हैं, "वह गुणहीनों को गुणवान बना देता है। गुणी बना देता है।"
उसकी तरफ चेहरा हुआ कि तुम पात्र हुए। पात्र तुम सदा ही थे, खाली थे। उसकी तरफ चेहरा हुआ, भर गए। उसकी महिमा ने तुम्हें आकर आंदोलित कर दिया। वीणा तो तुम्हारी सदा से तैयार थी। तुमने उसके हाथों में सौंप दी, उसकी अंगुलियों ने छुआ, संगीत का जन्म हो गया। संगीत सोया था, अंगुलियों की प्रतीक्षा थी। लेकिन तुम सौंपो अपनी वीणा को उसे तब!
उस सौंपने का नाम ही श्रद्धा है। सौंपने का नाम ही शिष्यत्व है, सिक्ख
हो जाना है। सौंपने का नाम ही समर्पण। उस सौंपने का नाम ही संन्यास। कि तुम अपनी वीणा उसके हाथों में दे दो और तुम कहो, जो तेरी मर्जी। तेरी मर्जी अब मेरा जीवन होगी। मैं तुझे स्मरण रखूं इतना मेरा, शेष सब तेरा। तू मुझे कभी न भूले इतनी मेरी मांग। और सारी मांग समाप्त। एक छोटा सा गुर!
नानक कहते हैं, "वह गुणहीनों को गुणी बना देता है। और गुणवानों को और गुण देता है।"
एक ही तो गुण है जीवन में कि तुम्हारे पात्र में वह समा जाए, भर जाए, कि तुम अकेले न रहो, उसका संग-साथ हो जाए, कि तुम अकेले न भटको। अन्यथा तुम उसे खोजोगे कई जगह, पाओगे न।
कोई उसे धन में खोजता है कि शायद कोई संगी-साथी मिल जाए। कोई पत्नी में खोजता है, कोई पति में खोजता है। लेकिन वह सब खोज अधूरी है। तुम जब तक उसको सीधा न खोजोगे, तुम उसे न पा सकोगे। उसको पाते ही सब दुर्गुण बिसर जाते हैं।
इसलिए नानक तुमसे न कहेंगे कि एक-एक दुर्गुण को मिटाओ। क्योंकि वे तो अनंत हैं। चोरी छोड़ो, बेईमानी छोड़ो, हत्या छोड़ो, क्रोध छोड़ो, काम, लोभ, मोह, मत्सर, क्या-क्या छोड़ोगे? वे तो अनंत हैं। नानक तुमसे नहीं कहते कि तुम उनको छोड़ने में लग जाओ एक-एक को।
नानक तो कहते हैं कि तुम उन्मुख हो जाओ परमात्मा की तरफ। उसको स्मरण करो। और जैसे ही वह तुम्हारी तरफ देखेगा, उसकी नजर तुम पर पड़ेगी कि सब बदल जाएगा। तुम स्वीकार हो गए। तुम जंच गए। क्रोध अपने से तिरोहित हो जाएगा। लोभ अपने से गिर जाएगा।
जिसने उसे पा लिया, उसको कैसा लोभ! अब क्या पाने को बचा? जिसने उसे पा लिया, अब कैसा क्रोध! अब कौन क्रोध करने को बचा है? जिसने उसे पा लिया, अब कैसा काम! अब कैसी वासना! परम संभोग घटित हो गया। अस्तित्व के साथ मिलन हो

गया। आखिरी विवाह हो गया। अब किस प्रेमी की तलाश? कबीर कहते हैं, मैं राम की दुलहनिया! मैं उसकी दुलहन हूं। और जब राम से लगाव हो गया और जब राम की दुलहन बन गए, अब कैसी कामवासना?
कामवासना में हम उसी को खोजते थे। गंदे नदी-नालों में हम उसी की गंगा
को खोजते थे। तृप्त नहीं होते थे, क्योंकि उस गंदगी से हम तृप्त न हो सकेंगे। ऐसे ही, जैसे हंस को हम पानी पिला रहे हों नदी-नाले का, गंदा, नालियों का, और हंस तृप्त न होता हो! उसे मानसरोवर चाहिए। तुम्हारा हंस भी मानसरोवर मांगता है। स्फटिक जैसा स्वच्छ जल मांगता है। परमात्मा से कम तुम्हारी प्यास को कोई भी बुझा न सकेगा। और जैसे ही तुम उसकी तरफ मुड़े, सब दुर्गुण गिर जाते हैं। तुम गुणों से भर जाते हो।
"गुणियों को और गुण दे देता है। कहते हैं नानक, प्रभु के सिवाय और नहीं
है कोई जो गुण प्रदान कर सके।"
नानक निरगुणि गुणु करे। गुणुवंतिआ गुणु दे।।
तेहा कोई न सुझई। जि तिसु गुणु कोई करे।।
उसके अतिरिक्त तुम कहीं भी भटको, तृप्त न हो सकोगे। उसके अतिरिक्त तुम भटक ही रहे हो जन्मों-जन्मों से और अभी तक तुम्हें होश नहीं आया। आशा अभी भी बंधी है कि शायद उसके बिना पहुंच जाएंगे। और अहंकार पीछा कर रहा है कि इतने-इतने दिन किया, अब उसको ऐसे ही गंवा दें?

तुम उस तरह के आदमी हो कि एक आदमी मकान बनाए, और मकान जीर्ण-जर्जर हो, उसकी नींव ठिकाने की न हो, रेत पर रखी हो। और अचानक जब मकान बनने के करीब आए, तब कोई कहे कि इस मकान के भीतर मत जाना, यह मकान गिर जाएगा, इसमें तुम मरोगे। तो तुम्हारा मन कहेगा कि इतना खर्च किया, इतनी मेहनत की, इतनी मुश्किल से बनाया। क्या वर्षों की मेहनत को ऐसे ही जाने दें? और तुम्हारे मन में आशा उठेगी कि कौन जाने गिरे न गिरे! कौन जाने यह विशेषज्ञ गलत हो! और अब तक तो खड़ा ही रहा है, तो क्या कठिनाई है कि आगे भी खड़ा रहे? बस, यही तुम्हारी हालत है।
जैसे कोई आदमी रास्ते पर भटक जाए और हम उससे कहें कि तू रास्ता पीछे छोड़ आया है।
मैं पढ़ रहा था... एक कवि अपने संस्मरण लिख रहा है। उसने अपने संस्मरण मुझे देखने भेजे। उसमें एक संस्मरण मुझे सच में पसंद आया।
उसने लिखा है कि वह भटक गया। हिमालय के एक तराई में यात्रा को गया, रास्ता भटक गया। तो एक झोपड़े के सामने उसने अपनी कार खड़ी की। एक स्त्री ने दरवाजा खोला। और उसने पूछा उससे कि मैं ठीक रास्ते पर तो हूं? मैं मनाली पहुंचना चाहता हूं, पहुंच जाऊंगा न? उस स्त्री ने गौर से देखा और उसने कहा कि मुझे अभी यह ही पता नहीं कि तुम किस तरफ जा रहे हो? तुम जा किस तरफ रहे हो? कवि ने सोचा कि पहाड़ी स्त्री है, समझदार ज्यादा नहीं दिखाई पड़ती। तो उसने कहा कि तू इतना ही मुझे बता दे कि मेरी गाड़ी का प्रकाश जो है, वह ठीक मनाली के रास्ते की तरफ पड़ रहा है? उसने कहा, एक प्रकाश पड़ रहा है--लाल वाला!
जब कोई तुम से कहे--पचास मील चल कर तुम आ गए, या हजार मील चलकर आ गए; और तुम कितने मील चल चुके हो, कुछ गिनती नहीं--अचानक कहे कि तुम्हारा लाल प्रकाश तो गंतव्य की तरफ पड़ रहा है, तो तुम्हें धक से सदमा पहुंचेगा। इसका मतलब है, पीछे लौटना पड़ेगा। तुम्हारा अहंकार कहेगा कि थोड़ी और कोशिश कर लो। कौन जाने यह स्त्री सही हो या न हो! पागल हो, झूठ बोलती हो, कोई प्रयोजन हो इसका, कोई लक्ष्य हो, भटकाना चाहती हो, क्या भरोसा?
पीछे लौटने में अहंकार को चोट लगती है कि क्या मैं इतनी देर तक गलत था? इसलिए बच्चों को सिखाना आसान, बूढ़ों को सिखाना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि उनका मतलब है कि वे चल चुके साठ साल, सत्तर साल। क्या सत्तर साल तक वे गलत थे? इसलिए बच्चे को तो सिखाना आसान है, क्योंकि वह चला ही नहीं। कोई अहंकार नहीं। तुम जहां चलाओ वह चलने को राजी है। बूढ़ा, जहां चलाओ वहां चलने को राजी नहीं, उसके रास्ते पक्के हैं। वह कहता है, मेरा रास्ता ठीक।
क्योंकि उन्हीं रास्तों पर उसका अहंकार निर्भर है।

और तुम सब बूढ़े हो। न मालूम कितने जन्मों से चल रहे हो। वही तो अड़चन है। इसलिए छोड़ने की हिम्मत भी नहीं होती। क्योंकि इतने-इतने जन्मों की चेष्टा व्यर्थ गई? इतने-इतने जन्मों तक मैं अज्ञानी था? इसलिए तो ज्ञानी के पास जाने में तुम डरते हो। पहुंच भी जाओ, तो अपने को बचाते हो। पच्चीस दलीलें और तरकीबें खोज-खोज कर बचाते हो। कहीं उसकी वर्षा तुम पर हो ही न जाए! कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे ज्ञान का और अनुभव का चोगा गिर जाए।
और ध्यान रखो, तुम्हें पीछे लौटना पड़े। क्योंकि रास्ता तो तुम बहुत पीछे छोड़ आए हो। इसलिए तो जीसस कहते हैं कि फिर से बच्चे की भांति हो जाओ। वह लौटने के लिए कह रहे हैं। कि कृपा करो, लौटो, रास्ता पीछे छूट गया है। फिर से बच्चे की तरह हो जाओ। बुद्धि को हटा दो। और बहुत गुणों की वर्षा होगी। वह सदा हुई है।
नानक कुछ बहुत पढ़े-लिखे नहीं हैं। न कोई बड़े अमीर हैं। साधारण घर में पैदा हुए हैं। न कोई बड़ी शिक्षा हुई है। पहले दिन ही पाठ चला और बंद हो गया। फिर भी वर्षा हो गई।
जब नानक पर हो गई, जब कबीर पर हो गई वर्षा, तुम पर क्यों न होगी? बस, कहीं एक ही बात चूक रही है। वह यह कि तुम विमुख खड़े हो। पीठ किए खड़े हो। "एक ही गुर से सब हल हो जाता है, कि सभी प्राणियों का एक दाता है, उसे मैं न भूलूं।"
गुरा इक देहि बुझाई--
सभना जीआ का इकु दाता, सो मैं बिसरि न जाई।।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
पांचवां प्रवचन

नानक भगता सदा विगासु

पउड़ीः 8
सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथ। सुणिऐ धरति धवल आकास।।
सुणिऐ दीप लोअ पाताल। सुणिऐ पोहि न सकै कालु।।
"नानक" भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु।।

पउड़ीः 9
सुणिऐ ईसर बरमा इंदु। सुणिऐ मुख सालाहणु मंदु।।
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिमृति वेद।।
"नानक" भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु।।

पउड़ीः 10
सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठसठि का इस्नानु।।
सुणिऐ पढ़ि पढ़ि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहज धिआनु।।
"नानक" भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु।।

पउड़ीः 11
सुणिऐ सरा गुणा के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह।।
सुणिऐ अंधे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु।।
"नानक" भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु।।

महावीर ने चार घाट कहे हैं, जिनसे उस पार जाया जा सकता है। दो घाट तो समझ में आते हैं--साधु का, साध्वी का; शेष दो घाट थोड़े कठिन मालूम होते हैं--श्रावक का और श्राविका का। श्रावक का अर्थ है, जो श्रवण में समर्थ है; जो सुनने की कला सीख गया; जिसने जान लिया कि सुनना कैसे; जिसने पहचान लिया कि सुनना क्या है।
महावीर ने कहा है कि कुछ तो साधना कर-करके उस पार पहुंचते हैं, कुछ केवल सुन कर उस पार पहुंच जाते हैं। जो सुनने में समर्थ नहीं है, उसे ही साधना की जरूरत पड़ती है। अगर तुम सुन ही लो पूरी तरह तो कुछ करने को बाकी नहीं रह जाता; सुनने से ही पार हो जाओगे।
इसी श्रवण की महिमा को बताने वाले नानक के ये सूत्र हैं। ऊपर से देखने
पर अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम पड़ेंगे कि क्या सुनने से सब कुछ हो जाएगा? और हम तो सुनते रहे हैं--जन्मों-जन्मों से और कुछ भी नहीं हुआ! हमारा अनुभव तो यही कहता है कि सुन लो--कितना ही सुन लो--कुछ भी नहीं होता; हम वैसे ही बने रहते हैं। हमारे चिकने घड़े पर शब्द का कोई असर ही नहीं पड़ता; गिरता है, ढलक जाता है; हम अछूते जैसे थे, वैसे ही रह जाते हैं। अगर हमारा अनुभव सही है तो नानक सरासर अतिशय करते हुए मालूम पड़ेंगे। लेकिन हमारा अनुभव सही नहीं है; क्योंकि हमने कभी सुना ही नहीं है। न सुनने की हमारी तरकीबें हैं, पहले उन्हें समझ लें।
पहली तरकीब तो यह है कि जो हम सुनना चाहते हैं, वही हम सुनते हैं; जो कहा जाता है, वह नहीं। हम बड़े होशियार हैं। हम वही सुनते हैं जो हमें बदले न। जो हमें बदलता है, उसे हम सुनते ही नहीं; हम उसके प्रति बहरे होते हैं। और यह कोई संतों का ही कथन हो, ऐसा नहीं है; जिन लोगों ने वैज्ञानिक ढंग से मनुष्य की इंद्रियों पर शोध की है, वे भी कहते हैं कि हम अट्ठान्नबे प्रतिशत सूचनाओं को भीतर लेते ही नहीं; सिर्फ दो प्रतिशत को लेते हैं। हम वही देखते हैं, वही सुनते हैं, वही समझते हैं, जो हमसे तालमेल खाता है; जो हमसे तालमेल नहीं खाता वह हम तक पहुंचता ही नहीं। बीच में बहुत सी हमने रुकावटें खड़ी कर रखी हैं।
और जो तुमसे तालमेल खाता है, वह तुम्हें कैसे बदलेगा? वह तो तुम जैसे हो, उसे और मजबूत करेगा। जिससे तुम्हारी बुद्धि राजी होती है, कनविन्स

होती है, वह तुम्हें कैसे रूपांतरित करेगा? वह तो तुम्हें और आधार दे देगा जमीन में, और मजबूत पत्थर दे देगा, जिन पर तुम बुनियाद उठा कर खड़े हो जाओगे।
हिंदू वही सुनता है जिससे हिंदू-मन मजबूत हो। मुसलमान वही सुनता है जिससे मुसलमान-मन मजबूत हो। सिक्ख वही सुनता है जिससे सिक्ख की धारणा मजबूत हो। तुम अपने को मजबूत करने के लिए सुन रहे हो? तुम अपनी धारणाओं में और भी गहरे उतर जाने के लिए सुन रहे हो? तुम अपने मकान को और मजबूत कर लेने के लिए सुन रहे हो? तब तुम सुनने से वंचित रह जाओगे। क्योंकि सत्य का न तो सिक्ख से कोई संबंध है, न हिंदू से, न मुसलमान से। तुम्हारी कंडीशनिंग, तुम्हारे चित्त का जो संस्कार है, उससे सत्य का कोई भी संबंध नहीं है।
जब तुम अपनी सब धारणाओं को हटा कर सुनोगे, तभी तुम समझ पाओगे कि नानक
का अर्थ क्या है! और अपनी धारणाओं को हटाने से कठिन काम जगत में दूसरा नहीं है; क्योंकि वे बहुत बारीक हैं, महीन हैं, पारदर्शी हैं। वे दिखाई भी नहीं पड़तीं; कांच की दीवाल है। जब तक तुम टकरा ही न जाओ, तब तक पता ही नहीं चलता कि दीवाल है; तब तक लगता है कि खुला आकाश तो दिखाई पड़ रहा है, चांद-तारे दिखाई पड़ रहे हैं; लेकिन बीच में एक कांच की दीवाल है।
जब मैं बोल रहा हूं, तो कभी तुम भीतर कहते हो, हां ठीक--जब तुमसे मेल खाता है; कभी तुम भीतर कहते हो, यह बात जंचती नहीं--जब तुमसे मेल नहीं खाता। तो तुम, मैं जो कह रहा हूं, उसे नहीं सुन रहे हो; जो तुमसे मेल खाता है, जो तुम्हें और सजाता-संवारता है, शक्तिशाली करता है, वही तुम सुन रहे हो। शेष को तुम छोड़ ही दोगे। शेष को तुम भूल ही जाओगे। अगर कोई बात तुमने सुन भी ली, जो तुम्हारे विपरीत पड़ती है, तो तुम उसे भीतर खंडित करोगे; तर्क जुटाओगे; हजार उपाय करोगे कि यह ठीक नहीं हो सकता। क्योंकि एक बात तो तुम मान कर बैठे हो कि तुम ठीक हो। तो जो तुमसे मेल खाए, वही सच; जो तुमसे मेल न खाए, वह झूठ।
अगर तुम सत्य को ही पा गए हो, तो फिर सुनने की कोई जरूरत ही नहीं है। वह
भी तुमने पाया नहीं है; सुनने की जरूरत भी कायम है; सत्य को खोजना भी है; और इस धारणा से खोजना है कि सत्य मुझे मिला ही हुआ है! तुम कैसे खोज सकोगे? सत्य के पास तो नग्न, शून्य, खाली हो कर जाना पड़ेगा। सत्य के पास तो तुम्हें अपनी सारी धारणाओं को छोड़ देना पड़ेगा। तुम्हारे सारे विश्वास, तुम्हारे सिद्धांत, तुम्हारे शास्त्र अगर बीच में रहे तो तुम कभी भी न सुन पाओगे। और जो तुम सुनोगे और समझोगे कि मैंने सुना है, वह तुम्हारी अपनी ही प्रतिध्वनि होगी। वह नहीं जो कहा गया था, वह जो तुम्हारे भीतर प्रतिध्वनित हुआ। तुम अपने ही मन की कोठरी को प्रतिध्वनित होते हुए सुनते रहोगे। तब तुम्हें नानक के वचन बड़े अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम पड़ेंगे। दूसरा ढंग बचने का है कि लोग अक्सर, जब भी कोई महत्वपूर्ण बात कही जाए, तंद्रा में हो जाते हैं। वह भी मन का बचाव है। वह भी बड़ी गहरी प्रक्रिया है। जब भी कोई चीज तुम्हें छूने के करीब हो, तब तुम सो जाओगे।
मैं एक बड़े पंडित के घर मेहमान था। वे बड़े विद्वान हैं, शास्त्रों के ज्ञाता हैं और रामायणी तो उन जैसा दूसरा नहीं। लाखों लोग उन्हें सुनते हैं। रात जब हम दोनों सोने गए तो एक ही कमरे में बिस्तर थे; प्रकाश बुझा कर हम अपने बिस्तरों पर लेट गए। तभी मैंने सुना कि उनकी पत्नी अंदर आयी और उनके कान में कुछ फुसफुसा कर बोली। वह मुझे सुनाई पड़ गया। पत्नी ने कहा, ऐ जी, सुनो! मुन्ना सो नहीं रहा है, चल कर उसे कुछ कह दो। तो पंडित जी ने कहा कि मेरे चल कर कहने से क्या होगा! पत्नी ने कहा कि मैंने लाखों लोगों को तुम जब बोलते हो--तुमने बोलना शुरू किया नहीं कि उन्होंने सोना शुरू किया नहीं--लाखों लोगों को तुम्हारी सभा में सोते देखा है, तो यह एक अकेले मुन्ने का क्या बस है! चल कर दो शब्द इससे कह दो, तो सो जाए।
धर्म सभा में लोग नींद पूरी करने के लिए ही जाते हैं। जिनको रात में नींद नहीं आती, उनको भी धर्म सभा में नींद आ जाती है। क्या होता है? तुम्हारे मन का कोई खेल है, तरकीब है। तुम जो नहीं सुनना चाहते, उसके प्रति तुम नींद में अपने को ढांक लेते हो; अपने को बचा लेते हो। नींद तुम्हारा

रक्षा-कवच है। तो तुम ऐसे लगते हो कि सुन रहे हो, लेकिन तुम सजग नहीं होते। और बिना सजगता के कैसे सुना जा सकेगा।
तुम बोलते वक्त सजग होते हो, सुनते वक्त सजग नहीं होते। और ऐसा कोई धर्म सभा में ही होता हो, ऐसा नहीं है; जब भी कोई दूसरा तुमसे बोलता है, तभी तुम सजग नहीं होते; क्योंकि एक इंटरनल डायलाग है, एक भीतर चलने वाला वार्तालाप है, जिसमें तुम दबे हो। दूसरा बोले जाता है। तुम ऐसा भाव भी प्रकट करते हो कि मैं सुन रहा हूं; लेकिन वह भाव-भंगिमा है, भीतर तुम बोले जा रहे हो। और जब तुम भीतर बोल रहे हो तो तुम किसको सुनोगे? तुम, भीतर जो बोल रहा है, उसको ही सुनोगे। क्योंकि बाहर के बोलने वाले की आवाज तो तुम्हारे तक पहुंच ही न पाएगी। तुम्हारी अपनी आवाज की गूंज काफी है। और इसलिए तो तुम्हें नींद मालूम होने लगती है। क्योंकि तुम अपने से ऊबे हुए हो।
जब तुम बोलते हो, तब तुम थोड़े सजग होते हो। लेकिन जब तुम सुनते हो, तब तुम मूर्च्छित होने लगते हो; क्योंकि तुम अपने से ऊबे हुए हो। यह बात तो तुम कई दफे भीतर कर चुके हो जो आज फिर कर रहे हो। यह तो पुनरुक्ति है। उससे ऊब पैदा होती है। उससे नींद मालूम होने लगती है। वह भी बचाव है। और वह इस बात की खबर है कि भीतर एक वार्तालाप चल रहा है।
भीतर का वार्तालाप जो तोड़ देगा, वही सुनने में समर्थ होता है। श्रवण
की कला तब उपलब्ध होती है, जब भीतर का वार्तालाप बंद हो जाता है। और एक क्षण को भी भीतर का वार्तालाप बंद हो जाए तो तुम पाओगे आकाश खुल गया, अनंत आकाश खुल गया। और सब जो अनजाना था, जाना हो गया। जिसकी थाह न थी, उसकी थाह मिल गयी। जो अपरिचित था, उससे परिचय बना। जिससे कोई पहचान न थी--जो अजनबी था--वह अपना हुआ। अचानक!
यह जगत तुम्हारा घर है। अगर एक क्षण को भी तुम्हारा भीतर का वार्तालाप टूट जाए... सारे सत्संगों का, सारे गुरुओं का एक ही लक्ष्य है कि किस भांति तुम्हारे भीतर का वार्तालाप तोड़ा जाए। वे उसे ध्यान कहें, मौन कहें, योग कहें, नाम स्मरण कहें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सारी चेष्टा यह है कि भीतर तुम्हारी जो एक सतत धारा चल रही है शब्दों की, उसको छिन्न-भिन्न कैसे करना! उसमें बीच में खुली जगह कैसे आ जाए! थोड़ी भी देर को खुली जगह आ जाए तो तुम समझ पाओगे कि नानक क्या कह रहे हैं।
नानक कहते हैं, "श्रवण से ही सिद्ध, पीर, देवता और इंद्र होते हैं। श्रवण से ही धरती और आकाश स्थित है। श्रवण से ही द्वीप, लोक, पाताल चल रहे हैं। श्रवण से ही मृत्यु स्पर्श नहीं करती। नानक कहते हैं, श्रवण से ही भक्त सदा आनंदित होते हैं और श्रवण से ही दुख तथा पाप का नाश होता है।"
सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथ। सुणिऐ धरति धवल आकास।।
सुणिऐ दीप लोअ पाताल। सुणिऐ पोहि न सकै कालु।।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु।।
भरोसा नहीं आता कि सुनने से ही कोई सिद्ध, पीर, देवता और इंद्र हो जाता है! और सुनने से ही धरती और आकाश चल रहे हैं! और सुनने से ही द्वीप, लोक, पाताल खड़े हैं! सुनने से ही मृत्यु स्पर्श नहीं करती! अतिशयोक्ति मालूम पड़ती है।
जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। क्योंकि जैसे ही तुम्हें सुनने की कला आयी, तुम्हें जीवन से परिचित होने की कला आ गयी। और जैसे ही तुम्हें अस्तित्व का बोध होना शुरू हुआ, तुम पाओगे कि जैसा सन्नाटा तुम्हारे भीतर है सुनने के क्षण में, श्रवण के क्षण में जैसी शून्यता तुम्हारे भीतर है, वही शून्यता तो सारे अस्तित्व का आधार है। उससे ही आकाश टिका है, उससे ही पाताल टिका है। उसी शून्य पर, उसी मौन में तो सारा जगत परिभ्रमण कर रहा है। उसी मौन में बीज टूटता है और वृक्ष बनता है। उसी मौन में सूरज उगता है। उसी मौन में चांद-तारे बनते हैं और बिखरते हैं। जब तुम अपने भीतर शब्दों को शून्य कर देते हो, तब तुम उस जगह पहुंच गए जहां से सृष्टि पैदा होती है और जहां सृष्टि लीन होती है।
ऐसा हुआ कि एक मुसलमान फकीर नानक के पास आया और उसने कहा कि मैंने सुना है कि तुम चाहो तो क्षण में मुझे राख कर दो और तुम चाहो तो क्षण में मुझे बना दो। यह चमत्कार है; मुझे भरोसा नहीं आता। पर आदमी ईमानदार था,

मुमुक्षु था; ऐसे ही कुतूहल से नहीं आ गया था। साधक था, जो पूछा था, बड़ी अभीप्सा से पूछा था।
नानक ने कहा तो फिर आंख बंद कर लो और शांत हो कर बैठ जाओ, तो जो तुम चाहते हो, वह मैं करके ही दिखा दूं। वह फकीर आंख बंद करके शांत हो कर बैठ गया।
अगर मुमुक्षु न होता तो भयभीत हो जाता। क्योंकि जो पूछा था, खतरनाक पूछा था कि राख कर दो, मिटा दो, फिर बना दो। प्रलय और सृष्टि तुम्हारे हाथ में है, ऐसा मैंने सुना है।
सुबह का वक्त--ऐसी ही सुबह रही होगी। एक गांव के बाहर एक वृक्ष के नीचे, एक कुएं के पास नानक बैठे थे। उनके भक्त मरदाना और बाला मौजूद थे। वे भी थोड़े हैरान हुए कि ऐसा तो नानक ने कभी किसी से कहा नहीं! और अब क्या होगा! वे भी सजग हो गए। उस क्षण जैसे आस-पास वृक्ष भी सजग हो गए होंगे। पत्थर भी सजग हो गए होंगे। क्योंकि नानक ने कहा, बैठ जाओ, आंख बंद करो, शांत हो जाओ। जैसे ही तुम शांत हो जाओगे, मैं चमत्कार दिखा दूंगा।
वह फकीर शांत हो कर बैठ गया। बड़ी आस्था का आदमी रहा होगा। वह भीतर बिल्कुल शून्य हो गया। नानक ने उसके सिर पर हाथ रखा और ओंकार की ध्वनि की।
और कहानी कहती है कि वह आदमी राख हो गया। फिर नानक ने ओंकार की ध्वनि की। और कहानी कहती है, वह आदमी फिर निर्मित हो गया।
अगर कहानी को ऊपर से पकड़ोगे तो चूक जाओगे। लेकिन भीतर यह घटना घटी। जब
वह सब भांति शांत हो गया और नानक ने ओंकार की ध्वनि की, श्रवण को उपलब्ध हुआ, भीतर का वार्तालाप टूट गया। सिर्फ ओंकार की ध्वनि गूंजी। उस ध्वनि के गूंजने के बाद प्रलय की स्थिति भीतर अपने आप हो जाती है। सब खो गया--सब संसार, सब सीमाएं--राख हो गया, ना-कुछ हो गया। भीतर कोई भी न बचा, खोजे से भी कोई न मिला। कोई था ही नहीं, घर सूना था। फिर नानक ने ओंकार की ध्वनि की। वह आदमी वापस लौटा। उसने आंखें खोलीं। उसने चरणों में, पैरों में सिर रखा और कहा कि मैं तो सोचता था, यह असंभव है। लेकिन यह करके दिखा दिया!
कहानी को मानने वाले इसे न समझ पाएंगे। वे तो समझते हैं कि वह आदमी राख हो गया, फिर राख से नानक ने उसको बना दिया। ये सब नासमझी की बातें हैं। तब तुम समझे नहीं, चूक गए। पर भीतर प्रलय और सृष्टि की घटना घटती है। लेकिन वह फकीर सुनने में समर्थ था। जब कोई सुनने में समर्थ होता है तो तुम मुझे ही थोड़े सुनोगे! सुनने की कला आ गयी। मैं तो बहाना हूं, गुरु तो बहाना है। सुनने की कला आ गयी तो जब वृक्षों में हवाएं बहेंगी, तब भी तुम सुनोगे। और उस सन्नाटे में तुम्हें ओंकार का नाद सुनाई पड़ेगा; जीवन का जो मूल स्वर है, वह सुनाई पड़ेगा। पर्वत से पानी का झरना गिरेगा, उसके नाद को तुम सुनोगे। उस नाद में तुम पाओगे कि सभी शून्य में टिका है। नदियां उसी में बहती हैं, सागर उसी में लीन होते। तुम आंख बंद कर दोगे तो तुम अपनी ही हृदय की धड़कन सुनोगे; खून की गति की धीमी-धीमी आवाज सुनोगे। और तुम पाओगे, यह मैं नहीं हूं; मैं तो सुनने वाला हूं; मैं तो साक्षी हूं। फिर तुम्हें मृत्यु स्पर्श न कर पाएगी। जिसे सुनने की कला आ गयी, उसे कुछ भी जानने को बाकी न रहा।
इसलिए नानक कहते हैं, "श्रवण से ही सिद्ध, पीर, देवता और इंद्र होते हैं। श्रवण से धरती और आकाश स्थित हैं। श्रवण से ही द्वीप, लोक, पाताल चल रहे हैं।"
सारा अस्तित्व श्रवण से हो रहा है। श्रवण का अर्थ हुआ, सारा अस्तित्व शून्य से हो रहा है। और जब तुम श्रवण में होते हो, तब शून्य की छाप तुम पर आती है, तब शून्य तुम में गूंजता है। वही गूंज अस्तित्व की मौलिक गूंज है। वही ध्वनि अस्तित्व की मूल इकाई है।
"श्रवण से ही मृत्यु स्पर्श नहीं करती।"
और एक बार तुमने सुनना जान लिया, फिर कैसी मृत्यु! क्योंकि सुनने वाले
को साक्षी का बोध हो जाता है। अभी तुम सोच-सोच कर सुनते हो। सोचने वाला तो मरेगा। सोचने वाला तो मरणधर्मा है। जिस दिन तुम बिना सोचे सुनोगे, सिर्फ सुनोगे, उस दिन तो विटनेस, साक्षी हो जाओगे। इधर मैं बोलूंगा, उधर तुम्हारा मस्तिष्क सुनेगा, और एक तीसरा भी तुम्हारे भीतर होगा, जो देखेगा कि सुना जा रहा है। उस दिन एक नए तत्व का तुम्हारे भीतर आविर्भाव होगा। एक

नई प्रक्रिया संगठित होगी। एक नया क्रिस्टलाइजेशन होगा। वह है साक्षी का। साक्षी की कोई मृत्यु नहीं है।
इसलिए नानक कहते हैं, "श्रवण से ही मृत्यु स्पर्श नहीं करती। नानक कहते हैं, श्रवण से ही भक्त सदा आनंदित होते हैं और श्रवण से ही दुख तथा पाप का नाश होता है।"
कैसे चुप हो जाओ और कैसे तुम्हारे भीतर का चलने वाला सतत वार्तालाप टूटे; कैसे क्षण भर को बादल छटें और खुला आकाश दिखायी पड़े; कैसे सिलसिला भीतर मिटे--यही सारी प्रक्रिया है।
यहां तुम बैठे हो। मैं बोल रहा हूं। साथ ही साथ तुम्हें बोलने की कोई
भी तो जरूरत नहीं है। तुम चुप हो सकते हो। बस पुरानी आदत है, वह भीतर बोले चली जा रही है। आदत की वजह से!
एक छोटे से बच्चे से मैं पूछ रहा था कि तेरी छोटी बहन बोलने लगी या नहीं! उसने कहा, बोलने तो लगी, कब का सीख गई बोलना! अब सब उसको मौन होना सिखा रहे हैं। अब वह चुप ही नहीं होती, बोलती ही रहती है। पहले बिल्कुल चुप थी तो हम सबने मिल कर बोलना सिखाया और अब सब मिल कर चुप होना सिखा रहे हैं, जो कि ज्यादा कठिन काम मालूम होता है।
तुम बिन बोले आए, क्या तुम्हारा दिल बोलते-बोलते जाने का है? तब तुम जीवन से भी वंचित हो जाओगे और मृत्यु का भी परम स्पर्श, परम आनंद तुम्हें न हो सकेगा। तुम चुप आए, चुप ही जाने की तैयारी करो। बोलना बीच में है, संसार के लिए है, उपयोगी है। जब तुम दूसरे से बात कर रहे हो, तब बोलने का उपयोग है। जब तुम चुप बैठे हो, तब बोलना पागलपन है। बोलना एक प्रक्रिया है, जिससे हम दूसरे से संबंधित होते हैं। चुप होना दूसरी प्रक्रिया है, जिससे हम अपने से ही संबंधित होते हैं। चुप रहोगे तो दूसरे से संबंधित होना मुश्किल है, बोलोगे तो अपने से संबंधित होना मुश्किल है। बोलना तो एक सेतु है, जिसके माध्यम से हम दूसरे तक पहुंचते हैं। चुप होना एक सेतु है, जिससे हम अपने तक पहुंचते हैं। कहीं तुम साधन की भूल कर रहे हो।
अगर कोई आदमी चुपचाप बैठा रहे, किसी से बोले ही न, तो उसका कोई संबंध निर्मित न होगा। धीरे-धीरे लोग उसे भूल जाएंगे। इसलिए गूंगे से दीन आदमी दूसरा नहीं दिखाई पड़ता; अंधा भी उतना दीन नहीं मालूम पड़ता जितना गूंगा दीन मालूम पड़ता है। तुम कभी गौर करो। गूंगे पर सबसे ज्यादा दया आएगी। क्योंकि अंधा देख नहीं पाता, यह सच है, लेकिन फिर भी संबंध तो बना लेता है। पति हो सकता है, पत्नी बन सकता है, बेटे से बोल सकता है, मित्र बना सकता है, समाज का हिस्सा हो सकता है। गूंगा अपने में बंद! कहीं जाने का कोई उपाय नहीं, किसी से संबंध होने के लिए कोई रास्ता नहीं खुलता। गूंगा जैसे किसी से संबंधित न हो पाएगा। और उसकी तुम अड़चन समझो। बाहर जाना चाहता है, नहीं जा सकता। उसके इशारे गौर से देखो। कितनी तड़प से इशारे करता है और जब तुम नहीं समझते हो तो कैसा बेहाल हो जाता है! कैसा हेल्पलेस, कैसा असहाय अपने को पाता है! गूंगे से ज्यादा दयनीय कोई भी नहीं, क्योंकि गूंगा समाज का हिस्सा नहीं हो पाता। मित्र नहीं बना सकता। किसी से बोल नहीं सकता। किसी से अपने प्रेम की चर्चा नहीं कर सकता। किसी से अपने हृदय की बात नहीं कह सकता। किसी से अपना दुख नहीं कह सकता कि थोड़ा हल्का हो जाए।
जैसे गूंगा असमर्थ हो जाता है दूसरे से संबंध बनाने में, वैसे ही तुम असमर्थ हो गए हो अपने से संबंध बनाने में। क्योंकि वहां तुम बोले जा रहे हो। वहां गूंगे होने की जरूरत है। वहां बिल्कुल चुप हो जाने की जरूरत है; क्योंकि दूसरा वहां है ही नहीं। वार्तालाप किससे कर रहे हो? किससे बोल रहे हो भीतर? खुद ही जवाब दे रहे हो, खुद ही प्रश्न उठा रहे हो--यही तो विक्षिप्तता का लक्षण है। पागल में और तुममें फर्क क्या है? पागल जोर-जोर से खुद से बात करता है, तुम धीरे-धीरे करते हो, बस इतना ही फर्क है। किसी दिन तुम भी जोर-जोर से करने लगोगे। तब तुम भी पागल हो जाओगे। अभी तुम पागलपन को जैसे दबा-दबा कर बैठे हो, वह कभी भी फूट सकता है। वह नासूर है; उससे मवाद कभी भी बह सकती है।
भीतर की वार्ता क्यों चल रही है? क्या कारण है? आदत! पूरे जीवन तुम्हें सिर्फ बोलना सिखाया गया है। बच्चा घर में पैदा होता है तो जो पहली बात हम सिखाने की कोशिश करते हैं, वह यह कि किसी तरह बोले। और जो बच्चा

जितनी जल्दी बोलता है, वह उतना उपयोगी सिद्ध होता है समाज में। उसको लोग प्रतिभाशाली कहते हैं, वह जितनी जल्दी बोलता है। जितनी देर से बोलता है, उतना प्रतिभाहीन कहते हैं। बोलने की कला सामाजिक कला है। मनुष्य समाज का हिस्सा है। इसलिए हम पहली चिंता यह करते हैं कि बच्चा बोले। और जब बच्चा बोलता है तो मां-बाप कितने प्रसन्न होते हैं!
फिर जीवन की जितनी भी जरूरतें हैं, सब बोलने से पूरी होती हैं। भूख लगी तो बोलो, प्यास लगी तो बोलो, कहो। जीवन की रक्षा है बोलने में। मौन का फायदा ही क्या है! इस जिंदगी में कोई फायदा नहीं दिखाई पड़ता। मौन इस संसार में कोई भी तो अर्थ नहीं रखता। मौन से तुम क्या खरीदोगे? मौन से क्या बाजार से लाओगे? मौन से कौन सी जरूरत पूरी होगी? बोलने से शरीर की सब जरूरतें पूरी होती हैं। और इसलिए बोलने के हम अभ्यस्त होते जाते हैं। फिर तो हम रात भी बोलते हैं, नींद में भी बोलते हैं। फिर हम चौबीस घंटे बोलते ही रहते हैं। फिर बोलना हमारे भीतर आटोनामस, यंत्रवत हो जाता है।
हम बोलते ही रहते हैं। रिहर्सल करते हैं। किसी से बोलने के पहले भीतर बोलते हैं कि क्या कहेंगे। बोलने के बाद फिर दुहराते हैं कि क्या कहा। फिर धीरे-धीरे हम यह भूल ही जाते हैं कि इस बोलने के द्वारा हम कुछ खो रहे हैं। बाहर तो लाभ हो रहा है, भीतर विनाश हो रहा है। संसार में तो गति हो रही है, अपने से संबंध टूट रहे हैं। दूसरों से तो जुड़ रहे हैं, अपने से दूर जा रहे हैं। दूसरों के तो पास आ रहे हैं, खुद की निकटता खोती जा रही है। फिर जितने तुम कुशल हो जाओगे इसमें, उतना ही मौन कठिन हो जाएगा। आदत! और आदत को कोई एक क्षण में नहीं तोड़ सकता।
तुम समझ भी लो, तुम्हें बिल्कुल समझ में भी आ जाए कि बात सही है, खुद से बोलने की क्या जरूरत है? जब कोई चलता है तो पैर चलाता है, बैठे-बैठे तो पैर चलाने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि कहीं और जाना हो तो पैर चलाने पड़ते हैं, जब कहीं जाना ही नहीं हो, बैठे हो, तब पैर क्यों चलाना! जब भूख लगती है तब कोई खाना खाता है, जब भूख न लगी हो तब कोई खाना खाता रहे तो विक्षिप्त हो जाएगा। जब नींद आती हो तब सो जाना पड़ता है। जब नींद न आती हो तब सोने की चेष्टा करनी व्यर्थ परेशान होना है। लेकिन यह तुम बोलने के संबंध में कभी नहीं सोचते कि जब जरूरत हो तब हम इसका उपयोग करेंगे; जब जरूरत न होगी तब बंद कर देंगे।
ऐसा लगता है कि तुम भूल ही गए हो कि बोलने की प्रक्रिया रोकी और जारी
की जा सकती है। बिल्कुल की जा सकती है। अन्यथा सारे धर्म असंभव हैं। धर्म संभव होते हैं मौन से। इसीलिए श्रवण की इतनी तारीफ कर रहे हैं नानक। इधर श्रवण की तारीफ गौर से समझो तो मौन की तारीफ है। वह महिमा मौन की है कि तुम चुप हो जाओ, ताकि तुम सुन सको कि क्या कहा जा रहा है। तुम अपने में ही डूबे बैठे हो; तुम अपनी ही चलाए जा रहे हो; तुम अपनी ही बोले जा रहे हो--यह समझ में आ जाए तो भी तुम इसी क्षण रोक नहीं सकते। क्योंकि आदतें समय लेती हैं जाने में। और आदतों को तोड़ना हो तो विपरीत आदत बनाने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।
तो मौन का अभ्यास करना पड़ेगा। साधुओं के सत्संग में रहने का एक ही तो अर्थ है कि तुम मौन का अभ्यास करो। गुरु के पास जाने का एक ही तो प्रयोजन है कि वहां तुम्हें बोलने को क्या है, सिर्फ सुनने को है; तुम सुनोगे, चुप बैठोगे। गुरु के पास तुम वार्तालाप करने थोड़े ही जाते हो।
एक मित्र कुछ दिन पहले आए। उन्होंने कहा, आपसे कुछ चर्चा करनी है। मैंने कहा, चर्चा करनी है तो आप करें, मैं सुनूंगा; लेकिन फिर मैं नहीं बोलूंगा। उन्होंने कहा कि नहीं, विचार का लेन-देन। मैंने कहा, आपके पास विचार हों तो मुझे कुछ लेना नहीं, कुछ देना नहीं। निर्विचार हों तो मैं कुछ दे सकता हूं। और आपके पास कुछ देने को हो तो मैं लेने को राजी हूं। कुछ भी देने को नहीं है, लेकिन विचार का लेन-देन करना है! लोग कहते हैं, ऐक्सचेंज आफ थाट्स--तुम्हारा पागलपन तुम मुझे दो, मेरा पागलपन मैं तुम्हें दूं। वैसे ही दोनों काफी पागल थे और लेन-देन की कोई जरूरत न थी। गुरु के पास हम वार्तालाप के लिए नहीं आते, चुप होने आते हैं। और जब हम चुप हो जाते हैं, तभी वह बोल सकता है; जब हम चुप हो जाते हैं, तभी हम सुन सकते हैं। श्रवण की महिमा को तुम मौन की महिमा समझना, क्योंकि श्रवण संभव

ही तभी होगा जब तुम चुप हो। और तुम्हारे चुप होने के लिए तुम्हें थोड़े अभ्यास करने पड़ेंगे।
क्या करोगे चुप होने के लिए? कुछ और ज्यादा करना नहीं। कभी दिन में चौबीस घंटे में जब सुविधा हो, घड़ी भर के लिए शांत हो कर बैठ जाओ। भीतर का वार्तालाप चलेगा। तुम उसमें सहयोगी मत बनो। यह सूत्र है। चल रही है चर्चा भीतर, तुम सुनो; जैसे कोई दो आदमी बात कर रहे हैं; लेकिन तुम दूर रहो। तुम उसमें बीच में मत पड़ जाओ। तुम उलझो मत! तुम सुनते रहो कि मन का यह कोना मन के दूसरे कोने से बोल रहा है, मैं सुन रहा हूं। जो आए आने दो। न तुम दबाओ, न तुम हटाओ, न तुम रोकने की कोशिश करो; तुम सिर्फ साक्षी रहो।
बहुत कुछ कचरा निकलेगा, क्योंकि बहुत कुछ तुम दबाए बैठे हो। और मन को कभी खुली छूट नहीं मिली है, फुर्सत नहीं मिली है। जब फुर्सत दोगे तो मन घोड़े की जैसे लगाम टूट गई हो, ऐसा भागेगा। भागने दो। तुम बैठे देखते रहो। बस उस देखने में ही धीरज है। क्योंकि तुम्हारी तबीयत होगी, घोड़े पर सवार हो जाओ; तुम्हारी तबीयत होगी, लगाम पकड़ लो; तुम्हारी तबीयत होगी, घोड़े को बाएं चलाओ कि दाएं चलाओ! पुरानी आदत! उसे तोड़ने के लिए तुम्हें थोड़ा सा धैर्य रखना पड़ेगा--कि घोड़े को जाने दो; मन जहां जाए जाने दो; मैं सिर्फ देखूंगा। मैं कोई नियंत्रण न करूंगा। एक शब्द दूसरे शब्द को लाएगा; क्योंकि सब चीजें जुड़ी हैं। एक शब्द उठेगा; हजार शब्द उठेंगे; क्योंकि कोई भी चीजें असंबंधित नहीं हैं।
फ्रायड ने इस प्रक्रिया का बड़ा उपयोग किया। यह योग की बड़ी पुरानी प्रक्रिया है। फ्रायड को तो शायद पता भी नहीं था, लेकिन उसने पूरे मनोविश्लेषण को इसी के ऊपर आधारित किया। फ्री एसोसिएशन आफ थाट--सब चीजें जुड़ी हैं। एक विचार आता है, उसके कुंदे में फंसा हुआ दूसरा आता है, उसके कुंदे में फंसा तीसरा आता है--एकशृंखला बन जाती है।
एक ट्रेन में मैं सफर कर रहा था। बड़ी भीड़ थी। और टिकिट चेकर आया और एक बूढ़ा आदमी ठीक मेरी सीट के नीचे छिपा हुआ था। उसने उससे पूछा, ऐ बूढ़े, टिकिट दिखा! वह बूढ़ा वहीं गिड़गिड़ाने लगा, हाथ जोड़ने लगा, और कहा, क्षमा कर दें, इस बार बस माफ कर दें। न तो टिकिट है पास और न एक पाई है जेब में। लड़की की शादी करनी है, उसी सिलसिले में गांव जा रहा हूं। बड़ी कृपा होगी! दया आ गई उस टिकिट चेकर को, वह आगे बढ़ गया। लेकिन दूसरी सीट के नीचे एक जवान आदमी भी छिपा हुआ था। उसने सिर्फ मजाक में उससे कहा, क्यों भाई, तुमको भी अपनी बेटी की शादी करनी है क्या? टिकिट कहां है? उस आदमी ने कहा, हजूर, टिकिट तो नहीं है। और बेटी की शादी नहीं करने जा रहा हूं। मैं उस बूढ़े का होने वाला जंवाई हूं।
ऐसे ही चीजें जुड़ी हैं--कोई जंवाई है, कोई ससुर है; दोनों छिपे हैं। उनको थोड़ा बाहर लाने की जरूरत है। तुम्हारे भीतर सारीशृंखला बंधी है। तुम खुद ही हैरान होओगे, चकित होओगे कि कैसे-कैसे विचार से कैसे-कैसे विचारों का संबंध जुड़ा है; वे कहां से चले आते हैं! तुम भयभीत भी होओगे; क्योंकि लगेगा कहीं मैं पागल तो नहीं हो रहा हूं!
मगर यह बड़ा अदभुत प्रयोग है। तुम जो भी हो रहा है होने दो। अगर सुविधा
हो तो और भी अच्छा होगा कि तुम जोर से बोलो, ताकि तुम सुन भी सको। क्योंकि मन में तो महीन होती हैं बातें, हो सकता है, तुम सचेतन न रह सको। तुम्हारे भीतर जो चल रहा है, उसे तुम जोर से बोलो! सुनो भी और भीतर सजगता भी रखो कि मैं दूर रहूंगा; जो भी हो रहा है, उसे बोल दूंगा निष्पक्ष, तटस्थ भाव से। गाली आएगी तो गाली, अपशब्द आएगा तो अपशब्द, राम का नाम आएगा तो राम का नाम, ओंकार आएगा तो ओंकार--जो भी आएगा, मैं बोल दूंगा और सुनता रहूंगा।
अगर तुम तीन महीने सतत एक घंटा रोज इस साहचर्य से गुजर जाओ, तो तुम धीरे-धीरे तीन महीने के बाद अनुभव करना शुरू करोगे कि अब विचार कम आ रहे हैं। क्योंकि तुम्हारा पुराना जो संरक्षित कोष था, वह कम होता जा रहा है। अब चीजें कम रह गई हैं। कभी-कभी एक शब्द आता है, फिर उसकी हुक में बंधा हुआ कोई शब्द नहीं आता, वह अकेले ही आ कर रह जाता है। थोड़ी देर टिकता है, खो जाता है। छह महीने के बाद तुम पाओगे कि कभी-कभी बीच में अंतराल आने लगा; एक पल को कुछ भी नहीं होता, तुम अकेले रह जाते हो। उसी पल में श्रवण की क्षमता शुरू होगी।

लेकिन छह महीने बड़े धैर्यपूर्वक मन को उलीचना जरूरी है, क्योंकि जिंदगी भर उसे भरा है। छह महीने भी अगर तुम बड़े धैर्यपूर्वक करो तो ही यह हो पाएगा, नहीं तो छह साल भी लग सकते हैं, छह जन्म भी लग सकते हैं। तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम कितनी त्वरा से, कितनी समग्रता से इस प्रयोग को करते हो।
और कई बार ऐसा मौका आएगा कि तुम भूल ही जाओगे कि हमें सिर्फ देखना है। तुम सवार हो जाओगे घोड़े पर, यात्रा पर निकल जाओगे। तुम संबंधित हो जाओगे, तुम लीन हो जाओगे; तादात्म्य हो जाएगा। किसी विचार के साथ आइडेंटिटी हो जाएगी। और तब तुम चूक गए, तब प्रयोग असफल हो गया। जैसे ही ख्याल आए, फिर घोड़े से नीचे उतर जाओ। शब्दों को चलने दो, तुम उन पर मत चढ़ो। शब्दों को जहां जाना हो, जाने दो; तुम उनके पीछे अनुसरण भर करो। तुम सिर्फ देखते रहो पीछे-पीछे, क्या हो रहा है।
तो धीरे-धीरे मौन, बहुत धीरे-धीरे मौन की पदचाप सुनाई पड़ेगी। और जिस दिन तुम्हें मौन की पदचाप सुनाई पड़ेगी, उसी दिन तुम्हें श्रवण की कला का भी अनुभव होगा। उस दिन तुम सुन सकोगे। उस दिन तुम्हें गुरु को खोजने न जाना पड़ेगा। उस दिन तुम जहां रहोगे, वहीं गुरु है। वहां वृक्ष में हवा चलेगी, फूल झरेगा, सूखा पत्ता गिरेगा, तुम उसे भी सुन सकोगे। आकाश में बादल गरजेंगे, बिजली चमकेगी, नदी में बाढ़ आएगी, तुम उसे भी सुन सकोगे। समुद्र के किनारे तुमुल नाद होगा, तुम उसे भी सुन सकोगे। एक पक्षी गुनगुनाएगा गीत, एक बच्चा रोएगा, रास्ते पर कुत्ता भौंकेगा, तुम वहां भी सुन सकोगे।
सुनने की कला आ जाए तो गुरु चारों तरफ है। और सुनने की कला न आए तो सभी सिद्ध-पुरुष तुम्हारे सामने बैठे हों, तो भी गुरु नहीं हैं। गुरु होता है उसी क्षण जब तुम सुनने में समर्थ हो गए।
इसलिए नानक कहते हैं, "श्रवण से ही भक्त आनंदित होते हैं। श्रवण से ही दुख तथा पाप का नाश होता है।"
अगर तुम्हें सुनने की कला आ गई तो तुम परम आनंदित हो जाओगे, क्योंकि तुम साक्षी हो गए। साक्षी ही तो आनंद है। श्रवण घटा, मन खो गया; मन का खो जाना ही तो आनंद है। मन के पार चले जाना ही तो आनंद है। श्रवण हुआ, शब्द कीशृंखला टूट गई; शब्द कीशृंखला के अतीत हो जाना ही तो आनंद है। वही अतिक्रमण, ट्रांसेंडेंस है। अब तुम शब्दों की घाटी में न रहे। अब तुम उत्तुंग शिखर हो गए, जहां शब्द पहुंचते नहीं; शब्दों की धूल नहीं पहुंचती। जहां परम मौन है; जहां मौन कभी टूटा ही नहीं; अब तुम उस शिखर पर खड़े हो। उस शांति के शिखर से आनंद के सिवाय और कोई गूंज पैदा नहीं होती। उस शांति के शिखर पर तुम परम-धन्यता को उपलब्ध होते हो।
"श्रवण से ही दुख तथा पाप का नाश हो जाता है।"
जिसने सुन लिया, जिसने सुनना जान लिया, फिर कैसा पाप! क्योंकि पाप होता है विचार के साथ संबंधित होने से। इसे थोड़ा समझो।
मन में एक विचार उठा। रास्ते से एक कार गुजरी। एक झलक, मन में एक विचार
आ गया कि यह कार मेरे पास हो। अब तुम इसमें संयुक्त हो गए। अब यह कार कैसे तुम्हारे पास हो, तुम इस धुन में लग गए। ईमानदारी से मिले तो ईमानदारी से, बेईमानी से मिले तो बेईमानी से--कार होनी चाहिए। अगर कार नहीं है तो अब तुम सो न सकोगे। अब तुम्हारी जिंदगी में एक कठिनाई आ गई; जब तक हल न हो जाए तब तक तुम चैन न पा सकोगे। रात सपने में कार, दिन सोचने में कार; अब कार तुम्हें घेरे हुए है!
हुआ क्या? कार निकली थी, एक विचार उठा। क्योंकि मन में तो जो भी चीज निकलेगी, उसके साथ तत्क्षण प्रतिबिंब बनेंगे। उस विचार के साथ तुम संयुक्त हो गए; तुम दूर न रह सके।
एक सुंदर स्त्री निकली, तुम्हारे मन में एक विचार उठा। मन में विचार उठे, यह बिल्कुल ठीक है; क्योंकि मन तो दर्पण है। वह तो है ही इसलिए कि जो भी आसपास घटे, उसमें प्रतिबिंबित हो। लेकिन तुम तत्क्षण जुड़ गए। सुंदर स्त्री का प्रतिबिंब बनता और सुंदर स्त्री चली जाती, प्रतिबिंब भी चला जाता; तुम साक्षी रहते, तो पाप का कोई उपाय न होता। लेकिन अब किसी भी तरह यह स्त्री चाहिए। राह से मिले, राह से; बेराह मिले, बेराह; प्रेम से मिले,

प्रेम से; हिंसा से मिले, हिंसा से; अगर न हो सके प्रेम तो बलात्कार, लेकिन अब यह स्त्री चाहिए।
अब एक विचार ने तुम्हें ग्रसित कर लिया। एक छाया तुम्हारे मन से गुजरी थी, तुम उसे गुजरते देख लेते और तुम अपने को दूर खड़ा रखते और देखते रहते कि छाया बनी और गयी, तो कोई पाप न उठता। सब पाप उठते हैं, क्योंकि तुम विचार के साथ एक हो जाते हो। फिर विचार तुम्हें इस बुरी तरह पकड़ लेता है-- एक झंझावात की तरह, एक आंधी की तरह--कि तुम्हें झकझोर देता है। और विचार के साथ जा कर भी कुछ मिलता नहीं। दुख मिलता है। तुमने इतना दुख पाया है, वह विचार के साथ जा कर पाया है। पर इतना भी तुम्हें होश नहीं है कि तुम देख सको कि सब दुख विचार के साथ जा कर पाया है। और सब आनंद निर्विचार में घटित होता है।
नानक कहते हैं, श्रवण से दुख तथा पाप का नाश होता है। क्योंकि पाप का
फल है दुख। पाप है बीज, फल है दुख। इधर पाप गया, उधर दुख गया। और जब न पाप है और न दुख है, तब तुम जिस अवस्था में हो, वही समाधि है, वही आनंद है!
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु।।
"सुनने में जो समर्थ हो गया, उसके दुख और पाप नष्ट हो गए। और नानक कहते हैं, वैसा भक्त आनंद को उपलब्ध हो जाता है। और उसका आनंद विकसित ही होता चला जाता है।"
यह विगासु शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमें दोनों बातें छिपी हैं--आनंद
और निरंतर विकासमान। तो आनंद तो एक फूल है जो खिलता ही चला जाता है। ऐसी कोई घड़ी नहीं आती जब पूरा फूल खिल जाए; खिलता ही चला जाता है। पूरे से भी ज्यादा; और पूरा, और पूरा, और परिपूर्ण खिलता चला जाता है। जैसे सुबह का सूरज उगता है और उगता ही चला जाता है और कोई अस्त न हो, ऐसा वह आनंद है। फूल खिलता है और मुरझाए न, कोई अस्त न हो, ऐसा वह आनंद है।
हृदय में जब शून्यता घनी होती है, मौन का जन्म होता है, तो फिर आनंद की लहरें उठती ही चली जाती हैं। ध्यान रखना, आनंद कोई ऐसी घटना नहीं है कि जो वस्तुओं की तरह है, तुमने एक दफे पा लिया और खतम हो गई। वह बढ़ती ही चली जाती है। एक दफा जिसने पा ली, वह बढ़ती ही चली जाती है। उसकी बढ़ती की कोई सीमा नहीं है।
इसलिए तो हम कहते हैं, परमात्मा अनंत है। और इसलिए हम कहते हैं, परमात्मा आनंद है। क्योंकि आनंद अनंत है। तुम कभी उसे पूरा पा न पाओगे। और हर बार तुम पाओगे कि और बढ़ता जा रहा है। और हर जगह तुम पाओगे कि तुम पूरे तृप्त हो। यह पहेली है और बुद्धि से सोचने पर हल नहीं होती। क्योंकि बुद्धि कहती है, अगर मिल गया और तृप्ति हो गई तो अब और बढ़ने को क्या बचा! तृप्ति भी बढ़ती है; क्योंकि तृप्ति जीवंत है, वस्तु नहीं है। तृप्ति एक जीवंत घटना है।
आनंद कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि ले आए खरीद कर एक सेर, दो सेर, बात खतम
हो गई; अनंत है। एक बार तुम उतर गए तो तुम डूबते ही चले जाते हो। और मजे की बात यह है कि हर घड़ी लगता है कि पूरा मिला, और फिर भी बढ़ता है।
पूर्ण भी विकासमान है। पूर्ण भी मृत नहीं है; रुक नहीं गया है; फैलता चला जा रहा है। इसलिए तो हमने इस अस्तित्व को ब्रह्म कहा है। ब्रह्म का अर्थ होता है, जो विस्तृत होता ही चला जाता है। ब्रह्म का अर्थ है, जिसके विस्तार की सीमा कभी नहीं आती; जो उतना ही नहीं है, जितना कल था; जो उतना ही नहीं है, जितना आज है; जो रोज फैलता चला जाता है। जिसका फैलाव अंतहीन है। ब्रह्म शब्द का अर्थ होता है, अंतहीन फैलाव।
"श्रवण से ही विष्णु, ब्रह्मा और इंद्र होते हैं। श्रवण से ही बुरे मुख से भी उसकी प्रशंसा के गीत निकलने लगते हैं। श्रवण से ही योग की युक्ति और शरीर के भेद ज्ञात होते हैं। श्रवण से ही शास्त्र, स्मृति और वेद का अनुभव होता है। नानक कहते हैं कि श्रवण से ही भक्तगण सदा आनंदित होते हैं तथा दुख और पाप का नाश होता है।"
सुन लिया जिसने सत्य को, गुरुवाणी को; जिसने जाना है उसकी सुगंध को; जिसने जाना है उसके पास बैठना जो सीख गया है; जिसे इतनी कला आ गई कि वह चुप हो कर किसी के पास बैठ जाए जिसे घटना घटी है; तो जिसके भीतर घटी है, उससे बह कर तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होने लगती है।

ज्ञान संक्रामक है। आनंद संक्रामक है। तुम्हारे द्वार खुले हों तो बस हवा के झोंके की तरह आनंद तुममें आ जाता है, उस आदमी के पास से, जिसके पास था। उसका कुछ कम नहीं होता, तुम्हारा बढ़ जाता है। बंटने से उसका भी बढ़ता है, क्योंकि उतना ही विस्तीर्ण हो जाता है। चुप अगर तुम हो तो तुम्हारे भीतर जगह है। और ध्यान रखना, अस्तित्व शून्यता को पसंद नहीं करता। तुम इधर शून्य हुए और उधर अस्तित्व ने तुम्हें भरा।
जैसे नदी में तुम पानी भर लो एक घड़े में, तुम भर भी नहीं पाए कि चारों तरफ से पानी दौड़ कर खाली जगह को भर देता है। तुम हवा में से हवा को निकाल लो, चारों तरफ से हवाएं दौड़ कर उसे भर देती हैं। अस्तित्व खाली जगह को पसंद नहीं करता। तुम एक बार खाली होने को राजी भर हो जाओ कि हमेशा ताजी हवाओं से भर दिए जाते हो। तुम इधर खाली हुए, उधर भरे। इस कोने से तुम बाहर निकले, उधर से परमात्मा भीतर आया। तुम जब तक अपने से ही भरे हो, तब तक खाली रहोगे। जिस दिन खाली हो जाओगे, उस दिन उस परम ऊर्जा से भर जाओगे।
नानक कहते हैं, जिनके जीवन में पाप है और जिनके मुख से कभी सुंदर शब्द नहीं निकले, शुभ-वाणी जिनसे कभी प्रकट नहीं हुई, जिनके ओठों से सदा अपशब्द निकले, जिनके मस्तिष्क में सदा अभिशाप रहा, ऐसे बुरे लोग भी अगर एक बार सुन लें, तो महिमा से भर जाते हैं। श्रवण की छोटी सी झलक भी तुम्हें ताजा कर देती है, नहला देती है।
नानक पापियों से पाप छोड़ने को नहीं कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, तुम सिर्फ सुन लो। पाप छूट जाएगा सुनने से। नानक पापियों को सुधरने को नहीं कह रहे हैं कि तुम पहले सुधर जाओ तब तुम सुन पाओगे। तब तो असंभव हो जाएगा, तब तो तुम कभी भी न पहुंच पाओगे। अगर यह शर्त हो कि पहले जब तक तुम शुद्ध न हो जाओगे तब तक सुन न सकोगे, तो तुम कभी सुन ही न सकोगे। तब तो तुम्हारे जीवन में कोई आशा नहीं।
नानक कह रहे हैं, तुम सुन लो, पाप की चिंता छोड़ो, बुराई की चिंता छोड़ो। सुनते ही तुम्हारे जीवन में एक नए सूत्र का आविर्भाव होगा, एक नई चिनगारी पड़ेगी, जो तुम्हारे सारे पाप को जला देगी। तुम्हारा सारा अतीत राख हो सकता है, अगर तुम मौन हो जाओ।
क्योंकि है ही क्या पाप? अतीत में भी तुमने किया क्या है? विचार के साथ संयुक्त हो गए थे और फिर विचार को कृत्य बनाने में लग गए थे--यही तो सारा पाप है। आज तुम विचार से अलग हो जाओ, कृत्य टूट जाए, कर्ता खो जाए-- अतीत से भी संबंध टूट गया। तब तुम ऐसा पाओगे कि अतीत भी एक स्वप्न था, इससे ज्यादा नहीं। तुमने जन्मों-जन्मों में जो किया, वह भी कर्ता होने की भ्रांति के कारण हुआ था। आज भ्रांति टूट गई, वे सब कृत्य समाप्त हो गए। नानक की बात बहुत लोगों को समझ में नहीं पड़ेगी। क्योंकि लोग सोचते हैं कि जो-जो पाप किए हैं, उन पापों के प्रायश्चित में पुण्य करने पड़ेंगे। और जब तक हम पुण्य न करेंगे तब तक पाप कैसे कटेंगे? जो बुरा किया है, उसके ठीक समतौल में तराजू पर भला करना पड़ेगा। हिसाबी-किताबी दिमाग के लोग ठीक ही कहते हैं कि अगर एक बुरा कृत्य किया तो एक भला कृत्य करो, तब तो समतौल होगा। अगर ऐसा होना है तो तुम कभी मुक्त न हो सकोगे। क्योंकि अनंत जन्मों से तुम पाप कर रहे हो, अनंत जन्म तुम्हें लगेंगे पुण्य करने में। और इस बीच भी तुम पाप करने से बचोगे, इसका कोई भरोसा है! तब तो यहशृंखला टूट ही नहीं सकती। तब तो मोक्ष असंभव है।
अनंत जन्मों से किए हुए पाप हैं। इनके अगर एक-एक पाप का चुकतारा करना हो, अगर परमात्मा कोई दुकानदार हो या अदालत का कोई मैजिस्ट्रेट हो और अगर इनका एक-एक पाप का चुकतारा करना हो, तो यह चुकतारा कब पूरा होगा? और इस बीच--तुम अगर पुण्य ही पुण्य करते रहो तो चुकतारा अनंत काल में हो पाएगा-- लेकिन इस बीच तुमसे आशा है कि तुम पुण्य ही पुण्य करते रहोगे?
नहीं, ज्ञानियों ने कुछ और ही बात कही है। ज्ञानी किसी दूसरे ही गणित
से चलते हैं। वे कहते हैं, पाप का सवाल नहीं है, पाप के मूल का सवाल है।
यह वृक्ष खड़ा है सामने, तुम पचास साल से पानी दिए हो इस वृक्ष को; क्या तुम सोचते हो पचास साल लगेंगे पानी वापस निकालने में, तब यह वृक्ष मरेगा? जड़ को आज काट दो, यह आज मरना शुरू हो जाएगा। पत्ते एक-एक तोड़ने में शायद पचास साल लगें, फिर भी वृक्ष न टूटे! क्योंकि पुराने पत्ते टूटेंगे, नए आ

जाएंगे। और अब तो वृक्ष इतना बड़ा हो गया है कि तुम्हें पानी देने की जरूरत भी नहीं। अब तो वह जमीन से अपना पानी ले लेता है।
नहीं, पत्ते अगर काटे तो यह वृक्ष कभी टूटने वाला नहीं। सच तो यह है कि पत्ते तुम एक काटोगे, दो आ जाएंगे। वही तो कलम की सारी कला है। इधर काटो उधर नए आए। अगर तुम पाप काटोगे, नए पाप आ जाएंगे। जड़ पकड़ो! जड़ क्या है? कर्म पत्ते हैं; कर्ता का भाव जड़ है। अगर तुम कर्ता-भाव को काट दो, इसी वक्त वृक्ष सूख गया। सारा स्रोत तुम्हारे कर्ता-भाव से आ रहा था कि मैं कर रहा हूं। कर्ता-भाव को तोड़ने की कला साक्षी है। साक्षी यानी श्रवण।
इसलिए नानक ऐसी अनूठी महिमा गा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि तुम चुप हो
कर सुन लो। क्योंकि सुनने के क्षण में तुम कर्ता नहीं रहोगे। सुनना पैसिव, अकर्ता का भाव है। सुनने में तुम्हें कुछ भी तो नहीं करना पड़ता, तुम सिर्फ बैठे हो। सुनना कोई क्रिया थोड़े ही है! तुम्हें कुछ करना थोड़े ही पड़ता है! बड़े मजे की बात है--देखना हो तो कम से कम आंख खोलनी पड़ती है, कान खुले
ही हुए हैं। देखना हो तो कम से कम आंख खोलने की क्रिया करनी पड़ती है, सुनना हो तो कान खोलने की क्रिया भी नहीं करनी पड़ती। वे खुले ही हुए हैं। इसलिए देखने में तो थोड़ा सा कर्ता का भाव आ भी जाए, सुनने में कर्ता के भाव का कोई उपाय ही नहीं है। कोई दूसरा बोल रहा है, तुम खाली बैठे हो। तुम बिल्कुल निष्क्रिय हो। तुम पैसिव हो। तुम अक्रिया में हो। इसलिए देखने से भी वह महिमा उपलब्ध नहीं होती जो सुनने से उपलब्ध होती है।
इसलिए श्रवण पर इतना जोर दिया है। महावीर कहते हैं, सम्यक श्रवण। बुद्ध कहते हैं, सम्यक श्रवण। नानक अदभुत महिमा का वर्णन कर रहे हैं। सुन लो; वहां कोई कर्ता नहीं है। वहां कोई है नहीं सुनने के क्षण में। अगर तुम चुप हो तो कौन है भीतर? सुनने के क्षण में सन्नाटा है। एक आवाज गूंजती है, गुजर जाती है। कोई भी नहीं है भीतर। विचार आया कि तुम आए। जब विचार नहीं होता, तुम भी नहीं होते। अहंकार विचारों के जोड़ का नाम है। श्रवण अर्थात निरअहंकार दशा।
कहते हैं नानक, "श्रवण से ही योग की युक्ति और शरीर के भेद ज्ञात होते हैं।"
यह बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है।
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिमृति वेद।।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु।।
पश्चिम में शरीर-शास्त्रियों को बड़ी पहेली रही है कि पूर्वीय मनीषियों ने शरीर के रहस्य-भेद कैसे जाने! क्योंकि न तो पूरब में लाश बचायी जाती है। पश्चिम में सर्जरी विकसित हो सकी और शरीर का ज्ञान हो सका, क्योंकि ईसाइयत मुर्दे को बचाती है। हिंदू तो जलाते रहे। तो यहां तो मरा हुआ आदमी पाना डिसेक्शन के लिए असंभव था। राख बचती है; उसमें क्या खोजिएगा? इधर आदमी मरा कि हमने जलाया। तो हिंदू तो मरे हुए आदमी को जलाते रहे, बचाया नहीं। पश्चिम में संभव हो सका कि कब्रों से लाशें खोद ली गईं और उनकी जांच-पड़ताल कर ली गई। उससे आदमी के शरीर का ज्ञान हुआ।
पूरब में कैसे ज्ञान हुआ? फिर पश्चिम में भी ज्ञान अभी हो पाया, वह भी अभी पूरा नहीं हुआ; जब कि इतने वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हैं, जिनसे शरीर की रत्ती-रत्ती जांच हो सकती है। लेकिन पूरब में कैसे ज्ञान हुआ? और ज्ञान करीब-करीब ठीक-ठीक हुआ, गणित की तरह ठीक हुआ। न साधन थे, न लाशें उपलब्ध थीं, न वैज्ञानिक विकास था, तकनीक नहीं थी, टेक्नालाजी नहीं थी, कैसे यह हुआ? बहुत विचार इस पर चलता है। नानक के इस सूत्र में उस विचार का उत्तर है।
"श्रवण से ही योग की युक्ति और शरीर के भेद ज्ञात होते हैं।"
जब तुम शून्य हो कर भीतर विराज जाते हो, तब तुम्हें अपना ही शरीर भीतर
से दिखाई पड़ने लगता है। अभी तुमने अपने शरीर को भी बाहर से देखा है, तो चमड़ी दिखाई पड़ती है। जब तुम अपने शरीर को भीतर से देखोगे तो नाड़ियों का विराट जाल दिखाई पड़ेगा। एक अनूठा अनुभव होता है, जब पहली दफा शरीर भीतर से दिखाई पड़ता है। तुम तो अभी ऐसे हो जैसे अपने ही मकान को चारों तरफ से देखा है, भीतर गए नहीं। बाहर-बाहर घूम रहे हो। तो मकान के बाहर का पलस्तर दिखाई पड़ता है। बस वही तुम्हारा अनुभव है।

जब तुम भीतर जाओगे, जैसे राजमहल में बैठे हुए आदमी को महल भीतर से दिखाई पड़ता है--भीतर का साज-शृंगार, भीतर की सजावट--वैसे ही तुम जब शांत हो कर अपने भीतर बैठ जाते हो, जब मन उलझन खड़ी नहीं करता... । क्योंकि मन सदा बाहर ले जाता है। जैसे ही तुम मन के साथ बंधे कि तुम बाहर गए। मन बाहर जाने का द्वार है। सोचोगे क्या? जो भी सोचोगे, बाहर होगा--धन होगा, स्त्री होगी, मकान होगा, कार होगी, इज्जत होगी, पद-प्रतिष्ठा--जो भी सोचोगे, बाहर होगा। विचार के सभी आब्जेक्ट, विषय-वस्तुएं बाहर हैं। तुम सोचोगे क्या? बाहर का ही कुछ सोचोगे। जैसे ही तुम निर्विचार हुए, बाहर जाना बंद हुआ। ऊर्जा भीतर ठहर गई। तुम अपने सिंहासन पर बैठे और पहली दफे तुम्हें शरीर भीतर से दिखाई पड़ना शुरू हुआ! तब तुम पाओगे, यह शरीर छोटा नहीं है, छोटा दिखाई पड़ता है। इसलिए तो हिंदू कहते हैं, अंड में ब्रह्मांड समाया। इस छोटे से शरीर में--मिनिएचर--समस्त ब्रह्मांड छिपा हुआ है। यह छोटा सा शरीर जैसे सारे ब्रह्मांड की छोटी सी अनुकृति है। जो कुछ सारे जगत में है, वह सब इस छोटे से शरीर में छोटे परिमाण में--एक माडल। जैसे कोई ताजमहल का माडल बनाता है, सब बिल्कुल ताजमहल जैसा, पर छोटी आकृति। ऐसा ही प्रत्येक जीवन समस्त अस्तित्व की छोटी आकृति है।
नानक कहते हैं, जो चुप हो गया, मौन हो गया, जिसने श्रवण की कला सीख ली
और जो अपने ही भीतर अपने शरीर को भी सुनने लगा, उसे शरीर के भेद, योग की युक्ति, सब ज्ञात हो जाती है।
पतंजलि ने जो भी योग-शास्त्र में लिखा है, वह किसी दूसरों के शरीर की जांच से नहीं, अपने ही शरीर के भीतर के अनुभव से लिखा है। और वे वचन अभी भी शत-प्रतिशत सही हैं, कोई अंतर नहीं पड़ा। योग ने जितनी विधियां खोजी हैं, वे अपने ही शरीर के अनुभव से खोजी हैं।
अगर तुम शांत हो कर बैठोगे--कुछ उदाहरण के लिए मैं तुम्हें कहूं--जैसे
ही तुम शांत हो कर बैठोगे, तुम पाओगे, तुम्हारे श्वास की गति बदल गई तत्क्षण। विचार बंद हुए, श्वास की गति बदल जाती है। विचार चले, श्वास की गति बदल जाती है। जब तुम शांत हो कर बैठोगे, अगर तुमने पहचान लिया कि श्वास की गति बदली, अब कैसी गति है श्वास की! जब भी तुम शांत होना चाहो श्वास की वही गति कर लो, तुम तत्क्षण शांत हो जाओगे। तुम्हें एक रहस्य पता चल गया, तुम्हें एक कुंजी हाथ में आ गई।
जब तुम बिल्कुल शांत हो कर बैठे, तब तुम देखो कि तुम्हारी रीढ़ की क्या स्थिति है। जब तुम शांत हो कर बैठोगे, तुम पाओगे, रीढ़ अपने-आप नब्बे का कोण बना लेती है जमीन से। स्वस्थ आदमी हो, बूढ़ा न हो, बीमार न हो, तो जैसे ही शांत होगा, रीढ़ नब्बे का कोण बना लेगी। तुम्हें एक कुंजी हाथ आ गई। जब भी तुम शांत होना चाहो, रीढ़ को नब्बे का कोण बना दो जमीन से। ऐसे धीरे-धीरे योगी अनुभव करता है कि क्या उसके भीतर हो रहा है।
जैसे ही तुम शांत हो कर बैठोगे, तुम पाओगे कि जितने तुम शांत होते हो, तुम्हारी रीढ़ से कोई ऊर्जा ऊपर की तरफ उठनी शुरू हो जाती है। तुम उसे प्रत्यक्ष देखोगे, अनुभव करोगे। एक उष्ण ताप तुम्हारी रीढ़ में दौड़ने लगेगा। तरंगें विद्युत की तुम्हारी रीढ़ में उठने लगेंगी, जिनका तुमने कभी अनुभव नहीं किया था। और जैसे-जैसे वे तरंगें ऊपर जाएंगी, वैसे-वैसे तुम आह्लादित पाओगे। जैसे-जैसे वे तरंगें ऊपर उठेंगी, वैसे-वैसे तुम्हारा दुख, उदासी कम और आनंद का भाव बढ़ने लगेगा। जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ेगी तरंगों की, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि जीवन की क्षुद्रता छूट गई, दूर घाटी में पड़ी रह गई, तुम जैसे किसी पर्वत पर चले आए हो। वह धुआं गांव-बस्ती का, लोगों की चर्चा का, बातचीत का, उपद्रव का, सब पीछे छूट गया। तुम बड़े दूर निकल आए हो। इसलिए तो हमने रीढ़ को मेरुदंड कहा है। मेरु पर्वत का नाम है, जो स्वर्ग में है। और जब कोई व्यक्ति इस छोटे से मेरुदंड की आखिरी ऊंचाई पर पहुंच जाता है, तो वह वही ऊंचाई है जो मेरु पर्वत की है स्वर्ग में। उस ऊंचाई और इस ऊंचाई में कोई फर्क नहीं है। और जो आखिरी शिखर है--जहां हिंदू शिखा रखते हैं, जो सातवां द्वार है, जहां से ऊर्जा अनंत में मिलती है--जब तुम्हारी तरंगें वहां से विकीर्ण होने लगेंगी, ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो जाएगा। तब तुम्हें ब्रह्मचर्य के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ेगा। और जब भी तुम्हें वासना पकड़े तो वासना को दबाने की कोई जरूरत न रह जाएगी, तुम बस रीढ़

को सीधा करके उन तरंगों को ऊपर जाने दो, तो जो ऊर्जा वासना से बहती थी, वही ऊर्जा ब्रह्मचर्य बन जाएगी। ऊर्जा तो वही है, एनर्जी वही है; पहले द्वार से निकलती है तो प्रकृति में चली जाती है, सातवें द्वार से निकलती है तो परमात्मा में चली जाती है।
ऐसे जो व्यक्ति चुप हो कर बैठने की कला सीख लेगा, उसे उसका ही शरीर हजार-हजार अनुभव दे देगा। अपने ही शरीर से तुम सारे योग शास्त्र को जान सकते हो। पतंजलि को पढ़ने की जरूरत नहीं। सच में तो पतंजलि के शास्त्र बाद में ही पढ़ने की जरूरत है। क्योंकि वे तुम्हें आश्वस्त कर देते हैं कि सब ठीक हो रहा है। तुम जब भीतर प्रयोग करना शुरू करते हो, तब शास्त्र का उपयोग इतना ही है कि तुम कई बार डरोगे कि पता नहीं क्या हो रहा है। अनजान में जा रहे हो; क्या होगा, क्या नहीं होगा--भय पकड़ेगा। शास्त्र तुम्हें आश्वस्त कर देगा कि तुम अनजान में नहीं जा रहे हो, जो भी गए हैं, इसी रास्ते से गए हैं। जिन्होंने भी पाया, ऐसे ही पाया है। ये-ये घटनाएं उन्हें भी घटी हैं; और आगे ये-ये घटनाएं घटने की संभावना है; तुम भयभीत न होओ, आश्वस्त रहो। शास्त्र गवाहियां हैं ज्ञानियों की। लेकिन असली ज्ञान शास्त्र से नहीं होता, असली ज्ञान तो खुद के भीतर शांत होने से होता है।
इसलिए कहते हैं नानक, शास्त्र, स्मृति और वेद श्रवण से ज्ञात होते हैं।
नानक कहते हैं, "श्रवण से भक्तगण सदा आनंदित होते हैं। और दुख और पाप
का नाश होता है। श्रवण से ही सत्य, संतोष और ज्ञान उपलब्ध होता है। श्रवण से ही अड़सठ तीर्थों का स्नान प्राप्त होता है। श्रवण से ही पढ़-पढ़ कर मान मिलता है। श्रवण से ही सहज ध्यान लगता है। नानक कहते हैं, श्रवण से भक्तगण आनंदित होते हैं और दुख तथा पाप का नाश होता है।"
सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठसठि का इस्नानु।।
सुणिऐ पढ़ि पढ़ि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहज धिआनु।।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु।।
अड़सठ तीर्थ हिंदुओं ने माने हैं, जिनमें स्नान करने से परम मुक्ति मिलती है। लेकिन वे अड़सठ तीर्थ तो नक्शे पर बताए गए तीर्थों की भांति हैं।
शरीर के भीतर अड़सठ बिंदु हैं, जिनसे गुजर कर पुण्य की उपलब्धि होती है। हिंदुओं ने बड़ा अदभुत काम किया है। पृथ्वी पर किसी जाति ने ऐसा अदभुत काम नहीं किया। बाहर तो प्रतीक हैं और उन प्रतीकों में जब हम भटक गए तो हिंदुओं की सारी जीवन-चेतना खो गई। हम कहते हैं कि गंगा जल रामेश्वरम में ले जा कर चढ़ा रहे हैं। भीतर शरीर के बिंदु हैं। एक बिंदु से ऊर्जा को लेना है और दूसरे बिंदु पर चढ़ाना है। एक बिंदु से ऊर्जा को खींचना है और दूसरे बिंदु तक पहुंचाना है। तब तीर्थ यात्रा हुई। पर हम अब पानी ढो रहे हैं, गंगा से और रामेश्वरम तक। हमने पूरी पृथ्वी को नक्शे की तरह बना लिया था, आदमी का फैलाव। आदमी के भीतर बड़ा सूक्ष्म है सब कुछ। उसको समझाने के लिए ये प्रतीक थे। और इन प्रतीकों को हमने सत्य मान लिया तो हम भटक गए। प्रतीक कभी सत्य नहीं होते, सत्य की तरफ इशारे होते हैं।
नानक कहते हैं, "श्रवण से सत्य मिलता, संतोष मिलता, ज्ञान उपलब्ध होता। श्रवण से अड़सठ तीर्थों का स्नान प्राप्त होता है।"
तुम अगर चुप हो गए तो तुम्हें भीतर के तीर्थ दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। तुम अगर चुप हो गए तो तुम्हें सोचना नहीं पड़ता कि सत्य क्या है, तुम्हें दिखाई पड़ता है कि सत्य क्या है। जब तक सोचना है, तब तक सत्य होगा ही नहीं; मत होगा, धारणा होगी, कंसेप्ट होगा, ओपीनियन होगा, सत्य नहीं होगा। सत्य तो अनुभव है। और जब तुम्हें दिखाई पड़ता है, तुम सोचोगे क्यों! "संतोष उपलब्ध होता।"
क्योंकि जब तक तुम विचार के साथ चलोगे, असंतुष्ट रहोगे। क्योंकि विचार हजार चीजें सुझाता है--यह करो, यह करो, यह करो। कर-कर के तुम असंतुष्ट हो। विचार कहे ही चला जाता है। नयी वासनाएं जन्माता है। संतोष तो तभी होगा जब तुम विचार का साथ छोड़ दोगे। विचार की दोस्ती बड़ी बुरी है। उसी दोस्ती ने भटकाया। अगर कोई कुसंग है जगत में, तो विचार का। अगर किसी का संग-साथ छोड़ देना है, तो विचार का। उपयोग करो उसका, संग-साथ की कोई जरूरत नहीं। उपयोग करो तो बहुत शुभ है। उसकी मान कर चलने लगे तो सब उपद्रव है। विचार

शराब की तरह है, उसकी मान कर चले कि भटकाएगा। और तब तुम्हें जीवन में कुछ भी सूझे न सूझेगा कि अब क्या करें और क्या न करें।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात ज्यादा पी गया। घर आने की हिम्मत न रही। जो
भी ज्यादा पी जाए, उसकी घर आने की हिम्मत कम हो जाती है। जवाब देना पड़ेगा और जवाब कुछ सूझता नहीं। पैर लड़खड़ाते हैं। वह यहां-वहां भटकता रहा। आधी रात एक कांस्टेबल ने उसे पकड़ लिया और कहा कि क्या कर रहे हो? जवाब दो! वह बिल्कुल चुप खड़ा रहा। उस कांस्टेबल ने कहा कि जल्दी जवाब देते हो कि कोतवाली ले चलूं! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अगर जवाब ही दे सकते तो शाम को अपने घर ही न चले गए होते! जवाब ही तो नहीं है।
विचार एक नशा है, विचार के पास कोई जवाब नहीं है। जवाब ही होता तो कभी
के तुम अपने घर चले गए होते। किसलिए भटक रहे हो आधी रात में रास्तों पर? कोई उत्तर नहीं है अपने जीवन को समझाने का। विचार के पास उत्तर है ही नहीं। निर्विचार में उत्तर है।
इसलिए नानक कहते हैं, संतोष, सत्य--श्रवण से, अड़सठ तीर्थों का स्नान-- श्रवण से, श्रवण से ही सहज ध्यान लगता है।
अगर तुम सुन ही लो, ध्यान हो गया। ध्यान के बिना तुम सुन ही न पाओगे।
ध्यान का मतलब क्या है? जहां मन नहीं, वह अवस्था ध्यान। जहां अंतरंग वार्तालाप नहीं, वह अवस्था ध्यान है।
"श्रवण से श्रेष्ठ गुणों की थाह मिलती है। श्रवण से ही शेख, पीर, बादशाह होते। श्रवण से ही अंधे राह पाते। श्रवण से ही अथाह हाथ आ जाता।
नानक कहते हैं, श्रवण से ही भक्तगण सदा आनंदित होते हैं, दुख और पाप का नाश होता है।"
सुणिऐ सरा गुणा के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह।।
सुणिऐ अंधे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु।।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु।।
श्रवण से अंधे को राह मिल जाती है। श्रवण से भिखारी बादशाह हो जाता है। श्रवण से जिसकी थाह नहीं मिलती थी, जो अथाह लगता था, उसकी थाह मिल जाती है।
विचार छोटी चम्मच की तरह है, जिससे तुम सागर को नाप रहे हो। श्रवण, सागर में उतर जाना है। थाह तभी मिलती है जब तुम डूबोगे। चम्मचों से तौलने से थाह नहीं मिलती।
अरिस्टोटल बहुत बड़ा विचारक हुआ यूनान का। गुजर रहा था एक समुद्र के
तट से, सोच रहा था, अपने सोच में खोया था। एक आदमी को उसने देखा कि जो छोटा- सा गड्ढा खोद कर चम्मच से सागर का पानी गड्ढे में डाल रहा था। जिज्ञासा जगी; पूछा कि भाई क्या करते हो! उस आदमी ने कहा, साफ है, पूछना क्या? आंख हो तो दिखाई पड़ना चाहिए! सागर को खाली करने का इरादा है। इस गड्ढे में भर कर रहूंगा।
अरिस्टोटल हंसा और कहा, पागल हो गए हो? होश में हो? कहीं सागरों को चम्मचों से तौला गया? चम्मचों से गड्ढों में भरा गया? क्यों अपना जीवन नष्ट कर रहे हो? वह आदमी खिलखिला कर हंसने लगा और उसने कहा कि मैं तो सोचता था, पागल तुम हो! क्योंकि तुम और भी बड़े सागर को विचार की चम्मच में भरने की कोशिश में लगे हो। कहते हैं, अरिस्टोटल ने उस आदमी को खोजने की बहुत कोशिश की, लेकिन पता न चल पाया कि वह कहां चला गया।
बात उसने ठीक ही कही थी। विचार कितना छोटा है! अस्तित्व कितना बड़ा है!
इस विराट अस्तित्व को तुम विचार से तौल-तौल कर कहां ले जाओगे? क्या करोगे? सिर तुम्हारा कितना छोटा है! यह ब्रह्मांड कितना बड़ा है। तुम्हारे हाथ कितने छोटे हैं! तुम्हारी पहुंच कितनी छोटी है। यह विराट कितना विराट है। तुम व्यर्थ की चेष्टा में लगे हो! शायद वह आदमी कभी सागर को गड्ढे में उतार भी ले; क्योंकि एक चम्मच भी कम होता है तो सागर कम होता है, क्योंकि सागर की भी सीमा है। लेकिन तुम कभी भी उसे न पा सकोगे विचार से।
इसलिए नानक कहते हैं, भिखारी बादशाह हो जाता है, जैसे ही मौन होता है।
अथाह की थाह मिल जाती है। अज्ञात से परिचय बन जाता है। अनजान प्रियतम हो जाता है। श्रवण से अंधे राह पाते। श्रवण से अथाह हाथ आ जाता। नानक कहते, श्रवण से भक्तगण सदा आनंदित होते हैं और दुख और पाप का नाश होता है।

एक ओंकार सतनाम
छठवां प्रवचन

ऐसा नामु निरंजनु होइ

पउड़ीः 12
मंनै की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ।।
कागद कलम न लिखणहारू। मंनै का बहि करनि विचारू।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

पउड़ीः 13
मंनै सुरति होवै मनि बुधि। मंनै सगल भवन की सुधि।।
मंनै मुहि चोटा न खाइ। मंनै जम के साथ न जाइ।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

पउड़ीः 14
मंनै मारग ठाक न पाइ। मंनै पति सिउ परगटु जाइ।।
मंनै मगु न चलै पंथु। मंनै धरम सेती सनबंधु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

पउड़ीः 15
मंनै पावहि मोखु दुआरु। मंनै परवारै साधारु।।
मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

मनन शब्द को समझें। विचार और मनन दोनों ही मन की क्रियाएं हैं, पर दोनों बड़ी भिन्न हैं। भिन्न ही नहीं, वरन विपरीत भी।
एक तैरने वाले को देखें--एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, लेकिन रहता नदी की सतह पर है। अ से ब, ब से स स्थान बदलता है, गहराई नहीं बदलती। फिर पानी में डुबकी लगाने वाले को देखें--वह भी स्थान बदलता है, लेकिन गहराई बदलती है; अ से अ एक, अ दो, अ तीन--एक ही स्थान पर गहरा उतरता है डुबकी लगाने वाला। तैरने वाला एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, गहराई में नहीं जाता है।
विचार तैरने जैसा है, मनन डुबकी जैसा है। विचार में एक शब्द से दूसरे शब्द पर हम जाते हैं; मनन में एक ही शब्द की गहराई में जाते हैं। स्थान नहीं बदलता, गहराई बदलती है।
विचार रेखाबद्ध प्रक्रिया है, सतह वही बनी रहती है। तुम चाहे दुकान
की बात सोचो, चाहे मोक्ष की; सतह में कोई फर्क नहीं पड़ता, रहते तुम पानी की सतह पर ही हो। तुम चाहे परमात्मा के संबंध में सोचो और चाहे पत्नी के, सोच की सतह वही बनी रहती है।
मनन से सतह की जगह गहराई में यात्रा शुरू होती है। मनन में एक ही शब्द
को उसकी समस्तता में, उसके गहरे तलों तक प्रवेश करने की चेष्टा करनी होती है।
मनन ही मंत्र है। इसे ठीक से समझ लें तो यह पूरा सूत्र साफ हो जाएगा।
और नानक की सारी शिक्षाओं का सार मनन है। इसलिए तो एक नाम ओंकार--बस उस एक ओंकार के नाम को, एक सतनाम को अपने शिष्यों को वे देते रहे।
उस पर सोचना नहीं है, उसमें डूबना है। उस पर विचार नहीं करना है, उसकी गहराई में डुबकी लगानी है। एक ही नाम गूंजता रहेगा--ओम्, ओम्, ओम्, ओम्... और जैसे-जैसे नाम की गूंज बढ़ेगी, वैसे-वैसे तुम्हारी गहराई का तल बदलेगा। तीन तल हैं। पहले सोच्चार, तुम जोर से उच्चार करते हो ओंकार का--ओम्...
। ओंठ का प्रयोग होता है, बाहर वाणी गूंजती है; इसको हम वाणी का तल कहें। फिर तुम ओंठ बंद कर लेते हो, जीभ भी नहीं हिलाते, मन में ही गूंज होती है-- ओम्... । यह दूसरा तल है। यह पहले तल से गहरा है। इसमें शरीर का उपयोग नहीं हो रहा। ओंठ, जीभ सब बंद हैं, सिर्फ मन का उपयोग हो रहा है। तुम एक सीढ़ी

नीचे उतर गए। फिर तीसरी सीढ़ी है, जहां मन का भी उपयोग नहीं हो रहा है; जहां तुम ओंकार की ध्वनि नहीं करते, तुम सिर्फ चुप हो कर सुनते हो और ध्वनि गूंजती है। तब मन भी गया। जैसे ही मन गया, मनन हुआ। मनन यानी मन का न हो जाना। जहां मन न हुआ, वहां मनन शुरू हुआ।
सबसे पहले, तुम्हारे भीतर ओंकार की ध्वनि गूंजती है जन्म के साथ। तुम्हें बच्चे प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं--अकारण; अपने झूले में पड़े टांगें फेंक रहे हैं, हाथ हिला रहे हैं, मुस्कुरा रहे हैं। माताएं समझती हैं कि शायद पिछले जन्म की कोई स्मृति आ रही है तो आनंदित हो रहे हैं। क्योंकि कोई कारण तो नहीं है आनंदित होने का--न कोई चुनाव जीता है, न कोई धन कमा लिया है, न कोई प्रतिष्ठा पा ली है; अपने झूले में पड़े, अभी यात्रा शुरू ही नहीं हुई; अभी प्रसन्नता क्या है? मनस्विद भी बड़ी चिंता करते रहे हैं कि बच्चे की प्रसन्नता का कारण क्या है? जहां तक मनस्विदों की समझ जाती है, वे मानते हैं कि शारीरिक स्वास्थ्य है। क्योंकि बच्चा प्रसन्न है, क्योंकि शरीर से स्वस्थ है।
लेकिन जहां तक योगियों की खोज ले जाती है, वहां कारण दूसरा है। शरीर
का स्वास्थ्य काफी नहीं है। भीतर ओंकार का नाद गूंज रहा है, एक मधुर संगीत भीतर गूंज रहा है; जो बच्चा सुनता है, उसकी तारी लग जाती है। सुनता है, मुस्कुराता है, आनंदित होता है। स्वास्थ्य तो बाद में भी रहेगा, लेकिन यह प्रसन्नता खो जाएगी। पीछे भी स्वस्थ रहेगा, लेकिन यह नाद खो जाएगा। ओंकार की ध्वनि को सुनना मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि शब्दों की पर्त उसे घेर लेगी।
ध्वनि--एक ओंकार सतनाम--वह पहली घटना है। वहां जीवन का स्रोत है। फिर शब्दों का जमाव है। वह हमारी शिक्षा, संस्कार, समाज, सभ्यता! फिर तीसरी पर्त है, शब्दों का उच्चारण--बोलना, बातचीत, वार्तालाप। जब तुम बोल रहे हो, तब तुम अपने से सबसे ज्यादा दूर हो। इसलिए तो नानक कहते हैं कि पहले सुनना सीख लो; क्योंकि जब तुम सुन रहे हो, तब तुम मध्य में हो। तब तुम बोलने की तरफ भी जा सकते हो और चाहो तो शून्य की तरफ भी जा सकते हो। तुम बीच में खड़े हो।
तीन स्थितियां हुईं--ओंकार की स्थिति, उच्चार की स्थिति और दोनों के मध्य में भाव और विचार की स्थिति। जब तुम सुन रहे हो--श्रवण--तब तुम भाव और विचार की स्थिति के बीच में खड़े हो। अभी तुम दोनों तरफ झुक सकते हो, दाएं या बाएं। जो तुमने सुना, अगर तुम दूसरे को बताने निकल पड़े, तो तुम वार्ता में उतर गए। जो तुमने सुना, अगर तुम उसको गुनने लगे, मनन करने लगे, तो तुम शून्य में चले गए। और बारीक है फासला। और हर व्यक्ति को अपने भीतर फासले को ठीक से समझ कर संतुलन को व्यवस्था देनी पड़ती है।
मनन उसी क्षण शुरू हो जाता है, जब तुम किसी एक शब्द की गहराई में उतरने लगते हो। और कोई भी शब्द काम दे सकता है। लेकिन ओंकार से सुंदर कोई शब्द नहीं, क्योंकि वह शुद्ध ध्वनि है। अल्लाह भी काम देता है, राम भी काम देता है, कृष्ण भी काम देता है। और कोई ये बड़े-बड़े नाम लेने की जरूरत नहीं है। अंग्रेजी के महाकवि टेनिसन ने लिखा है कि मैं अपना ही नाम दुहरा लेता हूं और तारी लग जाती है; टेनिसन... टेनिसन... टेनिसन... उससे भी लग जाएगी।
कोई भी एक शब्द की गहराई में तुम उतरोगे तो धीरे-धीरे शब्द छूट जाएगा।
और धीरे-धीरे जैसे-जैसे शब्द छूटेगा, वैसे-वैसे मनन शुरू हो जाएगा। शब्द तो छूट जाता है। सभी मंत्र छूट जाते हैं। तभी तो महामंत्र का उदघोष होता है जब मंत्र छूट जाते हैं। क्योंकि मंत्र तो तुम्हारे ही मन की, तुम्हारी ही पकड़ है। महामंत्र तो गूंज ही रहा है। तो मंत्र महामंत्र में नहीं ले जाता, मंत्र तो तुम्हें केवल चुप करवाता है। महामंत्र सुनाई पड़ने लगता है।
और सभी मंत्र तुम्हें सुनने की कला सिखाते हैं। और सभी मंत्र तुम्हें तैरने की जगह डुबकी लगाना सिखाते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर कब तक जाते रहोगे? एक जन्म से दूसरे जन्म तक कब तक जाते रहोगे? एक घटना से दूसरी घटना को कब तक बदलते रहोगे? एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति तक कब तक तुम्हारी यात्रा जारी रहेगी? कब वह शुभ क्षण आएगा जब तुम जहां हो, उसी की

गहराई में डुबकी लगाओगे, कहीं और न जाओगे? मनन उसी क्षण घटेगा। इस बात को ख्याल में रख कर नानक का सूत्र समझने की कोशिश करें।
"मनन की गति कही नहीं जा सकती।"
मंनै की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ।।
"मनन की गति कही नहीं जा सकती। और जो इसे कहता है, पीछे पछताता है।" क्यों? मनन की गति इसलिए नहीं कही जा सकती कि पहली तो बात यह है कि वह गति ही नहीं है, वह अगति है। वहां यात्रा शुरू नहीं हो रही, बंद हो रही है। वह हमें गति जैसी लगती है।
तुमने कभी देखा, तुम ट्रेन में जब चलते हो तो तुम्हें लगता है कि वृक्ष भागे जा रहे हैं। भाग तुम रहे हो, लगता है वृक्ष भागे जा रहे हैं। तुम्हारी सदा की गति के कारण जब मन ठहरने लगता है, तब भी तुम्हें ऐसा लगता है कि यह भी गति है। लेकिन जब तुम ठहर ही जाओगे, जब तुम्हारी गाड़ी बिल्कुल रुक जाएगी, तब अचानक तुम पाओगे कि सब वृक्ष-पहाड़ भी रुक गए। वे भाग ही नहीं रहे थे।
तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वह कभी चला ही नहीं है। उसने कभी एक कदम नहीं उठाया। उसने कोई यात्रा नहीं की। तीर्थयात्रा भी नहीं की। वह कहीं गया ही नहीं घर के बाहर। वह सदा से वहीं है।
मन भागता रहा है और मन की गति इतनी तीव्र है कि वह जो न भागा हुआ है, वह
भी भागा हुआ मालूम पड़ता है। जब मन रुकने लगता है, वह भी रुकने लगता है। जब मन बिल्कुल रुक जाता है, मन पाता है कि सब रुका हुआ है। गति को तो कहा जा सकता है, अगति को कैसे कहोगे? कहां से कहां गए, इसकी तो चर्चा हो सकती है। इसलिए तो यात्री किताबें लिख सकते हैं। लेकिन जो आदमी घर में ही बैठा रहा, वह क्या लिखेगा! कहीं गया ही नहीं, कुछ घटना ही न घटी, कोई परिस्थिति ही न बदली, कहने को क्या है?
अशांत आदमी की जिंदगी की कहानी तुम लिख सकते हो, शांत आदमी की जिंदगी
की कहानी क्या लिखोगे! कहानी ही नहीं है। उपन्यासकार, नाटककार, साहित्यकार, सभी का अनुभव है कि जिंदगी तो बुरे आदमी की होती है। अच्छे आदमी की क्या जिंदगी! इसलिए अगर तुम अच्छे आदमी के आधार पर कोई उपन्यास लिखो तो वह लिखा ही न जा सकेगा। उसकी जिंदगी में कुछ नहीं होता। इसलिए सभी कहानियां बुरे आदमी के आसपास लिखनी पड़ती हैं।
तुम यह मत समझना कि रामायण राम के आसपास है, वह रावण के आसपास है। रावण
ही असली नायक है, राम तो नंबर दो हैं। रावण को हटा दो फिर तुम राम की कथा लिखो! न जाए सीता चोरी, न हो सब उपद्रव--सब कथा शांत है! राम की क्या कोई कथा है! तुम परमात्मा की क्या कथा लिखोगे? वह जैसा था, वैसा ही रहा है। उसमें कभी भी रूपांतर नहीं हुआ; कहानी बनी ही नहीं। इसलिए तो परमात्मा की कोई आत्मकथा नहीं है। उसके संबंध में हम कुछ भी नहीं लिख सकते। लिखने के लिए यात्रा जरूरी है।
विचार के संबंध में बहुत कुछ लिखा जा सकता है; निर्विचार के संबंध में क्या लिखोगे! निर्विचार के संबंध में क्या कहोगे! जो भी कहोगे, वह गलत होगा। पीछे पछताओगे।
इसलिए ज्ञानी जब भी बोलते हैं, तभी पछताते हैं। क्योंकि बोलते ही उन्हें लगता है कि जो कहना था, वह कह नहीं पाए; और जो नहीं कहना था, वह कह दिया। जो कहना था, जो समझाना था, वह सुनने वाला समझ नहीं पाया है। जो वह समझ गया, वह प्रयोजन न था।
इसलिए लाओत्से कहते हैं कि सत्य के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता; और कुछ भी कहा, असत्य हो जाएगा। जितना तुम जानोगे, उतना ही तुम पाओगे कि कहना मुश्किल है। एक-एक शब्द कहना कठिन हो जाता है; क्योंकि तुम्हारे भीतर कसौटी है, जिससे तुम जांचते हो। हर शब्द ओछा मालूम पड़ता है, बहुत छोटा मालूम पड़ता है। बहुत बड़ा घटा है, शब्द में समाता नहीं। बड़ा आकाश मिल गया है और शब्द की छोटी-छोटी कैपसूल में उसे भरना है। वह भरता नहीं।
और फिर जब तुम बोलते हो, तब पछतावा और भी बढ़ जाता है। क्योंकि सुनने वाले तक जो बात पहुंचती है, वह कुछ और ही है। जो तुमने कही थी, उसका सब राग, उसका सब रंग बदल गया, उसकी वेशभूषा बदल गयी। तुमने दिया था हीरा, देने में ही पत्थर हो गया। तुमने दिया था असली सिक्का, हस्तांतरण में ही खोटा हो

गया। वह दूसरे के पास पहुंचते ही, तुम उसकी आंखों में जो देखते हो, पाते हो कि वह तो नहीं पहुंचा जो तुमने दिया था, कुछ और पहुंच गया। और अब यही वह दूसरा आदमी ढोता रहेगा।
ऐसे ही तो संप्रदाय चल रहे हैं। ऐसे ही तो हजारों की भीड़ चल रही है। जो कभी नहीं दिया गया था, उसे वे ढो रहे हैं। अगर महावीर लौट आएं तो जैनियों को देख कर छाती पीटेंगे। अगर बुद्ध लौट आएं तो बौद्धों पर रोएंगे। अगर जीसस लौट आएं तो लड़ाई फिर वही की वही शुरू हो जाएगी कि जो यहूदियों से थी, वही ईसाइयों से शुरू हो जाएगी। क्योंकि जो उन्होंने कहा था, वह तो जैसे पहुंचा ही नहीं; कुछ और ही पहुंच गया। नानक अगर लौट आएं तो जितना नाराज सिक्ख पर होंगे, उतना किसी और पर नहीं। क्योंकि किसी और से क्या नाराज होना! जिनसे कहा था, उन पर ही नाराज हुआ जा सकता है। क्योंकि वे कुछ और ही ढो रहे हैं।
हम बड़े होशियार हैं। नानक जैसा व्यक्ति जब बोलता है, तब हम अपने अर्थ उसमें जोड़ लेते हैं, अपने मतलब के अर्थ! हम नानक के अनुसार अपने को नहीं ढालते, हम नानक के शब्दों को अपने अनुसार ढाल लेते हैं। यह हमारी तरकीब है। इससे सब ठीक हो जाता है।
दो ही उपाय हैं।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़ी धनपति महिला थी। थोड़े झक्की स्वभाव की थी। बड़ी कलात्मक रुचि की थी और हर चीज के संबंध में बड़ी जिद्दी थी। उसके पास एक ऐश-ट्रे थी, जो कि एक दिन गिर गयी। बड़ी बहुमूल्य थी, बड़ी कीमती थी। और वह बड़ी मुश्किल में पड़ गयी। उसने कलाकारों को बुलाया और उसने कहा कि बिल्कुल ऐश-ट्रे जैसी थी वैसी ही बना दो। क्योंकि उसने ऐश-ट्रे के हिसाब से अपना पूरा कक्ष सजाया हुआ था। उसी रंग की दीवालें थीं। उसी रंग का फर्श था। उसी रंग के पर्दे थे। ऐश-ट्रे आधार थी; वह आत्मा थी उस पूरे घर की।
अनेक चित्रकारों ने कोशिश की। लेकिन बड़ी मुश्किल थी। ठीक, बिल्कुल ठीक रंग का मेल नहीं बैठ पाता था। आखिर एक चित्रकार ने कहा कि मैं बना दूंगा, लेकिन मुझे समय चाहिए और बीच में कोई बाधा न दे; जब सब पूरा हो जाए तभी तुम भीतर आओ। तो एक महीना उसने ले लिया। महिला भी हैरान हुई कि एक महीना! ऐश-ट्रे को! उसने कहा कि अब उसमें इतने दिन तुमने कोशिश कर ली, इतने लोग मेहनत कर लिए, अब मुझे वक्त दो।
एक महीना वह अंदर घुसा रहा। महिला अंदर आयी, तृप्त हो गयी। बिल्कुल मिला दिया था उसने सब। बाद में किसी चित्रकार ने उस चित्रकार से पूछा, जो सफल हो गया था, कि भई, हम सब असफल हो गए; तुमने सफलता कैसे पायी? उसने कहा कि मैंने पहले ऐश-ट्रे तैयार की और फिर उसी रंग में सब दीवालें पेंट कर दीं। वे सब के सब दीवालों के हिसाब से ऐश-ट्रे को पेंट करने की कोशिश कर रहे थे। वह असंभव मामला था। जरा-सा भी फर्क रह जाता था तो बस गड़बड़ हो जाती थी।
नानक तुमसे बोलते हैं, तो दो ही उपाय हैं। एक तो यह है कि तुम नानक के रंग में ढल जाओ तो तृप्ति मिले, नहीं तो बेचैनी रहेगी। नानक जैसे व्यक्ति के पास बेचैनी शुरू होगी; क्योंकि तुम आग के पास हो। या तो तुम जल जाओ।
जैसे नानक जल गए, ऐसे तुम जल जाओ। जैसे नानक राख हो गए, ऐसे राख तुम हो जाओ।
जैसे नानक दास हो गए, ऐसे दास तुम हो जाओ। जैसे नानक खो गए, ऐसे तुम खो जाओ। बूंद गिर जाए सागर में। एक उपाय तो यह कि तुम नानक के रंग में रंग जाओ। अगर यह न हो सके तो दूसरा उपाय यह है कि नानक जो कहते हैं, उसको तुम अपने रंग में रंग लो। दूसरा सरल है, बिल्कुल सरल है। इसलिए तो जो कहा जाता है, हम वही नहीं सुनते; हम जो सुनना चाहते हैं, वही सुनते हैं। जो बताया जाता है, हम उसमें से वही अर्थ निकाल लेते हैं, जो हमारे अनुकूल है। हम सत्य के पक्ष में खड़े नहीं होते, हम सत्य को ही अपने पक्ष में खड़ा कर लेते हैं। हम सत्य के साथ नहीं जाते, हम सत्य को ही अपने पीछे लाते हैं।
और यही फर्क है असली खोजी और नकली खोजी में। असली खोजी सत्य के पीछे जाने को तैयार होता है--चाहे सत्य कहीं भी ले जाए; चाहे कोई भी परिणाम हो; चाहे जीवन गंवाना पड़े; चाहे सब खो जाए--सत्य का खोजी सत्य के पीछे जाता है। सब गंवाने को तैयार है। दूसरा भी सत्य का खोजी--जो धोखे में है, धोखेबाज है--वह सत्य के पीछे नहीं जाता, वह सत्य को अपने पीछे लाता है। और जब भी तुम सत्य को अपने पीछे लाते हो, तभी वह असत्य हो जाता है।

तुम्हारे पीछे सत्य कैसे आएगा? तुम्हारे पीछे असत्य ही आ सकता है। क्योंकि तुम असत्य हो, तुम्हारी छाया असत्य होगी। तुम चाहो तो सत्य के पीछे जा सकते हो, लेकिन सत्य तुम्हारे पीछे नहीं आ सकता। सत्य तुम्हारी धारणाओं में न समाएगा। सत्य तुम्हारे बर्तनों में न आएगा। सत्य तुम्हारे मस्तिष्क के लिए काफी बड़ा है। और सत्य तुम्हारे पीछे कैसे हो सकता है? इसलिए नानक कहते हैं--
मंनै की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ।।
"वह जो कहता है, पीछे पछताता है।"
एक और कारण भी ध्यान में रख लेना चाहिए, उस कारण भी पछतावा होता है, जो मैंने शुरू-शुरू में कहा। जब भी तुम मनन के करीब पहुंचने लगोगे, तभी तुम मध्य में आ जाओगे। वहां से दो गतियां हैं। या तो तुम दूसरों को बताने निकल पड़ो तो तुम पछताओगे। इसलिए जब भी दूसरे को बताने का ख्याल उठे, गुरु से पूछ लेना। गुरु जब तक न कहे, मत बताने जाना किसी को। क्योंकि तुम अपने पर भरोसा मत करना।
अहंकार के खेल बड़े सूक्ष्म हैं! जरा-सा मिला नहीं कि वह बहुत की घोषणा करने लगता है। मुट्ठी-भर मिला नहीं कि वह पूरे आकाश का दावा कर देता है। जरा-सी झलक आई नहीं कि तुमने कहा कि सूरज उग गया। बूंद भी टपकी नहीं कि तुम सागर की चर्चा करने लगे। और फिर चर्चा में चर्चा बढ़ती चली जाती है। फिर धीरे-धीरे चर्चा में बूंद भी खो जाती है, झलक भी मिट जाती है, लोग थोथे पंडित हो कर रह जाते हैं। बहुत जानते हैं, बिना जाने। बहुत कहते हैं, बिना अनुभव किए। अगर तुम उनके जीवन में बहुत गौर से देखो तो तुम पाओगे कि जो वे कहते हैं, उसके ठीक विपरीत चलते हैं।
एक ट्रेन में ऐसा हुआ। गाड़ी छूट गयी थी और मुल्ला नसरुद्दीन भाग कर चढ़ने की कोशिश कर रहा था। डंडा भी उसने पकड़ लिया। एक पैर भी पायदान पर रख दिया। तभी गार्ड ने उसे नीचे खींच लिया और कहा कि बड़े मियां, चलती गाड़ी में चढ़ना जुर्म है; नीचे उतरें। मुल्ला उतर गया। फिर गाड़ी करीब-करीब निकलने के करीब थी प्लेटफार्म के बाहर, तब गार्ड का डब्बा आया। गार्ड छलांग लगा कर अपने डब्बे में चढ़ने लगा। मुल्ला ने झटक कर उसको नीचे पटक लिया और कहा, बड़े मियां, दूसरों को मना करते हो और खुद वही काम करते हो!
पंडित की अवस्था ऐसी ही है। वह जो दूसरों को कह रहा है, उसमें सिर्फ कहने का रस है। उसमें जीवन की सरिता नहीं बह रही है। वह उसका अपना अनुभव नहीं है। और यह खतरा सदा है।
जब तुम मध्य में आओगे, उच्चार को छोड़ोगे, शब्द में ठहरोगे--वहां से दो मार्ग खुलते हैं। एक मार्ग है पंडित होने का। क्योंकि अब तुम शब्द के मालिक हो जाओगे। अब तुम शब्द में खड़े हो। तुमने एक पर्त पार कर ली है। तुमने कुछ थोड़ी भनक भी पायी है। अब तुम्हारे सामने दो मार्ग हैं, एक तो ज्ञानी का और एक पंडित का। पंडित का मार्ग है कि तुम फिर बाहर चले जाओ उच्चार की दुनिया में, समझाने लगो। ज्ञानी का मार्ग है कि अब तुम शब्द को भी छोड़ दो, पूर्ण अनुच्चार में लीन हो जाओ। इसलिए गुरु जब तक न कहे, दूसरे को बताने मत जाना।
बुद्ध का एक शिष्य पूर्ण काश्यप हुआ। वह ज्ञान को उपलब्ध हो गया, लेकिन चुपचाप बुद्ध के पीछे छाया की तरह चलता रहा। वर्ष भर बाद, उसकी उपलब्धि के वर्ष भर बाद बुद्ध ने उसे बुलाया कि अब तू मेरी छाया की तरह क्यों भटक रहा है? अब तू जा! और जो तूने जाना है, लोगों को बता। पूर्ण ने कहा, मैं आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा करता था। क्योंकि मन का क्या भरोसा! बताने में कहीं रस आ जाए और जो बामुश्किल पाया है, कहीं बताने में खो जाए! कहीं अकड़ आ जाए, कहीं अहंकार निर्मित होने लगे कि मैं जानता हूं।
ज्ञान को पाना कठिन है, खोना आसान है। क्योंकि बड़ा सूक्ष्म मार्ग है। भटक सकते हो जरा में।
तो पूर्ण काश्यप ने कहा, जब आप समझेंगे कि बता सकता हूं, तब आप खुद ही कहेंगे। इसलिए मैं चुप था।
गुरु जब तक न कहे, तब तक बताने मत जाना, नहीं तो पछताओगे। और पछतावा भारी होगा कि करीब-करीब पहुंचते थे किनारे के और भटक गए। नाव लगने को ही थी फिर किनारा दूर हो गया। हाथ पहुंचने के ही करीब थे कि तुम किसी और दूसरी

बात में लीन हो गए। पांडित्य आखिरी प्रलोभन है, क्योंकि अहंकार आखिरी प्रलोभन है।
नानक कहते हैं--
मंनै की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ।।
"मनन की गति कहीं नहीं जा सकती। जो इसे कहता है, वह पीछे पछताता है। न कागज है न कलम है, न लिखने वाला है जो मनन की स्थिति पर विचार कर सके।" कहेगा कौन? क्योंकि जैसे-जैसे मनन गहरा होता है, वैसे-वैसे कर्ता तो खोता जाता है, मन तो समाप्त होने लगता है। मनन मन की मृत्यु है।
मन कह सकता है, लिख सकता है, बोल सकता है, बता सकता है। मन की सारी कुशलता बताने की है। तो तुम जो नहीं भी जानते हो, वह भी मन बता सकता है। और बार-बार बता कर तुम इस भ्रांति में भी पड़ सकते हो कि मैं जानता हूं। क्योंकि जिस बात को तुम बार-बार बताते हो, तुम भूल ही जाते हो कि मैंने भी इसे जाना या नहीं! तुम्हें लगने लगता है, मैं भी जानता हूं। सोचना, क्या तुम वे ही बातें कहते हो जो तुम जानते हो? या वे बातें भी कहते हो जो तुम जानते नहीं?
तुम जानते हो परमात्मा को? नहीं जानते, तो तुम मत कहना किसी से कि है। तुमने जाना सत्य को? नहीं जानते हो, तो मत बताना किसी को कि है। क्योंकि खतरा यह नहीं है कि दूसरा भ्रांति में पड़ेगा, खतरा यह है कि बार-बार दुहरा कर तुम खुद ही भ्रांति में पड़ जाओगे। बार-बार पुनरुक्ति करने से तुम्हें यह भरोसा आ जाएगा कि मैं जानता हूं।
और यह बड़ी सूक्ष्म... एक बार यह ख्याल आ गया कि मैं जानता हूं, बिना जाने, तो फिर तुम्हारी नौका कभी भी किनारे न लग पाएगी। सोए को तो जगाया जा सकता है; लेकिन जागा हुआ जो पड़ा है, उसे फिर कैसे जगाएं! अज्ञानी को उठाया जा सकता है; लेकिन ज्ञानी जो बना खड़ा है, उसे कैसे उठाएं! तुम फिर उनके पास जाने से ही बचोगे, जहां तुम्हारा अज्ञान प्रगट होता हो। तुम उनके ही पास जाओगे, जहां तुम्हारा ज्ञान मजबूत होता हो।
पंडित अज्ञानी को खोजेगा। पंडित ज्ञानी से बचेगा। अगर नानक गांव आ जाएं तो पंडित गांव छोड़ कर भाग जाएगा। क्योंकि पंडित को डर एक ही है कि कहीं कोई वह स्थिति न दिखा दे, जो असली स्थिति है। कहीं कोई पर्दा न उघाड़ दे। बामुश्किल पर्दे को सम्हाल पाए, बामुश्किल स्थिति बनी है कहने की कि हम जानते हैं, कोई इसे उखाड़ न दे। और यह इतनी कमजोर है, क्योंकि झूठी है, कमजोर होगी ही। यह तोड़ी जा सकती है जरा सी ही चोट से।
नानक कहते हैं, जहां न कागज, न कलम, न लिखने वाला है, तो मन की स्थिति तो वहां रही नहीं, मनन पर विचार कौन करे! और मनन की कौन खबर लाए!
"वह निरंजन नाम ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।"
बस, तुम जानोगे! गूंगे का गुड़ हो जाएगा और कह न पाओगे, ओंठ बंद हो जाएंगे। अवरुद्ध हो जाएगा कंठ। हृदय भर जाएगा। इतना भर जाएगा कि तुम रो सकोगे, हंस सकोगे, कह न सकोगे। लोग तुम्हें पागल समझेंगे, पंडित नहीं। क्योंकि तुम्हारे भीतर इतना भरा होगा कि तुम्हारे रोएं-रोएं से छलकेगा। तुम नाच सकोगे, तुम गा सकोगे; लेकिन तुम कह न सकोगे।
इसलिए तो नानक गाए चले जाते हैं। मरदाना बजाए चला जाता है; नानक गाए चले जाते हैं। जब भी नानक से कोई कुछ पूछता तो वे मरदाना को इशारा कर देते कि शुरू कर दे वाद्य; और कहते, सुनो! और गीत शुरू हो जाता। नानक ने यह सब गाया है, कहा नहीं है।
अगर तुम ज्ञानी के वचन को ठीक से समझो तो तुम पाओगे कि अगर वह कहता भी हो, तो भी गाता है। तुम एक काव्य उसमें पाओगे। वह अगर बैठा भी है, तो भी नाचता है। तुम एक नृत्य उसमें पाओगे। और तुम पाओगे कि उसके आसपास की हवा में एक नशा है--नशा, जो सुलाता नहीं, जगाता है। नशा, जो विस्मृति में नहीं ले जाता, सुरति को लाता है। और अगर तुम राजी हो उसके साथ बहने को तो वह तुम्हें बड़े अज्ञात तटों की तरफ ले जाएगा। अगर तुम उतरने को राजी हो उसके साथ सागर में तो वह तुम्हें बड़ी दूर की यात्रा पर ले जाएगा--आखिरी यात्रा पर, जहां सब यात्राएं समाप्त हो जाती हैं।
लेकिन ज्ञानी के पास जो सुर है, वह वक्ता का कम और गायक का ज्यादा है।
वह बोलने वाला कम, गाने वाला ज्यादा है। क्योंकि जो पाया है, वह बोल कर तो

कहा ही नहीं जा सकता है। गीत शायद उसकी भनक दे दे। शायद थोड़ी-सी गीत में उसकी झलक आ जाए। शायद तुम मस्त हो जाओ।
गुरजिएफ कहा करता था कि कला दो तरह की होती है। एक कला तो साधारण कला है, जिसमें चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ अपने मनोभाव प्रकट करता है।
जैसे पिकासो; बड़े से बड़े चित्रकार हों तो भी अपने मनोभाव प्रकट करते हैं। जो उनकी मनोदशा है, उसे चित्र में, गीत में बांधते हैं। यह साधारण कला है। इसे गुरजिएफ सब्जेक्टिव आर्ट कहता है--विषयीगत। और दूसरी कला को वह आब्जेक्टिव आर्ट कहता है--विषयगत। वह कहता है, ताजमहल दूसरे तरह की कला है; या अजंता-एलोरा की गुफाएं दूसरे तरह की कलाएं हैं। इन कलाओं में जो चित्रकार है, मूर्तिकार है, वह अपना कोई भाव प्रकट नहीं कर रहा है। इन कलाओं में वह सिर्फ एक स्थिति पैदा कर रहा है। उस स्थिति के माध्यम से देखने वाले में कोई भाव पैदा होगा।
बुद्ध की एक प्रतिमा है। तुम उसे अगर देखते भी रहो--अगर सच में ही आब्जेक्टिव आर्ट हो, जिसने बनाया है उसने बुद्धत्व को जाना हो--तो प्रतिमा को देखते-देखते तुम्हें तारी लग जाएगी। प्रतिमा को देखते-देखते-देखते तुम पाओगे कि तुम अपने ही भीतर किसी गहरी खाई में उतर गए, किसी गहराई में चले गए। प्रतिमा को देखते-देखते ही डुबकी लग जाएगी। प्रतिमा मनन हो जाएगी। मंदिरों में प्रतिमाएं हमने ऐसे ही नहीं रखी थीं! वे आब्जेक्टिव आर्ट... । संगीत हमने ऐसे ही नहीं पैदा किया था, संगीत पहले तो समाधि से ही जन्मा। पहले संगीत के जन्मदाता तो समाधिस्थ पुरुष थे। उन्होंने भीतर ओंकार का नाद सुना। फिर उस नाद को उन्होंने खोजा कि कैसे उस नाद की प्रतिलिपि बाहर पैदा की जा सकती है। ताकि जिन्हें उस भीतर के नाद का पता नहीं, वह शायद बाहर के नाद से ही थोड़ा उन्हें स्वाद लग जाए! मंदिर में हम प्रसाद बांटते हैं। मंदिर आने के लिए कोई न आए, शायद प्रसाद के लिए ही आ जाए! छोटे बच्चे तो कम से कम पहुंच ही जाते हैं। चलो प्रसाद के बहाने ही सही; लेकिन मंदिर में आना भी मूल्यवान है। शायद बाहर की धुन ही थोड़ा-सा प्रसाद बन जाए और उस धुन में तुम्हें भीतर की याद आ जाए। संगीत में जो रस है, वह समाधि की ही झलक का है। नृत्य हमने पैदा किए थे, वे आब्जेक्टिव आर्ट थे। उनको देखते-देखते तुम अचानक किसी और लोक में भीतर खो जाओगे, नाव तट से छूट जाएगी।
नानक के संबंध में यह स्मरण रखना कि नानक जो भी कहे हैं, वह गाया है उन्होंने। जो भी कहना चाहा है, उसे नाद के साथ पहुंचाया है। क्योंकि असली चीज नाद है। जो कह रहे हैं, वह असली बात नहीं है, वह तो बहाना है। तुम्हारे भीतर स्वर गुंजाना है। और अगर स्वर ठीक से गूंजने लगे तो तुम्हारे भीतर जो विचार की प्रक्रिया है, वह छिन्न-भिन्न हो जाएगी और तुम दूसरे तल पर पहुंच जाओगे शब्द के। और अगर तुम राजी हो बहने को, अगर तुम किनारे से जकड़े नहीं हो, अगर तुमने किनारे को पागल की तरह पकड़ नहीं रखा है, अगर तुम छोड़ने की हिम्मत रखते हो, तो तीसरी घटना भी घट जाएगी। मनन पैदा हो जाएगा।
कहते हैं नानक, मनन पर कौन क्या कहे! न कागज, न कलम, न लिखने वाला; मनन
की स्थिति पर विचार कौन करे!
"पर वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।"
वह गूंगे का गुड़ है, जो चख लेता है, वह जानता है। फिर जिंदगी भर भूलता नहीं, अनंत जन्मों तक नहीं भूलता, अनंत काल तक नहीं भूलता। एक बार स्वाद आ गया उसका तो वह स्वाद तुमसे बड़ा है, तुम उसे भूल न सकोगे। वह स्वाद इतना बड़ा है कि तुम उस स्वाद में समा जाओगे; वह स्वाद तुममें न समाएगा। वह स्वाद सागर जैसा है, तुम बूंद जैसे उसमें खो जाओगे।
अगर ठीक से समझो तो परमात्मा का तुम स्वाद कैसे लोगे! परमात्मा ही तुम्हारा स्वाद ले लेता है, अगर तुम राजी हो। तुम उस स्वाद में लीन हो जाते हो, डूब जाते हो, एकतानता सध जाती है। वह नाम निरंजन ही ऐसा है।
"मनन से ही मन और बुद्धि में सुरति-स्मरण का उदय होता है।"
जैसे-जैसे तुम वार्तालाप में जाते हो, वैसे-वैसे स्मृति खो जाती है। तुमने कभी सोचा हो न सोचा हो, अब सोचना, निरीक्षण करना--तुम्हारी जिंदगी के अधिकतम उपद्रव तुम्हारे बोलने से पैदा होते हैं, नब्बे प्रतिशत, उससे भी

ज्यादा। तुम अगर न बोलो तो नब्बे प्रतिशत उपद्रव तो तुम्हारे तत्क्षण गिर जाएं। तुम कुछ बोलते हो और उलझन में पड़ते हो।
क्या हो जाता है बोलने से? क्योंकि बोलने की अवस्था में सबसे कम स्मृति रहती है, सबसे कम सुरति--अवेयरनेस! क्योंकि बोलने में ध्यान दूसरे पर होता है; अपने पर ध्यान चूक जाता है। जब तुम बोलते हो, तब तुम दूसरे की तरफ जा रहे हो, तुम्हारा तीर दूसरे की तरफ जा रहा है। तो तीर का पिछला हिस्सा अपनी तरफ होता है, तीर का फल दूसरे की तरफ होता है। चेतना एक तीर है। वह दूसरे को देखती है। जिससे तुम बोल रहे हो, उस पर ध्यान होता है। अपने पर ध्यान चूक जाता है। और इसलिए उस गैर-भान की अवस्था में तुमसे बातें निकल जाती हैं, जिनके लिए तुम जन्मों तक पछताते हो।
तुम किसी स्त्री से कह बैठे कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। यह कभी सोच
कर भी नहीं गए थे। यह पहले कभी ख्याल में भी नहीं आया था। बात-बात में बात हो गयी। अब फंसे! अब इससे लौटना मुश्किल हो गया। अब इस बात से और बातें निकलेंगी। जैसे पत्तों में पत्ते लगते जाते हैं, वैसे बात में बात लगती जाती है। अब चल पड़े तुम एक यात्रा पर।
तुमने कभी ख्याल नहीं किया है। ख्याल करोगे तो साफ हो जाएगा कि जीवन
की सारी झंझटों की कड़ियां शब्दों से शुरू होती हैं। और फिर एक शब्द जब बोल दिया तो फिर अहंकार जकड़ लेता है कि अब उसकी पूर्ति करनी भी जरूरी है।
तुम एक स्त्री को प्रेम करते हो। तुम उससे कहते हो, जन्मों-जन्मों तुझे प्रेम करूंगा। क्षण का तुम्हें भरोसा नहीं, कल का तुम विश्वास नहीं दिला सकते। कल सुबह क्या होगा, कोई जानता नहीं। लेकिन अभी तुम जन्मों- जन्मों के लिए बात कह रहे हो। अगर तुम जरा भी होश में हो तो तुम इतना ही कहोगे कि इस क्षण मुझे प्रेम मालूम पड़ता है, कल का क्या पता? लेकिन उससे अहंकार को रस न आएगा। क्योंकि जब तुम्हें प्रेम पता चलता है तो तुम सोचते हो, अब सदा प्रेम करूंगा। "सदा" का तुम्हें पता है, क्या अर्थ होता है? हर स्थिति में तुम प्रेम कर सकोगे?
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछ रही थी कि अब तुम पहले जैसा मुझे प्रेम नहीं करते; मैं बूढ़ी हो गई हूं, इसीलिए? शरीर मेरा जर्जर हो गया है, इसीलिए? झुर्रियां पड़ गई हैं, इसीलिए? और याद है तुम्हें धर्मगुरु के सामने तुमने कहा था कि सुख-दुख में साथ देंगे!
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, सुख-दुख में साथ देंगे; बुढ़ापे का किसने कहा था? तो सुख-दुख में तो साथ दे ही रहे हैं। बुढ़ापे की बात ही नहीं उठी थी। तुम आज जब कह रहे हो तो तुम्हें पता है कि सदा का कितना अर्थ होता है? उसमें कितनी चीजें छिपी हैं? लेकिन आज तुम कह दोगे, कल फिर इस आश्वासन को पूरा करने में मुश्किल पड़ेगी। न पूरा कर पाओगे तो पछताओगे, पूरा करोगे तो दुखी होओगे। क्योंकि जब प्रेम हाथ से छूट जाएगा, नहीं बचेगा, तब तुम क्या करोगे? कैसे उसे जबर्दस्ती लाओगे? तब एक प्रवंचना का जाल शुरू होता है। अगर व्यक्ति अपने शब्द का होश रख सके, जो कि कठिन है, शब्द के तल पर कठिन है; क्योंकि शब्द के तल पर तुम्हारी नजर दूसरे पर है, इसलिए अपना होश तुम कैसे रखोगे? सिर्फ बुद्धों के लिए बोलना ठीक है। क्योंकि उन्होंने अपने जीवन की साधना से दो फल वाला तीर पैदा कर लिया है। उनके पास ऐसी चेतना है--उसी चेतना का नाम सुरति है--जब तीर में दो फल हैं, दूसरे की तरफ, अपनी तरफ। जब चेतना दोनों तरफ एक साथ देख पाती है; जब चेतना तुममें बातचीत करने में खो नहीं जाती, सजग बनी रहती है; बोलने वाला बोलता रहता है, साक्षी भीतर खड़ा रहता है; तब एक भी शब्द तुम्हें किसी झंझट में न ले जाएगा। अन्यथा शब्द तुम्हें झंझट में ले जाएंगे।
एक सूफी कहानी है। गुरु ने चार शिष्यों को मौन के लिए भेजा। सांझ हो गयी। मस्जिद में चारों बैठे हैं। दीया नहीं जलाया किसी ने। नौकर पास से गुजरता था। तो एक ने कहा, ऐ भाई, रात हुई जा रही है, दीया जला दे। दूसरे ने कहा, तुम बोल गए और गुरु ने मना किया था! और तीसरे ने कहा, क्या कर रहे हो? तुम भी बोल गए! गुरु ने मना किया था। और चौथे ने कहा, हम ही ठीक; हम अभी तक नहीं बोले।
बोलने में एक विस्मरण है। यह कहानी तुम्हें हंसने जैसी लगती है, तुम्हारी ही कहानी है। तुम चुप बैठो, तब पता चलेगा कि बोलने का कितना मन

होने लगता है। तुम चुप बैठो, तब पता चलेगा कि भीतर तुम किस तरह बोलने लगते हो। और बाहर कोई भी बहाना मिल जाए कि सुरति खो जाओगे।
कहानी का मतलब क्या है? कहानी का मतलब है, उन चारों में से किसी को स्मरण न रहा कि हम चुप होने के लिए यहां बैठे हैं। और कहानी का मतलब है कि जब नौकर निकला पास से, दूसरा आया, ध्यान दूसरे पर गया, सुरति चूक गयी। नानक कहते हैं, मनन से ही मन और बुद्धि में सुरति उदय होती है।
सुरति शब्द बड़ा प्यारा है। यह बुद्ध के सम्यक स्मरण से आता है। बुद्ध
ने बड़ा जोर दिया स्मृति पर--राइट माइंडफुलनेस पर--कि तुम जो भी करो, स्मरणपूर्वक करना। बोलो तो स्मरणपूर्वक बोलना। चलो तो स्मरणपूर्वक चलना। आंख भी हिलाओ, पलक भी हिले--स्मरणपूर्वक। होश खो कर मत करना कुछ। क्योंकि जो तुम होश खो कर करोगे, वही पाप है। और जो तुम होश खो कर करोगे, उससे ही तुम अपने से दूर निकलते जाते हो। अपने पास आने की एक ही विधि है कि तुम ज्यादा से ज्यादा होश सम्हालना। कैसी भी परिस्थिति हो, तुम एक चीज मत खोना--सब खो जाने देना--वह है होश! घर में आग लगी हो तो भी तुम होशपूर्वक घर के बाहर निकलना।
ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने एक संस्मरण लिखा है कि उनको वाइसराय ने सम्मान के लिए बुलाया था। गरीब आदमी थे। पुराना बंगाली ढंग का कुरता, कमीज, धोती पहनते थे। फटे-पुराने कपड़े थे। मित्रों ने कहा कि वाइसराय की सभा में इन कपड़ों में जाना उचित नहीं, अच्छे कपड़े बना देते हैं। बात उनको भी जंची। एक-दो दफे इनकार भी किया। लेकिन फिर उनको भी लगा कि ठीक नहीं है, तो कपड़े बनवा लिए।
कल सुबह वाइसराय की सभा में जाने को हैं, उसके एक दिन पहले की घटना है। सांझ को लौटते थे बगीचे से टहल कर। सामने ही एक मुसलमान अपने कपड़े पहने हुए--चूड़ीदार पायजामा, शेरवानी, हाथ में छड़ी लिए--बड़े शौक से शाम की चहलकदमी करते हुए जा रहा है घर वापस। एक आदमी भागा हुआ आया और उसने कहा, मीर साहिब, आपके घर में आग लग गयी, जल्दी करिए। लेकिन वह वैसे ही चलता रहा, चाल में जरा भी फर्क न आया--जरा भी! जैसे नौकर आया ही नहीं, जैसे नौकर ने कुछ कहा ही नहीं; जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो; वह जैसा था, ठीक वैसा ही रहा। सुर जरा भी न बदला उसका। नौकर समझा कि शायद मालिक ने सुना नहीं; क्योंकि आग लगने का मामला है। उसने कहा कि आप समझे या नहीं? सुना आपने या नहीं? किस विचार में खोए हैं? मकान में आग लग गयी!
नौकर कंप रहा है, पसीना-पसीना है, बड़ा उत्तेजित है। और नौकर है! उसका कुछ भी नहीं जल रहा है। उस मुसलमान ने कहा, सुन लिया! लेकिन मकान में आग लग गयी, इस वजह से क्या जिंदगी भर की चाल बदल दें? आते हैं।
ईश्वरचंद्र पीछे ही थे। उन्होंने सुना तो बड़े हैरान हुए। तो उन्होंने
भी सोचा कि जिंदगी भर के कपड़े बदलें वाइसराय के लिए! और यह एक आदमी है... वह वैसे ही... ! पीछे गए उसके। देखें, यह आदमी अनूठा है। वह आदमी वैसे ही गया, जैसे वह रोज जाता था। वही चाल रही, वही छड़ी का हिलना रहा। घर पहुंच गया। आग लगी है। उसने नौकरों से कह दिया कि बुझाओ! और स्वयं बाहर खड़ा रहा। सब इंतजाम कर दिया, लेकिन उस आदमी में रत्ती भर भी फर्क नहीं है। ईश्वरचंद्र ने लिखा है कि मेरा हृदय श्रद्धा से झुक गया। ऐसा आदमी तो मैंने देखा नहीं।
यह किस चीज को सम्हाल रहा है? उसका नाम सुरति है; उसका नाम स्मृति है।
यह एक बात को सम्हाले हुए है कि अपने होश को नहीं खोना है। जो हो रहा है, हो रहा है। जो किया जा सकता है, वह कर रहे हैं। जो करने योग्य है, वह किया जाएगा। लेकिन स्मृति कभी भी खोने योग्य नहीं है। इस दुनिया में ऐसी कोई भी चीज नहीं है इतनी मूल्यवान, जिसके लिए तुम सुरति को खोओ।
लेकिन तुम छोटी-छोटी चीजों में खो देते हो। एक रुपए का नोट गिर गया, और देखो तुम कैसे पगला जाते हो। एकदम ढूंढ़ रहे हैं पागल की तरह! जहां नहीं हो सकता, वहां भी ढूंढ़ रहे हो।
किसी आदमी को देखो! घर में उसकी कोई चीज खो गयी। चीज बड़ी हो, वह छोटा सा डिब्बा भी खोल कर देख रहा है कि शायद... । तुम स्मृति को खोने को तैयार ही हो। खोने को तैयार हो, यह कहना भी शायद ठीक नहीं। तुम्हारे पास है ही नहीं, तुम खोओगे क्या? तुम मूर्च्छित... ।

नानक कहते हैं, "मनन से मन और बुद्धि में सुरति का उदय होता है।" जैसे-जैसे ओंकार गहरा बैठता है, पहले तुम्हारा उच्चार बंद होता है, वैसे ही तीर भीतर की तरफ मुड़ता है। क्योंकि अब बाहर कोई न रहा, जिससे बोलना है। बोलना यानी बाहर से संबंध बनाना। बोलना यानी सेतु। उससे हम दूसरे तक जाते हैं। वह संवाद है। वह दूसरे और हमारे बीच का नाता है। वह तोड़ लिया। नहीं बोलना। चुप हो गए।
चुप का अर्थ है, यात्रा उल्टी हो गयी। तीर वापस लौटा। अंतर्यात्रा शुरू हुई। उसी वक्त से स्मृति की पहली झलक आनी शुरू हो जाएगी। तुम पाओगे, तुम हो। तुम पहली दफा जाग कर पाओगे कि मैं हूं। अब तक सब दिखायी पड़ता था, तुम भर नहीं दिखायी पड़ते थे। तुम भर छाया में खड़े थे। दीया तले अंधेरा था। अब तुम जागोगे। फिर जैसे-जैसे गहराई बैठेगी ओंकार की, मनन शब्द पर आएगा, वैसे-वैसे सजगता बढ़ेगी--उसी अनुपात में।
तुम ऐसा समझो, जैसे तराजू के दो पलड़े हैं। एक पलड़ा ऊपर उठता है तो दूसरा उसी अनुपात में नीचे आता है। जिस अनुपात में तुम भीतर जाते हो, उसी अनुपात में सुरति बढ़ती है। और तीसरे तल पर जहां शब्द भी खो जाता है, सिर्फ ओंकार की ध्वनि रह जाती है, नाद रह जाता है--एक ओंकार सतनाम--वहां अचानक परिपूर्ण सुरति हो जाती है! तुम जाग कर खड़े होते हो, जैसे हजारों साल की नींद टूट गयी। अंधेरा गया, प्रकाश आया। जन्मों-जन्मों से तुम जैसे सोए थे और एक सपना देख रहे थे। सपना विच्छिन्न हो गया, सुबह हो गयी। भोर हुई। ब्रह्ममुहूर्त पहली दफा आया!
"मनन से ही सभी भुवनों की सुधि आती है। मनन से ही मुंह में मार नहीं खानी पड़ती। मनन से ही यम के साथ नहीं जाना पड़ता। वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।"
मंनै सुरति होवै मनि बुधि। मंनै सगल भवन की सुधि।।
मंनै मुहि चोटा न खाइ। मंनै जम के साथ न जाइ।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।
जिस दिन तुम जागते हो, उस दिन तुम्हें पता चलता है कि यह अनंत आकाश, ये भुवन, यह अस्तित्व, यह परमात्मा की अनंत लीला पहली दफे तुम्हें दिखायी पड़ती है। जब तक तुम अपनी ही वासना में खोए थे, अपने ही मन में डूबे थे, तब तक तुम्हें कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था; तुम अंधे थे। मन अंधापन है; मनन है आंख का खुल जाना।
नानक कहते हैं, "मनन से ही सभी भुवनों की सुधि आती है।"
ये अनंत लोक, सब प्रकट हो जाते हैं। जीवन अपनी परिपूर्ण महिमा में प्रकट होता है। तब तुम देख पाते हो रत्ती-रत्ती में उसके हस्ताक्षर, पत्ते-पत्ते पर उसका नाम, रोएं-रोएं में उसकी धुन, हवा के झोंके-झोंके में उसी का गीत। तब यह जीवन, तब यह अस्तित्व पूरा का पूरा उसकी महिमा को प्रकट करता है।
अभी तुम पूछते हो, जीवन में क्या है? लोग पूछते हैं, क्या है अर्थ जीवन का? क्या प्रयोजन है? क्यों हम पैदा किए गए हैं? लोग पूछते हैं, किसलिए जिंदा रहें?
पश्चिम के बहुत बड़े विचारक मार्शल ने लिखा है कि जिंदगी में एक ही तो सवाल है और वह है आत्महत्या। कि हम किसलिए जिंदा रहें? क्यों न हम आत्महत्या कर लें?
यह बेहोशी की आखिरी अवस्था है, जहां आत्महत्या घटित होती है, जहां तुम जीवन के बहुमूल्य उपहार को फेंक देते हो वापस। क्योंकि तुम्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता उसमें।
और इससे विपरीत एक घटना घटती है, जब तुम जागते हो। तब इतनी महिमा है, इतनी अपरंपार महिमा है! उसके भुवन खुलते चले जाते हैं; पर्त-पर्त चारों तरफ रहस्य खड़ा हो जाता है। तब तुम्हें जीवन का अर्थ, जीवन का आनंद--जिसको हमने समाधि कहा है--उस क्षण तुम जानते हो कि क्यों जीवन है।
अभी तुम जान ही नहीं सकते। अभी तुम कितना ही पूछो, कोई कितना ही कहे, कोई कह दे कि परमात्मा को पाना जीवन का लक्ष्य है, तो भी कुछ हल नहीं होता। समाधि को पाना जीवन का लक्ष्य है, तो भी कुछ हल नहीं होता। बात कुछ जंचती नहीं है। बात जंच ही नहीं सकती। जंचेगी तब जब सुधि आएगी। ये नानक, बुद्ध,

कबीर, ये तुम्हें तब तक न जंचेंगे, जब तक सुधि न आएगी। तब तक ये जंचेंगे कि होंगे, ठीक है, कहते होंगे कुछ! आमतौर से तो तुम समझते हो कि ये लोग--कुछ दिमाग इनका ठीक नहीं। अपना दिमाग तुम ठीक समझते हो और तुम्हारे दिमाग से तुम पहुंचे कहां? तुम्हारे दिमाग से तुम आत्महत्या के करीब पहुंच रहे हो। कैसे खतम कर लें! कुछ सार नहीं मालूम पड़ता। कैसे फेंक दें इस बहुमूल्य उपलब्धि को जो जीवन है! इस भेंट को हम कैसे लौटा दें!
जैसे ही जागते हो, वैसे ही जीवन का रहस्य खुलना शुरू हो जाता है। फूल खिलता है, उसकी पंखुड़ी-पंखुड़ी अनंत आनंद बन जाती है।
"मनन से ही मुंह में मार नहीं खानी पड़ती।"
नानक तो सीधे-सादे गांव के ग्रामीण हैं। पर जो बात कह रहे हैं, वह बड़े पते की है। वे यह कह रहे हैं कि अगर तुमने मनन से कुछ बोला तो तुम्हें कभी अपने शब्दों पर लौटना नहीं पड़ता वापस, पीछे नहीं जाना पड़ता। अगर मनन से ही तुम्हारा शब्द निकला तो तुम्हें कभी अपने शब्दों को थूक कर नहीं चाटना पड़ता; नहीं तो रोज चाटना पड़ेगा। रोज थूकोगे, रोज चाटोगे। रोज मुंह पर मार खानी पड़ेगी। क्योंकि तुम जो बोल रहे हो, वह बेहोशी में बोल रहे हो। तुम जो बोल रहे हो, वह अहंकार की निद्रा में बोल रहे हो। तुम्हारा बोलना नींद में बोला गया है। तुम होश में नहीं हो कि क्या तुम कह रहे हो। क्या तुम कर रहे हो, उसका तुम्हें कुछ पता नहीं है। कहां तुम जा रहे हो, क्यों तुम जा रहे हो, तुम्हें कुछ पता नहीं है। तो तुम्हें रोज ही मुंह पर मार खानी पड़ेगी। आज तुम कहोगे कि प्रेम करता हूं और कल तुम सुबह पाओगे कि प्रेम तिरोहित हो गया। अभी तुम चाहते हो कि हत्या कर दूं, घड़ी भर बाद तुम चाहोगे कि कैसे इस आदमी को जिला लूं वापस! बड़ी भूल हो गयी। अभी तुम कुछ कहते हो, घड़ी भर बाद कुछ हो जाता है। तुम्हारा कोई भरोसा नहीं। तुम बदलता हुआ मौसम हो। तुम्हारे भीतर कोई भी तत्व थिर नहीं है, क्रिस्टलाइज्ड नहीं है। तुम्हें प्रतिक्षण मुंह पर मार खानी पड़ेगी।
नानक कहते हैं, "मनन से ही मुंह पर मार नहीं खानी पड़ती और मनन से ही यम
के साथ नहीं जाना पड़ता।"
मरते तो सभी हैं, लेकिन सभी यम के साथ नहीं जाते। यह एक प्रतीक है। इसे थोड़ा समझ लें। मरते सभी हैं, लेकिन कभी-कभी कोई स्मरणपूर्वक मरता है। बस फिर यम के साथ नहीं जाना पड़ता। जब तक तुम विस्मरण में मरते हो, तब तक तुम्हें यम के साथ जाना पड़ता। यम का अर्थ है, भय। जब आदमी बेहोशी में मरता है--जिसकी जिंदगी भर बेहोशी में बीती--तो मरते वक्त कंपता है, रोता है, चीखता है, चिल्लाता है, अपने को किसी तरह बचाना चाहता है। आखिरी दम तक पकड़ रखना चाहता है सांस को कि किसी तरह बच जाऊं। कोई भी बहाना! कोई भी बचा ले! रोता है, गिड़गिड़ाता है। यह जो सारे भय की दशा है, यह जो भय का काला मुंह है, यह जो भैंसे पर सवार भय है--इसका नाम यम है।
लेकिन जो आदमी स्मरण से मरता है, जिसके भीतर कोई भय नहीं, जिसने जीवन
को जाग कर देखा, उसका भय चला जाता है। तब वह पाता है कि मृत्यु तो जीवन की परिपूर्णता है, अंत नहीं। और मृत्यु भय नहीं है, वह परमात्मा का द्वार है। वह पाता है कि मृत्यु तो आमंत्रण है; वह तो उसमें लीन हो जाने की प्रक्रिया है। तब वह न घबड़ाता है, न वह कंपता है, न वह रोता है, न वह चिल्लाता है। तब वह आनंदमग्न उस परम सौंदर्य में प्रवेश करता है। तब वह अपने प्रिय से मिलने जैसे जा रहा हो।
नानक जिस दिन मरे, उस दिन उनके ओंठों पर जो शब्द थे, वे बड़े कीमती हैं। नानक ने कहा, फूल खिल गए हैं! वसंत आ गया है! वृक्षों पर बड़ा गीतों का कलकल नाद है!
किस जगत की वे बात कर रहे हैं? लोगों ने समझा कि वे जिस गांव में पैदा हुए थे, वह मौसम था फूलों के आने का और वृक्षों पर पक्षियों की कलकलाहट का, उसी की बात कर रहे हैं। मरते वक्त बचपन की याद आ गयी। और नानक पर लिखने वाले सभी लोगों ने यही भूल की है। यह मैं तुमसे पहली बार कहता हूं कि इसका उनके गांव से कोई संबंध न था। यह संयोग की बात थी कि मौसम वसंत का था। उनके गांव में भी फूल खिले होंगे, वृक्षों में नए पत्ते आ गए थे और पक्षी कलरव कर रहे थे। यह ठीक है। यह संयोग की बात है। लेकिन नानक मरते वक्त जन्म को याद करेंगे? नानक मरते समय कुछ और देख रहे हैं। प्रतीक तो इसी जगत के

उपयोग करना पड़ेंगे, क्योंकि जिनसे वे कह रहे हैं... । आखिरी घड़ी में वे एक परम सौंदर्य में प्रवेश कर रहे हैं, जहां फूल खिले हैं, जो कभी नहीं मुरझाते; जहां पक्षियों के गीत सदा ही गूंजते रहते हैं; जहां शाश्वत है सौंदर्य।
जैसे ही कोई व्यक्ति जीवन को जाग कर जीता है, मृत्यु परिसमाप्ति नहीं है, परिपूर्णता है। मृत्यु अंत नहीं है, परम फूल है। जीवन की परम अवस्था है। मृत्यु में हम कुछ खोते नहीं, कुछ पाते हैं। इस तरफ द्वार बंद होता है, उस तरफ द्वार खुलता है। ज्ञानी नाचता हुआ जाता है, गाता हुआ जाता है। अज्ञानी रोता हुआ जाता है, चिल्लाता हुआ जाता है। अज्ञानी यमदूत के साथ जाता है, अपने ही कारण। कोई यम नहीं है। कोई भैंसे पर सवार यम तुम्हारे पास नहीं आता। तुम्हारा भय तुम्हारा यम है। तुम अभय हो गए, फिर परमात्मा खुद अपनी बांहें फैलाता है।
तुम जो हो, वैसा ही तुम्हारा मृत्यु का अनुभव होगा। इसलिए मृत्यु कसौटी है। आदमी कैसा मरता है, इससे पता चलता है कि कैसा जीया। अगर प्रफुल्लित मरता है, शांत मरता है, आनंदभाव, अहोभाव से मरता है, तो सारा जीवन कीमती था, मूल्यवान था। यह पूर्णाहुति है। अगर रोता-चिल्लाता मरता है तो जीवन एक संताप था, नर्क था।
इसलिए नानक कहते हैं, "मनन से ही यम के साथ नहीं जाना पड़ता। वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है। मनन से ही मार्ग में बाधा नहीं आती। मनन से ही कोई प्रतिष्ठा के साथ विदा होता है। मनन से ही कोई मार्ग से नहीं भटकता। मनन से ही धर्म से संबंध बनता है। वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।"
मंनै मारग ठाक न पाइ। मंनै पति सिउ परगटु जाइ।।
मंनै मगु न चलै पंथु। मंनै धरम सेती सनबंधु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।
बाधाएं तुम्हारे बाहर नहीं हैं, बाधाएं तुम्हारे भीतर हैं। और तुम्हारे भीतर बाधाएं हैं, क्योंकि तुम मूर्च्छित हो। और बाधाओं को मिटाने का और कोई उपाय नहीं है। अगर तुम एक-एक बाधा को मिटाने में लग जाओगे, तो तुम कभी न मिटा पाओगे। बाधाओं को मिटाने का एक ही मार्ग है कि तुम भीतर जाग जाओ; सभी बाधाएं खो जाती हैं।
ऐसा समझो कि तुम्हारा घर है अंधेरे से भरा। तुम आते हो, हर कोने-कातर में डर मालूम पड़ता है कि पता नहीं, प्रेत हों, भूत हों, चोर हों, डाकू- लुटेरे हों, हत्यारे हों। पूरा घर है, बड़ा भवन है, कोने-कोने में भय है। हजार तरह के भय हैं। तुम एक-एक भय से कैसे जीतोगे? कितने चोर हैं, कितने धोखेबाज हैं, कितने लुटेरे हैं, कितने हत्यारे हैं, क्या पता! सांप हैं, बिच्छू हैं, जहर है, क्या पता! अंधेरे में क्या छिपा है! तुमने अगर एक-एक से निपटने की कोशिश की तो तुम हारोगे।
नहीं, एक-एक से निपटा नहीं जा सकता। निपटने का एक ही उपाय है कि तुम दीया जला लो। एक दीए के जलने से सारे भय समाप्त हो जाते हैं, घर प्रकाशित हो जाता है। फिर जो भी है, तुम देख लेते हो। फिर जो भी तुम देख लेते हो, उससे निपटने का मार्ग बन जाता है।
सच तो यह है, जैसा बुद्ध ने कहा है कि अंधेरे घर में चोर आकर्षित होते हैं। घर में दीया जलता हो तो चोर उस घर से बच कर निकलते हैं। जिस घर पर कोई पहरा नहीं है, चोर और लुटेरे और डाकू और हत्यारे उस तरफ आते हैं। जिस घर पर पहरेदार है, उससे वे जरा दूर ही चलते हैं। भीतर दीया जल रहा हो और सुरति का पहरेदार खड़ा हो तो तुम्हारे भीतर कोई बाधा नहीं आती, अन्यथा सब बाधाएं आती हैं।
एक दिन सुबह-सुबह मुल्ला नसरुद्दीन ने मुझे आ कर कहा कि अब कुछ करना
ही होगा, मैं बहुत परेशान हूं। और एक चिट्ठी मेरे हाथ में दी। किसी की चिट्ठी थी, जिसमें लिखा था कि नसरुद्दीन, अगर तुमने मेरी स्त्री का पीछा करना बंद नहीं किया तो तीन दिन के भीतर गोली मार दूंगा। नसरुद्दीन ने कहा, बोलो, क्या करें! मैंने कहा कि इसमें इतना उलझने की जरूरत क्या है? उसकी स्त्री का पीछा करना बंद कर दो। नसरुद्दीन ने कहा, किसकी स्त्री का पीछा

करना बंद कर दें? नाम तो लिखा ही नहीं। अब कोई एक स्त्री हो तो पीछा बंद कर दूं।
एक बाधा हो तो मिटा दो, बाधाएं अनंत हैं। अनंत स्त्रियों का पीछा चल रहा है। अनंत कामनाएं हैं। एक को मिटाओ, दस खड़ी हो जाती हैं। एक से बचो दस बन जाती हैं। अगर तुम ऐसा एक-एक से उलझते रहे तो तुम कभी भी पार न पा सकोगे। कुछ विधि चाहिए, जो अकेली सारी बाधाओं का अंत कर दे। वही विधि जो बता दे, वह गुरु। वही गुर जो समझा दे, वह गुरु।
तो नानक कहते हैं, "मनन से मार्ग में बाधा नहीं आती।"
तुम जपो ओंकार, पहुंच जाने दो ओंकार को अजपा की स्थिति तक, फिर तुम्हारी आंखें खुल जाती हैं। मार्ग में बाधा नहीं आती, क्योंकि बाधाएं तुम खुद ही खड़ी करते थे। कोई और तुम्हारा शत्रु नहीं है, जिसे हटा दिया जाए। तुम ही अपने शत्रु हो। तुम्हारी मूर्च्छा ही तुम्हारी शत्रु है। उसके ही कारण तुम उलझे हो। और तुम कितना ही सम्हाल कर चलो, तुम नयी बाधाएं खड़ी करते रहोगे।
दुनिया में नियंत्रण रखने वाले लोग हैं, संयम रखने वाले लोग हैं, क्या फर्क पड़ता है! किसी तरह सम्हाल कर चलते हैं। संयम अंत नहीं है, सुरति अंत है। संयम का मतलब यह है कि किसी तरह अपने को सम्हाल कर चल रहे हैं कि भटक न जाएं। लेकिन भटकने का सुर तो भीतर गूंज रहा है, वह कभी भी भटका देगा। किसी तरह चलते रहोगे सम्हाल कर, किसी भी दिन घाट से नीचे उतार देगा, रास्ते के नीचे उतार लेगा। मौके की बात है। और संयमी आदमी सदा डरा रहेगा, क्योंकि भीतर तो असंयम उबल रहा है।
नानक कह रहे हैं, "मनन से मार्ग में बाधा नहीं आती। मनन से कोई प्रतिष्ठा के साथ विदा होता है।"
इस प्रतिष्ठा से तुम यह मत समझना कि सरकार इक्कीस तोपें छोड़ती हैं, कि जुलूस दो मील लंबा होता है, कि आकाश से हवाई जहाज से फूल बरसाए जाते हैं, कि सभी अखबारों के मुखपृष्ठ पर तुम्हारी फोटो छपती है। इस प्रतिष्ठा से नानक का कोई संबंध नहीं है। यह प्रतिष्ठा है भी नहीं।
एक और प्रतिष्ठा है जो दूसरों पर निर्भर नहीं होती। जो दूसरे पर निर्भर है, वह क्या प्रतिष्ठा! एक और प्रतिष्ठा है जो आंतरिक गरिमा की है। प्रतिष्ठा से वह आदमी विदा होता है, जिसको मृत्यु परमात्मा का मिलन मालूम होती है। वह आनंदभाव से, अहोभाव से विदा होता है। वह जीवन को धन्यवाद देता हुआ विदा होता है। वह चारों तरफ अनुग्रह के भाव से विदा होता है। तुम उसके अनुग्रह की छाप उसके चेहरे पर पाओगे, उसके रोएं-रोएं पर लिखी पाओगे। चाहे उसे कोई पहुंचाए न, चाहे वह रास्ते के किनारे किसी झाड़ के नीचे मर गया हो, पशु-पक्षी उसे खा जाएं, लेकिन उसकी प्रतिष्ठा है। वह प्रतिष्ठा आंतरिक गरिमा है।
मृत्यु भय नहीं है, तब तुम प्रतिष्ठा से विदा होते हो। मृत्यु अगर भय
है तो तुम प्रतिष्ठा से विदा नहीं हो सकते। कैसे विदा होओगे प्रतिष्ठा से? रोते, गिड़गिड़ाते, भीख मांगते, कितने ही लोग तुम्हें पहुंचा दें, इससे क्या फर्क पड़ता है! कितने ही लोग बैंड-बाजे बजा दें, इससे क्या फर्क पड़ता है। उनके बैंड-बाजे के शोरगुल में तुम्हारा दुख न छिपेगा, बरसते फूलों के नीचे तुम्हारी सड़ती हुई गंध न छिपेगी। उनकी गरजती तोपों के भीतर तुम्हारे भीतर का जो तुमुल संताप था, वह न छिपेगा। तुम्हारी मौत अप्रतिष्ठित रहेगी।
जब नानक कहते हैं कि मनन से ही कोई प्रतिष्ठा के साथ विदा होता है, तो
वे कहते हैं कि आत्म-प्रतिष्ठा से, एक भीतरी सम्मान, अहोभाव से।
"मनन से ही मार्ग से नहीं भटकता। मनन से ही धर्म से संबंध बनता है।" शास्त्र कितना ही पढ़ो, धर्म से संबंध न बनेगा। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, कोई धर्म से संबंध न जोड़ पाएगा। क्योंकि तुम्हीं तो गुरुद्वारा जाओगे--सोए, मूर्च्छित! तुम जो दुकान पर बैठे थे, वही गुरुद्वारा जाएगा। तुम्हारा ढंग बदलना चाहिए। तुम्हारा ढंग बदल जाए तो सब बदल गया। अन्यथा, तुम सब करते रहोगे... ।
नानक हरिद्वार गए और एक घटना घटी। पितृ-पक्ष चलता था और लोग कुएं पर पानी भर कर आकाश में अपने पुरखों को भेज रहे थे। नानक ने भी बाल्टी उठा ली, कुएं से पानी भरा और लोग तो पूरब की तरफ मुंह करके भेज रहे थे, उन्होंने

पश्चिम की तरफ बाल्टी उलटानी शुरू कर दी। और जोर से कहा, पहुंच मेरे खेत में। जब दस-पांच बाल्टी डाल चुके और सब जगह खराब कर दी, पानी से भर दी, तो लोगों ने पूछा कि आप यह कर क्या रहे हैं? आपका दिमाग ठीक है? और पुरखों को जो पानी चढ़ाया जाता है, वह सूर्य की तरफ, पूर्व की तरफ, आप यह पश्चिम की तरफ उलटा धंधा कर रहे हैं! और यह क्या कहते हैं कि पहुंच मेरे खेत में? कहां खेत है तुम्हारा?
नानक ने कहा, यहां से कोई दो सौ मील दूर है। लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, तुम पागल हो; शक तो हमें पहले ही हुआ था। कहीं दो सौ मील दूर यह पानी पहुंच सकता है? नानक ने कहा, तुम्हारे पुरखे कितनी दूर हैं? उन्होंने कहा कि वे तो अनंत दूरी पर हैं। तो नानक ने कहा कि जब अनंत दूरी तक पहुंच रहा है, तो दो सौ मील फासला क्या बहुत बड़ा है! जब तुम्हारे पुरखों तक पहुंच जाएगा तो हमारे खेत तक भी पहुंच जाएगा।
नानक क्या कह रहे हैं? नानक यह कह रहे हैं, थोड़ा चेतो! तुम क्या कर रहे हो? थोड़ा होश संभालो! कहां पानी ढाल रहे हो? इस तरह की मूढ़ताओं से क्या होगा?
लेकिन सारा धर्म इस तरह की मूढ़ताओं से भरा है। कोई पुरखों को पानी पहुंचा रहा है, कोई गंगाओं में स्नान कर रहा है कि पाप धुल जाएंगे, कोई पत्थर की मूर्तियों के सामने बिना किसी भाव के, बिना किसी अर्चना के, सिर झुकाए बैठा है और मांग कर रहा है संसार की। धर्म के नाम पर हजार तरह की मूढ़ताएं प्रचलित हैं।
इसलिए नानक कहते हैं, न तो शास्त्र से मिलेगा, न संप्रदाय से मिलेगा, न अंधे अनुकरण से मिलेगा। धर्म का संबंध होता ही तब है, जब कोई व्यक्ति मनन को उपलब्ध होता है।
जब कोई व्यक्ति जाग जाता है, भीतर सुरति आती है। बस जहां से ओंकार का नाद शुरू होता है, वहीं से धर्म का संबंध शुरू होता है। जिस दिन तुम समर्थ हो जाओगे नाद को सुनने में, करने वाले नहीं रहोगे, सिर्फ सुनने वाले, और भीतर नाद हो रहा है, और तुम आह्लादित हो, तुम साक्षी हो, तुम द्रष्टा हो-- उसी दिन तुम्हारा धर्म से संबंध जुड़ जाएगा। निश्चित ही यह धर्म मजहब नहीं हो सकता। यह धर्म रिलीजन नहीं हो सकता। इस धर्म का वही अर्थ है जो बुद्ध के धम्म का। इस धर्म का वही अर्थ है जो महावीर के धर्म का।
धर्म का अर्थ है, स्वभाव। जो लाओत्से का अर्थ है ताओ से, वही धर्म से अर्थ है नानक का। तुम अपने स्वभाव से जुड़ जाओगे। और स्वभाव में हो जाना ही परमात्मा में हो जाना है। स्वभाव से हट जाना, खो जाना है। स्वभाव में लौट आना, वापस घर पहुंच जाना है।
"वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।" "मनन से ही मोक्ष-द्वार की प्राप्ति होती है। मनन से ही परिवार को बचा लिया जाता है। मनन से ही गुरु तरता है और शिष्य को तारता है। नानक कहते हैं, मनन से ही भिक्षा के लिए नहीं भटकना पड़ता। वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।"
मंनै पावहि मोख दुआरु। मंनै परवारै साधारु।।
मंनै तरै तारे गुरु सिख। मंनै नानक भवहि न भिख।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।
द्वार तुम्हारे भीतर है, भटकाव तुम्हारे भीतर है। बाधाएं तुम्हारे भीतर हैं, मार्ग तुम्हारे भीतर है। सिर्फ दीया जल जाए तो तुम दोनों को देख लोगे--क्या है असत्य, क्या है सत्य। दीया जल जाए तो तुम देख लोगे कि कामना है असत्य और कामना का अनुकरण है संसार। दीया जल जाए तो तुम देख लोगे, अकामना है सत्य और अकामना है मोक्ष का द्वार।
तुम बंधते हो, क्योंकि तुम मांगते हो। मांग है बंधन। तुम नहीं बंधोगे, अगर तुम मांगोगे नहीं। जब तक तुम मांगते रहोगे, तुम बंधते रहोगे। तुमने न मालूम कितनी जंजीर गढ़ ली हैं। तुम्हारी हर मांग जंजीर बन जाती है। तुमने मांगा कि तुम फंसे। तुमने मांगा कि तुम कारागृह में प्रविष्ट हुए। और तुम मांगते ही चले जाते हो, तो कारागृह मजबूत होता चला जाता है।
नानक कहते हैं कि मनन से ही मोक्ष-द्वार की प्राप्ति होती है। क्योंकि जैसे ही तुम जागे, साफ दिखलायी पड़ जाता है--न मांगोगे, न बंधोगे; न

आकांक्षा होगी, न बंधन होगा; न चाह होगी, न जंजीरें होंगी। और जब कोई चाह नहीं, मोक्ष का द्वार खुल गया। अचाह मोक्ष का द्वार है।
"मनन से ही परिवार को बचा लिया जाता है।"
किस परिवार की बात करते हैं नानक? निश्चित ही उस परिवार की तो नहीं करते हैं--पत्नी, बच्चे, भाई-बहन--क्योंकि वह तो नानक भी नहीं बचा सके। वह तो कोई नहीं बचा सका। वह तो परिवार है ही नहीं। एक और परिवार है--गुरु और शिष्य का परिवार। वही परिवार है। क्योंकि वहीं प्रेम अपने शुद्धतम रूप में घटित होता है; क्योंकि वहीं प्रेम अचाह से घटित होता है; वहां प्रेम अकारण घटित होता है।
पिता से प्रेम होता है, क्योंकि उसने जन्म दिया है, कारण है। पत्नी से प्रेम होता है, क्योंकि शरीर की वासना है, कारण है। बेटे से प्रेम होता है, बुढ़ापे का सहारा है; आशा है, कारण है। गुरु से क्या संबंध? इसलिए तो जगत में गुरु खोजना बहुत मुश्किल हो जाता है, क्योंकि अकारण प्रेम खोजना है। बस प्रेम है, कोई कारण नहीं। न उससे कोई आशा है, न कोई आकांक्षा है। अगर तुम आशा और आकांक्षा से गुरु के पास गए तो परिवार न बन सकोगे उसके। उसके पास तो तुम्हें अकारण ही जाना होगा। कारण से तो तुम संसार में बहुत भटक लिए हो, क्या पाया? बिना किसी कारण के, सहज भाव से, बस हो गया!
इसलिए तो श्रद्धा को अंधी कहा है। अंधी दिखती है सोचने वालों को। वे पूछते हैं, क्यों इस आदमी के पीछे पागल हो? मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, उनके घर के लोग कहते हैं, क्यों रजनीश के पीछे पागल हो? दिमाग खराब हो गया है?
वे निश्चित ही पागल हैं। और सच कहा जाए तो ठीक ही कहते हैं घर के लोग
कि दिमाग खराब हो गया है। वह दिमाग जिससे संसार चलता है, निश्चित ही खराब हो गया है। एक नया प्रेम बना है। और इस नए प्रेम के लिए कोई तर्क नहीं दे सकते हो। किसी को सिद्ध भी नहीं कर सकते कि इस प्रेम में कोई कारण है। सिद्ध करने में उनको खुद ही लगेगा कि असंभव है।
नानक कहते हैं कि मनन से ही परिवार को बचा लिया जाता है।
एक गुरु का एक परिवार निर्मित होता है। और जब वह परिवार संप्रदाय बन जाता है, तब नुकसान शुरू हो जाता है; जब तक वह परिवार रहता है, तब तक एक बात।
जब बुद्ध पैदा होते हैं तो हजारों लोग उनके परिवार में सम्मिलित होते हैं। नानक पैदा होते हैं, हजारों लोग उनके परिवार में सम्मिलित होते हैं। जो लोग नानक के परिवार में सम्मिलित होते हैं, यह सम्मिलित होना ही बड़ी भारी घटना है। क्योंकि यह अकारण-जगत में प्रवेश है, अकारण प्रेम में प्रवेश है। यह नानक का रंग और रस लग गया। यह धुन पकड़ गयी। यह पागल हुए जा रहे हैं।
लेकिन फिर नानक विदा हो जाएंगे। जो परिवार में अपनी स्वेच्छा से सम्मिलित हुए थे, वे विदा हो जाएंगे। फिर उनके बच्चे और बेटे भी सिक्ख रहेंगे, वह संप्रदाय है। क्योंकि जिस प्रेम को तुमने नहीं चुना, वह तुम्हें रूपांतरित नहीं कर सकता। नानक को चुनना बड़ी क्रांति है। फिर सिक्ख के घर में पैदा होना और अपने को सिक्ख मानना कोई क्रांति नहीं है। मुसलमान के घर में मुसलमान पैदा होता है; हिंदू के घर में हिंदू; जैन
के घर में जैन; सिक्ख के घर में सिक्ख। संप्रदाय का अर्थ है, जो तुम्हें जन्म से मिले। और परिवार का अर्थ है, जो तुमने अपनी स्वेच्छा से चुना हो। धार्मिक व्यक्ति हमेशा स्वेच्छा से चुनेगा। अधार्मिक व्यक्ति सांप्रदायिक होगा, जन्म से चुनेगा।
तुम जन्म से जैन हो, कोई हिंदू है, कोई बौद्ध है। लेकिन जन्म से कोई हिंदू, जैन, बौद्ध, सिक्ख हो सकता है? जन्म से खून मिल सकता है, हड्डी-मांस-मज्जा मिल सकती है। आत्मा कैसे मिलेगी?
और इसलिए दुनिया में एक बड़ी अनबूझ घटना घटती रहती है कि जब गुरु जिंदा होता है, तब एक रोशनी होती है, जिसमें वह खुद भी तिरता है और दूसरों को भी तैराता है। जब गुरु जिंदा होता है, तब एक जीवंत घटना घटती है! फिर गुरु विदा हो जाता है, वे जो प्राथमिक--जिन्होंने अपने जीवन की चढ़ोत्तरी की थी, जिन्होंने अपने जीवन को भेंट किया था, दांव पर लगाया था--वे विदा हो जाते

हैं। तब उनके घर में बच्चे पैदा होते हैं। ये बच्चे फिर सिक्ख होंगे, जैन होंगे, बौद्ध होंगे। धर्म से इनका कोई संबंध न होगा।
एक बात ठीक से समझ लेना, धर्म व्यक्ति का अपना निर्णय है। जन्म से कोई धार्मिक नहीं हो सकता। उस निर्णय से जो परिवार बनता है... ।
नानक कहते हैं, "मनन से ही परिवार बचा लिया जाता है। मनन से ही गुरु तरता है और शिष्य को तारता है।"
नानक कहते हैं, "मनन से ही भिक्षा के लिए नहीं भटकना पड़ता।"
जैसे-जैसे मनन गहरा होता है, मांगना ही छूट जाता है। संसार क्या है? भिक्षा के लिए भटकना है। तुम गौर करो कि तुम क्या कर रहे हो? तुम मांग रहे हो। चौबीस घंटे मांग जारी है। तुम भिखारी हो।
नानक कहते हैं, "मनन से ही भिक्षा के लिए नहीं भटकना पड़ता।"
मनन से आदमी सम्राट हो जाता है, शहंशाह हो जाता है, बादशाह हो जाता है। मनन उसे मुक्त कर देता है भिक्षा से। मनन से वह मिल जाता है, जिसके पार पाने को कुछ बचता नहीं। मनन से परमात्मा मिल जाता है, फिर और क्या मांगना है? आखिरी मंजिल आ गयी! अब आगे कुछ मांगने को कहां है? सब मिल गया! कुछ शेष कहां रहा? समाधि मिल गयी, सब मिल गया! भिक्षा-वृत्ति छूट जाती है।
"वह नाम निरंजन ही ऐसा है कि जो कोई मनन करता है, उसका मन ही जानता है।" ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
सातवां प्रवचन

पंचा का गुरु एकु धिआनु

पउड़ीः 16
पंच परमाण पंच परधान। पंचे पावहि दरगहि मानु।।
पंचे सोहहि दरि राजानु। पंचा का गुरु एकु धिआनु।।
जे को कहे करै वीचारू। करतै कै करणे नाही सुमारू।।
धौलु धरमु दइआ का पूतु। संतोष थापि रखिया जिनि सूति।।
जे को बूझै होवै सचिआरू। धवलै उपरि केता भारू।।
धरति होरू परै होरू होरू। तिसते भारू तले कवणु जोरू।।
जीअ जाति रंगाके नाव। सभना लिखिया वुड़ी कलाम।।
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ। लेखा लिखिआ कोता होइ।।
केता ताणु सुआलिहु रूपु। केती दाति जाणै कौणु कूतु।।
कीता पसाउ एको कवाउ। तिसते होए लख दरिआउ।।
कुदरति कवण कहा वीचारू। वारिया न जावा एक वारू।।
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।।

एक ओंकार सतनाम। किसी भी मार्ग से एक को खोज लेना है। एक को खोजते ही यात्रा पूरी हो जाती है। क्योंकि एक को खो कर ही संसार प्रारंभ हुआ है। बहुत उपाय हो सकते हैं एक को खोजने के। क्योंकि बहुत प्रकार से एक खंडित हुआ है। जैसे सूर्य की किरण गुजरती है कांच के एक टुकड़े से, सात टुकड़ों में टूट जाती है। इंद्रधनुष पैदा होता है। ऐसे ही जीवन बहुत से खंडों में टूट गया है। एक किरण सात रंगों में टूट जाती है। जब रंग जुड़े होते हैं तब श्वेत रंग बनता है। जब टूट जाते हैं तब भिन्न-भिन्न रंगों का निर्माण होता है। संसार बहुत रंगीला है, परमात्मा शुभ्र है। एक का कोई रंग नहीं है। रंग
तो अनेक के हैं। समस्त साधनाएं पुनः खंडों में अखंड को खोजने की प्रक्रियाएं हैं। हिंदू कहते हैं, एक दो में टूट गया है--चेतना और पदार्थ, पुरुष और प्रकृति। इन दोनों में अगर तुम उसे खोज लो, एक की झलक, यात्रा पूरी हो जाएगी।
एक दूसरा मार्ग कहता है, एक तीन में टूट गया है--सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्। तुम सत्य में सुंदर को देख लो, सुंदर में सत्य को देख लो, शिवम में सुंदर दिखायी पड़े, सत्य में शिवम दिखायी पड़े; इन तीनों के बीच तुम्हें एक की झलक आने लगे; सत्यम्, शिवम्, सुंदरम खो जाए और एक ही बचे, एक ओंकार सतनाम, तो तुम्हारी यात्रा पूरी हो गयी।
नानक कहते हैं, एक पांच में टूट गया है, पांच इंद्रियों के कारण; अगर
इन पांचों में तुम एक को खोज लो, तो उपलब्धि हो गयी। तुम सिद्ध हो गए।
यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि तुम कितने खंडों में तोड़ कर देखते हो। अनंत खंड हो गए हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि खंडों के बीच अखंड को कैसे खोज लिया जाए!
पांच इंद्रियां हैं, लेकिन पांचों इंद्रियों के बीच में एक ध्यान है। इंद्रियां पांच हैं, ध्यान एक है। इसे थोड़ा समझें, तो पांचों इंद्रियों के बीच एक का सूत्र हाथ में आ जाएगा। मनके कोई गिनता रहे माला के, कुछ अर्थ नहीं, सब मनके जिस एक सूत्र में पिरोए हैं उसे जो पकड़ ले, उसने परमात्मा की शरण ले ली। मनके गिनना संसार है, मध्य में पिरोए सूत को पकड़ लेना परमात्मा की उपलब्धि है।
पांच इंद्रियां हैं। उनके बीच कौन है एक? जब तुम आंख से देखते हो तो कौन देखता है? जब तुम कान से सुनते हो तो कौन सुनता है? जब तुम हाथ से स्पर्श करते हो तो कौन स्पर्श करता है? जब तुम नाक से गंध लेते हो तो किसे गंध आती है? जब तुम स्वाद लेते हो तो किसे स्वाद आता है?
वह एक है। उसे नानक कहते हैं, वही ध्यान है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता
है कि तुम भोजन कर रहे हो... ।

बड़ी पुरानी कथा है। एक संन्यासी एक सम्राट के द्वार आया। उसके गुरु
ने उसे भेजा था। और कहा था, जो मैं तुझे नहीं समझा पाया वह शायद सम्राट समझा दे। भरोसा तो नहीं आया शिष्य को कि जो मैं गुरु से नहीं सीख सका, वह सम्राट से सीखूंगा? लेकिन गुरु ने कहा तो आज्ञा मानी।
वह जब सम्राट के द्वार पर पहुंचा तो वहां रागरंग चलता था। शराब पी जा रही थी। नर्तकियां नाच रही थीं। तो वह बड़ा दुखी हुआ कि कहां गलत जगह आ गया! उसने सम्राट से कहा भी कि मैं वापस लौट जाऊं! क्योंकि मैं तो कुछ जिज्ञासा ले कर आया था। यहां तो आप खुद ही खोए हुए हैं। कौन मेरी जिज्ञासा को पूरी करेगा?
सम्राट ने कहा कि मैं खोया हुआ नहीं हूं। लेकिन थोड़ी देर रुको तो ही तुम्हारी समझ में आ सके। ऊपर से देख गए तो व्यर्थ ही लौट जाओगे। भीतर देखोगे तो शायद सूत्र मिल जाए। गुरु ने सोच कर ही भेजा है। सूत्र तो भीतर है, इंद्रियों में तो सूत्र नहीं है। इंद्रियों के भीतर जो छिपा है वहां सूत्र है।
लेकिन, सम्राट ने कहा, अब आ गए हो तो रात रुक जाओ। रात बड़े सुंदर बिस्तर पर सुलाया संन्यासी को, श्रेष्ठतम जो भवन का कक्ष था। लेकिन एक नंगी तलवार सूत के धागे से ऊपर लटका दी। रात भर संन्यासी सो न सका। जागा ही रहा, नींद आए ही न। करवट बदले, लेकिन ध्यान तलवार पर अटका रहा। और कब टूट जाए! कच्चे धागे में लटकी तलवार, कब छाती में छिद जाए! यह सम्राट ने भी खूब मजाक किया! इतना अच्छा इंतजाम किया सोने का और ऊपर तलवार लटका दी।
सुबह सम्राट ने पूछा कि ठीक से सोए? संन्यासी ने कहा, इंतजाम तो सब सोने का ठीक था, इससे अच्छा इंतजाम हो नहीं सकता, लेकिन यह क्या मजाक की कि ऊपर तलवार लटका दी? मैं सो न सका। ध्यान तो वहीं लगा रहा।
सम्राट ने कहा, ऐसे ही मौत की तलवार मेरे ऊपर लटक रही है। मेरा ध्यान वहां लगा है। नर्तकी नाचती है, मैं नृत्य में नहीं हूं। शराब ढाली जा रही है, मैं शराब में नहीं हूं। सुस्वादु भोजन कर रहा हूं, मैं स्वाद में नहीं हूं। क्योंकि मेरे ऊपर मौत की तलवार लटकी है, मेरा ध्यान वहां है।
पांच इंद्रियां तुम्हारे जीवन का द्वार हैं। उनसे तुम जीवन में प्रवेश करते हो। उनके बिना तुम्हारा जीवन से संबंध न हो सकेगा। लेकिन जितने तुम उनके भीतर से प्रवेश करते हो उतने ही अपने से दूर निकल जाते हो। और हर इंद्रिय के भीतर छिपा हुआ ध्यान है। क्योंकि इंद्रिय जब बाहर जाती है, तो तुम्हारा ध्यान बाहर जाता है। वह ध्यान के बाहर जाने का मार्ग है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाएगा कि अगर तुम्हारा ध्यान एक इंद्रिय से उतर गया हो, तो दूसरी इंद्रियों का तुम्हें पता न चलेगा। क्योंकि पता इंद्रियों से नहीं चलता, ध्यान से चलता है। बोधमात्र ध्यान का है। समझो कि तुम्हारे पैर में कांटा गड़ा है। और बहुत पीड़ा हो रही है। और तुम सुस्वादु भोजन कर रहे हो, लेकिन स्वाद का पता न चलेगा। क्योंकि पीड़ा इतनी है कि ध्यान वहीं बह रहा है।
तुम रास्ते से चले आ रहे हो, चारों तरफ सुंदर स्त्री-पुरुष गुजर रहे हैं, लेकिन आज तुम्हें कोई सौंदर्य दिखायी नहीं पड़ता। क्योंकि अभी-अभी खबर मिली है कि घर में आग लग गयी। तुम भागे चले आ रहे हो। कोई नमस्कार करता है, सुनायी नहीं पड़ता। किसी को धक्का लग जाता है, माफी मांगने की याद नहीं आती। कौन गुजर रहा है? दुकानों पर क्या बिक रहा है? लोग क्या चर्चा कर रहे हैं? आज कोई उत्सुकता नहीं है। मकान में आग लगी है, तुम्हारा ध्यान उस तरफ है। कान सुनेंगे, फिर भी सुनेंगे नहीं। हाथ किसी को छू लेगा, फिर भी छुएगा नहीं। और ऐसे समय कोई सुस्वादु से सुस्वादु भोजन तुम्हें दे दे तो भी स्वाद न आएगा।
क्योंकि इंद्रियां बिना ध्यान के कुछ भी अनुभव नहीं कर सकतीं। इंद्रिय का सारा अनुभव तो ध्यान पर निर्भर है। तुम हर इंद्रिय में ध्यान को डालते हो, तभी इंद्रिय सक्रिय हो कर सक्षम हो पाती है। अगर इन पांचों इंद्रियों से अपने ध्यान को तुम खींच लो, तो पांच खो जाएंगे और एक बचेगा।
और वही एक की तलाश है। तो नानक इस सूत्र में इन पांच से कैसे एक पर हट जाया जाए, इसकी प्रक्रिया का उल्लेख कर रहे हैं।
अब इस सूत्र को समझने की कोशिश करें।

"पंच प्रमाण होते हैं और पंच ही प्रधान होते हैं। पंच का ही उसके
द्वार पर सम्मान होता है। पंच ही राजा के दरबार में शोभा पाते हैं। पंच का
एक ध्यान ही गुरु होता है।"
पंच परमाण पंच परधान। पंचे पावहि दरगहि मानु।।
पंचे सोहहि दरि राजानु। पंचा का गुरु एकु धिआनु।।
"पांच का एक गुरु है और वह ध्यान है।"
अगर तुम पांच में बिखरे रहे तो भटक जाओगे। अगर तुमने एक को पकड़ लिया
तो तुम उपलब्ध हो जाओगे।
कबीर ने एक पद कहा है। राह से चलते, एक स्त्री को चक्की पीसते कबीर ने देखा और कहा कि दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय। ये दो जो पाट हैं, इन के बीच जो भी पड़ गया, वह पिस गया। कबीर अपने शिष्यों को कह रहे थे कि ऐसे ही द्वैत की चक्की के बीच जो पड़ गया, वह पिस गया, वह बच न सका।
कबीर के बेटे ने कहा, लेकिन इस चक्की में एक चीज और है। इसमें बीच में
एक कील है। जिसने उसका सहारा ले लिया, उसके संबंध में भी कुछ कहें। तो कबीर ने दूसरे पद में कील का स्मरण किया है। कहा है कि दो पाटों के बीच में जो पड़ गया, वह तो नहीं बचा; लेकिन जिसने दो के बीच उस एक का सहारा ले लिया, उसे फिर कोई न मिटा सका। चक्की में भी जो गेहूं का दाना कील का सहारा ले लेता है फिर दो पाट उसे पीस नहीं पाते।
तो चाहे दो कहो, चाहे तीन कहो, चाहे पांच कहो, चाहे नौ कहो, चाहे अनंत-अनेक कहो। भटकाव के बहुत नाम हो सकते हैं, पहुंचने का नाम एक है। फिर तुम जो भी भटकाव चुनोगे, उससे गुजरने की प्रक्रियाएं अलग-अलग हो जाएंगी। अगर नानक की इस प्रक्रिया को समझना हो तो इसका अर्थ हुआ कि जब तुम भोजन करो, तब ध्यान पर ध्यान देना। भोजन भीतर जा रहा है, स्वाद निर्मित हो रहा है, तुम ध्यानपूर्वक इस स्वाद को लेना। अगर तुमने ध्यानपूर्वक यह स्वाद लिया तो तुम थोड़ी ही देर में पाओगे कि स्वाद तो खो गया, ध्यान हाथ में रह गया। क्योंकि ध्यान बड़ी प्रज्वलित अग्नि है। स्वाद तो जल कर राख हो जाएगा, ध्यान हाथ में रह जाएगा।
तुम एक सुंदर फूल को देख रहे हो, ध्यानपूर्वक देखना। थोड़ी ही देर में तुम पाओगे, फूल तो खो गया, ध्यान हाथ में रह गया। क्योंकि फूल तो सपने जैसा है, ध्यान शाश्वत है। अगर तुमने गौर से एक सुंदर स्त्री को देखा और गौर से देखते रहे और ध्यान दिया, भटक न गए विचारों में, तो तुम पाओगे स्त्री तो खो गयी--जैसे पानी पर बनी एक लहर--ध्यान हाथ में रह गया। हर इंद्रिय में अगर तुमने सावधानी बरती, तो तुम पाओगे इंद्रिय के रूप तो खो जाते हैं, निरूप, अरूप ध्यान हाथ में रह जाता है। और उस ध्यान को जिसने पकड़ लिया, फिर उसे मिटाने वाला कोई भी नहीं।
तो नानक कहते हैं, इन पंच इंद्रियों का एक ही गुरु है और वह ध्यान है।
और उसी एक ध्यान में पांचों इंद्रियां अपने जल को डालती हैं।
इसीलिए तो एक बहुत महत्वपूर्ण घटना है--मनस्विद अध्ययन करते हैं--और
वह यह कि आंख देखती है, कान सुनते हैं, हाथ छूता है, नाक गंध लेती है; न तो आंख सुन सकती है, न कान देख सकते हैं, फिर इन सबको जोड़ता कौन है?
मैं बोल रहा हूं। तुम मुझे देख भी रहे हो, तुम मुझे सुन भी रहे हो। कान
से तुम सुन रहे हो, आंख से तुम देख रहे हो। लेकिन ऐसा तुम कैसे पक्का कर सकते हो कि जिस व्यक्ति को तुम देख रहे हो वही बोल भी रहा है? आंख और कान तो अलग-अलग हैं। एक खबर देता है कि आवाज आ रही है, एक खबर देता है कि कोई दिखायी पड़ रहा है। लेकिन तुम दोनों को जोड़ कैसे लेते हो? कौन जोड़ता है दोनों को कि जिसको हम देख रहे हैं वही बोल रहा है?
जरूर तुम्हारी दोनों इंद्रियों के पीछे कोई एक जगह होनी चाहिए, जहां सभी इंद्रियां अपने अनुभव को संगृहीत करती हैं। आंख भी वहीं डाल देती है दृश्य को, कान भी वहीं डाल देता है शब्द को, नाक वहीं डाल देती है गंध को, हाथ वहीं डाल देते हैं स्पर्श को। एक बिंदु पर सभी इंद्रियां अपने-अपने अनुभव डाल देती हैं। वही बिंदु ध्यान है। वहीं सब चीजें संगृहीत हो जाती हैं और तुम अनुभव कर पाते हो।
नहीं तो जीवन बड़ा विक्षिप्त हो जाए। तुम्हें पता ही न चले कि तुम जिसे देख रहे हो वही बोल रहा है, कि जिसे तुम सुन रहे हो उसी के शरीर की गंध भी आ

रही है, तुम खंडित हो जाओगे। पांचों को जोड़ने वाला कोई चाहिए। ये पांचों मार्ग किसी एक जगह पर जा कर मिलते हैं। और इन पांचों का अनुभव संगृहीत हो जाता है। उस जगह का नाम ध्यान है।
नानक कहते हैं, ध्यान पांच का गुरु है। पंच का एक ध्यान ही गुरु होता है।
ये पांचों तो शिष्य हैं। लेकिन तुमने शिष्यों को गुरु बना लिया है।
और गुरु को तुम बिल्कुल भूल गए हो। तुमने नौकर-चाकरों को मालिक बना लिया है, मालिक का तुम्हें स्मरण न रहा। तुम इंद्रियों की मान कर चलते हो, ध्यान से तुम पूछते ही नहीं। तुम्हें इस बात का ख्याल ही भूल गया है कि इंद्रियां तो ऊपर-ऊपर हैं, गहरे में कौन छिपा है? इंद्रियां तो ध्यान के ही फैलाव हैं। इंद्रियों के माध्यम से ध्यान ही जगत में जा रहा है।
अगर तुम्हें इस जीवन को सुचारु रूप से चलाना हो तो इंद्रियों की मत सुनना। क्योंकि इंद्रियां तो अधूरी हैं। आंख को आंख का पता है। कान का कान को पता है। मुंह का मुंह को पता है। तुम उनकी मान कर चलोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे। और अक्सर तुम पाओगे कि लोगों ने इंद्रियों की मान ली है। और तुम हर आदमी में किसी न किसी एक इंद्रिय की प्रधानता पाओगे जिसकी उसने गुलामी कर ली है। कोई है जो स्वाद का दीवाना है। बस उसे भोजन, और भोजन, और भोजन सब कुछ है। उसे कुछ और सूझता नहीं। वह खाए चला जाता है।
सम्राट हुआ नीरो; उसने चिकित्सक रख छोड़े थे। क्योंकि एक दफा खाने में उसका मन न भरता। दिन में दो दफा खाने में मन न भरता। तीन भी तृप्ति न होती, चार भी तृप्ति न होती, वह चाहता कि चौबीस घंटे भोजन ही करता रहे। बस, स्वाद ही सब कुछ हो गया। तो उसने चिकित्सक रख छोड़े थे। वह खाना खाए, वे उसे उलटी करवा दें। उलटी कर के वह फिर खाने पर जुट जाए। जैसे ही खाना पूरा हो, चिकित्सक उसको दवा दे कर फिर उलटी करवा दें। वह फिर खाने पर जुट जाए।
तुम कहोगे, वह आदमी पागल था। लेकिन तुम पाओगे इसी तरह का पागलपन कम-ज्यादा मात्रा में लोगों के जीवन में है। किसी को आंख का नशा है। बस, वह सौंदर्य की तलाश में घूम रहा है। दर-दर, द्वार-द्वार ठोकर खा रहा है कि कोई सुंदर चेहरा, कोई सुंदर शरीर दिख जाए। आंख की मान कर चल रहा है। आंख की अगर मान कर चले, तो भी अंधे रहोगे। क्योंकि आंख असली देखने वाला तत्व नहीं है। आंख तो सिर्फ झरोखा है, खिड़की है। उससे जो झांकता है, वह कोई और है। खिड़की से मत पूछो, झांकने वाले से पूछो। इंद्रियां तो झरोखे हैं। कोई संगीत में दीवाना है। बस, उसको धुन का नशा चढ़ा हुआ है। कोई शरीर की साज-सज्जा में लगा है। कोई स्पर्श का दीवाना है, कोई गंध का दीवाना है।
लेकिन सभी इंद्रियों के दीवाने हैं और नौकरों की मान कर चल रहे हैं। मालिक से पूछो। मालिक कौन है सारी इंद्रियों का, जिसके हटते ही इंद्रियां व्यर्थ हो जाती हैं?
ऐसा हुआ कि उन्नीस सौ दस में काशी के नरेश का आपरेशन हुआ अपेंडिक्स का। तो उन्होंने कहा कि मैंने कसम ले रखी है कि बेहोशी की कोई दवा कभी न लूंगा। कभी कोई नशा न करूंगा। तो कोई इनस्थेशिया मैं नहीं ले सकता हूं। आप आपरेशन कर दें, लेकिन बिना किसी बेहोशी की दवा के। होश मैं न गंवाऊंगा। डाक्टरों ने कहा, यह कैसे हो सकेगा? यह कोई छोटा-मोटा कांटा निकालना नहीं है। यह तो पूरा पेट चीरा-फाड़ा जाएगा, हड्डी काटी जाएगी, घंटों लगेंगे। लेकिन काशी-नरेश ने कहा, आप उसकी फिक्र न करें। सिर्फ मुझे मेरी गीता पढ़ने दें। मैं अपनी गीता पढ़ता रहूंगा, आप अपना आपरेशन कर लें।
कोई और उपाय न था। और अगर आपरेशन न किया जाए, तो भी मृत्यु होनी निश्चित थी। तो फिर यह खतरा लिया गया, कि मृत्यु तो होनी ही है, एक संभावना है, शायद--शायद यह आदमी बच जाए। काशी-नरेश गीता का पाठ करते रहे और आपरेशन जारी रहा।
आपरेशन पूरा हो गया। चिकित्सक चकित हुए कि यह कैसे संभव है? इतनी पीड़ा हुई होगी! लेकिन काशी-नरेश ने कहा, मुझे पता न चला, क्योंकि मेरा ध्यान तो गीता पर लगा था।
पता तो ध्यान से चलता है। अगर तुम्हारा ध्यान बदल जाए, तुम्हें जो-जो पता चलता है वह बदल जाएगा। पता ध्यान से चलता है, तुम्हें वही दिखायी पड़ता है जिस तरफ तुम ध्यान देना चाहते हो। जिस तरफ तुम ध्यान नहीं देना चाहते,

वह तुम्हें पता ही नहीं चलता। तुम उसी बाजार से गुजर जाओगे, लेकिन पता तुम्हें उन्हीं चीजों का चलेगा जिन पर तुम ध्यान देना चाहते हो। चमार गुजरेगा, जूतों पर नजर रहेगी। जौहरी गुजरेगा, हीरों पर नजर रहेगी। तुम्हारी नजर वहां रहेगी जहां तुम्हारा ध्यान है। तुम वही देख लोगे जहां तुम्हारा ध्यान बह रहा है।
इसलिए सारे जीवन की गहनतम कला ध्यान की मालकियत को उपलब्ध कर लेना है। फिर अगर तुम परमात्मा की तरफ बह रहे हो, संसार खो जाएगा। इसलिए तो ज्ञानी कहते हैं, संसार माया है। माया का यह मतलब तो नहीं है कि नहीं है। है तो पूरी तरह। लेकिन ज्ञानी कहते हैं, संसार माया है। और उन्होंने जाना है कि माया है। जानने का कारण यह है कि जब पूरा ध्यान परमात्मा की तरफ बहता है, संसार खो जाता है। क्योंकि जिस तरफ ध्यान नहीं है, उसके होने न होने में कोई अंतर नहीं रह जाता है। जिस तरफ ध्यान है, उस तरफ हम जीवन देते हैं। जहां ध्यान है, वहां अस्तित्व पैदा हो जाता है। जहां से ध्यान हट गया, वहां से अस्तित्व खो जाता है।
ज्ञानी कहते हैं, परमात्मा सत्य है, संसार असत्य। क्या इसका यह अर्थ
है कि यह जो संसार दिखायी पड़ रहा है, वह नहीं है? यह पूरी तरह है, लेकिन ज्ञानी का ध्यान हट गया। अगर तुम्हारे मन में लोभ है तो धन सत्य है। अगर लोभ खो गया तो धन मिट्टी। धन अपने कारण धन नहीं है, तुम्हारे ध्यान के कारण धन है। वासना है तो शरीर बड़ा महत्वपूर्ण है, वासना खो गयी तो शरीर गौण हो गया।
जहां से ध्यान हटेगा, वहां से अस्तित्व हट जाता है। जिस तरफ ध्यान जाएगा, वहां अस्तित्व प्रगट हो जाता है। और जिस दिन तुम यह समझ लोगे, उस दिन तुम अपने मालिक हो जाओगे। क्योंकि तुम्हें अपने भीतर के मालिक का पता चल गया। अब तुम नौकरों की नहीं सुनते। अब तुम गुलामों की मान कर नहीं चलते। अब तुम शिष्यों से नहीं पूछते। उनसे क्या पूछना है जिन्हें खुद ही पता नहीं है! अब तुम गुरु से पूछते हो।
नानक कहते हैं, "पंच का एक ध्यान ही गुरु है। जो कोई उसके संबंध में कहे, वह विचारपूर्वक कहे। क्योंकि उससे गहन, गंभीर और कोई बात नहीं।" बहुत सोच कर कहे। ऐसे ही न कह दे। ऐसे बातचीत में न कह दे। क्योंकि उससे मूल्यवान कुछ भी नहीं है। उससे ज्यादा सारपूर्ण कुछ भी नहीं है।
लेकिन लोग ध्यान के संबंध में भी बिना जाने बात करते रहते हैं। ऐसे लोगों ने जगत को बड़ी उलझन में डाल दिया है। क्योंकि उन्हें कुछ पता ही नहीं है। लोगों को बिना पता भी कहने में रस आता है।
मेरे पास लोग आते हैं। सैकड़ों तरह की ध्यान की पद्धतियों पर हम प्रयोग कर रहे हैं। लोग आते हैं और कहते हैं, फलां आदमी ने कह दिया, यह तुम क्या कर रहे हो? यह भी कोई ध्यान है? मैं उनसे पूछता हूं कि तुम उस आदमी को जा कर पूछो कि उसने कभी ध्यान किया है? वह ध्यान को जानता है? अगर ध्यान को जानता है तो उससे सीख लो। क्योंकि सवाल यह नहीं है कि मुझ से सीखा कि किससे सीखा। सवाल यह है कि ध्यान सीखा। वह जा कर उस आदमी को वापस पूछते हैं। वह कहते हैं, ध्यान? ध्यान का मुझे पता नहीं, न मैंने कभी किया।
लेकिन कौन सी चीज ध्यान नहीं है, यह कहने में वह तैयार हैं! जिसे ध्यान
का कोई भी पता नहीं है वह भी ध्यान के संबंध में मंतव्य दे देगा।
नानक कहते हैं कि सोच-विचार कर कहना। होश से कहना। जानते हो, तो ही कहना।
दुनिया अज्ञानियों के कारण नहीं भटक रही है, दुनिया उन ज्ञानियों के कारण भटक रही है, जो ज्ञानी नहीं हैं। अज्ञानी क्या भटकाएगा? लेकिन ऐसे बहुत से लोग हैं, जिन्हें बताने का रस है। जिन्हें खुद भी पता नहीं है। जिन्हें ठीक-ठीक कुछ भी होश नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं! क्यों कह रहे हैं! किन कारणों से कह रहे हैं! लेकिन लोग कहे चले जाते हैं।
और इस संसार में नासमझ खोज लेना कठिन नहीं है। अगर तुम बोलना शुरू कर दो--कुछ भी कहने लगो, अनर्गल भी बको--तो भी तुम थोड़े दिन में पाओगे कि कुछ शिष्य तुमने इकट्ठे कर लिए। तुम से भी बड़े मूढ़ जगत में हैं। तो शिष्य को खोज लेना कोई अड़चन की बात नहीं है। तुम में भर थोड़ी सी विक्षिप्तता हो, दंभ हो, जोर से चिल्ला कर कहने की कोई आदत हो, लोग इकट्ठे हो जाएंगे। कोई न कोई

तुम्हारे पीछे चलने लगेगा। तुम्हारे आसपास घटनाएं घटने लगेंगी। लोग बिल्कुल अंधेरे में हैं। उन्होंने प्रकाश को कभी जाना ही नहीं है। तो तुम्हारी चर्चा में भी फंस जाते हैं। तुम अगर प्रकाश की चर्चा भी शुरू कर दो, तो भी उन्हें ख्याल होने लगता है कि जरूर कोई बात होगी।
फिर लोग बड़े कल्पनाशील हैं। जिसको वे सोच लेते हैं कि होगी, उसकी वे कल्पना करने लगते हैं। और जब कल्पना शुरू हो जाती है, तो स्वप्न दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। किसी की कुंडलिनी जगने लगेगी, किसी को प्रकाश दिखायी पड़ने लगेगा, किसी को रंग-बिरंगे दृश्य आने लगेंगे। और जब ये घटनाएं घटेंगी, तो वह जो आदमी बीच में गुरु बन कर बैठ गया है, उसका भरोसा और बढ़ जाएगा। इसलिए तो इतने गुरु हैं।
मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जिनको ध्यान का कोई भी पता नहीं है, जिन्होंने कभी उसका स्वाद ही नहीं लिया। लेकिन जिनके सैकड़ों शिष्य हैं। और जब वे गुरु मुझसे एकांत में मिलते हैं, तो वे भी यही पूछते हैं कि ध्यान कैसे करें? ध्यान क्या है?
नानक कहते हैं, ध्यान के संबंध में सोच-विचार कर कहना। क्योंकि यह आग
से खेलना है। यह सूक्ष्मतम बात है। इससे सूक्ष्म कुछ और नहीं है। और न इससे कोई और ज्यादा मूल्यवान है। संसार से परमात्मा तक जाने का जो रास्ता है, उससे महीन, बारीक और कुछ हो भी नहीं सकता। इस संबंध में बहुत सोच-विचार कर कहना।
जे को कहे करै वीचारू।
पहले तो यह विचार कर लेना कि मैं जानता हूं? मुझे पता है?
अगर इस संसार में हर व्यक्ति एक बात तय कर ले कि मैं वही कहूंगा जो मुझे पता है, तो इस दुनिया का भटकाव मिट जाए। सिर्फ इतनी सी बात तय कर ले कि मैं वही कहूंगा, जो मुझे पता है। मैं अनाधिकार बात न कहूंगा। जो मुझे पता नहीं है, मैं स्वीकार कर लूंगा, मुझे पता नहीं है। अगर इतने पर भी मनुष्य राजी हो जाए, तो इस दुनिया से भटकाव मिट जाए। और सत्य को खोज लेना कठिन न हो।
लेकिन इतना असत्य है चारों तरफ, इतने व्यर्थ के जाल हैं, इतना झूठा गुरुत्व है कि तुम ठीक गुरु को खोज भी न पाओगे। नानक को खोजना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि चारों तरफ न मालूम कितने लोग दावेदार हैं! तुम कैसे पता लगाओगे, कौन सही है? कौन झूठ है? कोई कसौटी भी नहीं है।
इसलिए नानक कहते हैं, बहुत विचार कर ही कोई कहे, जान लिया हो तो ही कहे, पहचान लिया हो तो ही कहे। क्योंकि तुम जीवन से खिलवाड़ न करना। तुम जब दूसरे को सलाह दे रहे हो, तब तुम दूसरे के जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हो। अगर तुम्हें पता नहीं है, तुम भटका दोगे। तुम्हें भला गुरु होने का मजा आ जाए! लेकिन इससे बड़ा कोई पाप नहीं हो सकता कि तुमने किसी को ज्ञान के मार्ग से भटका दिया। हत्या भी इससे कम पाप है। चोरी कुछ भी नहीं है। बेईमानी, धोखाधड़ी कुछ भी नहीं है। क्योंकि चोरी में तुम क्या करोगे? किसी की जेब से रुपया निकाल लोगे। रुपए का मूल्य कितना है? हत्या में तुम क्या करोगे? किसी का शरीर काट डालोगे। नया शरीर उपलब्ध हो जाएगा, क्योंकि जीवन का कोई अंत नहीं है। तुम किसी को मार सकते नहीं। हिंसा ऊपर-ऊपर है, भीतर हो नहीं सकती। कपड़े ही छीन सकते हो, आत्मा तो न छीन लोगे। तुम किसी को धोखा दोगे, क्या धोखा दोगे? कुछ क्षुद्र सी चीज पा लोगे।
लेकिन अगर तुमने गुरु होने का भ्रांत भाव पैदा करवा दिया, और तुमने वे बातें बतायीं जिनका तुम्हें पता नहीं, तो तुम व्यक्ति को जन्मों-जन्मों तक भटका दे सकते हो। इससे बड़ा और कोई धोखा नहीं हो सकता। और इससे बड़ा कोई पाप नहीं हो सकता। अज्ञानी गुरु जैसा महापाप करता है, वैसा महापाप कोई भी नहीं कर सकता।
और ध्यान रखना, जब एक व्यक्ति बहुत से गलत गुरुओं के पास भटक लेता है,
तो उसकी आस्था खो जाती है, उसका भरोसा टूट जाता है, उसकी आशा मिट जाती है। और धीरे-धीरे उसे ऐसा लगने लगता है कि सब पाखंड है। जब निन्यान्नबे के पास पाखंड है तो एक के पास कैसे सत्य होगा? और जो निन्यान्नबे के पास पाखंड से गुजरा है, वह अगर एक के पास भी आ जाए, नानक के पास भी आ जाए, तो भी अपने को

सम्हाल कर ही रखेगा। कि निन्यान्नबे जगह धोखा खाया, पता नहीं यहां भी धोखा हो!
इस संसार में इतनी नास्तिकता है, उस नास्तिकता का कारण गलत गुरु हैं। लोगों की आस्था खो गयी है। नास्तिकता विज्ञान के कारण नहीं है। और न नास्तिकता नास्तिक दार्शनिकों के कारण है। नास्तिकता का मौलिक कारण पाखंडी गुरु हैं। क्योंकि इतना भरोसा तोड़ दिया है कि अब यह भरोसा ही करना संभव नहीं है कि कोई गुरु है। और यह भी भरोसा करना संभव नहीं है कि कोई परमात्मा है। क्योंकि जब गुरु ही नहीं तो परमात्मा कैसे होगा। ये गुरु, परमात्मा, और यह सब जाल, लोगों के शोषण की विधियां हैं। ऐसी लोगों की प्रतीति हो गयी है। भले लोग इतने भटकाए गए हैं।
इसलिए नानक कहते हैं, जो भी इस संबंध में कुछ कहे, वह बहुत विचार कर कहे। आग से खेलना है। दूसरों को जीवन दांव पर लगाने की बात कहनी है। सोच कर कहे, अन्यथा चुप रहे।
नानक कहते हैं, करतै कै करणे नाही सुमारू।
और परमात्मा के संबंध में कुछ भी तो नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि न
तो उसका कोई अंत है, न कोई सीमा है। उसके संबंध में तो चुप ही रहा जा सकता है। क्या कहोगे? ध्यान के संबंध में कुछ कहा जा सकता है, लेकिन वह विचार कर कहना। और परमात्मा के संबंध में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता, इसलिए उस संबंध में तो कुछ कहना ही मत।
इसे थोड़ा समझ लो। ध्यान का अर्थ होता है विधि, मेथड; और परमात्मा का अर्थ होता है अनुभूति, निष्पत्ति। मार्ग के संबंध में कुछ कहा जा सकता है, अगर तुम चले हो मार्ग पर तो। मंजिल के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि मार्ग की तो सीमा है। मार्ग की तो दिशा है। मंजिल की तो कोई सीमा नहीं और कोई दिशा नहीं। मैं तुमसे यह तो नहीं कह सकता कि परमात्मा क्या है, लेकिन यह कह सकता हूं कि कैसे वहां तक मैं पहुंचा हूं। मार्ग के संबंध में बताया जा सकता है।
इसलिए बुद्ध कहते हैं कि बुद्ध-पुरुष केवल इशारा करते हैं। बुद्ध कहते हैं कि बुद्ध-पुरुष विधि बताते हैं। नानक ने तो बार-बार कहा है कि मैं तो एक वैद्य हूं, जो औषधि बताता हूं। स्वास्थ्य के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता है। औषधि के संबंध में कुछ कहा जा सकता है कि यह औषधि तुम्हारी बीमारी को काट देगी। फिर जो बच रहेगा, जो शेष रहेगा, बीमारी के हट जाने पर जिस आनंद, अहोभाव से तुम भर जाओगे, वही स्वास्थ्य है। उस संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।
परमात्मा के संबंध में जो भी कहा जाए वह नकारात्मक होगा। हम यही कह सकते हैं कि वह यह नहीं है, वह यह नहीं है, वह यह नहीं है। हम यह नहीं कह सकते कि वह यह है। ऐसा सीधा इशारा तो उसे सीमित कर देगा। सीमित को हम अंगुली से बता सकते हैं कि यह रहा। असीम को हम कैसे बताएंगे? तो नानक कहते हैं कि परमात्मा के संबंध में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता; तो तुम चुप रहना।
लेकिन परमात्मा के संबंध में भी लोग बहुत बात करते हैं। जितनी बात परमात्मा के संबंध में करते हैं, किसी और संबंध में नहीं करते। बड़ा विवाद, बड़ी किताबें, बड़ी चर्चाएं चलती हैं। प्रमाण जुटाते हैं, सिद्ध करते हैं कि है परमात्मा या नहीं। और कोई भी इसकी फिक्र नहीं करता कि परमात्मा को सिद्ध नहीं किया जा सकता और न असिद्ध किया जा सकता है। परमात्मा को जाना जा सकता है, जीया जा सकता है। परमात्मा हुआ जा सकता है। लेकिन न तो सिद्ध किया जा सकता है, न असिद्ध किया जा सकता है।
तुम कैसे सिद्ध करोगे कि परमात्मा है? तुम जो भी कहोगे वह असंगत होगा। तुम कैसे सिद्ध करोगे कि नहीं है? तुम जो भी कहोगे वह भी असंगत होगा। क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही है, यह समस्त, टोटेलिटी। यह जो विराट सब तरफ फैला हुआ है, इसका इकट्ठा एक नाम परमात्मा है।
परमात्मा कोई व्यक्ति तो नहीं है कि कहीं बैठा है आकाश में! परमात्मा
तो एक अनुभव है निमज्जन का, विलीन होने का। परमात्मा तो एक ऐसी परमदशा है, जब तुम मिट भी जाते हो और मिटते भी नहीं। होते भी हो और नहीं भी हो जाते हो।

एक ऐसा विरोधाभास है, जहां एक तरफ से तुम बिल्कुल शून्य हो जाते हो, दूसरी तरफ से बिल्कुल पूर्ण हो जाते हो।
तो परमात्मा न तो कोई व्यक्ति है, न कोई सिद्धांत है, न कोई हाइपोथीसिस है। परमात्मा एक अनुभूति है, और आखिरी अनुभूति है। और ऐसी अनुभूति है कि उसमें तुम खो जाते हो। इसलिए लौट कर कहने को कोई बचता भी नहीं।
तो नानक कहते हैं कि उसके संबंध में तो कुछ कहा नहीं जा सकता। ध्यान
के संबंध में कुछ कहा जा सकता है। बहुत सोच कर कहना। जाना हो तो कहना, अन्यथा चुप रह जाना।
इसे तुम अपने जीवन में तो एक नियम बना लो। छोड़ो संसार को, अपने संबंध में तुम एक नियम बना लो। यह छोटा-सा नियम तुम्हारे सारे जीवन को रूपांतरित कर देगा। जो तुमने जाना हो, वही कहना। इंच भर ज्यादा नहीं।
अतिशयोक्ति करने का मन होता है। इंच भर जानते हो, मील भर कहने की तबियत होती है। रत्ती भर पता चलता है, पहाड़ की चर्चा शुरू हो जाती है। मन की स्थिति अतिशय की है। क्योंकि अतिशय से अहंकार को रस आता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सड़क पर गिर पड़ा। बेहोश, उसे ले जाया गया अस्पताल। और जब उसे सर्जरी के टेबल पर रखा गया तो उसके खीसे में बंधा हुआ एक कागज का पुर्जा मिला। जिस पर उसने बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा थाः डाक्टरों के लिए विशेष सूचना। मुझे मिर्गी का दौरा पड़ा है, यह कोई अपेंडिक्स की बीमारी नहीं। अपेंडिक्स तो मेरी पहले ही अनेक बार निकाली जा चुकी है। "अनेक बार!"
मन तत्क्षण अतिशय करता है। क्योंकि बड़ा कर के देखने में मजा आता है। तुम्हें जरा सा पता चला नहीं कि तुम उसे फैला लोगे। तुम उसमें बहुत मिर्च-मसाला मिला लोगे। तुम उसे बहुत से रंग दे दोगे। और जितने तुम रंग दे रहे हो, उतना ही तुमने जो जाना है वह झूठ हुआ जा रहा है। धीरे-धीरे रंग ही रंग रह जाएगा, असली चीज खो जाएगी।
अतिशय से बचना। जितना जाना हो, इंचभर कम कहना, चलेगा। इंचभर ज्यादा मत कहना। थोड़ा कम बताना, चलेगा; उससे कोई किसी का हर्जा नहीं है। थोड़ा ज्यादा कर के मत बताना। और न केवल परमात्मा, ध्यान के संबंध में; जीवन के अनुभव के संबंध में भी आग्रह मत करना कि मैं जानता हूं। जीवन बड़ा है, तुमने जो जाना है, वह उसका बड़ा एक छोटा सा हिस्सा है। उससे नतीजे नहीं लिए जा सकते।
तुम एक दुकानदार रहे हो, तुमने दुकानदारी जानी है। जिंदगी बहुत बड़ी है। उसमें अनंत होने के ढंग हैं। तुमने सारी जिंदगी नहीं जान ली है। तुम इतना ही कहना कि मैं एक दुकानदार रहा। और दुकानें भी हजार तरह की हैं। मैंने एक तरह की दुकान की। और एक दुकान पर भी करोड़ों तरह के ग्राहक आ सकते थे, वे सब नहीं आए, थोड़े से ग्राहक आए। थोड़ा सा मेरा अनुभव हुआ है, एक रत्ती भर।
न्यूटन ने कहा है कि लोग सोचते हैं कि मैं बहुत जानता हूं। और मेरी दशा वैसी है जैसे सागर के किनारे मैंने रेत का एक कण हाथ में ले लिया हो। और रेत का एक कण मेरा ज्ञान है। और मेरा अज्ञान इतना बड़ा है, जितने कण अभी बाकी हैं।
ध्यान सदा अज्ञान पर देना कि कितना जानने को बाकी है! उससे तुम विनम्र
हो जाओगे। जो तुमने जाना है, उस पर बहुत ज्यादा ध्यान मत देना, उससे तुम अकड़ जाओगे। उससे अस्मिता जगेगी। उससे अहंकार पकड़ेगा। हमेशा ख्याल रखना, कितना जानने को शेष है! कितना अनुभव करने को शेष है! अपार बाकी है। तब तुम पाओगे कि जो जाना है, उसका हिसाब ही क्या रखना! कुछ भी तो नहीं जाना है। इसलिए सुकरात कहता है, ज्ञानी जब परम ज्ञान को उपलब्ध होता है, तब एक
ही जानने को बच रहता है कि मैंने कुछ भी नहीं जाना। ज्ञानी का लक्षण है कि कुछ भी नहीं जाना।
इसलिए नानक कहते हैं, सीमा रखना, सरलता रखना, विनम्रता रखना। उतना ही कहना, जितना जानते हो। और उस परमात्मा के संबंध में तो कुछ भी मत कहना। क्या तुम कहोगे? तुम जो कहोगे सब छोटे मुंह बड़ी बात होगी। सिद्ध करोगे तो, असिद्ध करोगे तो। तुम हो कौन? तुम निर्णायक हो? तुम्हारे तर्कों पर उसका

होना निर्भर है? तुम्हारे तर्क तो तोड़े जा सकते हैं। तब क्या वह टूट जाएगा?
रामकृष्ण के पास केशवचंद्र आए। तो केशवचंद्र ने बड़े तर्क दिए कि परमात्मा नहीं है। तो रामकृष्ण सुनते रहे। और बड़े प्रफुल्लित हुए, बड़े आनंदित हुए। छाती से लगा लिया केशवचंद्र को। कहा कि बड़ी कृपा की कि तुम आए। मैं तो गांव का ग्रामीण हूं। तो बुद्धि का ऐसा वैभव मैंने कभी नहीं देखा। तुम्हें देख कर ही सिद्ध हो गया कि परमात्मा है। क्योंकि तुम जैसा फूल कैसे खिलेगा बिना उसके?
वे सिद्ध करने आए थे कि परमात्मा नहीं है। और उन्होंने बड़े स्पष्ट तर्क दिए थे। केशवचंद्र बहुत तार्किक व्यक्ति थे। बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। कभी हजारों साल में वैसी प्रतिभा का आदमी होता है। बारीक तर्क दिए थे, जिनका उत्तर मुश्किल था।
लेकिन रामकृष्ण उनका उत्तर दिए ही नहीं। रामकृष्ण तो ऐसे प्रफुल्लित हुए, कि तुम्हें देख कर थोड़ा प्रमाण बाकी था वह भी मिल गया। तुम हो सकते हो, तो संसार पदार्थ नहीं है। जब चेतना की ऐसी प्रक्रिया हो सकती है, कि तर्क की ऐसी बारीकी हो सकती है, तो संसार पदार्थ-पत्थर नहीं है, यहां चेतना छिपी है। तुम मेरे लिए परमात्मा के प्रमाण हो गए।
केशवचंद्र लौटे हारे हुए। रात अपनी डायरी में लिखा कि यह आदमी जीत गया। इसको हराना मुश्किल है।
धार्मिक आदमी को हराना मुश्किल है। क्योंकि धार्मिक आदमी तर्क देता
ही नहीं। हरा सकते हो उसे, जो तर्क देता हो। क्योंकि तर्क तोड़े जा सकते हैं। तर्क के तोड़ने में थोड़े और बड़े तार्किक होने की जरूरत है, और तो कुछ भी नहीं। थोड़ी और कुशलता चाहिए।
धार्मिक आदमी को तुम हरा न सकोगे, क्योंकि वह तर्क देता ही नहीं। वह उपाय ही नहीं देता कि तुम उस पर हमला कर सको। वह मार्ग ही नहीं देता जिससे तुम प्रवेश कर सको। इसलिए तो धार्मिक व्यक्ति कहता है कि मेरी श्रद्धा है परमात्मा, मेरा निष्कर्ष नहीं। मेरा भाव है परमात्मा, मेरा विचार नहीं। मेरा हृदय है परमात्मा, मेरी बुद्धि नहीं। इसलिए हृदय तो मौन है। और धार्मिक व्यक्ति परमात्मा के संबंध में मौन रहेगा। हां, ध्यान के संबंध में बोलेगा। लेकिन उतना ही, जितना उसने जाना है। जहां तक वह गया है, बस उतना!
बड़े ईमानदार लोग पुराने दिनों में थे। बुद्ध यात्रा पर निकले सत्य की खोज के लिए, तो छह वर्ष तक वे अनेक गुरुओं के पास गए। बड़ी मीठी कहानी है। जिस गुरु के पास गए, उसने उन्हें जो जानता था, वह सिखाया। फिर एक घड़ी आ गयी कि बुद्ध ने वह सब जान लिया जो गुरु जानता था! फिर उन्होंने गुरु को कहा कि अब? तो गुरु ने कहा कि जितना मैं जानता था उतना मैंने बता दिया, इससे आगे मुझे पता नहीं है। अब तुम्हें कोई और गुरु खोजना पड़ेगा।
आखिरी गुरु था अलारकालाम नाम का व्यक्ति। महीनों तक बुद्ध उसके पास रहे। जो उसने कहा, वह किया। आखिर एक दिन वह घड़ी आ गयी, जहां बुद्ध वहां पहुंच गए जहां अलारकालाम था। बुद्ध ने कहा, अब मैं क्या करूं? अभी भी मेरी तृप्ति नहीं हुई। कालाम ने कहा, तब तुम्हें कोई और गुरु खोजना पड़ेगा। क्योंकि जहां तक मैं जानता था, मैंने बता दिया। और अगर तुम्हें आगे कुछ पता चले तो मुझे भूल मत जाना। मुझे खबर करना।
ये ईमानदार लोग थे। इंच भर आगे की बात... जितना पता था उतना बता दिया, बात खतम हो गयी। इससे ज्यादा मुझे ही पता नहीं है। तो तुम्हें अगर पता चल जाए तो तुम मुझे खबर कर देना। इसलिए अतीत में इतने लोग प्रज्ञावान हुए, क्योंकि एक ईमानदारी थी।
आज ईमानदारी का कोई सवाल ही नहीं है। आज तुम्हें पता हो या न पता हो, तुम अगर ठीक से दावा कर सको और प्रचार कर सको तो तुम शिष्य जुटा लोगे। अब तो जैसे हम बाजार की चीजों के लिए एडवरटाईज करते हैं, वैसा तुम अपने लिए ठीक से एडवरटाईज करो, लोग आ जाएंगे। और अगर तुमने ठीक से विज्ञापन किया, और लोगों की वासना को जगाया, और लोगों के लोभ को उकसाया, तो वे तुम्हें गुरु बना लेंगे।
इसलिए नानक कहते हैं, बहुत विचार कर कहना ध्यान के संबंध में।

"धर्म ही पृथ्वी को धारण करने वाला है।"
इसलिए जो व्यक्ति धर्म के संबंध में थोड़ा भी गलत-सही कह देता है, वह जीवन को डावांडोल कर देता है। धर्म ही तुम्हें धारण किए हुए है। तुम्हें ही नहीं, सारा अस्तित्व धर्म धारण किए हुए है। इसलिए धर्म के संबंध में पता हो तो ही कहना, अन्यथा चुप रह जाना। क्योंकि धर्म के संबंध में थोड़ी सी भी गलत बात, और जन्मों-जन्मों तक जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। यह कोई छोटा काम नहीं है। यह कोई छोटा कलपुर्जा नहीं है कि जिसको फिर आसानी से बदला जा सके। जीवन का संतुलन डावांडोल हो जाता है। एक दफा तुम्हें धर्म के संबंध में कुछ गलत दृष्टि हो गयी कि तुम्हारे आधार खो जाते हैं।
"धर्म पृथ्वी को धारण किए है। वह दया का पुत्र है। उसमें संतोष की स्थापना कर संतुलन बनाएं।"
ये तीनों वचन हृदय में बहुत गहरे में उतर जाने दो।
धौलु धरमु दइआ का पूतु। संतोष थापि रखिया जिनि सूति।।
जे को बूझै होवै सचिआरू।
धर्म आधार है जीवन का, अस्तित्व का। आधार का अर्थ होता है, जिसके बिना अस्तित्व बिखर जाए। जिसके बिना अस्तित्व का भवन गिर जाए--बुनियाद है। शेष सब चीजें भवन की सजावट हैं। दीवालें हैं, ईंटें हैं, उनसे भवन बना है। लेकिन धर्म आधार है। धर्म का अर्थ ही होता है, स्वभाव की जो आत्यंतिकता है, स्वभाव का जो आखिरी सूत्र है।
जैसे आग का गरम होना स्वभाव है। आग ठंडी हो जाए तो आग ही न रही। सूरज
का प्रकाश देना स्वभाव है। सूरज प्रकाश न दे तो सूरज ही न रहा। प्रकाशहीन सूरज को क्या सूरज कहिएगा! उसने धर्म खो दिया, अपना गुण खो दिया।
जीसस बहुत बार कहते हैं कि नमक अगर अपना नमकीनपन खो दे, तो फिर तुम उसे कैसे नमकीन बनाओगे? अगर नमक ही अपना नमकपन खो दे, तो फिर नमकीन बनाने का कोई उपाय न रहा।
स्वभाव से कोई भी चीज च्युत हो जाए, तो फिर वह वही न रही, जो थी। क्योंकि जो भी वह थी, स्वभाव के कारण थी। सूरज सूरज है, प्रकाश के कारण। आग आग है, उत्तप्तता के कारण। मनुष्य मनुष्य है, ध्यान के कारण। वह उसका स्वभाव है। और जो मनुष्य ध्यान खो दे, वह नाम मात्र को मनुष्य है। वह सिर्फ दिखायी पड़ता है कि मनुष्य है, है नहीं। होगा तो वह पशु। जीएगा तो जानवर की तरह।
हम जानवर की कभी निंदा नहीं करते। क्योंकि जानवर अपने स्वभाव में जी रहा है। इसलिए हम यह नहीं कहते हैं कि क्या कुत्ते की तरह व्यवहार कर रहे हो? कुत्ते से हम यह कभी नहीं कहते हैं। कहने का कोई मतलब ही नहीं है। कुत्ता जैसा व्यवहार कर रहा है, उसका स्वभाव है। आदमी से हम कभी-कभी कहते हैं, क्या कुत्ते की तरह व्यवहार कर रहे हो? क्या गधे की तरह व्यवहार कर रहे हो?
आदमी से हम यह कह सकते हैं। क्योंकि आदमी तभी आदमी की तरह व्यवहार करता है, जब वह ठीक ध्यानस्थ होता है, जब वह अपने स्वभाव में होता है। कोई बुद्ध, कोई नानक, कोई कबीर, ठीक स्वभाव में होते हैं।
मगर हमारी भीड़ इस बुरी तरह स्वभाव से गिर गयी है कि हम नानक को, बुद्ध को, कबीर को, कृष्ण को, अवतार कहते हैं, मनुष्य नहीं। क्योंकि अगर उनको हम मनुष्य कहें तो हम अपने को क्या कहेंगे? हमारी तकलीफ है। अगर हम बुद्ध को मनुष्य कहें, तो फिर हम अपने को क्या कहेंगे? तो फिर हमें अपने को मनुष्य से कुछ नीचे रखना पड़े। अपने को मनुष्य कहना जारी रखना है, इसलिए बुद्ध को हम कहते हैं अवतार। इससे हम एक और सीढ़ी ऊपर उनके लिए बना देते हैं। उससे हमारी झंझट मिटती है। उससे हम कम से कम मनुष्य बने रहते हैं। लेकिन हम मनुष्य नहीं हैं।
मनुष्य शब्द को ठीक से समझना। जब कोई व्यक्ति गहन मनन को उपलब्ध होता है, तभी मनुष्य होता है। जब कोई व्यक्ति गहन ध्यान में ठहर जाता है, तभी मनुष्य होता है। चैतन्य मनुष्य का स्वभाव है। और तुम अपने स्वभाव को पाओगे, तो वही द्वार है तुम्हारा, समस्त के स्वभाव में उतरने का। तो परमात्मा के पास जाने का एक ही मार्ग है मनुष्य को कि वह अपने भीतर अपने स्वभाव की गहरी से गहरी बुनियाद खोज ले।

नानक कहते हैं कि धर्म धारण कर रहा है। वह स्वभाव है, वह आधार है। और दया का पुत्र है। उसमें संतोष की स्थापना कर संतुलन बनाएं।
दया और संतोष, दो शब्द बड़े मूल्यवान हैं। और पूरा जीवन इन दो में समा सकता है साधक का। दया बाहर, संतोष भीतर। ये दो पलड़े हैं। अपने पर दया कभी नहीं, दूसरे पर संतोष कभी नहीं। अपने पर सदा संतोष, दूसरे पर सदा दया।
इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि इससे उलटा हम करते हैं। एक आदमी भूखा मर रहा है; हम कहते हैं, ठीक है। एक आदमी सड़क पर बीमार पड़ा है; हम कहते हैं, ठीक है। संतोष तो सिखाया है सदा। अब जैसा है, सब ठीक है।
दूसरे पर दया, अपने पर संतोष। मैं जहां हूं, ठीक हूं। इस संबंध में जरा
भी कुछ करने की जरूरत नहीं है। जो मुझे मिला है, पर्याप्त है। जो मैं हूं, मैं तृप्त हूं। जो व्यक्ति अपने पर संतोष करेगा, वह परम शांति को उपलब्ध हो जाएगा। क्योंकि अशांति पैदा होती है असंतोष से। पहले असंतोष आता है, फिर अशांति आती है। हमें लगता है कि जो होना चाहिए वह नहीं हो रहा है। जैसा मैं होना चाहिए था वैसा मैं नहीं हूं। जो मुझे मिलना था, नहीं मिला। जो मेरा अधिकार था, वह नहीं हो रहा है। परमात्मा मुझ पर नाराज है। मेरे साथ न्याय नहीं हो रहा है। मेरी योग्यता के अनुकूल मुझे प्रतिष्ठा नहीं मिल रही है। मेरी समझ के अनुकूल मुझे धन नहीं मिल रहा है। लोग समझ ही नहीं पा रहे कि मैं कौन हूं!
जैसे ही तुम्हारे पास असंतोष के शब्द इकट्ठे हुए, जल्दी ही अशांति शुरू हो जाएगी। क्योंकि असंतोष में अभाव दिखायी पड़ेगा। क्या-क्या नहीं, वह दिखायी पड़ेगा। असंतोष ढंग है अभाव को खोजने का। अपने प्रति संतोष। तब तुम्हें वह दिखायी पड़ेगा जो है। और जैसे ही वह दिखायी पड़ेगा जो है, तुम धन्यवाद से भर जाओगे। आभार, अहोभाव आ जाएगा। तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सकोगे कि तुमने जरूरत से ज्यादा मुझे दिया है।
अपने प्रति संतोष, दूसरे के प्रति दया। दूसरे के लिए जो भी तुम से बन सके करना। उसके जीवन में जितना सुख, जितनी शांति तुम दे सको, देने की कोशिश करना। मिल पाए, न मिल पाए, इस संबंध में संतोष रखना। क्योंकि वह भीतरी बात है। तुमने कोशिश की, फिर भी तुम नहीं दे पाए; तो संतोष रखना।
दूसरे के संबंध में संतोष और अपने संबंध में दया; हमने ऐसा कर लिया है। तो अपने पर तो हम बड़ी दया करते हैं। अपने पर बड़ी दया करते हैं कि सब होना चाहिए। दूसरे पर बड़ा संतोष रखते हैं कि जो है, सब ठीक है।
इसलिए तो भारत की ऐसी दुर्गति हुई। भारत की दुर्गति में यह हाथ है कि हमने संतोष कर लिया सब के प्रति, अपने प्रति नहीं। इसलिए भारत गरीब है, दीन है, बीमार है, सब ठीक है। जो उसकी मर्जी, हम कहते हैं। जहां खुद का सवाल आता है, वहां उसकी मर्जी हम नहीं मानते। वहां हम पूरा संघर्ष करते हैं। और हमारे संघर्ष के कारण और मुल्क दीन-दरिद्र होता जाता है। तो हम संतोष रखते हैं कि यह सब परमात्मा की मर्जी है। जो जिसके भाग्य में लिखा है, वह होगा। उसने अमीर को अमीर बनाया, गरीब को गरीब बनाया। हमें अमीर बनाया, उसको गरीब बनाया। हमें मालिक बनाया, उसे गुलाम बनाया। हम बिल्कुल संतुष्ट हैं। गुलाम की जिंदगी को बदलने, गरीब की जिंदगी को बदलने के लिए हमारे भीतर कोई दया नहीं। दया सब हम अपने ही ऊपर अपनी खर्च कर देते हैं।
देखो, शब्द दोनों बड़े बहुमूल्यवान हैं। लेकिन उनका रुख अगर तुम बदल दो, तो खतरा होता है। अगर हम अपने प्रति संतोष रख सकें तो जीवन में परम शांति होगी। भरे-पूरे होंगे हम। और दूसरे पर दया रख सकें तो दीनता और दरिद्रता मिटेगी। दूसरे पर दया रख सकें तो सेवा का जन्म होगा। दूसरे पर दया रख सकें तो जीवन में पुण्य और जीवन में प्रार्थना और आराधना होगी। दूसरे पर दया रख सकें तो वही हमारा परमात्मा की तरफ जाने का मार्ग बन जाएगा।
अगर सिर्फ दूसरे पर दया रखी और अपने पर संतोष न रखा, तो तुम एक समाज-सुधारक हो सकते हो, लेकिन धार्मिक न हो पाओगे। सिर्फ अपने पर संतोष रखा और दूसरे पर दया न रखी, तो तुम एक मुर्दा साधु हो जाओगे। लेकिन तुम्हारा जीवन खो जाएगा।
बहुत से लोग हैं, जंगलों में भाग गए हैं। बिल्कुल संतुष्ट हैं। लेकिन दया उनमें बिल्कुल नहीं है। दया का भाव ही नहीं है। तो अपना सुख तो

उन्होंने खोज लिया, लेकिन बड़े गहन स्वार्थी मालूम पड़ते हैं। दूसरे पर कोई दया का भाव नहीं। और दूसरे पर उनकी नजर बड़ी कठोर है।
पूछो एक जैन मुनि को। तो वह संतोष तो साध रहा है, लेकिन दया? दया, वह कहेगा, अपने-अपने कर्मों का फल लोग भोग रहे हैं, इसमें मैं क्या कर सकता हूं? संतोष वह साध रहा है अपने लिए। अधूरी बात है, संतुलन नहीं है। पूछो ईसाई मिशनरी को। वह दया तो साध रहा है--जंगलों में पड़ा है, बीमारी झेलता है, दीन-दरिद्र की, आदिवासी की सेवा करता है, अस्पताल है, रोगी हैं, कोढ़ है, सब तरह की चिंता लेता है--लेकिन उसके भीतर कोई संतोष नहीं है।
ये अधूरे-अधूरे लोग हैं। ईसाई मिशनरी में दया है, जैन मुनि में संतोष है, लेकिन संतुलन नहीं है। और एक पलड़ा बहुत भारी हो और दूसरा बिल्कुल ऊपर उठ जाए, तो जीवन का जो परम संगीत है वह नहीं बज पाता।
इसलिए नानक कहते हैं, "धर्म दया का पुत्र है। और उसमें संतोष की स्थापना कर संतुलन बनाएं।"
जिस व्यक्ति ने भी दया और संतोष को साध लिया ठीक मात्रा में, ठीक दिशा में, उस व्यक्ति को जीवन का परम आधार मिल जाएगा। वह पा लेगा कि धर्म क्या है।
"जो कोई इसको समझता है वह सत्यस्वरूप हो जाता है।"
भीतर संतोष, बाहर दया; भीतर ध्यान, बाहर करुणा।
बुद्ध का सूत्र भी वही है। बुद्ध ने जो शब्द उपयोग किए हैं, वह करुणा
और प्रज्ञा। भीतर ज्ञान, बाहर करुणा। भीतर ध्यान, बाहर करुणा। और जब तक दोनों न हों, तो बुद्ध ने कहा है, ज्ञान सच्चा नहीं। अगर बाहर करुणा न हो तो ज्ञान अधूरा है। अगर बाहर करुणा हो और भीतर ध्यान न हो, तो भी ज्ञान अधूरा है। क्योंकि दूसरे पर दया कर-कर के ही तुम कहीं न पहुंच पाओगे। तुम्हें भीतर भी कुछ करना पड़ेगा। तुम कितने ही पैर दबाओ मरीजों के, और कितने ही अस्पताल खोलो और धर्मशालाएं चलाओ, अगर तुमने भीतर स्मृति को न साधा, और ध्यान को न जगाया, और पांचों इंद्रियों के बीच एक को न खोजा, तो तुम कहीं न पहुंच पाओगे। तुम खुद ही मरीज हो। तुम दूसरों की सेवा कर के कहां पहुंचोगे?
जीवन जैसे दो पैरों से चलता है, जैसे पक्षी दो पंखों से उड़ता है, जैसे तुम दो आंखों से देखते हो तब जीवन की तस्वीर पूरी दिखायी पड़ती है, ठीक वैसे ही दो पंख हैं उस अंतिम यात्रा के भी। नानक का नाम है--दया, संतोष।
"वही जानता है कि धर्म पर कितना भार है। पृथ्वी अनेक हैं। उनसे परे भी
और पृथ्वियां हैं।"
अब वैज्ञानिक भी इसे स्वीकार करते हैं कि कम से कम पचास हजार पृथ्वियां हैं। और यह भी अभी हमारी जानकारी की सीमा बताती है। इससे पार भी होंगी। जीवन इस अकेली पृथ्वी पर नहीं है, कम से कम पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन है, वैज्ञानिक गणना से। धार्मिक हिसाब से तो अनंत पृथ्वियों पर जीवन है। विराट फैलाव है। इस विराट फैलाव को तुम छोटे से मन से न देख पाओगे। तुम्हें अपने छोटे मन को हटा ही देना पड़ेगा।
और जैसे ही मन के विचार शांत हो जाते हैं, झरोखा टूट जाता है। तुम खुले आकाश के नीचे आते हो, तुम्हें भी दिखायी पड़ना शुरू हो जाएगा कि कितना अनंत जीवन है! और कितनी महिमा है इस अनंत की, और मैं कैसी क्षुद्रताओं में खो रहा था! कैसी छोटी-छोटी बातों में उलझा था! किसी ने गाली दे दी, किसी ने अपमान कर दिया, कहीं कांटा चुभ गया, कहीं सिरदर्द हो गया, यही तुम्हारी जिंदगी की कथा है। जहां इतना विराट प्रतिपल घटित हो रहा था, वहां तुम क्षुद्र में ही लगे रहे। वहां तुमने हिसाब व्यर्थ का किया। जहां अनंत धन बरस रहा था, वहां तुम कौड़ियां बीनते रहे।
नानक कहते हैं, "पृथ्वी अनेक हैं, उनसे परे भी और पृथ्वियां हैं। उनके भार के नीचे कौन सी शक्ति है? जितने जीव हैं, जातियां हैं, रंग हैं, सबके नाम उसकी आज्ञा की कलम से लिखे गए। कोई-कोई ही इस लेखा को लिखना जानता है। यदि लिखा जाए तो कितना बड़ा होगा! कितनी उसकी शक्ति है! कितना सुंदर उसका रूप है! उसके दान कितने हैं! यह कौन जान सकता है? और कौन अनुमान लगा सकता है? उसके एक शब्द से कितना प्रसार हुआ। उसी से सृष्टि की लाखों नद-नदियां

उत्पन्न हुईं। कुदरत का किस प्रकार विचार करें, उस पर बार-बार निछावर जाऊं तो भी कम है। जो तुझे भावे वही भला है। तू सदा सलामत और निरंकार है।"
जैसे ही तुम अपने क्षुद्र हिसाब से थोड़े बाहर हटोगे, तुम्हारी हालत वैसी ही है... जैसे बाहर हीरे-जवाहरातों की वर्षा हो रही है, और तुम अपने कंकड़-पत्थर छाती से लगाए बैठे हो। इस डर में कि कहीं कोई छीन न ले। इस डर में कि कहीं मुट्ठी खोली तो कंकड़-पत्थर गिर न जाएं।
तुम किस चीज के पास रुके हो? क्या तुम्हारा हिसाब है? तुम किन बातों
को निरंतर सोचते रहते हो? तुम्हारे भीतर कौन सा ऊहापोह चलता है? अगर तुम हिसाब लगाओगे तो पाओगे बड़ा क्षुद्र है। बड़ा क्षुद्र है! उसको क्षुद्र कहना भी ठीक नहीं, क्षुद्रतम है। हिसाब योग्य ही नहीं है। पर उसी में तुम जीवन गंवा रहे हो।
और नानक कहते हैं, जब यह सब हटता है और तुम निर्विचार होते हो, जब ओंकार की ध्वनि गूंजती है और तुम देखते हो जीवन की विराट महिमा को, अनंत-अनंत जीवन, अमृत का अनंत पारावार, सौंदर्य असीम, शक्ति की कोई सीमा नहीं, तब तुम उसके दरबार में प्रविष्ट हुए। और जब तुम उसके दरबार में प्रविष्ट होते हो, तब तुम अनुमान भी नहीं लगा सकते कि कितना विराट अस्तित्व है! कितना सौंदर्य है इसका! कितना रस है इसमें! और हम व्यर्थ ही इसको गंवाए जा रहे थे।
नानक कहते हैं, कैसे विचार करूं? सब विचार ठिठक कर रुक जाता है। विचार अवाक हो जाता है। अचरज, आश्चर्य से आंखें भर जाती हैं।
आंख उठाओगे, आश्चर्य से भर जाओगे। आंख ही जमीन पर गड़ा रखी है। वहां जमीन में गड़े कंकड़-पत्थर दिखायी पड़ते हैं।
"कुदरत का किस प्रकार विचार करें? उस पर बार-बार निछावर जाऊं तो भी कम है।"
और जो अपरिसीम घटित हो रहा है, जो अनंत आनंद बरस रहा है, उसे कैसे चुकाऊं? उस पर हजार बार निछावर जाऊं तो भी कम है, ऐसे अहोभाव का जन्म होता है। ऐसा अहोभाव ही प्रार्थना है। इस प्रार्थना में जो शब्द नानक ने कहे हैं, वे बड़े कीमती हैं।
"जो तुझे भावे वही भला है।"
जो तेरी मर्जी, वही हो। ऐसी घड़ी में तुम अपनी मर्जी को बिल्कुल छोड़ दोगे। तुम एक ही प्रार्थना करोगे कि मेरी मर्जी भर पूरी मत करना। जो तेरी मर्जी हो, वही पूरी हो। क्योंकि मैं तो जो मांगूंगा वह छोटा ही होगा। बच्चे खिलौने ही मांगेंगे। नासमझ नासमझियां मांगेंगे। तू मेरी मर्जी पूरी मत होने देना। और जो तेरी मर्जी, वही भला है। अब मैं सोचने वाला भी नहीं हूं कि क्या ठीक, क्या गलत! जो तू करता है वही ठीक। जो तू नहीं करता है वही गैर-ठीक। एक ही कसौटी बच जाती है--
"जो तुझे भावे वही भला। तू सदा सलामत और निरंकार है।"
और तू सदा है। मैं कभी होता हूं और कभी खो जाता हूं। मेरा होना तो पानी
पर बने एक बबूले की तरह है। तू सागर है, मैं लहर हूं। और लहर की क्या मांग? और लहर की मांग कैसे ठीक हो सकती है? क्षण भर का जिसका होना है, उसकी वासना में कैसा सत्य हो सकता है?
जीसस ने आखिरी समय सूली पर जो वचन कहे हैं, वे ये ही हैं--जो तुझे भावे वही भला है।
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।
जीसस को एक क्षण को संदेह उठ आया था। सूली लगी, सूली पर हाथ खीलियों से ठोक दिए गए, लहू बहने लगा, तब एक क्षण को--वह क्षण भी कीमती है। क्योंकि उससे पता चलता है, आदमी कितना कमजोर है! उस क्षण में जीसस में हमारी पूरी मनुष्यता अपनी पूरी असहाय अवस्था में प्रकट हो गयी। उस क्षण जीसस ने कहा, यह तू क्या दिखा रहा है? यह तू क्या कर रहा है मेरे साथ?
प्रश्न उठ आया। प्रश्न संदेह से भरा भी नहीं है। लेकिन फिर भी संदेह
की कोई रेखा तो है ही। प्रश्न बड़ा आत्मीय है कि यह तू क्या दिखा रहा है मुझे? यह तू क्या कर रहा है? लेकिन शिकायत तो है ही। इतनी बात तो जाहिर है कि जो हो रहा है, जीसस उसे पसंद नहीं कर पा रहे हैं। यह जो सूली का लगना है, इसके लिए राजी नहीं हो पा रहे हैं। कुछ बुरा हो रहा है। कुछ जो नहीं होना

था, हो रहा है। तो शिकायत हो गयी। हमारी सारी मनुष्यता जीसस की इस शिकायत में प्रकट हो गयी।
तुम्हारे जीवन में भी क्षण आएंगे, जब तुम्हारी सारी आस्था डगमगा जाएगी। तुम्हारे मन में भी यह पुकार उठेगी कि यह क्या हो रहा है? यह तू क्या कर रहा है? तुझ पर इतना भरोसा किया और यह फल? लेकिन यह बात ही बताती है कि भरोसा पूरा नहीं किया। नहीं तो फल जो भी मिल रहा है, तुम खुशी से राजी होते। नाखुश भी राजी हुए, तो राजी होना पूरा नहीं। शिकायत से राजी हुए, तो स्वीकार अधूरा है। श्रद्धा परिपूर्ण नहीं है।
लेकिन जीसस सम्हल गए। सारी मनुष्यता जीसस में उस क्षण कंपी। लेकिन एक क्षण में वे सम्हल गए। और उन्होंने आकाश की तरफ सिर उठाया और कहा, नहीं, जो तेरी मर्जी हो, पूरी हो। तेरी मर्जी मेरी मर्जी है।
उसी क्षण मनुष्यता विलीन हो गयी, क्राइस्ट का जन्म हुआ। जीसस खो गए, क्राइस्ट का जन्म हो गया। बस, इतना ही क्षण भर का फासला है जीसस और क्राइस्ट में, अज्ञान में और ज्ञान में, इतना ही फासला है तुममें और बुद्ध में, तुममें और नानक में।
तुम कितनी ही ऊंचाई पर उठ जाओ, लेकिन एक संदेह मन में बना ही रहता है
कि मेरी मर्जी पूरी हो रही है या नहीं। भक्त भी देखता रहता है भगवान की तरफ कि तू मेरी मान कर चल रहा है कि नहीं। अगर तू मेरी नहीं मान रहा है तो शिकायत है। शिकायत कितने ही मधुर शब्दों में कही जाए, शिकायत शिकायत है। और शिकायत का कांटा तो चुभेगा।
परम भक्त की कोई शिकायत नहीं। क्योंकि परम भक्त का एक ही उदघोष है, "जो तुझे भावे वही भला है।"
जो तुधु भावै साई भलीकार।
"तू सदा सलामत, शाश्वत और निरंकार है।"
मैं तो लहर हूं, मेरी मर्जी का क्या सवाल? तेरी मर्जी पूरी हो, दाई विल
बी डन। तू जो चाहे वही हो। तेरी चाह और मेरी चाह में कोई फासला न रह जाए। तेरी चाह ही मेरी चाह है। लहर की चाह वही है जो सागर की चाह है। पत्ते की चाह वही है जो वृक्ष की चाह है। अंग की चाह वही है जो अंगी की चाह है। हम अपने को ऐसा बूंद की तरह सागर में छोड़ दें।
पर यह छोड़ना तभी संभव हो पाएगा, जब तुम पांच के बीच से एक को खोज लो। अभी तो तुम हो ही नहीं, खोओगे किसको? अभी तो तुम इतने बंटे हो कि भीड़ हो। अभी तुम एक व्यक्ति भी नहीं हो, इसलिए तुम छलांग कैसे लगाओगे? अभी तो कोई बाएं जा रहा है तुम्हारे भीतर, कोई दाएं जा रहा है तुम्हारे भीतर। एक हिस्सा तुम्हारा इस दिशा में जा रहा है, दूसरा हिस्सा उस दिशा में जा रहा है। अभी तो तुम बंटे-बंटे हो। अभी तुम हो ही नहीं। अभी तुम्हारे होने का कोई भी अर्थ नहीं है।
तो पहला काम तो नानक कहते हैं, तुम पांच के बीच एक को खोज लो--ध्यान को।
और दूसरा काम नानक कहते हैं, जैसे ही यह ध्यान सघन हो, भीतर संतोष, बाहर दया। जैसे-जैसे दया पकेगी, संतोष गहन होगा, वैसे-वैसे यह अहोभाव तुम्हारे जीवन में अपने आप उतर आएगा--जो तुझे भावे वही भला है। यही परिपूर्णता है।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
आठवां प्रवचन

जो तुधु भावै साई भलीकार

पउड़ीः 17
असंख जप असंख भाउ। असंख पूजा असंख तप ताउ।।
असंख गरंथ मुखि वेद पाठ। असंख जोग मनि रहहि उदास।।
असंख भगत गुण गिआन वीचार। असंख सती असंख दातार।।
असंख सूर मुह भख सार। असंख मोनि लिव लाइ तार।।
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक बार।।
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।।

पउड़ीः 18
असंख मूरख अंध घोर। असंख चोर हरामखोर।।
असंख अमर करि जाहि जोर। असंख गलबढ़ हतिआ कमाहि।।
असंख पापी पापु करि जाहि। असंख कुड़िआर कूड़े फिराहि।।
असंख मलेछ मलु भखि खाहि। असंख निंदक सिरि करहि भारू।।
"नानक" नीचु कहै वीचारु। वारिआ न जावा एक बार।।
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।।

पउड़ीः 19
असंख नाव असंख थाव। अगंम अगंम असंख लोअ।।
असंख कहहि सिरि भारु होई।
अखरी नामु अखरी सालाह। अखरी गिआनु गीत गुण गाह।।
अखरी लिखणु बोलणु वाणि। अखरा सिरि संजोगु बखाणि।।
जिनि एहि लिखे तिसु सिर नाहि। जिव फुरमाए तिव तिव पाहि।।
जेता कीता तेता नाउ। विणु नावै नाही को थाउ।।
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक बार।।
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।।

साधक के समक्ष असंख्य मार्ग हैं। किसको चुने! कैसे चुने! किस आधार से चुने! क्या हो कसौटी चुनाव की? और असंख्य मार्ग ही होते तब भी ठीक था, असंख्य कुमार्ग भी हैं। कैसे बचें कुमार्ग से? कैसे बचाएं भटकन से? साधक के जीवन की सबसे बड़ी समस्या है, ठीक को कैसे चुने! गलत को कैसे पहचाने! और गलत पहचान में आ जाए, तो छोड़ना कठिन नहीं है। गलत पहचान में आते ही छूटना शुरू हो जाता है। गलत को गलत मान कर कोई चल ही कैसे सकता है? गलत को गलत जान कर कोई कैसे अनुगमन कर सकता है? असत्य दिख गया कि असत्य है, फिर तुम उसे सम्हालोगे कैसे? छूट ही जाएगा। असत्य की पहचान ही असत्य से मुक्ति है। लेकिन कैसे पहचाने? असंख्य असत्य हैं।
सत्य की पहचान भी सत्य के अनुभव में उतरने की पहली छलांग है। जैसे ही पहचाना कि सत्य है, लग गया रंग, लग गए पंख, उड़ान शुरू हो गयी। लेकिन असंख्य सत्य हैं। सदियों-सदियों में अनंत मार्ग खोजे गए हैं। और अब तो जाल बहुत जटिल हो गया है। एक पहेली है, जो उलझती मालूम पड़ती है, सुलझती मालूम नहीं पड़ती। तो नानक कहते हैं, क्या करे साधक? ये सूत्र उसी संबंध में हैं। "असंख्य जप हैं। असंख्य भाव-भक्ति। असंख्य पूजाएं हैं। असंख्य तपश्चर्याएं हैं। असंख्य गं्रथ हैं। और असंख्य मुख जो वेद पाठ करते हैं। असंख्य योग हैं, जिनके द्वारा मन विरक्त रहता है। असंख्य भक्त हैं, जो उसके गुण और ज्ञान का विचार करते हैं। असंख्य सात्विक हैं, असंख्य दाता हैं। असंख्य शूरवीर हैं, जो परमात्मा की प्राप्ति के लिए लोहा लेते हैं। असंख्य मौनी हैं, जो एकनिष्ठ हो कर ध्यान लगाते हैं।"
क्या करे साधक? कैसे चुने? क्या है उचित मेरे लिए? निश्चित ही मैं अज्ञानी हूं, इसीलिए तो खोज है। इस अज्ञान में मेरे पास कोई भी तो कसौटी नहीं, जिससे परख लूं कि सोना क्या है, मिट्टी क्या है! मेरी कसौटी का मूल्य

भी क्या होगा? अज्ञानी के पास कसौटी भी हो तो भी वह कैसे कसेगा? जिसने कभी सोना न देखा हो, उसके हाथ में सोने को कसने की कसौटी भी हो, तो भी वह कैसे पहचानेगा? जिसने जीवन भर मिट्टी ही जानी हो, वह सोने को भी एक ढंग की मिट्टी ही समझेगा। हम वही पहचान सकते हैं जो हमारा अनुभव है। परमात्मा हमने जाना नहीं। उस मंजिल तक हम पहुंचे नहीं। कौन सा मार्ग वहां तक ले जाता होगा?
एक ही उपाय दिखायी पड़ता है सीधा-सादा; जिसको कि मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ट्रायल एंड एरर। कि खोजो, भटको, अनुभव करो; ऐसे भटकते, खोजते, भूल-चूक से ठीक मिलेगा।
लेकिन असंख्य हैं भूल-चूकें। अगर ट्रायल एंड एरर, अगर हम इस मार्ग का अनुसरण करें तो शायद हम कभी भी न पहुंच पाएंगे। हमारा जीवन कितना छोटा! मार्ग असंख्य। एक मार्ग को भी तो पूरे जीवन चल कर पूरा नहीं किया जा सकता है। कैसे अनुभव संगृहीत होगा? कौन है गुरु? कैसे हम समझें कि जिसके पीछे हम चल पड़े हैं, उसके पीछे चलने से उपलब्धि होने वाली है?
फिर उलझन और बढ़ जाती है। क्योंकि अगर इतना ही सवाल होता कि सत्य के अनेक मार्ग हैं किसको चुनें, तो कोई अड़चन न थी। कोई भी चुन लो, अगर सभी मार्ग सत्य के हैं तो पहुंच जाओगे।
असत्य मार्ग भी हैं। उतने ही जितने सत्य मार्ग हैं, शायद ज्यादा। एक मार्ग सत्य का है तो दस असत्य के हैं। क्योंकि एक आदमी सत्य को उपलब्ध होता है, दस करोड़ तो अंधों की तरह भटकते रहते हैं। उन अंधों ने भी मार्ग निर्मित किए हैं। उन अंधों ने भी शास्त्र लिखे हैं।
सुविधा थी पुराने दिनों में। अगर वेद अकेला शास्त्र था हिंदुओं के पास और तब न मुसलमान थे और न तब ईसाई थे और न बौद्ध थे, तो कुछ भी खोजना होता तो वेद में खोज लेते थे। एक शास्त्र था, वेद वचन सत्य था, सुविधा थी।
अब तो अनंत वेद हैं, अब तो अनंत शास्त्र हैं। अब तो शास्त्र से भी कोई मार्ग मिलेगा नहीं। अभी यह आसान नहीं कि तुम शास्त्र में खोज लो। किस शास्त्र में खोजोगे? जैनों के अपने हैं, हिंदुओं के अपने हैं, मुसलमानों के अपने हैं। हिंदुओं का भी एक नहीं है, उनके पास अनेक हैं। जैनों के पास अनेक हैं, ईसाइयों के पास अनेक हैं। और गुरुग्रंथ साहब है अब, जो कि नानक के वक्त में नहीं था। एक वेद और संयुक्त हो गया। संख्या कम नहीं होती, बढ़ती है। संख्या बढ़ने के साथ उलझन बढ़ती है। निर्णय करना असंभव होता जाता है। शायद मनुष्यता इसीलिए इतनी नास्तिकता में गिर गयी है। क्योंकि निर्णय असंभव हो गया है। आस्तिक होना करीब-करीब असंभव हो गया है। क्योंकि कैसे कोई आस्तिक हो?
फिर इन सबमें विवाद है। फिर ये एक-दूसरे का खंडन करते हैं। अगर जैनों
से पूछो तो वे कहते हैं, वेदों में कुछ भी नहीं। बुद्ध से पूछो, वे कहते हैं, वेद असार है। वेद से पूछो, वेद कहता है, मेरे अतिरिक्त और कहीं कोई सार नहीं है। और सब भटकाव हैं। हिंदुओं से पूछो तो जैन और बौद्ध नास्तिक हैं, इनकी तो बात सुनना ही मत। कान बंद कर लेना। इनकी बात भी कान में पड़ गयी तो भटकाव हो जाएगा। हिंदुओं से पूछो तो वे कहते हैं, वेद सब से पुराना शास्त्र है, इसलिए मानने योग्य है। मुसलमानों से पूछो तो वे कहते हैं, कुरान सबसे नया शास्त्र है, इसलिए मानने योग्य है। क्योंकि परमात्मा जब नया शास्त्र भेजता है, तो उस नए शास्त्र के साथ ही पुराने शास्त्र रद्द हो गए। नयी आज्ञा के साथ पुरानी आज्ञाएं रद्द हो जाती हैं।
हिंदू कहते हैं कि वेद एक दफा परमात्मा ने भेज दिया, अब दुबारा और शास्त्र भेजने की जरूरत नहीं। परमात्मा कोई साधारण मनुष्य तो नहीं है कि भूलें करेगा, फिर सुधार करेगा। परमात्मा तो परम ज्ञान है। तो वेद एक दफा हो गए, अब तो कोई जरूरत नहीं है। इसके बाद जितने शास्त्र हुए, वे सब झूठ हैं। परमात्मा ने तो एक आज्ञा भेज दी, इसके बाद सब आज्ञाएं आदमी की तरकीबें हैं।
लेकिन ईसाई और मुसलमान कहते हैं कि जगत में विकास है। परमात्मा बदलता है, क्योंकि आदमी बदल रहा है। आज्ञाएं बदलती हैं, क्योंकि परिस्थिति बदल रही है। इसलिए नवीनतम का भरोसा करना। पुराना तो जराजीर्ण हो गया।

किसकी सुनोगे? किसकी मानोगे? तब आखिर में तुम्हारी अपनी बुद्धि ही रह जाती है। इस विराट उलझाव के जाल में तुम अपने पर ही खड़े रह जाते हो। डगमगाने लगते हो।
आदमी नास्तिक है, क्योंकि आस्तिक होना मुश्किल होता गया है। तो कोई न कोई विधि खोजनी जरूरी है जिससे सीधा-सादा आदमी आस्तिक हो सके। यह तो बड़े से बड़े दार्शनिक भी निर्णय नहीं कर सकते कि क्या ठीक है? किस मार्ग पर चलें? कौन सी विधि पहुंचाएगी? फिर सीधा-सादा मनुष्य क्या करे, जिसके पास न सुविधा है, न समय है, न तर्क का जाल है। वह कैसे चुने? किस मार्ग को पकड़े?
तो नानक का सुझाव बड़ा कीमती है। नानक कहते हैं कि इस असंख्य में भटकने
से तो कुछ सार न मिलेगा। मैं तो एक ही सूत्र जानता हूं।
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक बार।।
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।।
जो तुझे भाए वही सही है। इसलिए मैं अपने को तेरी मर्जी पर छोड़ देता हूं। मैं खुद तो चुनाव कर नहीं सकता। मैं अज्ञानी, अंधकार में खड़ा, अंधा! मेरे पास कोई सूत्र नहीं हैं जिसके आधार पर मैं खोज कर लूं। कोई कसौटी नहीं जिस पर जांच कर लूं। तब मैं क्या करूं? मैं समर्पण कर देता हूं--अब तेरी मर्जी।
इसका क्या अर्थ होता है--तेरी मर्जी का? इसका अर्थ होता है, जैसा तू बिठाए बैठूं; जैसा तू उठाए उठूं; जो तू करवाए करूं। अपने को बीच में न लाऊं। अगर तू भटकाए तो भटकूं, अगर तू पहुंचाए तो पहुंचूं। मैं यह भी अड़चन बीच में खड़ी न करूं कि इससे तो मैं भटक जाऊंगा। मैं अपने निर्णय को हटा दूं। कृष्ण यही अर्जुन को गीता में कहे हैं, सर्व धर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज। तू सब धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण आ जा।
वह परमात्मा की तरफ से कहा गया वचन है। यह भक्त की तरफ से कहा गया वचन है, जो नानक कह रहे हैं। जो तुझे भाए वही भला, जो तुझे भाए वही मार्ग, जो तेरी चाह है वही सच। और अब मैं कोई कसौटी न लाऊंगा। तू भटकाए तो मैं समझूंगा यही मार्ग है। तू अंधेरे में ले जाए तो समझूंगा यही रोशनी है। तू दिन को रात कहे तो रात कहूंगा।
यह कठिनतम है। क्योंकि तुम बीच-बीच में आते ही रहोगे। तुम्हारा मन बीच-बीच में कहेगा ही कि यह क्या हो रहा है? कहीं परमात्मा से कोई भूल तो नहीं हो रही है। कहीं उस पर छोड़ कर मैं भूल तो नहीं कर रहा हूं? तो जब तुम्हारे मन को भाएगा, तब तो तुम परमात्मा के साथ रहोगे। लेकिन जब तुम्हारे मन को न भाएगा तभी अड़चन आएगी। और तभी कसौटी है, तभी साधना है। जैसे, तुम पर फूलों की वर्षा हो, तो तुम भी कह सकोगे नानक के साथ, जो तुधु भावै साई भलीकार। जो तेरी मर्जी वही मेरी मर्जी, जो तुझे भाए वही भला। फूलों की वर्षा हो तब तो तुम भी कह सकोगे। तुम्हारे घर सुख दस्तक दे, स्वर्ग उतर आए तुम्हारे आंगन में, तब तो तुम भी नानक से राजी हो जाओगे। लेकिन जब नर्क तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे, और कांटे तुम पर गिरें, और निंदा तुम्हारे चारों तरफ हो, और अपमान और असफलता के सिवा तुम्हें कुछ भी न दिखायी पड़ता हो तब--तभी साधना है। दुख में, पीड़ा में भी तुम्हारे हृदय में यदि यह भाव बना रहे कि जो तुझे भाए मैं उसके लिए राजी हूं। और यह भाव जबर्दस्ती थोपा गया संतोष न हो।
इस फर्क को ख्याल ले लें। क्योंकि हम असहाय अवस्था में भी जबर्दस्ती
का संतोष थोप ले सकते हैं। दुख है, कुछ करने का उपाय भी नहीं है, हम कहते हैं, जो तेरी मर्जी। लेकिन, जो तेरी मर्जी के पीछे शिकायत है। हम कहते हैं कि ठीक है। चलो यही ठीक है। लेकिन भीतर हम जानते हैं, होना कुछ और था। जो होना था वह नहीं हुआ। हम कुछ कर भी नहीं सकते, असहाय हैं, नपुंसक हैं, शक्तिहीन हैं। तो ठीक है, कहते हैं कि ठीक, तेरी जो मर्जी।
अगर तुमने नानक का यह वचन असहाय अवस्था में कहा, तो तुम अर्थ नहीं समझे।
संतोष दयनीयता नहीं है। वह तो परमधन्यता है। वह किसी असहाय अवस्था में कहे गए वचन नहीं हैं, कंसोलेशन नहीं है, सांत्वना नहीं है। वह तो सत्य की अभिव्यक्ति है। यह तुम्हारी समझ से आना चाहिए। यह तुम्हारी अपने आपको समझा लेने की, अपने आप पर दया कर लेने की वृत्ति से नहीं, कि अब क्या करें?

जब आदमी कुछ भी नहीं कर सकता तब सोचता है जो उसकी मर्जी। लेकिन तभी, जब कुछ भी नहीं कर सकता। पहले तो अपने कर्ता के पूरे भाव को उपयोग कर लेता है। जब सब तरफ से हार जाता है तब उस पर छोड़ता है। यह छोड़ना, छोड़ना न हुआ। तुम अपनी तरफ से कोशिश ही मत करना। तुम पहले चरण में ही उस पर छोड़ देना।
नानक की धारणा परम समर्पण की है। वही भक्त की परम साधना है। तब तुम्हें न मार्ग चुनना है, न विधि खोजनी है, न तुम्हें शास्त्र की चिंता करनी है, न तर्क, न प्रमाण, न दर्शन; इन सबका तुम्हें कोई उपयोग न रहा। भक्त इनसे एक ही झटके में छूट जाता है। और वह झटका है समर्पण का। वह एक ही साथ सब छोड़ देता है। वह कहता है, जो तेरी मर्जी।
अगर तुम इसे थोड़ा सा प्रयोग करोगे तो ही ख्याल में आ सकेगा। क्योंकि नानक कोई दार्शनिक नहीं हैं। वे कोई शास्त्र नहीं रच रहे हैं। वह तो अपना अंतर्भाव कह रहे हैं। जैसे उन्होंने अनुभव किया है वही कह रहे हैं। अड़चन तुम्हें प्रतिपल मालूम पड़ेगी। क्योंकि अड़चन तुम्हारे अहंकार से आएगी। अहंकार का सार-सूत्र है कि मैं समझता हूं कि क्या ठीक है और वही होना चाहिए।
टालस्टाय ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। मृत्यु के देवता ने अपने एक दूत को भेजा पृथ्वी पर। एक स्त्री मर गयी थी, उसकी आत्मा को लाना था। देवदूत आया, लेकिन चिंता में पड़ गया। क्योंकि तीन छोटी-छोटी लड़कियां जुड़वां--एक अभी भी उस मृत स्त्री के स्तन से लगी है। एक चीख रही है, पुकार रही है। एक रोते-रोते सो गयी है, उसके आंसू उसकी आंखों के पास सूख गए हैं-- तीन छोटी जुड़वां बच्चियां और स्त्री मर गयी है, और कोई देखने वाला नहीं है। पति पहले मर चुका है। परिवार में और कोई भी नहीं है। इन तीन छोटी बच्चियों का क्या होगा?
उस देवदूत को यह ख्याल आ गया, तो वह खाली हाथ वापस लौट गया। उसने जा कर अपने प्रधान को कहा कि मैं न ला सका, मुझे क्षमा करें, लेकिन आपको स्थिति का पता ही नहीं है। तीन जुड़वां बच्चियां हैं--छोटी-छोटी, दूध पीती। एक अभी भी मृत स्तन से लगी है, एक रोते-रोते सो गयी है, दूसरी अभी चीख-पुकार रही है। हृदय मेरा ला न सका। क्या यह नहीं हो सकता कि इस स्त्री को कुछ दिन और जीवन के दे दिए जाएं? कम से कम लड़कियां थोड़ी बड़ी हो जाएं। और कोई देखने वाला नहीं है।
मृत्यु के देवता ने कहा, तो तू फिर समझदार हो गया; उससे ज्यादा, जिसकी मर्जी से मौत होती है, जिसकी मर्जी से जीवन होता है! तो तूने पहला पाप कर दिया, और इसकी तुझे सजा मिलेगी। और सजा यह है कि तुझे पृथ्वी पर चले जाना पड़ेगा। और जब तक तू तीन बार न हंस लेगा अपनी मूर्खता पर, तब तक वापस न आ सकेगा।
इसे थोड़ा समझना। तीन बार न हंस लेगा अपनी मूर्खता पर--क्योंकि दूसरे
की मूर्खता पर तो अहंकार हंसता है। जब तुम अपनी मूर्खता पर हंसते हो तब अहंकार टूटता है।
देवदूत को लगा नहीं। वह राजी हो गया दंड भोगने को, लेकिन फिर भी उसे लगा कि सही तो मैं ही हूं। और हंसने का मौका कैसे आएगा?
उसे जमीन पर फेंक दिया गया। एक चमार, सर्दियों के दिन करीब आ रहे थे और बच्चों के लिए कोट और कंबल खरीदने शहर गया था, कुछ रुपए इकट्ठे कर के। जब वह शहर जा रहा था तो उसने राह के किनारे एक नंगे आदमी को पड़े हुए, ठिठुरते हुए देखा। यह नंगा आदमी वही देवदूत है जो पृथ्वी पर फेंक दिया गया था। उस चमार को दया आ गयी। और बजाय अपने बच्चों के लिए कपड़े खरीदने के, उसने इस आदमी के लिए कंबल और कपड़े खरीद लिए। इस आदमी को कुछ खाने-पीने को भी न था, घर भी न था, छप्पर भी न था जहां रुक सके। तो चमार ने कहा कि अब तुम मेरे साथ ही आ जाओ। लेकिन अगर मेरी पत्नी नाराज हो--जो कि वह निश्चित होगी, क्योंकि बच्चों के लिए कपड़े खरीदने लाया था, वह पैसे तो खर्च हो गए--वह अगर नाराज हो, चिल्लाए, तो तुम परेशान मत होना। थोड़े दिन में सब ठीक हो जाएगा।
उस देवदूत को ले कर चमार घर लौटा। न तो चमार को पता है कि देवदूत घर में आ रहा है, न पत्नी को पता है। जैसे ही देवदूत को ले कर चमार घर में पहुंचा, पत्नी एकदम पागल हो गयी। बहुत नाराज हुई, बहुत चीखी-चिल्लायी।

और देवदूत पहली दफा हंसा। चमार ने उससे कहा, हंसते हो, बात क्या है? उसने कहा, मैं जब तीन बार हंस लूंगा तब बता दूंगा।
देवदूत हंसा पहली बार, क्योंकि उसने देखा कि इस पत्नी को पता ही नहीं
है कि चमार देवदूत को घर में ले आया है, जिसके आते ही घर में हजारों खुशियां आ जाएंगी। लेकिन आदमी देख ही कितनी दूर तक सकता है! पत्नी तो इतना ही देख पा रही है कि एक कंबल और बच्चों के कपड़े नहीं बचे। जो खो गया है वह देख पा रही है, जो मिला है उसका उसे अंदाज ही नहीं है--मुफ्त! घर में देवदूत आ गया है। जिसके आते ही हजारों खुशियों के द्वार खुल जाएंगे। तो देवदूत हंसा। उसे लगा, अपनी मूर्खता--क्योंकि यह पत्नी भी नहीं देख पा रही है कि क्या घट रहा है!
जल्दी ही, क्योंकि वह देवदूत था, सात दिन में ही उसने चमार का सब काम सीख लिया। और उसके जूते इतने प्रसिद्ध हो गए कि चमार महीनों के भीतर धनी होने लगा। आधा साल होते-होते तो उसकी ख्याति सारे लोक में पहुंच गयी कि उस जैसा जूते बनाने वाला कोई भी नहीं, क्योंकि वह जूते देवदूत बनाता था। सम्राटों के जूते वहां बनने लगे। धन अपरंपार बरसने लगा।
एक दिन सम्राट का आदमी आया। और उसने कहा कि यह चमड़ा बहुत कीमती है, आसानी से मिलता नहीं, कोई भूल-चूक नहीं करना। जूते ठीक इस तरह के बनने हैं। और ध्यान रखना जूते बनाने हैं, स्लीपर नहीं। क्योंकि रूस में जब कोई आदमी मर जाता है तब उसको स्लीपर पहना कर मरघट तक ले जाते हैं। चमार ने भी देवदूत को कहा कि स्लीपर मत बना देना। जूते बनाने हैं, स्पष्ट आज्ञा है, और चमड़ा इतना ही है। अगर गड़बड़ हो गयी तो हम मुसीबत में फंसेंगे।
लेकिन फिर भी देवदूत ने स्लीपर ही बनाए। जब चमार ने देखे कि स्लीपर बने हैं तो वह क्रोध से आगबबूला हो गया। वह लकड़ी उठा कर उसको मारने को तैयार हो गया कि तू हमारी फांसी लगवा देगा! और तुझे बार-बार कहा था कि स्लीपर बनाने ही नहीं हैं, फिर स्लीपर किसलिए?
देवदूत फिर खिलखिला कर हंसा। तभी आदमी सम्राट के घर से भागा हुआ आया। उसने कहा, जूते मत बनाना, स्लीपर बनाना। क्योंकि सम्राट की मृत्यु हो गयी है।
भविष्य अज्ञात है। सिवाय उसके और किसी को ज्ञात नहीं। और आदमी तो अतीत के आधार पर निर्णय लेता है। सम्राट जिंदा था तो जूते चाहिए थे, मर गया तो स्लीपर चाहिए। तब वह चमार उसके पैर पकड़ कर माफी मांगने लगा कि मुझे माफ कर दे, मैंने तुझे मारा। पर उसने कहा, कोई हर्ज नहीं। मैं अपना दंड भोग रहा हूं।
लेकिन वह हंसा आज दुबारा। चमार ने फिर पूछा कि हंसी का कारण? उसने कहा
कि जब मैं तीन बार हंस लूं... ।
दुबारा हंसा इसलिए कि भविष्य हमें ज्ञात नहीं है। इसलिए हम आकांक्षाएं करते हैं जो कि व्यर्थ हैं। हम अभीप्साएं करते हैं जो कि कभी पूरी न होंगी। हम मांगते हैं जो कभी नहीं घटेगा। क्योंकि कुछ और ही घटना तय है। हमसे बिना पूछे हमारी नियति घूम रही है। और हम व्यर्थ ही बीच में शोरगुल मचाते हैं। चाहिए स्लीपर और हम जूते बनवाते हैं। मरने का वक्त करीब आ रहा है और जिंदगी का हम आयोजन करते हैं।
तो देवदूत को लगा कि वे बच्चियां! मुझे क्या पता, भविष्य उनका क्या होने वाला है? मैं नाहक बीच में आया।
और तीसरी घटना घटी कि एक दिन तीन लड़कियां आयीं जवान। उन तीनों की शादी
हो रही थी। और उन तीनों ने जूतों के आर्डर दिए कि उनके लिए जूते बनाए जाएं। एक ब.ूढी महिला उनके साथ आयी थी जो बड़ी धनी थी। देवदूत पहचान गया, ये वे ही तीन लड़कियां हैं, जिनको वह मृत मां के पास छोड़ गया था और जिनकी वजह से वह दंड भोग रहा है। वे सब स्वस्थ हैं, सुंदर हैं। उसने पूछा कि क्या हुआ? यह बूढ़ी औरत कौन है? उस बूढ़ी औरत ने कहा कि ये मेरी पड़ोसिन की लड़कियां हैं। गरीब औरत थी, उसके शरीर में दूध भी न था। उसके पास पैसे-लत्ते भी नहीं थे। और तीन बच्चे जुड़वां। वह इन्हीं को दूध पिलाते-पिलाते मर गयी। लेकिन मुझे दया आ गयी, मेरे कोई बच्चे नहीं हैं, और मैंने इन तीनों बच्चियों को पाल लिया।

अगर मां जिंदा रहती तो ये तीनों बच्चियां गरीबी, भूख और दीनता और दरिद्रता में बड़ी होतीं। मां मर गयी, इसलिए ये बच्चियां तीनों बहुत बड़े धन-वैभव में, संपदा में पलीं। और अब उस बूढ़ी की सारी संपदा की ये ही तीन मालिक हैं। और इनका सम्राट के परिवार में विवाह हो रहा है।
देवदूत तीसरी बार हंसा। और चमार को उसने कहा कि ये तीन कारण हैं। भूल मेरी थी। नियति बड़ी है। और हम उतना ही देख पाते हैं, जितना देख पाते हैं। जो नहीं देख पाते, बहुत विस्तार है उसका। और हम जो देख पाते हैं उससे हम कोई अंदाज नहीं लगा सकते, जो होने वाला है, जो होगा। मैं अपनी मूर्खता पर तीन बार हंस लिया हूं। अब मेरा दंड पूरा हो गया और अब मैं जाता हूं।
नानक जो कह रहे हैं, वह यह कह रहे हैं कि तुम अगर अपने को बीच में लाना बंद कर दो, तो तुम्हें मार्गों का मार्ग मिल गया। फिर असंख्य मार्गों की चिंता न करनी पड़ेगी। छोड़ दो उस पर। वह जो करवा रहा है, जो उसने अब तक करवाया है, उसके लिए धन्यवाद। जो अभी करवा रहा है, उसके लिए धन्यवाद। जो वह कल करवाएगा, उसके लिए धन्यवाद। तुम बिना लिखा चेक धन्यवाद का उसे दे दो। वह जो भी हो, तुम्हारे धन्यवाद में कोई फर्क न पड़ेगा। अच्छा लगे, बुरा लगे, लोग भला कहें, बुरा कहें, लोगों को दिखायी पड़े दुर्भाग्य या सौभाग्य, यह सब चिंता तुम मत करना।
इसलिए नानक कहते हैं कि मुझे तो एक ही मार्ग दिखायी पड़ता है, और वह है-- वारिआ न जावा एक बार।
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।।
तू सदा है। तू निरंकार है। तू शाश्वत है। मैं छोटा हूं, लहर की तरह हूं, मैं सब तुझ पर छोड़ देता हूं। और तूने इतना दिया है और तेरा इतना दान चल रहा है कि मैं हजार बार भी तुझ पर निछावर हो जाऊं, तो भी थोड़ा है। बस, एक ही मेरा सूत्र है, जो तुझे भाए वही भला है।
"असंख्य घोर मूर्ख हैं, और असंख्य अंधे हैं। असंख्य चोर हैं, हरामखोर हैं। असंख्य ऐसे हैं जो जबर्दस्ती अपना हुक्म चला कर विदा होते हैं। असंख्य गला काटने वाले हैं, और हत्या के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कमाते। असंख्य पापी पाप ही करके जीते हैं। असंख्य झूठे अपने झूठ में ही डोलते रहते हैं। असंख्य म्लेच्छ मल ही को भोजन बना लिए हैं। असंख्य निंदक सिर को भारी किए चलते हैं। इस प्रकार नानक नीच का विचार करते हैं। और कहते हैं कि तुझ पर एक बार नहीं बार-बार निछावर हुआ जाए ऐसा तू है। जो तुझे भाए वही भला कर्म है, तू सदा सलामत और निरंकार है।"
एक तरफ भले लोगों की, साधुओं की, संतों की, विचारकों की जमात है, जिन्होंने विचार कर-कर के सत्य के असंख्य मार्ग खोज निकाले हैं। असंख्य मार्गों के कारण सत्य खो गया है।
दूसरी तरफ उनके विरोध में खड़े बेईमान, चोर, हत्यारे, पापी हैं। उन्होंने भी अपने अहंकार की चेष्टा कर-कर के, सत्य से बचने के असंख्य मार्ग खोज निकाले हैं। उन्होंने झूठ की नयी-नयी ईजादें कर ली हैं। वे बड़े आविष्कारक हैं। उन्होंने बड़े मनमोहक झूठ खोज लिए हैं। उन्होंने बड़े प्यारे सपने बना लिए हैं। उनके सम्मोहन में कोई भी फंस जा सकता है। और तब भटक जाता है।
दो हैं भटकने के मार्ग। एक तो तुम असत्य की तरफ चले जाओ तो भटक जाओ। और
या तुम सत्य के विचार में पड़ जाओ कि कौन सा मार्ग है; तो तुम भटक जाओ। नानक कहते हैं, मैं दोनों की चिंता नहीं करता।
"जो तुझे भाए वही भला कर्म है।"
न मैं इसकी फिक्र करता कि पुण्यात्मा क्या कहते हैं, न मैं इसकी फिक्र करता कि पापी क्या कहते हैं। न तो पुण्य और न पाप; न तो साधु और न असाधु। न, मैं उन दोनों में से नहीं चुनता। न तो मार्ग, न कुमार्ग, मैं चुनता ही नहीं। मैं सब तुझ ही पर छोड़ देता हूं। जो तू करवाए वही शुभ है। जहां तू ले जाए वही शुभ है। जो मार्ग तू बता दे वही मेरा मार्ग है। मंजिल मिले या न मिले।
इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि अगर मंजिल मिलने की भावना बनी रही तो तुम
सब उस पर न छोड़ पाओगे। तब तुम यह तो ध्यान रखोगे ही कि मंजिल मिल रही या नहीं मिल रही है। मंजिल की अगर तुम्हारे मन में धारणा बनी रही तो सब न छोड़

पाओगे। आधा-आधा छोड़ोगे। और आधा-आधा छोड़ना न छोड़ने से बदतर है। वह छोड़ना है ही नहीं।
नहीं, मंजिल मिले या न मिले, अब मंजिल ही न रही। छोड़ना ही मंजिल है। भक्त के लिए समर्पण अंत है। उसके पार फिर कुछ भी नहीं बचता। फिर वह डुबा दे तो भी भक्त को लगेगा, वह उबार रहा है। वह मिटा दे तो भक्त को लगेगा वह बना रहा है। वह अंधेरे में पटक दे तो भी भक्त को लगेगा कि महासूर्यों का उदय हुआ है। सवाल यह नहीं है कि हम कहां जाते हैं। सवाल यह भी नहीं है कि हम क्या पाते हैं। सवाल यह है कि हमारी भावदशा क्या है!
तो नानक की संपूर्ण प्रक्रिया समर्पण की प्रक्रिया है।
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।।
"तेरे असंख्य नाम हैं, तेरे असंख्य स्थान हैं। असंख्य लोक हैं जो अगम्य हैं। असंख्य कहना भी सिर का भार ही बढ़ाना है। अक्षर से ही नाम है, अक्षर से ही स्तुति है। अक्षर से ही ज्ञान और उसकी गुणगाथा के गीत हैं। अक्षर से ही लिखना और वाणी का बोलना है। अक्षर द्वारा ही भाग्य का संयोग है। लेकिन जो लिखता है वह भाग्य के परे है। वह जैसा फर्माता है वैसा हम पाते हैं। जो कुछ भी उसकी रचना है, सब उसका नाम है। नाम बिना कोई स्थान नहीं। कुदरत का किस प्रकार बखान करें? तुझ पर एक बार नहीं, बार-बार निछावर हुआ जाए। जो तुझे भावे वही भला है, तू सदा सलामत और निरंकार है।"
उसके नाम, जितने लोग हैं उतने ही खोज लिए गए हैं। हिंदुओं के पास एक शास्त्र है, विष्णु सहस्रनाम। उस शास्त्र में सिर्फ उसके नाम ही नाम हैं, सहस्र नाम। उसमें कुछ और नहीं लिखा है। सिर्फ नाम ही नाम का शास्त्र है। मुसलमानों के अपने नाम हैं। असल में मुसलमानों की परंपरा यही है कि जो भी नाम मुसलमान किसी का रखते हैं, वे सभी नाम परमात्मा के नाम हैं। रहमान हो, रहीम हो, अब्दुल्लाह हो, कुछ भी हो, सभी नाम परमात्मा के हैं। हिंदुओं की भी परंपरा यह थी कि सभी नाम परमात्मा के ही रखे जाएं। तो राम, कृष्ण, हरि... ।
अगर हम नामों का हिसाब लगाएं तो जितने लोग हैं उतने ही उसके नाम हैं।
और फिर भी उपाय कायम है। हम चाहे जितने और नाम खोज लें। क्योंकि नाम हम देते हैं। उसका कोई नाम नहीं है। नाम हम देते हैं। नाम हमारे द्वारा दिया जाता है। तो हम कोई भी नाम गढ़ लें, वही नाम काम करेगा।
तो नानक कहते हैं, किस नाम को जपूं? किससे तुझे पुकारूं? किस नाम को तू पहचानेगा कि तेरा है? किस नाम से पुकारूं कि मेरी पुकार तुझ तक पहुंच जाएगी? साधक को बड़ी चिंता होती है कि कौन सा नाम ठीक पड़ेगा? क्योंकि यह तो स्वाभाविक है, तुम पत्र लिखते हो तो पता तो लिखना ही पड़ेगा। और पता ध्यान से लिखते हो सब से ज्यादा।
मैंने सुना है, एक आदमी के घर मुल्ला नसरुद्दीन नौकरी करता था। और उस आदमी को गोपनीय पत्र लिखने की झक थी। बिना दस्तखत किए किसी को भी पत्र लिखा करता था। अखबारों के संपादकों को, नेताओं को, ज्ञानियों को। गोपनीय पत्र लिखने का उसको नशा था--रोज!
एक दिन ऐसा हुआ कि एक पत्र उसने लिखा, नसरुद्दीन को दिया। नसरुद्दीन पत्र डाल कर लौटा तो उसने पूछा कि क्या मुल्ला पत्र डाल दिया? नसरुद्दीन ने कहा कि डाल आया। तो उसने कहा कि तुमने बताया क्यों नहीं? क्योंकि मैं पता लिखना भूल गया। तो नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने समझा कि शायद इस बार आप पता भी गोपनीय रखना चाहते हैं।
लेकिन अगर पता भी गोपनीय रखोगे तो पत्र पहुंचेगा कैसे? किस पते से भेजें परमात्मा को लिखी पाती कि वह पहुंच जाए? इसलिए नाम की बड़ी तलाश चलती है। कौन सा नाम पुकारें? किस नाम से वह सुनेगा? नानक कहते हैं कि या तो सभी नाम उसी के हैं या कोई भी नाम उसका नहीं है। और अक्षर उसका नाम है।
अक्षर शब्द को समझना बड़ा कीमती है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं में हम
क ख ग को, वर्णमाला को अक्षर कहते हैं। अल्फाबेट को हम अक्षर कहते हैं। लेकिन अक्षर शब्द का तो अर्थ होता है, जो मिटाया न जा सके। तुम्हारा क ख ग तुम लिखो, वह तो मिटाया जा सकता है। तो वह तो अक्षर नहीं है, क्षर है। तख्ते पर तुमने लिखा क ख ग, पोंछ दो, मिट गया। लिखा था, उसके पहले नहीं था, पोंछ दिया, फिर नहीं हो गया। वह तो क्षर है, अक्षर नहीं है। और हम अल्फाबेट को

अक्षर कहते हैं। उसके पीछे कारण है। क्योंकि हम कहते हैं, असली जो है, न तो वह लिखा जा सकता है और न पोंछा जा सकता है। तुम जो लिखते हो वह तो सिर्फ प्रतिध्वनि है।
ऐसा समझो कि आकाश में चांद है और झील में उसका प्रतिबिंब बन रहा है। तुम झील को हिला दो तो झील का चांद फौरन टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। वह तो क्षर है। लेकिन तुम ऐसा आकाश में हाथ हिलाओ, उससे कोई आकाश का चांद टुकड़े- टुकड़े नहीं हो जाएगा। वह अक्षर है।
हमारी जो भाषा है वह तो परमात्मा की भाषा का केवल प्रतिफलन है। जो हम बोर्ड पर लिखते हैं, किताब में लिखते हैं, वह तो प्रतिफलन है, रिफ्लेक्शन है। वह तो मिट जाएगा। लेकिन जिससे वह आ रहा है, वह अक्षर है। तुम जो बोल रहे हो, वह तो क्षर है, लेकिन तुम्हारे भीतर जो बोल रहा है, वह अक्षर है।
तो नानक कहते हैं, अक्षर ही उसका नाम है। तो उसको न तो लिखा जा सकता है
और न मिटाया जा सकता है। उस अक्षर के अतिरिक्त सब आदमी की ईजादें हैं। वह अक्षर क्या है?
उस अक्षर की जो हमारे पास निकटतम प्रतिध्वनि है, वही ओंकार है। इसलिए नानक का यह पूरा का पूरा दर्शन एक भित्ति पर टिका है, एक ओंकार सतनाम। बस! इन तीन शब्दों को तुम समझ लो, तो जपुजी पूरा समझ में आ गया। पूरे नानक ही समझ में आ गए। वह सारसूत्र है। अक्षर यानी ओंकार। क्योंकि वही एक ध्वनि है जो बिना लिखे गूंज रही है। जो कभी नहीं मिटेगी। वह अस्तित्व का ही संगीत है। उसके मिटने का कोई उपाय नहीं। जब सब खो जाएगा, तब भी वह गूंजता रहता है।
बाइबिल में कहा है--और सभी शास्त्रों में उसकी झलक आने ही वाली है--कि सबसे पहले शब्द था, लोगोस। जिसको पश्चिम ने लोगोस कहा है, शब्द कहा है, वही ओंकार है। सबसे पहले शब्द था, फिर सब उससे हुआ। और जब सब खो जाएगा तब भी शब्द होगा। सब उसी में लीन हो जाएगा।
भारत में शब्दयोग की प्रक्रियाएं हैं, जिनमें सिर्फ शब्द को ही साधना होता है। और शब्द का अर्थ है, अपने को तो निःशब्द करना होता है। ताकि जो मैं बोल रहा हूं वह तो चुप हो जाए, और जब मेरा बोलना चुप हो जाता है तब जो सुनायी पड़ता है, वह परमात्मा की वाणी है। वह उसका उदघोष है। वह उसका उच्चार है।
नानक कहते हैं, असंख्य तेरे नाम हैं, असंख्य तेरे स्थान, अगम्य तेरे लोक। और फिर असंख्य कहना भी सिर का भार बढ़ाना है। नानक कहते हैं, असंख्य कहने से भी क्या सार है?
क्यों असंख्य कहना भी सिर का भार बढ़ाना है? इसे थोड़ा समझें। असल में
हम परमात्मा के संबंध में कुछ भी कहें, उससे सिर का भार बढ़ेगा, घटेगा नहीं। परमात्मा के संबंध में कुछ करें, तो सिर का भार घटेगा। कहें, तो बढ़ेगा। क्योंकि जो भी हम कहेंगे वह मौलिक रूप से गलत होगा।
समझो; एक आदमी कहता है समुद्र के किनारे खड़े हो कर कि यह सागर अथाह है।
अब इसके दो ही अर्थ हो सकते हैं। एक, या तो इस आदमी ने थाह लेने की कोशिश ही नहीं की, यह किनारे पर ही खड़ा है और कह रहा है कि अथाह है। अगर यह किनारे पर ही खड़ा है और इसने थाह लेने की कोशिश नहीं की, तो इसके वचन का क्या अर्थ है? गहरा होगा, बहुत गहरा हो सकता है, पैसिफिक महासागर पांच मील गहरा है, पर अथाह तो नहीं।
तो हम इस आदमी से पूछ सकते हैं कि क्या तुमने थाह लेने की कोशिश की और नहीं पायी? या तुम किनारे पर ही खड़े बातें कर रहे हो? अथाह से तुम्हारा क्या मतलब, बहुत गहरा? बहुत गहरे को भी अथाह नहीं कहा जा सकता। अथाह का तो मतलब है कि जिसकी गहराई का कोई अंत नहीं।
तो दो ही उपाय हैं। या तो यह आदमी कहे कि मैं तो किनारे पर ही खड़ा हूं, लेकिन बहुत गहरा है। तो हम कहेंगे, तुम गलत शब्द का उपयोग करते हो। या यह भी हो सकता है, यह आदमी कहे कि मैं भीतर गया और थाह न पा सका। तब भी यह सही नहीं है। क्योंकि जहां तक वह गया वहां तक थाह न मिली, एक हाथ और जाता तो थाह मिल जाती। यह इतना ही कह सकता है कि मैं पांच मील तक गया और थाह न मिली, अथाह नहीं कह सकता। और अगर यह कहता है कि मैं पूरा ही गया और थाह न मिली, तब

तो बिल्कुल ही गलत है। क्योंकि अगर तुम पूरे चले गए तो थाह मिल ही गयी। कुछ बचा नहीं; तो थाह आ गयी।
तो परमात्मा के संबंध में हम क्या कहें--अथाह? तो अगर तुम पूरे परमात्मा को जान लिए हो तभी कह सकते हो। लेकिन तब तो कहना व्यर्थ हो जाएगा। क्योंकि थाह मिल गयी। तुम आखिरी किनारे तक पहुंच गए। या तुम कहते हो कि हम बहुत दूर तक गए, दूर तक गए, लेकिन थाह न मिली। तब भी तुम्हें अथाह नहीं कहना चाहिए। क्योंकि कौन जाने? थोड़ी दूर और जाओ और थाह मिल जाए! असंख्य कैसे कहोगे? क्या गिनती पूरी कर ली? अगर गिनती पूरी हो गयी तो कितनी ही बड़ी संख्या हो, असंख्य नहीं है। और अगर तुम कहते हो, गिनती अभी पूरी नहीं हुई, करते ही जाते हैं और गिनती पूरी नहीं हुई, तो अभी रुको, वक्तव्य मत दो। क्योंकि कौन जाने, गिनती पूरी हो जाए!
तो परमात्मा को असंख्य कहने से सिर का भार ही बढ़ता है। कुछ हल नहीं होता। अथाह कहो, अनंत कहो, असीम कहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे सब शब्द व्यर्थ हैं। परमात्मा के संबंध में कुछ भी कहना व्यर्थ है। तुम जो भी कह रहे हो, वह अपने संबंध में कह रहे हो। जो आदमी कहता है, परमात्मा अथाह है, वह यह कह रहा है कि मेरी थाह लेने की सीमा के आगे है। जो आदमी कह रहा है, असंख्य... ।
अब असंख्य भी तुम्हारी सीमा पर है। अब तो अलग-अलग जातियों में असंख्य
की अलग-अलग धारणाएं हैं। अफ्रीका में कुछ जातियां हैं, जिनके पास बस तीन की गिनती है। एक, दो, बहुत। बस इतनी ही गिनती है। और तीन से ज्यादा असंख्य हो जाता है। क्योंकि अब गिनती हो ही नहीं सकती तो संख्या के बाहर हो गया। अगर तीन से ज्यादा चीजें रखी हैं तो अफ्रीका का वह कबीला कहेगा, असंख्य। क्योंकि उसकी संख्या ही तीन की है। एक, दो तक ही संख्या है असल में। तीन यानी बहुत। और तीन के पार, जो बहुत से भी ज्यादा है, वह असंख्य।
क्या निश्चित ही परमात्मा असंख्य है? या हमारी गिनती की सीमा आ जाती है? क्या वह अमाप है? या हमारे माप के मापदंड चुक जाते हैं? वह असीम है? या हमारे पैर थक जाते हैं? हम जो भी कहते हैं, अपने बाबत कहते हैं। उसके बाबत में हम कुछ भी नहीं कहते। और अच्छा हो कि अपने ही संबंध में कहें। क्योंकि वह सचाई होगी।
परमात्मा के सामने हम सब तरह से असमर्थ हो जाते हैं। असहाय हो जाते हैं। इस दुनिया में जो भी हमारे ढंग काम करते थे, वहां कोई भी काम नहीं करते। हम एकदम हार जाते हैं, पराजित हो जाते हैं। उस पराजय में हम कहते हैं, असंख्य, असीम, अथाह। लेकिन उससे हम अपने ही संबंध में कह रहे हैं। और उससे हमारा सिर का बोझ ही बढ़ता है। क्योंकि हमें लगता है कि हमने कुछ परमात्मा के संबंध में कहा। परमात्मा के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जो भी कहा जा सकता है वह परमात्मा के संबंध में नहीं होगा। उसके संबंध में तो केवल चुप रहा जा सकता है। परम मौन ही उसका संकेत है।
इसलिए नानक कहते हैं, "असंख्य कहना भी सिर का भार बढ़ाना है।"
असंख नाव असंख थाव। अगंम अगंम असंख लोअ।।
असंख कहहि सिरि भारु होई।
"और असंख्य कहने से भी सिर पर भार पड़ता है।"
तुम कुछ भी मत कहो। कुछ करो; कुछ कहो मत। कुछ हो जाओ, कुछ बोलो मत।
तुम्हारे व्यक्तित्व में रूपांतरण हो, तो तुम परमात्मा के निकट आते हो।
तुम्हारे पास शब्दों का जाल बढ़ता जाए, उससे तुम परमात्मा के निकट नहीं आते।
नानक को स्कूल में भरती किया गया। तो उन्होंने पहला सवाल यह पूछा कि क्या तुम जो पढ़ा रहे हो--पंडित को, शिक्षक को--उसे पढ़ने से मैं परमात्मा को जान लूंगा? पंडित थोड़ा चौंका। क्योंकि छोटे बच्चे से हम ऐसी अपेक्षा नहीं करते। उसने कहा, परमात्मा को? बहुत कुछ जान लोगे, लेकिन परमात्मा को नहीं जान लोगे। तो नानक ने कहा, फिर मुझे वही तरकीब बताएं जिससे परमात्मा को जान लें। बहुत कुछ जान कर क्या करेंगे? उस एक को जानने से सब जान लिया जाता है। नानक ने पूछा कि क्या तुमने जान लिया है उस एक को?
पंडित भी ईमानदार आदमी रहा होगा। वह नानक को घर वापस लौटा गया। उसने नानक के पिता को कहा, क्षमा करें। इस बच्चे को हम कुछ सिखा न सकेंगे। यह

पहले से ही सीखा हुआ है। और यह कुछ ऐसे प्रश्न उठा रहा है, जिनके उत्तर मेरे पास नहीं हैं। और यह अवतारी है। यह होनहार है। इसे हम कुछ सिखा नहीं सकते। इससे हम कुछ सीख लें वही बेहतर है।
यह कैसे घटा? इस देश में इसके लिए हमने पुनर्जन्म की एक स्पष्ट रूपरेखा निर्मित की है। यह नानक का शरीर बच्चे का शरीर है, लेकिन यह चेतना बड़ी प्राचीन है। जन्मों-जन्मों में नानक की इस चेतना ने खोज-खोज कर पाया है कि जानने से वह नहीं जाना जाता। शब्दों से उससे कोई संबंध नहीं बनता। मौन हो कर ही तुम उसे पाते हो। यह छोटा बच्चा, उसी सनातन खोज को, जो नानक अनेक-अनेक जन्मों में करते रहे हैं, बोल रहा है।
कोई भी बच्चा बिल्कुल बच्चा नहीं है। क्योंकि बच्चे की स्लेट भी बिल्कुल कोरी नहीं है। अतीत जन्मों में बहुत कुछ लिख कर लाया है। इसलिए बच्चे को भी बहुत सम्मान से देखना। कौन जाने, वह तुमसे ज्यादा जानता हो! क्योंकि तुम्हारी उम्र इस शरीर की भला ज्यादा हो, लेकिन उसके अनुभव की उम्र तुमसे गहरी हो सकती है। इसलिए बच्चे के प्रति भी एक सम्मान रखना। क्योंकि जरूरी नहीं है कि तुम उससे ज्यादा जानते हो। और अनेक बार छोटे- छोटे बच्चे तुम्हें झंझट में डाल देते हैं। क्योंकि ऐसे प्रश्न खड़े कर देते हैं जिनके तुम्हारे पास उत्तर नहीं हैं। लेकिन तुम उन्हें दबा देते हो, क्योंकि तुम ज्यादा शक्तिशाली हो।
नानक को ठीक शिक्षक मिला, जो वापस लौटा गया। क्योंकि उस शिक्षक को एक बात तो साफ हो गयी कि यह जो बच्चा कह रहा है, एकदम ठीक कह रहा है। मैं भी अज्ञानी हूं। और जब मैं सब शास्त्र पढ़ कर ज्ञानी नहीं हो सका तो इस बच्चे को भी उन्हीं शास्त्रों को पढ़ाने से क्या होगा? सिर का बोझ बढ़ता है।
एक है, जिसे जानने से सिर का बोझ मिट जाता है। और सब जानने से सिर का बोझ बढ़ता है।
"असंख्य कहना भी सिर का भार बढ़ाना है। अक्षर से ही नाम है।"
अखरी नामु अखरी सालाह।
अक्षर उसका नाम है। ओंकार उसका नाम है। और वही उसकी स्तुति है। तुम कुछ और मत कहो। तुम सिर्फ ओंकार की ध्वनि से भर जाओ, स्तुति शुरू हो गयी। कुछ कहने में अर्थ नहीं है कि मैं पापी हूं, कि मैं पतित हूं, कि तुम पतितपावन हो। घुटने टेकने में, रोने-गिड़गिड़ाने में कुछ भी सार नहीं। इससे कुछ स्तुति नहीं होती।
मनुष्यों ने परमात्मा के संबंध में वैसी ही स्तुतियां बना ली हैं, जैसी हमारे बीच अहंकारी मनुष्य पसंद करते हैं। तुम किसी सम्राट के पास जाओ, घुटने टेक कर गिर जाओ, हाथ जोड़ कर खड़े हो जाओ, और कहो कि आप पतितपावन हैं। वह बड़ा प्रसन्न होता है। तुमने उसी तरह की स्तुतियां परमात्मा के संबंध में बना ली हैं।
नानक कहते हैं, वे स्तुतियां नहीं हैं। क्योंकि परमात्मा कोई अहंकारी
तो नहीं है। तुम किसे धोखा दे रहे हो? तुम किसकी खुशामद कर रहे हो? यह मक्खन तुम किसे लगा रहे हो? यह तुम जो परमात्मा का गुणगान कर रहे हो, क्या तुम उसे फुसला कर कुछ काम करवा लेना चाहते हो? यह तुम क्यों कह रहे हो? इसे कहने का क्या प्रयोजन?
नहीं, स्तुति का अर्थ उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। हम क्या उसकी प्रशंसा करेंगे?
इसलिए नानक बार-बार कहते हैं, क्या कुदरत की बात कहें! क्या प्रकृति
की बात कहें! क्या उसके विस्मय को शब्द दें! कुछ कहने को नहीं है।
फिर स्तुति का क्या अर्थ होगा? स्तुति का एक ही अर्थ होगा कि तुम अक्षर, ओंकार से भर जाओ। इसलिए ओंकार की ध्वनि के अतिरिक्त न कोई पूजा है, न कोई पाठ है।
हमने मंदिर इस ढंग से बनाए थे कि उनके भीतर अगर तुम ओंकार की ध्वनि करो, तो उनके गोल गुंबज से ध्वनि बरसे वापस तुम पर। इसलिए हम गुंबज गोल बनाते हैं पत्थर का, संगमरमर का मंदिर बनाते हैं, और गूंजने की प्रक्रिया को ध्यान रखते हैं। अगर तुम ठीक से ओंकार का गुंजन करो मंदिर में, तो तुम पाओगे कि ओंकार का गुंजन अनेक गुना हो कर तुम्हारे ऊपर बरसता है।

अभी पश्चिम में एक नयी वैज्ञानिक प्रक्रिया है--बायो-फीडबैक। बड़ी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। और संभव है कि भविष्य में बहुत काम की सिद्ध होगी। तो उन्होंने छोटे-छोटे यंत्र बनाए हैं, जिन यंत्रों के द्वारा, तुम्हारे मन को शांत करने की व्यवस्था की जाती है। समझने की कोशिश करें। एक छोटा सा पर्दा सामने होता है। उस पर्दे और तुम्हारे मस्तिष्क को तार से जोड़ दिया जाता है। जब तुम्हारे मस्तिष्क में विचार तेजी से चलते हैं, तो पर्दे पर खास तरह के रंग प्रकट होते हैं। समझो कि लाल धब्बे प्रकट होते हैं। जब मन शांत होता है, तो नीले धब्बे प्रकट होते हैं। जब मन बिल्कुल शांत हो जाता है, तो पर्दा खाली हो जाता है।
तो तुम बैठे हो और पर्दे पर देख रहे हो। अभी लाल धब्बे हैं, मन क्रोध
से भरा है, बहुत विचारों से भरा है। फिर तुम थोड़े शिथिल हुए, तुमने मन के तनाव को थोड़ा कम किया, नीले धब्बे प्रकट हो गए। तुम प्रफुल्लित हुए--यह बायो-फीडबैक है। क्योंकि अब पर्दे ने तुमको साथ देना शुरू कर दिया। और पर्दे और तुम्हारे बीच अब लेन-देन शुरू हो गया। तुम प्रफुल्लित हुए। और तुम्हें लगा कि किस ढंग से भीतर तुम्हारे घटना घट रही है, जिससे पर्दे पर नीले धब्बे प्रकट हुए हैं। तुम अनुभव कर सकते हो कि सामने पर्दे पर नीले धब्बे हैं और तुम्हारे भीतर मन शांत है। अब तुम और शांत हो सकते हो। धब्बे खो गए। फिर विचार आए, फिर धब्बे प्रगट हुए।
धीरे-धीरे इन दोनों को गौर से अध्ययन कर के, तुम अपने भीतर की कला को पकड़ लोगे कि किस भांति धब्बे खो जाते हैं। क्या तुम्हारे भीतर होता है! कैसे तुम्हारा मन शिथिल होता है कि धब्बे खो जाते हैं! तब तुम चेष्टापूर्वक धब्बे खोने में समर्थ हो जाओगे। तुम बैठ जाओगे आंख बंद कर के। उसी स्थिति को वापस लाने की कोशिश करोगे, जिसमें धब्बे खो गए थे, पर्दे पर धब्बे खो जाएंगे। तो पर्दे और तुम्हारे बीच एक लेन-देन शुरू हुआ। यह जो बायो-फीडबैक है, इसके छोटे-छोटे यंत्र तैयार हो गए हैं। अनेक तरह के यंत्र हैं। ध्यान के लिए उपयोग में लाए जा रहे हैं पश्चिम में। और कीमती हैं। लेकिन पूरब ने इसी तरह के बड़े यंत्र विकसित किए थे। तुम ओंकार की ध्वनि करो मंदिर में, वह बायो-फीडबैक है। वह जो गुंबज है, उससे ओंकार की ध्वनि तुम्हारे ऊपर गिरेगी, बरसेगी। तुमने ही पैदा की है, उससे बरसेगी। और जैसे-जैसे तुम्हारी ध्वनि असली ओंकार के करीब पहुंचने लगेगी, वैसे-वैसे मंदिर से बरसने वाली ध्वनि की तीव्रता बढ़ती जाएगी। उसकी सघनता बढ़ती जाएगी। जैसे-जैसे तुम भीतर साज-संगीत में भरने लगोगे, तुम्हारा सुर भीतर सधने लगेगा, जैसे-जैसे तुम्हारा ओंकार वाणी से कम, हृदय से आने लगेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि मंदिर से लौट कर आने वाली प्रतिध्वनि की गुणवत्ता बदल गयी। उसकी क्वालिटी बदल गयी। वह अब ज्यादा शांतिदायी है।
जितना हृदय गहरे में उतरेगा तुम्हारा ओंकार, उतनी ही मंदिर की ध्वनि आनंददायी होने लगेगी। पहले तो वह शोरगुल मालूम पड़ेगी, जब तुम उच्चार सिर्फ ओंठ से करोगे। जब तुम्हारा उच्चार हार्दिक होगा तब उसमें एक संगीत प्रकट हो जाएगा, जिसका तुम अनुभव करोगे। और जब तुम्हारा उच्चार परिपूर्ण हो जाएगा--तुम कर ही नहीं रहे हो, अब तुमसे उच्चार हो रहा है--तब तुम पाओगे कि मंदिर के कण-कण से आनंद की वर्षा हो रही है।
और मंदिर तो छोटा प्रतीक है, वहां तो अभ्यास करना है। वह तो तैरना सीखने के लिए नदी के किनारे उथले में इंतजाम किया है। फिर जब तुम सीख गए ओंकार को, तो विराट सागर में निकल जाना है। फिर यह सारा जगत मंदिर है। फिर तुम जहां भी ओंकार की ध्वनि करोगे, वहीं तुम पाओगे कि चारों तरफ से उसकी वर्षा हो रही है। यह गगन का जो विराट मंडप है, यह इस मंदिर का गुंबज है। नानक कहते हैं, "अक्षर से ही स्तुति है। अक्षर से ही ज्ञान और उसकी गुणगाथा के गीत हैं। अक्षर से लिखना, अक्षर से वाणी है। अक्षर द्वारा ही भाग्य का संयोग है।"
यह जरा सूक्ष्म हैः "अक्षर द्वारा ही भाग्य का संयोग है।"
अखरा सिरि संजोगु बखाणि।
और जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर का अक्षर खुलता है, वैसे-वैसे तुम्हारा भाग्य बदलता है। तुम्हारे भीतर जो कुंजी है जीवन की विधि को बदलने की, वह ओंकार है। जितना तुम ओंकार से दूर निकल जाते हो उतना तुम अपने ही हाथों

अपने भाग्य को दुर्गति में डालते हो। जैसे-जैसे तुम्हारा संयोग जुड़ता है भीतर की ध्वनि से, शब्दयोग से, अक्षर से, वैसे-वैसे सुगति शुरू हो जाती है।
ओंकार से दूर निकल जाना नर्क है। ओंकार के करीब आ जाना स्वर्ग है।
ओंकार के साथ एक हो जाना मोक्ष है। तो तुम्हारे भाग्य की ये तीन दिशाएं हैं। और कोई उपाय भाग्य को बदलने का नहीं है। तुम कितना ही धन कमाओ! तुम नर्क में हो तो तुम नर्क में ही रहोगे। तुम्हारा नर्क धनी का नर्क होगा। तुम कितना ही बड़ा महल बनाओ! अगर तुम दुखी हो तो तुम महल में दुखी रहोगे। जैसे तुम झोपड़े में दुखी थे, वैसे तुम महल में दुखी रहोगे। झोपड़ा महल बन गया, तुम्हारा दुख न बदलेगा। तुम्हारा भाग्य वही रहेगा। क्योंकि तुम्हारे जीवन की तरंग नहीं बदली। तुम्हारे जीवन की जो ध्वनि-तरंग है, जो भाग्य को लिखती है, वह नहीं बदली।
और दो ही तरह के लोग हैं संसार में। एक, जो स्थितियों को बदलते रहते हैं। कम धन से ज्यादा धन, छोटे पद से बड़ा पद, छोटे मकान से बड़ा मकान, कम सुंदर स्त्री से ज्यादा सुंदर स्त्री; परिस्थिति को बदलते रहते हैं, लेकिन भाग्य की तरंग उनकी वही रहती है। वेव लेंथ वही रहती है उनके भाग्य की। उसमें कोई फर्क नहीं होता।
दूसरा वर्ग है, जिसको हम साधक कहते हैं। वह जीवन की परिस्थिति की चिंता नहीं करता। वह जीवन का जिसे अनुभव हो रहा है, उसकी तरंग को बदलने की कोशिश करता है। जैसे ही वह तरंग बदल जाती है, तो चाहे झोपड़ा हो या महल, तुम महल में होते हो। उस तरंग के बदले हुए मनुष्य को अगर नर्क में भी डाल दो तो भी वह स्वर्ग में होगा। उसको नर्क में डालने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि उसके भीतर जो नाद बज रहा है, वह जिस अहोभाव और आनंद को उपलब्ध हुआ है, तुम उसे छीन नहीं सकते। तुम उसे आग में डाल दो... ।
एक झेन फकीर औरत हुई। मरने के पहले उसने अपने शिष्यों को कहा कि मैं जीते जी चिता पर चढ़ना चाहती हूं। यह भी कोई ढंग? कि दूसरे के कंधों पर कोई चढ़ कर और चिता पर जाए! और फिर मैं कभी किसी के कंधे पर नहीं चढ़ी। और मैं नहीं चाहती कि मेरे संबंध में यह कहा जाए बाद में कि मैंने किसी का सहारा लिया। उस एक का सहारा काफी है! अब और किसका सहारा लेना? वह न मानी, तो चिता सजायी गयी। उस चिता पर वह बैठ गयी। चिता में आग लगा दी गयी। लोग दूर भागे, क्योंकि आग तेज थी। पास खड़ा होना मुश्किल था। और एक आदमी ने भीड़ में से पूछा कि वहां कैसा लग रहा है? क्योंकि लपटें भयंकर थीं, वह स्त्री जल रही थी। उस स्त्री ने आंखें खोलीं और कहा, इस तरह का मूर्खतापूर्ण सवाल तुम ही कर सकते थे।
उस स्त्री के चेहरे पर वही भाव था जो सदा था। तुम उसे फूलों पर बैठाते
तो फर्क न पड़ता। और तुमने उसे आग की चिता पर बिठा दिया तो फर्क नहीं पड़ेगा। भीतर की तरंग सध गयी तो आग उस तरंग को जला नहीं सकती और फूल उस तरंग को बढ़ा नहीं सकते। इस भीतर की तरंग को ही नानक कहते हैं, नियति है, भाग्य है। भाग्य तुम्हारे सिर में नहीं लिखा हुआ है। भाग्य तुम्हारे जीवन की तरंग में लिखा हुआ है। और उस तरंग की खोज ओंकार से सधती है।
"अक्षर से लिखना, अक्षर से वाणी बोलना है। अक्षर द्वारा ही भाग्य का संयोग लिखा जाता है। लेकिन जो लिखता है, वह भाग्य के परे है।"
परमात्मा का कोई भाग्य नहीं, कोई नियति नहीं। परमात्मा का कोई प्रयोजन नहीं। परमात्मा का कोई उद्देश्य नहीं। वह भाग्य के परे है। वह कहीं जा नहीं रहा है। वह किसी यात्रा पर नहीं है। वह किसी मंजिल की तलाश में नहीं है।
इसलिए तो हिंदू इसे लीला कहते हैं। लीला का अर्थ है, परमात्मा का कोई प्रयोजन नहीं है। लीला का अर्थ है, परमात्मा खेल रहा है। जैसे छोटे बच्चे खेलते हैं, कोई प्रयोजन नहीं। बस, खेलना ही प्रयोजन है। आनंदित हैं, प्रफुल्लित हैं। जैसे फूल खिलते हैं, किस कारण? जैसे चांद-तारे चलते हैं, किस कारण? जैसे प्रेम होता है, किस कारण? नदी-झरने बहते हैं, किस कारण? परमात्मा है, कहीं जा नहीं रहा है। और जिस दिन तुम्हारी तरंग सध जाएगी पूरी, तुम भी पाओगे, तुम्हारे जीवन से भी प्रयोजन चला गया। इसलिए तो हम राम और कृष्ण के जीवन को चरित्र नहीं कहते, लीला कहते हैं। वह चरित्र नहीं है, लीला है, खेल है, एक क्रीड़ा है, एक उत्सव है।

"जो लिखता है, वह भाग्य के परे है। वह जैसा फरमाता है तैसा हम पाते हैं। जो कुछ भी उसकी रचना है, सब उसका नाम है।"
इसलिए उसके नाम को क्या खोजना? जो कुछ भी उसकी रचना है, सब उसी का नाम है। वृक्ष में, पौधे में, पत्थर में उसी के हस्ताक्षर हैं।
जीसस ने कहा है, उठाओ पत्थर और तुम मुझे दबा हुआ पाओगे। तोड़ो वृक्ष की शाखा, तुम मुझे छिपा हुआ पाओगे।
सब जगह उसका नाम है। हर ध्वनि में वही गूंज रहा है। सब ध्वनियां ओंकार
के ही रूप हैं। उसकी ही सघनता, विरलता के कारण सारी ध्वनियां पैदा होती हैं।
"एक ही छिपा है अनेक में। सब उसका नाम है। नाम बिना कोई स्थान नहीं। कुदरत का किस प्रकार बखान करूं?"
नानक विस्मय से भर-भर जाते हैं। बार-बार अहोभाव और आश्चर्य से भर जाते हैं। कि कैसे कुदरत का बखान करूं? इस स्वभाव का कैसे वर्णन करूं?
"तुम पर एक बार नहीं बार-बार निछावर हुआ जाए तो भी कम है। जो तुझे भावे वही भला, तू सदा सलामत और निरंकार है।"
असंख नाव असंख थाव। अगंम अगंम असंख लोअ।।
असंख कहहि सिरि भारु होई।
अखरी नामु अखरी सालाह। अखरी गिआनु गीत गुण गाह।।
अखरी लिखणु बोलणु वाणि। अखरा सिरि संजोगु बखाणि।
जिनि एहि लिखे तिसु सिर नाहि। जिव फुरमाए तिव तिव पाहि।।
जेता कीता तेता नाउ। विणु नावै नाही को थाउ।।
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक बार।।
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार।।
छोड़ दो उस पर। एक ही पकड़ छोड़ दो--अपने को पकड़ना। और सब हल हो जाता है।
उलझन एक है कि तुम अपनी मान कर चल रहे हो। उलझन एक है कि तुमने खुद को ही अपना गुरु बना लिया है। और सुलझाव भी एक है कि तुम उसे गुरु बना दो और तुम बीच से हट जाओ। और जो हो, तुम निर्णय मत लो कि भला या बुरा। उसकी मर्जी के बिना तो कुछ होगा नहीं। इसलिए जो भी होगा, ठीक होगा। जो उसे भाए वही शुभ है।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
नौवां प्रवचन

आपे बीजि आपे ही खाहु

पउड़ीः 20
भरीए हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह।।
मूत पलोती कपड़ होइ। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ।।
भरीऐ मति पापा के संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि।।
पुंनी पापी आखणु नाहि। करि करि करणा लिखि लै जाहु।।
आपे बीजि आपे ही खाहु। "नानक" हुकमी आवहु जाहु।।

पउड़ीः 21
तीरथ तपु दइआ दतु दानु। जे को पावै तिल का मानु।।
सुणिआ मंनिया मनि कीता भाउ। अंतरगति तीरथि मलि नाउ।।
सभि गुणु तेरे मैं नाही कोई। विणु गुण कीते भगति न होइ।।
सुअसति आथि बाणी बरमाउ। सति सुहाणु सदा मनि चाउ।।
कवणु सुवेला वखतु कवणु। कवणु थिति कवणु वारु।।
कवणि सि रुती माहु कवणु। जितु होआ आकारु।।
वेल न पाईआ पंडती। जि होवै लेखु पुराणु।।
वखतु न पाइओ कादीआ। जि लिखनि लेखु कुराणु।।
थिति वारू ना जोगी जाणै। रुति माहु न कोई।।
जा करता सिरठी कउ साजै। आपे जाणै सोई।।
किव करि आखा किव सालाही। किउ वरनी किव जाणा।।
"नानक" आखणि सभु को आखै। इकदू इकु सिआणा।।
बडा साहिबु बडी नाई। कीता जा का होवै।।
"नानक" जे को आपौ जाणै। अगै गइया न सोहै।।

धर्म आंतरिक स्नान है। यात्रा करते हैं, मार्ग से गुजरते हैं, तन पर, कपड़ों पर धूल जम जाती है, आसान है धो लेना। लेकिन समय में यात्रा करते हैं, तब मन पर धूल जमती है। उतना आसान नहीं है, जितना शरीर को स्वच्छ कर लेना। क्योंकि शरीर बाहर है, धूल भी बाहर है, पानी भी बाहर उपलब्ध है। मन भीतर है, धूल भी भीतर है। भीतर का कोई पानी उपलब्ध करना पड़े।
एक क्षण भी गुजरता है तो भीतर धूल इकट्ठी हो रही है। कुछ न भी करो, खाली भी बैठे रहो, तो भी धूल इकट्ठी हो रही है। अगर एक आदमी चुपचाप बैठा रहे, कुछ काम भी न करे, तो भी चौबीस घंटे के बाद स्नान की जरूरत पैदा हो जाएगी। मन तो चौबीस घंटे कुछ न कुछ कर ही रहा है। मन के न करने की अवस्था तो बड़ी दुर्लभ है। तो मन के हर कृत्य से धूल इकट्ठी हो रही है। और धूल भीतर इकट्ठी हो रही है। फिर तुम कितना ही स्नान बाहर करो। बाहर का जल भीतर की धूल को न धो सकेगा। भीतर का जल खोजना पड़े।
उस जल के संबंध में ही ये सूत्र हैं। और ये सूत्र बड़े कीमती हैं। ठीक
से समझा और भीतर का सरोवर पहचान में आ गया, तो जीवन के रूपांतरण की कुंजी हाथ लग जाती है। और अब तक जितनी कुंजियां तुम्हारे पास हैं, कोई भी लगती नहीं। लग ही जाती तो तुम खुद ही नानक हो जाते। फिर नानक को समझने को कुछ नहीं बचता। कुंजियां तो तुम बहुत रखे हुए हो, उनमें से कोई लगती नहीं। लेकिन अहंकार के कारण तुम यह भी स्वीकार नहीं कर पाते कि मेरी कुंजियां काम नहीं करतीं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक घर में नौकर था। एक दिन उसने अपने मालिक से कहा,
अब बहुत हो गया, आज मुझे आप छुट्टी दे दें। सीमा होती है हर चीज की! और आपको मुझ पर रत्तीभर भरोसा नहीं। अब और नहीं सह सकता इस संदेह की स्थिति को। मालिक ने कहा, क्या कहते हो नसरुद्दीन! भरोसा और तुम पर नहीं? तिजोड़ी की चाबियां तक यहां टेबल पर पड़ी रहती हैं। नसरुद्दीन ने कहा, चाबियां जरूर पड़ी रहती हैं, लगती उनमें से एक भी नहीं।

तुम्हारे पास भी चाबियां कम नहीं हैं, जानकारी बहुत है। और जब जानकारी लग जाती है, तब ज्ञान हो जाती है। और जब तक लगती नहीं, तब तक बोझ है, चाबियां तुम ढोते रहो। पूछना जरूरी है कि उनमें से कोई लगती है? जिंदगी का द्वार खुलता है? प्रकाश आता है? आनंद जन्मता है? किसी अलौकिक के स्वर की ध्वनि सुनायी पड़ती है? कोई मग्नता, कोई धन्यता, कोई ऐसा एक क्षण भी आता है जब तुम धन्यवाद दे सको परमात्मा को कि तूने मुझे पैदा किया, तेरी बड़ी कृपा है, अनुकंपा है?
शिकायत तो अनंत हैं। धन्यवाद एक बार नहीं उठता। उठे भी कैसे? कोई चाबी लगती ही नहीं। इन चाबियों को हटा दो। नानक उस चाबी की बात करते हैं जो लगती है। फिर नानक ही कहते हों ऐसा नहीं, बुद्ध ने भी वही कहा है, महावीर ने भी वही कहा है, जीसस ने भी वही कहा है। बड़े आश्चर्य की बात है कि जो चाबियां लगती नहीं, वे तो तुम ढोते हो; और जो लगती हैं--और लगती हैं कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि एक ही चाबी है, "मास्टर की!" हर ताले को खोल देती है जीवन के। उस "मास्टर की" की चर्चा सनातन से चल रही है। बस, उसको तुम छोड़ कर बाकी चाबियां सब ढोते हो।
क्या कारण होगा? जिन चाबियों को तुम ढोते हो, उनसे तुम्हें अपने को रूपांतरित करने की कोई झंझट नहीं होती। वे लगती ही नहीं हैं। तुम जैसे हो वैसे ही बने रहते हो। खतरा नहीं है। न कुछ खोना है, न कुछ बदलना है। और चाबियां हिलाने का और चाबियों की ध्वनि करने का मजा अलग चलता रहता है। चाबियां भी हैं, यह भी मजा तुम लेते रहते हो, और जीवन को रूपांतरित करने की जो कठिन प्रक्रिया है, उससे भी बच जाते हो।
नानक, बुद्ध, महावीर को तुम सुनते नहीं। क्योंकि उनकी चाबी में खतरा है। वह लगती है। और लगी कि तुम वही न रह सकोगे जैसे तुम हो। और तुमने बहुत कुछ इनवेस्ट कर रखा है। जैसे तुम हो, उसमें तुमने बहुत कुछ दांव पर लगा रखा है। अगर तुम बदले तो तुम्हारा अब तक का सब श्रम व्यर्थ हुआ। अब तक तुमने जो भवन बनाए, वे सब कागज के पत्तों की तरह गिर जाएंगे। अब तक तुमने जो नावें चलायीं, वे सब डूब जाएंगी। और अब तक तुमने जो-जो संजोया मन में, जो-जो सपने देखे, वे सब झूठे सिद्ध होंगे। चाबी के लगते ही तुम्हारा सारा अतीत झूठा सिद्ध होगा।
तुम्हारा अहंकार यह मानने को राजी नहीं होता। तुम्हारा अहंकार यह कहता है, हो सकता है मैं परम ज्ञानी न होऊं, लेकिन ज्ञानी तो हूं ही। हो सकता है, मैंने थोड़ी-बहुत भूलें की हों, लेकिन सभी कुछ गलत किया है, यह तो नहीं हो सकता। थोड़ी-बहुत भूलें मुझ से हुई होंगी, भूलें किससे नहीं होतीं? तुम हजार ढंग से अपने को समझाते हो। टु इर इज ह्यूमन--भूल करना तो मनुष्य का स्वभाव है, भूल तो होती ही है।
लेकिन एक बात तुम कभी नहीं मानते हो कि तुम अज्ञानी हो। भूल होती हैं,
वह कृत्य है। लेकिन तुम अज्ञानी नहीं हो, तुम तो ज्ञानी हो। ज्ञानी से भी भूलें हो जाती हैं। जानकार भी भटक जाता है। होशियार भी कभी गड्ढे में गिर जाता है। आंख वाला भी कभी दीवाल से टकरा जाता है, लेकिन तुम अंधे नहीं हो। इसे थोड़ा ठीक से समझो। तुम जब भी कुछ भूल करते हो, तुम यह कहते हो, यह बुरा काम हो गया। कर्ता को तुम बचा लेते हो, कर्म को तुम दोषी ठहरा देते हो। तुम्हें क्रोध आ गया, तुम कहते हो, बड़ी बुरी बात हुई कि क्रोध आ गया। तुम यह नहीं कहते कि मैं क्रोधी हूं। तुम कहते हो कि क्रोध एक कृत्य है, जो हो गया संयोगवशात। परिस्थिति ऐसी थी, जरूरी था। न करते तो नुकसान होता। दूसरे के हित के लिए करना जरूरी था। तुम यह कभी नहीं कहते कि मैं क्रोधी हूं। तुम कहते हो, कभी-कभी क्रोध हो जाता है, भूल होती है। लेकिन कर्ता को तुम बचाए जाते हो। कर्मों में कहीं-कहीं गलतियां होती हैं, लेकिन कर्ता तो बिल्कुल ठीक है।
वही तुम्हारा अहंकार है। और इसलिए तुम असली चाबी से बचते हो। क्योंकि असली चाबी लगते ही, ताला खुलते ही, जो पहली चीज गिर पड़ती है जीवन से, वह अहंकार है। तुम तत्क्षण ना कुछ हो जाते हो। क्योंकि तुमने अब तक जो कमाया, वह कचरा सिद्ध होता है। और अब तक तुमने जो इकट्ठा किया, वह असार सिद्ध होता है। उसके साथ ही तुम गिर जाते हो। चाबी के लगने का अर्थ है, तुम मिटे। और इसलिए तुम असली चाबी से बचते हो।

रवींद्रनाथ ने एक बहुत मधुर कविता लिखी है और बड़ी अर्थपूर्ण है। लिखा
है कि बहुत-बहुत जन्मों से परमात्मा को खोजता था। न मालूम कितने पंथों और मार्गों पर, न मालूम कितने द्वारों पर दस्तक दी, न मालूम कितने गुरुओं की सेवा की, न मालूम कितने योग-तप किए। और फिर एक दिन अंततः परमात्मा के द्वार पर पहुंच गया, सफल हुआ। कभी-कभी परमात्मा की झलक मिली थी पहले भी, पर झलक मिलती थी किसी दूर तारे के पास। और जब तक मैं वहां पहुंचता, वह जा चुका होता। लेकिन आज तो ठीक उसके घर तक पहुंच गया। तख्ती भी ठीक से पढ़ ली कि उसी का घर है। सीढ़ियां चढ़ गया, बड़ा आनंदित था कि मंजिल पूरी हो गयी। सांकल हाथ में ले ली, खटखटाने को ही था... ।
तभी एक भय मन में समा गया कि अगर द्वार खुल गया तो फिर? फिर क्या करूंगा? और अगर परमात्मा मिल गया तो फिर? फिर क्या करूंगा? अब तक जीवन का एक ही तो लक्ष्य था परमात्मा को पाना। फिर सब लक्ष्य खो जाएगा। और अब तक एक ही तो धुन थी, व्यस्तता थी, वह सब नष्ट हो जाएगी। और अगर परमात्मा मिल गया तो फिर? फिर न कुछ करने को बचा, न कोई भविष्य बचा, न कोई यात्रा बची, न अहंकार के लिए कोई सुविधा बची कि कुछ पाऊं।
भय ने कंपा दिया। चुपचाप सांकल हाथ से छोड़ दी। इतनी धीमे छोड़ी कि कहीं आकस्मिक रूप से बज न जाए। कहीं वह द्वार खोल ही न दे। और फिर जूते उतार लिए पैर से, क्योंकि अब सीढ़ियां उतरना जूते पहने खतरनाक था। जरा सी आवाज, कौन जाने द्वार खुल जाए! तो जूते हाथ में ले कर जो भागा हूं, तो फिर लौट कर नहीं देखा।
और कविता का आखिरी हिस्सा है, कि अब भी उसका घर खोजता हूं। तुम मुझे अलग-अलग रास्तों पर उसे खोजता हुआ पाओगे! और मुझे उसका घर पता है। अब भी पूछता हूं लोगों से कि उसका पता क्या है? और मुझे उसका पता मालूम है। और अब भी खोजता हूं। दूर कहीं चांद-तारों के पास उसकी झलक अब भी मिलती है। लेकिन अब मैं आश्वस्त हूं। मैं जब तक वहां पहुंचता हूं वह कहीं और जा चुका होता है। अब मैं सब जगह खोजता हूं, सिर्फ एक जगह छोड़ कर--जहां उसका घर है। उस जगह भर मैं भूल कर नहीं जाता। उससे भर बचता हूं।
यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। और अगर तुम ठीक से समझोगे तो यही तुम्हारी दशा है। तुम यह भूल कर मत कहना कि परमात्मा का तुम्हें पता नहीं है। क्योंकि यह हो नहीं सकता। वह सब जगह मौजूद है। यह कैसे हो सकता है कि तुम्हें उसका पता न हो? यह भूल कर मत कहना कि चाबी का तुम्हें पता नहीं है, इसलिए ताला बंद है। चाबी तुम्हें हजारों बार दी गयी है। तुम उसे हमेशा भूल जाते हो। तुम उसे कहीं रखा छोड़ आते हो। तुम अचेतन रूप से बचने की कोशिश कर रहे हो। और अगर यह दुविधा साफ न हो जाए, तो तुम एक हाथ से उसे खोजते हो, दूसरे हाथ से खोते हो। एक पैर उसकी तरफ उठाते हो, दूसरा उसके विपरीत उठाते हो।
तुम खोजने का बहाना भी जारी रखना चाहते हो। क्योंकि उससे भी बड़ी तृप्ति मिलती है कि मैं परमात्मा को खोज रहा हूं। मैं कोई साधारण मनुष्य नहीं हूं। मैं सत्य को खोज रहा हूं, मैं क्षुद्र नहीं हूं। बाजारों में जो धन खोज रहे हैं, उन जैसा नहीं हूं। राजनीति में जो पद खोज रहे हैं, उन जैसा नहीं हूं। मैं सत्य खोज रहा हूं। धर्म खोज रहा हूं। परमात्मा खोज रहा हूं। ये शब्द भी तुम्हारे अहंकार की सजावट हो गए हैं। इनसे भी तुम अपने को सजाते हो, मिटाते नहीं। इनसे भी तुम्हें और रंग आता है। तुम्हारी अस्मिता को और जोड़ मिलता है। तुम छोटे-मोटे आदमी नहीं रह जाते, तुम साधक हो। तुम यात्री हो उस परमात्मा के मार्ग के। जब कि दूसरे लोग क्षुद्रताओं में उलझे हैं। छोटे-मोटे घरों में, छोटे-मोटे धंधों में, छोटे-मोटे ठीकरों में लगे हैं। जब दूसरे लोग क्षुद्र के साथ जुड़े हैं, तुमने विराट से अपना नाता जोड़ने की कोशिश की है।
इसलिए तुम यह भी कहे जाते हो कि मैं उसे खोजता हूं। और भीतर से तुम बचते भी हो। इस द्वंद्व को अगर न समझोगे तो तुम उसे कभी न खोज पाओगे।
यह तो ऐसा है जैसे कोई आदमी मकान बनाए, दिन में बनाए और रात मिटा दे। फिर दूसरे दिन सुबह शुरू कर दे। या एक हाथ से तो ईंट रखे और दूसरे से खींचता जाए। या दो मजदूर लगा ले कि एक तो ईंट जमाए और दूसरा उखाड़े। ऐसे आदमी का भवन कब बन पाएगा? और अनंत जन्मों से तुम बना रहे हो। तुम्हारा भवन

भी बन नहीं पाया है। जरूर कहीं न कहीं कोई बुनियादी ऐसी बात हो रही है, जिसके कारण तुम दो विपरीत काम एक साथ कर रहे हो।
तो तुम झूठी चाबियां लटकाए फिरते हो। उससे ताले खुलते भी नहीं। तुम तीर्थों में स्नान करते हो, उससे मन धुलता भी नहीं। तुम मंदिर में पूजा करते हो, उससे पूजा होती ही नहीं। तुम फूल चढ़ाते हो, अपने को नहीं। तुम दान-दक्षिणा दे देते हो। तुम छोटा-मोटा धार्मिक कृत्य कर लेते हो, और उसकी ओट में तुम अपने को बचा लेते हो।
ध्यान रहे, तुम मिटोगे तो ही शुद्ध हो सकोगे। इसलिए ऐसा जल चाहिए जो तुम्हें मिटा दे। जो तुम्हें बचाए न। उसी जल की चर्चा है। समझने की कोशिश करें।
"यदि हाथ-पैर और शरीर के दूसरे अंगों में धूल भर जाए, तो पानी से धोने
से मैल साफ हो जाता है। यदि मूत्र से कपड़े अशुद्ध हो जाएं, तो साबुन से धो कर उन्हें साफ कर लिया जाता है। वैसे ही यदि बुद्धि पापों से भरी हो, तो वह नाम के प्रेम से, प्रेम के रंग से शुद्ध की जा सकती है।"
भरीए हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह।।
मूत पलोती कपड़ होइ। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ।।
भरीऐ मति पापा के संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि।।
"प्रेम के रंग से... ।"
यह प्रेम शब्द अत्यधिक महत्वपूर्ण है। परमात्मा के बाद प्रेम से ज्यादा महत्वपूर्ण और कोई शब्द नहीं है। इस प्रेम शब्द को थोड़ा समझें। नानक कहते हैं कि प्रेम के रंग में जो रंग जाता है, उसके भीतर के पाप धुल जाते हैं।
प्रेम शब्द तो हम जानते ही हैं। हम कहेंगे, यह भी कोई कुंजी हुई! यह शब्द तो परिचित है। शब्द के परिचय से कुछ भी न होगा। तुमने भाषाकोश से शब्द सीखा है। तुमने जीवन के कोश से नहीं सीखा। और भाषाकोश में प्रेम के अर्थ लिखे हैं। उन अर्थों से प्रेम का कोई संबंध नहीं। जीवन के कोश में जहां तुम्हारे अनुभव से प्रेम उपजता है, तब उसकी जीवंतता और है, उसकी अग्नि और है। जैसे भाषाकोश में लिखा है शब्द, अग्नि; उससे तुम जल न सकोगे। और लिखा है, जल; उससे तुम्हारी प्यास तृप्त न होगी। वैसे ही भाषाकोश में लिखे प्रेम को अगर तुमने समझा, तो तुम्हारे आंतरिक पाप न धुल सकेंगे। प्रेम तो एक अग्नि है। और जैसे सोना निखर जाता है अग्नि से गुजर कर, वही बचता है जो बचने योग्य है, जो बचाने योग्य है, वह जल जाता है जो कचरा था, ऐसे ही प्रेम की अग्नि से गुजर कर तुम में जो व्यर्थ है वह जल जाता है। जो सार्थक है वह बच जाता है। तुम्हारे भीतर जो-जो पाप है वह खो जाता है, जो-जो पुण्य है वह बच जाता है। शुद्ध निखरा हुआ पुण्य तुम हो जाते हो।
तो प्रेम को ठीक से समझ लें। पहली तो बात कि प्रेम और पाप विपरीत होने चाहिए। तभी प्रेम से पाप मिट सकेगा। तुमने कभी इस तरह शायद सोचा न हो कि प्रेम और पाप दुनिया में गहरी से गहरी विरोधी स्थितियां हैं। क्योंकि जब भी तुम पाप करते हो, तभी प्रेम नहीं होता है इसीलिए कर पाते हो। सभी पाप प्रेम के अभाव से पैदा होते हैं। अगर प्रेम हो तो पाप असंभव है।
इसलिए तो महावीर कहते हैं, अहिंसा! अहिंसा का अर्थ है, प्रेम। बुद्ध कहते हैं, करुणा! करुणा का अर्थ है, प्रेम। और जीसस का तो वचन साफ है, लव इज गाड। वह तो कहते हैं, तुम ईश्वर की बात ही छोड़ दो, प्रेम ही परमात्मा है। और संत अगस्तीन से किसी ने पूछा कि मुझे संक्षिप्त में बता दें, सार क्या है धर्म का? पापों से कैसे बचूं? और पाप तो अनेक हैं और जीवन छोटा है! उस आदमी ने बड़ी ठीक बात पूछी। उसने कहा कि जीवन बहुत छोटा है, पाप अनेक हैं। और एक-एक को छोड़ते बैठा रहा तो मुझे भरोसा नहीं कि छूट पाएगा। जीवन चुक जाएगा। तो मुझे कुछ कुंजी ऐसी दे दें कि एक से सब खुल जाए।
तो संत अगस्तीन ने कहा कि फिर अगर एक ही कुंजी चाहिए तो प्रेम। तुम प्रेम करो और शेष की चिंता छोड़ दो। क्योंकि जिसने प्रेम किया उससे पाप न होगा। इसलिए "मास्टर की" है। सभी ताले खुल जाते हैं।
तुम चोरी कर सकते हो, क्योंकि तुम जिसकी चोरी कर रहे हो उसके प्रति तुम्हारे मन में कोई प्रेम नहीं है। तुम किसी की हत्या कर सकते हो, क्योंकि जिसकी तुम हत्या कर रहे हो उसके प्रति तुम्हारे मन में कोई प्रेम

नहीं। तुम धोखा दे सकते हो, बेईमानी कर सकते हो, सिर्फ इसलिए कि प्रेम का अभाव है। समस्त पाप प्रेम की गैर-मौजूदगी में पैदा होते हैं। जैसे प्रकाश न हो तो अंधेरे घर में सांप, बिच्छू, चोर, बेईमान, लुटेरे सभी का आगमन हो जाता है। मकड़ियां जाले बुन लेती हैं। सांप अपने घर बना लेते हैं। चमगादड़ निवास कर लेते हैं। रोशनी आ जाए, सब धीरे-धीरे विदा होने लगते हैं।
प्रेम रोशनी है। और तुम्हारे जीवन में प्रेम का कोई भी दीया नहीं जलता, इसलिए पाप है। पाप के पास कोई विधायक ऊर्जा नहीं है। कोई पाजिटिव एनर्जी नहीं है। पाप सिर्फ नकारात्मक है। वह सिर्फ अभाव है। तुम कर पाते हो, क्योंकि जो तुम्हारे भीतर होना था वह नहीं हो पाया।
थोड़ा समझें। तुम क्रोध करते हो, और सारे धर्म-शास्त्र कहते हैं क्रोध
मत करो। लेकिन अगर तुम्हारी जीवन-ऊर्जा का बहाव प्रेम की तरफ न हो तो तुम करोगे भी क्या? क्रोध करना ही पड़ेगा। क्योंकि क्रोध, ठीक से समझो तो वही प्रेम है, जो मार्ग नहीं खोज पाया। वही ऊर्जा जो फूल नहीं बन पायी, कांटा बन गयी है। प्रेम है सृजन। और अगर तुम्हारे जीवन में सृजनात्मकता, क्रिएटीविटी न हो पाए, तो तुम पाओगे कि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा विध्वंसात्मक हो गयी, डिस्ट्रक्टिव हो गयी।
तुम्हारे संतों में और तुम्हारे शैतानों में जो फर्क है, वह इतना ही
है कि एक की जीवन-ऊर्जा विध्वंस बन गयी है और एक की जीवन-ऊर्जा सृजन बन गयी है। तो जो आदमी भी सृजन कर सकता है, वह शैतान नहीं हो सकता। और जो आदमी भी सृजन नहीं करता, वह लाख अपने को समझाए कि संत है, वह संत नहीं हो सकता। क्योंकि ऊर्जा का क्या होगा? जीवन-शक्ति है, उस शक्ति का तुम क्या करोगे? कुछ होना चाहिए। अगर तुम प्रेम करने लगो तो तुमने उसी शक्ति के लिए नयी नहरें खोद दीं। अगर तुम्हारे जीवन में कहीं प्रेम न हो तो तुम्हारी सारी जीवन-शक्ति क्या करेगी? तोड़ेगी, फोड़ेगी, मिटाएगी। अगर तुम बनाने में न लगा सके तो मिटाने में लगोगे। पुण्य जीवन-ऊर्जा की विधायक स्थिति है, पाप नकारात्मक। पाप से सीधा संघर्ष करने की कोई भी जरूरत नहीं है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, क्रोध बहुत है, क्या करें? मैं उनसे कहता हूं, क्रोध का तो तुम विचार ही मत करो। क्योंकि तुम जितना विचार करोगे क्रोध का, क्रोध को उतनी ही ऊर्जा मिलेगी। जिस चीज का हम विचार करते हैं, उसी तरफ शक्ति बहने लगती है। शक्ति के बहने का ढंग विचार है। विचार नहर की तरह है। तुम जिस तरफ ध्यान देते हो, उसी तरफ तुम्हारा जीवन बहने लगता है। जैसे हमने एक तालाब के पास एक नहर खोद दी, उस नहर से तालाब का पानी हम खेत में ले जाने लगे। जीवन की जो ऊर्जा है, ध्यान उसके लिए नहर है। तुम जिस तरफ ध्यान देते हो, उसी तरफ जीवन की धारा बहने लगती है। गलत ध्यान हुआ, गलत तरफ बहने लगेगी। ठीक ध्यान हुआ, ठीक तरफ बहने लगेगी। प्रेम, ठीक ध्यान का नाम है।
और नानक कहते हैं, जिस दिन तुम्हारा प्रेम परमात्मा के नाम की तरफ बहेगा, रंग गए तुम! फिर धुल जाओगे। और फिर अतीत के पाप से ही नहीं धुल जाओगे, भविष्य की संभावना से भी धुल जाओगे। इसके पहले कि गंदे होओ, धुले रहोगे। तुम सद्यस्नात हो जाओगे। तुम प्रतिपल नहाए हुए होओगे।
इसलिए जब तुम कभी किसी ज्ञानी के पास जाओगे तो एक सद्यस्नात प्रतीति तुम्हें होगी। जैसे वह प्रतिपल नहाया हुआ है। जैसे अभी-अभी नहा कर निकला हुआ है। एक वैसी ताजगी, जो सुबह की ओस के पास प्रतीत होती है, तुम्हें संत के पास होगी। और उसका कारण सिर्फ इतना है कि धूल इकट्ठी ही नहीं होती। प्रेम के अभाव में धूल इकट्ठी होती है। और प्रेम से उसे धोया जा सकता है। तो प्रेम के संबंध में पहली बात कि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा विध्वंस न बने। क्योंकि विध्वंस ही पाप है। क्या है पाप? जब तुम कुछ तोड़ते हो, भविष्य में कुछ बनाने के ख्याल से नहीं, सिर्फ तोड़ने में ही रस लेने के लिए। क्योंकि तोड़ना दो तरह का हो सकता है। एक आदमी मकान गिराता है, ताकि नया बनाया जा सके। वह तोड़ना नहीं है। वह तो बनाने की प्रक्रिया का अंग है। जब तुम कुछ तोड़ते हो, सिर्फ तोड़ने के लिए, तब पाप हो जाता है।
समझो, तुम्हारा छोटा लड़का है। तुम उसे कभी चांटा भी मारते हो, लेकिन
वह चांटा पाप नहीं है। अगर वह प्रेम से मारा गया है, तो सृजनात्मक है। वह उस बच्चे को मिटाने के लिए नहीं है, वह उस बच्चे को बनाने के लिए है। तुमने

भरपूर प्रेम से मारा है। तुमने मारा ही इसलिए है कि तुम प्रेम करते हो। और अगर प्रेम न होता तो तुम फिक्र ही नहीं करते। भाड़ में जाओ! जो करना हो, करो। एक उपेक्षा होती है कि ठीक है! जहां जाना हो, जाओ। जो करना हो, करो। एक उदासी होती है। लेकिन तुम प्रेमपूर्ण हो, इसलिए तुम बच्चे को हर कहीं नहीं जाने दे सकते। वह आग में गिरना चाहे तो आग में नहीं गिरने दोगे। तुम उसे रोकोगे। तुम उसे मार भी सकते हो। लेकिन उस मारने में पाप नहीं है, उस मारने में पुण्य है। क्योंकि सृजन हो रहा है। तुम कुछ बनाना चाहते हो।
लेकिन तुम एक दुश्मन को मारते हो। चांटा वही है, हाथ वही है, ऊर्जा वही है। लेकिन जब तुम दुश्मन के भाव से मारते हो, तो तुम कुछ बनाने को नहीं मारते, तुम कुछ मिटाने को मारते हो। पाप हो गया! कृत्य पाप नहीं होते। तुम्हारे भीतर की दृष्टि अगर विधायक है, तो कोई कृत्य पाप नहीं है। अगर तुम्हारी दृष्टि विध्वंसात्मक है, तो सभी कृत्य पाप हैं।
सूफी कहानी है। एक गांव में एक सूफी आया। उसे किसी यात्रा पर जाना था। पहाड़ों में छिपा हुआ एक छोटा सा मंदिर था, जिसकी वह तलाश कर रहा था। तो उस सूफी फकीर ने गांव के लोगों से पूछा एक चाय घर के सामने जा कर कि इस गांव में सबसे सच्चा आदमी कौन है? और सबसे झूठा आदमी कौन है? गांव के लोगों ने बता दिया। छोटे गांव में सभी को सभी का पता होता है कि सबसे झूठा आदमी कौन है, सबसे सच्चा आदमी कौन है।
वह सूफी सबसे सच्चे आदमी के पास गया पहले। और उसने पूछा कि मैं उस छिपे हुए मंदिर की तरफ जाना चाहता हूं, जिसकी चर्चा शास्त्रों में सुनी है। अगर तुम्हें मार्ग पता हो तो सबसे सुगम मार्ग क्या है, वह मुझे बता दो। तो उसने कहा, सबसे सुगम मार्ग पहाड़ों से ही हो कर जाता है। और इस-इस विधि से तुम चलो, लेकिन पहाड़ों से गुजरना होगा।
वह आदमी फिर सब से झूठे आदमी के पास गया। और बड़ा हैरान हुआ। क्योंकि
उस झूठे आदमी से भी उसने पूछा, तो उसने कहा कि सबसे सुगम मार्ग पहाड़ों से गुजरता है। और यह-यह मार्ग है और तुम्हें इस-इस भांति जाना होगा। दोनों के उत्तर समान थे। तब वह बड़ा हैरान हुआ। तब उसने गांव में जा कर तलाश की कि यहां कोई सूफी तो नहीं है! कोई फकीर तो नहीं है!
ध्यान रखना, सच्चा आदमी, झूठा आदमी दो छोर हैं। और जब कोई आदमी संतत्व
को उपलब्ध होता है तो दोनों के पार होता है। अब यह बड़ी मुश्किल में पड़ गया कि किसकी मानूं? और उसने सोचा था कि झूठा आदमी विपरीत बात कहेगा। लेकिन पापी, पुण्यात्मा दोनों ने एक ही उत्तर दिया, अब कौन सही है?
तो वह एक सूफी फकीर का पता लगा कर उसके पास गया। उस फकीर ने कहा, दोनों
ने एक सा उत्तर दिया है, लेकिन दोनों की नजर अलग-अलग है। सच्चे आदमी ने इसलिए तुम्हें कहा कि तुम पहाड़ से हो कर जाओ... । एक मार्ग नदी से हो कर भी जाता है, वह उसे पता है। लेकिन न तो तुम्हारे पास नाव है जिससे तुम यात्रा कर सको, और न नाव से यात्रा करने के अन्य साधन और सामग्री तुम्हारे पास है। फिर तुम्हारे पास यह गधा भी है जिस पर तुम सवार हो। यह पहाड़ पर तो सहयोगी होगा, नाव में उपद्रव होगा। इसलिए तुम्हारी पूरी स्थिति को सोच कर उसने कहा कि तुम पहाड़ से जाओ। सुगम मार्ग तो नाव से है। लेकिन तुम्हारी स्थिति देख कर सुगम मार्ग पहाड़ से बताया गया।
और झूठे आदमी ने इसलिए पहाड़ से कहा, ताकि तुम मुसीबत में पड़ो। सुगम मार्ग तो नाव से है, नदी से है, और झूठे आदमी ने इसलिए कहा है कि पहाड़ से जाओ, ताकि तुम मुसीबत में पड़ो। वह तुम्हें सताना चाहता है। उत्तर एक से हैं, दृष्टि भिन्न है।
कृत्य भी एक से हो सकते हैं। इसलिए कृत्यों से कुछ तय नहीं होता। अंतर्भाव से तय होता है। इसलिए तो बेटे को बाप मार देता है, इसका कोई हिसाब नहीं रखा जाता। मां बेटे को मार देती है, इसका कोई हिसाब नहीं रखा जाता। सच तो यह है कि मनस्विद कहते हैं, जिस मां ने अपने बेटे को कभी नहीं मारा, उस मां और बेटे के बीच कभी कोई गहरा संबंध न बन सकेगा। क्योंकि आत्मीयता ही नहीं बन सकी। अगर तुम बेटे को मारने से डरते हो, तो तुम उसे अपना ही नहीं मानते। फासला है। जो बाप बेटे की हर इच्छा पर झुक जाएगा, बेटा उसे कभी माफ नहीं कर सकेगा। क्योंकि जिंदगी में वह पाएगा कि बाप ने उसे बरबाद कर दिया। क्योंकि बेटा तो अनुभवी नहीं है। इसलिए उसकी मांगों का कोई बहुत अर्थ

नहीं है। बाप को सोचना ही पड़ेगा कि कौन सी मांग ठीक है और कौन सी गलत। वह ज्यादा अनुभवी है और अगर प्रेम करता है बेटे को तो वह अपने अनुभव से तय करेगा, बेटे की मांग से नहीं। और अगर किसी बाप ने बेटे को पूरी स्वतंत्रता दे दी, तो बेटा कभी क्षमा नहीं कर पाएगा।
इसलिए तो पश्चिम में बेटे बाप को क्षमा नहीं कर पा रहे हैं। और पश्चिम में बाप ने जितनी स्वतंत्रता बेटे को दी है, दुनिया में कभी नहीं दी गयी थी। पिछले सौ वर्षों के विचारकों ने यही समझाया कि बेटों को पूरी स्वतंत्रता दो। और उसका परिणाम यह हुआ कि बेटे और बाप के बीच इतनी बड़ी खाई पैदा हो गयी है कि उसे पाटना मुश्किल है। पुराने जमाने में बेटे बाप से डरते थे, पश्चिम में बाप बेटों से डर रहे हैं। और पुराने जमाने में बेटे बाप को अंत तक श्रद्धा देते थे। और नए पश्चिम में रत्तीभर श्रद्धा का भाव नहीं है, प्रेम का भाव नहीं है। और कारण क्या है? कारण यह है कि बेटा एक न एक दिन पाएगा कि बाप ने मुझे बरबाद किया। उसे रोकना था। अगर मैं गलत कर रहा था तो उसे रोकना था। अगर मैं भटक रहा था तो उसे रोकना था। क्योंकि वह अनुभवी था, मैं गैर-अनुभवी था। मेरी बात क्यों सुनी? उसे झुकना ही नहीं था। यह बेटा अनुभव करेगा।
इसे ध्यान रखना। क्योंकि प्रेम चिंता करेगा। दूसरे का जीवन शुभ हो, सुंदर हो, सत्य हो, महिमा को उपलब्ध हो। उपेक्षा का अर्थ ही है कि कोई आत्मीयता नहीं। जो भी होना हो, हो। हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। संयोग की बात है कि तुम बेटे हो। संयोग की बात है कि मैं पिता हूं। अन्यथा कुछ लेना- देना नहीं है। तो पश्चिम में अंतःसंबंध गिर गए हैं।
प्रेम भी मार सकता है, क्योंकि प्रेम इतना सबल है। और प्रेम इतना आस्थावान है कि विध्वंस से भी सृजन को ला सकता है। लेकिन एक बात ध्यान रखनी जरूरी है। सृजन हमेशा लक्ष्य होगा। विध्वंस अगर जरूरी है, तो हमेशा विधि होगी।
गुरु तो शिष्य को बिल्कुल ही मारता है। मार ही डालता है। कोई बाप इतना नहीं मार सकता। क्योंकि बाप की चोटें तो ऊपर-ऊपर होंगी, शरीर पर होंगी। जैसे पानी शरीर का मैल धोता है, वैसे बाप शरीर को, जीवन को ठीक करेगा। उसकी चोट ऊपर-ऊपर होगी। गुरु तो भीतर मारेगा। गहरी चोट करेगा। जहां तक तुम्हें पाएगा, वहां तक छेदेगा। वह तुम्हारे अहंकार को गला कर ही रहेगा। और जब तक तुम ऐसा गुरु न पा लो, तब तक समझना कि जिसे तुमने पा लिया है, उसे तुम माफ न कर सकोगे। आज नहीं कल तुम पाओगे, उसने तुम्हारा जीवन, तुम्हारा समय नष्ट किया है।
प्रेम का लक्ष्य है सृजन--एक बात। और जब तुम सृजनात्मक होते हो जीवन-संबंधों में, तुम पाप नहीं कर सकते। और जब मैं प्रेम करता हूं तो पाप कैसे संभव है? प्रेम धीरे-धीरे फैलता जाएगा तो तुम पाओगे, मैं ही हूं सभी के भीतर छिपा हुआ। किसकी चोरी करूं? किसको धोखा दूं? किसकी जेब काटूं! क्योंकि जितना तुम्हारा प्रेम बढ़ेगा उतना ही तुम पाओगे कि ये सारी जेबें अपनी ही हैं। और इधर मैं किसी को नुकसान पहुंचाता हूं, वह नुकसान अंततः मुझे ही पहुंच जाता है।
जीवन एक प्रतिध्वनि है। प्रेम करने वाले को पता चलता है कि जीवन एक प्रतिध्वनि है। तुम जो करते हो वह तुम पर ही बरस जाता है। जितना तुम्हारा प्रेम बढ़ता है, उतना तुम्हें यह साफ होने लगता है कि यहां पराया कोई भी नहीं है। जिस व्यक्ति से तुम्हारा प्रेम हो जाता है, उससे परायापन मिट जाता है।
तुम अपनी पत्नी को दुख न पहुंचाना चाहोगे। क्योंकि उसे पहुंचाया गया दुख अंततः तुम्हें ही पहुंचाया गया दुख सिद्ध होता है। वह दुखी होती है तो तुम दुखी होते हो। तुम चाहोगे, वह सुखी रहे। क्योंकि वह जितनी सुखी होती है उतनी तुम्हारे सुख की संभावना बढ़ जाती है। तब तुम पाओगे कि दूसरे को दिया गया दुख तुम्हें भी दुखी करता है। दूसरे को दिया गया सुख तुम्हें भी सुखी करता है।
हालांकि हम बिल्कुल उलटी भाषा में सोचते हैं। हम सोचते हैं, अपने को सुख दो और दूसरे को दुख दो। शायद इससे हमारा सुख बढ़ेगा। तुम आखिर में पाओगे कि तुम दुख ही दुख से भर गए। क्योंकि जो तुम दूसरे को देते हो वही

लौटता है। तुमने अगर सबके लिए कांटे बोए हैं, तो तुम आखिर में पाओगे कि तुम्हारा पूरा जीवन कांटों से भर गया है। और तुमने अगर फिक्र ही नहीं की कि दूसरे क्या कर रहे हैं, तुम फूल बोते गए, तो आखिर में तुम पाओगे कि जो तुमने बोया है वही तुम काटोगे। जो दूसरों ने बोया है, उनकी फसलें उनके लिए। लेकिन हम उलटा चलते हैं।
एक महिला मुझसे पूछने आयी थी। वह पति को तलाक देना चाहती है। उसने जो बात पूछी वह मुझे भूलती नहीं। उसने मुझसे पूछा कि क्या तलाक देने की ऐसी भी कोई तरकीब है कि मेरे पति को इससे खुशी न मिले? वह जानती है भलीभांति कि तलाक देने से खुशी मिलेगी। क्योंकि उसने काफी सताया है पति को। अब वह यह भी इंतजाम करना चाहती है कि तलाक भी हो, तो भी इंतजाम ऐसा हो कि पति को खुशी न मिल पाए।
हम साथ हो कर भी दुख देना चाहते हैं, दूर हो कर भी दुख देना चाहते हैं। ज.ुडे हों तो भी दुख देना चाहते हैं, अलग हो जाएं तो भी दुख देना चाहते हैं।
लेकिन ध्यान रखें, जब तुम इतना दुख देना चाहोगे तो तुम्हारी दुख के प्रति जो इतनी आतुरता है, तुम्हारा दुख पर जो इतना ध्यान है, वह धीरे-धीरे तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर दुख का घाव इसी ध्यान से निर्मित होता जाएगा। इसको ही तो हमने कर्म की जीवन-पद्धति कहा है, जीवन का नियम कहा है। कर्म का कुल इतना ही अर्थ है कि तुम जो करते हो, अंततः तुम्हीं को मिल जाता है। देर-अबेर हो सकती है। इसलिए तुम वही करना, जो तुम चाहते हो कि तुम्हें मिले। तुम अगर इतने नर्क में खड़े हो तो किसी और के कारण नहीं। जन्मों- जन्मों में जो तुमने किया है, उसका फल है।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, आशीर्वाद दे दें कि जीवन में सुख
हो जाए।
अगर आशीर्वादों से सुख होता होता, तो एक आदमी सभी को सुखी कर देता। क्योंकि आशीर्वाद देने में क्या कंजूसी? इतना आसान नहीं है। तुमने दुख बोया है, मेरे आशीर्वाद से कैसे कटेगा? तुम मुझसे समझ लो। आशीर्वाद मत मांगो। क्योंकि आशीर्वाद तो बेईमानी का ढंग है। दुख तुमने दिया है न मालूम कितने लोगों को। तुमने दुख बोया है सब तरफ। अब तुम उसकी फसल काटने के वक्त आशीर्वाद मांगने आ गए! और तुम्हारे ढंग से ऐसा लगता है कि जैसे अगर तुम्हें दुख मिल रहा है, तो मैं आशीर्वाद नहीं दे रहा हूं इसलिए दुख मिल रहा है। किसी के आशीर्वाद से तुम्हारा दुख न कटेगा। किसी के आशीर्वाद से तुम्हारी समझ बढ़ जाए तो काफी। किसी के आशीर्वाद से तुम में प्रेम का बीज आ जाए तो काफी। पाप तो प्रेम से कटेगा। और दुख तो तुम जब दूसरों के लिए सुख बोने लगोगे तब कटेगा।
नानक कहते हैं, बुद्धि पापों से भरी हो तो वह नाम के प्रेम से ही शुद्ध
की जा सकती है।
और जब एक व्यक्ति से तुम प्रेम करते हो, तो उसे दुख देना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि उसका सुख तुम्हारा सुख, उसका दुख तुम्हारा दुख। उसके जीवन और तुम्हारे बीच की सीमा टूट गयी। तुम एक-दूसरे में बहते हो। जब ऐसी ही घटना किसी व्यक्ति के और परमात्मा के बीच घटती है, तो उसका नाम प्रार्थना, आराधना, पूजा, भक्ति। वह प्रेम का अंतिम स्वरूप है।
और जब तुम एक व्यक्ति को सुख दे कर इतने सुखी हो जाते हो, और जब तुम एक व्यक्ति को दुख दे कर इतने दुखी हो जाते हो, तो परमात्मा से भी तुम्हारे दो संबंध हो सकते हैं। एक तो प्रेम का, तब तुम स्वर्ग में हो जाओगे। और एक अप्रेम का, तब तुम नर्क में गिर जाओगे।
परमात्मा का अर्थ है, समस्त, दि टोटैलिटी। यह जो सारा विस्तार है, इस सारे विस्तार के साथ इस भांति प्रेम, जैसे यह एक व्यक्ति हो। और इस प्रेम में तो तुम्हारे सारे पाप बह जाएंगे। क्योंकि यह प्रेम तो तुम्हें सबके ही प्रेम में गिरा देगा। तुम किसे धोखा दोगे? तुम जहां भी धोखा देने जाओगे, उसी को पाओगे झांकता हुआ। तुम जिस आंख में भी झांकोगे, वहीं परमात्मा को बैठा हुआ पाओगे।
भक्ति बड़ी क्रांतिकारी प्रक्रिया है। भक्ति का अर्थ है, अब उसके सिवाय कोई भी नहीं। और तब तुम्हारा जीवन अनायास सरल हो जाएगा। क्योंकि अब पाप करने को न बचा। मिटाना किसको है? धोखा किसे देना है? छीनना किससे है?

तो भक्ति से तुम यह अर्थ मत समझना कि मंदिर में तुम पूजा कर आते हो; कि गुरुद्वारे में जा कर तुम जपुजी का पाठ कर लेते हो; कि तुम यह मत समझना कि रोज उठ कर तुम जोर से जपुजी यांत्रिक रूप से दोहरा लेते हो; कि नमाज पढ़ लेते हो। इन सबसे कुछ भी न होगा। क्योंकि फिर तुमने झूठी चाबी बना ली। असली चाबी का तो अर्थ ही यह है कि अब मैं अनंत के प्रेम में गिर गया। अब इस जगत की रत्ती-रत्ती मेरा प्रेम-पात्र है। इंच-इंच मेरी प्रेयसी है या मेरा प्रेमी है। पत्ते-पत्ते पर उसी का नाम है और आंख-आंख में उसी की झलक है। सभी कुछ उसका है। सभी तरफ उसे मैं पाता हूं।
अब तुम जिस ढंग से जीओगे--अगर परमात्मा सब तरफ तुम पाते हो--उस ढंग का नाम भक्ति है। वह तुम्हारे जीवन की पूरी शैली बदल देगी। तुम उठोगे और ढंग से। तुम बैठोगे और ढंग से। क्योंकि वह सब जगह मौजूद है। तुम बोलोगे और ढंग से, क्योंकि तुम जिससे भी बोलोगे वही वह है। तुम कैसे गाली दे सकोगे? तुम कैसे निंदा कर सकोगे? तुम कैसे किसी का अपमान कर सकोगे? तुम कैसे अपने को दूसरे की सेवा से बचा सकोगे? क्योंकि सभी चरणों में वही छिपा है।
और अगर यह बोध तुम में गहरा हो जाए, इसको नानक कहते हैं, नाम का रंग चढ़ जाना। तुम पर एक मस्ती छा जाएगी। तुम्हारे पास कुछ भी न होगा और सब कुछ मालूम पड़ेगा। तुम बिल्कुल अकेले होओगे और सारा जगत तुम्हारे साथ होगा। अस्तित्व और तुम्हारे बीच तालमेल आ गया। अस्तित्व और तुम्हारे बीच तारी लग गयी। अस्तित्व और तुम्हारे बीच संबंध जुड़ गया।
नानक कहते हैं, ऐसा प्रेम ही पापों को काट सकता है।
अन्यथा तुम कुछ भी करो--पूजा करो, पाठ करो, यज्ञ करो, मंदिर बनाओ, मस्जिद बनाओ-- तुम कुछ भी करो, तुम्हारे भीतर मूल-सूत्र नहीं है।
एक ट्रेन में मैं सफर कर रहा था। और एक औरत कोई नौ-दस बच्चों को लिए हुए सफर कर रही थी। वे बच्चे बड़ा उपद्रव मचा रहे थे। इधर से उधर दौड़ रहे थे, लोगों का सामान गिरा रहे थे। पूरे कमरे को उन्होंने अराजकता बना रखा था। आखिर एक आदमी से नहीं रहा गया। क्योंकि पहले उन बच्चों ने उसकी पेटी गिरा दी, फिर उसका अखबार फाड़ डाला। तो उसने उससे कहा कि बहन जी, इतने बच्चों को साथ ले कर सफर न किया करें तो अच्छा। आधों को घर छोड़ आया करें। उस स्त्री ने बड़े क्रोध से उस आदमी की तरफ देखा और कहा, क्या समझा है? क्या तुम मुझे बेवकूफ समझते हो? आधों को घर ही छोड़ आयी हूं।
समझ का सूत्र न हो, तो तुम कितने ही घर छोड़ आओ, क्या फर्क पड़ने का है?
और जब बीस बच्चों को पैदा करते वक्त समझ काम नहीं आयी, तब छोड़ते वक्त कहां से आ जाएगी?
हजार पाप हैं। पुण्य तो एक ही है। हजार पुण्य नहीं हैं, पुण्य तो एक ही है। हजार तरह की बीमारियां हैं, स्वास्थ्य तो एक ही है। स्वास्थ्य थोड़े ही हजार तरह का होता है। कि तुम अपने ढंग से स्वस्थ, मैं अपने ढंग से स्वस्थ। बीमार हम अलग-अलग हो सकते हैं, कि तुम टी.बी. के बीमार, कि कोई कैंसर का बीमार, कि कोई कुछ और का बीमार। बीमारियों में भेद हो सकता है, बीमारियों में मौलिकता हो सकती है, निजीपन हो सकता है। बीमारियों पर तुम्हारे हस्ताक्षर हो सकते हैं। क्योंकि बीमारियां अहंकारों का हिस्सा हैं। अहंकार अलग-अलग, उनकी बीमारियां अलग-अलग। लेकिन पुण्य तो एक है। स्वास्थ्य तो एक है। क्योंकि परमात्मा एक है। उस संबंध में तुम अलग-अलग नहीं हो सकते।
वह क्या है स्वास्थ्य, जो एक है? वह है प्रेम का भाव। और धीरे-धीरे उसमें रमते जाना है। उठो ऐसे जैसे प्रेमी मौजूद है। अकेले कमरे में भी तुम ऐसे ही प्रवेश करो जैसे परमात्मा मौजूद है।
एक सूफी फकीर हुआ जुन्नैद। वह अपने शिष्यों को कहता था, भीड़ में जाओ
तो ऐसे जाना जैसे तुम अकेले हो। और जब अकेले में जाओ तो ऐसे जाना जैसे कि परमात्मा चारों तरफ मौजूद है।
ठीक कहता है। क्योंकि भीड़ में अगर तुम अपना अकेलापन याद रख सको तो परमात्मा की याद रहेगी; नहीं तो भीड़ छा जाएगी। तुम भीड़ में भटक जाओगे। और एकांत में अगर तुम परमात्मा की याद न रख सको, तो अपने में भटक जाओगे। दो खतरे हैं। या तो दूसरे में भटक जाओ या अपने में भटक जाओ। या तो भीड़ में, या

खुद में। और परमात्मा दोनों के पार है। और अगर तुम यह याद रख सको कि भीड़ में मैं अकेला हूं और अकेले में वह मौजूद है, तो तुम कभी भी न खोओगे।
नानक कहते हैं कि नाम के प्रेम में जो रंग गया, वह भीतर से शुद्ध हो गया। उसने अंतरंग स्नान कर लिया।
"कहने से न तो कोई पुण्यात्मा होता है न पापी।"
तुम कितना ही सोचते रहो और तुम कितना ही विचार करते रहो और तुम कितना
ही कहते रहो कि मैं कोशिश कर रहा हूं पुण्यात्मा होने की। कहने से कुछ भी नहीं होता।
"जो-जो कर्म हम करते हैं वे लिख लिए जाते हैं। मनुष्य स्वयं ही बोता है
और स्वयं ही खाता है।"
सिर्फ कहने से कुछ न होगा, सोचने से कुछ न होगा। क्योंकि बड़े मजे की बात है कि पुण्य के संबंध में तुम सदा सोचते हो और पाप के संबंध में तुम क्षणभर नहीं सोचते; करते हो। अगर कोई तुमसे कहे कि जब क्रोध आए, तो आधा घड़ी रुक जाना, फिर करना। तो तुम कहोगे, यह कैसे हो सकता है? जब क्रोध आता है तो रुकने का सवाल ही नहीं रह जाता। रुकने वाले का पता ही नहीं रह जाता, रोकने की बुद्धि खो जाती है। जब क्रोध होता है तब हम होते ही कहां? क्रोध तो उसी वक्त करते हैं हम, कभी पोस्टपोन नहीं करते।
लेकिन अगर कोई कहे कि ध्यान। तो तुम कहते हो, आज समय नहीं, कल। फिर अभी जल्दी भी क्या है? जीवन इतना पड़ा है। और ध्यान इत्यादि तो जीवन के अंत में करने की बातें हैं, जब मौत करीब आने लगती है। और मौत तुम्हें कभी भी नहीं लगती कि करीब आएगी, मरते हुए आदमी को भी नहीं लगती।
एक नेता मर गए। तो मुल्ला नसरुद्दीन व्याख्यान करने गया, उनकी मृत्यु पर, शोक-समारंभ में। उसने बड़ी काम की बात कही। उसने कहा कि देखो, भगवान की कैसी कृपा है! कि हम जब भी मरते हैं, जीवन के अंत में मरते हैं। सोचो, अगर मौत कहीं जीवन के प्रारंभ में या मध्य में आ जाती, तो कैसी मुसीबत होती! सोचो कि मौत अगर जीवन के प्रारंभ में या मध्य में आ जाती, तो कैसा दुख आता! अंत में आती है। बड़ी उसकी कृपा है।
और अंत को हम दूर टालते रहते हैं। अंत कभी आता हुआ मालूम नहीं पड़ता--जब
तक आ ही न जाए। और जब आ जाता है तब दूसरों को पता चलता है, तुम्हें तो पता ही नहीं चलता। तुम तो गए!
तो अगर ठीक से समझो तो तुम कभी मरते ही नहीं। तुम अपनी धारणा में तो जिंदा ही रहते हो। मरने की घटना भी दूसरों को पता चलती है। तुम तो मरते क्षण में भी योजना बनाते रहते हो जीवन की। और कल पर टालते रहते हो। शुभ को हम टालते हैं। अशुभ को हम तत्क्षण करते हैं।
जिस दिन इससे विपरीत हो जाओगे तुम, उसी दिन नाम का रंग लग जाएगा। जिस दिन तुम अशुभ को टालोगे और शुभ को प्रतिक्षण कर लोगे... । जब देने का भाव उठे तो देर मत करना, उसी वक्त दे डालना। क्योंकि तुम अपने पर ज्यादा भरोसा मत करना। क्षण भर बाद तुम्हारा मन हजार तरकीबें खड़ी कर देगा।
मार्क ट्वेन ने लिखा है कि एक सभा में मैं गया। और जो पुरोहित बोल रहा
था, बड़ा अदभुत बोल रहा था। पांच मिनिट सुन कर मुझे हुआ कि मेरे पास जो सौ डालर हैं, आज दान कर जाऊंगा। दस मिनट के बाद--मार्क ट्वेन लिखता है कि-- मुझे भीतर विचार उठने लगा कि सौ डालर जरा ज्यादा हैं, पचास से भी काम चल सकता है।
अब सौ के ख्याल करने से सारा संबंध ही टूट गया। क्योंकि अब भीतर एक अंतरंग वार्तालाप चलने लगा, उसके भीतर। आधा घंटा बीतते-बीतते वह पांच डालर पर आ चुका था। और जब करीब-करीब व्याख्यान तीन चौथाई पूरा हो गया था, तब उसने सोचा कि किसी से कहा थोड़े ही है, किसी को पता थोड़े ही है कि मैं सौ देने की सोचा था! और कौन देता है सौ? एक डालर भी लोग नहीं देते हैं, लोग पैसे देते हैं। एक डालर से काम चल जाएगा। और जब थाली उसके पास आयी भेंट मांगने के लिए, तो उसने लिखा है कि वह एक डालर तो मेरे खीसे से न निकला, मैंने एक डालर उठा कर अपने खीसे में डाल लिया... कि कौन देखता है? किसको पता चलेगा?
तुम अपने पर ज्यादा भरोसा मत करना! क्योंकि शुभ कठिन है। कभी-कभी किन्हीं क्षणों में तुम उन चोटियों पर होते हो जब शुभ करने की भावना जगती

है। तुमने अगर वह मौका खो दिया तो शायद दुबारा न जगे। शुभ के लिए सोचना ही मत। क्योंकि शुभ का अर्थ ही यह है कि जिसमें सोचने जैसा कुछ भी नहीं है, करने जैसा है। जब तुम देना चाहो, दे देना। जब बांटना चाहो, तब बांट देना। जब त्यागना चाहो, त्याग देना। जब संन्यस्त होना चाहो, हो जाना। क्षणभर मत खोना। क्योंकि कोई भी नहीं जानता वह क्षण दुबारा तुम्हारे जीवन में कब आएगा। आएगा, न आएगा।
और जब बुरा तुम्हारे मन में उठे, तो स्थगित करना। चौबीस घंटे का नियम बना लेना कि किसी को नुकसान पहुंचाना हो, चौबीस घंटे बाद पहुंचाएंगे। जल्दी क्या है? अभी कोई मौत नहीं आयी जा रही है। और आ भी गयी तो कुछ हर्जा नहीं होगा। नुकसान नहीं पहुंचेगा, और क्या होगा?
अगर तुम चौबीस घंटे भी रुक जाओ बुरा करने से, तो तुम बुरा न कर पाओगे। क्योंकि बुरा करने की मूर्च्छा भी क्षण में ही आती है। जिस तरह शुभ करने की जागृति क्षण में आती है, वैसे ही बुरा करने की मूर्च्छा भी क्षण में आती है। अगर तुम थोड़ी देर रुक गए, तो तुम खुद ही पाओगे कि क्या हत्या करनी? हत्यारे को अगर दो क्षण रोक लिया जाए, तो हत्या नहीं होगी। नदी में कोई डूब कर मरने जा रहा है, आत्महत्या करने जा रहा है, तुम जरा हाथ पकड़ कर उसको एक मिनिट रोक लो, बात गयी! क्योंकि कृत्य किन्हीं क्षणों में संभव होता है। और तुम्हारे भीतर मूर्च्छा के क्षण होते हैं, सघन मूर्च्छा के, और सघन जागृति के क्षण भी होते हैं।
जब सघन जागृति का क्षण होता है, तब तुम प्रेम से भरे होते हो, सृजन से।
और जब मूर्च्छा का क्षण होता है, तब तुम बेहोशी से भरे होते हो, विध्वंस से। तब तुम तोड़ डालना चाहोगे, फिर पीछे पछताओगे। पछताने से कोई सार नहीं।
अगर पछताना ही हो तो पुण्य करके पछताना। पाप कर के क्या पछताना? लेकिन तुम हमेशा पाप करके पछताते हो। और पुण्य तो तुम करते ही नहीं, इसलिए पछताने का सवाल ही नहीं उठता।
नानक कहते हैं कि सोचने से कुछ भी न होगा। कहने से कुछ भी न होगा।
शब्दों से पाप और पुण्य का कोई लेना-देना नहीं है। पाप और पुण्य का लेना-देना कृत्यों से है। और परमात्मा के समक्ष तुम्हारा जो हिसाब है, वह तुम्हारे शब्दों का नहीं, तुम्हारे कृत्यों का है। उसके सामने तुम्हारा जो निर्णय है, वह तुमने क्या किया है, तुम क्या हो, उस पर आधारित होगा। तुमने क्या कहा था, क्या पढ़ा था, क्या सोचा था, उससे कोई संबंध नहीं है। तुम्हारे विचार मूल्यवान नहीं हैं। अंतिम निर्णायक बात तुम्हारे कृत्य हैं।
तो नानक कहते हैं, "मनुष्य स्वयं ही बोता है और स्वयं ही खाता है।"
आपे बीजि आपे ही खाहु।
साधारणतः हमारा मन कहता है कि दुख हमें दूसरे दे रहे हैं। साधारणतः हमारा मन कहता है, सफलता तो मैं पाता हूं, असफलता दूसरों की अड़चन की वजह से आती है। शुभ तो मेरे जीवन में मेरी उपलब्धि है और अशुभ दूसरों के द्वारा मेरे जीवन पर आरोपण है। यह बात बिल्कुल ही गलत है। तुम्हारे जीवन में जो भी है, वह तुम्हारे ही कृत्यों कीशृंखला है। शुभ-अशुभ, अच्छा-बुरा, फूल लगें, कांटे लगें, सभी का संपूर्ण दायित्व तुम्हारे ऊपर है।
जिस दिन कोई व्यक्ति इसका अनुभव करता है, टोटल रिस्पांसिबिलिटी, समग्र दायित्व मेरा है, उसी दिन से जीवन में क्रांति शुरू हो जाती है। जब तक तुम दूसरों पर टालते हो, तब तक क्रांति न होगी। क्योंकि अगर दूसरे दुख दे रहे हैं तो तुम क्या करोगे? जब तक सभी दूसरे न बदले जाएं तब तक दुख जारी रहेगा। और सभी दूसरे कब बदले जाएंगे? तो फिर दुख को झेलने के सिवा कोई उपाय नहीं है।
इसलिए धर्म के अतिरिक्त दुख के रूपांतरण की कोई कीमिया नहीं है। जिस दिन तुम जानोगे, मैं अपने ही बोए हुए बीजों की फसल काटता हूं। और जो दुख मैं पा रहा हूं, वह मैंने ही दिया है, फैलाया है, वही अब लौट रहा है... । निश्चित ही, बीज बोने में और फल आने में वक्त लगता है। वक्त लगने के कारण तुम भूल ही जाते हो कि तुमने ये बीज बोए थे, और अब ये फल आने शुरू हो गए। जब फल आते हैं तब तुम बीज बोए थे, यह ख्याल विस्मरण हो गया है। उस विस्मरण के कारण तुम सदा सोचते हो, दूसरे कुछ कर रहे हैं। ध्यान रखना, यहां

कोई दूसरा तुममें चिंतित नहीं है। दूसरे अपने लिए चिंतित हैं। दूसरे अपने कारण परेशान हैं। तुम अपने कारण परेशान हो। और हर आदमी अपने ही कृत्यों की खोल में रहता है। इस बात को जितना तुम ठीक से पहचान लो, उतनी ही गहरी क्रांति संभव हो जाएगी। क्योंकि जैसे ही यह समझ में आता है कि मैं ही जिम्मेवार हूं, कुछ किया जा सकता है।
दो कामः एक कि जो मैंने किया है पीछे, उसे मैं शांति से भोग लूं, उसके भोगने में और नयी अशांति खड़ी न करूं, तो अतीत की निर्जरा हो जाएगी। लेन-देन साफ हो जाएगा।
बुद्ध के ऊपर एक आदमी थूक गया, तो बुद्ध ने थूक पोंछ लिया अपनी चादर से। वह आदमी बहुत नाराज था। बुद्ध के ऊपर थूका तो बुद्ध के शिष्य भी बहुत नाराज हो गए। लेकिन जब वह आदमी चला गया, तो आनंद ने पूछा कि यह बहुत सीमा के बाहर हो गयी बात। और सहिष्णुता का यह अर्थ नहीं है। और इस तरह तो लोगों को प्रोत्साहन मिलेगा। और हमारे हृदय में आग जल रही है। आपका अपमान हम बर्दाश्त नहीं कर सकते।
बुद्ध ने कहा, तुम व्यर्थ ही उत्तेजित मत होओ। यह तुम्हारा उत्तेजित होना, तुम्हारे कर्म कीशृंखला बन जाएगी। मैंने इसे कभी दुख दिया था, वह निपटारा हो गया। मैंने कभी इसका अपमान किया था, वह लेना-देना चुक गया। इस आदमी के लिए ही मैं इस गांव में आया था। यह न थूकता तो मेरी मुसीबत थी। अब सुलझाव हो गया। इससे मेरा खाता बंद हो गया। अब मैं मुक्त हो गया। यह आदमी मुझे मुक्त कर गया है, मेरे ही किसी कृत्य से। इसलिए मैं धन्यवाद करता हूं उसका। और तुम नाहक उत्तेजित मत हो। क्योंकि तुम्हारा तो कुछ लेना-देना नहीं है इसमें। लेकिन अगर तुम उत्तेजित होते हो और तुम उस आदमी के खिलाफ कुछ करते हो, तो तुम एक नयीशृंखला बना रहे हो। मेरीशृंखला तो टूटी और तुम्हारी व्यर्थ बन गयी। तुम बीच में क्यों आते हो? जिन्हें मैंने दुख दिया है, उनसे मुझे उत्तर लेना ही पड़ेगा। और मेरी परिपूर्ण समाप्ति के पूर्व--जिसको वे महापरिनिर्वाण कहते हैं--इसके पहले कि मैं अनंत में पूरी तरह लीन हो जाऊं; व्यक्तियों से, वस्तुओं से, संबंधों में, क्रोध में, अपमान में, घृणा में, मोह में, लोभ में, जो भी नाते-रिश्ते बने हैं, उन सबकी निर्जरा हो जानी जरूरी है। उसको ही हम परममुक्त पुरुष कहते हैं, जिसके सारे कर्मों की निर्जरा हो गयी।
तो एक तो ध्यान रखना कि अतीत में जो किया है, उसे शांत भाव से, संतोष से, परम तृप्ति से, निपटारा समझ कर, प्रसन्नता से पूरा हो जाने देना। नयीशृंखला खड़ी मत करना। तो अतीत से संबंध धीरे-धीरे शांत हो जाता है।
और दूसरी बात है कि नया कुछ मत करना दूसरे को दुख देने के लिए। अन्यथा फिर तुम बंधे हुए चले आओगे। हम अपने ही भीतर अपनी जंजीरों को ढालते हैं। तो पुरानी जंजीरों को तोड़ना है और नयी बनानी नहीं। ये दो बातें ख्याल रखना।
महावीर के दो शब्द बड़े प्रिय हैं। एक शब्द है आस्रव, और एक है निर्जरा। आस्रव का अर्थ है, नए को आने मत देना। और निर्जरा का अर्थ है, पुराने को गिर जाने देना। धीरे-धीरे एक ऐसी घड़ी आएगी कि पुराना कुछ बचेगा नहीं, नया कुछ होगा नहीं; तुम मुक्त हो गए। और जब वैसी दशा आती है तब परम आनंद फलित होता है।
नानक कहते हैं, "मनुष्य स्वयं ही बोता है, और स्वयं ही खाता है। उसके हुक्म से ही आवागमन होता है। तीर्थयात्रा, तप, दया, पुण्य और दान से तिल भर मान मिलता है। लेकिन जो कोई परमात्मा का श्रवण और मनन करता है, उसका मन प्रेमपूर्ण हो जाता है। और आंतरिक तीर्थ में मल-मल कर उसका स्नान हो जाता है।"
तीरथ तपु दइआ दतु दानु। जे को पावै तिल का मानु।।
सुणिआ मंनिया मनि कीता भाउ। अंतरगति तीरथि मलि नाउ।।
"तीर्थयात्रा से, तप से, जप से, पुण्य से, दया से, सेवा से, तिल भर मान मिलता है।"
कोई बड़ी क्रांति घटित नहीं होती, सम्मान मिलता है। और वह सम्मान भी खतरनाक हो सकता है। क्योंकि तुम उस तिल का अपने अहंकार के कारण पहाड़ बना

सकते हो। तुम कह सकते हो, मैंने इतनी तीर्थयात्राएं कीं। मैं हाजी हूं, मैंने हज किया। कि मैंने इतने मंदिर बनाए।
भारत से एक संन्यासी बोधिधर्म चीन गया। चीन का सम्राट उसके पास आया। चीन का सम्राट बौद्ध हो गया था। और उसने सैकड़ों विहार, मठ, आश्रम बनवाए थे।
हजारों शास्त्र छाप कर मुफ्त बांटे थे। लाखों भिक्षुओं को भोजन करवाता था। पहली ही बात उसने बोधिधर्म से पूछी, उसने पूछा कि मैंने इतना पुण्य किया है, इतने मंदिर, इतने तीर्थ निर्मित किए हैं। इतनी बुद्ध की प्रतिमाएं बनायी हैं... ।
उसका बनाया हुआ एक मंदिर अभी है। उसमें दस हजार बुद्ध की प्रतिमाएं हैं। विराट मंदिर बनाए, पहाड़ के पहाड़ खोद डाले। और बड़ा पुण्य किया, लाखों रुपए लुटाए, गरीबों को दान दिया। तो उसने सारी फेहरिस्त बोधिधर्म के सामने कही कि मैंने यह किया, यह किया, यह किया। और उसने तो तिल भी नहीं किया था, पहाड़ ही किया था। और हम तो तिल को पहाड़ बना लेते हैं। तो उसने अगर पहाड़ को पहाड़ की तरह कहा तो कुछ आश्चर्य की बात न थी।
बोधिधर्म चुपचाप खड़ा रहा। अंत में उसने पूछा कि मेरे ये सब पुण्य का क्या फल होगा? बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं। तू महानर्क में पड़ेगा। वह सम्राट तो हैरान हुआ। यह तो भरोसे की ही बात नहीं थी कि पुण्य के कारण और महानर्क में पडूंगा? उसने कहा, क्या कहते हैं आप! होश में हैं? बोधिधर्म ने कहा, पुण्य से तो कोई अड़चन नहीं। लेकिन पुण्य किया, इस भाव से बड़ी अड़चन है। पुण्य हुआ, तू उसे अपने ऊपर मत ले। और अगर तूने यह ख्याल बना लिया कि मैंने किया, तो पुण्य भी व्यर्थ गया। तब औषधि भी जहर हो गयी। औषधि को भी ढंग से पीना पड़ता है, नहीं तो जहर हो जाए। क्योंकि अक्सर औषधियां जहर से तो बनी ही होती हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन को एक डाक्टर ने कहा--पुराने दिनों की बात है--पत्नी
को नींद नहीं आती है, रात बड़बड़ करती है, झगड़ा-झांसा मचाती है, तो उसने कहा, यह ले जाओ दवा, एक चौअन्नी के ऊपर रख कर--तब चौअन्नी चलती थी--जितनी चौअन्नी पर बने, उतनी दवा दे देना।
कोई सात दिन बाद नसरुद्दीन चला जा रहा था, तो डाक्टर ने पूछा कि कहो, पत्नी कैसी है? उसने कहा, बड़ा गजब का काम हुआ। सो ही रही है तब से, उठी ही नहीं। डाक्टर ने कहा कि अभी तक सो रही है सात दिन से? उसने कहा, बड़ी परम शांति है घर में। दवा गजब की थी। उस डाक्टर ने पूछा कि तुमने दवा कितनी दी? तो उसने कहा, घर में चौअन्नी न थी, तो चार अन्नियों पर रख कर--जितनी आपने कही थी, चौअन्नी के बराबर दी--अन्नी थी घर में, चौअन्नी थी नहीं, चार अन्नियों पर रख कर दे दी। परम परम शांति है। गजब की दवा है।
औषधि जहर हो सकती है, उसकी मात्रा है। पुण्य भी जहर हो सकता है, उसकी मात्रा है। ध्यान रखना, अगर पुण्य कृत्य रहे तो ठीक। अगर कृत्य से हटा और कर्ता बन गया, तो खतरनाक मात्रा शुरू हो गयी। और पुण्य कोई इस भाव से करे कि मेरे पापों की निर्जरा होगी तो ठीक, और कोई इस भाव से करे कि पुण्य का अर्जन होगा, तो खतरा है। तिल भर का मान मिल सकता है पुण्य से, लेकिन उसको धर्म मत समझ लेना।
एक बस में मैं मुल्ला नसरुद्दीन के साथ सफर कर रहा था। अचानक चलती बस में वह खड़ा हो गया और उसने जोर से चिल्ला कर कहा, भाइयो! किसी के सुतली में बंधे नोट तो नहीं गिरे? अनेक आवाजें आयीं कि हमारे गिरे, हमारे गिरे, कई लोग खड़े हो गए। उसने कहा, शांति रखो। अभी मुझे केवल सुतली मिली है।
धर्म तो नोट है, पुण्य सुतली है। सुतली पर बहुत मत अकड़ जाना। क्योंकि सुतली से कुछ होता जाता नहीं। नोटों पर बंध जाए तो कीमती हो जाती है। पत्थरों पर बंधी रहे तो क्या मूल्य है उसका? तो पुण्य जब निरअहंकार भाव के साथ बंधता है, तब तो नाव बन जाता है। और जब अहंकार के साथ बंध जाता है तो छाती में पत्थर की तरह लटक जाता है। कई पुण्य में डूब जाते हैं। कुछ पाप में डूबते हैं, कुछ पुण्य में डूब जाते हैं। क्योंकि नाव तो निरअहंकार की उस तरफ ले जाती है।
इसलिए ऐसा भी हुआ है कि कई बार पापी तर गए हैं और पुण्यात्मा डूब गए। क्योंकि पापी कम से कम निरअहंकारी तो हो ही सकता है आसानी से। वह सोचता है, मैं पापी हूं। वह सोचता है, मैं क्या पहुंच सकूंगा उस तक! वह सोचता है, मेरी

आवाज कहां सुनी जा सकेगी! मुझ में कोई तो गुण नहीं। दुर्गुण ही दुर्गुण हैं। अहंकार न हो तो पापी भी तिर जाता है। और अहंकार हो तो पुण्यात्मा भी डूब जाता है।
नानक कहते हैं, तिल भर मान मिल सकता है, लेकिन उसको धर्म मत समझ लेना। धर्म तो तभी शुरू होता है जब कोई परमात्मा का श्रवण और मनन करता है। और जब किसी का मन प्रेमपूर्ण हो जाता है। आंतरिक तीर्थ में तब मल-मल कर स्नान होता है।
"हे परमात्मा, सभी गुण तुझ में हैं, मुझ में कुछ भी नहीं।"
ऐसी भावदशा निरंतर बनी रहनी चाहिए। कहीं अकड़ न आ जाए कि गुण मुझ में हैं। कि मैं त्यागी, कि मैं दानी, कि देखो मैंने यह किया, यह किया, यह किया। वह चीन के सम्राट की अकड़ न आ जाए। नहीं तो बोधिधर्म ठीक कहता है कि महानर्क में पड़ोगे।
"हे परमात्मा, सभी गुण तुझ में हैं, मुझ में कुछ भी नहीं। बिना गुण कर्म के भक्ति नहीं होती।"
तो मैं तो इस योग्य भी नहीं हूं कि तेरी भक्ति कर सकूं। मेरी कोई योग्यता ही नहीं है। इसलिए तो नानक कहते हैं कि उसके प्रसाद से सब मिलता है, हमारी योग्यता क्या है? सभी भक्तों ने वही कहा है। उसकी कृपा से मिलता है, हमारी योग्यता से नहीं।
इस फर्क को ठीक से समझ लें। क्योंकि योग्यता का तो मतलब है, सौदा है।
और योग्यता का तो मतलब है, उसे देना ही पड़ेगा। हम योग्य हैं। न देगा तो हम शिकायत करेंगे। और देगा तो धन्यवाद का कोई कारण नहीं, क्योंकि हम योग्य हैं।
तुम्हारे मन में शिकायत है। वह शिकायत इस बात की खबर है कि तुम समझते
हो तुम योग्य हो और तुम्हें नहीं मिला। भक्त के मन में अहोभाव होता है। क्योंकि वह कहता है, योग्य तो मैं बिल्कुल नहीं हूं और इतना मिला। उसकी सारी दृष्टि दूसरी है। तो कीर्तन-भजन करने से कोई भक्त नहीं होता। जीवन की पूरी दृष्टि दूसरी है। दृष्टि यह है कि मैं योग्य नहीं और फिर भी इतना मिल रहा है। तो भक्त की प्रार्थना धन्यवाद है। तुम्हारी प्रार्थना शिकायत है।
नानक कहते हैं, मुझ में तो कोई गुण नहीं, और बिना गुणकर्म के तो भक्ति
भी नहीं होती। तो मैं भक्ति भी क्या कर सकता हूं? सिर्फ तेरे गुणगान कर सकता हूं।
"हे प्रभु! आप धन्य हैं।"
बस, ऐसा कह सकता हूं। आपकी धन्यता के गीत गा सकता हूं। मुझ में तो कोई
और गुण नहीं है। मैं सिर्फ स्तुति कर सकता हूं। तुम्हारी प्रशंसा का गुणगान कर सकता हूं। योग्यता मेरी कुछ भी नहीं कि मुझे कुछ मिले।
"आप वाणी हैं, आप ब्रह्मा हैं। आपकी सत्ता सदा शोभायुक्त है और सदा मनभावन है, ऐसे मैं तेरे गीत गा सकता हूं। वह कौन सी वेला थी, कौन सा समय था, कौन सी तिथि थी, कौन वार था, कौन सी ऋतु थी, कौन महीना था, जब तुमने आकार लिया? पंडितों को उसका पता नहीं था। यदि होता तो वे पुराणों में जरूर लिख देते। और काजियों को भी उसका पता नहीं था। होता तो वे कुरान में जरूर लिख देते। तिथि और वार योगी भी नहीं जानते कि कब तू निराकार आकार बना। कब तू निर्गुण सगुण बना, कब तू घना हुआ? कब तू संसार बना? किसी को कुछ पता नहीं। तेरे सिवाय किसी को पता हो भी नहीं सकता। जो कर्ता सृष्टि को साजता है, वही सब जानता है।"
और मैं तो बिल्कुल गुणहीन हूं। पंडित नहीं जानते, काजी नहीं जानते, शास्त्रों में तेरी कोई खोज-खबर नहीं मिलती। कौन है तू, कहां है तू, कैसे तूने रूप रखा, कैसे तू आकारित हुआ, कैसे यह सृष्टि निर्मित हुई--ज्ञानियों को पता नहीं है; मैं तो अज्ञानी हूं, मैं क्या कर सकता हूं?
भक्त, क्या है, इसकी चिंता नहीं करता। ज्ञानी इसकी फिक्र करता है कि क्या है, इसका पता लगाना चाहिए। ज्ञानी परमात्मा को उघाड़-उघाड़ कर खोजने की कोशिश करता है। भक्त सिर्फ अहोभाव में आनंदित है। वह कहता है, कैसे पता चलेगा? तेरे अतिरिक्त किसको पता हो सकता है कि यह सब कैसे हुआ! तू ही जानता है। बाकी सब जानने वाले नासमझी में हैं। इसलिए भक्त जानने का कोई दावा

नहीं करता। भक्त का दावा तो सिर्फ प्रेम का है। और ध्यान रखना, ज्ञान का दावा अहंकार का दावा है। प्रेम का दावा निरअहंकार का दावा है।
नानक कहते हैं, "तू ही जानता है। पर मैं तुझे किस प्रकार संबोधित करूं? मुझे तो ठीक संबोधन भी नहीं आता है। किन शब्दों का उपयोग करूं कि भूल न हो जाए? कौन से संबंध उचित होंगे, कौन से संबोधन उचित होंगे, कौन से शब्द तेरे योग्य हैं? मुझे कुछ भी पता नहीं है। किस प्रकार तेरा बखान करूं? कैसे तुझे जानूं? नानक कहते हैं, वर्णन करने के लिए सभी कोई एक से एक बढ़ कर सयाने लोग उसका वर्णन करते हैं। ऐसे तो वर्णन मैंने सुने हैं, बड़े सयाने लोग उसका वर्णन करते हैं।"
लेकिन सभी वर्णन अधूरे हैं। और असली सयाना वही है, जिसने जान लिया कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। उसको हम क्या कह कर कह सकते हैं? हम जो भी कहेंगे, छोटा पड़ जाएगा। हम जो भी कहेंगे, वह ओछा हो जाएगा।
नानक कहते हैं, "वह साहब महान है। उसका नाम महान है। उसी का किया सब होता है। जो कोई अपने आप को कुछ समझता है, वह उसके आगे जा कर शोभा नहीं पाता।"
नानक जे को आपौ जाणै। अगै गइया न सोहै।।
और जिसने भी सोचा कि मैं कुछ हूं, वह उससे चूक जाता है। क्योंकि एक ही
हो सकता है। या तो वह या तुम। या तो मैं, या वह। उस जगत में, उस म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।
रूमी की बड़ी प्रसिद्ध कविता है। प्रेमी ने द्वार पर दस्तक दी। भीतर
से प्रेयसी ने पूछा, कौन? तो उसने कहा, मैं हूं, द्वार खोलो! लेकिन भीतर सन्नाटा हो गया। उसने बार-बार दस्तक दी और कहा कि मैं हूं तेरा प्रेमी! द्वार खोलो। भीतर से अंततः आवाज आयी कि इस घर में दो न समा सकेंगे। यह घर प्रेम का दो को न सम्हाल सकेगा। और फिर सन्नाटा हो गया।
प्रेमी गया वापिस। भटकता रहा वर्षों तक वनों में, तपश्चर्या की, साधना की, प्रार्थना की, पूजा-अर्चना की। उपवास किए। शुद्ध किया स्वयं को। निखारा चित्त को। ज्यादा जागरूक हुआ। समझा स्थिति को। फिर अनेक-अनेक वर्षों के बाद वापस लौटा। उसी द्वार पर फिर दस्तक दी। भीतर से वही सवाल, कौन है? लेकिन इस बार उत्तर बदल गया। इस बार बाहर से आवाज आयी, तू ही है। और रूमी कहते हैं कि द्वार खुल गए।
परमात्मा के द्वार पर अगर तुम कुछ भी हो कर गए--कुछ भी! पुण्यात्मा, त्यागी, संन्यासी, ज्ञानी, पंडित--कुछ भी हो कर तुम गए कि तुम चूक जाओगे। वह द्वार उन्हीं के लिए खुलता है जो ना-कुछ हो कर वहां जाते हैं। प्रेम का द्वार उन्हीं के लिए खुलता है जो अपने को मिटा कर जाते हैं।
साधारण जीवन में भी प्रेम तभी खुलता है जब तुम खो जाते हो। जब तुम डूब जाते हो। जब मैं की आवाज बंद हो जाती है। और जब मैं से भी महत्वपूर्ण तू हो जाता है। और तू ही जब तुम्हारा जीवन हो जाता है। तुम अपने को मिटा सकते हो प्रेमी के लिए, प्रेयसी के लिए, आनंदभाव से तुम मृत्यु में उतर सकते हो, तभी प्रेम फलित होता है। जब साधारण जीवन में प्रेम फलित होता है, तब भी वही झलक आती है कि एक ही रह जाता है, दो मिट जाते हैं।
लेकिन जब उस परम प्रेम का उदय होता है, तब तो निश्चित ही तुम्हारी रूप-रेखा भी नहीं बचनी चाहिए। तुम्हारा नाम-ठिकाना भी नहीं बचना चाहिए। तुम तो बिल्कुल ही मिटोगे तभी वह हो सकेगा। जीसस का वचन है, जो अपने को बचाएंगे वे खो जाएंगे, जो अपने को खो देंगे वे बच जाएंगे। वहां तो मिटने वाला सब कुछ पा लेता है और बचाने वाला सब कुछ खो देता है।
कहते हैं नानक, "जो कोई अपने आप को कुछ समझता है, वह उसके आगे जा कर शोभा नहीं पाता।"
सच तो यह है, वह उसके आगे पहुंच ही नहीं पाता। क्योंकि जिसकी आंखों में अकड़ है, उसकी आंखें अंधी हैं। और जिसके हृदय में यह ख्याल है, मैं कुछ हूं, उसका व्यक्तित्व बहरा है, जड़ है। वह मरा ही हुआ है। वह परमात्मा के सामने आ ही नहीं सकता। परमात्मा तो सदा तुम्हारे सामने है। लेकिन जब तक तुम हो, तुम उसे न देख पाओगे। क्योंकि तुम ही बाधा हो। जैसे ही बाधा गिर जाती है, तुम्हारी आंखें निर्मल हो कर खुलती हैं बिना किसी भाव के कि मैं

हूं। तुम बिल्कुल ना-कुछ की तरह होते हो। एक शून्य! उस शून्य में तत्क्षण वह प्रवेश कर जाता है।
कबीर ने कहा है, सूने घर का पाहुना।
जैसे ही तुम शून्य हुए, वह अतिथि आ जाता है। जब तक तुम अपने से भरे हो, तुम उसे चूकते रहोगे। जिस दिन तुम खाली होओगे, वह तुम्हें भर देता है।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
दसवां प्रवचन

आपे जाणै आप

पउड़ीः 22
पाताला पाताल लख आगासा आगास।
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक बात।।
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु।
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु।।
नानक बडा आखीए आपे जाणै आपु।।

पउड़ीः 23
सालाही सालाहि एती सुरति न पाइया।
नदिआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि।।
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु।
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि।।

एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में एक बड़ी अनूठी घटना घटी। उस प्रयोगशाला में सभी तरह के जहर, पायजन मौजूद थे। उन्हीं का अध्ययन उस प्रयोगशाला का लक्ष्य था। फिर उस प्रयोगशाला में बहुत से चूहे बढ़ गए। उन चूहों को मारने के लिए बहुत उपाय किए। लेकिन मारना आसान न हुआ। क्योंकि जो भी जहर डाला जाता, चूहे उसे खाने के पहले से ही आदी थे। चूहे इम्यून हो गए थे। जहर ही जहर थे प्रयोगशाला में। जहर डाला जाता, चूहे मरते तो न, जहर खा जाते। उसे भोजन बना लेते।
तब किसी ने सुझाव दिया कि पुराना ही रास्ता अख्तियार करना ठीक है। चूहे पकड़ने की जो पुरानी व्यवस्था है, चूहे की जाली, उसी में उनको फांसना उचित होगा। चूहे की जालियां लायी गयीं, उनमें चीज के टुकड़े डाले गए, रोटी के टुकड़े डाले गए। लेकिन चूहों ने कोई ध्यान न दिया। वे जहर खाने के इतने आदी हो गए थे कि रोटी और चीज उन्हें जंची ही नहीं। एक भी चूहा न फंसा।
तब किसी ने सुझाव दिया कि अब एक ही उपाय है कि चीज और रोटी के ऊपर जहर
की पर्त लगा दो, तभी ये चूहे जाल में फंसेंगे। यही किया गया। और रास्ता कामयाब सिद्ध हुआ। चीज पर और रोटी के टुकड़ों पर जहर लगा दिया गया। जहर के कारण चूहे जाल के भीतर गए और फंसे।
कहानी बड़ी अजीब लगती है, लेकिन सच है। ऐसा एक प्रयोगशाला में हुआ। आदमी की हालत भी करीब-करीब ऐसी ही है। मनुष्य शब्द का इतना आदी हो गया है कि अगर मौन भी उसे समझाना हो, तो शब्द में ही समझाना पड़े। भोजन देना हो, तो भी जहर में लपेटना पड़े। और मौन समझाना हो तो शब्द में लपेटना पड़े।
अनंत की तरफ इशारा करना हो, तो भी क्षुद्र शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। शून्य में ले जाना हो, तो भी शब्द का उपयोग करना पड़ता है। सागर की बात कहनी हो, तो भी बूंद का उपयोग करना पड़ता है। अब बूंद की चर्चा से सागर की तरफ कोई इशारा नहीं जाता। जा भी नहीं सकता। कहां बूंद, कहां सागर! कहां शब्द, कहां शून्य! कहां क्षुद्र मनुष्य की बुद्धि और कहां अमाप विस्तार! आकाश ही आकाश, पाताल ही पाताल--जो कहीं समाप्त नहीं होते।
लेकिन उनका लेखा-जोखा भी बड़ी छोटी सी बुद्धि में बांधना पड़ता है। क्योंकि आदमी बुद्धि का आदी हो गया है। हम जिस बात के आदी हो जाते हैं, उसके बाहर जाना सबसे कठिन बात है। सत्य दूर नहीं है, हमारी आदतों की बाधा है। सत्य बिल्कुल पास है। हृदय की धड़कन से भी ज्यादा पास; श्वासों से भी ज्यादा पास; तुमसे भी तुम्हारे ज्यादा पास परमात्मा है।
लेकिन आदतों का एक जाल है। और आदतें बीच में खड़ी हैं। और उन आदतों के कारण देखना मुश्किल हो जाता है। आदत ही तो तुम्हारा मन है। इसलिए सारे संतों की एक ही चेष्टा है, कैसे मन छूट जाए! कैसे तुम उन्मन हो जाओ! कैसे नो-माइंड की अवस्था आ जाए!

जैसे ही मन छूटा, वैसे ही किनारा छूट गया। तुम सागर में उतर गए। और दूसरा कोई उपाय नहीं है सागर को जानने का। सागर ही होना पड़ेगा। उससे कम में काम न चलेगा। किनारे पर खड़े रह-रह कर तुम कितनी ही सागर की चर्चा करो, तुम कितने ही सागर के बखान करो, सब व्यर्थ है। तुम किनारे पर खड़े हो, यही बता रहा है कि तुम्हारी पहचान सागर से नहीं हुई। क्योंकि जो सागर को पहचान गया वह क्यों किनारे खड़ा रहेगा? जिसे उस अनंत की पहचान आ गयी, वह क्यों रुकेगा किनारे पर? फिर उसे कौन सी शक्ति किनारे पर रोक सकेगी? अनंत का आकर्षण उसे खींच लेगा। उससे बड़ी कोई चुंबक तो नहीं है। फिर सभी आकर्षण टूट जाएंगे। अनंत उसे खींच लेगा।
लेकिन हम चर्चा कर रहे हैं। घरों के भीतर बंद, खुले आकाश की बात कर रहे हैं। अपने-अपने पिंजड़ों में बंद, स्वतंत्रता की चर्चा कर रहे हैं। अपने- अपने शब्दों में बंद, निराकार का बखान कर रहे हैं।
नानक के ये सूत्र बड़े कीमती हैं। इन्हें समझने की कोशिश करें। कहते हैं नानक--
पाताला पाताल लख आगासा आगास।
आकाश ही आकाश हैं। एक ही आकाश अनंत हो जाता है। क्योंकि आकाश की कोई सीमा तो नहीं है। एक ही आकाश असीम है। और नानक कहते हैं, आकाश ही आकाश हैं। अनंतानंत! इनफिनिट इनफिनिटीज। एक ही इनिफिनिट नहीं है, एक ही अनंत नहीं है, अनंत अनंत हैं। आकाश ही आकाश हैं। जहां भी तुम जाओ, वहीं तुम असीम को पाओगे। जिस दिशा में बढ़ो, वहीं असीम को पाओगे। जो भी तुम छुओगे, वही असीम है। सब तरफ असीम है।
इस असीम के बीच तुम शब्दों के छोटे-छोटे पिंजड़े ले कर परमात्मा को पकड़ने की कोशिश कर रहे हो। तुम उसे किताबों में बंद कर रहे हो। तुम उसे वेद और कुरान में लिखने की कोशिश कर रहे हो। यह ऐसे ही है जैसे कोई मुट्ठी में आकाश को बंद कर लेना चाहे। और बड़े मजे की बात तो यह है कि जब मुट्ठी खुली होती है तो आकाश होता है। जब मुट्ठी बंद होती है तो जो होता है वह भी निकल जाता है। खुली मुट्ठी में तो आकाश होता है। क्योंकि खुली मुट्ठी आकाश में होती है। लेकिन जितना जोर से तुम मुट्ठी बांधते हो उतना ही आकाश बाहर हो जाता है। बिल्कुल बंद मुट्ठी में कोई आकाश नहीं होता, मुट्ठी ही रह जाती है।
शब्दों का भी ऐसा प्रयोग करना जो खुली मुट्ठियों जैसे हों। बंद मुट्ठियों जैसे शब्दों का उपयोग मत करना। लेकिन खुली मुट्ठी जैसे जो शब्द हैं, वे तर्कयुक्त नहीं रह जाते। जितना तर्कयुक्त बनाना हो शब्द को, उतना उसे बंद करना पड़ता है। परिभाषित, सीमित! उसकी डेफिनीशन बनानी पड़ती है। और जब भी किसी चीज की परिभाषा बनती है, वह सीमित हो जाता है। उसके चारों तरफ एक दीवाल खड़ी हो जाती है। जितना तर्कयुक्त शब्द होगा उतना ही परमात्मा को सूचन करने में असमर्थ हो जाएगा। मुट्ठी बंध गयी। जितना तर्कयुक्त शब्द होगा उतना कहता तो मालूम पड़ेगा, लेकिन कहेगा कुछ भी नहीं। कंठ दब गया। और जितना तर्कमुक्त शब्द होगा उतना कहता कम मालूम पड़ेगा, लेकिन कहेगा।
इस फर्क को ख्याल में ले लें। नानक के शब्द किसी तर्कशास्त्री के शब्द नहीं हैं। वे तो एक कवि के शब्द हैं, एक गीतकार के शब्द हैं। एक सौंदर्य-प्रेमी के शब्द हैं। इन शब्दों से नानक कोई परिभाषा नहीं दे रहे हैं परमात्मा की। ये खुली मुट्ठी की तरह हैं। इन शब्दों से इशारा कर रहे हैं। ये शब्द कुछ कह नहीं रहे हैं, बल्कि जो नहीं कहा जा सकता उसकी तरफ सिर्फ इंगित कर रहे हैं। तुम शब्दों को मत पकड़ लेना, अन्यथा चूक जाओगे। जैसे मैं चांद को दिखाऊं अंगुली से और तुम मेरी अंगुली पकड़ लो, तो तुम चांद को कैसे देख पाओगे? अंगुली का तो कोई अर्थ ही न था। वह तो सिर्फ चांद की तरफ इशारा करती थी। अंगुली को तो छोड़ देना है, चांद को देखना है। लेकिन लोग अंगुलियों को पकड़ लेते हैं।
इसीलिए तो किताबों की पूजा शुरू हो जाती है। कोई वेद को पूजता है, कोई कुरान को, कोई गुरुग्रंथ को पूजता है। पूजा किताब की शुरू हो जाती है। अंगुली को लोग पकड़ लेते हैं। और जिस तरफ इशारा था, उस तरफ आंख उठती ही नहीं। और जितने जोर से तुम किताब को पकड़ लोगे, उतने ही दूर तुम सत्य से हो जाओगे। मुट्ठी बंध गयी। शब्द बहुत महत्वपूर्ण हो गया।

शब्द की कोई महत्ता नहीं है। महत्ता तो निःशब्द की है। क्योंकि निःशब्द से ही पता चल सकता है।
पाताला पाताल लख आगासा आगास।
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक बात।।
"और सारे वेद सिर्फ एक ही बात कहते हैं कि लाखों खोज-खोज कर थक गए, लेकिन खोज नहीं पाए।"
सारे वेद एक ही बात कहते हैं। और वह बात है कि मनुष्य असमर्थ है। सारे वेद एक ही बात कहते हैं कि बुद्धि से खोजा तो कभी वह खोजा नहीं गया। खोजने वाले ही खो गए और वह नहीं मिला। उसकी कोई थाह न मिली। जो थाह लेने गए, वे पिघल गए, विलीन हो गए। खोजी तो मिट गए, लेकिन जिसे खोजने निकले थे उसकी कोई थाह न मिली।
सारे वेद मनुष्य की बुद्धि की असमर्थता की कहानी हैं। सब धर्मशास्त्र
एक संबंध में राजी हैं कि आदमी कुछ भी करे, उसके किए का जाल इतना छोटा है कि उस किए के जाल में परमात्मा नहीं पकड़ा जा सकता। और जितना ही तुम पकड़ने की कोशिश करते हो, उतना ही तुम पाते हो, मुट्ठी खाली रह गयी।
परमात्मा को पाने के ढंग अलग हैं। वहां तुम्हारी पकड़ से काम न चलेगा, वहां सब पकड़ छोड़ देनी पड़ेगी। वहां तुम्हारे सोच-विचार से रास्ता न मिलेगा। वहां तो सब सोच-विचार छोड़ देना पड़ेगा। वहां तुम्हारे तर्क मार्ग पर काम न आएंगे, वही तो बाधाएं हैं। वहां बुद्धि सीढ़ी न बनेगी, वही दीवाल है। जितना तुम अपनी बुद्धि पर भरोसा रखोगे, उतना ही तुम पाओगे कि तुम भटकते हो। वहां तो सारा भरोसा उसी पर छोड़ देना है।
बुद्धि पर भरोसा भी अहंकार है। बुद्धि के भरोसे का अर्थ है कि मैं खोज लूंगा। लेकिन क्या तुमने कभी सोचा कि जिसे तुम खोज लोगे वह तुमसे छोटा हो जाएगा या नहीं? जिसे मैं खोज लूंगा वह मुझसे छोटा हो जाएगा। जिसे मैं पा लूंगा वह मुझसे छोटा हो जाएगा। जो मेरी मुट्ठी में आ जाएगा वह मुझ से छोटा हो जाएगा। परमात्मा को तुम कैसे पा सकोगे? अगर तुमने पा लिया तो वह परमात्मा ही न रहेगा।
तो फिर परमात्मा को कैसे पाएं? उसे पाने का ढंग बड़ा उलटा होगा। जो आदमी अपने को खोने को राजी है, वह उसे पाता है। क्योंकि उसके पाने का एक ही रास्ता होता है, और वह यह है कि तुम उसकी मुट्ठी में हो जाओ। हमारी चेष्टा है कि वह हमारी मुट्ठी में हो जाए। हम उसे भी घर बांध कर ले आएं। और हम लोगों को दिखा सकें कि देखो, परमात्मा को भी हमने पा लिया है।
यह कोशिश असफल होने ही वाली है। क्योंकि विराट को घर बांध कर नहीं लाया जा सकता। आकाश को पोटलियों में बांध कर नहीं लाया जा सकता। पोटलियां घर आ जाएंगी, आकाश नहीं आएगा। उसे पाने का रास्ता तो यह है कि तुम अपने को उसकी मुट्ठी में छोड़ दो।
इसलिए तो नानक बार-बार कहते हैं कि हजार बार निछावर होऊं तुझ पर, तो भी
कम है। और जो तेरी मर्जी, वही शुभ है। जो तू कराए, वही मार्ग है। जो तू बता दे, वही सत्य है।
इस सारे कथन का एक ही अर्थ है कि मैं अपने को हटाता हूं। मैं अपने को तुझ पर नहीं थोपूंगा। मेरी कोई मर्जी नहीं है, न मेरा कोई लक्ष्य है, और न मेरा कोई प्रयोजन है। मैं तुझ में बहूंगा।
इसीलिए श्रद्धा मूल्यवान है और तर्क घातक है। तर्क का अर्थ है कि निर्णायक मैं हूं। तर्क का अर्थ है, न्यायाधीश मैं हूं। श्रद्धा का अर्थ है, न्यायाधीश तू है।
"लाखों पाताल हैं, लाखों आकाश हैं। उसके अंत की खोज करते-करते अनेकों
थक गए। वेद यही एक बात कहते हैं।"
वेद शब्द बड़ा कीमती है। वेद से कुछ हिंदुओं की चार किताबों का ही संबंध नहीं है। वेद शब्द से अर्थ है, जिन्होंने भी जाना, उनके शब्द। वेद शब्द का अर्थ है, ज्ञानियों के शब्द। वेद बनता है विद से। विद का अर्थ होता है, जानना। और वेद का अर्थ होता है, उसके वचन, जिसने जान लिया। बुद्धों के वचन, जिनों के वचन, ऋषियों के वचन। वेद से कुछ ऋग्वेद, अथर्ववेद, इनका कोई संबंध नहीं है। वे भी ज्ञानियों के वचन हैं। लेकिन जहां भी किसी ने जाना है। वहीं वेद निर्मित हो जाता है। तुम जान लोगे तो तुम्हारा वचन वेद हो

जाएगा। वेद की कोई सीमा नहीं है। जितने जानने वाले हैं, उतना वेद बढ़ता जाता है। जितने जानने वाले अतीत में हुए हैं, आज हैं और भविष्य में होंगे, उन सब के वचन वेद हैं। वेद का अर्थ है, सारभूत ज्ञान।
नानक कहते हैं, "सारे वेद एक ही बात कहते हैं कि उसके अंत की खोज करते- करते अनेकों थक गए... ।"
इसे थोड़ा ख्याल में ले लें। क्योंकि साधक के जीवन में इस थकने का बड़ा मूल्य है। जब तक तुम थक न जाओगे, तब तक तुम मिटने को राजी न होओगे। जब तक तुम बिल्कुल ही न थक जाओगे, तब तक तुम खुद को पकड़े ही रहोगे। एक ऐसी घड़ी आ जाएगी जब तुम्हारा कोई प्रयास सार्थक न मालूम पड़ेगा। जब तुम कुछ भी करोगे, तो भी तुम जानोगे, इससे कुछ होने वाला नहीं। जहां तुम्हारे कर्ता का भाव आखिरी पड़ाव पर आ जाएगा। कि जो भी मैं करता हूं, व्यर्थ! जो भी मैं खोज लेता हूं, व्यर्थ! जो भी मैंने पा लिया है, वह व्यर्थ! जो मेरी वासनाएं कह रही हैं, वह व्यर्थ! पा भी लूंगा तो क्या होगा? जिस दिन तुम इतने गहन विषाद में भर जाओगे कि मेरा किया कुछ भी नहीं होता। उसी दिन तुम अहंकार को छोड़ोगे, उसके पहले नहीं।
उसके पहले छोड़ोगे भी कैसे? उसके पहले आशा बनी रहती है कि कुछ न कुछ पा लूंगा। और थोड़े प्रयास की जरूरत है। अगर नहीं मिला अब तक, तो गलत खोज रहा हूं। विधि बदलूं, गुरु बदलूं, शास्त्र बदलूं, मिल जाएगा। मंदिर से मस्जिद चला जाऊं, मस्जिद से चर्च चला जाऊं, चर्च से गुरुद्वारा चला जाऊं, बदलाहट कर लूं। जब तक तुम बिल्कुल नहीं थक गए हो, पूर्ण नहीं थक गए हो, विषाद समग्र नहीं हो गया, तब तक तुम अहंकार को पकड़े ही रहोगे।
बुद्ध के जीवन में घटना है कि बुद्ध ने छह वर्ष तक बड़ी खोज की। शायद ही किसी मनुष्य ने इतनी त्वरा से खोज की हो। सब कुछ दांव पर लगा दिया। जो भी जिसने बताया उसे पूरा-पूरा किया। तो कोई भी गुरु बुद्ध को यह न कह सका कि तू पहुंच नहीं रहा है, क्योंकि तेरी चेष्टा कम है। यह तो असंभव था। यह तो कहना ही संभव न था। क्योंकि चेष्टा तो उनकी इतनी समग्र थी कि उस संबंध में कोई भी शिकायत न की जा सकती थी। जो जिसने कहा, वह उन्होंने पूरी तरह किया। किसी गुरु ने कहा कि सिर्फ एक चावल के दाने पर--रोज एक चावल का दाना ही भोजन में ले कर--तीन महीने तक रहो, तो वे वैसे ही रहे। सूख कर हड्डी-हड्डी हो गए। पीठ पेट एक हो गए। श्वास लेना तक मुश्किल हो गया। क्योंकि इतनी कमजोरी आ गयी।
जो जिसने बताया, वह उन्होंने पूरा किया। सब कर डाला, ज्ञान नहीं हुआ। क्योंकि किए से कभी ज्ञान नहीं होता। सब कर डाला, लेकिन उसमें भी कर्ता का भाव तो बना ही रहा। उपवास किया, जप किया, तप किया, योग साधा, लेकिन भीतर एक सूक्ष्म अहंकार तो बना ही रहा कि मैं कर रहा हूं। मुट्ठी बंधी रही। मैं मौजूद रहा।
और उसे पाने की तो शर्त एक ही है कि मैं खो जाए। इससे क्या फर्क पड़ता
है कि तुम दूकान चला रहे हो कि पूजा कर रहे हो? दोनों हालत में मैं तो बना रहता है। दूकान भी तुम चलाते हो, पूजा भी तुम ही करते हो। दोनों दूकानें हैं। जहां तक अहंकार है, वहां तक दूकान है। जहां तक अहंकार है, वहां तक व्यवसाय है, वहां तक संसार है। जिस क्षण अहंकार गिरता है, उसी क्षण परमात्मा शुरू होता है। इधर तुम गिरे, उधर वह हुआ। तुम गए बाहर, वह आया भीतर। और दोनों एक साथ न रह सकोगे। वहां दुई नहीं चल सकती। वहां एक ही रह सकता है--या तो तुम या वह!
अंततः बुद्ध थक गए। सब कर लिया, कुछ भी न पाया। हाथ खाली के खाली रहे। निरंजना नदी में स्नान कर के निकलते थे, वे इतने कमजोर थे कि निकल न सके। नदी बहाने लगी। तैरने की भी क्षमता नहीं। सिर्फ किनारे से लटकी एक वृक्ष की शाखा को पकड़ कर लटके रहे। उस क्षण उन्हें विचार आया कि मैंने सब कर लिया और कुछ न पाया। सच तो यह है कि यह सब करने में मैंने अपनी सारी शक्ति भी गंवा दी। और जब मैं इतना कमजोर हो गया कि इस छोटी सी नदी को पार नहीं कर पाता, तो भवसागर को कैसे पार कर पाऊंगा?
यह कर-कर के इतना ही हाथ लगा। संसार तो पहले ही व्यर्थ हो गया था। वह
तो दौड़ बेकार हो गयी थी। राजमहल पहले ही व्यर्थ हो गया था। धन मिट्टी हो चुका था। उस क्षण थकान इतनी गहरी हो गयी भीतर कि अध्यात्म भी व्यर्थ हो

गया। मोक्ष भी व्यर्थ हो गया। बुद्ध के मन में उस क्षण उठा कि न तो संसार में कुछ पाने योग्य है, न मोक्ष में कुछ पाने योग्य है, और न कोई और कुछ पा सकता है। यह सारी कथा ही व्यर्थ है। यह सारी दौड़-धूप व्यर्थ है।
किसी तरह बाहर निकले। वृक्ष के नीचे बैठ गए। और उस क्षण उन्होंने सारी चेष्टा छोड़ दी, क्योंकि अब कुछ पाने को ही न रहा। और पा-पा कर, सब प्रयास कर के देख लिया, कुछ मिलता भी नहीं। विषाद परिपूर्ण हो गया-- फ्रस्ट्रेशन टोटल; अब रत्तीभर आशा न रही। जब तक आशा है तब तक अहंकार बना रहेगा। उस रात उस वृक्ष के नीचे वे सो गए। यह पहली रात थी जन्मों-जन्मों के बाद, जब पाने को कुछ भी नहीं था, जाने को कहीं नहीं था। कुछ बचा नहीं था। अगर मृत्यु उसी वक्त आ जाती, तो बुद्ध यह न कहते मृत्यु से कि एक क्षण रुक जा। क्योंकि रुकने की कोई जरूरत न थी। सब आशाएं टूट गयीं।
थकान का अर्थ है, जहां सब आशा के इंद्रधनुष गिर गए। सब सपने बिखर गए।
उस रात बुद्ध सो गए। उस रात कोई सपना भी न उठा। जब पाने को ही कुछ न रहा तो सपने उठने बंद हो जाते हैं। उस रात कोई विचार भी मन में न आया। क्योंकि सब विचार वासनाओं के अनुचर हैं। वे वासनाओं के पीछे चलते हैं। वासना आगे चलती है, विचार पीछे छाया की तरह चलते हैं। वे वासना के चाकर हैं। जब कोई वासना नहीं, तो विचार भी कोई नहीं।
सुबह नींद खुली। रात का आखिरी तारा डूबने के करीब था। बुद्ध की आंखें खुलीं। उठ कर भी करने को कुछ नहीं था। आज सब व्यर्थ हो गया था। कल तक तो दौड़ थी, धर्म पाना था, आत्मा पानी थी, परमात्मा पाना था। आज कुछ भी पाना नहीं था। अब अपने किए कुछ होता ही नहीं; तो पड़े रहे। आखिरी तारा डूबता गया और वह चुपचाप देखते रहे। और कथा है कि उसी क्षण में ज्ञान उपलब्ध हुआ।
क्या हुआ उस क्षण में? जो इतना पा कर न मिला, जो इतनी कोशिश से न मिला,
जो इतने दौड़ने से न मिला, उस रात क्या घटा? उस सुबह कौन सी अनूठी बात हुई कि उस वृक्ष के नीचे लेटे-लेटे बुद्ध परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए?
घटना यह घटी, जिसकी नानक बात कर रहे हैं, थकान आ गयी, अहंकार बिल्कुल
ही बिखर गया। मेरे किए कुछ भी न होगा, सब प्रयास छूट गए। और जैसे ही प्रयास छूटता है, प्रसाद उपलब्ध होता है। जैसे ही तुम्हारी आशा खतम हो जाती है, जैसे ही तुम्हारी दौड़-धूप रुक जाती है, आपाधापी बंद होती है, जैसे ही तुम्हारा अहंकार गिर जाता है, मुट्ठी खुल जाती है।
ख्याल तुमने किया कि मुट्ठी को खोलना नहीं पड़ता, बांधना पड़ता है। बंधी मुट्ठी में श्रम होता है। जब तुम मुट्ठी बांधे हो, तो मेहनत करनी पड़ती है। अगर तुम कुछ न करोगे तो मुट्ठी अपने आप खुल जाएगी। क्योंकि खुला होना स्वभाव है। बंद मुट्ठी चेष्टा से होती है, प्रयास करना पड़ता है। खुलती अपने आप है। खोलने के लिए थोड़े ही कुछ करना पड़ता है। बस, बांधो मत; खुल जाती है। बांधने के लिए कुछ करना पड़ता है, खोलने के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ता। उस सुबह बिना कुछ किए मुट्ठी खुल गयी।
कबीर ने कहा है, अनकीए सब होय। उस क्षण कुछ भी नहीं किया था और सब हो गया। थक गए! थक गए, अहंकार गिर गया। इधर गया अहंकार बाहर घर के, उधर परमात्मा का प्रवेश है!
नानक कहते हैं, "वेद एक ही बात कहते हैं कि उसके अंत की खोज करते-करते अनेकों थक गए।"
और जब थके, बस, तभी ज्ञान उपलब्ध हो गया। तुम अगर थक जाओ, तो ही उसे पा सकोगे। तुम्हारी थकान से ही उसका आगमन होगा। जब तक तुम थके नहीं हो, तब तक तुम उसे न पा सकोगे।
इसलिए सारे योग--एक ही लक्ष्य है उनका, कैसे तुम्हें थका दें। योग से परमात्मा नहीं मिलता, योग से सिर्फ अहंकार थकता है। विधियों से परमात्मा नहीं मिलता, विधियों से केवल तुम थकते हो। और एक ऐसी थकान की, परिपूर्ण विश्रांति की अवस्था आ जाती है, जब मुट्ठी खुल जाती है। तुम इतने थक होते हो कि मुट्ठी बांध भी नहीं सकते।
खोजते-खोजते अनेकों थक गए। और वेद एक ही बात कहते हैं, जब कोई थक जाता है, तभी उपलब्धि हो जाती है। इसीलिए तो सदगुरुओं ने कहा है कि परमात्मा प्रसाद से मिलता है, प्रयास से नहीं। कृपा से मिलता है, उसकी अनुकंपा से मिलता है, तुम्हारी चेष्टा से नहीं। अगर तुम्हारी चेष्टा से मिलेगा तो

तुमसे छोटा हो जाएगा। अनुकंपा से मिलता है। तुमसे छोटा नहीं है, तुमसे बड़ा है। और जैसे ही तुम खाली होते हो, तुम भर दिए जाते हो।
वर्षा होती है; पहाड़ पर भी होती है, झील में भी होती है। झील में तो भर जाता है पानी, पहाड़ खाली का खाली रह जाता है। पहाड़ पहले से ही भरा हुआ है, जगह ही नहीं कि वर्षा भर सके। झील खाली है। तो गड्ढों में तो जल भर जाता है और झील बन जाती है। पहाड़ जो भरे ही हुए हैं, खाली के खाली रह जाते हैं। परमात्मा तो सब पर एक सा बरसता है। उसके लिए कोई भेदभाव नहीं। अस्तित्व सब के लिए एक सा है। वहां रत्ती भर का अंतर नहीं है। वहां योग्य-अयोग्य का भी हिसाब नहीं है। पापी और पुण्यात्मा का भी कोई हिसाब नहीं है। परमात्मा सभी पर बरसता है, जैसे सभी के ऊपर आकाश का साया है। लेकिन जो खुद से भरे हैं, वे वंचित रह जाते हैं। क्योंकि उनके भीतर जगह नहीं है। और जो खुद से खाली हैं, वे भर जाते हैं। क्योंकि उनके भीतर जगह है। खुदी मिटते ही खुदा हो जाता है। और खुदी तब तक नहीं मिटती, जब तक आशा है कि पा लूंगा। "कतेबों--इंजील, कुरान, तुरेत--का कहना है कि अठारह हजार आलम हैं। लेकिन तत्वतः एक ही सत्ता है।"
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु।
लेकिन इस सारे अनंत विस्तार में छिपा है एक। विस्तार अनंत हैं, अनंत रूप हैं, लेकिन जो छिपा है, वह एक है। और अगर तुमने विस्तार पर ध्यान दिया, तो तुम संसार में भटक जाओगे। और अगर तुमने एक पर नजर रखी, तो तुम परमात्मा को पहुंच जाओगे।
इसे ऐसा समझो, एक माला है, उसमें मनके हैं। मनके अनेक हैं, हर मनके के भीतर लेकिन एक ही धागा पिरोया हुआ है, अनुस्यूत एक ही धागा है। अगर तुमने मनके पकड़े, तो तुम संसार में भटक जाओगे। अगर तुमने धागा पकड़ लिया, तो तुम परमात्मा को उपलब्ध हो जाओगे।
सतह पर सागर के अनेक लहरें हैं, अनंत लहरें हैं। अगर तुमने सागर पर ध्यान न दिया और लहरों का ख्याल किया, तो तुम भटकते ही चले जाओगे। क्योंकि लहरें बनती ही रहेंगी, मिटती ही रहेंगी। उनका कोई पारावार नहीं है। एक लहर दूसरे में ले जाएगी, दूसरी तीसरे में ले जाएगी। तुम लहरों पर भटकती हुई एक क्षुद्र कागज की नाव के जैसे हो जाओगे। जो इस लहर से उस लहर में जाएगी। इस लहर में डूबेगी, उस लहर में डूबेगी। इधर दुख पाएगी, उधर दुख पाएगी। तुम मंजिल पर न पहुंच पाओगे। क्योंकि लहरों में मंजिल नहीं हो सकती। लहरों में तो परिवर्तन है। और मंजिल तो शाश्वत होगी। लहरों में विश्राम नहीं हो सकता। विश्राम तो वहां होगा, जहां सब लहरें शांत हो जाती हैं। जहां तुम उसे पा लेते हो, जो बदलता ही नहीं।
तुमने ख्याल किया? जितनी तुम्हारे जीवन में बदलाहट होती है, उतनी ही अशांति होती है। इसलिए तो आज की दुनिया में बहुत अशांति बढ़ गयी है। क्योंकि बदलाहट बहुत बढ़ गयी है। बदलाहट प्रतिपल हो रही है। वैज्ञानिक हिसाब लगाते हैं कि ईसा के पहले पांच हजार साल में जितनी बदलाहट होती थी, ईसा के बाद हजार साल में उतनी बदलाहट होने लगी। फिर ईसा के हजार साल बाद दो सौ वर्षों में उतनी बदलाहट होने लगी। इस सदी में पहुंचते-पहुंचते, ईसा के पहले पांच हजार साल में जितनी बदलाहट होती थी, उतनी अब पांच साल में होती है। इस सदी के पूरे होते-होते उतनी बदलाहट पांच महीनों में होने लगेगी। बदलाहट इतनी तीव्रता से हो रही है कि तुम ठहर ही नहीं पाते एक लहर पर कि दूसरी लहर आ जाती है।
अगर तुम बूढ़े आदमियों से गांव में जा कर पूछो, तो वे कहेंगे, उनका गांव करीब-करीब वैसा ही रहा है, जैसा था। जब वे जन्मे थे तब भी ऐसा था, अब भी वैसा है। लेकिन तुम्हारे शहर, जो कि भविष्य के नक्शे हैं, वहां कुछ भी दूसरे दिन वैसा नहीं है। सब बदल रहा है। और पश्चिम में तो बदलाहट बड़ी भयंकर हो गयी है।
अमरीका में कोई भी आदमी तीन साल से ज्यादा एक गांव में नहीं रहता। औसत आदमी के रहने की व्यवस्था तीन साल हो गयी है। हर तीन साल में दूसरे गांव में पहुंच जाता है। और यह तो औसत आदमी की बात है। इसमें पचास प्रतिशत तो ऐसे लोग हैं, जो काफी देर तक रुकते हैं, उनका भी हिसाब जोड़ा हुआ है। कुछ लोग तो हर दो-चार महीने में बदल रहे हैं। गांव बदलता है, हवा बदलती है, मौसम

बदलता है, कपड़े बदलते हैं, कार बदलती है, खाना बदलता है, लहरें बढ़ती जाती हैं। और तुम्हारे मन को ऐसा लगता है, जितनी बदलाहट होती है, उतना तुम सुख पा रहे हो।
जितनी बदलाहट होती है, उतना तुम दुख पा रहे हो। क्योंकि हर बार जैसे पौधे को उखाड़ना पड़े उसकी जड़ों से, फिर नयी जगह लगाना पड़े, फिर उखाड़ना पड़े, फिर नयी जगह लगाना पड़े--तुम लग भी नहीं पाते, तुम्हारी जड़ें बैठ भी नहीं पातीं एक लहर में कि दूसरी लहर आ जाती है।
जितना परिवर्तन होगा, उतना जीवन नारकीय हो जाएगा। इसलिए पश्चिम में नर्क बहुत सघन हो गया है। प्राचीन दिनों में पूरब बड़ा शांत था, क्योंकि परिवर्तन न के बराबर था। चीजें ठहरी हुई थीं। और उस ठहराव से सागर में उतरना आसान था। क्योंकि जड़ें जमी हुई थीं। और गहरे उतरने की हिम्मत होती थी।
ध्यान रखना एक बात; लहर के साथ अगर बहते रहे तो तुम सांसारिक हो। और अगर लहर में तुमने धीरे-धीरे सागर को खोजना शुरू कर दिया, तुम संन्यासी हो गए। परिवर्तन में शाश्वत की खोज संन्यास है। बदलते हुए में न बदलते हुए को पकड़ लेने की कला संन्यास है। वही धर्म है। वही सार है सब वेदों, सब कुरानों, सब इंजीलों का।
नानक कहते हैं, "कतेबों का कहना है कि अठारह हजार आलम हैं। अठारह हजार अस्तित्व हैं। लेकिन तत्वतः एक ही सत्ता है।"
तुम किसको पकड़ोगे, इस पर निर्भर करेगा। दोनों खुले हैं। चाहो तो परिवर्तनशील को पकड़ लो, जो आता है, जाता है। और चाहो तो उसे पकड़ लो, जो न कभी आता है और न कभी जाता है, सदा है। और जिसकी छाती पर सब परिवर्तन होते हैं और घटते हैं। और जो अपरिवर्तित बना रहता है।
जिसने उस एक को पकड़ लिया, उसके जीवन में आनंद की वर्षा हो जाती है। और जिसने अनेक को पकड़ा, वह एक दुख से दूसरे दुख में जाता है। उसे सुख कभी मिलता नहीं। बस, सुख का उसे आभास मालूम होता है। जब एक दुख से दूसरे दुख में जाता है, तो बीच में जो थोड़ा सा अंतराल होता है बदलाहट का, उसमें उसे सुख की आशा होती है।
तुमने कितनी बार मकान बदले! कितनी बार कार बदली! जब तुम पुरानी कार को बदलते हो नयी कार से, तो बदलाहट के बीच में थोड़ा सा अंतराल होता है, जिसमें तुम्हें लगता है, बड़ा सुख मिलने वाला है। लेकिन ऐसा ही तुम्हें पहले भी लगा था, जब तुमने पहले कार बदली थी। और ऐसा ही तुम्हें फिर लगेगा, जब तुम फिर कार बदलोगे। एक पत्नी से दूसरी पत्नी को बदल लो, एक पति को दूसरे पति से बदल लो; बस, बीच में एक आशा की किरण मालूम होती है। ऐसे ही, जैसे तुमने देखा हो, लोग मरघट ले जाते हैं किसी की लाश को कंधों पर, तो रास्ते में कंधा बदलते हैं। एक कंधे पर वजन बढ़ जाता है, उठा कर दूसरे पर रख लेते हैं। बस थोड़ी देर को लगता है कि राहत मिली। क्योंकि वजन तो वही का वही है। राहत तो मिलेगी कैसे? बस, कंधा थोड़ी देर में फिर थक जाता है, फिर कंधा बदल लेते हैं।
तुम कंधे बदल रहे हो। बस बीच में थोड़ा सा आसार लगता है कि सुख मिला। सुख तुम्हें कभी मिला नहीं। लौट कर तुम देखो, तुम्हें एक क्षण भी ऐसा नहीं मालूम पड़ेगा जब तुमने सुख को जाना हो, जिसके लिए तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सको। दुख ही दुख है। और लोग एक दुख से दूसरे दुख में बदलते रहते हैं। पुराना दुख छोड़ते हैं, नया पकड़ते हैं। थोड़े दिन में यह भी पुराना हो जाता है। फिर इसे छोड़ते हैं, फिर नया पकड़ते हैं। आशा बनी रहती है कि शायद कभी सुख मिलेगा।
यह रास्ता सुख को पाने का नहीं। क्योंकि तुम लहरों से लहरों को बदल रहे हो। सुख को पाने का रास्ता है, लहर से सागर में उतरना। लहरें अनेक, सागर एक। अठारह हजार होंगे अस्तित्व, लेकिन सत्ता एक है। सब के भीतर एक ही छिपा है। सारे जीवन की कला इस एक छोटे सूत्र में पूरी हो जाती है कि तुम एक को खोज लो। तुम धागे को पा लो।
"यदि उसका लेखा हो तो लिखें; लेकिन सब लेखा-जोखा मिट जाने वाला है। नानक कहते हैं, वह सबसे महान है और वह अपने को आप ही जानता है।"
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु।।

नानक बडा आखीए आपे जाणै आपु।।
उसके संबंध में कुछ लिखा नहीं जा सकता, क्योंकि लिखा हुआ तो मिट जाता है। और वह कभी मिटता नहीं। तो जो कभी मिटता नहीं उसके संबंध में मिटने वाली चीज कैसे खबर देगी? सब लेखे खो जाते हैं। कितने शास्त्र खो चुके हैं। जितने शास्त्र आज हैं, वे भी कभी खो जाएंगे। कितने शब्द पैदा हुए जगत में और लीन हो गए, लेकिन सत्य तो बना हुआ है।
तो दोनों का गुणधर्म अलग है, क्वालिटी अलग है। जो लिखा जाता है, वह तो मिट जाएगा। जो बिना लिखा है... । अगर तुम कोरे कागज को पढ़ना सीख लो तो तुम परमात्मा को समझ पाओगे।
ऐसा हुआ, महाराष्ट्र में ही हुआ। तीन संत हुए। एकनाथ हुए, निवृत्तिनाथ हुए और एक फकीर औरत हुई, मुक्ताबाई। एकनाथ ने पत्र लिखा निवृत्तिनाथ को। लेकिन पत्र कोरा कागज था। उसमें कुछ लिखा नहीं था। बस, खाली कागज संदेशवाहक के हाथ भेजा था। निवृत्तिनाथ के हाथ में कागज गया, उन्होंने बड़े रस से पढ़ा। लिखा उसमें कुछ भी नहीं था। पर बड़े गौर से पढ़ा। और पढ़ कर फिर मुक्ताबाई को दिया कि तुम भी पढ़ो। फिर मुक्ताबाई ने भी उसे बड़े गौर से पढ़ा। और फिर दोनों आनंदभाव से प्रसन्न हुए। और संदेशवाहक को कहा कि हमारा पत्र ले जाओ उत्तर में। और वही कोरा कागज वापस दे दिया।
संदेशवाहक बड़ी मुश्किल में पड़ा। पहले जब लाया था, तब तो उसे पता नहीं
था कि कागज कोरा है। लिफाफे में बंद था। अब तो उसने देख लिया था कि उसमें कुछ लिखा नहीं। उसने कहा, महाराज, इसके पहले कि मैं जाऊं, एक छोटी सी जिज्ञासा मेरी भी पूरी कर दें। लिखा कुछ भी नहीं है, तो पढ़ा कैसे? और न केवल आपने पढ़ा, मुक्ताबाई ने भी पढ़ा। और आप दोनों प्रसन्न भी हुए। और इतने गौर से पढ़ा कि जरूर कुछ पढ़ा! मुझे भी लगा। क्या पढ़ा? और फिर यही कागज आप वापस भेज रहे हैं बिना कुछ लिखे!
निवृत्तिनाथ ने कहा कि एकनाथ ने खबर भेजी है कि अगर "उसे" पढ़ना है, तो खाली कागज पर पढ़ना पड़ेगा। और भरे कागज पर तुम जो भी पढ़ोगे वह "वह" नहीं है। हम राजी हैं। हम समझ गए बात। यही उत्तर है हमारा कि हम समझ गए। हम राजी हैं। बात बिल्कुल ठीक है।
किताबें तो लिखी हुई हैं, परमात्मा अनलिखा है। किताबें कैसे उसे कहेंगी? अनलिखे को पढ़ना सीखना हो तो वेद पढ़ो, गुरुगं्रथ पढ़ो, कुरान पढ़ो, लिखे हिस्से को छोड़ देना। गैर-लिखे हिस्से को पढ़ लेना। लिखे हिस्से को छोड़ देना, गैर-लिखे को सम्हाल लेना। पंक्तियों के बीच में, शब्दों के बीच में जहां-जहां खाली जगह हो, उसको पढ़ लेना। उसको गुन लेना।
अगर तुमने लिखे को पढ़ा तो तुम पंडित हो जाओगे, अगर तुमने अनलिखे को पढ़ा तो ज्ञानी हो जाओगे। अगर लिखे को याद कर लिया तो तुम्हारे पास बड़ी सूचनाएं इकट्ठी हो जाएंगी, और अगर अनलिखे को याद कर लिया तो तुम छोटे बच्चे की तरह सरल हो जाओगे। और अनलिखे से द्वार है।
इसलिए नानक कहते हैं, उसका कोई लेखा है जो लिखा जा सके? किसी ने कभी उसके संबंध में कुछ जाना है, जिसको जानकारी बनाया जा सके?
कोई सूचना उसकी सूचना नहीं बन सकती। जिन्होंने जाना है वे तो चुप हैं। अगर वे कुछ कहते भी हैं, तो केवल चुप्पी की तरफ इशारा करने को कहते हैं। अगर उन्होंने कुछ लिखा भी है, तो इसलिए लिखा है ताकि तुम अनलिखे को पढ़ना शुरू करो।
न उसका कोई लेखा है जो लिखा जा सके। और जो लिखा गया है वह सब तो मिट जाने वाला है। कितना ही सम्हालो किताबों को, वे खो ही जाएंगी। कागज की किताबें हैं। स्याही से लिखे अक्षर हैं। इससे ज्यादा परिवर्तनशील कुछ और तुम पाओगे? कागज की नाव है समझो!
जो लोग शास्त्रों पर सवार हो कर परमात्मा तक पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं, वे कागज की नाव पर सवार हैं। नावें तो डूबेंगी ही, उनके साथ यात्री भी डूबेंगे। तुम कागज की नाव पर मत जाना। बच्चों के खेलने के लिए ठीक हैं कागज की नावें, यात्रा करने के लिए उचित नहीं हैं। और यह यात्रा महान है। इससे बड़ी कोई यात्रा नहीं है। क्योंकि इससे महा कोई सागर नहीं है।
नहीं, शास्त्र से काम न चलेगा। शास्त्र का इंगित समझ लेना। और इशारा
एक ही है कि तुम खाली हो जाओ। लेकिन आदमी की मूढ़ता का कोई अंत नहीं। जो

हमसे कहते हैं, खाली हो जाओ; हम उन्हीं को पकड़ कर अपने को भर लेते हैं। हम उन्हीं को अपनी खोपड़ी में सम्हाल कर रख लेते हैं। फिर हम परिवर्तनशील के चक्कर में पड़ जाते हैं। और हमारी आकांक्षाएं और हमारी बुद्धि--जिसको हम बुद्धि कहते हैं--जरा भी बुद्धिमानी की खबर नहीं देती।
मैंने सुना है कि सिकंदर उस जल की तलाश में था, जिसे पीने से लोग अमर
हो जाते हैं। बड़ी प्रसिद्ध कहानी है उसके संबंध में। अमृत की तलाश में था। कहते हैं कि दुनिया भर को जीतने के उसने जो आयोजन किए, वह भी अमृत की तलाश के लिए। और कहानी है कि आखिर उसने वह जगह पा ली। वह उस गुफा में प्रवेश कर गया, जहां अमृत का झरना है। आनंदित हो गया। जन्मों-जन्मों की, जीवन-जीवन की आकांक्षा की तृप्ति का क्षण आ गया। सामने कल-कल नाद करता हुआ झरना है। इसी गुफा की तलाश थी।
झुका ही था कि अंजलि में भर ले अमृत को और पी जाए, अमर हो जाए, कि एक कौवा बैठा हुआ था गुफा के भीतर। वह जोर से बोला, ठहर, रुक! यह भूल मत करना। सिकंदर ने कौवे की तरफ देखा। बड़ी दुर्गति की अवस्था में था कौवा। पहचानना मुश्किल था कि कौवा है--पंख झड़ गए थे, पंजे गिर गए थे, आंखें अंधी हो गयी थीं--ऐसा जीर्ण-शीर्ण उसने कौवा ही नहीं देखा था। बस, कंकाल था। सिकंदर ने पूछा, रोकने का कारण? और रोकने वाला तू कौन?
कौवे ने कहा, मेरी कहानी सुन लो। मैं भी अमृत की तलाश में था। और यह गुफा मुझे भी मिल गयी थी। और मैंने यह अमृत पी लिया। और अब मैं मर नहीं सकता। और अब मैं मरना चाहता हूं। देखो मेरी हालत! आंखें अंधी हो गयी हैं, देह जराजीर्ण हो गयी है, पंख झड़ गए हैं, उड़ नहीं सकता, पैर गिर गए हैं, गल गए हैं, लेकिन मर नहीं सकता। एक दफा मेरी तरफ देख लो। फिर तुम्हारी मर्जी हो तो अमृत पी लो। लेकिन अब मैं चिल्ला रहा हूं, चीख रहा हूं कि मुझे कोई मार डाले। लेकिन मैं मारा नहीं जा सकता। जी भी नहीं सकता, क्योंकि जीने के सब उपकरण क्षीण हुए जा रहे हैं। और मर भी नहीं सकता, क्योंकि यह अमृत दिक्कत हो गया है। और अब प्रार्थना एक ही कर रहा हूं परमात्मा से कि मुझे मार डालो, मुझे मार डालो। बस, एक ही आकांक्षा है कि किसी तरह मर जाऊं। अब मर नहीं सकता। रुक जाओ; सोच लो एक दफा, फिर तुम्हारी मर्जी!
और कहते हैं, सिकंदर सोचता रहा। और चुपचाप गुफा से बाहर वापस लौट आया। उसने अमृत पिया नहीं।
तुम जो भी चाहते हो, अगर वह पूरा हो जाए तो भी तुम मुश्किल में पड़ोगे। अगर वह पूरा न हो, तो तुम मुश्किल में पड़ते हो। तुम मरना नहीं चाहते। अगर यह हो जाए, गुफा तुम्हें मिल जाए और तुम अमृत पी लो, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तब--तब तुम पाओगे अब जी कर क्या करें? और जब जीवन तुम्हारे हाथ में था, जब तुम जी सकते थे, तब तुम आकांक्षा करते थे कि अमृत मिल जाए। क्योंकि जब मृत्यु है, तो जीएं कैसे? न मृत्यु के साथ जी सकते हो, न अमृत के साथ जी सकते हो। न गरीबी में जी सकते हो, न अमीरी में जी सकते हो। न नर्क में, न स्वर्ग में। और फिर भी तुम अपने को बुद्धिमान समझते हो!
सूफी फकीर हुआ, बायजीद। वह अपनी प्रार्थना में परमात्मा से कहता था, मेरी प्रार्थनाओं का ख्याल मत करना। तू उन्हें पूरी मत करना। क्योंकि मेरे पास इतनी बुद्धिमत्ता कहां है कि मैं वही मांग लूं जो शुभ है!
आदमी बिल्कुल बुद्धिहीन है। वह जो भी मांगता है, उसी के जाल में भटकता है। अगर पूरा हो जाता है, तो मुश्किल खड़ी हो जाती है। पूरा नहीं होता, तो मुश्किल खड़ी होती है। तुम सोच कर देखो, अतीत में लौटो। अपनी जिंदगी का एक दफा लेखा-जोखा करो। तुमने जो मांगा, उसमें से कुछ पूरा हुआ है, उससे तुम्हें सुख मिला? तुमने जो मांगा, उसमें से कुछ पूरा नहीं हुआ है, उससे तुम्हें सुख मिला? तुम दोनों हालत में दुख पा रहे हो। जो मांगा है, उससे उलझ गए। जो मिला है, उससे उलझ गए। जो नहीं मिला है, उससे उलझे हुए हो। बुद्धिमानी क्या है? बुद्धिमत्ता का लक्षण क्या है? बुद्धिमत्ता का लक्षण है, उस सूत्र को मांग लेना जिसे मांग लेने से फिर दुख नहीं होता। इसलिए धार्मिक व्यक्ति के अतिरिक्त कोई बुद्धिमान नहीं है। क्योंकि सिर्फ परमात्मा को मांगने वाला ही पछताता नहीं। बाकी तुम जो भी मांगोगे, पछताओगे। इसे तुम गांठ बांध कर रख लो। तुम जो भी मांगोगे, पछताओगे। सिर्फ

परमात्मा को मांगने वाला कभी नहीं पछताता। उससे कम में काम भी नहीं चलेगा। वही जीवन का गंतव्य है।
लेकिन क्या तुम उस परमात्मा को शास्त्रों में पा सकोगे?
नानक कहते हैं, वहां तुम उसे न पा सकोगे। वहां तुम्हें शब्द मिल जाएंगे, सिद्धांत मिल जाएंगे, सत्य नहीं मिलेगा। सत्य कहां मिलेगा? सत्य, नानक कहते हैं--
"वह सबसे महान है। और वह अपने को आप ही जानता है।"
तुम उसे दूर-दूर रह कर न जान सकोगे। तुम जब उसमें डूब जाओगे, तभी उसे जान सकोगे। सत्य का वही एक मार्ग है। परमात्मा के साथ एक हुए बिना कोई सत्य को नहीं जान सकता।
हम पदार्थ के संबंध में जानकारी ले सकते हैं। विज्ञान इसी तरह की जानकारी है। दूर खड़े हो कर, बाहर खड़े हो कर वैज्ञानिक परीक्षण करते हैं, पदार्थ के संबंध में ज्ञान हो जाता है। लेकिन परमात्मा के संबंध में कोई ज्ञान बाहर से नहीं हो सकता। वहां तो भीतर ही जाना होगा। वहां तो इतने भीतर जाना होगा जहां कि तुम्हारी और उसकी सीमा खो जाती है। तुम उसके हृदय की धड़कन बन जाते हो, वह तुम्हारे हृदय की धड़कन बन जाता है। जहां इतनी एकता सध जाती है, वहीं ज्ञान है।
शास्त्रों से यह कैसे होगा? शब्दों से यह कैसे होगा? यह तो प्रेम से
ही हो सकता है।
इसलिए नानक कहते हैं, बस, प्रेम कुंजी है। और अगर उसके नाम का प्रेम जग जाए, अगर उसकी धुन तुम्हारे भीतर बजने लगे, और तुम उसके प्रेम में पागल हो जाओ, तो तुम जान सकोगे।
शास्त्रों से तुम बुद्धिमानी मत समझना, कि तुम बुद्धिमानी कर रहे हो।
वह नासमझी है। वहां तुम्हें बहुत से तर्क और सिद्धांत मिल जाएंगे। लेकिन असली चीज चूक जाएगी। तुम न तो अपने को जान सकोगे और न परमात्मा को। क्योंकि दोनों को जानने का एक ही मार्ग है। अगर तुम स्वयं को जानना चाहते हो तो परमात्मा के साथ एक हो जाओ। क्योंकि उसके साथ एक होने पर ही वह प्रज्ञा उपलब्ध होती है जिसको जानकारी हो सके, जानना हो सके। अगर तुम परमात्मा को जानना चाहते हो तो भी उसके साथ एक हो जाओ। क्योंकि जब तुम उसके साथ एक हो जाओगे तभी उसे पहचान सकोगे। स्वाद लिए बिना कोई रास्ता नहीं है। अन्यथा तुम्हारे सब तर्क बचकाने रहेंगे और मूढ़तापूर्ण रहेंगे। ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अस्सी साल का हो गया। और तब अचानक एक दिन उसने अपने बेटे को बुला कर कहा--बड़े बेटे को, जिसकी उम्र कोई साठ साल होगी-- कि मैंने फिर से विवाह का तय कर लिया है। तेरी मां को मरे काफी महीने हो गए और अब मैं बिना स्त्री के नहीं रह सकता हूं।
बेटा थोड़ा चिंतित हुआ, क्योंकि अस्सी साल में अब शादी? उसने कहा, लेकिन किससे शादी का इरादा है? कौन लड़की है?
नसरुद्दीन ने कहा कि सामने पड़ोसी की लड़की है।
लड़का हंसने लगा। उसने कहा, आप भी मजाक करते हैं! या सिर फिर गया? उसकी उम्र अठारह साल से ज्यादा नहीं है।
नसरुद्दीन ने कहा, सिर फिर गया? जब मैंने तेरी मां से शादी की थी, तब उसकी उम्र भी अठारह साल ही थी। तो फर्क क्या है? अठारह साल से क्या फर्क पड़ता है?
मनुष्य जितने तर्क खोजता है परमात्मा के संबंध में, वे ऐसे ही हैं, बाहर-बाहर हैं। बाहर से तो कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन यह तो याद ही नहीं आती कि मैं अस्सी साल का हो गया हूं। परमात्मा के संबंध में तर्क और सिद्धांत तुम बाहर से पकड़ने की कोशिश करते हो। तुम अपना स्मरण ही नहीं करते कि तुम्हें भीतर प्रवेश होना है। और तुम्हें सिद्धांत का हिस्सा बनना है।
पंडित बाहर रहता है। ज्ञान उसके लिए सामग्री है जिसको वह जमाता है। लेकिन खुद बाहर रहता है। ज्ञानी भीतर चला जाता है। पंडित ज्यादा चालाक है, ज्यादा होशियार है। भीतर में नहीं पड़ता। बाहर-बाहर से हिसाब रखता है।
लेकिन यह होशियारी मूढ़ता सिद्ध होती है। क्योंकि भीतर गए बिना कोई रास्ता नहीं।

यह ऐसे ही है, जैसे कोई प्रेम के संबंध में किताबें पढ़ ले और सोचे कि मैंने प्रेम को जान लिया। कोई सुबह के संबंध में किताबों में पढ़ ले, और सोच ले कि मैंने सुबह को जान लिया। कोई फूलों के संबंध में चित्र देख ले, और समझे कि मैंने फूलों को जान लिया।
जानकारी हो जाएगी। लेकिन फूलों का साक्षात, सुबह उगते सूरज का साक्षात--वह साक्षात, जिसमें तुम भी एक हो जाते हो! सूरज बाहर नहीं रहता, अलग नहीं रहता। तुम और सूरज दोनों का मिलन हो जाता है। जहां तुम दोनों थोड़ी देर के लिए साथ-साथ धड़कते हो। फूल का साक्षात, जहां उसकी सुगंध और तुम्हारा जीवन-अस्तित्व ओतप्रोत हो जाता है। एक-दूसरे में लीन हो जाता है, एक-दूसरे को छूता है, आनंदित होता है। एक-दूसरे के साथ हवा में थिरकता है और नृत्य करता है। वह क्षण तो किताब से नहीं मिल सकता।
और जब साधारण फूलों के साथ एक होने का क्षण किताब से नहीं मिल सकता, तो परम फूल जीवन का, जो परमात्मा है, उसके साथ तो कैसे शब्द और सिद्धांत का नाता जोड़ा जा सकता है? उससे तो नाता जोड़ना हो तो तुम्हें भीतर प्रवेश करना पड़े।
इसलिए पागल ही प्रवेश करते हैं, बुद्धिमान वंचित रह जाते हैं। क्योंकि बुद्धिमानी तुम्हारी, चालाकी तुम्हारी, वस्तुतः बुद्धिमानी नहीं है। इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ है--बहुत बार कहना ठीक नहीं, सदा ही ऐसा हुआ है--कि पागलों ने उसे पा लिया, समझदार पीछे रह गए।
नानक कहते हैं, बस एक ही उपाय है, और वह है यह जानना--
नानक बडा आखीए आपे जाणै आपु।।
"वह महान है। और वह स्वयं ही अपने को जान सकता है।"
तुम उसे बाहर से न जान सकोगे, जब तक कि तुम उसकी स्वयं-सत्ता में लीन न
हो जाओ। तुम भी उसके साथ एक हो जाओ। परमात्मा को जानना हो तो परमात्मा हुए बिना और कोई उपाय नहीं। उसी ऊंचाई पर, उसी गहराई में, तुम भी पहुंच जाओ, तो ही उसे जान सकोगे। उसके साथ एक हो जाना पड़ेगा।
"स्तुति करने वाले उसकी स्तुति करते हैं, लेकिन उन्हें उसकी स्मृति नहीं मिली।"
सालाही सालाहि एती सुरति न पाइया।
कितनी ही स्तुति करते रहो, और कहो कि तू महान है, लेकिन तुम स्तुति करके भी दूर ही बने रहोगे। फासला कायम रहेगा। वह भगवान होगा, तुम भक्त होओगे। तुम बोलते रहोगे शब्द; और शब्दों से बीच की दूरी घटेगी नहीं, बढ़ेगी।
तुम्हारी प्रार्थनाएं वक्तव्य नहीं, श्रवण बनाना चाहिए। तुम सुनो, तुम बोलो मत। तुम चुप होओ, ताकि वह बोल सके। तुम चुप होओ, ताकि तुम उसे सुन सको।
लेकिन तुम बोलते हो। इतने जोर-जोर से बोलते हो कि कबीर को कहना पड़ा कि क्या तुम्हारा खुदा बहरा हो गया है कि तुम इतने जोर-जोर से चिल्लाते हो? क्या उसके कान नहीं हैं? तुम किसके लिए चिल्ला रहे हो? और जोर-जोर से चिल्लाने से क्या तुम्हारी आवाज जल्दी पहुंच जाएगी?
"स्तुति करने वाले उसकी स्तुति करते हैं, लेकिन उन्हें उसकी सुरति नहीं मिली।"
सुरति शब्द बड़ा कीमती है। यह नानक के जीवन-साधना का सार शब्द है। और सभी संत सुरति में लीन हो जाते हैं। सुरति शब्द आता है बुद्ध से। बुद्ध स्मृति शब्द का उपयोग करते हैं--उसका स्मरण। जिसको गुरजिएफ ने सेल्फ रिमेंबरिंग कहा है--आत्मस्मरण। जिसको कृष्णमूर्ति अवेयरनेस कहते हैं--एक जागरूक भाव। उसको नानक सुरति कहते हैं।
सुरति बहुत बारीक शब्द है। और समझने के लिए थोड़े से परोक्ष में से उतरना जरूरी है। एक मां खाना बना रही है। वह खाना बनाती रहती है, उसका छोटा सा बच्चा खेल रहा है आस-पास। वह खाना बना रही है। जहां तक ऊपर से देखो, उसका सारा ध्यान खाना बनाने में लगा है। लेकिन उसकी सुरति बच्चे में लगी है। वह बच्चा कहीं गिर न जाए! वह कहीं सीढ़ी के करीब तो नहीं पहुंच गया? वह कहीं झूले से नीचे तो नहीं उतर गया? उसने कोई चीज हाथ में तो नहीं ले ली, जो नहीं

खानी है? काम में लगी है। लेकिन सारे काम में ओतप्रोत एक स्मरण है, वह बच्चे का है।
मां रात सोती है। आकाश में बादल गरजें, बिजली कड़के, तो भी नींद नहीं टूटती उसकी। और बच्चा थोड़ा सा कुनमुनाए, और उसकी नींद टूट जाती है। तूफान गुजरता रहे घर के ऊपर से, मां गहरी नींद में पड़ी रहती है। लेकिन बच्चा थोड़ी सी करवट ले, तो जल्दी उसका हाथ उठ जाता है। नींद में भी सुरति है। स्मरण बच्चे का बना है।
सुरति का अर्थ है, एक सातत्य स्मरण का--मनकों में धागे की तरह। सब तुम करते रहो संसार में, सुरति उसकी बनी रहे। उठो, बैठो, जो करने योग्य है करो। भागने से तो कुछ होगा नहीं। दूकान पर जाओगे, दफ्तर में जाओगे, फैक्टरी में काम करोगे, गड्ढा खोदोगे, धन भी कमाना होगा, बच्चों की चिंता भी लेनी होगी, सारा जाल है। इस सारे जाल के बीच, लेकिन स्मरण उसका बना रहे। यह सब ऊपर-ऊपर हो, भीतर-भीतर वह हो। यह सब तुम्हारे बाहर-बाहर रहे, वह तुम्हारे भीतर रहे। नाता उससे जुड़ा रहे।
इसलिए नानक कहते हैं, संसार छोड़ कर जाने की कोई भी जरूरत नहीं। सुरति
को पा लो कि तुम संन्यासी हो गए। सुरति सम्हल गयी कि सब सम्हल गया। और तुम जंगल भी भाग जाओगे तो क्या फायदा है, अगर सुरति संसार की बनी रही!
और अक्सर ऐसा होता है। लोग जंगल में बैठ जाते हैं जा कर, फिर यहां की याद करते हैं। और मन का तो यह ढंग ही है कि तुम जहां होते हो, वहां की फिक्र ही नहीं करता। जहां नहीं होते, वहां की फिक्र करता है। जब तुम यहां हो तब तुम्हें लगता है, हिमालय में बड़ा आनंद होगा। फिर तुम हिमालय पहुंच गए, तब तुम सोचते हो, पता नहीं उधर बहुत आनंद आ रहा हो, पूना में। और पता नहीं हम भटक गए, सारी दुनिया तो वहीं है। सभी तो गलत नहीं हो सकते। अब हम यहां बैठे- बैठे क्या कर रहे हैं झाड़ के नीचे? वहां भी तुम रुपए गिनोगे। वहां भी तुम हिसाब लगाओगे। वहां भी पत्नी और बच्चों के चेहरे तुम्हारे आसपास घूमेंगे। तुम रहोगे हिमालय में, लेकिन सुरति तो तुम्हारी यहां लगी रहेगी। नानक कहते हैं, रहो तुम कहीं भी, सुरति परमात्मा में हो।
स्तुति से कुछ न होगा, सुरति से होगा। क्योंकि स्तुति तो ऊपर-ऊपर होती है। सुरति भीतर-भीतर होती है। यह चिल्ला कर कहने की जरूरत नहीं कि तुम महान हो, कि मैं पापी हूं कि तुम पतितपावन हो, कि मैं भिखारी हूं और तुम दाता हो; यह कहने की क्या जरूरत? इसको चिल्लाने से क्या होगा? इसको तुम किसको बता रहे हो? किसको तुम यह समझा रहे हो?
नहीं! सुरति की जरूरत है, स्तुति की नहीं। याद रखो उसकी। वह भूले न! उसे तुम सम्हाले रहो भीतर। जैसे कि तुम्हें कोहिनूर हीरा मिल जाए, तुम उसे जल्दी से अपने खीसे में रख लो, गांठ में बांध लो। फिर तुम बाजार जाओगे, सब्जी खरीदोगे, घर लौटोगे, पत्नी से बात करोगे, लेकिन सुरति हीरे की बनी रहेगी। वह तुम्हारी गांठ में बंधा हुआ है। याददाश्त वहां लगी रहेगी। याददाश्त की चोट वहां पड़ती रहेगी। एक धीमी-धीमी भनक भीतर आती रहेगी कि हीरा खीसे में है। तुम बीच-बीच में उसे टटोल कर भी देख लोगे--है या नहीं! खो तो नहीं गया!
ऐसे ही तुम परमात्मा को सम्हालते रहो। और बीच-बीच में टटोल कर देखते रहो। रास्ते पर चलते एक क्षण को चौंक कर खड़े हो कर देख लो कि भीतर सुरति का धागा चल रहा है कि नहीं? खाना खाते वक्त एक क्षण रुक जाओ, आंख बंद करके देख लो कि भीतर उसकी याद चल रही है या नहीं?
धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, अभ्यास गहन होता जाता है। फिर तुम सोए भी रहो,
तो भी उसकी याद चलती रहती है। और जब उसकी याद चौबीस घंटे चलने लगती है, तब तुमने अपने और उसके बीच रास्ता बना लिया। तब तुम्हारे और उसके बीच सेतु बन गया। अब तुम जब चाहो आंख बंद करो और उसमें लीन हो जाओ। एक क्षण में रास्ता तैयार है। इधर तुमने आंख बंद की कि तुम उसमें लीन हुए। और जब तुम उससे लौटोगे वापस संसार में, तो ताजे, परिपूर्ण शक्ति से भरे, नए स्नान किए हुए, सद्यस्नात! इसलिए नानक कहते हैं, हजारों तीर्थों का स्नान सुरति में हो जाता है।
"स्तुति करने वाले उसकी स्तुति करते हैं, लेकिन उन्हें उसकी सुरति नहीं है। नदी और नाले समुद्र में गिरते हैं, लेकिन वे उसको जान नहीं सकते।"

नदी-नाले समुद्र में गिर जाते हैं। लेकिन इतना थोड़े काफी है कि समुद्र में गिरने से कोई जान लेगा? नदी-नाले को कोई होश नहीं। गिरते समुद्र में हैं, लेकिन होश न होने से कुछ भी पता नहीं। हम भी चौबीस घंटे परमात्मा में ही गिर रहे हैं। लेकिन हमें कोई होश नहीं है। चौबीस घंटे हम उसी के आसपास घूम रहे हैं। बार-बार उसमें गिरते हैं। हर मृत्यु में हम उसी में गिरते हैं और हर जन्म में हम उसी से पैदा होते हैं, लेकिन सुरति नहीं है।
तो हम भी नदी-नालों की भांति हैं। सागर में भी गिर जाते हैं तो पता नहीं चलता कि क्या हो रहा है! होश नहीं है; बेहोश हैं, मूर्च्छित हैं। एक नशे में चल रहे हैं। जागे नहीं हैं, सोए हुए हैं। एक तंद्रा पकड़े हुए है। नदी और नाले विराट सागर में गिर कर भी वैसे ही दीन बने रहते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता कि क्या हो गया!
हम भी प्रतिक्षण उसी में जाते हैं और आते हैं। अगर गौर करोगे और धीरे- धीरे सुरति जगेगी, तुम पाओगे हर श्वास उसी में जाती है और उसी से वापस लौटती है। श्वास बाहर जाती है, तब तुम परमात्मा में गए। श्वास भीतर लौटती है, तब परमात्मा तुम में आया। प्रतिपल श्वास-प्रश्वास में वही छा जाता है। और तब आनंद का कोई पारावार नहीं है। तब तुम्हारे जीवन में पहली बार धन्यता की प्रतीति होगी। और तब तुम कह पाओगे परिपूर्ण भाव से, तेरी अनुकंपा है। तब तुम कह पाओगे कि धन्यभागी हूं मैं। और तब तुम्हारे जीवन में आस्तिकता की पहली आभा उतरेगी।
स्तुति करने से कोई आस्तिक नहीं होता है, सुरति से कोई आस्तिक होता है।
"समुद्र के जैसे बादशाह और सुलतान, जिनके पास पहाड़ जितने माल-धन हों,
उस कीड़ी की बराबरी नहीं कर सकते जो तुझे मन से नहीं बिसुरती है।"
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु।
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि।।
एक छोटी सी कीड़ी भी, एक चींटी भी, जो तुझे याद रखती है; बड़े से बड़े सम्राट, जिनके पास समुद्र जैसा विशाल धन हो, पर्वतों के अंबार हों वैभव के, वे भी एक छोटी सी कीड़ी का मुकाबला नहीं कर सकते। क्योंकि उसने परम धन पा लिया। उसने सुरति पा ली। दरिद्र से दरिद्र, सुरति के मिलते ही महान से महान सम्राट हो जाता है। और महान से महान सम्राट भी सुरति के बिना दीन और दरिद्र बना रहता है।
एक ही दरिद्रता है, परमात्मा को भूल जाना। और एक ही समृद्धि है, उसकी याद को उपलब्ध हो जाना। जिसको उसकी सुरति जग गयी, उसने सब पा लिया, जो पाने जैसा है। चाहे उसके पास कुछ भी न हो, एक लंगोटी न हो, सिर पर छाया न हो, लेकिन जिसने उसकी याद को पा लिया, उसने सब पा लिया। उसके लिए पाने को कुछ भी न बचा। और चाहे तुम्हारे पास कितने ही महल हों, धन का अंबार हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, भीतर तुम दरिद्र और भिखारी ही रहोगे। भीतर तुम जानते ही रहोगे उस पीड़ा को, जो दरिद्रता की है।
नानक कहते हैं, एक ही धन है। और वह है, उसकी याद। और एक ही निर्धनता है।
और वह है, उसका विस्मरण।
तुम सोच लेना ठीक से। तुम धनी हो या गरीब? और जब तुम सोचो धनी या गरीब,
तो अपने बैंक के खाते के हिसाब से मत सोचना। वह धोखा है। तब तुम भीतर के खाते को खोलना, और वहां देखना कि कितनी सुरति लिखी है? बस, उसी मात्रा में तुम अमीर हो। और अगर जरा भी सुरति न हो, तो समझना कि अभी तो धन की खोज भी शुरू नहीं हुई। और तुम बाहर कितना ही इकट्ठा कर लो, उससे अंततः कोई फर्क न पड़ेगा।
सिकंदर मरा तो उसने कहा, मेरी अरथी को जब ले जाओ, तो मेरे दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके रहने देना। उसके वजीरों ने पूछा, हम समझे नहीं कारण। और ऐसा रिवाज नहीं है। हाथ तो अरथी के भीतर ही छिपाए जाते हैं। सिकंदर ने कहा, लेकिन रिवाज हो या न हो, तुम मेरे हाथ बाहर लटके रहने देना। उन्होंने पूछा, कारण? तो उसने कहा, मैं चाहता हूं कि लोग देख लें कि मैं भी खाली हाथ मर रहा हूं। मेरे हाथों में कोई संपदा नहीं है।

सिकंदर भी दीन-हीन मर जाते हैं। बड़े शक्तिशाली अंततः नपुंसक सिद्ध होते हैं। लेकिन एक कीड़ी भी उसकी याद से भर जाए तो सिकंदरों को फीका कर देती है।
नानक कौन हैं? न धन है, न पद है, न कोई साम्राज्य है, लेकिन कितने सम्राट फीके पड़ गए! और नानक उसकी सुरति के कारण बहुमूल्य हो गए। सम्राट आते-जाते रहेंगे, नानक टिकेंगे। पद-प्रतिष्ठाएं बनेंगी और मिटेंगी, नानक का मिटना मुश्किल है। क्योंकि जिसने उसका सहारा ले लिया जो कभी नहीं मिटता, उसका मिटना असंभव हो जाता है।
तुम एक छोटी कीड़ी भी बने रहो तो कोई हर्जा नहीं; बस, उसकी याद न भूले। तुम बड़े सम्राट होने के पागलपन में मत पड़ना। क्योंकि अक्सर ऐसा होता है कि जितना तुम बाहर का धन इकट्ठा करते हो, उतनी ही उसकी याद भूलती है। क्योंकि बाहर का धन इकट्ठा करने में भी उसको भूलना जरूरी है। तुम उसे याद रखोगे तो बाहर का धन तुम इकट्ठा कैसे करोगे? बाहर का धन मिट्टी मालूम पड़ेगा। मिट्टी को कोई इकट्ठा करता है? जिसके पास उसकी याद है, वह बाहर की प्रतिष्ठा की चिंता ही न करेगा। क्योंकि उसमें कुछ सार ही नहीं है।
जैसे छोटे बच्चे कंकड़-पत्थर इकट्ठा करते हैं। तुम उनसे कहते हो, क्या पागलपन कर रहे हो? फेंको! ये सब कंकड़-पत्थर हैं। लेकिन उनको वे बड़े बहुमूल्य मालूम पड़ते हैं। वे चोरी-छिपे फिर उनको घर के भीतर ले आते हैं। रात मां को फिर उनके खीसे में से वे ही पत्थर निकालने पड़ते हैं। लेकिन यही बच्चा कल बड़ा हो जाएगा, इसकी समझ जगेगी, प्रौढ़ता आएगी, फिर यह पत्थरों को इकट्ठा नहीं करेगा। यही बात वह अपने बच्चों को कहेगा, फेंको ये पत्थर! संसार में तुम जो इकट्ठा कर रहे हो, वह तभी तक बहुमूल्य है, जब तक सुरति की समझ नहीं जगी। जैसे ही सुरति जगी, तुम प्रौढ़ हो गए। तब एक समझ का दीया जला। उस दीए में तुम पाओगे, यह सब तो कूड़ा-करकट है, कचरा है। यह मैं क्यों इकट्ठा कर रहा था? तुम हैरान होओगे कि मैं क्यों पागल था इन सबके पीछे? यह सब पा कर मैंने क्या पाया?
यह सब अचानक ही व्यर्थ और असार हो जाएगा। सुरति के जगते ही जीवन रूपांतरित हो जाता है। एक क्रांति घटित होती है। पुराना तुम्हारा जो व्यक्तित्व था वह मर जाता है। नए का जन्म होता है। इस नए के जन्म की तलाश ही धर्म है।
इसको तुम सोचना। इसको तुम मनन करना। इसको तुम विचारना कि तुम्हारे भीतर कहीं भी सुरति के लिए थोड़ी सी कोई जगह है? कोई कोना? तुम्हारे भीतर कोई मंदिर है जहां सुरति गूंजती है? तुम्हारे भीतर सुरति का सुर चलता है? तुम्हें उसकी याद बनी रहती है? या तुम भूल-भूल जाते हो? या तुम उसे याद ही नहीं करते?
इसका अगर तुम विचार भी करने लगे, इस पर अगर तुम सोचने भी लगे, तो यह सोचना और विचारना भी उसकी सुरति बनने में कारण हो जाएगा। क्योंकि जैसे- जैसे तुम विचारोगे, आखिर तुम उसी को विचारोगे! जैसे-जैसे तुम याद करोगे, उसी की याद करोगे। तुम यह भी अगर सोचोगे कि मुझ में उसकी याद नहीं है, तो भी उसकी याद आएगी।
और यह याद आती रहे, धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर यह चोट पड़ती रहे, तो निशान गहरा बन जाता है। और पत्थर पर भी निशान बन जाते हैं, तो यह तो हृदय है, इस पर तो निशान बन ही जाएगा।
कबीर ने कहा है, रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान।
रस्सी भी आती-जाती है कुएं की सिल पर तो निशान बन जाता है। तो सुरति की रस्सी अगर तुम्हारे हृदय पर आती-जाती रहेगी, तो पत्थर पर निशान बन जाते हैं, हृदय पर क्यों न बनेगा? हृदय पर भी निशान बन जाएंगे। और हृदय से कोमल तो इस जगत में कुछ भी नहीं है। बस! चाहिए इतना कि सुरति की रस्सी आती-जाती रहे।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
ग्यारहवां प्रवचन

ऊचे उपरि ऊचा नाउ

पउड़ीः 24
अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु।।
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु।।
अंतु न जापै कीता आकारु। अंत न जापै पारावारु।।
अंत कारणि केते बिललाहि। ताके अंत न पाए जाहि।।
एहु अंत न जाणै कोइ। बहुता कहिऐ बहुता होइ।।
वडा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे उपरि ऊचा नाउ।।
एवडु ऊचा होवे कोइ। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ।।
जेवड आपि जाणै आपि आप। "नानक" नदरी करमी दाति।।

पउड़ीः 25
बहुता करम लिखिआ न जाइ। बडा दाता तिलु न तमाइ।।
केते मंगहि जोध अपार। केतिआ गणत नही वीचारु।।
केते खपि तुटहि वेकार।
केते लै लै मुकरु पाहि। केते मूरख खाही खाहि।।
केतिआ दूख भूख सद मार। एहि भी दाति तेरी दातारि।।
बंदि खलासी भाणै होइ। होरु आखि न सकै कोइ।।
जे को खाइकु आखणि पाइ। ओहु जाणै जेतिआ मुहि खाइ।।
आपे जाणै आपे देइ। आखहि सि भि केई केइ।।
जिसनो बखसे सिफति सालाह। "नानक" पातिसाही पातिसाहु।।

उसकी महिमा का कोई अंत नहीं है। जो भी हम कहें वह थोड़ा है। और जो भी हम कहें उससे हमारी असमर्थता पता चलती है।
रवींद्रनाथ मरणशय्या पर थे। एक पुराने मित्र ने उनसे कहा कि आप तो प्रसन्न भाव से विदा हो सकते हैं। क्योंकि जो करना था आपने कर लिया। खूब सम्मान पाया, गीत लिखे, सारे जगत में ख्याति पायी, महाकवि की तरह लाखों लोगों ने भक्ति दी; आप तो निश्चिंत मन से जा सकते हैं। कुछ अधूरा नहीं छोड़ा।
रवींद्रनाथ ने आंख खोली और उन्होंने कहा कि मत कहो ऐसी बात। क्योंकि मैं तो परमात्मा से यही प्रार्थना कर रहा था कि जो मैं गाना चाहता था, वह तो अभी तक गा नहीं पाया। जो कहना चाहता था, वह तो अभी तक कहा नहीं। और अभी तक तो केवल साज बिठाने में ही समय बीत गया। अभी तेरी महिमा का गान शुरू कहां हुआ था! और यह तो विदा का क्षण आ गया।
रवींद्रनाथ ने छः हजार गीत लिखे हैं। और रवींद्रनाथ के सारे गीत ही परमात्मा की महिमा के गीत हैं। फिर भी रवींद्रनाथ कहते हैं कि अभी साज ही बिठा पाया था। अभी संगीत शुरू कहां हुआ था? और यह जाने का वक्त आ गया।
यही नानक कहते हैं। यही सभी ऋषियों का अनुभव है कि जो भी हम कहें, वह साज का बिठाना ही सिद्ध होता है। उसका गीत गाया ही नहीं जा सकता।
कौन गाएगा उसका गीत? हम इस छोटे से व्यक्तित्व में कैसे उस विराट को समाएंगे? मुट्ठी में आकाश को बांधने की कोशिश कैसे पूरी होगी? हमारे सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं। और सब कर के ही हमें सिर्फ अपनी असमर्थता का पता चलता है।
पर वही पता चल जाए तो समझ का जन्म हुआ। यह ख्याल में आ जाए कि मैं बहुत छोटा हूं, तो ही उसके बड़े होने का ख्याल पैदा होगा। नासमझों को लगता है कि हम काफी बड़े हैं। समझदारों को लगता है कि हम बहुत छोटे हैं। जैसे-जैसे समझ बढ़ती है वैसे-वैसे हम छोटे होते जाते हैं, जैसे-जैसे हम छोटे होते हैं, उसका विराट प्रकट होता है। एक ऐसी घड़ी भी आती है इस खोज में, जब कि तुम बिल्कुल ही खो जाते हो और वही शेष रह जाता है।

कहने वाला खो जाता है, कहेगा क्या? सिर्फ वही रह जाता है। उसकी महिमा, उसका अहर्निश नाद। देखने वाला खो जाता है, दृश्य ही रह जाता है। तुम तो मिट ही जाते हो, कौन उसकी खबर देगा? कौन उसके संबंध में कुछ कहेगा?
इसलिए जो भी आदमी ने कहा है, वह सारी चर्चा असमर्थता की चर्चा है। असहाय अवस्था की, हेल्पलेसनेस की। जैसे कोई बहुत बड़ी घटना के करीब आ कर अवाक हो जाता है, वैसे ही परमात्मा के करीब आ कर आदमी अवाक हो जाता है। अवाक का अर्थ है, जहां "वाक", वहां वाणी खो जाती है। जहां बोलना नहीं होता। हतप्रभ! वाणी रुद्ध, सांस तक ठहर जाती है। उसके जानने के क्षण में तुम बिल्कुल ही रुक जाते हो। न विचार की गति होती है, न शब्द की गति होती है, न श्वास की गति होती है। हृदय भी नहीं धड़कता। क्योंकि उतनी धड़कन भी चूकना हो जाएगी। उतना कंपन भी बिछुड़ना हो जाएगा।
उस अवाक क्षण में नानक ने ये वचन कहे हैं। ये वचन किसी को समझाने को नहीं, अपनी व्यथा को प्रकट करने को कहे हैं।
नानक कहते हैं, "अंत नहीं उसके गुणों का। न ही उसके कथन का अंत है।"
अंतु न सिफती कहणि न अंतु। अंतु न करणै देणि न अंतु।।
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु। अंतु न जापै किआ मनि मंतु।।
अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु।।
"उसके गुणों का अंत नहीं है, न उसके कथन का ही अंत है। उसके कामों का अंत नहीं, और उसके दानों का भी अंत नहीं। न उसके दर्शन का अंत है, और न उसके श्रवण का अंत है। उसके मन के रहस्यों का भी अंत नहीं जाना जा सकता। उसके किए हुए सृष्टि-प्रसार का कोई अंत नहीं। उसके ओर-छोर का अंत नहीं। उसका अंत जानने के लिए कितने बिल्लाते हैं, तो भी उसका अंत नहीं पाया जा सकता। कोई भी उसका अंत नहीं जानता है।"
इन वचनों में तीन बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं। एक, जब तक तुम्हें लगता है कि तुमने परमात्मा को जाना तब तक तुम भ्रांति में हो। तब तक तुम किसी भूल में हो। क्योंकि जिसे तुम ने जान लिया, वह परमात्मा न होगा। जिसे तुमने नाप लिया, वह परमात्मा न होगा। जिसकी थाह तुम ने पा ली, वह परमात्मा न होगा।
तुम किसी ताल-तलैया में डुबकी लगा रहे होओगे, तुम सागर के करीब नहीं पहुंचे। तुम किसी छोटी-मोटी घाटी में उतर गए होओगे। तुम ने उसके अंतहीन खड्ड को नहीं जाना, जहां गिरना शुरू होता है तो अंत नहीं आता। तुमने कोई छोटी-मोटी ऊंचाई पा ली होगी। गांव के पास का कोई टीला तुम चढ़ गए होगे।
लेकिन तुमने उसका गौरीशंकर नहीं जाना जहां चढ़ने का कोई उपाय नहीं है।
हिमालय के गौरीशंकर पर तो हम चढ़ जाते हैं--देर-अबेर, कठिनाई से, मुसीबत से।
उसके गौरीशंकर पर हम कभी न चढ़ पाएंगे। यह असंभव है।
यह असंभव क्यों है? इसे थोड़ा समझ लें।
यह असंभव इसलिए है कि हम उसके ही अंग हैं। और अंग अंगी को कैसे जानेगा?
यह मेरा हाथ है, यह मुझे कैसे जानेगा? और इस हाथ से मैं दुनिया की सब चीजें पकड़ लूं, लेकिन इस हाथ से मैं अपने को कैसे पकड़ पाऊंगा? यह मेरी आंख है। यह आंख सब कुछ देख ले, यह मुझे कैसे देख पाएगी? और पूरा-पूरा कैसे देख पाएगी? यह आंख मेरा ही हिस्सा है।
अंश कभी अंशी को नहीं जान सकता। झलकें मिलेंगी, लेकिन पूर्णता कभी न होगी। हम इस विराट के अंश हैं, इसलिए कठिनाई है। अगर हम अलग होते परमात्मा से, तो हम उसे जान लेते। हम अगर भिन्न होते, तो हम उसे पकड़ लेते। हम अगर पृथक होते, तो हम उसके चारों ओर चक्कर लगा कर परिक्रमा कर लेते। लेकिन हम उसके ही हिस्से हैं। उसकी ही धड़कन हैं हम। उसकी ही श्वास-प्रश्वास हैं। कैसे उसका चक्कर लगाएं? कैसे उसकी परिक्रमा करें? कैसे उसे पकड़ें? मनुष्य एक कण है उस विराट में। एक बूंद है उस सागर में। तो यह छोटी सी बूंद कैसे सागर को पकड़ ले? यह छोटी सी बूंद कैसे पूरे सागर को जान ले?
यह बड़े मजे की बात है। यह बूंद सागर में है। और यह बूंद सागर ही है। तो
एक अर्थ में तो सागर को जानती है। बड़े गहन अर्थ में सागर को जानती है। क्योंकि सागर इससे भिन्न नहीं है। लेकिन फिर भी एक अर्थ में सागर को नहीं जान सकती, क्योंकि सागर अभिन्न है।

यह धार्मिक जीवन का सब से बड़ा पैराडाक्स है, सब से बड़ा विरोधाभास है।
परमात्मा को हम जानते भी हैं एक अर्थ में, क्योंकि हम कैसे बिना जाने रहेंगे? वह हममें धड़कता है, हम उसमें धड़कते हैं। हम उससे दूर नहीं हैं। इंच भर का फासला नहीं है। इसलिए हम उसे जानते भी हैं एक अर्थ में, पहचानते भी भलीभांति हैं। और फिर भी बिल्कुल नहीं जानते। क्योंकि हम तो अंश हैं। अंश पूर्ण को कैसे जान सकेगा? हम उसमें डूबते हैं, तैरते हैं। हम उसमें रह कर कभी उसे विस्मरण भी करते हैं, कभी उसका स्मरण भी करते हैं। कभी हम पास लगते हैं, कभी दूर लगते हैं। और कभी-कभी किन्हीं स्पष्टता के क्षणों में ऐसा लगता है, जान लिया। हृदय आपूर हो जाता है, पहचान लिया। रिकग्निशन हो गया। आ गयी प्रज्ञा, बोध हुआ। फिर बोध खो जाता है। फिर गहन अंधकार हो जाता है। फिर हम डगमगाने लगते हैं। लेकिन जानने और न जानने के मध्य का यह जो क्षण है, यही धार्मिक व्यक्ति की स्थिति है।
बुद्ध से कोई पूछता है परमात्मा के संबंध में, वे चुप रह जाते हैं। क्या कहें उसके संबंध में? विरोधाभास कहे नहीं जा सकते। अगर बुद्ध कहें, मैं जानता हूं, तो भूल हो गयी। क्योंकि कौन कह सकता है कि जानते हैं? और बुद्ध अगर कहें कि नहीं जानता, तो गलत बात है, क्योंकि जानते हैं।
एक दिन सुबह-सुबह एक पंडित ने बुद्ध को पूछा, बुद्ध चुप ही रहे। वह चला गया तो आनंद ने बुद्ध को कहा कि आप कुछ तो बोलते! वह बहुत बड़ा पंडित है। वह बड़ा जानकार है और योग्य अधिकारी आदमी था। आपको उसे कुछ कहना था।
बुद्ध ने कहा, क्योंकि वह अधिकारी था इसलिए बोलना और भी मुश्किल हो गया। यदि मैं कहूं है, तो गलत है। क्योंकि जब तक पूरा न जान लिया जाए, किस तरह कहो कि है? किस तरह कहो कि मैंने जान लिया? कौन कहे कि मैंने जान लिया? सब दावे अहंकार के हैं। और अहंकार तो उसे कभी भी नहीं जान सकता। और अगर मैं कहूं कि नहीं है, या कहूं कि मैंने नहीं जाना, तो भी गलत है, क्योंकि मैं जानता हूं। और वह आदमी योग्य था, समझदार था, इसलिए चुप रह जाना पड़ा। और वह आदमी मेरी चुप्पी का अर्थ समझा, क्योंकि वह आदमी झुक कर प्रणाम करके गया। तभी आनंद को ख्याल आया कि वह आदमी बहुत अहोभाव से झुक कर प्रणाम कर के गया है। तो आनंद ने पूछा कि हैरानी की बात है, यह मेरे ख्याल में न आया। क्या वह समझ गया?
तो बुद्ध ने कहा कि घोड़े तीन तरह के होते हैं। एक; तुम उन्हें मारो तभी
वे इंच-इंच कर के सरकेंगे। दूसरे; उन्हें मारने की उतनी जरूरत नहीं, धमकाना काफी है। और तीसरे; उन्हें धमकाने की भी जरूरत नहीं, कोड़ा बताने की भी जरूरत नहीं, कोड़े की छाया काफी है--शैडो आफ दि व्हिप! यह तीसरी तरह का घोड़ा था। इसे न मारने की जरूरत थी, न धमकाने की जरूरत थी, इसे सिर्फ छाया बता दी कोड़े की और वह समझ गया और यात्रा पर निकल गया।
शब्द तो कोड़ा है, मौन छाया है। शब्द की जरूरत पड़ती है, क्योंकि वह घोड़ा पास नहीं, जो कोड़े की छाया मात्र से यात्रा पर निकल जाए। बुद्ध ने कहा, वह आदमी समझ गया।
यही तो स्थिति है कि जो जान लेता है, वह कह नहीं सकता कि मैं जानता हूं;
और यह भी नहीं कह सकता कि मैं नहीं जानता हूं। दोनों के मध्य में वैसी घटना घटती है।
नानक कहते हैं, अंत नहीं उसका।
जितना कहो थोड़ा है। कहते चले जाओ और तुम पाते हो कि वह तो सदा शेष है।
तुमने कुछ भी कहा नहीं। कथन हमेशा अधूरा है। सभी शास्त्र अधूरे हैं। कोई पूरा शास्त्र पृथ्वी पर नहीं है। हो नहीं सकता। क्योंकि पूरे शास्त्र का अर्थ ही यह होगा, जिसने परमात्मा को पूरा कह दिया। सभी शास्त्र अधूरे हैं। और सभी शास्त्र उन घोड़ों के लिए हैं जो कोड़ों की छाया नहीं समझ सकते।
"न अंत है उसके गुणों का, न उसके कथन का अंत है; न उसके कामों का, न उसके दानों का।"
जैसे-जैसे व्यक्ति के जीवन में धर्म की गहराई बढ़ती है, वैसे-वैसे उसके काम तो दिखायी पड़ते ही हैं, उसके दान दिखायी पड़ने शुरू होते हैं।
यह दूसरी बात है। काम तो चारों तरफ फैला हुआ है। लेकिन अधिक लोगों को
तो काम भी दिखायी नहीं पड़ता। वे कहते हैं, कहां है परमात्मा? वे पूछते हैं, कौन है स्रष्टा? सृष्टि को देख कर भी उन्हें इशारा नहीं मिलता। यह चारों

तरफ इतना विस्तार है, यह उन्हें दिखायी ही नहीं पड़ता। वे पूछते हैं, किसने बनाया? कौन है बनाने वाला? है भी कोई बनाने वाला? इतने विराट कार्य-जाल के पीछे उन्हें कोई हाथ नहीं दिखायी पड़ता। और मजे की बात है, यही वे लोग हैं, जो दूसरी दिशाओं में अंधों की तरह मान लेते हैं।
आज तक किसी वैज्ञानिक ने इलेक्ट्रान नहीं देखा। विद्युत का आखिरी कण, जिसको विज्ञान कहता है, जिसके आधार से सारा जगत बना है। इलेक्ट्रान के ही संगठन से सारा जगत निर्मित है। लेकिन आज तक किसी वैज्ञानिक ने इलेक्ट्रान देखा नहीं। और न आशा है कभी देख पाने की। फिर वैज्ञानिक कैसे यह मान लेता है कि इलेक्ट्रान है? वह कहता है, उसके परिणाम दिखायी पड़ते हैं।
कारण सूक्ष्म हैं, परिणाम स्थूल हैं। हाथ नहीं दिखायी पड़ते परमात्मा के, लेकिन कृत्य दिखायी पड़ता है। इलेक्ट्रान को तो मान लेते हैं हम, क्योंकि परिणाम दिखायी पड़ते हैं। परमात्मा को इनकार करते हैं। परिणाम चारों तरफ मौजूद हैं।
फूल खिलता है, यह परिणाम है। लेकिन कोई हाथ छिपे उसे खिलाते हैं, अन्यथा कैसे फूल खिलेगा? बीज टूटता है, यह परिणाम है। लेकिन कोई बीज को तोड़ता है, अंकुरित करता है। और जहां पत्थर जैसा लग रहा था बीज, वहां सुकोमल फूल खिलने शुरू हो जाते हैं।
सब तरफ उसके हस्ताक्षर हैं, लेकिन हाथ नहीं दिखायी पड़ते। हाथ दिखायी पड़ेंगे भी नहीं। क्योंकि जीवन सूक्ष्म और स्थूल का संतुलन है। कारण सदा सूक्ष्म होता है, कार्य सदा स्थूल होता है। कारण दिखायी नहीं पड़ते। परमात्मा महाकारण है। लेकिन कार्य तो चारों तरफ दिखायी पड़ रहे हैं।
तो तीन तरह के लोग हैं जगत में। तीन तरह के घोड़े, जिनको बुद्ध ने कहा। एक, जिनको उसके काम भी दिखायी नहीं पड़ते। बिल्कुल अंधे! वे पूछते हैं, कैसा परमात्मा? कैसा स्रष्टा? क्या सबूत है? इतनी बड़ी सृष्टि सबूत नहीं है! वे और कोई सबूत चाहते हैं। इतना बड़ा प्रमाण प्रमाण नहीं है, वे और कोई प्रमाण चाहते हैं! और जिनको इतना बड़ा प्रमाण नहीं दिखता, उन्हें कोई और प्रमाण समझ में आ सकेगा? इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है कि जीवन एक क्रमबद्ध गति से, संतुलित गति से चल रहा है। विराट-लीला में कहीं भी कोई विच्छेद नहीं है। धारा अनवरत है। अहर्निश एक संगीत बज रहा है। जैसा होना चाहिए वैसा ही हो रहा है। यह जगत कोई केयास नहीं, कासमास है। यह कोई ऐसा ही संयोगवशात घट रहा है, ऐसा नहीं है। इसके पीछे सुनिश्चित नियम काम कर रहा है।
उसी नियम को हम ने धम्म कहा है, धर्म कहा है। लाओत्से ने ताओ कहा है। नानक ने हुक्म कहा है--उस नियम का नाम है। जब नानक कहते हैं, सब उसके हुक्म से हो रहा है, तो तुम ऐसा मत समझना कि वह कहीं खड़ा है हेड कांस्टिबल की तरह और कह रहा है, करो! हुक्म का मतलब है कि जगत एक आर्डर है। एक व्यवस्था है। एक अराजकता नहीं है। यहां कुछ भी नहीं हो रहा है। होने के पीछे सुनियोजित हाथ है। सुनियोजित व्यवस्था है। होने के पीछे प्रयोजन है। जो हो रहा है वह एक लक्ष्य की तरफ, एक अंत की तरफ विकासमान है।
अगर तुम्हें सृष्टि नहीं दिखायी पड़ती तो तुम बिल्कुल अंधे हो। बहुत लोग हैं जिनको सृष्टि के पीछे कोई सृजन का हाथ नहीं दिखायी पड़ता। एक छोटी सी मूर्ति रखी हो, तो तुम तत्क्षण पूछते हो, किसने बनायी? एक छोटा सा चित्र टंगा हो दीवाल पर, तो तुम तत्क्षण पूछते हो, कौन है चित्रकार? तुम कभी भी नहीं सोचते कि अनायास, संयोगवशात यह मूर्ति बन गयी होगी। अनायास, संयोगवशात, प्राकृतिक कारणों से यह चित्र टंग गया होगा।
लेकिन इतना विराट चित्र टंगा है चारों तरफ, पत्ती-पत्ती पर उसकी कला है, और तुम्हें परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता! तुमने जैसे पक्का ही कर रखा है उसकी तरफ पीठ रखने का। जैसे तुम न देखने की जिद कर रहे हो। जैसे तुम देखना ही नहीं चाहते। जैसे कि देखने में तुम्हें खतरा मालूम पड़ रहा है। जैसे कि देखने से तुम डरे हुए हो।
निश्चित ही डर है। क्योंकि जैसे ही तुम्हें उसका हाथ दिखायी पड़ेगा, तुम जैसे हो वैसे ही न रह सकोगे। जिसको भी परमात्मा के कृत्य की भनक पड़ जाएगी, उसे पूरी जिंदगी बदलनी पड़ेगी। क्योंकि अगर उसका हाथ सब तरफ है, तो तुम जैसा कर रहे हो अभी तक, वैसा ही न कर पाओगे। तुम्हारा सारा आचरण गलत हो

जाएगा। अभी तुम ऐसे चल रहे हो जैसे कोई परमात्मा नहीं है। करो दुर्व्यवहार, करो पाप, करो अनाचरण। अभी जो भी करना है करो, क्योंकि कोई परमात्मा नहीं है। अभी तुम्हें जैसे पूरी छूट है।
जैसे ही तुम्हें उसका हाथ दिखायी पड़ेगा, तुम्हारी छूट समाप्त हो जाएगी। तब तुम्हें सोच कर करना पड़ेगा। तब तुम्हें विचार कर करना पड़ेगा।
तब तुम्हें ज्यादा ध्यान और सुरति रखनी पड़ेगी। क्योंकि वह देख रहा है।
क्योंकि वह मौजूद है। क्योंकि सब जगह वह छिपा है। और तुम किसी के साथ भी कुछ करो, तुम उसी के साथ कर रहे हो। जेब काटो किसी की, उसी की ही कटेगी। चोरी करो किसी की, उसी की ही होगी। हत्या करो किसी की, तुम उसे ही मारोगे।
इसलिए आदमी का एक बड़ा वर्ग उसे देखना ही नहीं चाहता। उसको देखने में झंझट है। उसकी मौजूदगी--तुम वही न रह सकोगे, जो तुम हो। तुम्हें आमूल क्रांति से गुजरना पड़ेगा। तुम्हें जड़-मूल बदल जाना पड़ेगा। और यह बदलाहट इतनी बड़ी है कि इस झंझट से बेहतर यही है कि तुम उसे इनकार करते चले जाओ। नीत्से ने सौ साल पहले कहा है कि गाड इज डेड एंड नाउ मैन इज टोटली फ्री--ईश्वर मर गया है और आदमी अब परिपूर्ण स्वतंत्र है। वही परिपूर्ण स्वतंत्रता चाहने के लिए तुम ईश्वर को इनकार करते हो। तब तुम्हें छूट है। तब तुम कुछ भी चाहो, करो। तब कोई नहीं है जिसके हाथ में निर्णय है। तब तुम स्वच्छंद हो। जो स्वच्छंद रहना चाहता है, वह परमात्मा को न देखने की जिद करता रहेगा। तुम उसे कितना ही दिखाओ, वह इनकार करता रहेगा।
और इनकार किया जा सकता है। क्योंकि स्थूल कृत्य दिखायी पड़ता है, सूक्ष्म कर्ता तो दिखायी नहीं पड़ता। तो लोग कहते हैं, सृष्टि अपने आप चल रही है। सब अपने आप हो रहा है। लेकिन यही तो परमात्मा की परिभाषा है कि जो अपने आप चल रहा है और अपने आप हो रहा है। जो स्वयंभू है।
दूसरा वर्ग है, जो परमात्मा के काम तो देख लेता है और उसके छिपे हाथ को
भी स्वीकार कर लेता है, लेकिन वह स्वीकृति बौद्धिक है। वह धमकी में आ गया है। वह डरा हुआ है। वह भयभीत है। तुम ऐसे ही आदमी को मंदिर में, गुरुद्वारे में, मस्जिद में प्रार्थना करते पाओगे। नंबर दो का आदमी। वह भय के कारण वहां गया है। वह धमकी में आ गया है। जिंदगी का कोड़ा उस पर जोर से पड़ गया है। वह डरा है। वह प्रार्थना कर रहा है। वह मांग रहा है सुरक्षा, आश्वासन, धन, प्रतिष्ठा, पद। वह कुछ मांग ले कर गया है।
भय हमेशा भिखारी है। और भय हमेशा मांगता है, कुछ मिल जाए, कुछ मिल जाए।
वह कामों की थोड़ी सी भनक उसके कान में पड़ी है। और उसे थोड़ा सा एहसास हुआ है भय के कारण, कि परमात्मा है, तो वह डरा हुआ है। लेकिन उसे तीसरी बात का कोई पता नहीं चल रहा है--परमात्मा के दानों का। इसलिए तो वह मांग रहा है। तीसरा आदमी है--जिसको नानक भक्त कहेंगे--उसे कृत्य दिखायी पड़ रहे हैं, चारों तरफ सृष्टि उसका हाथ बता रही है, और कृत्य ही नहीं दिखायी पड़ रहे, उसे परमात्मा का दान, उसका प्रसाद भी दिखायी पड़ रहा है। प्रसाद को देखना सूक्ष्म बात है। वह कोड़े की छाया को देखना है। उसे दिखायी पड़ रहा है कि अहर्निश उसका दान मिल रहा है। मांगने को और बचा क्या है? मांगना क्या है! सिर्फ उसे धन्यवाद देना है।
इसलिए परम भक्त मंदिर धन्यवाद देने जाता है, मांगने नहीं। उसकी कोई मांग ही नहीं है। अगर परमात्मा सामने खड़ा हो कर भी उसको कहे कि तू कुछ मांग ले, तो भी वह मांगेगा नहीं। क्योंकि वह कहेगा, सब दिया ही हुआ है। सब पहले से ही जरूरत से ज्यादा दिया हुआ है। मेरी योग्यता से ज्यादा तुमने मुझे पहले ही दिया हुआ है। किस मुंह से मांगूं! और मांगने में तो शिकायत होगी कि तुमने कुछ कम दिया है।
तुम्हें जीवन मिला है, यह क्या कम है? लेकिन जीवन की तुम कोई कीमत नहीं करते।
मैंने सुना है कि एक कंजूस--महाकंजूस--की मौत करीब आयी। उसने करोड़ों रुपए इकट्ठे कर रखे थे। और वह सोच रहा था कि आज नहीं कल जीवन को भोगूंगा। लेकिन इकट्ठा करने में सारा समय चला गया; जैसा कि सदा ही होता है। जब मौत ने दस्तक दी, तब वह घबड़ाया कि समय तो चूक गया। धन भी इकट्ठा हो गया, लेकिन भोग तो मैं पाया नहीं। सोच ही रहा था कि भोगना है। यह तो वह जिंदगी भर से सोच रहा था और स्थगित कर रहा था कि जब सब हो जाएगा तब भोग लूंगा।

उसने मौत से कहा कि मैं एक करोड़ रुपए दे देता हूं; सिर्फ चौबीस घंटे मुझे मिल जाएं। क्योंकि मैं भोग तो पाया ही नहीं। मौत ने कहा कि यह सौदा नहीं हो सकेगा। उसने कहा कि मैं पांच करोड़ दे देता हूं, मैं दस करोड़ दे देता हूं--एक चौबीस घंटे! आखिर वह इस बात पर राजी हो गया कि मैं सब दे देता हूं--सिर्फ चौबीस घंटे!
यह सब उसने इकट्ठा किया पूरा जीवन गंवा कर। अब वह सब देने को राजी है चौबीस घंटे के लिए। क्योंकि न तो उसने कभी खुले मन से सांस ली, न कभी फूलों के पास बैठा, न उगते सूरज को देखा, न चांद-तारों से बात की, न खुले आकाश के नीचे हरी दूब पर कभी क्षण भर लेटा। जीवन को देखने का मौका न मिला। धन इकट्ठा करता रहा और सोचता रहा, आज नहीं कल, जब सब मेरे पास होगा, तब भोग लूंगा। सब देने को राजी है!
लेकिन मौत ने कहा कि नहीं। कोई उपाय नहीं। तुम सब भी दो, तो भी चौबीस घंटे मैं नहीं दे सकती हूं। कोई उपाय नहीं, समय गया। तुम उठो, तैयार हो जाओ।
तो उस आदमी ने कहा, एक क्षण! वह मेरे लिए नहीं, मैं लिख दूं, मेरे पीछे आने वाले लोगों के लिए। मैंने जिंदगी गंवायी इस आशा में कि कभी भोगूंगा, और जो मैंने कमाया उससे मैं मृत्यु से एक क्षण भी लेने में समर्थ न हो सका। उस आदमी ने यह एक कागज पर लिख दिया और खबर दी कि मेरी कब्र पर इसे लिख देना।
सभी कब्रों पर यही लिखा हुआ है। तुम्हारे पास पढ़ने की आंखें हों तो पढ़ लेना। और तुम्हारी कब्र पर भी यही लिखा जाएगा, अगर चेते नहीं। अगर तुम देखो, तो तुम्हें जो मिला है वह अपरंपार है।
जीवन का कोई मूल्य है? एक क्षण के जीवन के लिए तुम कुछ भी देने को राजी
हो जाओगे। लेकिन वर्षों के जीवन के लिए तुमने परमात्मा को धन्यवाद भी नहीं दिया। मरुस्थल में मर रहे होगे प्यासे, तो एक घूंट पानी के लिए तुम कुछ भी देने को राजी हो जाओगे। लेकिन इतनी सरिताएं बह रही हैं, वर्षा में इतने बादल तुम्हारे घर पर घुमड़ते हैं, तुमने एक बार उन्हें धन्यवाद नहीं दिया। अगर सूरज ठंडा हो जाएगा तो हम सब यहीं के यहीं मुर्दा हो जाएंगे, इसी वक्त! लेकिन हमने कभी उठ कर सुबह सूरज को धन्यवाद न दिया!
असल में आदमी का एक बड़ा अदभुत तर्क है। जो उसके पास होता है वह उसे दिखायी नहीं पड़ता। जो नहीं होता है वह दिखायी पड़ता है। जब तुम्हारा दांत एक टूट जाएगा, तब तुम्हारी जीभ बार-बार उसी जगह जाएगी। जब तक दांत था तब तक कभी न गयी। खाली जगह को टटोलेगी। तुम चेष्टा भी करोगे कि जीभ को वहां न ले जाएं, क्या सार है? लेकिन जीभ वहीं-वहीं जाएगी।
आदमी का मन खाली जगह को टटोलता है। भरी जगह के प्रति अंधा है, खाली के प्रति आंखें हैं। जो तुम्हारे पास है, तुमने कभी उसका हिसाब लगाया है? और जब तक तुम्हें वह हिसाब साफ न हो जाए, तुम परमात्मा के दानों का हिसाब न लगा पाओगे। वे अनंत हैं।
लेकिन कम से कम जो तुम्हें मिला है, वहां से तो तुम सोचो। जो तुमने पाया है, उसे तुम देखो। और चारों तरफ उसके दानों की वर्षा हो रही है। जैसे हर कृत्य के पीछे उसका हाथ है, वैसे ही हर कृत्य के पीछे उसका दान है। यह पूरा अस्तित्व तुम्हारे लिए खिल रहा है। यह पूरा अस्तित्व उसकी भेंट है। और जब कोई इसको देख पाता है, तब एक नयी तरह की भक्ति का जन्म होता है।
एक है नास्तिक, वह अकड़ा हुआ है अहंकार से। एक है आस्तिक, वह कंप रहा है
भय से। वे दोनों ही धार्मिक नहीं हैं। धार्मिक है तीसरा व्यक्ति, जो नाच रहा है अहोभाव से। जो आनंदमग्न है कि जो मिला है वह अपरंपार है।
नानक कहते हैं, "न उसके कृत्यों का कोई अंत है, न उसके दानों का कोई अंत है। और उसके मन के रहस्यों का भी अंत जाना नहीं जा सकता। उसके किए हुए सृष्टि-प्रसार का कोई अंत नहीं। उसके ओर-छोर का अंत नहीं। उसका अंत जानने के लिए कितने बिल्लाते हैं, तो भी उसका अंत नहीं पाया जाता। कोई भी उसका अंत नहीं जानता। जितना अधिक उसको कहिए, उतना ही अधिक वह होता जाता है। वह साहब महान है और उसका स्थान ऊंचा है, उससे भी ऊंचा उसका नाम है।"
यह जरा कठिन लगेगा समझने में।
"उससे भी ऊंचा उसका नाम है।"

नाम कैसे उससे ऊंचा होगा? हमारे लिए, यात्रियों के लिए उसका नाम उससे ऊंचा है। क्योंकि उसके नाम के द्वारा ही हम उस तक पहुंचेंगे। नाम छूट जाए तो उस तक पहुंचने का रास्ता टूट गया, सेतु गिर गया। तो हमारे लिए तो उसका नाम ही उससे महान है। यात्रा-पथ मंजिल से महत्वपूर्ण है। क्योंकि यात्रा- पथ के बिना मंजिल तक पहुंचना असंभव है।
इसलिए नानक कहते हैं कि उसका एक नाम जो जान लेता है उसे कुंजी मिल गयी। कुंजी महल से भी बड़ी है। कुंजी महल में छिपी संपदा से ज्यादा मूल्यवान है। ऐसे तो दिखायी पड़ती है लोहे का टुकड़ा। लेकिन वही लोहे का टुकड़ा अनंत खजाने को खोलेगा।
उसका नाम, जिसको नानक ओंकार कहते हैं, वही कुंजी है। उस कुंजी से उसका द्वार खुलेगा। और अगर ओंकार की सुरति तुम्हारे भीतर बैठने लगी, तो वह कुंजी तुम अपने भीतर ढाल लोगे। वह कुंजी कुछ ऐसी नहीं है कि कोई तुम्हें दे दे। वह तुम्हें ढालनी पड़ेगी। तुम्हें ही वह कुंजी बन जाना पड़ेगा। तुम ही धीरे-धीरे ओंकार की ध्वनि में गूंजते-गूंजते कुंजी बन जाओगे। तुम में ही वह क्षमता प्रकट हो जाएगी कि उसके द्वार को तुम खोल लो।
मनुष्य की दो अवस्थाएं हैं। एक अवस्था है विचार की। और एक अवस्था है निर्विचार की। विचार की अवस्था में तुम हो। जहां मन में तूफान चलते ही रहते हैं। मन का आकाश सदा बदलियों से भरा रहता है। ऊहापोह, अनंत विचार! एक भीड़ मन में लगी रहती है। एक बाजार भरा हुआ है। यह विक्षिप्त जैसी दशा है। एक दूसरी अवस्था है निर्विचार की। जहां बाजार खाली हो गया, दुकानें बंद हो गयीं, विचार जा चुके। हाट उजड़ गयी। सन्नाटा हो गया। चुप्पी हो गयी। जब तक तुम विचार से भरे हो, तब तक तुम संसार से जुड़े रहोगे। जैसे ही तुम निर्विचार हुए कि तुम परमात्मा से जुड़ गए। तुम खाली हुए कि द्वार खुला। विचार से निर्विचार तक जाने की जो कुंजी है, वह उसका नाम है। ओंकार की धुन तुम्हारे भीतर समा जाए। पहले तो ओंकार का जप। सुबह उठ आए, या रात कभी एकांत अंधेरे में बैठ गए अपने कमरे में, और जोर से ओंकार का उच्चार किया कि तुम्हारे चारों तरफ ओंकार की धुन गूंजने लगे। और ओंकार का बड़ा मधुर संगीत है। क्योंकि वह अनंत का संगीत है। ओंकार कोई मनुष्य निर्मित ध्वनि नहीं है। वह अस्तित्व में गूंजती हुई लयबद्धता है। तुम जैसे ही ओंकार की ध्वनि जोर से करोगे, तुम्हारे चारों तरफ तुम्हारे रोएं-रोएं पर उसकी छाप अंकित होने लगेगी। यह जाप की स्थिति है--जप।
फिर धीरे-धीरे ओंठ बंद कर लेना और जिस तरह बाहर गुंजा रहे थे ओंकार को, वैसे ही भीतर गुंजाना। तब ओंठ बंद रहेंगे। जीभ शांत रहेगी। कंठ चुप रहेगा। सिर्फ मन में ही गूंज होगी। यह जाप और अजाप के बीच की मध्य कड़ी है। यह गूंज भीतर बढ़ती जाए, बढ़ती जाए, बढ़ती जाए, तो धीरे-धीरे तुम इस गूंज
को करना भी और सुनना भी। दो काम करना। भीतर ओंकार की गूंज भी करना और सुनना भी कि यह गूंज हो रही है। फिर धीरे-धीरे करने को छोड़ते जाना और सुनने को बढ़ाते जाना। और एक ऐसी घड़ी आती है जब करना तुम बंद कर देते हो और गूंज अपने से होती है। तुम सिर्फ सुनते हो। तब अजपा-जाप शुरू हो गया।
और जब गूंज अपने से होती है, तब असली ओंकार प्रकट हुआ। अब यह तुम नहीं
कर रहे हो। अब यह तुम्हारे होने में से ही प्रकट हो रही है। अब यह तुम्हारे जीवन के भीतर बहते हुए झरने का नाद है। और जिस दिन तुम इसे सुन लोगे, फिर तुम उसे चौबीस घंटे सुन सकते हो। क्योंकि यह तो हो ही रहा है। इसे करने की जरूरत नहीं है। तुम जब भी जरा भीतर आंख बंद करोगे, वहां यह नाद सुनायी पड़ने लगेगा।
जब भी चिंता पकड़े, तनाव पकड़े, बेचैनी हो, क्रोध आए, तुम आंख बंद कर के जरा ही इस नाद को सुन लेना। एक नाद की भनक--क्रोध तिरोहित हो जाएगा। नाद का जरा सा बोध--घृणा समाप्त हो जाएगी। नाद का जरा सा स्मरण और तुम पाओगे चित्त, जो तुम्हें बेचैन किए था, तत्क्षण हट गया। यह ऐसे ही हो जाता है, जैसे अंधेरा घर में भरा हो और तुम टार्च का बटन दबाओ, प्रकाश हो जाता है, अंधेरा खो जाता है। ऐसे ही भीतर के नाद को तुम सुनो, क्षणभर को भी सुन लो, तो बाहर का जो भी अंधकार था, उसी वक्त टूट जाता है।
इसलिए तो नानक इतना जोर देते हैं, एक ओंकार सतनाम। सारी साधना उनकी इस वास्तविक ओंकार के नाद को पा लेने की है। इसी को उन्होंने सबद कहा है। इसी

को वे नाम कहते हैं। और नानक कहते हैं, तुझ से भी बड़ा तेरा नाम है। तू अंतहीन है। तू विराट है, तुझसे भी बड़ा तेरा नाम है। क्योंकि हमारे लिए तो नाम का सहारा है। नाम से ही हम तुझ से जुड़ेंगे। तू है भी, हमें पता नहीं। नाम से ही हमें तेरी खबर आएगी। नाम से ही हम धीरे-धीरे तेरी तरफ खिंचेंगे। और एक ऐसी घड़ी आती है कि जब नाद अपने आप गूंजता है, तो तुम खींच लिए जाते हो परमात्मा की तरफ।
वैज्ञानिक कहते हैं, एक ऊर्जा है जिसका नाम ग्रेवीटेशन, गुरुत्वाकर्षण है। हम जमीन पर इसीलिए हैं कि जमीन हमको खींचे हुए है। अगर जमीन हमें छोड़ दे, हम आकाश में खो जाएं। जमीन हमें अपनी तरफ खींचे है। इसलिए तो पत्थर को हम फेंकते हैं, वह वापस जमीन पर गिर जाता है। जमीन उसे खींच रही है। हर चीज को जमीन खींचे हुए है। इसका नाम ग्रेवीटेशन है।
इस युग में एक बहुत महत्वपूर्ण महिला हुई, सिमन वैल। उसने कहा कि जिस तरह ग्रेवीटेशन है, उसी तरह एक और शक्ति है, उसका नाम है ग्रेस। उसने एक बड़ी महत्वपूर्ण किताब लिखी है, ग्रेस एंड ग्रेवीटेशन। न तो ग्रेवीटेशन दिखायी पड़ता है, जमीन का गुरुत्वाकर्षण दिखायी तो पड़ता नहीं, लेकिन फिर भी खींचे हुए है।
अभी वैज्ञानिक चिंतित हो रहे हैं। क्योंकि कल ही अखबारों में खबर थी
कि गुरुत्वाकर्षण कम हो रहा है। बहुत छोटी मात्रा में कम हो रहा है, लेकिन कम हो रहा है। और अगर कम होता गया तो जमीन बिखर जाएगी। क्योंकि जमीन उसी शक्ति की वजह से चीजों को पकड़े हुए है। वृक्ष जमीन में गड़े हैं, आदमी जमीन पर चल रहा है, पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं, जानवर चल रहे हैं, वह सब गुरुत्वाकर्षण से। जमीन का गुरुत्वाकर्षण कम हो जाए, चुंबक उसकी कम हो जाए, सब चीजें बिखर जाएंगी, अनंत में खो जाएंगी। पर गुरुत्वाकर्षण दिखायी नहीं पड़ता, जो जमीन से बांधे हुए है।
सिमन वैल ने बड़ी अच्छी बात कही है कि ठीक ऐसे ही ग्रेस भी दिखायी नहीं पड़ती। ग्रेस, जिसको नानक प्रसाद कहते हैं, उसकी अनुकंपा कहते हैं। जमीन हमें बांधे हुए है नीचे की तरफ, वह हमें बांधे हुए है ऊपर की तरफ। जैसे ही जैसे तुम्हारे भीतर ओंकार का नाद बढ़ता है, वैसे ही वैसे जमीन की कशिश कम हो जाती है और उसकी कशिश बढ़ती जाती है। एक ऐसी घड़ी आती है कि तुम बिल्कुल निर्भार हो जाते हो। इसलिए तो योगियों को बहुत बार ऐसा अनुभव होता है। यहां मेरे पास जो लोग गहरा ध्यान कर रहे हैं, उनमें से अनेकों को अनुभव हुआ है कि अचानक ध्यान करते-करते, उन्हें लगा कि वे जमीन से उठ गए। बाहर से दिखायी भी नहीं पड़ता किसी को कि वे उठ गए हैं। वे भी अपनी आंख खोल कर देखते हैं, तो उठे नहीं हैं, अपनी जगह पर बैठे हैं। लेकिन आंख बंद करते हैं तो भीतर से लगता है कि जमीन से उठे हैं।
वह भ्रांति नहीं है। जैसे ही चित्त निर्भार हो जाता है, उसकी ध्वनि गूंजती है, वैसे ही वेटलेसनेस का अनुभव होता है। तुम्हारा यह शरीर तो जमीन पर ही बना रहता है, लेकिन तुम्हारा भीतर का शरीर जमीन से हट जाता है, ऊपर उठ जाता है। और अगर यह यात्रा जारी रहे तो एक दिन तुम पाओगे कि तुम्हारे दो शरीर हो गए। एक शरीर जमीन पर बैठा है, दूसरा शरीर ऊपर उठ गया है और नीचे जमीन पर बैठे शरीर को देख रहा है। उन दोनों के बीच एक पतला सा धागा प्रकाश का है, जो जोड़े हुए है।
इसलिए ध्यान रखना, अगर कोई भी ओंकार का प्रयोग कर रहा हो और ध्यान में बैठा हो, तो उसे चौंका कर मत हिलाना। उसे कभी धक्का दे कर मत उठाना। क्योंकि उससे कभी भी खतरे हो सकते हैं। अगर उसके दोनों शरीरों के बीच फासला हो उस समय, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर थोड़े अलग हो गए हों, और भीतर का शरीर ऊपर उठ गया हो, और तुम धक्के दे दो, तो उन दोनों का संतुलन सदा के लिए बिगड़ जाएगा। उन दोनों के बीच जो तालमेल है, वह सदा के लिए अस्तव्यस्त हो जाएगा। वह तालमेल बहुत सूक्ष्म है।
ठीक ध्यान की अवस्था में व्यक्ति इस शरीर के बाहर निकलता है, फिर वापस लौट आता है। और जब तुम इस कला में पूरे पारंगत हो जाते हो कि कैसे बाहर निकलें, कैसे भीतर आ जाएं; तुम जान गए कि कैसे परमात्मा में प्रवेश करें और कैसे वापस लौट आएं। तब इस संसार और परमात्मा में कोई विरोध नहीं रह जाता।

तुम रहो इस शरीर में और उसकी सुरति बनी रहती है। मन का धागा वहां जुड़ा रहता है।
नानक कहते हैं, "उसका नाम उससे भी महान है। जितना बड़ा वह है, वह आप ही अपने को जान सकता है। यदि कोई उतना ऊंचा हो तो वह उस ऊंचे को जान सकता है। नानक कहते हैं, जिस पर उसकी कृपा-दृष्टि होती है, उसी पर उसकी देन, उसका दान उतरता है।"
यह जरा समझने जैसा है और जटिल है। क्योंकि जगत में दो साधना- पद्धतियां हैं, सिर्फ दो! एक साधना-पद्धति का आधार संकल्प है, और एक साधना- पद्धति का आधार समर्पण है। दोनों पहुंचा देती हैं। लेकिन मार्ग दोनों बड़े विपरीत हैं।
महावीर, पतंजलि, गोरख, उनकी साधना-पद्धति संकल्प की है। प्रयास करना है। और संपूर्ण जीवन की शक्ति को प्रयास बना देना है। जिस दिन तुम्हारे भीतर रत्ती भर भी बची हुई शक्ति न रह जाएगी, जिस दिन तुम अपने को पूरा दांव पर लगा दोगे, उसी दिन घटना घट जाएगी। जिस दिन संकल्प पूरा हो जाएगा, भीतर कोई भाग न बचेगा, कोई भी चीज तुमने बचायी न होगी, सभी कुछ दांव पर रख दिया होगा, उसी दिन संकल्प पूरा हो जाएगा। उसी दिन तुम परमात्मा से मिल जाओगे। उसी दिन घटना घट जाएगी।
दूसरा मार्ग है समर्पण का। नानक, मीरा, चैतन्य, उन सबका मार्ग बिल्कुल भिन्न है। और वह मार्ग यह है कि हमारे प्रयास से उपलब्धि नहीं होती, उसके प्रसाद से उपलब्धि होती है। हमारी चेष्टा से कुछ न होगा, उसकी अनुकंपा से सब कुछ होगा। इसका यह मतलब नहीं कि तुम प्रयास मत करना, इसका मतलब इतना ही है कि तुम प्रयास पर भरोसा मत रखना। अकेले प्रयास पर भरोसा मत रखना। प्रयास तो तुम करना, लेकिन यह बात जानते रहना कि होगा उसकी अनुकंपा से। यह बड़ा महत्वपूर्ण है। क्योंकि अगर प्रयास का ही भरोसा हो तो अहंकार
के जन्मने की संभावना है। इसलिए यह हो सकता है कि योगी अकड़ जाए और समझने लगे कि सब मेरे कारण हो रहा है। जो भी हो रहा है, मैं कर रहा हूं। और यह अहंकार अगर बन जाए तो इससे छुटकारा बहुत मुश्किल है। धन का अहंकार छोड़ना आसान है। पद का अहंकार छोड़ना आसान है। लेकिन प्रयास का अहंकार छोड़ना बड़ा कठिन है।
तो संकल्प के मार्ग पर जो सब से बड़ा खतरा है, वह यह है कि कहीं प्रयास करते-करते अहंकार मजबूत न हो जाए। कहीं ऐसा न लगे कि सब मुझ से हो रहा है, मैं कर रहा हूं इसलिए हो रहा है। तो मैं महत्वपूर्ण हो जाऊंगा, परमात्मा भी गौण हो जाएगा। तब सब करने के बाद, सब द्वार खोलने के बाद आखिरी द्वार पर मैं अटक जाऊंगा। यह खतरा है संकल्प के मार्ग का।
इसलिए महावीर, पतंजलि, गोरख, उस वर्ग के यात्री एक बात पर बहुत जोर देते हैं कि अहंकार छोड़ो, अहंकार छोड़ो। प्रयास करो और अहंकार छोड़ो। कहीं प्रयास अहंकार के साथ चला तो हर प्रयास अहंकार को मजबूत कर देता है। तुम जो भी करते हो उससे लगता है, मैं मजबूत हो रहा हूं। मैंने किया जप, तप, योग, मैंने सिद्धियां पायीं। और यह अकड़ अगर साथ आ गयी तो सब व्यर्थ हो गया। इसलिए नानक कहते हैं, प्रयास करो, लेकिन याद रखो मन में कि होगा उसकी अनुकंपा से।
तो वह आखिरी खतरा जो संकल्प में आता है, नहीं आएगा। लेकिन तब दूसरा खतरा है। संकल्प के मार्ग पर आखिर में खतरा आता है और समर्पण के मार्ग पर पहले ही खतरा है। और पहले ही खतरे से निपट लेना बेहतर है।
पहला खतरा यह है कि कहीं ऐसा न हो जाए कि तब तुम सोचो कि कुछ करने की जरूरत ही नहीं है। होगा जब उसकी ही कृपा से, तो हम क्या करें? तो यह न करने का बहाना बन जाए! तब तुम सोचते रहोगे, होगा उसकी कृपा से जब होना है, हमारे करने से क्या होता है! और तुम जिंदगी की जो व्यर्थता है, उसमें ही उलझे रहो। क्योंकि जब वह चाहेगा, तब होगा। जब उसकी मर्जी होगी, होगा। हम क्या करें? यह कहीं संसार में भटकने के लिए आधार न बन जाए। यह कहीं क्षुद्र को करने का रास्ता न बना रहे। और यह कहीं तरकीब न हो, बहाना न हो टालने का, कि जब उसको करना होगा करेगा, हम क्या कर सकते हैं? समर्पण के मार्ग पर पहले ही खतरा है कि कहीं तुम आलस्य में न डूब जाओ।

इसलिए प्रयास तो पूरा करना है। और फल सदा उसकी कृपा से मिलेगा, यह स्मरण रखना है। तो नानक बार-बार दोहराते हैं कि जिस पर उसकी कृपा-दृष्टि होती है, उसी पर उसकी देन, उसका दान उतरता है। लेकिन कृपा-दृष्टि उसकी किस पर होती है? उसी पर होती है, जो प्रयास से अपने को तैयार करता है।
इसे थोड़ा समझें। क्योंकि सामान्य जीवन में कृपा-दृष्टि का बड़ा अलग अर्थ है। कृपा-दृष्टि का मतलब यह है कि क्या वह भी पक्षपाती है, कि अपनों कर कृपा करता है और दूसरों को छोड़ देता है, कि किसी को चुन लेता है और उसी पर कृपा करता है, और किसी को छोड़ देता है। यह तो अन्याय होगा। परमात्मा के साथ अन्याय को तो हम जोड़ ही नहीं सकते। फिर तो कोई सार ही न रहा। फिर तो पापी पर उसकी कृपा हो सकती है और पुण्यात्मा पर न हो। फिर तो सब करना व्यर्थ है।
नहीं, उसकी कृपा-दृष्टि का यह अर्थ नहीं है कि वह किसी को अकारण चुन लेता है, कि खुशामदियों को चुन लेता है, कि स्तुति करने वालों को चुन लेता है। उसकी कृपा-दृष्टि तो सभी पर बरस रही है। वर्षा उसकी सभी पर हो रही है। लेकिन कुछ लोग अपनी मटकी को उलटा किए बैठे हैं। जिनकी मटकी उलटी है, कृपा- दृष्टि तो उन पर भी हो रही है, लेकिन उनकी मटकी भर नहीं पाती। कुछ लोग अपनी मटकी सीधी किए बैठे हैं। उनकी मटकी भर जाती है। तुम्हारी मटकी सीधी होने से वर्षा नहीं हो रही है। वर्षा तो हो ही रही है। लेकिन तुम्हारी मटकी सीधी होगी तो भर जाएगी। और तुम कितनी ही मटकी सीधी करो, अगर वर्षा नहीं हो रही, तो कैसे भरेगी?
इसलिए नानक कहते हैं, भरना तो उसकी कृपा-दृष्टि से होता है, लेकिन इतना तो प्रयास तुम्हें करना पड़ेगा कि मटकी को तुम सीधी रखो। इतना ध्यान तुम्हें रखना पड़ेगा कि मटकी में तलहटी है या नहीं! फूटी तो नहीं है! इतना ध्यान तुम्हें रखना पड़ेगा कि मटकी उलटी तो नहीं रखी है! तिरछी तो नहीं रखी है! कि कृपा बरसे भी तो भी भर न पाए। अनुकंपा आए भी तो भी बह जाए।
हर आदमी पर उसकी अनवरत वर्षा हो रही है। परमात्मा अनवरत वर्षा है। लेकिन तुम कुछ उलटे-सीधे, आड़े-तिरछे हो। तुम वंचित रह जाते हो अपने कारण। इसे समझ लेना। यह बड़ा उलटा दिखायी पड़ेगा। वंचित रहते हो तुम अपने कारण, पाओगे उसके कारण। मिलेगा उसके प्रसाद से, खोओगे अपने कारण। समर्पण के मार्ग पर यह स्मरण रखना जरूरी है कि अगर मैं खो रहा हूं तो मैं ही कुछ उलटा हूं। अगर पाऊंगा तो उसकी अनुकंपा है। अगर तुम यह याद रख सको तो अहंकार के सघन होने की कोई जगह न रह जाएगी। तुम्हारे भीतर कोई स्थान न बचेगा जहां अहंकार मजबूत हो जाए। और जिसके पास अहंकार नहीं, उसके पास परमात्मा है।
"उसकी महान कृपा का वर्णन नहीं हो सकता। वह दाता इतना महान है कि उसमें बदले में पाने की तिल मात्र भी लालच नहीं।"
और दान का अर्थ समझ लेना। तुम भी दान देते हो, लेकिन उसमें पाने की कोई आकांक्षा छिपी रहती है। तुम अगर भिखारी को दो पैसे भी देते हो तो भी पाने की आकांक्षा रहती है कि शायद स्वर्ग में इसका प्रतिकार मिलेगा। और न सही स्वर्ग में, कम से कम मोहल्ले-पड़ोस के लोग देख लेंगे कि मैं दानी हूं। इज्जत बढ़ेगी, प्रतिष्ठा मिलेगी।
एक अंधा आदमी एक चर्च में जाता था। अंधा भी था, बहरा भी था। बहुत जोर
से कोई चिल्लाए तो बामुश्किल सुन सकता था। तो चर्च में न तो प्रवचन पुरोहित का उसे सुनायी पड़ता था, न चर्च में चलता भजन-संगीत उसे सुनायी पड़ता था। न वह कुछ देख सकता था। पर जाता नियम से था। एक दिन एक आदमी ने उससे पूछा कि हमारी कुछ समझ में नहीं आता, तुम किसलिए यहां आते हो? न तुम देख सकते, न तुम सुन सकते हो, तो किसलिए इतनी परेशानी उठाते हो? उस आदमी ने कहा, मैं इसलिए आता हूं ताकि दूसरे देख लें कि मैं चर्च आने वाला धार्मिक आदमी हूं। और तुम्हारे पास भला आंखें हों, लेकिन आते तुम भी इसीलिए हो। और भला तुम्हारे पास कान हों, आते तुम भी इसीलिए हो।
मंदिर, गुरुद्वारा, मस्जिद जाना भी सामाजिक कृत्य हो गया है। एक औपचारिकता है, जो निभानी पड़ती है। तुम अगर दो पैसे दान भी देते हो तो भी प्रतिकार छिपा है। तुम कुछ पाना चाहते हो। वह दान न रहा, सौदा हो गया।

सौदा और दान में यही तो फर्क है। जब तुम कुछ वापस पाना चाहते हो, तब सौदा। तब तो बड़ा कठिन हो जाएगा। तब तो तुमने कभी दान नहीं दिया। तुमने सदा सौदा ही किया है। और लोग जो तुम्हारा शोषण करते हैं, भलीभांति समझ गए हैं कि तुम सौदा ही करते हो। तो वे तुम्हें समझाते हैं कि यहां दो एक, वहां मिलेंगे लाख। यहां दो ब्राह्मण को, वहां पाओगे। यहां चढ़ाओ, वहां फल मिलेगा। करोड़ गुना प्राप्त होगा स्वर्ग में। जो तुम्हारा शोषण करते हैं, वे भी समझ गए हैं कि तुम सौदागर हो! दान तो तुम दे नहीं सकते।
क्या तुम ऐसे मंदिर में भी दान दोगे, जहां कहा जाए कि तुम दान दो भला, मिलेगा कुछ भी नहीं? दो, तुम्हारी मर्जी, तुम्हारी खुशी; वापस कुछ न पाओगे। उस मंदिर में दान देने वाला खोजना मुश्किल हो जाएगा। वह मंदिर गिर ही जाएगा। उसका बनना ही मुश्किल है। वैसा मंदिर कहीं भी नहीं है।
जब तुम परमात्मा के दान की बात सोचो तो तुम अपनी भाषा का हिसाब मत रखना। तुम यह मत सोचना कि जैसा दान तुम देते हो। नानक कहते हैं कि वह देता है और तुम से कुछ पाना नहीं चाहता। तुम्हारे पास है भी क्या जो तुम दोगे? उसका दान शुद्ध है, अनकंडीशनल है। उसमें कोई शर्त नहीं है, बेशर्त है। तुमने वापस क्या दिया है? जीवन तुमने पाया था! और तुम्हारे जीवन में प्रेम आया, तुमने वापस क्या दिया है? और तुमने कुछ हलकी झलकें भी पायीं अगर स्वास्थ्य की, सौंदर्य की, सत्य की, तो तुम ने वापस क्या दिया है? बड़े आश्चर्य की बात है कि हम कभी इस भांति सोचते ही नहीं कि हमें जो मिला है, उसके उत्तर में हमने क्या दिया है?
तुम्हें जो मिला है, अगर तुम्हें ख्याल आ जाए, तो तुम अनंत तक नाचते रहोगे उत्सव में। तुम उसका गुणगान करते रहोगे। यह गुणगान किसी भय से पैदा न होगा। यह गुणगान सिर्फ अहोभाव होगा, कि जो दिया है, वह इतना ज्यादा है। और बिना कारण दिया है। न कोई योग्यता है, न कोई लौटाने का उपाय है। पिता के ऋण से मुक्त हुआ जा सकता है, मां के ऋण से मुक्त हुआ जा सकता है, परमात्मा के ऋण से कैसे मुक्त होओगे? वह दान बेशर्त है।
तो नानक कहते हैं, "वह दाता इतना महान है कि उसमें बदले में पाने की तिल मात्र भी लालच नहीं है।"
बहुता करम लिखिआ न जाइ। बडा दाता तिलु न तमाइ।।
"कितने ही बड़े योद्धा हों, उससे मांगते ही रहते हैं।"
और हमारे भिखारी तो मांगते ही हैं, हमारे योद्धा भी मांगते हैं। हमारे भिखारी और हमारे सम्राटों में बहुत फर्क नहीं है। मात्रा का ही फर्क होगा। क्योंकि मांगते तो दोनों ही रहते हैं।
और ध्यान रखना, जब मांग मिट जाती है, तभी तुम्हें उसका दान दिखायी पड़ना शुरू होता है। तुम्हारी मांग के धुएं के कारण दान तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता। तुम मांगे ही चले जाते हो। तुम्हें फुर्सत नहीं कि तुम देख लो जो मिल रहा है। जिस दिन मांग बंद होती है, उस दिन दान दिखायी पड़ता है। जिस दिन मांग बंद होती है, उस दिन प्रार्थना का गलत रूप गिर जाता है, सही रूप प्रकट होता है।
"मांगने वालों की गिनती का विचार भी नहीं किया जा सकता। कितने ही विकारों में खप कर नष्ट हो जाते हैं।"
नानक यहां बड़ी महत्वपूर्ण बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि तुम्हारा मांगना भी ऐसा अंधा है कि तुम जो मांगते हो उसको पा कर ही नष्ट होते हो। तुम मांगते भी गलत हो।
तुम गौर से देखो, तुम्हारी जिंदगी जितने कष्ट में है, उस कष्ट का कारण अगर तुम खोजोगे, तो कहीं न कहीं तुम्हारी अपनी ही मांग पाओगे। तुम बड़े पद पर होना चाहते हो। फिर बड़े पद की चिंताएं हैं। रात नींद नहीं आती। दिन चैन नहीं मिलता। पश्चिम में वे कहते हैं कि अगर चालीस साल की उम्र होते-होते तुम्हें हार्ट अटैक का पहला दौरा न पड़े, तो उसका मतलब साफ है कि तुम असफल आदमी हो। चालीस साल की उम्र तक हार्ट अटैक का दौरा पड़ना ही चाहिए। सफल आदमी का लक्षण वह है। अगर पेट में अल्सर न हो जाएं, तो तुम गरीब आदमी हो। क्योंकि अमीर को अल्सर होना ही चाहिए। चिंताएं इतनी होंगी कि अल्सर होना जरूरी है।

सफल आदमी सफलता की मांग कर-कर के पाता क्या है? और जो उसने मांगा, मिल जाता है। बड़े मजे की बात तो यह है कि तुम जो मांगोगे, मिल जाएगा। देर-अबेर मिल ही जाएगा। इसलिए मांगना थोड़ा सोच-समझ कर। क्योंकि फिर पछताना मत। पहले मांगने में समय गंवाया, फिर पछताने में समय गंवाओगे।
तुम गौर से अगर अपनी जिंदगी का विश्लेषण करो तो तुम पाओगे कि तुम अपने
ही हाथ मुसीबत में फंसे हो। तुम ने जो-जो मांगा था, वही पा कर फंस गए हो। वह मिल गया। तुम्हें धन चाहिए था, धन मिल गया। पर धन के साथ धन की चिंता भी आती है। और धन के साथ आत्मा का सिकुड़ाव भी आता है। और धन के साथ हजार तरह के रोग भी आते हैं। और धन के साथ हजार तरह का अभिमान, अहंकार भी आता है। वह सब भी उसके साथ है। जुड़ा हुआ है। उसे तुम छोड़ न सकोगे। तुम जो मांगते हो, मिल जाता है। और फिर तुम पछताते हो।
तो नानक कहते हैं, "कितने ही विकारों में खप कर नष्ट हो जाते हैं।"
अपनी ही मांग! अपनी ही प्रार्थनाएं!
"कितने ही ऐसे हैं, जो ले-ले कर मुकर जाते हैं।"
एहसान भी नहीं मानते हैं। मांग कर लेते हैं, मिल जाता है। धन्यवाद भी नहीं देते।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन रोज सुबह नमाज के वक्त जोर से चिल्ला कर कहता था, हे परमात्मा! एक बात ख्याल रख; जब भी लूंगा, पूरे सौ रुपए लूंगा। कम मैं न लूंगा। जब भी तुझे देना हो, सौ की पूरी थैली गिरा देना। और ध्यान रख, निन्यान्नबे भी न लूंगा।
पड़ोस का एक आदमी रोज यह सुनता था। उसे मजाक सूझी! उसने कहा कि रोज यह
एक ही बात किए जा रहा है। और निन्यान्नबे तो यह लेगा नहीं। तो खतरा भी नहीं है। तो उसने एक थैली में निन्यान्नबे रुपए रख कर, जब दूसरे दिन वह नमाज पढ़ रहा था, उसके छप्पर में से नीचे गिरा दी।
उसने नमाज बीच में ही छोड़ कर पहले रुपए गिने और फिर कहा, वाह रे वाह! एक रुपया थैली का काट ही लिया!
आदमी धन्यवाद भी देने को राजी नहीं है। उसने फिर भी शिकायत ही की कि वाह रे वाह! एक रुपया काट ही लिया थैली का!
सुना है मैंने कि एक बहुत बड़ा धनपति समुद्र-यात्रा से वापस लौट रहा था। भयंकर तूफान उठा। जहाज अब डूबा तब डूबा, ऐसी हालत हो गयी। पहले तो वह कोरी-कोरी प्रार्थना करता रहा। लेकिन जब जिंदगी बिल्कुल मौत के करीब आ गयी, तब उसने कहा कि अगर आज बच गया, अगर तूने आज बचा लिया परमात्मा, तो मेरा जो महल है राजधानी में, उसे बेच कर गरीबों को बांट दूंगा। तूफान शांत हो गया। नाव किनारे लग गयी। अब वह अमीर मुश्किल में पड़ा। पछताने लगा कि यह तूफान तो शांत हो ही जाना था। मैं नाहक फंस गया। लेकिन लोगों ने भी सुन लिया। उसने इतने जोर से कह दिया, वह भी एक गलती हो गयी। इसलिए तो लोग चुप-चुप प्रार्थना करते हैं। सारे जहाज के लोगों ने सुन लिया। और लोग जहाज से उतरे नहीं कि सारे नगर में खबर फैल गयी कि धनपति ने प्रार्थना की है कि उसके महल को बेच देगा और गरीबों को बांट देगा। वह बहुत झंझट में पड़ा। बहुत सोच-विचार किया।
आखिर एक दिन उसने गांव में खबर कर दी कि ठीक है, मकान बेचना है, जिनको
भी खरीदना हो, आ जाएं। दस लाख का मकान था। बड़े खरीददार इकट्ठे हुए। बड़ा महल था। राजधानी में उससे महत्वपूर्ण कोई मकान न था। सब बड़े हैरान हुए जब उस अमीर ने घोषणा की कि यह मकान और यह बिल्ली, जो दरवाजे पर बंधी है, दोनों साथ ही बिकेंगे। बिल्ली का दाम दस लाख रुपया और मकान का दाम एक रुपया। मगर दोनों साथ!
लोग बहुत हैरान हुए कि यह क्या पागलपन है? और बिल्ली का दाम कभी सुना
दस लाख? और इस महल का दाम सिर्फ एक रुपया? लेकिन लोगों ने कहा कि हमें इससे क्या प्रयोजन! खरीददार मिल गए। दस लाख का मकान था ही, और बिल्ली भी एक रुपए की थी। इसमें कुछ ऐसी अड़चन न थी। तो दस लाख में बिल्ली खरीद ली और एक रुपए में मकान। उसने दस लाख जेब में रख लिए और एक रुपया गरीबों में बांट दिया। क्योंकि जो वचन दे चुका था कि महल को बेच कर गरीबों में बांट दूंगा! परमात्मा के साथ भी लोग लीगल, कानूनी संबंध रखते हैं। वहां से भी तो हिसाब... निकाल ही लेते हैं रास्ता।

मिल जाए तो, नानक कहते हैं, बहुत ऐसे हैं जो ले-ले कर मुकर जाते हैं।
मिल जाता है तब कहते हैं, संयोग की बात है। यह तो होने ही वाला था। हो गया। बहुत से तो ऐसे हैं जो इतना भी नहीं कहते। बात ही भूल जाते हैं कि मांगा और मिला। हमने कभी मांगा भी था, यह भी भूल जाते हैं। एहसान, उसका अनुग्रह भी नहीं मानते।
"कितने ऐसे हैं जो मांगते रहते हैं, और वह देता रहता है, और वे खाते रहते हैं।"
और कभी उस मांगने और खाने की वृत्ति के ऊपर नहीं उठते हैं। भोगते रहते हैं। और भोग करीब-करीब ऐसा है कि उससे कोई कहीं पहुंचता नहीं। कुछ पाता नहीं। सिर्फ समय गंवाता है। कितना ही खाओ, क्या मिलेगा? कितना ही पहनो, क्या मिलेगा? कितने ही हीरे-जवाहरात से सजा लो शरीर को, क्या मिलेगा? जीवन के बहुमूल्य क्षण ऐसे ही जा रहे हैं, जिनमें प्रार्थना हो सकती थी, जिनमें ध्यान का धन मिल सकता था। जीवन ऐसे ही जा रहा है, कंकड़-पत्थरों के इकट्ठा करने में।
नानक कहते हैं, "और कितने ऐसे भी हैं, जिन पर सदा दुख और भूख की मार पड़ती रहती है, फिर भी जिन्हें स्मरण नहीं आता।"
खुद की ही मांगों के कारण दुख की मार पड़ती रहती है फिर भी जागते नहीं
कि हम जो मांगते हैं उसी से दुख पाते हैं। हमारे कष्ट हमारी ही आकांक्षाओं के फल हैं। और हमारे नर्क हमारी ही वासनाओं से आते हैं। पर हम संबंध ही नहीं जोड़ते। हम दोनों को अलग ही कर के देखते हैं। तुम सदा सुख मांगते हो, लेकिन कभी तुम ने यह देखा कि तुम्हारी सारी वासनाएं तुम्हें दुख में ले जाती हैं? और फिर भी तुम कहते हो, सुख क्यों नहीं मिलता? जैसे कोई आदमी सूरज की तरफ पीठ करके चलता हो और कहता हो कि मुझे प्रकाश क्यों नहीं मिलता? सूरज के दर्शन क्यों नहीं होते?
सूरज के दर्शन तो अभी हो सकते हैं, लेकिन वासना में जाता हुआ चित्त दुख में जाएगा, नर्क में जाएगा, अंधेरे में जाएगा। और तुम्हारी प्रार्थनाएं भी तुम वासनाओं में ही रंग लेते हो। भक्त अपनी वासना को भी प्रार्थना के प्रति समर्पित करता है। तुम अपनी प्रार्थना को भी अपनी वासना की सेवा में लगा देते हो।
तो नानक कहते हैं, कितने ही ऐसे हैं, जिन पर दुख की मार पड़ती रहती है, फिर भी जागते नहीं।
कितने जन्मों से तुम पर दुख की मार पड़ रही है! नहीं, बुद्ध का हिसाब ठीक नहीं है। घोड़े चार तरह के होते हैं। एक, जिनको मारो तो भी इंच नहीं हिलते। जिनको मार-मार कर मार डालो--असली अड़ियल घोड़े! वे हटते ही नहीं। तुम जितना मारो, उतना मजबूती से वे रुक जाते हैं।
क्योंकि कितने दुख की मार पड़ रही है, फिर भी तुम सचेत नहीं होते। तुम झेले चले जाते हो। तुम आदी हो गए हो। तुम धीरे-धीरे मान ही लिए हो कि दुख ही जीवन का ढंग है। तुम भूल ही गए हो कि जीवन परमानंद है। जीवन परम उत्सव है। और अगर तुम दुखी हो, तो अपनी किसी भूल के कारण हो।
"हे दाता, ये भी तेरे ही दान हैं।"
और नानक कहते हैं कि ये भी तेरे ही दान हैं। लोग मांगते हैं और तू दिए चला जाता है। ध्यान रखना, तुम ने अगर गलत मांगा, तो गलत भी मिल जाएगा। क्योंकि अस्तित्व तुम्हें देने को बेशर्त राजी है। तुम ने अगर गलत मांगा, तो गलत भी मिल जाएगा। क्योंकि परमात्मा देता है और तुम्हारी स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं डालता। तुम ने अगर भटकाव मांगा, तो भटकाव मिल जाएगा। इसे थोड़ा समझें। क्योंकि इससे एक सवाल उठता है कि परमात्मा तो जानता
है कि क्या गलत है। हम गलत मांगते हों। वह गलत क्यों दे?
अगर परमात्मा तुम्हारी मांग को पूरा न करे तो तुम्हारी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। तब तुम धागों से बंधी कठपुतलियां हो जाते हो। फिर वह जो चाहे वह तुम्हें दे। तुम्हारी मांग की भी स्वतंत्रता न रह जाए, तब तो मनुष्य की सारी गरिमा खो जाती है। मनुष्य की गरिमा यही है कि वह गलत भी जा सकता है। सही जाना चाहे, सही जा सकता है। गलत जाना चाहे, गलत जा सकता है। स्वतंत्रता की संभावना है। तुम बिल्कुल जकड़े नहीं हो जंजीरों में। तुम्हें सचेतन अवसर है चुनाव का। तुम जहां जाना चाहो। तुम्हें परमात्मा

कहीं से अवरोध नहीं देता। वह तुम्हारा विरोध नहीं करता। वह तुम्हारे बीच में खड़ा नहीं होता। वह सब तरफ तुम्हें मार्ग देता है। सब तरफ दिशाएं खुली हुई हैं। तुम चाहो तो गिर जाओ आखिरी नर्क तक, तो भी तुम्हें वह रोकेगा नहीं। तुम चाहो तो तुम उठ जाओ आखिरी स्वर्ग तक, तो भी वह तुम्हें रोकेगा नहीं। हर हालत में उसकी शक्ति तुम्हें मिलती रहेगी। उसका दान बेशर्त है। और उसके दान में तुम्हें परतंत्र बनाने की चेष्टा नहीं है। वह तुम्हें देता है और तुम जैसा भी उपयोग करना चाहो कर लो।
इसलिए नानक कहते हैं कि "हे दाता, ये भी तेरे ही दान हैं। बंधन और मुक्ति तेरी ही आज्ञा से होते हैं।"
लेकिन मांगते हम हैं। हम बंधन मांगते हैं तो बंधन घट जाता है। आज्ञा उसकी है। हुक्म उसका है। कानून उसका है। नियम उसका है। जैसे तुम वृक्ष पर चढ़ जाओ और कूद पड़ो, तो हड्डी टूट जाएगी। जो जमीन का गुरुत्वाकर्षण तुम्हें संभालता था और गिरने नहीं देता था, वही हड्डी टूटने का कारण हो जाएगा। तुम जमीन पर सीधे चलो, गुरुत्वाकर्षण तुम्हारे चलने में सहारा देता है। तुम इरछे-तिरछे चलो तो गिर जाते हो, फ्रैक्चर हो जाता है। शक्ति वही है। शक्ति निरपेक्ष है, तटस्थ है। परमात्मा बिल्कुल निरपेक्ष और तटस्थ है। तुम अगर ठीक से उपयोग कर लो, तो तुम परम अनुभव को उपलब्ध हो जाते हो। तुम अगर गलत भटको, तो तुम जीवन के गहन से गहन गर्त में गिर जाते हो। नानक कहते हैं, सब तुझ से ही मिलता है, स्वर्ग भी, नर्क भी, लेकिन मांग हमारी है पीछे। कानून तेरा काम करता है, लेकिन हम मांग-मांग कर खुद फंस जाते हैं। मैंने सुना है कि एक राजनीतिज्ञ मरा। बड़ा नेता था। और बड़ा होशियार आदमी था। पुराना खिलाड़ी था। और सब तरह के दांव-पेंच जानता था। जब वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा, तो उसने कहा कि पहले मैं स्वर्ग और नर्क दोनों देख लेना चाहता हूं। फिर मैं चुनाव करूंगा कि कहां रहना है। स्वर्ग दिखाया गया। उसे स्वर्ग थोड़ा उदास लगा--राजनीतिज्ञ था, दिल्ली में रहने का आदी था। स्वर्ग जरा उदास लगा। जो लोग सदा उत्तेजना में रहे हैं, उन्हें स्वर्ग उदास लगेगा ही! क्योंकि वहां लोग शांत थे। न कोई शोरगुल था, न कोई उपद्रव था। न कोई झगड़ा-झांसा था। न कोई आंदोलन हो रहा था। न कोई घेराव हो रहा था। कुछ भी नहीं हो रहा था।
पूछा, अखबार?
तो कहा, अखबार यहां छपता नहीं।
क्योंकि अखबार तभी छपे जब कोई न्यूज हो, जब कोई समाचार हो। समाचार ही कुछ नहीं है। यहां बस सब शांति है। समाचार का मतलब ही उपद्रव होता है। कुछ उपद्रव हो तो समाचार! तुम अगर समाचार बनना चाहो, तो कुछ उपद्रव करो। तुम समाचार बन जाओगे। खाली बैठे रहो अपने झाड़ के नीचे बुद्ध बने, कोई समाचार नहीं है।
उसने कहा कि यह तो बड़ा उदास-उदास सा, फीका-फीका सा लगता है। मैं नर्क
भी देख लेना चाहता हूं। पहुंचा नर्क। जंचा बहुत। दिल्ली को भी मात करता था। कई अखबार छपते थे। बड़े आंदोलन, बड़ा शोरगुल, बड़ी रौनक, चहल-पहल, होटलें, संगीत, बाजे, वह जंचा। उसने कहा कि यह बात जंचती है। लेकिन हम तो सदा पृथ्वी पर उलटा ही सुनते रहे कि स्वर्ग में बड़ा आनंद है और नर्क में बड़ा कष्ट है। यह हालत उलटी है। शैतान से कहा--जो कि द्वार पर स्वागत करने आया था--कि मामला क्या है? पृथ्वी पर तो लोग उलटा ही समझे बैठे हैं। मैं भी अगर चुपचाप स्वीकार कर लेता तो स्वर्ग में फंस जाता। हम तो जो मरता है, उसको कहते हैं, स्वर्गवासी हुआ। यहां आना चाहिए। यह आने योग्य जगह है। जिंदगी मालूम पड़ती है, रंग है, रौनक है, वैभव है! पृथ्वी पर उलटी खबर क्यों है? शैतान ने कहा, कारण है। मेरी वहां कोई सुनता नहीं। और विपरीत पक्ष के लोगों ने प्रचार कर रखा है। ये धार्मिक लोग स्वर्ग का प्रचार कर रखे हैं सदा से। और मेरी कोई सुनता नहीं। और मैं अगर किसी को कहूं भी, तो लोग कहते हैं कि शैतान है, सावधान! तो मेरे साथ बड़ा अन्याय हुआ है। और अब आप अपनी आंखों से देख लो।
राजनीतिज्ञ ने लौट कर देवदूत से कहा--जो स्वर्ग से यहां तक पहुंचाने आया था--कि मैंने चुन लिया। तुम वापस लौट जाओ। मैं नर्क में ही रहूंगा।

जैसे ही उसने चुना, दरवाजा बंद हुआ, और एकदम नर्क की शकल बदल गयी। जैसे
कि फिल्मों में चित्र एकदम से बदल जाता है। और अनेक लोग उस पर टूट पड़े। और घूंसा-बाजी, और उसको पटकने लगे जलते कड़ाहों में। उसने कहा कि यह क्या कर रहे हो? और अब तक सब ठीक था। शैतान ने कहा कि वह विजिटर्स के लिए था। अब असली नर्क शुरू होता है। वह तो ऐसे ही, जो टूरिस्ट, विजिटर्स, उनको दिखाने के लिए बना रखा था। अब असली चीज! एक दफा चुन लिया, अब आप निवासी हो गए। अब आप मजा देखोगे।
नर्क भी लोग चुनते हैं। क्योंकि हर वासना का शुरू का हिस्सा विजिटर्स
के लिए है। हर वासना का प्राथमिक चरण लुभाने के लिए है। वह शो-विंडो है। वह असली चीज नहीं है। वह सिर्फ प्रलोभन है। वह विज्ञापन है। एक बार चुन ली वासना, फिर असली नर्क शुरू होता है। तुम चुन-चुन कर अपने ही हाथ नर्क में पड़े हो।
और स्वर्ग शुरू में बे-रौनक है। क्योंकि आनंद शुरू में बे-रौनक होगा ही। क्योंकि आनंद परम शांति है। और दुख शुरू में बड़ा रंग-रौनक वाला मालूम पड़ता है, क्योंकि उत्तेजना है। तुम उत्तेजना को चुनते हो, दुख पाते हो। जिस दिन तुम शांति को चुनोगे, उस दिन तुम आनंद पाओगे। होता सब उसके हुक्म से है, उसके कानून से। लेकिन उसका कानून तुम जैसी मांग करते हो, वैसा ही तुम्हारे अनुकूल ढल जाता है। वह तटस्थ है। वह अपनी मांग को तुम्हारे ऊपर नहीं थोपता। और थोप भी दे, तो भी तुम राजी न होगे। क्योंकि स्वर्ग अगर तुम्हें जबर्दस्ती दे दिया जाए तो नर्क से भी बदतर मालूम पड़ेगा। नर्क भी तुम अपनी मौज से चुनो, तो स्वर्ग है। क्योंकि तुम्हारी स्वतंत्रता अक्षुण्ण रहनी चाहिए।
यह एक बारीक से बारीक सवाल है मनुष्य के दर्शन-शास्त्र का कि परमात्मा और मनुष्य की स्वतंत्रता साथ-साथ कैसे हो सकती है?
इसलिए महावीर ने परमात्मा को इनकार कर दिया। क्योंकि उससे स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी। अगर सब उसी के हुक्म से हो रहा है तो आदमी की स्वतंत्रता का अंत हो गया। और जब स्वतंत्रता न रही, तो आत्मा का क्या मूल्य? इसलिए महावीर ने कहा, कोई परमात्मा नहीं, स्वतंत्रता है। ऐसे लोग हुए जिन्होंने कहा कि कोई स्वतंत्रता नहीं है, भाग्य है। परमात्मा है, कोई स्वतंत्रता नहीं है।
नानक दोनों के मध्य में हैं। वे कहते हैं, मनुष्य की स्वतंत्रता है और परमात्मा भी है। स्वतंत्रता मांग की है। तुम जो चाहो मांगो। उसके लिए प्रयास करो, वह मिलेगा। लेकिन मिलता परमात्मा की अनुकंपा से है। दुख मांगो तो भी मिल जाता है।
अब यह बड़े मजे की बात है कि तुम दुख क्यों मांगे चले जाते हो? और अगर तुम ही सुख नहीं मांग रहे हो, तो परमात्मा लाख उपाय करे, तुम्हें सुख नहीं दे सकता।
ऐसा हुआ। सूफी फकीर जुन्नैद हुआ। वह कहता था, किसी को जबर्दस्ती सुख नहीं दिया जा सकता। किसी को जबर्दस्ती शांति नहीं दी जा सकती।
मैं भी राजी हूं। बहुत लोगों को मैंने भी कोशिश कर के देख ली कि जबर्दस्ती भी दे दो... असंभव है। तुम जितना देने की जबर्दस्ती करोगे, उतना आदमी चौंक कर भागता है कि कोई खतरा है। आनंद भी नहीं दे सकते किसी को। क्योंकि कोई लेने को राजी नहीं है।
तो एक दिन एक भक्त ने कहा कि यह बात मैं मान ही नहीं सकता। तो हम एक प्रयोग करें। वह एक आदमी को लाया और उसने कहा कि यह आदमी बिल्कुल दीन-दरिद्र है। और सम्राट आपके भक्त हैं। आप उनसे कहें कि इसको एक करोड़ स्वर्ण-अशर्फियां दे दें। फिर हम देखें कि कैसे यह आदमी दीन-दरिद्र रहता है। कैसे दुखी रहता है। जुन्नैद ने कहा, ठीक!
एक दिन प्रयोग किया गया। और एक करोड़ अशर्फियां एक बहुत बड़े मटके में
भर कर एक नदी के पुल के बीच में रख दी गयीं। पुल पर आवागमन बंद कर दिया गया। और वह आदमी रोज शाम को टहलने उस पुल पर से निकलता था। ठीक उस वक्त आवागमन बंद कर दिया, भरा हुआ मटका अशर्फियों का रख दिया बीच पुल पर, कोई नहीं है। और दूसरी तरफ सम्राट, जुन्नैद और उसके साथी, जो प्रयोग कर रहे थे, वे चुपचाप खड़े हो गए।

तो कोई अड़चन नहीं है इस आदमी को। कोई पुलिस नहीं है, कोई जनता नहीं है, खाली पुल पर मटका रखा हुआ है, खुला हुआ। स्वर्ण की अशर्फियां चमक रही हैं सूरज की धूप में। और वह आदमी चला आ रहा है उस तरफ से।
पर बड़ी हैरानी की बात है! वह आदमी मटकी के पास से गुजर गया और दूसरी तरफ आ गया। उसने मटकी को न तो देखा, न छुआ। जुन्नैद और उसके साथियों ने उसे पकड़ा और कहा कि तुम्हें मटकी दिखायी नहीं पड़ी?
उसने कहा कि कैसी मटकी? जब मैं पुल पर आया तब मुझे एक ख्याल उठा कि आज पुल पर कोई भी नहीं है। कई दिन से ख्याल उठता था, लेकिन कर नहीं सकता था। आज प्रयोग कर लूं। कई दिन से सोचता था कि आंख बंद कर के पुल पार कर सकता हूं कि नहीं! लेकिन भीड़-भाड़ रहती थी, तो कभी कर नहीं पाया। आज सन्नाटा देख कर मैंने कहा कि अब कर लेना चाहिए। तो मैं आंख बंद कर के गुजर रहा था। कैसी मटकी? किस मटकी की बात कर रहे हो? और प्रयोग सफल रहा। आंख बंद किए पुल पार किया जा सकता है।
जुन्नैद ने कहा, यह देखो! जिसे चूकना है वह कोई ख्याल पैदा कर लेगा और चूक जाएगा। जो चूकने के लिए ही तैयार है, तुम उसे बचा न सकोगे।
परमात्मा भी तुम्हें वह नहीं दे सकता, जिसे लेने के लिए तुम तैयार नहीं हो गए हो। तुम अगर दुख के लिए तैयार हो, दुख। तुम अगर सुख के लिए तैयार हो, सुख। तुम वही पाते हो जो तुम्हारी तैयारी है। मिलता उसकी अनुकंपा से है। पाते तुम अपनी तैयारी से हो। बरसता वह सदा है। भरते तुम तभी हो, जब तुम तैयार होते हो, उन्मुख होते हो।
"बंधन और मुक्ति तेरी ही आज्ञा से है। हे दाता, ये भी तेरे ही दान हैं। कोई दूसरा इसमें कुछ भी नहीं कर सकता। जो कोई गप्प हांकने वाला इसमें कुछ कहने जाता है, उसे अपनी मूर्खता का पता तब चलता है, जब उसके मुंह पर मार पड़ती है। वह आप ही जानता है और आप ही देता है। उसका वर्णन भी विरला ही कर सकता है। वह जिसे भी चाहे अपनी स्थिति का गुण प्रदान कर सकता है। नानक कहते हैं, वह बादशाहों का भी बादशाह है।"
"कोई गप्प हांकने वाला... ।"
और बहुत हैं धर्म के जगत में गप्प हांकने वाले। क्योंकि जितनी सुविधा गप्प हांकने की धर्म के जगत में है, उतनी और कहीं भी नहीं है। क्योंकि सारा मामला ही अलौकिक है। और सारा मामला ही रहस्यपूर्ण है। और सारा मामला अंधकार में है। प्रमाण तो कुछ है नहीं। इसलिए बहुत गप्पें धर्म के नाम पर चलती हैं।
इसलिए तो दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। नहीं तो तीन सौ धर्म हो सकते हैं? धर्म होता तो एक ही होता, तीन सौ धर्म कैसे हो सकते हैं। और इन तीन सौ धर्मों के भी तीन हजार संप्रदाय हैं छोटे-मोटे। निश्चित ही सत्य के संबंध में बहुत सी गप्पें हांकी गयी हैं। और रास्ता तो कुछ भी नहीं है जांचने का कि क्या गप्प है और क्या सही है! और गप्प हांकने वाले बहुत कुशल हैं। महावीर सात नर्कों की बात करते थे कि सात नर्क हैं। कैसे प्रमाण लगाओगे? कैसे पता लगाओगे कि सात हैं? महावीर का विरोधी था मक्खली गोसाल नाम का एक आदमी। जब उसके शिष्यों ने उसे जा कर कहा कि तुम्हें भी पता है? कि महावीर कहते हैं, सात नर्क हैं! उसने कहा कि महावीर को पूरा पता नहीं, नर्क सात सौ हैं।
अब क्या करोगे? यह मक्खली गोसाल ठीक कहता है कि महावीर ठीक कहते हैं? रास्ता क्या है दोनों के बीच तय करने का कि कौन सही है?
लेकिन वही हुआ, जो नानक कहते हैं। मक्खली गोसाल के जीवन में वही हुआ। उसने जीवन भर गप्पें हांकीं, मरते वक्त पछताया। क्योंकि जब मौत करीब आयी तब वह घबड़ाया कि अब क्या होगा? जब मौत करीब आयी तब वह कंपने लगा। जब मौत करीब आयी तब उसने अपने भक्तों से कहा कि जो भी मैंने कहा है, वह सब झूठ था। और तुम मेरी लाश को सड़कों पर घसीटो। जब मैं मर जाऊं तो तुम मेरी लाश को सड़कों पर घसीटना और लोगों से कहना मेरे मुंह पर थूकें। क्योंकि इस मुंह से मैंने सिवाय झूठ के और कुछ भी नहीं बोला।
पर मक्खली गोसाल भी आदमी हिम्मत का रहा होगा, नहीं तो यह भी कौन करे!
और यह आदमी भी ईमानदार रहा होगा। नहीं तो जिंदगी भर झूठ बोलता रहा, एक क्षण भर के लिए और साध लेता चुप्पी, और मर जाता। तो शायद मक्खली गोसाल का धर्म

होता। क्योंकि उसके बड़े भक्त थे और उसके कई मानने वाले थे। वह महावीर के बड़े से बड़े प्रतियोगियों में से एक था। पहले महावीर का शिष्य था। फिर जब उसने कुछ थोड़ा सा सीख लिया, तो उसने अलग संप्रदाय खड़ा करने की कोशिश की। निश्चित ही गप्प हांकने वाला होगा। क्योंकि जब महावीर को पता चला, तो महावीर ने कहा कि यह तो बड़ी हैरानी की बात है, उसे तो अभी पहली झलकें भी नहीं मिली थीं। लेकिन वह महावीर के पास--जो वे कहते थे, समझाते थे--वह सब उसने समझ लिया। होशियार आदमी था, कुशल आदमी था, बोल सकता था, लिख सकता था, पंडित था। उसने अपना संप्रदाय खड़ा कर लिया।
महावीर जब गांव में आए, जिस गांव में मक्खली गोसाल ठहरा था, तो उन्होंने कहा कि मैं मक्खली गोसाल को मिलूंगा। क्योंकि वह मेरा पुराना शिष्य है। और उससे पूछूंगा, पागल! तू यह क्या कर रहा है? तुझे खुद भी पता नहीं है। मक्खली गोसाल से मिलना हुआ। तो झूठ बोलने वाले का तुम भरोसा ही नहीं कर सकते। उसने महावीर को ऐसा देखा जैसा कभी देखा ही न हो।
महावीर ने कहा कि क्या तू बिल्कुल भूल गया कि तू वर्षों मेरे साथ रहा? मक्खली गोसाल ने कहा, आप भ्रांति में हैं। जो आपके साथ था वह आत्मा तो
जा चुकी। इस शरीर में, उसी शरीर में यह नयी आत्मा तीर्थंकर की प्रवेश कर गयी है। मैं वह नहीं हूं जो आपके साथ था। यह देह भर आपके साथ थी, यह मुझे पता है। सुना है। लेकिन वह आदमी मर चुका, जो तुम्हारा शिष्य था। इसलिए भूल कर अब किसी से यह मत कहना कि मक्खली गोसाल मेरा शिष्य था। यह तो एक तीर्थंकर की आत्मा मुझ में प्रवेश कर गयी है।
महावीर चुप रह गए होंगे। अब इस आदमी से क्या कहना! और उसका बड़ा प्रभाव था। उसके हजारों भक्त थे। लेकिन फिर भी आदमी अच्छा रहा होगा। मरते वक्त उसे यह एहसास तो हो गया!
वही नानक कह रहे हैं कि जो कोई गप्प हांकने वाला इसमें कुछ कहने जाता
है, तो उसे अपनी मूर्खता का पता तब चलता है, जब उसके मुंह पर मार पड़ती है। जब मौत की मार पड़ती है, और जब जिंदगी हाथ से छूटने लगती है, तब उसे पता चलता है कि मैं व्यर्थ ही बातें करता रहा स्वर्गों-नर्कों की। और मुझे कुछ भी पता नहीं। और जिंदगी हाथ से बीत गयी। मैं जिंदगी के कोई आधार न रख पाया। कागज की नावें बहाता रहा। अब डूबने का वक्त आया, तब पता चलता है।
सम्हलना! कभी भी धर्म के संबंध में जो पता न हो, भूल कर मत कहना। पता हो
तो ही कहना, अन्यथा चुप रहना। क्योंकि मन बड़े अन्वेषण कर लेता है। मन बड़े आविष्कार कर लेता है। मन खोजने में बड़ा कुशल है। और एक दफा तुम्हारा मन खोजने लगे और बातें करने लगे और चर्चा चल पड़े, तो एक जाल शुरू हो जाता है जो अपने आप बढ़ता है। तुम्हें फिर कुछ करना नहीं पड़ता। एक शब्द दूसरे को पैदा कर देता है। एक बात दूसरी बात को पैदा कर देती है। फिर तुम आगे बढ़ने लगते हो।
ऐसा हुआ कि एक धर्मगुरु एक सराय में आ कर ठहरा। उसने अपना घोड़ा झाड़ के नीचे बांधा। मुल्ला नसरुद्दीन यह देख रहा था। घोड़ा बड़ा प्यारा था और बड़ा कीमती था। और धर्मगुरु प्रसिद्ध था, और अपने घोड़े से उसका बड़ा लगाव था। वह दूर-दूर की यात्रा अपने घोड़े पर करता था। वह दोपहर के विश्राम के लिए रुका।
मुल्ला नसरुद्दीन घोड़े के पास गया। घोड़े को सहलाया। जब वह घोड़े को सहला रहा था और खुश हो रहा था--घोड़ा सच में बड़ा बहुमूल्य था--तभी एक घोड़े का खरीददार पास से निकलता था। उसने नसरुद्दीन से कहा, तुम्हारा घोड़ा है?
अब इतना शानदार घोड़ा! कहना मुश्किल हो गया कि अपना नहीं है।
नसरुद्दीन ने कहा, हां, अपना ही घोड़ा है।
उस आदमी ने कहा, बेचते हो? बात में बात बढ़ गयी।
नसरुद्दीन ने कहा, खरीदने की हिम्मत है?
हजार रुपए का घोड़ा था, नसरुद्दीन ने दो हजार दाम मांगे। न कोई देगा, न कोई बात उठेगी, बात खतम हो जाएगी। वह आदमी दो हजार देने को तैयार हो गया।
अब बात यहां तक बढ़ गयी थी कि पीछे लौटना मुश्किल हो गया। तो उसने बेच दिया।
फिर उसने सोचा, ऐसा कुछ हर्जा भी क्या है? दो हजार मुफ्त हाथ लग रहे हैं।
और धर्मगुरु सोया हुआ है।

वह जब दो हजार गिन कर खीसे में रख ही रहा था--खरीददार तो घोड़ा ले कर जा चुका-- धर्मगुरु बाहर आया। भागने का मौका न मिला। तो रुपए तो उसने खीसे में रख लिए, अब क्या करे? कुछ सूझा नहीं, तो जहां घोड़ा खड़ा था, वहां घोड़े की रस्सी अपने गले में डाल कर और घास का एक टुकड़ा मुंह में ले कर खड़ा हो गया। धर्मगुरु खुद भी बहुत घबड़ाया। देखी उसने यह हालत, तो उसके भी हाथ-पैर कांप गए कि यह हुआ क्या है? यह मामला क्या है? उसने कहा, भाई यह क्या कर रहे हो? बात क्या है!
नसरुद्दीन ने कहा, अब आपसे क्या छिपाना! सच बात कह दूं?
उस धर्मगुरु ने कहा कि मुझे तुम्हारी सच बात जानने का कोई प्रयोजन नहीं। मैं यह पूछता हूं, वह मेरा घोड़ा कहां है? क्योंकि तुम तो मुझे आदमी पागल मालूम पड़ते हो। मेरा घोड़ा कहां है?
नसरुद्दीन ने कहा कि आपके घोड़े की बात और मेरी बात दो अलग-अलग बातें नहीं हैं। मैं ही आपका घोड़ा हूं।
धर्मगुरु ने कहा कि यह तुम क्या कह रहे हो? होश में हो? शराब पीए हो? क्या मामला है?
नसरुद्दीन ने कहा कि आप पूरी कहानी सुन लें। बीस साल पहले एक स्त्री
के साथ मैंने व्यभिचार किया, पाप किया। परमात्मा बहुत नाराज हो गया और उसने गुस्से में मुझे घोड़ा बना दिया--आपका घोड़ा। ऐसा मालूम होता है कि मेरा दंड पूरा हो गया है और मैं वापस आदमी हो गया हूं। मेरा नाम नसरुद्दीन है।
धर्मगुरु भी घबड़ा गया। परमात्मा की ऐसी नाराजगी कि आदमी को घोड़ा बना दिया! एकदम घुटने पर टिक गया। खुद भी परमात्मा से प्रार्थना की उसने कि क्षमा कर, पाप तो मैंने भी बहुत किए हैं। मगर दया कर। तेरी अनुकंपा का सहारा मांगता हूं। फिर उसने नसरुद्दीन से कहा, भाई, यह तो ठीक है, अब मुझे आगे जाना है। अब जो हुआ, हुआ। तुम अपने घर जाओ और मैं बाजार जा कर घोड़ा खरीद लूं।
वह बाजार गया तो घोड़े बेचने वाले की दूकान पर उसने अपने घोड़े को खड़ा पाया। तो और उसकी छाती घबड़ा गयी। वह पास गया घोड़े के और कान में बोला, नसरुद्दीन फिर से? इतनी जल्दी?
एक दफा मन शुरू कर दे झूठ, तो जैसे झाड़ों में पत्ते लगते हैं, ऐसे फिर झूठ में और झूठ लगते जाते हैं। एक झूठ को बचाना हो तो फिर हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। फिर झूठ इतने हो जाते हैं कि तुम भूल ही जाते हो कि वे झूठ हैं। फिर बार-बार बोलने से वे सच जैसे मालूम पड़ने लगते हैं। फिर तुम झूठ से सम्मोहित हो जाते हो।
और हजारों ऐसे झूठ हैं जो प्रचलित हैं। जिनका कोई सत्य से संबंध नहीं है। और धर्म के संबंध में सब से ज्यादा आसानी है। क्योंकि वहां कोई परीक्षण का उपाय नहीं; कोई प्रयोगशाला नहीं जिसमें जांच हो सके; कौन सही है, इसके निर्णय का कोई आधार नहीं। धर्म तो भरोसे पर जीता है। वहां कोई वैज्ञानिक परीक्षण तो हो नहीं सकता। इसलिए स्मरण रखना, अन्यथा पछताओगे। एक शब्द भी झूठ मत बोलना। झूठ बोलने की मन की बड़ी गहरी आदत है।
मेरे पास लोग आते हैं। कहते हैं कि हम दस साल से विपश्यना कर रहे हैं, बौद्ध-ध्यान कर रहे हैं। मैं उनसे पूछता हूं कि कुछ हुआ? और उनके चेहरे पर तत्क्षण भाव आ जाता है कि कुछ नहीं हुआ। लेकिन वे कहते हैं कि हां, बहुत कुछ हो रहा है, कई अनुभव हो रहे हैं। अब मैं उनका चेहरा देख रहा हूं कि कुछ भी नहीं हुआ है। कहते हैं, अनुभव हो रहे हैं। फिर थोड़ी देर बात यहां-वहां की करके मैं उनसे पूछता हूं कि सच-सच कहो, कुछ हुआ? अगर हुआ हो, तो फिर मुझसे बात करने की कोई जरूरत नहीं, आगे बढ़ो। अगर न हुआ हो तो पहले तो यह पक्का करो कि नहीं हुआ है, तब मैं आगे हाथ लूं। तो वे कहते हैं कि ऐसे अगर आप पूछते हैं, तो कुछ हुआ तो नहीं है।
अब दो क्षण पहले ही यह आदमी कहता था, बहुत कुछ हो रहा है। क्योंकि यह मानने का भी मन नहीं होता कि दस साल से कुछ कर रहा हूं और कुछ भी नहीं हुआ। मन बहुत बेईमान है। उससे सावधान रहना। और जितना तुम मन के जाल में पड़ जाओगे, उतना एक दिन पछताओगे। क्योंकि जीवन चुक जाएगा, और जब मौत सिर पर आ

खड़ी होगी, तब तुम पछताओगे कि क्यों व्यर्थ मैं झूठ में अपने को गंवाता रहा?
"जो कोई गप्प हांकने वाला इसमें कुछ कहने जाता है, उसे अपनी मूर्खता
का पता तब चलता है, जब उसके मुंह पर मार पड़ती है। वह आप ही जानता है और आप ही देता है।"
परमात्मा आप ही जानता है, आप ही देता है। जानना उसका है, देना भी उसका है। हमें तो सिर्फ पात्र होना काफी है। ज्ञान उसका है। अस्तित्व उसका है। दोनों हमें मिल जाएंगे। सिर्फ हमें राजी होना जरूरी है। उन्मुख होना जरूरी है। उसकी तरफ आंखें उठाना जरूरी है। मन के जाल में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं। न तो मन ज्ञान दे सकता है, न अस्तित्व दे सकता है। मन तो सिर्फ झूठ दे सकता है। मन की जो सुनता है, वह झूठ में उतर जाता है। मन कुछ भी नहीं दे सकता।
तुमने शायद एक पुरानी कहानी सुनी होगी कि एक आदमी ने बड़ी भक्ति की। और देवता प्रसन्न हो गए। तो देवता ने उस आदमी को एक शंख दिया। शंख की खूबी यह थी कि जो तुम उससे मांगो, मिल जाए। कहो एक महल, तो तत्क्षण महल तैयार हो जाए। कहो सुस्वादु भोजन, तत्क्षण थाली लग जाए। बड़ा कीमती शंख था। वह आदमी बड़ा आनंदित हुआ। वह आदमी बड़े महलों में, बड़े सुख से रहने लगा।
फिर एक दिन एक धर्मगुरु यात्रा करते हुए उस महल में रुका। उसने भी इस शंख के बाबत बात सुनी। लालच पकड़ा। उसके पास भी एक शंख था। उस शंख का नाम महाशंख था। उसने इस आदमी को कहा कि क्या तुम शंख के पीछे पड़े हो! मैंने भी भक्ति की बहुत। मैंने महाशंख पाया। इस महाशंख की बड़ी खूबी है। तुम मांगो एक महल, यह देता है दो।
उस आदमी का लोभ जागा। उसने कहा कि बताओ! उसने महाशंख निकाला। बड़ा शंख था। उस धर्मगुरु ने उसे नीचे रखा और कहा कि भाई, एक महल बना दे। उसने कहा, एक क्यों? दो क्यों नहीं?
जंच गयी बात। उस आदमी ने अपना शंख गुरु को दे दिया, धर्मगुरु को। महाशंख ले लिया। फिर बहुत खोजा उस गुरु को, उसका पता न चला। क्योंकि वह महाशंख सिर्फ बोलता था। तुम कहो, दो, तो वह कहे, चार क्यों नहीं? तुम कहो, चार, तो वह कहे, आठ क्यों नहीं? मगर बस, इसी तरह बात चलती थी। लेने-देने का कोई काम ही न था। वह बिल्कुल महाशंख था।
मन महाशंख है। जो कुछ मिलता है परमात्मा से, मन तो सिर्फ कहता है, इतना क्यों नहीं? और ज्यादा क्यों नहीं? मन तो बातचीत है। मन तो एक झूठ है। मन से कुछ भी नहीं घटता।
और तुम परमात्मा को छोड़ कर मन को पकड़ लिए हो। वह दोहरे की बात करता है। उससे लोभ जगता है। लेकिन कभी तुम सोचो, मन ने कभी कुछ दिया? मन से कुछ मिला? नानक कहते हैं, "वह आप ही जानता और आप ही देता है। उसका वर्णन भी विरला
कर सकता है। वह जिसे चाहे अपनी स्तुति का गुण प्रदान कर सकता है। नानक कहते हैं, वह बादशाहों का बादशाह है।"
और एक बात आखिरी, जो इस सूत्र में बहुत कीमती है।
झुन-नुन एक फकीर हुआ इजिप्त में। और जब उसे परमात्मा की प्रतीति हुई,
तो उसने यह उदघोष सुना। परमात्मा ने कहा कि इसके पहले कि तू मुझे खोजने निकलता, मैंने तुझे पा लिया था। और अगर मैंने तुझे न पाया होता, तो तू मुझे खोजने ही न निकलता।
नानक यही कह रहे हैं कि वह जिसे चाहे उसे स्तुति का गुण प्रदान कर सकता है।
सच तो यह है, तुम उसे खोजने ही तब निकलते हो, जब उसने तुम्हारे द्वार
पर दस्तक दे दी। तुम अपने आप उसे खोजने भी कैसे निकलोगे? तुम्हें उसकी खोज का बोध भी कैसे आएगा? तुम्हें उसका स्मरण भी कैसे भरेगा? उसकी स्तुति भी कैसे पैदा होगी?
फिर कितनी ही देर लग जाए खोजने में, असल में उसने तुम्हें पा ही लिया है। इसलिए तुम खोजने निकले हो। वह आ ही गया है तुम्हारे जीवन में, इसलिए तो खोज शुरू हुई है। उसकी प्यास जग गयी है। नानक कहते हैं, वह भी उसी ने ही जगायी है।

नानक का मार्ग यह है--सब उसी पर छोड़ देना है। अपने हाथ में कुछ मत रखना। क्योंकि अकड़ बड़ी सूक्ष्म है। तुम यह भी कहोगे कि मैं खोजी, मैं साधक, मैं जिज्ञासु, मैं मुमुक्षु हूं। मैं परमात्मा को खोज रहा हूं।...
यह मैं कहीं से भी निर्मित न हो, इसलिए नानक कहते हैं, तेरी मर्जी से
ही स्तुति का गुण मिलता है। हम तो तेरी महिमा भी तभी गा सकेंगे जब तू गवाए। तेरे बिना हमसे तेरी स्तुति भी न हो सकेगी। और तो बात करनी फिजूल है। हम तेरी तरफ आंख भी नहीं उठा सकेंगे, अगर तू ही हमारी आंखों को सहारा न दे। हमारे पैर तेरी तरफ न जा सकेंगे, अगर तू ही उन्हें उस तरफ न ले जाए। हम तेरी धारणा का, तेरे विचार का भी, तेरा सपना भी न देख सकेंगे, अगर तूने पहले ही हमें चुन न लिया हो।
नानक इस भांति अहंकार की सारी जड़ काट देते हैं। और जहां अहंकार नहीं, वहां उसका द्वार खुला है। जहां अहंकार नहीं, वहां ओंकार का नाद अनायास शुरू हो जाता है। तुम्हारे अहंकार के शोरगुल के कारण ही वह धीमी और छोटी आवाज सुनायी नहीं पड़ती।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
बारहवां प्रवचन

आखि आखि रहे लिवलाइ

पउड़ीः 26
अमुल गुण अमुल वापार। अमुल वापारीए अमुल भंडार।।
अमुल आवहि अमुल लै जाहि। अमुल भाव अमुला समाहि।।
अमुलु धरमु अमुलु दीवाणु। अमुलु तुलु अमुलु परवाणु।।
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु। अमुलु करमु अमुलु फरमाणु।।
अमुलो अमुलु आखिया न जाइ। आखि आखि रहे लिवलाइ।।
आखहि वेद पाठ पुराण। आखहि पड़े करहि वखियाण।।
आखहि बरमे आखहि इंद। आखहि गोपी तै गोविंद।।
आखहि ईसर आखहि सिध। आखहि केते कीते बुध।।
आखहि दानव आखहि देव। आखहि सुरि नर मुनि जन सेव।।
केते आखहि आखणि पाहि। केते कहि कहि उठि उठि जाहि।।
एते कीते होरि करेहि। ता आखि न सकहि केई केइ।।
जेवडु भावै तेवड होइ। "नानक" जाणै साचा सोइ।।
जे को आखै बोल बिगाडु। ता लिखीए सिरि गावारा गावारु।।

नानक उस परमात्मा की स्तुति में ऐसे बोलते हैं, जैसे एक मदहोश आदमी बोले। वे किसी पंडित के वचन नहीं हैं; वरन उसके वचन हैं, जो प्रभु की शराब में पूरी तरह डूब गया है। इसीलिए वे दोहराते चले जाते हैं। मस्ती में बोले गए वचन हैं। जैसे शराबी बोल रहा हो रास्ते के किनारे खड़े हो कर--बोले चला जाता है। एक ही बात को बहुत बार कहे चला जाता है। ऐसी ही किसी गहरी शराब में डूब कर वे बोल रहे हैं।
बाबर नानक के समय भारत आया। उसके सिपाहियों ने नानक को भी संदिग्ध समझ कर कैद कर लिया। लेकिन धीरे-धीरे बाबर तक खबर पहुंचने लगी कि यह कैदी कुछ अनूठा है। और इस कैदी के आस-पास एक हवा है, जो साधारण मनुष्यों की नहीं। और एक मस्ती है कि यह कैदी कारागृह में भी गाता रहता है। और यह खबर बाबर को लगी कि यह कुछ ऐसा आदमी है कि इसे कैद किया नहीं जा सकता। इसकी स्वतंत्रता भीतरी है।
तो कहते हैं, उसने संदेश भेजा नानक को कि तुम मुझसे मिलने आओ। नानक ने कहा कि मिलने तो तुम्हें ही आना पड़े। क्योंकि नानक वहां है, जहां से अब मिलने जाने का कोई सवाल नहीं।
बाबर खुद मिलने कारागृह में आया। नानक से बहुत प्रभावित हुआ। नानक को साथ ले गया अपने महल में। और उसने बहुमूल्य से बहुमूल्य शराब नानक को पीने के लिए निमंत्रित किया। नानक हंसे; और उन्होंने एक गीत गाया। जिस गीत का अर्थ है कि मैं परमात्मा की शराब पी चुका। अब इस शराब से मुझे नशा न चढ़ेगा। आखिरी नशा चढ़ गया है। अच्छा हो बाबर कि तुम ही मेरी शराब पीयो, बजाय अपनी शराब पिलाने के।
ये गीत शराबी के गीत हैं। इसलिए नानक कहे चले जाते हैं। या तो एक छोटे बच्चे की तरह, या एक शराबी की तरह। वे गुनगान करते हैं। उसमें बहुत हिसाब नहीं है। और न ही इन वचनों को, साजा-संवारा गया है। ये अनगढ़ पत्थरों की तरह हैं।
एक कवि लिखता है, तो सुधारता है। हेर-फेर करता है। जमाता है। व्याकरण
की चिंता करता है। लय की, पद की, छंद की फिक्र करता है। मात्राओं का हिसाब रखता है। बहुत बदलाहट करता है। रवींद्रनाथ की हैसियत का महाकवि भी! अगर रवींद्रनाथ की डायरियां देखें, तो कटी-पिटी हैं। एक-एक लाइन को काट-काट कर फिर से लिखा है, बदला है, फिर जमाया है।
ये वचन न तो बदले गए हैं और न जमाए गए हैं। ये तो वैसे ही हैं, जैसे नानक ने कहे थे। ये तो बोले गए हैं। इनमें कुछ हिसाब नहीं है; न भाषा का, न मात्रा का, न पद का, न छंद का। अगर इनमें कोई छंद है, तो भीतरी आत्मा का है। और अगर इनमें कोई व्याकरण है, तो वह मनुष्य की नहीं, परमात्मा की है। और

इनमें अगर कोई लय मालूम पड़ती है, तो वह लय भीतर के नशे की है। वह काव्य की नहीं है। इसलिए तो नानक कहे जाते हैं। जब भी उनसे कोई पूछता, तो वे गा कर ही जवाब देते थे। उनसे कोई सवाल पूछता और वे कहते, सुनिए। और मर्दाना अपना साज छेड़ देता और वे गीत गाना शुरू कर देते।
इस बात को याद रखना। अगर इस बात को याद न रखा तो ऐसा लगेगा, क्या नानक पुनरुक्ति किए चले जाते हैं? कि उसके गुण अपार, कि उसका मूल्य अपार। फिर वे कहे ही चले जाते हैं।
ना! ये मस्ती में गुनगुनाए गए शब्द हैं। ये किसी दूसरे से कहे गए नहीं हैं। ये अपनी ही मस्ती में, अपने ही भीतर गुनगुनाए गए हैं। दूसरे ने सुन लिया है, यह दूसरी बात है। यह ख्याल में रहेगा तो बहुत अर्थ प्रकट होने शुरू होंगे।
कहते हैं नानक, "उसके गुण अमूल्य हैं। और उसके व्यापार भी अमूल्य हैं। उसके व्यापारी भी अमूल्य हैं। और उसके भंडार भी अमूल्य हैं। जो लेने आता है वह अमूल्य है। जो ले जाता है वह अमूल्य है। उसका भाव अमूल्य है। उसकी समाधि अमूल्य है। उसका धर्म अमूल्य है। उसका दरबार अमूल्य है।"
अमुल गुण अमुल वापार। अमुल वापारीए अमुल भंडार।।
अमुल आवहि अमुल लै जाहि। अमुल भाव अमुला समाहि।।
अमुलु धरमु अमुलु दीवाणु। अमुलु तुलु अमुलु परवाणु।।
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु। अमुलु करमु अमुलु फरमाणु।।
अमुलो अमुलु आखिया न जाइ। आखि आखि रहे लिवलाइ।।
पहली बात कि वह अमूल्य है। उसका सभी कुछ अमूल्य है। मूल्य आंकने का कोई उपाय भी नहीं है। क्योंकि न तो कोई बांट है, जिससे हम उसे तौल सकें; न कोई मापदंड है, जिससे हम उसे माप सकें। कोई उपाय ही नहीं है, जिससे हम अंदाज लगा सकें कि वह कितना है? क्या है? कहां तक फैला हुआ है?
और जो भी उसको मापने जाता है, धीरे-धीरे पाता है, सारे मापदंड टूट जाते हैं। सब तराजुएं गिर जाती हैं। न केवल मापदंड टूटते हैं, वरन माप करने वाला मन भी टूट जाता है।
संस्कृत में शब्द है, माया। माया उसी धातु से बना है, जिससे माप। और अंग्रेजी का मेजर शब्द भी उसी से बना है, जिससे माप। फ्रेंच का मीटर शब्द भी उसी से बना है, जिससे माप। और अंग्रेजी का मैटर शब्द भी उसी से बना है, जिससे माप। जिससे माया बना है, उसी से मैटर, उसी से मेजर, उसी से माप।
बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है माया। माया का अर्थ है, जो मापा जा सके। जिसको
हम तौल सकें, जिसकी नाप हो सके। और जिसे हम न तौल सकें, वही ब्रह्म है। तो जो-जो तुम तौल लो, समझ लेना कि माया है। जिस-जिस का मूल्य तुम आंक लो, समझ लेना कि माया है। जिस-जिस की परिभाषा तुम कर लो, समझ लेना कि माया है। जिसकी परिभाषा न हो सके; जिसको तुम तौलो, खुद थक जाओ और न तौला जा सके; जिसको तौलने बैठो और पाओ कि इन बटखरों से कैसे हम उसे तौलेंगे? और तौलते रहेंगे तो अनंत-अनंत काल भी बीत जाएगा तो भी कुछ चुकेगा नहीं, कोई तौल पूरी नहीं होगी; जहां तुम अमाप के करीब आ जाओ, समझ लेना कि धर्म शुरू हुआ। इसलिए विज्ञान कभी धर्म को न जान पाएगा। क्योंकि विज्ञान की पूरी विधि ही तौलना है। तराजू विज्ञान का प्रतीक है। मापना ढंग है। तो विज्ञान कभी भी परमात्मा के पास न आ पाएगा। और इसलिए विज्ञान सदा कहता रहेगा कि परमात्मा नहीं है। क्योंकि विज्ञान मानता ही उस चीज को है, तो तौली जा सके। जिसको हम प्रयोग कर सकें। प्रयोगशाला की तराजू पर जिसकी कोई नाप-जोख हो सके। मार्क्स ने कहा है कि अगर परमात्मा प्रयोगशाला में प्रकट हो सके तो ही मैं मानूंगा। लेकिन अगर परमात्मा प्रयोगशाला में प्रकट हो जाए तो वह परमात्मा ही न होगा।
क्या तुम्हें प्रतीत नहीं होता कि कुछ अमाप हमारे चारों तरफ है? माप
के भीतर भी छिपा है।
एक फूल है; तुम जाओ, इसे प्रयोगशाला में तौल सकते हो, क्योंकि फूल में वजन है। नाप सकते हो लंबाई, चौड़ाई। फूल का विश्लेषण कर सकते हो तो पता चल जाएगा किन-किन द्रव्यों, रासायनिक तत्वों से मिल कर बना है। केमिस्ट्री पता चल जाएगी।

लेकिन एक चीज फूल में अमाप है, वह सौंदर्य है। तुम सब तौल लोगे। और जब तुम फूल का सारा एनालीसिस, सारा विश्लेषण कर चुकोगे, तो अचानक पाओगे कि फूल तो खो चुका है इस विश्लेषण में, इसमें सौंदर्य का तो कोई पता न चला। इसलिए वैज्ञानिक सौंदर्य को स्वीकार नहीं करेगा।
और बड़े आश्चर्य की बात है कि फूल को देख कर जो पहला भाव तुम्हारे मन में उठता है, वह सौंदर्य का है। और वही विज्ञान में खो जाता है। विज्ञान में जो चीज नष्ट हो जाती है, वही पहली चीज है जो तुम्हें प्रतीत होती है। फूल को देख कर जो पहला अंतर्भाव, जो पहली ऊर्मि उठती है जीवन में, जो भीतर की चेतना में पहला प्रतिबिंब पड़ता है, वह सौंदर्य का है। अनकहा! अनबोला! भीतर एक भाव जगता है। एक बादल भीतर घेर लेता है सौंदर्य का। वही विज्ञान की पकड़ में खो जाता है।
एक छोटा बच्चा नाच रहा है, खेल रहा है, हंस रहा है। उसे देख कर जो पहली प्रतीति होती है, वह जीवन की, ऊर्जा की, एनर्जी की। उस बच्चे को विज्ञान को दे दें। विज्ञान इसकी जांच-पड़ताल कर के सब पता लगा देगा। नाप-जोख पूरा कर देगा, लिस्ट बना देगा। लेकिन उसमें जीवन खो जाएगा। विज्ञान बता देगा, कितना एलम्युनियम, कितना लोहा, कितना मैगनेसियम इस बच्चे की हड्डियों में है, कितना फासफोरस, कितनी मिट्टी, कितना पानी... ।
मैंने सुना है, एक वैज्ञानिक अपने मित्र के साथ रास्ते से गुजर रहा था। और एक बहुत सुंदर युवती पास से गुजरी। मित्र ठिठक गया। वैज्ञानिक ने कहा, बहुत परेशान मत हो। नब्बे परसेंट तो पानी है।
आदमी के शरीर में नब्बे परसेंट तो पानी है ही। और बाकी दस परसेंट भी चीजें ही हैं, जिनको हम बोतलों में बंद कर सकते हैं। कहते हैं कि आदमी के शरीर की सब चीजों का मूल्य पांच रुपए से ज्यादा नहीं है। लोहा निकाल लें, फासफोरस निकाल लें। और बेचने जाएं तो पांच रुपए से ज्यादा का नहीं है। इसीलिए तो लाश को जला देते हैं। क्योंकि निकालने में ज्यादा खर्च हो जाएगा, उतनी बिक्री नहीं होगी। किसी काम का नहीं है।
विज्ञान सब नाप लेगा, और आखिर में कहेगा कि कोई आत्मा नहीं पायी। आत्मा मिलेगी भी नहीं, क्योंकि आत्मा अमाप है। यह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है आज कि मापने के द्वारा अगर अमाप का पता न चले, तो हम यह कहते हैं कि अमाप है ही नहीं। बुद्धिमान अगर हम हों, तो हम कहेंगे, हमारे माप के ढंग माया तक जाते हैं, ब्रह्म तक नहीं। तो हमें कोई और ढंग खोजना चाहिए जो मापने का नहीं है। ताकि हम उसे जान सकें।
विज्ञान का ढंग है--मापना, खोजना, जांचना, परिभाषा। धर्म का ढंग बिल्कुल अलग है। धर्म का ढंग है--न खोजना, न मापना, न परिभाषा करना; वरन खो जाना, लीन हो जाना, डूब जाना, अपने को डुबा देना। वैज्ञानिक अलग बना रहता है अपनी खोज से। धार्मिक लीन हो जाता है, डूब जाता है, एक हो जाता है।
नानक एक बार लाहौर में ठहरे। तो लाहौर का जो सब से धनी आदमी था, वह उनके चरणों में नमस्कार करने आया। वह बहुत धनी आदमी था। लाहौर में उन दिनों ऐसा रिवाज था कि जिस आदमी के पास एक करोड़ रुपया हो, वह अपने घर पर एक झंडा लगाता था। इस आदमी के घर पर कई झंडे लगे थे। इस आदमी का नाम था, सेठ दुनीचंद। उसने नानक के चरणों में सिर रखा और कहा कि कुछ आज्ञा दें मुझे। मैं कुछ सेवा करना चाहूं। और बहुत है आपकी कृपा से। आप जो भी कहेंगे, वह मैं पूरा कर दूंगा।
नानक ने अपने कपड़ों में छिपी हुई एक छोटी सी कपड़े सीने की सुई निकाली, दुनीचंद को दी, और कहा, इसे सम्हाल कर रखना। और मरने के बाद मुझे वापस लौटा देना।
दुनीचंद अपनी अकड़ में था। उसे समझ ही न आयी। उसे कुछ ख्याल ही न आया कि
यह क्या नानक कह रहे हैं! उसने कहा, जैसी आपकी आज्ञा। जो आप कहें, कर दूंगा। अकड़ का समय होता है आदमी के मन का, तब आदमी अंधा होता है कि कुछ चीजें असंभव हैं। धन से तो हो ही नहीं सकतीं। घर लौटा। लेकिन घर लौटते-लौटते उसे भी ख्याल आया कि मर कर लौटा देंगे! लेकिन जब मैं मर जाऊंगा, तब इस सुई को साथ कैसे ले जाऊंगा?
वापस लौटा। और कहा कि आपने थोड़ा बड़ा काम दे दिया। मैं तो सोचा, बड़ा छोटा काम दिया है। और क्या मजाक कर रहे हैं? सुई को बचाने की जरूरत भी क्या

है? लेकिन संतों का रहस्य! सोचा, होगा कुछ प्रयोजन। लेकिन क्षमा करें। यह अभी वापस ले लें। क्योंकि यह उधारी फिर चुक न सकेगी। अगर मैं मर गया तो सुई को साथ कैसे ले जाऊंगा?
तो नानक ने कहा, सुई वापस कर दो। प्रयोजन पूरा हो गया है। यही मैं तुमसे पूछता हूं कि अगर एक सुई न ले जा सकोगे, तो तुम्हारी जो करोड़ों- करोड़ों की संपदा है, उसमें से क्या ले जा सकोगे? अगर एक छोटी सी सुई को तुम न ले जा सकोगे पार, तो और तुम्हारे पास क्या है, जो तुम ले जा सकोगे? दुनीचंद, तुम गरीब हो। क्योंकि अमीर तो वही है जो मौत के पार कुछ ले जा सके।
लेकिन जो भी मापा जा सकता है, वह मौत के पार नहीं ले जाया सकता। जो अमाप है, इम्मेजरेबल है, जिसको हम माप नहीं सकते, वही केवल मौत के पार जाता है।
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। एक, जो मापने की ही चिंता करते रहते हैं। खोज करते हैं उसकी, जो मापा जा सकता है, तौला जा सकता है। और एक, जो उसकी खोज करते हैं, जो तौला नहीं जा सकता। पहले वर्ग के लोग धार्मिक नहीं हैं, संसारी हैं। दूसरे वर्ग के लोग धार्मिक हैं, संन्यासी हैं।
अमाप की खोज धर्म है। और जिसने अमाप को खोज लिया, वह मृत्यु का विजेता
हो गया। उसने अमृत को पा लिया। जो मापा जा सकता है, वह मिटेगा। जिसकी सीमा है, वह गलेगा। जिसकी परिभाषा हो सकती है, वह आज है, कल खो जाएगा। हिमालय जैसे पहाड़ भी खो जाएंगे। सूर्य, चांद, तारे भी बुझ जाएंगे। बड़े से बड़ा, थिर से थिर... पहाड़ को हम कहते हैं, अचल; वह भी चलायमान है। वह भी खो जाएगा। वह भी बचेगा नहीं। वह भी थिर नहीं है। जहां तक माप जाता है वहां तक सभी अस्थिर है, परिवर्तनशील है। जहां तक माप जाता है, वहां तक लहरें हैं। जहां माप छूट जाता है, सीमाएं खो जाती हैं, वहीं से ब्रह्म का प्रारंभ है।
इसलिए नानक कहते हैं, "गुण अमूल्य हैं। उसके व्यापार भी अमूल्य हैं।"
तुम मूल्य न आंक सकोगे। इसलिए तो बड़ी कठिनाई है। नेपोलियन का तुम मूल्य आंक सकते हो। सिकंदर का मूल्य आंक सकते हो। क्योंकि उसकी संपदा और साम्राज्य ही उसका मूल्य है। लेकिन बुद्ध का तुम कैसे मूल्य आंकोगे? नानक का क्या मूल्य है? जिनके पास कुछ है, पजेशंस, उनका तुम मूल्य आंक सकते हो। क्योंकि जो उनके पास है, वही उनकी आत्मा है। अगर करोड़ है, तो करोड़; अगर दस करोड़ है, तो दस करोड़। लेकिन जिनके पास कुछ नहीं है, केवल परमात्मा है, उनका मूल्य तुम कैसे आंकोगे?
इसलिए तो बहुत बार हम नानक को देख नहीं पाते। बहुत बार बुद्ध हमारे करीब से गुजरते हैं और हम अंधे की तरह खड़े रहते हैं। क्योंकि हमने तो नापने की ही कला सीखी है। वही हमें दिखायी पड़ता है। अगर बुद्ध के हाथ में हीरा होता, तो हीरा हमें दिखायी पड़ेगा, बुद्ध हमें दिखायी नहीं पड़ेंगे। और हीरा दो कौड़ी का है। और बुद्ध अमूल्य हैं। लेकिन दिखायी हमें हीरा पड़ेगा। हमारी आंखें, हमारे सोचने का ढंग, हमारा मन! इसे ख्याल में ले लें। बाहर जो माप का जगत है, वही भीतर मन है। इसलिए मन और माया एक है। बाहर मापना है, भीतर मापने वाला है। वह मन है। संसार और मन--यह एक जोड़ा। बाहर जो अमाप है, ब्रह्म, उससे मन का कोई नाता नहीं बनता। उससे आत्मा का नाता बनता है। क्योंकि भीतर भी एक अमाप है। तुम जैसे हो उसी से तुम्हारा संबंध हो सकेगा। मन की सीमा है, इसलिए उससे तुम सीमित को जान सकोगे। आत्मा की कोई सीमा नहीं है, इसलिए तुम असीम को जान सकोगे। मूल्य क्या है परमात्मा का? कोई भी तो मूल्य नहीं है!
जीसस के संबंध में कहानी है कि जुदास ने उन्हें केवल तीस चांदी के सिक्कों में बेच दिया दुश्मनों के हाथ में। हमें हैरानी लगती है कि जीसस जैसा मनुष्य, जैसा कभी-कभी घटता है इस संसार में, उसे जुदास तीस रुपए में बेच सका? भरोसा नहीं आता।
लेकिन तुम भी बेचते। तीस में न बेचते, तीस हजार में बेचते, फर्क क्या पड़ता है? तीस और तीस हजार में कोई भी फर्क नहीं है। क्योंकि माप यानी माप। लेकिन एक बात समझ लेने जैसी है कि जुदास को जीसस के पास बरसों रह कर भी जीसस दिखायी नहीं पड़े। और जब किसी ने कहा कि हम तीस रुपए देते हैं, पता

ठिकाना दे दो, ताकि हम इस आदमी को पकड़ लें। तो तीस रुपए ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़े।
हमें वही दिखायी पड़ता है, जिसका हम मूल्य आंक सकते हैं। हम मूल्य से फंसे हैं।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान से क्या मिलेगा? क्या फायदा? ध्यान करने से कौन सा लाभ होगा? ऐसा नहीं है कि उन्हें पता नहीं है कि ध्यान से परमात्मा मिलेगा। वह उन्हें पता है। लेकिन परमात्मा में लाभ नहीं दिखायी पड़ता। ऐसा भी नहीं है कि उन्होंने न सुना हो कि ध्यान से आनंद मिलेगा। लेकिन आनंद का बाजार में कोई भी तो मूल्य नहीं है। बेचने जाओगे तो कौन खरीदेगा? वे पूछते हैं, भाषा उनकी जो है, वे यह पूछ रहे हैं कि कुछ मूल्य करके बताएं कि कितने मूल्य की चीज ध्यान से मिलेगी?
ठीक भी है उनका पूछना। क्योंकि सारी इकानामिक्स, सारा अर्थशास्त्र जीवन का, मूल्य के हिसाब से चलता है। एक घंटा हम ध्यान करेंगे, उस एक घंटे में अगर हम बाजार में काम करेंगे, तो पचास रुपए, सौ रुपए कमा लेंगे। सौ रुपए घंटे भर में बाजार में कमा लेंगे और सौ रुपए के मूल्य का कुछ ध्यान में मिलता हो, ज्यादा का कुछ मिलता हो, तो हमें समझ में आता है कि कुछ करने योग्य है। और अगर सौ रुपए के मूल्य की चीज न मिलती हो ध्यान में, तो क्या सार! वे यह पूछ रहे हैं कि हमें ठीक-ठीक मूल्य कर के बता दें कि ध्यान से हमें कितने मूल्य का लाभ होगा? तो हम हिसाब लगा लें, अपनी इकानामिक्स को ठीक से जमा लें।
लेकिन ध्यान में जो मिलता है, उसका तो कोई भी मूल्य नहीं है। और जब तक तुम मूल्य की खोज कर रहे हो, तब तक तुम ध्यान में जा न सकोगे। क्योंकि मूल्य का जगत तुम्हें पकड़े रहेगा। संसार यानी मूल्य का जगत। और परमात्मा यानी जहां तुम निर्मूल्य में प्रवेश करते हो, या अमूल्य में प्रवेश करते हो।
"उसके गुण अमूल्य हैं। उसके व्यापार अमूल्य हैं। उसके व्यापारी भी अमूल्य हैं। और उसके भंडार भी अमूल्य हैं।"
कौन है उसका व्यापारी? जिनको हम संत कहते हैं, सिद्ध कहते हैं, बुद्ध कहते हैं, वे उसके व्यापारी हैं। वे तुम्हें बेचने आए हैं कुछ, जो तुम खरीदने की हिम्मत नहीं कर पाते। वे तुम्हें कुछ देना चाहते हैं, जो अमूल्य है। लेकिन तुम लेने को तैयार नहीं। तुम्हारे ख्याल में ऐसा लगता है कि जो मुफ्त मिलता है, वह बिना मूल्य का होगा। परमात्मा मुफ्त मिलता है। इसलिए तुम उसकी चिंता नहीं करते। अगर उस पर भी दाम लगे हों, तो तुम उसकी चिंता करोगे। बुद्ध, नानक, कबीर, व्यापारी हैं। लेकिन व्यापार बड़ा गड़बड़ है उनका। वह हमारी समझ के बाहर है व्यापार। वह हमें व्यापारी मालूम ही नहीं पड़ते। ऐसी कहानी है कि नानक को घर में कुछ करते न देखकर पिता ने कहा कि अब तुम इतना ही करो कम से कम, बिल्कुल काहिल, व्यर्थ मत बनो। किसी के काम के भी तो थोड़े सिद्ध होओ!
पिता को भी नानक में दिखायी नहीं पड़ा कि इस आदमी में कुछ मूल्यवान है। कभी-कभी दूसरे आकर नानक के पिता को कह जाते थे कि बड़ा मूल्यवान है। लेकिन नानक के पिता को कभी भरोसा नहीं आया। कि मूल्यवान क्या खाक है? एक पैसा कमाने की अकल नहीं, सिर्फ गंवाना जानता है। मूल्यवान कैसे? इस जगत में जो कमाना है, उस जगत में वह गंवाना है। उस जगत में जो कमाना है, वह इस जगत में गंवाने जैसा मालूम पड़ता है!
तो नानक को कहा कि कुछ न बने तो तुम कम से कम जानवरों को जंगल ले कर चरा आओ। इतना तो कर ही सकते हो। यह तो आखिरी काम है, जो बुद्धू से बुद्धू कर सकता है। जब लोग नाराज होते हैं अपने बेटों पर, तो वे कहते हैं, अगर कुछ न बना, तो ढोर चराओगे। वह आखिरी है।
नानक के बाप ने कहा, तो अब तुम यही करो। यह बैठ कर गीत गाकर, यह आकाश की तरफ आंखें लगा कर कहीं दुनिया चली है! बाप संसारी आदमी हैं। और बेटे की चिंता कर रहे हैं कि बेटा कुछ काम का हो जाए, नहीं तो कैसे जीएगा!
नानक राजी हो गए। लेकिन नानक के राजी होने का कारण दूसरा था। नानक राजी हुए, क्योंकि नानक ने हमेशा पाया कि आदमियों की बजाय जानवरों की संगत में ज्यादा शांति है। क्योंकि जानवर कम से कम इकानामिक्स तो नहीं मानते।

कोई अर्थशास्त्र तो नहीं है उनका। धन, पैसा, हिसाब तो नहीं लगाते। जीते हैं। तो नानक एकदम राजी हो गए। उन्हें सदा पसंद था गाय-भैंसों के पास बैठना। कम से कम पैसे की बात तो वहां नहीं चलती। चुप्पी तो होती है। लाभ-हानि का हिसाब नहीं होता। और कम से कम जानवरों ने उसकी मर्जी पर अपने को छोड़ दिया है। उनका कोई अहंकार तो नहीं है।
तो वे चले गए गाय-भैंसों को लेकर। लेकिन ऐसे आदमी के साथ सदा उपद्रव होगा। गाय-भैंसें चरने लगीं। और उन्होंने उनसे कहा, चरो मजे से, आनंद से। वे आंख बंद कर के अपनी मस्ती में लीन हो गए। पास के खेत में सब जानवर घुस गए। और उन्होंने सब खेत साफ कर दिया। तो वह आदमी पागल हुआ भागा हुआ आया, जो खेत का मालिक था। और उसने कहा, यह तुमने क्या करवाया है? इसके पैसे भरने पड़ेंगे एक-एक। मेरी पूरी फसल नष्ट हो गयी। नानक ने आंख खोली और कहा, तू घबड़ा मत। उसके ही जानवर हैं, उसने ही चरवाया है, उसका ही खेत है। तू घबड़ा मत। बड़ा वरदान तुझ पर बरसेगा।
उस आदमी ने कहा, चुप रह! बकवास मत कर। वरदान बरसेगा? मैं बरबाद हो गया।
वह भागा हुआ गया। नानक के बाप को पकड़ा। और गांव का जो मुखिया था, उसके पास नानक के बाप को पकड़ कर ले गया कि पूरी फसल चुकानी पड़ेगी। वह जो मुखिया था, वह नानक का भक्त था। वह मुसलमान था। बूलर उसका नाम था--शाह बूलर। उसने कहा, नानक को भी पूछ लेना चाहिए, क्या हुआ? नानक को बुलाया गया।
नानक ने कहा, सब उसी की मर्जी से हो रहा है। उसके हुक्म से। और सब ठीक
ही होगा। और उसी ने जानवर भेजे। और उसी ने फसल उगायी। और जब उसने एक बार उगायी, तो वह हजार बार उगा सकता है। घबड़ाने की क्या बात है? मुझे नहीं लगता कि कोई भी नुकसान हुआ है।
तो उस आदमी ने कहा कि सब साथ चलें, मेरा खेत बरबाद पड़ा है। और यह आदमी कहता है, कोई नुकसान नहीं हुआ।
कहानी कहती है कि जब वे वापस पहुंचे तो पाया कि खेत लहलहा रहा है। वहां कोई नुकसान नहीं हुआ। सच तो ऐसा कि आस-पास के खेत फीके पड़े हैं। और इस खेत में जैसी फसल आयी है, ऐसी कभी देखी नहीं गयी
यह कहानी घटी हो, न घटी हो; पर बड़े मतलब की है। जो उस पर छोड़ देता है उसके खेत की फसल का क्या कहना! और नानक ने उस पर छोड़ दिया। तो नानक के जीवन में ऐसी फसल आयी जैसी कि किसी के जीवन में कभी-कभी मुश्किल से आती है। पर छोड़ने की हिम्मत... ।
वह खेत का मालिक तो भरोसा ही न कर सका कि यह क्या हुआ है! इस जगत में सबसे बड़ा चमत्कार है, परमात्मा पर अपने को छोड़ देना। और तब तुम्हारे जीवन में ऐसा घटने लगेगा रोज-रोज, जिसके लिए जवाब देना बिल्कुल मुश्किल है। जिसको समझाना मुश्किल है। जिसकी कोई रैशनल, कोई तर्कयुक्त व्याख्या नहीं हो सकती।
इतना ही अर्थ है कहानी का कि जो उस पर छोड़ देते हैं, उनके जीवन में प्रतिपल ऐसी घटनाएं घटने लगती हैं, जिनका कि कोई बुद्धियुक्त हल नहीं हो सकता। जो पहेलियां मालूम होती हैं।
क्यों? क्योंकि जब अमाप तुम्हारे जीवन में प्रवेश करता है, तब पहेलियां शुरू हो जाती हैं। पहेली का एक ही अर्थ है, रहस्य का एक ही अर्थ है, कि तुमने माप की दुनिया से आंखें उठा लीं अमाप की तरफ। सीमा की तरफ से तुम हटे और असीम की तरफ झुके। ज्ञात को तुमने थोड़ा छोड़ा और अज्ञात तुम्हारे जीवन में आया। जैसे ही तुम अज्ञात को थोड़ी सी जगह देते हो अपने जीवन में, वैसे ही रहस्य घटने शुरू हो जाते हैं। चमत्कार की फसल उठनी शुरू हो जाती है।
नानक व्यापारी हैं किसी और दूसरी दुनिया के। और उस दूसरी दुनिया के व्यापारियों के साथ हमने सदा दुर्व्यवहार किया है। जीसस को हमने सूली पर लटका दिया। सुकरात को जहर पिला दिया। और हमने सूली भी न दी हो, जहर भी न पिलाया हो, तो भी हमने उस दुनिया के व्यापारियों की बात कभी नहीं सुनी।
हमने पूजा भी की हो, तो भी नहीं सुनी। पूजा भी हमारी एक तरकीब है बचने की। कि हम कहते हैं, आप बहुत महान हो। हम आपको कैसे पा सकते हैं? तो आपके चरणों में हम फूल चढ़ाते हैं। लेकिन हम तो जैसे हैं, वैसे ही रहेंगे।

और हम पूजा करके वैसे ही बने रहते हैं। तुम्हारी पूजा झूठी है, अगर तुम वैसे ही बने रहते हो। एक ही कसौटी है पूजा के सच होने की कि पूजा तुम्हें बदले। अगर तुमने सच में नानक को आदर दिया, तो तुम दूसरे ही आदमी हो जाओगे। लेकिन तुम नानक को आदर भी देते हो और वही के वही आदमी बने रहते हो, तो आदर झूठा है। और आदर भी बचने की तरकीब है। तुम कहते हो, हां! हम मानते हैं कि आप जो कहते हैं बिल्कुल ठीक है। लेकिन अभी हमारा समय नहीं आया। जब आएगा, तब हम भी इस मार्ग पर चलेंगे। लेकिन अभी संसार में बहुत काम करने बाकी हैं। पहले उनको निपटा लेने दें। और जल्दी भी क्या है? कल!
हम पोस्टपोन करते हैं। हमारा आदर भी बड़ा होशियारी से भरा है। ध्यान रखना, आदर ज्यादा चालाक तरकीब है। जहर पिलाना सीधी-सादी बात है। कि हम इस आदमी से छुटकारा पाना चाहते हैं। इसलिए यूनान में उन्होंने सुकरात को जहर पिला दिया। यहूदियों ने जीसस को सूली पर लटका दिया। हिंदुस्तान ज्यादा चालाक है। क्योंकि पुरानी जाति! ज्यादा होशियार है। हमने बुद्ध को, नानक को, महावीर को, कृष्ण को, सूली पर नहीं चढ़ाया और न ही जहर पिलाया। हमने उनकी पूजा की।
और ध्यान रखना, यहूदी जीसस को सूली पर चढ़ा कर अभी तक छुटकारा नहीं पा सके। यहूदी के पीछे जीसस घूम रहा है। क्योंकि जिसको तुम सूली दोगे, उसके लिए तुम्हारे भीतर एक अपराध का भाव पैदा हो जाएगा। अभी तक जीसस से छुटकारा नहीं हुआ है यहूदियों का। और कभी नहीं होगा। क्योंकि एक अपराध का भाव भीतर बैठ गया है। और बार-बार उन्हें जीसस की याद आती है।
लेकिन हमने पहले ही छुटकारा कर लिया है। हमें किसी की याद नहीं आती।
हम बहुत होशियार लोग हैं। हमने दिन बांध दिए हैं याददाश्त के कि तुम्हारा जन्म-दिन आएगा तो हम तुम्हारी याद कर लेंगे। बाकी समय तुम हम पर कृपा करो! हमें अपना व्यापार करने दो। अभी हमारी उत्सुकता उस दुनिया के व्यापार में नहीं है। भारत बहुत चालाक है। इसलिए हमने किसी को फांसी नहीं दी। क्योंकि हम छुटकारे की सरल तरकीबें जानते हैं। इतना उपद्रव क्यों खड़ा करें? और सूली देने का मतलब यह है कि हमने तुम्हें बहुत गंभीरता से लिया।
हम तुम्हारी पूजा करेंगे। यह बड़ी सरल और अहिंसात्मक प्रक्रिया है छूटने की। हम तुम्हें भगवान कहेंगे। गुरु कहेंगे। संत कहेंगे। सिद्ध पुरुष कहेंगे। लेकिन तुम हमें "हम" रहने दो। तुम वहां मंदिर की वेदी पर रहो, हम यहां संसार में। और जब कभी हमें संसार में किसी चीज की जरूरत होगी, तो हम तुमसे मांग लेंगे। हम तुम्हारा उपयोग करेंगे, लेकिन हम तुम्हारे कारण बदलेंगे नहीं।
यह ज्यादा चालाक, ज्यादा होशियार कौम है। पुरानी कौम है। बूढ़े आदमी हमेशा चालाक हो जाते हैं। क्योंकि जिंदगी भर का अनुभव उन्हें बता देता है कि बचने की तरकीबें कुशलता से निकाली जा सकती हैं। इतना जाल--जहर खरीदना और जहर पिलाना और सूली लगाना--इतना उपद्रव क्या करना! मंदिर की वेदी पर बिठा दो, छुटकारा हो जाता है। हमने अपने उन सब व्यापारियों को, जो दूसरे जगत की खबर लाए, पूज्य बना लिया। और पूज्य बनाकर हमारा निपटारा हो गया। नाता-रिश्ता तय हो गया। कि हम भक्त हैं, तुम भगवान हो। हम पुजारी हैं, तुम आराध्य हो। बात निपट गयी!

असली सवाल है, नानक हो जाना। असली सवाल नानक की पूजा नहीं है। असली सवाल गुरुग्रंथ पर फूल चढ़ाना नहीं है, असली सवाल गुरुग्रंथ हो जाना है कि तुम्हारे शब्द का उच्चार उस एक ओंकार की ध्वनि लाने लगे। लेकिन तब तुम्हें बदलाहट से गुजरना पड़े।
"उसके व्यापारी भी अमूल्य हैं।"
और इसीलिए तो हम पहचान नहीं पाते। इसीलिए तो हमें लगता है कि वे जो कुछ कह रहे हैं, वह हमारे तर्क में नहीं बैठता। वे जो कुछ बता रहे हैं, वह हमारी समझ के साथ संगत नहीं होता। तो हम अपने बीच और उनके बीच एक दीवाल खड़ी कर लेते हैं। और हमने अपने भीतर कंपार्टमेंट बना लिए हैं।
जब तुम गुरुद्वारा जाते हो तब तुम और तरह के आदमी होते हो। जब तुम दूकान पर बैठते हो तब तुम और तरह के आदमी होते हो। जब तुम मंदिर जाते हो तब देखो तुम्हारा भाव! आंखों से आंसू बह रहे हैं, तुम ऐसे गदगद मालूम होते हो!

मस्जिद में तुम्हें नमाज पढ़ते देखना, और फिर बाजार में तुम्हें दूकान पर देखना, भरोसा ही नहीं आता कि तुम एक आदमी हो। ऐसा लगता है, तुम दो आदमी हो।
यह भी बचने की बड़ी कुशल तरकीब है।
तो हम एक कोना अलग ही बना दिए हैं धर्म का। वह हमारा संडे-कार्नर है। वहां हम सुबह चर्च जाते हैं। और चर्च से हम बाहर निकले कि हम उस कोने को वहीं छोड़ आते हैं। फिर सात दिन हम उसे आंख उठा कर भी नहीं देखते। जैसे धर्म का संबंध हमारे चर्च में होने से है! और बाकी जिंदगी? बाकी जिंदगी हम अपने हिसाब से चलते हैं। चर्च में, गुरुद्वारे में, मंदिर में, हम इन व्यापारियों की बात सुनते हैं। वह भी सुनने की है। वह भी हम कहां ठीक से सुनते हैं! वह भी एक सामाजिक उपचार है।
नानक कहते हैं, "उसके व्यापारी भी अमूल्य हैं।"
और अगर तुम उसकी तरफ जाना चाहते हो तो उसके व्यापारियों को समझने की कोशिश करना। और उसके व्यापारी भी तुम्हें अकूत मालूम पड़ेंगे। उनको भी तुम तौल न सकोगे। तुम्हारी बुद्धि उनके साथ भी थक जाएगी। तुम्हारे मापदंड वहां भी गिर जाएंगे। तुम पाओगे कि तुम उन्हें जिस तरह से भी तौलो, तुम उन्हें पाते हो, वे तुम्हारी तौल से बड़े हैं।
"जो लेने आता है वह अमूल्य है, जो ले जाता वह अमूल्य है।"
वहां अमूल्य का ही सारा कारोबार है--अकूत का, अमाप का। वहां ग्राहक भी
जो आता है वह भी अमूल्य है। वहां जो सामान ले जाता है वह भी अमूल्य है। वहां बिक्री ही उस एक की हो रही है--एक ओंकार सतनाम।
"उसका भाव अमूल्य है, उसकी समाधि अमूल्य है।"
तुम्हारे भीतर उसका भाव भी पैदा हो जाए, तो तुम दूसरे जगत में प्रवेश
कर गए। तुम फिर यहां नहीं हो। उसका भाव पैदा हो जाए तो तुम कहीं और चले गए।
रामकृष्ण के सामने कोई परमात्मा का नाम ले देता, वहीं वे खड़े हो जाते।
आंख बंद हो जाती और आंसुओं की धार लग जाती। शरीर जड़ हो जाता। वे कहीं और चले गए। वे अब यहां नहीं हैं। स्मरण मात्र! और एक नया आयाम भीतर खुल गया। तत्क्षण कोई और दुनिया खुल गयी। यह दुनिया बंद हो गयी। इस दुनिया के दरवाजे बंद हो गए। और एक नए लोक का द्वार खुल गया।
नानक कहते हैं, उसका भाव, स्मरण मात्र, उसकी सुरति, जरा सी उसकी स्मृति, एक रेखा--और तुम कहीं और चले गए। उसका भाव ही जब परिपूर्ण हो जाता है तो उसका नाम समाधि है।
भाव और समाधि के भेद को समझ लें। भाव का अर्थ है, एक झलक। भाव का अर्थ है, एक तरंग। भाव का अर्थ है, एक क्षण को तुम उसमें डूबे, लेकिन तुम बने रहे। डुबकी तो लगायी, मिटे नहीं। जैसे पानी में कोई डुबकी लगाए। कितनी देर डुबकी लगाएगा? एक क्षण बाद बाहर आ जाएगा। और डुबकी जब लगाए हुए है, तब भी मौजूद तो है ही!
शेख फरीद हुआ एक सिद्ध पुरुष। नानक के ही करीब-करीब समय में। एक दिन नदी जा रहा था स्नान करने और एक भक्त ने पूछा कि भगवान कैसे पाया जाए? उसने कहा, तू मेरे साथ आ। नदी के किनारे भक्त से कहा, चल पहले स्नान कर लें। फिर तुझे बता दूंगा। और मौका लगा तो स्नान करने में ही बता दूंगा।
भक्त थोड़ा डरा। भगवान की बात पूछी! और यह आदमी कह रहा है कि स्नान करने में ही बता दूंगा, अगर मौका लगा। थोड़ा भय भी आया। लेकिन अब पूछ बैठा था, फंस गए! न भी न कर सका। और जिज्ञासा भी जगी कि पता नहीं! शायद, नदी में कुछ बताए। तो उतर गया स्नान करने।
जैसे ही उसने डुबकी लगायी, शेख फरीद उसके ऊपर सवार हो गया और उसे नीचे दबाने लगा। वह भक्त तड़फड़ाने लगा। हाथ-पैर फेंकने लगा। सारी ताकत दांव पर लगा दी। भक्त ऐसे कमजोर दुबला था। शेख फरीद तगड़ा आदमी था। बा-मुश्किल, लेकिन सारी ताकत लगा दी, तो फरीद को भी उसने फेंक दिया। बाहर निकल कर बोला कि तुम मैं समझा कि संत हो, लेकिन हत्यारे मालूम पड़ते हो। यह कोई ढंग हुआ! यह कोई बात है? तुम पागल हो या होश में हो? अगर नहीं मालूम, तो पहले ही कह देना था।
फरीद ने कहा कि पीछे कर लेंगे यह हिसाब-किताब कि होश में हूं कि पागल हूं। कि कौन होश में है, कौन पागल है! पहले मैं यह पूछता हूं--क्योंकि वक्त

निकल गया तो तू भूल जाएगा, तेरी स्मृति कमजोर है--मैं तुझ से यह पूछता हूं कि जब मैं तुझे पानी में दबाए ही जा रहा था, तब तेरे मन में कितने विचार थे? उसने कहा, विचार! पागल हुए हो? एक ही भाव था कि किसी तरह बाहर निकल आऊं
और एक श्वास हवा मिल जाए। विचार कहां? बस एक भाव था कि किसी तरह बाहर आ जाऊं! और एक श्वास... !
फरीद ने कहा, बस तू समझ गया। जिस दिन ऐसा ही कोई विचार न होगा और एक भाव होगा परमात्मा का, उस दिन तू जान लेगा। और जब तक जीवन दांव पर न लगाएगा, तब तक परमात्मा को जानना मुश्किल है।
भाव का अर्थ है, जहां कोई विचार न रहा। केवल उसकी सुरति रह गयी। मगर तुम भी हो, थोड़ी देर में तुम पानी के बाहर आ जाओगे। समाधि, भाव की परिपूर्ण दशा है। तुम गए तो गए! प्वाइंट आफ नो रिटर्न। वहां से फिर तुम वापस नहीं आते। फिर वह भाव सदा रहता है। फिर तुम भाव के साथ एक हो गए। वह डुबकी नहीं है, वह लीनता है। तुम पानी ही हो गए। अब कौन बाहर आएगा? कौन भीतर जाएगा? जैसे तुम नमक के पुतले थे और पिघल गए पानी में और खो गए। जैसे तुम शक्कर की डली थे और पानी में खो गए और एक हो गए। अब कोई पानी को चखेगा तो तुम्हारा स्वाद पाएगा। लेकिन अब तुम एक हो गए! अब तुम अलग नहीं हो। भाव में तुम अलग होते हो। क्षण भर की झलक मिलती है। समाधि में तुम एक हो गए होते हो। झलक शाश्वत हो जाती है।
नानक कहते हैं, उसका भाव भी अमूल्य है। समाधि का तो कहना क्या!
अमुल भाव अमुला समाहि।
"उसका धर्म अमूल्य है, उसका दरबार अमूल्य है। तुला अमूल्य है। प्रमाण अमूल्य है। उसका वरदान अमूल्य है। उसका प्रतीक अमूल्य है।"
इसे थोड़ा समझें। उसका प्रतीक भी अमूल्य है। प्रतीक के साथ बड़ी जटिलता है। हिंदू हैं; उन्होंने हजारों प्रतीक खोजे हैं। मूर्तियां बनायीं, तीर्थ बनाए, ये सब प्रतीक हैं। मुसलमान को समझ में भी नहीं आता कि मूर्ति में क्या रखा हुआ है? वह मूर्ति को तोड़ देता है। और तोड़ कर उसे ऐसा भी लगता है कि जब मूर्ति अपनी ही रक्षा नहीं कर सकती, तो भक्तों की क्या खाक रक्षा करेगी?
दयानंद को भी ऐसा ही हुआ अनुभव। वह पूजा करते थे। रात सो गए, और देखा
कि एक चूहा मूर्ति पर चढ़ा है, और मूर्ति चूहे को भी नहीं भगा सकती! पर मुसलमान भी चूकते हैं और दयानंद भी चूके। क्योंकि प्रतीक, प्रतीक है। प्रतीक परमात्मा नहीं है।
प्रतीक का अर्थ होता है कि उसके सहारे तुम किसी यात्रा पर जा रहे हो।
वह खुद मंजिल नहीं है। समझो, तुम्हारी प्रेयसी ने तुम्हें एक रूमाल भेंट कर दिया; वह चार आने का है। अगर बाजार में तुम उसे बेचने जाओगे तो दो आना भी नहीं मिलेगा। पहले तो कोई खरीदने को तैयार ही नहीं होगा कि पुराने रूमाल का क्या करेंगे? पर गुदड़ी बाजार में शायद कोई दो आने में खरीद ले। लेकिन तुम्हें तुम्हारी प्रेयसी ने दिया है वह रूमाल। उसका मूल्य लगाना कठिन है। हिसाब ही लगाना कठिन है। तुम उसे साज-संवार कर रखते हो। वह कहीं खो न जाए!
तुम्हारे लिए वह रूमाल सिर्फ रूमाल नहीं है, प्रतीक है। उस रूमाल के साथ प्रेयसी से तुम्हारा नाता जुड़ा है। इस बात को कोई दूसरा न जान सकेगा। दूसरे के लिए वह सिर्फ रूमाल होगा। तुम्हारे लिए वह सिर्फ रूमाल नहीं है। किसी गहरे अर्थ में तुम्हारी प्रेयसी उस रूमाल के साथ संयुक्त है। वह रूमाल तुम्हारी प्रेयसी की हवा को छुआ है। उस रूमाल ने तुम्हारी प्रेयसी के हाथों में स्पर्श पाया है। प्रेयसी ने उस रूमाल का चुंबन लिया है और तुम्हें भेंट किया है। प्रेयसी ने अपने हाथों से थोड़ी सी कसीदाकारी की है। वह प्रेयसी बड़े गहरे अर्थों में उस रूमाल में समा गयी है। किसी और के लिए वह प्रतीक साधारण रूमाल है, तुम्हारे लिए वह साधारण रूमाल नहीं है। क्या फर्क है? तुम्हारे लिए प्रतीक है। दूसरों के लिए रूमाल है।
हिंदू की मूर्ति, हिंदू के लिए प्रतीक है, अगर उसने भाव को संजोया है। मुसलमान के लिए साधारण पत्थर है। जैन की मूर्ति, जैन के लिए प्रतीक है, हिंदू के लिए पत्थर है। बुद्ध की मूर्ति, बौद्ध के लिए प्रतीक है, जैन के लिए किसी मूल्य की नहीं। प्रतीक का मूल्य भाव पर निर्भर होता है। प्रतीक

का कोई सार्वजनिक मूल्य नहीं होता। प्रतीक प्राइवेट है। वह एक निजी बात है। जो जानता है, वह जानता है। जिसका उससे लगाव है, उसका लगाव है।
इसलिए भूल कर भी कभी किसी के प्रतीक के खिलाफ कुछ मत कहना। क्योंकि वह तुम्हारे लिए साधारण है, और तुम भी सच हो। और जिसके लिए वह असाधारण है, वह भी सच है।
तुम भी सच हो कि यह रूमाल रूमाल है, क्या छाती से चिपकाए फिरते हो? और
खो जाए तो डर क्या है? हजार खरीद कर ला देंगे। बाजार में मिलता है। लेकिन जिसके लिए वह प्रतीक है, वह भी सच है। क्योंकि यह रूमाल फिर नहीं मिल सकता। ऐसा रूमाल दुबारा नहीं मिल सकता। यह रूमाल अनूठा है। पर यह जो अनूठापन है, यह निजी घटना है।
नानक कहते हैं, "उसके प्रतीक भी अमूल्य हैं।"
वह तो अमूल्य है ही, लेकिन अगर तुमने किसी प्रतीक के माध्यम से उसकी झलक पायी है, वह भी अमूल्य है। और प्रत्येक प्रतीक का सम्मान करना है। क्योंकि कौन जाने किस के लिए उससे रास्ता मिलता हो! और किसी के प्रतीक को कभी गलत मत कहना। क्योंकि प्रतीक गलत और सही होते ही नहीं। किसी के लिए प्रतीक होते हैं, किसी के लिए नहीं होते। प्रतीक के गलत और सही होने का कोई सवाल ही नहीं उठता।
अब बड़ी हैरानी की बात है। मुसलमान को दिखायी पड़ता है कि सारी मूर्तियां व्यर्थ हैं। लेकिन काबा का पत्थर? उसको वे चूमते हैं। उस पत्थर पर जितने चुंबन पड़े हैं, दुनिया के किसी पत्थर पर नहीं पड़े। वह पत्थर चुंबनों से भर गया है। उस पत्थर के एक-एक इंच पर अरबों-अरबों चुंबन पड़ चुके हैं। पिछले चौहद सौ वर्षों में करोड़ों-करोड़ों लोगों ने उस पत्थर को चूमा है। ऐसा कोई पत्थर खोजना मुश्किल है। मुसलमान को वह पत्थर तो चूमने जैसा लगता है, हिंदू की मूर्ति तोड़ने जैसी लगती है। क्योंकि वह पत्थर उसके लिए प्रतीक है। और यह प्रतीक नहीं है।
लेकिन धार्मिक व्यक्ति को इतनी समझ होनी ही चाहिए कि जो मेरे लिए प्रतीक नहीं है, वह दूसरे के लिए प्रतीक हो सकता है। और प्रतीक निजी घटना है। और उसको सार्वजनिक रूप से सिद्ध करने का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि वह भाव की बात है। वह अंतर्भाव है। वह बड़ी गहन और भीतरी घटना है। उसको बाहर लाने का उपाय नहीं। बाहर लाते-लाते ही वह खो जाती है।
किसी आदमी के लिए पीपल का वृक्ष प्रतीक है। तुम उससे मत कहना कि क्या वृक्ष को पूज रहे हो? पागल हो गए हो? सवाल किस को पूज रहे हो यह है ही नहीं, सवाल पूजा का है, किस बहाने पूजा हो जाए! सभी बहाने ठीक हैं। और सभी बहाने गलत हैं। अगर तुम वैज्ञानिक ढंग से सोचो, तो पीपल का वृक्ष, पीपल का वृक्ष है। पत्थर, पत्थर है; रूमाल, रूमाल है। लेकिन विज्ञान का क्या लेना-देना है यहां! धर्म प्रेम का राज्य है, तर्क और बुद्धि का नहीं।
पर बड़े मजे की बात है, हर आदमी अपने प्रतीक को तो मान कर चलता है, दूसरे
के प्रतीक के साथ झंझट खड़ी हो जाती है। तुम अपनी प्रेयसी के रूमाल को तो सम्हाल कर रखे हो, दूसरों को भी सम्हाल कर रखने दो। वह उनकी प्रेयसियों के रूमाल हैं।
नानक कहते हैं, प्रतीक भी! जिससे इशारा भी मिल जाए।
अब समझो कि किसी आदमी को अगर पीपल के वृक्ष के देवता में ही रस है, और
वह यदि पीपल के वृक्ष के पास समाधिस्थ हो जाता है, और आनंदमग्न हो कर नाचने लगता है, तो असली सवाल वृक्ष थोड़े ही है! असली सवाल तो यह आनंदमग्न नृत्य है। यह नृत्य जहां भी घटित हो जाए, जिस बहाने भी उसकी याद आ जाए, वही अमूल्य है।
"उसका वरदान अमूल्य है। उसका प्रतीक अमूल्य है। उसकी कृपा अमूल्य है।
और उसकी आज्ञा अमूल्य है। वह अमूल्य से भी कितना अमूल्य है, इसका बखान नहीं हो सकता। उसका बखान ही करते-करते कितने ध्यानस्थ होते रहते हैं।" उसके बखान का प्रयोजन ही इतना है। इसे थोड़ा समझें। नानक बार-बार कहते हैं, उसका बखान नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं बखान करने का। और फिर भी बखान करते चले जाते हैं। कर क्या रहे हैं नानक? यदि उसका बखान नहीं हो सकता, तो ये सारे शब्द कर क्या रहे हैं? यह सब उसका बखान है। तब एक बड़ी तार्किक पहेली खड़ी हो जाती है।

अनेक लोग मुझसे आ कर पूछते हैं कि बुद्ध कहते हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर बुद्ध बोलते क्यों हैं? मुझसे कहते हैं, कि आप कहते हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता। और आप रोज बोले चले जाते हैं! संगति नहीं मालूम पड़ती। कन्सिस्टेन्सी नहीं मालूम पड़ती।
इसे थोड़ा समझें। नानक कहते हैं, उसका बखान नहीं हो सकता; और बखान किए चले जा रहे हैं। क्योंकि बखान करते-करते ही समाधि लग जाती है। बखान तो नहीं हो पाता। लेकिन उसकी चर्चा करनी ही इतनी मधुर है! चर्चा हो नहीं पाती। कह कर भी कुछ कहा नहीं जाता। अनकहा, अनकहा रह जाता है। लेकिन उसकी चर्चा करना ही इतना आनंदपूर्ण है कि उसकी चर्चा करते-करते ही ध्यान लग जाता है। बोल-बोल कर कुछ कहा तो नहीं जा सकता, लेकिन बोलते-बोलते-बोलते बोलने वाला खो जाता है।
"उसका बखान ही करते-करते कितने ध्यानस्थ हो जाते हैं। वेद उसका वर्णन करते हैं। पुराण उसका पाठ करते हैं। विद्वान उसका वर्णन करते हैं और बखान करते हैं। इंद्र और ब्रह्मा उसका वर्णन करते हैं। गोपी और गोविंद उसका वर्णन करते हैं। विष्णु और सिद्ध उसका वर्णन करते हैं। अनेक-अनेक बुद्ध उसका वर्णन करते हैं। दानव और देव भी उसका वर्णन करते हैं। सुर, नर और मुनिजन और सेवकजन उसका वर्णन करते हैं।"
उसका वर्णन, वर्णन के लिए नहीं है। उसका वर्णन भी ध्यान की एक विधि है। उसकी चर्चा उसमें खो जाने का एक उपाय है। उसकी बात करना उसकी तरफ उन्मुख होने का मार्ग है। जहां उसकी बात चलती हो वहां बैठ कर उसकी बात सुन लेना भी--तुम्हारे भीतर भी शायद एक-आध बूंद की वर्षा हो जाए! शायद तुम्हारे प्यासे कंठ पर भी कोई चीज पड़ जाए। शायद अनायास कुछ सुनायी पड़ जाए। शायद तुम्हारी वधिरता को तोड़कर कोई शब्द भीतर प्रवेश कर जाए। शायद तुम्हारी अंधी आंखें भी थोड़ी सी रोशनी से भर जाएं। और तुम्हारी बुद्धि के विचार भी थोड़ी देर को उसकी चर्चा के राग में, उसकी चर्चा के रंग में, उसकी चर्चा के संगीत में डूब जाएं। थोड़ी देर को तुम चुप हो जाओ। तुम्हारी भीतरी, जो चल रही वार्तालाप की विधि है, वह विच्छिन्न हो जाए। तुम्हारा इंटरनल डायलाग टूट जाए!
इसलिए नानक उसके गीत गाते हैं। उसके गीत गाते हैं, क्योंकि गाते-गाते गायक उसमें खो सकता है। गाते-गाते सुनने वाला भी उसमें खो सकता है। और इसलिए नानक ने कहा नहीं, गाया। क्योंकि गाने से ज्यादा आसान होगा। और संगीत का भी उपयोग किया। क्योंकि तुम्हारा सुर भीतर का सध जाएगा। थोड़ी देर को संगीत की थाप में तुम शायद उस गहन शांति को एक क्षण को भी छू लो, जिसका स्वाद फिर भूले नहीं भूलेगा।
इसलिए नानक साधु-संगत का बड़ा मूल्य मानते हैं, कि जहां उसकी चर्चा चल रही हो वहां बैठना, सुनना। सुनते-सुनते, धीरे-धीरे तुम पर भी रंग चढ़ जाएगा। अगर तुम बगीचे से गुजरोगे, तो अनजाने भी तुम्हारे वस्त्रों में फूलों की गंध थोड़ी सी साथ आ जाएगी। और तुम अगर सुबह के सूरज के पास खड़े होओगे, तो उसकी उत्तप्त और ताजी किरणें तुम्हारे खून को भी आंदोलित करेंगी। और रात अगर तुम चांद के पास बैठोगे, लेट जाओगे भूमि पर और देखोगे आकाश में चांद को, तो उसकी शीतलता थोड़ी सी तुम्हारे भीतर भी मार्ग बनाएगी। साधु-संगत का अर्थ है, जहां उसका गुणगान हो रहा हो।
हिंदुओं ने कहा है, जहां उसकी निंदा हो रही हो, वहां अपने कान बंद कर लेना। जहां उसकी चर्चा हो रही हो, वहां तुम अपने समस्त व्यक्तित्व को कान ही बना देना, सिर्फ सुनने वाले हो जाना।
इसलिए तो नानक कहते हैं बार-बार, सुनिए। वे उसकी चर्चा कर रहे हैं। उसका बखान कर रहे हैं। लेकिन एक बात बार-बार स्मरण दिलाते हैं कि बखान करने से भी उसका बखान होता नहीं। क्योंकि कहीं तुम इस भूल में मत पड़ जाना कि जो कहा है, उससे उसका माप हो गया। जो कहा है, उससे इशारा हुआ। उससे माप नहीं हुआ। जो कहा है, उससे वह चुक नहीं गया। पूरा का पूरा चुक नहीं गया। शुरुआत हुई, अंत नहीं हुआ। इसलिए बखान भी करते हैं, और कहते हैं कि उसका बखान हो भी नहीं सकता।
"वेद उसका वर्णन करते हैं। शास्त्र उसका वर्णन करते हैं।"
और बड़ी अदभुत बात कही कि--

"गोपी और गोविंद भी उसका वर्णन करते हैं।"
गोपी और गोविंद तो बोलते ही नहीं; वे तो नाचते हैं। लेकिन उस नाच में
भी उसका ही वर्णन है। उस नृत्य में भी उसकी ही खबर है। गोपी और गोविंद तो चर्चा ही कहां करते हैं! वे तो नाचते हैं। रासलीला होती है चांद तले। गोविंद नाचते हैं गोपियों के साथ। लेकिन नानक कहते हैं, वह भी उसी का वर्णन है।
ढंग अलग हैं। कोई नाच कर कहता है, कोई गा कर कहता है, कोई चुप हो कर कहता है, कोई बोल कर कहता है। लेकिन सभी उसका वर्णन है। और जिसने उसे जान लिया, वह कुछ भी करे, उसके हर कृत्य में, उसके हर इशारे में, गेस्चर में उसी का वर्णन है। बुद्ध का हाथ भी उठे, तो उस हाथ में भी उसी की तरफ इशारा है। बुद्ध की आंख भी खुले, तो वह आंख भी उसी की तरफ इशारा है। बुद्ध चुप हों, तो भी उसी की बात कर रहे हैं। बुद्ध बोलें, तो भी उसी की बात कर रहे हैं।
फिर हर व्यक्ति के अलग ढंग हैं। बुद्ध नाच नहीं सकते। वह उनके व्यक्तित्व में नहीं है। वह उन्हें जमेगा भी नहीं। नाचते हुए बड़े असंगत मालूम पड़ेंगे। नाच से उनका तालमेल न होगा। वे प्यारे लगते हैं बोधिवृक्ष के नीचे। जैसे बैठे हैं, वैसे ही। वही उनका नृत्य है। वे कंपते भी नहीं, कंपन भी नहीं है। हिलते भी नहीं, डुलते भी नहीं। ठीक पत्थर की तरह!
बुद्ध की मूर्ति के कारण ही अरबी और अरबी से संबंधित भाषाओं में, मूर्ति के लिए जो शब्द है वह "बुत" बन गया। बुत, बुद्ध का अपभ्रंश है। बुद्ध इतने मूर्तिवत हैं कि अगर तुम उन्हें जिंदा भी पाओगे तो लगेंगे कि संगमरमर की मूर्ति हैं। अगर बुद्ध के पीछे करोड़ों-करोड़ों मूर्तियां बनीं संगमरमर की, तो उसका कारण था। बुद्ध वैसे लगते थे। उनका होने का ढंग इतना मौन था। वहां कोई कंपन न था। नृत्य तो बहुत मुश्किल है, वे ऐसे बैठे थे जैसे कि पत्थर हों। संगमरमर का पत्थर ठीक उनकी याद दिलाता है। वैसे ही शीतल, वैसे ही थिर। लेकिन वही बुद्ध का ढंग है। उस तरह वे कहते हैं।
कृष्ण नाच रहे हैं। बड़ा उल्टा ढंग है उनका बुद्ध से। तुम सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध मोर-मुकुट बांधे खड़े हैं। बड़े नाटकीय लगेंगे। जंचेगा भी नहीं। लेकिन कृष्ण को तुम अगर बुद्ध की तरह बिठा दो, तो वे भी उतने ही नाटकीय लगेंगे। वह भी नहीं जंचेगा; अभिनय मालूम पड़ेगा, झूठा लगेगा। कृष्ण पर रोपा नहीं जा सकेगा। कृष्ण का व्यक्तित्व और ढंग का है। वे मोर-मुकुट में ही शोभते हैं। वे नाच रहे हैं। चारों तरफ गोपियों का नृत्य चल रहा है। लेकिन नानक कहते हैं, गोपी और गोविंद के नृत्य में भी उसका ही बखान है।
यह बड़ा प्यारा वक्तव्य है नानक का कि उसकी ही खबर है। हजारों तरह से बुद्धों ने उसे कहा है। जाग्रत-पुरुषों ने उसे कहा है। इशारे हजारों हैं। जिसकी तरफ इशारा है, वह एक है--एक ओंकार सतनाम।
"ब्रह्मा और इंद्र उसका वर्णन करते हैं। विष्णु और सिद्ध उसका वर्णन करते हैं। अनेक-अनेक बुद्ध उसका वर्णन करते हैं। कितने तो वर्णन कर पाते हैं। और कितने वर्णन करते-करते ही विदा हो जाते हैं। उसने जो किया है, वह उसे और भी करेगा। उसका हिसाब कोई भी नहीं लगा सकता है। वह जैसा चाहता है, वैसा ही हो जाता है।"
ये शब्द बहुत विचारने जैसे हैं।
एते कीते होरि करेहि। ता आखि न सकहि केई केइ।।
जेवडु भावै तेवड होइ। नानक जाणै साचा सोइ।।
उसका वर्णन इसलिए भी नहीं हो सकता कि परमात्मा कोई पूरी हो गयी घटना नहीं है। अगर कोई चीज पूरी हो गयी हो, तो वर्णन हो सकता है। लेकिन कोई चीज अगर अधूरी हो, तो वर्णन कैसे होगा? कोई चीज अगर होती ही जा रही हो, तो वर्णन कैसे होगा?
अगर किसी आदमी की आत्मकथा लिखनी हो, तो उसके मरने तक हमें रुकना पड़ेगा। अगर उसकी जीवन-कथा हमें लिखनी हो, तो मृत्यु के बाद ही लिखी जा सकती है। क्योंकि आदमी अभी अधूरा है। अभी और अध्याय बाकी हैं।
परमात्मा की जीवन-कथा कैसे लिखें? क्योंकि वह कभी भी मरेगा नहीं, कभी पूरा नहीं होगा। कभी आखिरी चरण नहीं आएगा, जहां हम कह दें--दि एंड। जहां इति श्री हो जाए। वह होता ही रहेगा। परमात्मा सतत होना है। इटरनल, शाश्वत

अभिव्यक्ति। वह फूल खिलता ही चला जाता है। उसकी पंखुड़ियां उस जगह नहीं आतीं, जहां हम कह दें, फूल पूरा खिल गया। वह सदा से खिल रहा है। और सदा खिलता रहेगा।
यह जो परमात्मा की अनंत होने की क्षमता है, इसलिए वर्णन सब अधूरे हैं।
सब कपड़े छोटे पड़ जाते हैं, वह बड़ा होता जाता है। इसलिए जितनी हमने परमात्मा की मूर्तियां बनायीं, और जितने हमने वर्णन किए, वे सब अधूरे पड़ गए। वह ऐसे, जैसे हम छोटे बच्चे को कपड़े बना देते हैं। वे फिर छोटे पड़ जाते हैं, क्योंकि बच्चा बड़ा हो रहा है। एक उम्र आ जाती है, फिर नाप ठहर जाता है। फिर कपड़े का डर नहीं होता। फिर कपड़ा हम जो बना लेते हैं, वह काम आता है। फिर नाप निश्चित हो जाता है। फिर दर्जी को बार-बार नाप देने की जरूरत भी नहीं पड़ती। वह नाप नोट कर लेता है। लेकिन बच्चों के नाप नोट नहीं किए जा सकते, क्योंकि वे बढ़ते जा रहे हैं।
और परमात्मा सदा बढ़ रहा है। इसलिए जितने कपड़े हम बनाते हैं, सब छोटे
पड़ जाते हैं। इसलिए सब शास्त्र छोटे पड़ जाते हैं, और पुराने पड़ जाते हैं। इसलिए तो नए धर्म आविर्भाव होते हैं। और नए बुद्ध पुरुष फिर से उसका बखान करते हैं। और जब नए बुद्ध पुरुष उसका बखान करते हैं, थोड़ी देर तक वह बखान सही रहता है। क्योंकि कपड़े फिर छोटे हो जाते हैं। और सदा जरूरत रहेगी बुद्ध पुरुषों की कि वे उसका गीत गाते रहें। और हर नया गीत, थोड़ी देर ही लागू होता है। जितनी देर हम गाते हैं, उतनी देर भी लागू नहीं हो पाता। क्योंकि वह रोज बढ़ता जा रहा है। हमारे गाने की क्षमता छोटी, और उसके बढ़ने की क्षमता बहुत बड़ी है।
इसलिए तो अगर तुम पिछले पांच हजार साल का धर्मों का इतिहास देखो, तो तुम पाओगे परमात्मा की शक्ल बदलती गयी है। परमात्मा की शक्ल नहीं बदलती, हमारा वर्णन छोटा होता है। फिर हमें बदलाहट करनी पड़ती है। फिर हमें उसमें हेर-फेर करना पड़ता है। फिर कुछ काटना-छांटना पड़ता है। फिर नए नाक-नक्श देने पड़ते हैं। जब तक हम दे पाते हैं, तब तक वह आगे जा चुका है। जब तक हम नाक-नक्श सुधारते हैं तब तक हम पाते हैं कि वह कुछ और हो गया है। सभी अधूरा रहेगा।
हिंदू बड़े अदभुत लोग हैं। इसलिए उन्होंने परमात्मा की ऐसी भी मूर्तियां बनायीं जिनमें नाक-नक्श नहीं हैं। सिर्फ हिंदुओं ने ऐसा काम किया है। अन्यथा दुनिया में और जगह भी मूर्तियां बनती हैं तो नाक-नक्श हैं। हिंदू एक पत्थर को उठा लेते हैं, सिंदूर से रंग देते हैं, हनुमान जी हो गए! न नाक है, न नक्श है। क्योंकि हिंदू कहते हैं, क्या नाक-नक्श बनाना! जब तक हम बनाएंगे, तब तक वह आगे निकल जाएगा। तो यह पत्थर काम देगा। हिंदुओं ने शंकर की, शिव की जो प्रतिमा बनायी है--शिव-लिंग, उसमें कोई
भी नाक-नक्श नहीं है। वह अंडाकार है। और वह शाश्वत प्रतिमा है। वह सदा लागू रहेगी। परमात्मा कैसा ही हो जाए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन हम जो भी उसका वर्णन करेंगे, हम कर भी नहीं पाएंगे कि हम पाएंगे कि वर्णन आउट आफ डेट हो गया।
नानक कहते हैं, एते कीते होरि करेहि।
और उसने इतना किया है अब तक, और भी करता रहेगा। अब तक इतना हुआ है, और
भी होता रहेगा।
ता आखि न सकहि केई केइ।।
और अगर वह पूरा हो गया होता तो हम कुछ आख लेते, हिसाब लगा लेते। लेकिन
वह और आगे होता ही रहेगा। और क्या होता रहेगा इसका अनुमान भी करना असंभव है। अनप्रेडिक्टिबल है। परमात्मा के संबंध में हम कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि वह कैसा हो जाएगा! या संसार क्या रूप-रंग लेगा! सब अज्ञात में छिपे हैं।
"जो उसने किया, वह उसे और भी करेगा। उसका हिसाब कोई भी नहीं लगा सकता।
वह जैसा चाहता है, वैसा हो जाता है।"
उसका भाव--और वैसी घटना घट जाती है। ईसाई कहते हैं, यहूदी कहते हैं कि परमात्मा ने कहा, हो जा! और जगत हो गया।
हमारे कृत्य में और भाव में अंतर होता है। क्योंकि हमारी शक्ति सीमित है। अगर आप चाहते हैं एक मकान बनाना, तो आज भाव उठता है, दो साल बाद मकान बन

पाएगा। यह दो साल का समय लगता है, क्योंकि हमारी शक्ति सीमित है। अगर शक्ति थोड़ी ज्यादा हो, तो एक साल में बन जाएगा। शक्ति और थोड़ी ज्यादा हो, तो एक दिन में बन जाएगा। और अगर शक्ति सर्वज्ञ हो, परिपूर्ण हो, जैसी की परमात्मा की है, तो फिर भाव में और कृत्य में समय का भेद न रहेगा।
इसलिए समय हमारे लिए है, परमात्मा के लिए कोई समय नहीं है। समय मानवीय घटना है। परमात्मा के लिए समय है ही नहीं। क्योंकि समय है ही इसीलिए, क्योंकि हम कमजोर हैं। हमारी कमजोरी से समय है।
कभी तुमने ख्याल न किया हो, लेकिन अब ख्याल करना। जितने तुम कमजोर होओगे, उतना समय लंबा मालूम पड़ेगा। समझो कि तुम्हारी पत्नी बुखार से बीमार है। एक सौ चार डिग्री बुखार है। और तुम भागे हुए बाजार जाते हो, दवा खरीद कर पांच मिनट में वापस लौट जाते हो। लेकिन पत्नी कहती है, बहुत देर लगा दी। बुखार में समय लंबा मालूम पड़ता है।
अब तो इसके वैज्ञानिक प्रमाण भी जुट गए हैं कि जब आदमी बुखार में होता
है तो समय लंबा मालूम पड़ता है। बीमार आदमी को समय ज्यादा मालूम पड़ता है। बीमार आदमी को ही नहीं, बीमार आदमी के पास तुम बैठो घड़ी भर, तो बहुत लंबी मालूम पड़ती है। अगर कोई आदमी मर रहा हो, और उसके पास बैठो रात भर, तो ऐसा लगेगा कि अंत ही नहीं आता। रात लंबी ही होती चली जाती है। जब तुम स्वस्थ होते हो, समय छोटा हो जाता है। जब तुम प्रफुल्लित होते हो, समय छोटा हो जाता है। जब तुम दुखी होते हो, लंबा हो जाता है। हमारी शक्ति पर समय निर्भर है।
परमात्मा परिपूर्ण शक्ति है, ओम्नीपोटेंट, सर्वशक्तिमान। उसके लिए कोई भी समय नहीं है। उसका भाव ही कृत्य हो जाता है। तो नानक कहते हैं-- जेवडु भावै तेवड होइ।
जो भाव करता है, वैसा ही घट जाता है। उसी क्षण घट जाता है। क्षण की भी देरी नहीं होती। युगपत, साइमलटेनियस। इधर भाव, उधर घटना हो जाती है। भाव ही कृत्य है।
नानक कहते हैं, "इसे जो जान ले, वही सत्य है।"
इस वचन के दो अर्थ हो सकते हैं।
जेवडु भावै तेवड होइ। नानक जाणै साचा सोइ।।
इस वचन के दो अर्थ हो सकते हैं, कि इस बात को जो जान ले, वह स्वयं सत्य
हो गया। वही सच है, जो इस बात को जान ले। परमात्मा की इस सर्वशक्तिमत्ता को जो जान ले, वही सत्य है।
और दूसरा अर्थ हो सकता है, कि नानक कहते हैं, वह सत्य पुरुष ही अपने को जानता है। हम उसे न जान सकेंगे। क्योंकि न उसके भविष्य का हमें कोई बोध है और न अतीत का। और वह कभी पूरा नहीं होगा। पूरा होता रहेगा। पूर्णता से और पूर्णता... और पूर्णता... । वह अपूर्ण नहीं है, जो अपूर्ण से पूर्ण हो रहा हो; वह पूर्ण से पूर्णतर हो रहा है।
तो एक अर्थ हो सकता है, कि वही केवल जानता है। हमारे सब अनुमान, अनुमान हैं। दूसरा अर्थ हो सकता है, कि जो परमात्मा की इस सर्वशक्तिमत्ता को अनुभव कर लेता है, वही सच है। वह व्यक्ति भी सत्य हो गया।
"पर यदि कोई उसका वर्णन करने का दंभ भरे, तो उसकी गिनती गंवारों में भी गंवार की होनी चाहिए।"
जे को आखै बोल बिगाडु। ता लिखीए सिरि गावारा गावारु।।
अगर गंवारों की कोई फेहरिश्त बनानी हो तो सबसे ऊपर, सिर पर उसका नाम लिखना चाहिए, जो यह दंभ करे कि उसका वर्णन किया जा सकता है।
वर्णन नानक करते हैं, क्योंकि वर्णन पड़ा रसपूर्ण है। वर्णन डुबो देता है। वर्णन ध्यान है। उसके भाव की बात करते-करते, करते-करते हृदय खिल जाता है। भीतर उमंग पैदा हो जाती है। रस बहने लगता है। लेकिन अगर कोई सोचता हो कि उसका वर्णन हो सकता है, तो वह गंवारों में गंवार है।
ज्ञानी वही है, जो जानता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। वर्णन करता है, क्योंकि उसका नाम लेने में बड़ा आनंद है। चर्चा उसकी करता है, चर्चा बड़ी प्रीतिकर है। उसी-उसी की बात करता है। कुछ दूसरी बात ही नहीं करता। क्योंकि उसकी बात करते-करते उसका द्वार खुलता है। उसकी चर्चा उसके द्वार पर दस्तक देने जैसी है।

तुमने कभी ख्याल किया है, जब पहला बच्चा पैदा होता है, तब मां उसी-उसी
की चर्चा करती है। पड़ोसियों से करती है, घर मेहमान आते हैं, उनसे करती है। वे ही बातें बार-बार दोहराती है।
प्रेमी जब किसी के प्रेम में पड़ जाता है, तो अपनी प्रेयसी से बार-बार कहता है कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। बार-बार कहता है, तुझ से ज्यादा सुंदर कोई भी नहीं। बार-बार कहता है, तू अनूठी है, अद्वितीय है। बार-बार कहता है, तुझ जैसा कभी कोई हुआ ही नहीं। बार-बार कहता है कि मैं धन्यभागी हूं। और न तो प्रेयसी समझती है कि पुनरुक्ति है, कि क्या बार-बार दोहरा रहे हो? और न प्रेमी को यह ख्याल आता है कि ये मैं बार-बार वही बातें क्यों कह रहा हूं? क्योंकि बार-बार दोहराने से, प्रेम की बात दोहराने से प्रेम बढ़ता है। बार-बार दोहराने से, गहन होता है। बार-बार दोहराने से, जैसे भंवरा फूल के पास घूमता है, ऐसी गुनगुनाहट प्रेयसी के पास गूंजने लगती है।
जो साधारण प्रेम में होता है, वही परमात्मा के प्रेम में होता है-- विराट पैमाने पर। पैमाना बदल जाता है, बात वही है।
तो नानक कहे चले जाते हैं। अगर तुम प्रेमी नहीं हो, तो तुम हैरान होओगे कि क्या यह वही-वही बात लंबी किए जा रहे हैं! यह जपुजी तीन शब्दों में पूरा हो जाता है, एक नाम ओंकार; या एक ओंकार सतनाम। क्या बार-बार कहे जा रहे हैं? लेकिन बड़ा रस ले रहे हैं। और अगर तुम्हारे भीतर भी भाव का जन्म होगा, तो तुम भी पाओगे, यह पुनरुक्ति बड़ी मधुर है।
एक मां ने सुना--उसका बेटा रात सोने जा रहा है। और उसे कहा गया है कि रोज प्रार्थना कर के सोना--तो उसने कान लगा कर सुना कि वह प्रार्थना कर रहा है कि नहीं? उसने एक शब्द कहा, और कंबल ओढ़ कर अंदर हो गया। मां अंदर गयी, उसने कहा, इतनी जल्दी प्रार्थना पूरी हो गयी? उसने कहा, रोज-रोज वही-वही क्या कहना? मैं रोज कह देता हूं, डिट्टो! जो कल कहा था, वही। और क्या परमात्मा इतना समझदार नहीं है कि समझ न पाए?
बुद्धि तो यही कहना चाहेगी, कह दो डिट्टो, क्या बार-बार दोहराना! लेकिन भाव दोहराना चाहेगा। हृदय डिट्टो को जानता ही नहीं। हृदय दोहराता है। दोहरा-दोहरा कर रसलीन होता है। जितना दोहराता है, उतना डूबता है। यह भंवरे की गुनगुन है। और यह गुनगुन बड़ी कीमती है। पर भाव हो, तो ही समझ में आ सकती है।
पर ध्यान रखना, इसलिए नानक अंत में फिर दोहराते हैं कि इस दंभ में मत
पड़ जाना कि उसका वर्णन हो सकता है। वैसा दंभ आ जाए, तो गंवारों में गंवार! वर्णन कर-कर के तुम्हारा अहंकार खो जाए, तो तुम बुद्धिमानों में बुद्धिमान। और वर्णन करते-करते यह अहंकार आ जाए कि मैं वर्णन करने वाला हूं, मैंने वर्णन कर लिया, जो कोई न कह सका वह मैंने कह दिया, जो कोई न बता सका वह मैंने बता दिया, तो फिर गंवारों में गंवार!
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
तेरहवां प्रवचन

सोई सोई सदा सचु साहिबु

पउड़ीः 27
सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।
बाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे।।
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे।
गावहि तुहनो पउणु पाणी वैसंतरु गावे राजा धरम दुआरे।।
गावहि चितगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे।
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे।।
गावहि इंद इंदासणि बैठे देवतिया दरि नाले।
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे।।
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे।
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले।।
गावनि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले।
गावनि रतनि उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले।।
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे।
गावहि खंड मंडल वरमंडा करि करि रखे धारे।।
सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले।
होरि केते गावनि से मैं चिति न आवनि नानकु किया विचारे।।
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई।
है भी होसी जाई न जासी रचना जिनि रचाई।।
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई।
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी बडिआई।।
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई।
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई।।

एक सूफी कहानी है। एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया। और उसने वजीर
को आकाश-छूती एक मीनार में कैद कर दिया। वहां से कूद कर भागने का कोई उपाय न था। कूद कर भागता तो प्राण ही खो जाते। लेकिन वजीर जब कैद किया जा रहा था, तब उसने अपनी पत्नी के कानों में कुछ कहा।

पहली ही रात पत्नी मीनार के करीब गयी। उसने एक साधारण-सा कीड़ा दीवार
पर छोड़ा। और उस कीड़े की मूंछों पर थोड़ा-सा मधु लगा दिया। कीड़े को मधु की गंध आयी। मधु को पाने के लिए कीड़ा मीनार की तरफ, ऊपर की तरफ सरकने लगा। मूंछ पर लगा था मधु, तो गंध तो आती ही रही। और कीड़ा मधु की तलाश में सरकता गया। उस कीड़े की पूंछ से एक पतला से पतला रेशम का धागा पत्नी ने बांधा हुआ था। सरकता-सरकता कीड़ा उस तीन सौ फीट ऊंची मीनार के आखिरी हिस्से पर पहुंच गया। वजीर वहां प्रतीक्षा कर रहा था। कीड़े को उठा लिया, पीछे बंधा हुआ रेशम का धागा पहुंच गया। रेशम के धागे में एक पतली-सी सुतली बांधी। सुतली में एक मोटा रस्सा बांधा था। और वजीर रस्से के सहारे उतर कर कैद से मुक्त हो गया।
कहानी कहती है कि वजीर न केवल इस कैद से मुक्त हुआ, बल्कि उसे उस मुक्त होने के ढंग में जीवन की आखिरी कैद से भी मुक्त होने का सूत्र मिल गया। पतला-सा धागा भी पकड़ में आ जाए तो छुटकारे में कोई बाधा नहीं है। पतले
से पतला धागा भी मुक्ति का मार्ग बन सकता है। लेकिन धागा पकड़ में आ जाए! एक छोटी-सी किरण पहचान में आ जाए, तो उसी किरण के सहारे हम सूरज तक पहुंच सकते हैं।
सभी धर्म, सभी गुरु किसी पतले से धागे को पकड़ कर परमात्मा तक पहुंचे हैं। वे धागे अनेक हो सकते हैं। अनेक तरह के कीड़ों पर धागा बांधा जा सकता है। और जरूरी नहीं कि कीड़े की मूंछों पर मधु ही लगाया जाए, कुछ और भी लगाया

जा सकता है। वे गौण बातें हैं। असली बात यह है कि धागा कैदी तक पहुंच जाए।
धागा ही फिर सेतु बन जाता है मुक्ति तक।
नानक ने जो धागा पकड़ा है, वह धागा है बड़ा साफ और बहुत स्पष्ट। लेकिन चूंकि हम अंधे और बहरे हैं, इसलिए हमें सुनायी नहीं पड़ा।
जीवन को अगर तुम गौर से देखोगे तो अस्तित्व में जो सबसे ज्यादा प्रकट बात दिखायी पड़ती है, वह है गीत। पक्षी अभी भी गा रहे हैं। सुबह होते ही गीत पक्षियों का शुरू हो जाता है। हवाओं के झोंके वृक्षों से टकराते हैं और गाते हैं। पहाड़ों से झरने गिरते हैं और नाद उत्पन्न होता है। आकाश में बादल आते हैं और तुमुल-उदघोष होता है। नदियां बहती हैं। सागर की तरंगें तटों से टकराती हैं। अगर जीवन को चारों तरफ गौर से तुम देखो और सुनो, तो तुम्हें पूरा अस्तित्व गाता हुआ मालूम पड़ेगा।
गीत से ज्यादा स्पष्ट अस्तित्व में और कोई बात नहीं है। सिर्फ जब जीवन शांत हो जाता है, मृत हो जाता है, तभी गीत बंद होता है। जब कोई मर जाता है, तभी ध्वनि खोती है। अन्यथा जीवन में तो ध्वनि है। लेकिन आदमी बहरा है। इसलिए साफ धागा हाथ में होते हुए भी पकड़ में नहीं आता।
अगर जीवन इतना गीत से भरा है, तो इस गीत के पीछे परमात्मा का हाथ होगा।
और इस गीत में छिपा हुआ कहीं न कहीं परमात्मा है। अगर हम भी गा सकें, अगर हम भी इस गीत में लीन हो सकें, तो धागा हाथ में आ जाएगा। गीत में लीन होना धागा है। फिर इस संसार की कैद से परमात्मा के मोक्ष तक जाने में देर नहीं। नानक ने गीत को साधना का माध्यम बनाया है। तुम्हें भी, जब कभी तुम गाते हो, तब एक मस्ती पकड़ने लगती है। तब एक नशा छाने लगता है। लेकिन लोग गाने से डर गए हैं। कोई पक्षी इसकी चिंता नहीं करता है कि उसकी ध्वनि मधुर है या नहीं; आदमी बहुत भयातुर हो गया है। थोड़े-से लोग गा सकते हैं, जिनकी ध्वनि बहुत मधुर हो। बाकी लोग ज्यादा से ज्यादा स्नानगृह में थोड़ा गुनगुनाते हैं। वह भी डरे-डरे! स्नानगृह में गुनगुनाते हैं, क्योंकि कोई देखने वाला नहीं, कोई सुनने वाला नहीं। और ध्यान रखना, स्नान से भी तुम्हें उतनी ताजगी नहीं मिलती, जितनी गुनगुनाने से मिलती है। क्योंकि स्नान तो शरीर को ऊपर-ऊपर ही छूता है, गुनगुनाहट भीतर उतर जाती है। और जो आदमी गुनगुनाना नहीं जानता, उस आदमी के सभी संबंध परमात्मा से टूट गए। वह अस्तित्व से दूर हो गया, वह जीते जी मुर्दा है।
कबीर ने कहा है, ई मुर्दन के गांव।
हमारे गांव के लिए कहा कि ये मुर्दों के गांव हैं। जिंदगी का गीत यहां गूंजता ही नहीं। न कोई नाचता है अहोभाव में, न कोई गाता है आपूर हृदय से, न कोई डूब जाता है अपने गीत में।
यह सवाल नहीं है कि स्वर मधुर है या नहीं। क्योंकि गीत कोई बाजार में बेचने के लिए नहीं है, गीत तो अहोभाव के लिए है। और गीत की असली सार्थकता उसके माधुर्य में नहीं, उसकी लीनता में है। तुम उसमें लीन हो सकते हो। तुम उसमें इतने लीन हो सकते हो कि तुम बिल्कुल मिट ही जाओ। तुम बचो ही न और गीत ही बचे। गुनगुनाहट रह जाए और कर्ता खो जाए। गीत ही बचे और गायक समाप्त हो जाए। यह हो सकता है। और यह सरलतम है। इससे ज्यादा सरल धागा तुम न पा सकोगे। पक्षी गा लेते हैं, पौधे गुनगुनाते हैं, झरने गाते हैं। तुम इतने असमर्थ हो क्या कि झरनों का मुकाबला भी न कर सको? कि पक्षियों का मुकाबला भी न कर सको? कि वृक्षों से भी होड़ न ले सको?
लेकिन तुम डर गए हो। और तुमने गीत को बाजार में खड़ा कर दिया है। तुम गीत को बेचते हो। और फिर एक मजेदार घटना घटी है कि जब गीत बिकता है, तो सभी नहीं गा सकते। क्योंकि तब गीत जीवन का सहज कृत्य नहीं रह जाता। बाजार की सामग्री हो गयी। फिर तुम सोचोगे कि ध्वनि योग्य है या नहीं! शिक्षण हुआ या नहीं! तुमने संगीत सीखा है या नहीं!
कोई पक्षी संगीत सीखने नहीं जाता। कोई झरना संगीत सीखने नहीं जाता। संगीत तो जीवन की सहज सरिता है। सीखने का कोई सवाल नहीं। संगीत तो वहां अनसीखा मौजूद है। सिर्फ थोड़ी हिम्मत जुटाने की जरूरत है। थोड़े पागल होने की हिम्मत चाहिए और संगीत फूट पड़ेगा। और जब पक्षी विश्वविद्यालय में नहीं जाते, तो तुम्हें जाने की क्या जरूरत है? लेकिन पक्षियों को चिंता नहीं है

कि कौन क्या कहता है? पक्षियों को विचार नहीं है कि बाजार में बिकेगा यह गीत या नहीं? पक्षी आनंद से गाते हैं।
चूंकि हम बेचते हैं गीत को, धीरे-धीरे एक दूसरी दुर्घटना घटती है। और
वह यह कि फिर हम गा तो नहीं सकते, हम सिर्फ सुन सकते हैं। तब पैसिविटी पैदा होती है। तब कोई गाता है और हम सुनते हैं, कोई नाचता है और हम देखते हैं। तुम सोचो जरा, यह बड़ी दीनता है। किसी दिन ऐसा जरूर आ जाएगा, जब कोई प्रसन्न होगा, हम देखेंगे।
तुम फर्क समझते हो? कोई प्रसन्न होता है, तुम देखते हो--इसमें, और तुम प्रसन्न होते हो--अंतर दिखायी नहीं पड़ता? कोई प्रेम कर रहा है और तुम देखते हो--इसमें, और तुम प्रेम करते हो--इसमें तुम्हें भेद नहीं मालूम पड़ता? देखने से कभी कोई प्रेम को जान सकेगा? प्रेम तो करके ही जाना जा सकेगा।
दूसरा गा रहा हो, कोकिल-कंठ हो, बड़ा संगीतज्ञ हो, लेकिन सुन कर तुम संगीत को न जान सकोगे। यह तो उधार हो गया। कोई दूसरा गा रहा है, तुम मुर्दे की भांति बैठे सुन रहे हो। इससे संगीत से तुम्हारा संबंध न जुड़ेगा। संगीत में उतरने के लिए तुम्हें सक्रिय होना पड़ेगा। नाच कर ही नाच जाना जा सकता है, देख कर नहीं। देखना तो सबस्टीट्यूट है, वह तो परिपूरक है। वह तो झूठा है। असली नहीं है, प्रामाणिक नहीं है।
और आदमी धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सभी चीजें दूसरों पर छोड़ दिया है। दूसरे करते हैं, तुम देख लेते हो। कोई खेलता है, लाखों लोग देखते हैं। कोई नाचता है, हजारों लोग देखते हैं। कोई गाता है, हजारों लोग सुनते हैं। न तुम गाते हो, न तुम खेलते हो, न तुम नाचते हो। तुम्हारे जिंदा रहने का प्रयोजन क्या है? तुम जिंदा क्यों हो? सभी काम विशेषज्ञ पूरा कर देते!
और मजे की बात यह है कि देखने वाले को भी उपलब्धि नहीं हो पाती; और वह
जो कर रहा है, उसे भी नहीं हो पाती। क्योंकि उसकी नजर भी पैसे कमाने पर है। वह भी नाच आत्मा का नहीं है। और वह भी नाच सिर्फ ऊपर की कुशलता का है। उसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह नाच रहा ही नहीं। उसके भीतर भी नाच इतना गहन तक नहीं उतरता कि उसमें डूब जाए। क्योंकि उसकी नजर पैसे पर लगी है।
ऐसा हुआ कि अकबर ने तानसेन को पूछा कि तुम्हारे गुरु को मैं मिलना चाहता हूं। क्योंकि कल रात जब तुम गा कर विदा हुए, तो मेरे मन में ऐसा भाव था कि तुमसे श्रेष्ठ न तो गायक कभी हुआ है, और न होगा। तुम परम हो। तुम आखिरी हो। लेकिन जब मैं यह सोच रहा था, तभी मुझे ख्याल आया कि तुमने भी किसी से सीखा होगा! कोई होगा तुम्हारा गुरु! तो मेरे मन में एक जिज्ञासा उठ गयी कि कौन जाने तुम्हारा गुरु तुम से आगे हो। तो मैं तुम्हारे गुरु को मिलना चाहूंगा। मैं तुम्हारे गुरु को भी सुनना चाहूंगा।
तानसेन ने कहा, यह जरा कठिन है। गुरु मेरे हैं। और अभी जीवित हैं। सुनना भी हो सकता है, लेकिन बड़ी कठिनाई है। उन्हें दरबार में नहीं बुलाया जा सकता। फरमाइश पर वे नहीं गाते। उनका गान तो पक्षियों जैसा है। तुम कोयल से कितनी ही प्रार्थना करो कि गाओ। तुम्हारी प्रार्थना की वजह से ही, कोयल गा रही होगी तो चुप हो जाएगी, कि क्या मामला है? वे जब गाते हैं तभी सुना जा सकता है। तो अगर आप उनको सुनना चाहते हैं, तो हमें ही उनके झोपड़े के पास चलना पड़ेगा। और वह भी छिप कर ही सुना जा सकता है। क्योंकि हम पहुंचेंगे तो वे शायद रुक जाएं। तो मैं पता लगाऊंगा कि अभी कब गाते हैं वे! क्योंकि जब वे गाते हैं, तो हम छिपे रहेंगे।
पता चला कि वे तीन बजे रात उठते हैं। वे तो फकीर थे। हरिदास उनका नाम था। वे तीन बजे उठते हैं। यमुना के तट पर उनका झोपड़ा है। अब वहीं वे अपने झोपड़े में गाते हैं। अपनी मस्ती में गाते हैं। वही गीत पक्षियों का है। उस गीत का किसी से कुछ लेना-देना नहीं है।
अकबर और तानसेन रात दो बजे जा कर झोपड़े के पास छिप गए। तीन बजे संगीत शुरू हुआ। अकबर मूर्ति की तरह ठगा रह गया। आंख से झर-झर आंसू की धार लग गयी। जब वापस लौटे अपने रथ में, तो रास्ते भर तानसेन से कुछ बोल न सका। ऐसा भावविभोर हो गया। भूल ही गया तानसेन को। महल में उतरते वक्त उसने इतना ही कहा कि अब तक मैं सोचता था कि तेरा कोई मुकाबला नहीं है। और आज मैं सोचता

हूं कि तेरे गुरु के सामने तू तो कुछ भी नहीं है। मैं यह पूछना चाहता हूं कि इतना फर्क क्यों?
तानसेन ने कहा, फर्क भी पूछने की जरूरत है क्या? मैं आपके लिए गाता हूं, मेरे गुरु परमात्मा के लिए गाते हैं। और जब मैं गाता हूं तो मेरी नजर लगी है पुरस्कार पर कि क्या मिलेगा? मैं गाता हूं, ताकि कुछ मिले। मेरा गाना व्यवसाय है। मेरे गुरु कुछ पाने के लिए नहीं गाते हैं। ठीक स्थिति उलटी है। मेरे गुरु तभी गाते हैं, जब उन्हें कुछ मिला होता है। जब वे इतने भरे होते हैं परमात्मा के भाव से, जब उन्हें कुछ मिला होता है, जब उनका कंठ भरा होता है, जब उनके हृदय में लहरें उठ रही होती हैं, जब वे आपूर होते हैं उसके दान से, तब बहते हैं। उन्हें जब कुछ मिला होता है, तब वे गाते हैं। गाना उनकी छाया की तरह है। मिलना पहले है, गीत बाद में है। और मैं गाता हूं, मिलना पीछे है। तो कर्म-फल पर मेरी नजर लगी है। और इसलिए मैं क्षुद्र हूं। आप ठीक कहते हैं। मेरे गुरु से मेरा क्या मुकाबला? मैं कितना ही कुशल हो जाऊं, मेरे हाथ कितने ही सध जाएं, मेरा गला कितना ही प्रवीण हो जाए, लेकिन आत्मा उसमें प्रवेश न पा सकेगी। मैं विशेषज्ञ रहूंगा और मेरे गुरु कोई विशेषज्ञ नहीं हैं। उनका गीत एक पक्षी का गीत है।
तो तुम जिन्हें सुनते हो उनका गीत व्यवसाय है। सुनने वाला खाली, व्यर्थ बैठा है। निष्क्रिय है। गाने वाला व्यवसायी है। तुम परमात्मा के गीत से बिल्कुल दूर ही चले गए। जो चित्रपट पर प्रेम का प्रदर्शन कर रहा है, उसके लिए प्रेम धंधा है। वह उस प्रेम में जो भी कर रहा है, वह अभिनय है। और देखने वाला निष्क्रिय बैठा है, अपनी कुर्सी में बंधा हुआ।
जीवन के सत्य सक्रियता से जाने जाते हैं। जीवन के सत्यों में तुम्हें उतरना पड़ेगा। कोई दूसरा तैरेगा तो तैरने का आनंद तुम कैसे ले पाओगे? थोड़ा सोचो! जब देखने से इतना सुख मिलता है, तो हो जाने से कितना सुख न मिलता होगा! गाओ, नाचो, भूल जाओ सारे जगत को। उसकी याद ही तो तुम्हें नाचने नहीं देती और गाने नहीं देती। और तब तुम परमात्मा के द्वार पर खड़े हो।
नानक बड़े मधुर शब्दों में यह बात कहते हैं। वे कहते हैं--
सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।
वह द्वार कहां है, वह घर कहां है, जहां बैठ कर तू सबकी सम्हाल कर रहा है? तेरे घर का द्वार कहां खोजूं? जिसके भीतर छिपा, तू सबको सम्हाले हुए है। और उत्तर देते हैं--
बाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे।।
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे।
वह द्वार कहां, वह घर कहां, जहां बैठ कर तू सबकी सम्हाल करता है?
यह प्रश्न है। और उत्तर देते हैं--
अनेक नाद बज रहे हैं, और कितने असंख्य बजाने वाले हैं। असंख्य गायक हैं, अनंत राग-रागिनियां हैं। पानी और अग्नि और पवन यश गा रहे हैं। धर्मराज तेरे द्वार पर बैठ कर गीत गा रहे हैं। चित्रगुप्त भी, शिव, ब्रह्मा, देवी सभी तेरा गान कर रहे हैं। इंद्रासन पर बैठे इंद्र गाते हैं। देवता तेरे द्वारों पर बैठे गाते हैं। समाधि में बैठ कर सिद्ध और ध्यान में बैठ कर साधु गाते हैं।
नानक पूछते हैं, कहां तेरा द्वार? कहां तेरा घर? और तत्क्षण कहते हैं, अनेक नाद बज रहे हैं, कितने असंख्य बजाने वाले हैं।
नानक कह रहे हैं, नाद तेरा द्वार है। नाद में छिपा ही तू सारे जगत को सम्हाले हुए है। ओंकार तेरा द्वार। उसी में छिपा हुआ तू सारे जगत को सम्हाले हुए है। और अगर गीत की एक कड़ी तुम्हें पकड़ जाए, तो उस धागे को पकड़ कर तुम उस परमात्मा के द्वार तक जा सकोगे। नाद जब तुम्हारे भीतर बजेगा, जब तुम नाद में लीन हो जाओगे, उसी क्षण द्वार के सामने अपने को पाओगे।
सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।
बाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे।।
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे।
कितने राग, कितनी रागिनियां, कितने नाद, कितने गायक! यही तेरा द्वार है। सुबह से सांझ तक, सांझ से सुबह तक असंख्य राग बज रहे हैं।

तुम जीवन में उन रागों को पहचानना शुरू करो। मनुष्य का सारा संगीत अस्तित्व के रागों से पैदा हुआ है। मनुष्य के सारे वाद्य अस्तित्व की नकल से पैदा हुए हैं। पक्षी गाते हैं, झरने गाते हैं, हवाएं गाती हैं, आकाश में बादल गरजते हैं, इन्हीं सबसे नाद पैदा हुए मनुष्य के। सारी राग-रागिनियां पैदा हुईं। इनसे ही सारे वाद्य निर्मित हुए।
अस्तित्व में राग को पहचानने की कोशिश करो। सुबह उठ कर पहला ध्यान चारों तरफ हो रही ध्वनियों पर डालना। और अगर तुम्हें ध्वनियां सुनायी पड़ने लगें, तो तुम पाओगे कि वे दिनभर तुम्हें सुनायी पड़ती रहेंगी। क्योंकि वे सदा जारी हैं। सिर्फ तुम बहरे हो।
रात के सन्नाटे में बैठ जाना और सुनना सन्नाटे को। सन्नाटे का नाद बहुत निकट है ओंकार के। इसलिए जब भी तुम्हारे भीतर ओंकार बजेगा, तो पहले तो तुम्हें सन्नाटे का नाद ही सुनायी पड़ेगा। सन्नाटे की झांई; जैसे झींगुर बोलते हों और रात बिल्कुल चुप हो, वैसी झांई तुम्हें पूरे वक्त सुनायी पड़ने लगेगी--चौबीस घंटे! बाजार में, दुकान पर, दफ्तर में तुम पाओगे कि वह झांई बजती ही जाती है। क्योंकि वह बज ही रही है। बाजार के शोरगुल में दब जाती है, बजना बंद नहीं होता। उपद्रव में खो जाती है, समाप्त नहीं होती। और तुम्हें पकड़ में आ जाए, तो तुम उसे कभी भी पहचान लोगे। और जैसे-जैसे तुम्हारी पकड़ साफ होती जाएगी और पहचान निखरेगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे चौबीस घंटे, अहर्निश उसके द्वार पर राग-रागिनियों का मेला लगा हुआ है। ध्यान रखो, जिन्होंने भी उसे जाना है, उन्होंने उसे सच्चिदानंद कहा है। जब भी कोई आनंद से भर जाता है, तो गीत से भर जाता है। गीत और आनंद में बड़ा नैकट्य है। बड़ी समीपता है। दुख में कोई नहीं गाता, सिवाय फिल्मों को छोड़ कर! दुख में आदमी रोता है, गाता नहीं है। दुख में आंसू बहते हैं, गीत नहीं। जब कोई आह्लादित होता है, आनंदित होता है, तब गाता है। और तब अगर आंसू भी बहें, तो भी उन आंसुओं में गीत होता है। आनंद के क्षण में तुम जो भी करोगे उसमें गीत होगा; उसमें गीत की भनक होगी। तुम्हारे उठने-बैठने में गीत होगा। तुम्हारे चलने-फिरने में गीत होगा। तुम्हारे श्वास लेने और छोड़ने में गीत होगा। तुम्हारे हृदय की धड़कन में नाद होगा। जैसे-जैसे तुम आनंद के करीब पहुंचते हो, वैसे-वैसे गीत के करीब पहुंचते हो। निश्चित ही गीत उसका द्वार है। क्योंकि भीतर परमानंद है।
ऐसी भी घड़ी आती है जब गीत भी बंद हो जाता है। क्योंकि गीत द्वार है। जब तुम द्वार के भीतर प्रविष्ट हो जाते हो, तो गीत भी खो जाता है। क्योंकि ऐसी घड़ी भी आती है जब गीत भी बाधा मालूम पड़ता है। तब उसका ही गीत चलता है, तुम्हारा गीत बिल्कुल खो जाता है। तब तुममें अनंत ध्वनियां गूंजती हैं। तुम्हारी अपनी कोई ध्वनि नहीं होती। तुम सूने घर हो जाते हो।
हमने मंदिर इस ढंग से बनाए थे कि उनमें आवाज गूंजे। आवाज गूंजने को ध्यान में रखा था। मंदिर का पूरा स्थापत्य, उसका पूरा आर्किटेक्चर आवाज को गुंजाने को ध्यान में रख कर बनाया गया था। वह इस खबर को देने के लिए कि एक तो मंदिर खाली है। उसमें हम कुछ रखते नहीं। वह खाली होना ही चाहिए। क्योंकि वह हमारी आखिरी खाली अवस्था का प्रतीक है। जहां हम बिल्कुल खाली हो जाएंगे और जहां नाद गूंजेगा। मंदिर के द्वार पर ही हमने घंटा लटका रखा था। जो भी आए, पहले घंटे को बजाए, क्योंकि द्वार पर नाद है।
ये सब प्रतीक हैं उस परमद्वार के। बिना घंटा बजाए कोई मंदिर में प्र्रवेश न करे! क्योंकि नाद में ही प्रवेश है। और घंटे की यह खूबी है कि तुम बजा दो, तो भी वह गूंजता रहता है। और जब तुम प्रवेश करते हो मंदिर के द्वार में तब घंटे का नाद गूंजता रहता है। उस नाद में ही मंदिर के द्वार में प्रवेश करने की व्यवस्था है। बिना बजाए कोई प्रवेश न करे! क्योंकि वैसे ही नाद में, तुम परमात्मा में भी प्रवेश करोगे।
परमात्मा का घर है यह मंदिर, उसका प्रतीक घर है। वहां तुम्हें घंटा न बजाना पड़ेगा, वहां नाद बज ही रहा है। लेकिन हमने प्रतीक में भी व्यवस्था की थी। फिर जब तुम वापस मंदिर से लौटो द्वार पर, फिर घंटा बजाना। गूंजते नाद में ही वापस लौटना। पूजा है, प्रार्थना है, वह घंट-नाद से ही शुरू होती है।
नानक कहते हैं, अनेक नाद बज रहे हैं। कितने असंख्य बजाने वाले हैं।

और नानक ऐसे नहीं कह रहे हैं, जैसे कहीं दूर से वर्णन कर रहे हों; जैसे द्वार पर खड़े हैं। इसलिए जो शब्द उन्होंने उपयोग किए हैं, वे सीधे हैं।
वह द्वार कहां? वह घर कैसा? जहां बैठ कर तू सबकी सम्हाल कर रहा है।
अनेक नाद बज रहे हैं, कितने असंख्य बजाने वाले हैं।
जैसे यह सब नानक की आंख के सामने है।
असंख्य गायक, अनंत राग-रागिनियां, पवन, पानी, अग्नि तेरा यश गाते हैं।
धर्मराज भी तेरे द्वार पर बैठ कर गाते हैं।
थोड़ा समझें। क्योंकि धर्मराज का तो काम ही धर्म और अधर्म का भेद करना है। धर्मराज का अर्थ है, नीति की पराकाष्ठा। वे नीति के देवता हैं। क्या शुभ है, क्या अशुभ है, उसकी ही बारीक खोज करना; शुभ-अशुभ का निर्णय ही धर्मराज की व्यवस्था है। नानक कहते हैं, उनको भी मैं देख रहा हूं कि वे भी तेरे द्वार पर बैठे गीत गा रहे हैं।
क्योंकि धर्मराज से ज्यादा गंभीर आदमी तो खोजा नहीं जा सकता। धर्मराज
का अर्थ ही यह है, बहुत गंभीर होगा। इंच-इंच सोचेगा कि क्या ठीक, क्या गलत; क्या करूं, क्या न करूं; क्या करने योग्य, क्या न करने योग्य! उनको भी देखता हूं कि वे भी मस्ती में गीत गा रहे हैं। तेरे द्वार पर धर्मराज तक गीत गा रहे हैं। चित्रगुप्त भी गीत गा रहे हैं, जिनका कि सारा काम ही पाप-पुण्य लिखना है। पाप-पुण्य का जो हिसाब-किताब रखता हो, वह क्या गीत गाएगा!
अदालत में देखते हैं, मजिस्ट्रेट कैसा बैठा होता है! ये छोटे-मोटे चित्रगुप्त हैं! अकड़ कर बैठा रहता है। कपड़े भी उसके हम इस तरह से बनाते हैं--काले--कि गंभीरता की, मौत की खबर दें। पुरानी व्यवस्था तो यही थी कि मजिस्ट्रेट अदालत में जब बैठे, तो वह सफेद बालों का विग पहने। काले कपड़े, सफेद बाल, वह भी विग--सब झूठा। और चेहरे पर गंभीरता; वह हंसे न। अदालत में हंसना तो अदालत की तौहीन है। सजा दी जा सकती है, अगर कोई अदालत में हंसे। वहां गान कैसा! गीत कैसा! और चित्रगुप्त यानी आखिरी अदालत।
नानक कहते हैं कि देखता हूं कि चित्रगुप्त भी गीत गा रहे हैं! जैसे सारी गंभीरता मिट गयी तेरे द्वार पर। तेरा द्वार उत्सव का द्वार है।
इसे थोड़ा समझ लेना। क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि जीवन के पाप-पुण्य का हिसाब लगाते-लगाते तुम बहुत गंभीर हो जाओ। जो गंभीर हुआ, उसने खोया। कहीं जीवन में क्या ठीक है, क्या गलत है, इसी में उलझे-उलझे तुम सिकुड़ मत जाना, सूख मत जाना। क्योंकि उसके द्वार पर सूख गए, जड़ हो गए, गंभीर हो गए लोगों का प्रवेश नहीं है। उदासी का वहां प्रवेश नहीं है। वहां तो नाचते हुए की गति है। वहां तो गीत गाता ही प्रवेश पा सकेगा। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम्हारे तथाकथित साधु उससे सदा दूर रह जाते हैं। क्योंकि वे अति-गंभीर हो गए हैं।
एक बात समझ लें, गंभीरता हमेशा अहंकार का हिस्सा है। गंभीर आदमी और निरहंकारी न हो सकेगा। गंभीर आदमी तो अहंकारी होगा ही। और अहंकारी आदमी भी गंभीर होगा, अकड़ा हुआ होगा। छोटे बच्चे जैसी सरलता वहां न होगी।
और नानक का तो नाम ही निरंकारी था। नानक निरंकारी उनका पूरा नाम है।
और मरदाना सदा तैयार है वाद्य को छेड़ देने को। और नानक बोलते नहीं, गाते हैं। तुम कितना ही गंभीर प्रश्न पूछो, उनका उत्तर प्रसन्नता है। तुम कितनी ही गहरी बात पूछो, उनका उत्तर उत्सव है। वे गा कर ही उत्तर देते हैं। मरदाना वाद्य छेड़ देता है। और नानक गाना शुरू कर देते हैं। किसी विशेष कारण से उन्होंने यह विधि चुनी। क्योंकि उसके द्वार पर वाद्य बज रहा है, नाद बज रहा है।
उत्सव धार्मिक आदमी का लक्षण है। लेकिन तुम साधारणतः धार्मिक आदमी को देखो, तो तुम उन्हें उत्सव से बिल्कुल विपरीत पाओगे। तुम उन्हें बिल्कुल अकड़ा हुआ पाओगे। और तुम उनकी आंखों में गीत नहीं देखोगे, क्योंकि उनकी आंखों में निंदा है। बुरे और भले का विचार करते-करते वे जड़ हो गए हैं। वे इसी सोच-सोच में मरे जा रहे हैं--गीत की फुर्सत किसे? कि क्या ठीक है और क्या गलत! यह खाना खाएं या न खाएं? इतने बजे उठें या न उठें? यह कपड़ा पहनना कि नहीं पहनना? उनका जीवन चौबीस घंटे अनुशासन की जड़ता में जकड़ा हुआ है। निश्चित ही उत्सव का भी एक अनुशासन है, लेकिन वह अनुशासन ऊपर से थोपा हुआ नहीं है। उत्सव का भी एक अनुशासन है, लेकिन वह भीतर से जन्मता है। वह

एक इनर डिसिप्लिन है। उदासी का भी एक अनुशासन है, जो ऊपर से थोपा जाता है। भीतर कुछ भी हो, लेकिन चेहरे को तुम गंभीर करके बैठ जाते हो। शरीर को तुम मुर्दा कर लेते हो। ये धार्मिक आदमी के लक्षण नहीं हैं। सच तो यह है कि ये बहुत भयभीत आदमी के लक्षण हैं। यह आदमी इतना डरा हुआ है कि हंस भी नहीं सकता। क्योंकि हंसा तो इसे डर है, यह किसी पाप में उतर जाएगा। हंसी पाप हो गयी है। और उदासी और लंबे चेहरे पुण्य के प्रतीक हो गए हैं।
नानक की विधि में उत्सव है, संगीत है। और इसी उत्सव के सूत्र को पकड़ कर उसके द्वार पर कोई प्रवेश कर सकता है।
कहते हैं, समाधि में बैठ कर सिद्ध और ध्यान में बैठ कर साधु गा रहे हैं। यती, सती, संतोषी, महान शूरवीर गा रहे हैं। पंडित, विद्वान, ऋषीश्वर और उनके वेद युग-युग से तुझे ही गाते हैं। मन को मोहने वाली स्वर्ग की अप्सराएं तेरा गुणगान करती हैं। और पाताल की मछलियां भी तेरे ही गीत गा रही हैं। स्वर्ग से ले कर पाताल तक तेरे गीत के अतिरिक्त और कोई धुन नहीं है। तेरे उत्पन्न किए चौदह रत्न गाते हैं, अड़सठ तीर्थ गाते हैं, योद्धा, महाबली, शूरवीर गाते हैं। चार योनियों के जीव गाते हैं। जो तेरे द्वारा उत्पन्न और धारण किए गए हैं, वे खंड, मंडल और ब्रह्मांड तेरा ही गीत गाते हैं। जो तुझे भाते हैं और तुझमें अनुरक्त हैं, ऐसे रसिक भक्त तेरा यशोगान करते हैं।
नानक थकते नहीं कहते कि तेरा गीत चल रहा है समस्त में। सब तरफ से अस्तित्व एक सेलीब्रेशन है, एक उत्सव है। और परमात्मा हंस रहा है, रो नहीं रहा है। रोती शक्लें उसे भाती ही नहीं। उदासी का अस्तित्व से क्या लेना- देना? उदास होने का अर्थ ही यह है कि तुम अस्तित्व से कहीं टूट गए। कहीं परमात्मा के विपरीत पड़ गए।
जब तुम्हारे जीवन में उदासी छा जाए, तो जानना कि तुमने कोई कदम गलत लिया। जब तुम दुख से भर जाओ, तो जानना कि तुम कहीं भटके। दुख तो केवल सूचक है। दुख को तुम जीवन की विधि मत बना लेना। दुख को जीवन की शैली मत बना लेना। आत्मपीड़क मत बन जाना। क्योंकि आत्मपीड़क होना तो एक रोग है। मनोवैज्ञानिक उसको एक खास नाम देते हैं। वे कहते हैं, मेसोचिजम। ऐसे लोग हैं, जो खुद को दुख देने के रोग से पीड़ित हैं।
मैसोच एक लेखक हुआ, जिसके नाम पर मेसोचिजम रोग पैदा हुआ। मैसोच खुद को
ही मारता था। कोड़ों से मारता था, कांटे चुभाता था, लहू निकाल लेता था। मैसोच ने घाव बना रखे थे अपने हाथ में, पैरों में। अपने जूतों में उसने खीले लगा रखे थे अंदर की तरफ। वह चलता तो घाव में चुभते रहते।
ऐसे मैसोचिस्ट तुम सब जगह पाओगे। काशी में तुम उन्हें कांटों पर लेटा हुआ पाओगे। ये आत्मपीड़क हैं। ये बीमार हैं। तुम इन्हें उपवास करते हुए, सड़ते-गलते हुए पाओगे। जगह-जगह मठों में, मंदिरों में इस तरह के रुग्ण लोग बैठे हुए हैं। और लोग उनकी पूजा भी करेंगे।
क्यों? क्योंकि एक दूसरी बीमारी है। जिसको मनोवैज्ञानिक सैडिजम कहते हैं। दूसरे को दुख में देखने में कुछ लोगों को रस आता है। इन दोनों का बड़ा मेल बैठ जाता है। दुख देने वाले लोग हैं, और दूसरे को दुख मिले इसमें रस लेने वाले लोग हैं। तो तुम ध्यान रखना। जब तुम किसी दुखी, उदास और अपने को सताने वाले आदमी को आदर देते हो, तो तुम भी बीमार हो। वह बीमार है एक बीमारी से, और तुम्हारी बीमारी दूसरी बीमारी है। लेकिन दोनों बीमारियां एक-दूसरे से मेल खाती हैं। इसलिए तुम इन दुष्टों के पास जो अपने को सता रहे हैं, दूसरे तरह के दुष्टों की जमात पाओगे, जो इनको सताने में मजा ले रहे हैं। वे कहेंगे, आहा! कैसी तपश्चर्या है! धन्य, कि आप कांटों पर लेटे हैं। और इस तरह वे उनके अहंकार को फुसला रहे हैं। और उनको सहारा दे रहे हैं। ध्यान रखना, कभी किसी आदमी को दुख में देख कर कोई सहारा मत देना। क्योंकि दूसरे को दुख में सहारा देना पाप है। वह दूसरे को दुख देने के बराबर है। वह बड़ी सूक्ष्म तरकीब है। मैं तुम्हारी छाती में छुरा भोंकना चाहता हूं, यह पाप है। लेकिन तुम खुद छाती में छुरा भोंक लो तो मैं कहता हूं, बड़ी कुर्बानी की, तुम शहीद हो गए, यह भी पाप है। क्योंकि मैं भी उसमें भागीदार हूं।

जो आदमी कांटों पर लेटा पड़ा है, वह खुद तो भागीदार है ही। वे सब लोग भी,
जो उसके पैरों में पैसे चढ़ा जाते हैं और फूल रख जाते हैं, वे भी पाप के भागीदार हैं। क्योंकि वे सब इस आदमी को सहारा दे रहे हैं कि तुम पड़े रहो। वे कह रहे हैं कि तुम बड़े महात्मा हो।
दो तरह के रुग्ण लोग हैं जगत में। खुद को सताने वाले, और दूसरों को सताने वाले। ये दोनों ही चित्त की अस्वस्थ, परवर्टेड, विकृत स्थितियां हैं। इनसे सावधान रहना।
स्वस्थ आदमी न तो दूसरे को सताता है, और न अपने को सताता है। स्वस्थ आदमी सताता ही नहीं। जैसे-जैसे स्वस्थ होता है, वैसे-वैसे आनंदित होता है। वह अपना आनंद बांटता है। और उसका आदर हमेशा आनंद के लिए होगा।
जब तुम किसी आदमी को नाचते देखो, तब उसके पैर में फूल चढ़ा आना। लेकिन
यह तुमने कभी नहीं किया है। नहीं तो दुनिया के आश्रम भिन्न होते। मठ भिन्न होते। वहां उत्सव होता, वहां गीत होते, वहां नृत्य होता। लेकिन वहां रुग्ण, बीमार आदमी भरे हैं, जिनको पागलखानों में होना चाहिए। और जिनकी मानसिक-चिकित्सा की जरूरत है, वे भरे हुए हैं। तुम्हारे कारण! क्योंकि तुमने उनको आदर दिया, उनके अहंकार को फुसलाया, बड़ा किया। तुमने कभी प्रसन्न आदमी को आदर दिया है?
कल ही एक संन्यासिनी ने मुझे सांझ आ कर कहा कि एक बड़ी हैरानी की घटना
घट रही है। और वह यह कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा हो रहा है, मैं बहुत आनंदित अनुभव करती हूं। लेकिन आनंद के अनुभव के साथ ऐसा लगता है कि कोई गलती हो रही है, अपराध हो रहा है। जैसे कुछ गलत रास्ते पर जा रही हूं। आनंद के भाव के साथ ऐसा प्रतीत होता है।
ऐसा सभी को होगा। क्योंकि बचपन से ही तुम्हें दुखी होने के लिए तैयार किया गया है, आनंदित होने के लिए नहीं। बच्चा अगर उदास बैठा है एक कोने में, तो मां-बाप कहते हैं, बिल्कुल ठीक! राजा बेटा। और बच्चा अगर नाच रहा है, प्रफुल्लित हो रहा है, तो सारा घर उसका दुश्मन है कि चुप रहो, शांत बैठो, यह क्या कर रहे हो? बंद करो आवाज! जब भी बच्चा आनंदित है, तब कोई न कोई कहने वाला मिल जाता है कि बंद करो, यह गलत है। और आंखें और भी ज्यादा कहती हैं, जो शब्द नहीं कह पाते। हर जगह बच्चा पाता है कि जब भी वह प्रसन्न होता है, तभी कहीं कोई गलती हो जाती है। जब उदास होता है, तब बिल्कुल सब ठीक चलता है। धीरे-धीरे यह बात अचेतन में बैठ जाती है कि प्रसन्न होना कुछ भूल है। दुखी होने में कुछ बड़ा गुण-गौरव है।
तो जब ध्यान में कोई गहरा उतरता है तो उलटी प्रक्रिया शुरू होती है। क्योंकि ध्यान में जैसे-जैसे कोई जाता है तो प्रसन्नता और गीत, और परमात्मा के द्वार की तरफ बढ़ा, उत्सव पास आता है। जैसे-जैसे उत्सव पास आता है, दबी हुई वृत्तियां सदा की, और दूसरों की आंखें, और निंदा, और निंदा का भाव बीच में खड़ा हो जाता है। वह कहता है, आनंदित हो रहे हो? वह हजार तरह की तरकीबें खोजता है। वह दमन का भाव है।
एक मित्र ने मुझे आ कर कहा कि ध्यान तो ठीक लग रहा है। लेकिन एक ख्याल आता है कि जब सारी दुनिया दुखी है तो अपने को आनंदित करना क्या स्वार्थ नहीं?
अब उन्होंने बड़ी बौद्धिक तरकीब खोजी। वे अपने आनंद से भयभीत हैं। छह महीने पहले आए थे, तब वे यही कहते आए थे कि मैं दुखी हूं, किसी तरह आनंद चाहिए। तब उन्हें दुनिया से मतलब न था। अब जब आनंद के करीब आने लगे, और पहला सुराख खुला, और पहली धुन बजने लगी, तब वे भयभीत हो गए। उन्होंने जल्दी से अपने मन को बंद कर लिया।
मुझसे बोले कि मैंने तो ध्यान वगैरह बंद कर दिया है। क्योंकि यह तो बड़ा स्वार्थ मालूम होता है। तो मैंने कहा, दुखी होओ खूब! उससे बड़ी सेवा होगी। रोओ, छाती पीटो, अपने को सताओ, आत्महत्या कर लो, उससे जगत का बड़ा उद्धार होगा!
तुम्हारे दुखी होने से कैसे दूसरे का उद्धार होगा? तुम्हारे दुखी होने से दूसरे का दुख बढ़ेगा। तुम दुखी हो, तो तुम इस जगत के दुख की मात्रा बढ़ा रहे हो। तुम अगर सुखी हो, तो तुम इस जगत के दुख की मात्रा कम कर रहे हो।

और एक भी आदमी अगर सुखी हो, तो उससे ऐसी तरंगें उत्पन्न होनी शुरू हो जाती हैं, जो दूसरे को भी सुखी होने में सक्षम बनाती हैं।
एक घर में भी दीया जल रहा हो, तो एक तो पड़ोसियों को अपने अंधेरे का पता चलता है। और जब एक दीया जल रहा हो, तो जले हुए दीए से बुझे हुए दीए को जला लेने में कितनी दूरी है? कितनी कठिनाई है? एक दीया सारे संसार के दीए जला सकता है।
लेकिन मन दुख के लिए राजी किया गया है। और सारा जगत दो तरह के दुखी लोगों में विभक्त है। एक, जो चाहते हैं दुखी किए जाएं। और दूसरे, जो चाहते हैं कि कोई मिले जिसको वे सताएं और दुख दें। इन दोनों से धर्म का कोई संबंध नहीं। क्योंकि इन दोनों में से किसी को भी गीत सुनायी नहीं पड़ेगा। यह तो एक ही दुख के सिक्के के दो पहलू हैं। और दुख से परमात्मा का कोई नाता नहीं। तुम्हारा जब नाता टूटता है, तभी तुम दुखी होते हो। बीमारी का अर्थ है
कि इस प्रकृति से तुम्हारा नाता टूटा। दुख का अर्थ है कि परमात्मा से तुम्हारा नाता टूटा। शरीर जब प्रकृति से विपरीत चलता है, तो बीमारी; और जब चेतना परमात्मा के विपरीत चलने लगती है, तो दुख। जब शरीर प्रकृति के अनुकूल चलता है और साथ-साथ बहता है, तो स्वास्थ्य। और जब आत्मा परमात्मा के साथ-साथ चलती है, अनुकूल बहती है, तो आनंद।
नानक कहते हैं कि गीत उसके द्वार पर हैं। गीत ही उसका द्वार है। उत्सव उसकी साधना है। यह सारा अस्तित्व नानक कहते हैं, उसके गीत से भरा है। बहरे हो तुम। दिखायी नहीं पड़ता, सुनायी नहीं पड़ता। एक-एक पत्ती पर, एक-एक फूल पर वही लिखा है। इतने रंग उसने लिए हैं। इन सभी रंगों में, इन इंद्रधनुषी रंगों में उसी का तो गान है। उसी का उत्सव है।
जो तुझे भाते हैं और तुझ में अनुरक्त हैं, ऐसे रसिक भक्त तेरा यशोगान करते हैं।
नानक के शब्द प्यारे हैं--
गावहि तुहनो पउणु पाणी वैसंतरु गावे राजा धरम दुआरे।।
गावहि चितगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे।
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे।।
गावहि इंद इंदासणि बैठे देवतिया दरि नाले।
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे।।
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे।
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले।।
गावनि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले।
गावनि रतनि उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले।।
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे।
गावहि खंड मंडल वरमंडा करि करि रखे धारे।।
सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले।
होरि केते गावनि से मैं चिति न आवनि नानकु किया विचारे।।
नानक कहते हैं कि और कितने तेरा गुणगान करते हैं, इसका अनुमान मैं नहीं लगा सकता। मैं क्या विचार करूं? वही और वही सच्चा साहब है, वही सत्य
है, वही सत्य नाम है। वह है, और वह सदा होगा। वह न जाता है, न जाएगा।
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई।
है भी होसी जाई न जासी रचना जिनि रचाई।।
वह परमात्मा एकमात्र सत्य है, और शेष सब उस सत्य का उत्सव है।
नानक, माया में जो दंश है, उसे अलग कर लेते हैं। माया में जो निंदा का भाव है, उसे अलग कर लेते हैं। और जिस रहस्य को शंकर नहीं खोल पाते, उसे नानक खोल लेते हैं। शंकर के लिए बड़ी कठिनाई है। क्योंकि शंकर बहुत तर्कनिष्ठ चिंतक हैं। और उनकी पूरी आकांक्षा यह है कि जगत की पूरी व्यवस्था को तार्किक ढंग से समझाया जा सके, गणित के ढंग से समझाया जा सके। वह बड़ी कठिनाई में हैं।
माया और ब्रह्म... एक तरफ तो शंकर जानते हैं कि माया नहीं है। क्योंकि
जो नहीं है, उसी का नाम माया है। जो दिखायी पड़ती है और नहीं है, उसी का नाम माया है। और ब्रह्म, जो दिखायी नहीं पड़ता और है। माया सदा परिवर्तनशील है, सपने की भांति। ब्रह्म सदा सत्य है, शाश्वत है।

शंकर के सामने सवाल है, पूरे अद्वैत-वेदांत के सामने सवाल है, कि माया पैदा कैसे होती? क्यों होती? अगर बिल्कुल नहीं है, तब तो सवाल ही क्या है! तब तो किसी को यह भी कहना कि क्यों माया में उलझे हो? नासमझी है। क्योंकि जो है ही नहीं, उसमें कोई कैसे उलझेगा? तब यह कहना कि छोड़ो माया, व्यर्थ की बकवास है। क्योंकि जो है ही नहीं, उसे कोई छोड़ेगा कैसे? और जो है ही नहीं, उसे कोई पकड़ेगा कैसे? तो माया है तो! तभी छोड़ना है, तभी पकड़ना है।
और अगर माया है तो बिना परमात्मा के कैसे होगी? उसका सहारा तो होने के लिए चाहिए। सपना भी होगा, तो वह सपना देखता है इसलिए है। तो बड़ी कठिनाई है अद्वैत-वेदांत के सामने कि कैसे हल करो इस बात को? अगर परमात्मा ही पैदा कर रहा है माया, तो ये महात्मागण जो लोगों को समझा रहे हैं, छोड़ो माया; ये परमात्मा के दुश्मन मालूम पड़ते हैं। और अगर परमात्मा ही पकड़ा रहा है, तो हम कैसे छोड़ सकेंगे? हमारा क्या बस? और जब उसकी ही मर्जी है, तो उसकी मर्जी ठीक है।
माया आती कहां से है? अगर ब्रह्म से ही पैदा होती है, तो जो सत्य से पैदा होती है, वह असत्य कैसे होगी? सत्य से तो सत्य ही पैदा होगा। या अगर माया असत्य है, तो जिस ब्रह्म से पैदा होती है, वह असत्य होगा। दोनों एक गुणधर्म के होंगे; या तो दोनों सत्य, या तो दोनों असत्य।
शंकर सुलझा नहीं पाते। लेकिन नानक सुलझा लेते हैं। दार्शनिक जिसको नहीं सुलझा पाते, उसको भक्त सुलझा लेते हैं। क्योंकि नानक के लिए माया, ये जो अनंत रूप-रंग हैं चारों तरफ, उसका उत्सव है। ये जो राग-रागिनियां बज रही हैं इतनी, यह उसके द्वार पर चल रहा अहर्निश नाद है। ये जो इतने रंग हैं तितलियों के, फूलों के, वृक्षों के, पत्तों के, यह उसका आनंद-भाव है। वह इतने-इतने रूपों में प्रकट हो रहा है। वह इतने-इतने रूपों में प्रसन्न हो रहा है। इतने-इतने रंगों में, इतने-इतने फूलों में खिल रहा है। यह उसकी परम-ऊर्जा का फैलाव है। तो माया और ब्रह्म विपरीत नहीं हैं। माया उत्सव है, वह ब्रह्म का नृत्य है, या ब्रह्म का गीत है!
शंकर का ब्रह्म बिल्कुल रूखा-सूखा है। क्योंकि माया तो बिल्कुल कट जाती है। वह तो गणित के सिद्धांत की तरह है। उसमें कोई राग नहीं, रंग नहीं; उसमें कोई दुख नहीं, कोई खुशी नहीं; उसमें कुछ भी नहीं है। वह एक शून्य की भांति है। उससे तुम क्या प्रेम करोगे? शंकर के ब्रह्म से प्रेम करना मुश्किल है। कैसे प्रेम करोगे? कहीं तर्क के सिद्धांतों से प्रेम होता है? गणित के सिद्धांतों से कहीं प्रेम होता है? दो और दो चार होते हैं, यह ठीक है। सिद्धांत साफ है। लेकिन इससे क्या प्रेम करोगे? शंकर का ब्रह्म बिल्कुल रूखा-सूखा है। गाणितिक है, मैथामेटिकल है।
नानक का ब्रह्म बिल्कुल भिन्न है। वह एक गणितज्ञ की धारणा नहीं है। बल्कि एक सौंदर्य-प्रेमी की, एक कवि की धारणा है। नानक कवि हैं। दार्शनिक नहीं हैं। और दार्शनिक जो हल नहीं कर पाता, वह कवि हल कर लेता है। क्योंकि दार्शनिक को तो तर्क बिठाना होता है। कवि को तर्क की कोई चिंता नहीं। वह अतर्क हो सकता है। वह जोड़ लेता है। जो नहीं जुड़ता, वह जुड़ जाता है कवि की धारणा में, उसके प्रेम में, उसकी भक्ति में।
इसे ख्याल रखना कि नानक के लिए माया उसका उत्सव है। इसलिए नानक ने अपने शिष्यों को, सिक्खों को संसार छोड़ने को नहीं कहा। छोड़ना कहां है? छोड़ना क्या है? जो उसका ही है, उसको छोड़ कर भागना क्या? इसलिए नानक ने अपने शिष्यों को कहा कि तुम संसार में ही रह कर उसे खोजना, क्योंकि संसार भी उसी का है। और तुम संसार में से ही उसकी तरफ यात्रा-पथ खोजना। माया से भागना मत, डरना मत। वह उसी का खेल है।
इतना पक्का है कि तुम खेल में ही मत खो जाना, खेलने वाले पर ध्यान रखना; वह सुरति है। नृत्य में ही मत खो जाना, नृत्य जिसका चल रहा है उसका स्मरण रखना। वृक्षों को देखना, पक्षियों के गीत सुनना, उनमें इतना मत खो जाना कि तुम यह भूल जाओ कि उस गीत के पीछे कौन छिपा है! माया यानी प्रकट ब्रह्म है। तुम प्रकट के भीतर अप्रकट को खोजते रहना। दृश्य के भीतर अदृश्य को देखते रहना।
नानक कहते हैं, और कितने तेरा गुणगान करते हैं, इसका मैं अनुमान भी नहीं लगा सकता। मैं क्या विचार करूं? वही और वही सच्चा साहिब है। वही सत्य

है। वही सत्य नाम है। वह है, वह सदा होगा, वह न जाता है, न जाएगा। उसने ही यह सारी रचना रची है।
रचना जिनि रचाई।
उसने ही यह सारी रचना रची है। उसने अनेक रंग, भाव और प्रकार की माया की वस्तुएं उत्पन्न की हैं। वह रच-रच कर अपनी रचना को देखता है। उसकी देखभाल करता है। और उसे बड़प्पन देता है।
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई।
है भी होसी जाई न जासी रचना जिनि रचाई।।
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई।
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी बडिआई।।
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई।
बड़ी अदभुत बात नानक कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि परमात्मा बनाता है, बना-बना कर अपनी सृष्टि को देखता है।
जैसे कोई चित्रकार अपना चित्र बनाए। तुमने अगर कभी चित्रकार को बनाते देखा है चित्र, तो वह बनाएगा, फिर चार कदम पीछे हटेगा फिर गौर से देखेगा, फिर बाएं खड़ा होगा, फिर दाएं जाएगा, फिर खिड़की के पास से, फिर दरवाजे के पास से, फिर चित्र को प्रकाश में रखेगा, फिर छाया में रखेगा। हजार तरह से देखेगा। मूर्तिकार मूर्ति को बनाएगा, देखेगा सब दिशाओं से।
नानक कहते हैं, वह बना-बना कर अपने कृत्य को देखता है। और इस भांति जिसे उसने बनाया है, उसे बड़प्पन देता है।
तो परमात्मा संसार के विपरीत नहीं है, नहीं तो बनाए ही क्यों? और परमात्मा माया का शत्रु नहीं है, अन्यथा माया हो ही क्यों? तर्क के लिए जो कठिनाई थी, प्रेम के लिए कठिनाई नहीं है। नानक कहते हैं, न केवल वह बनाता है, बल्कि बना-बना कर देखता है। और बनाए हुए को बड़प्पन देता है।
ध्यान रखना, अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए कि तुम्हें परमात्मा ने बनाया है; और तुम्हें बना-बना कर चारों तरफ से देखा है और देखता चला जा रहा है; और तुम्हें बड़प्पन और महिमा दे रहा है, क्योंकि तुम कृत्य उसके हो; अगर यह तुम्हें स्मरण आ जाए, तो तुम्हारे जीवन से पाप अपने आप विसर्जित हो जाएगा। क्योंकि तब तुम उस तरह उठोगे और चलोगे, जिसको परमात्मा ने बनाया है। तुम उस तरह बोलोगे, उस तरह व्यवहार करोगे, जिसको परमात्मा ने बनाया है। और न केवल परमात्मा ने बनाया है, परमात्मा जिसे बचा रहा है। बहुमूल्य साज-संवार कर रहा है। और बार-बार देख रहा है, निरख रहा है। परमात्मा तुमसे प्रसन्न है। और तुम कितने ही भटक जाओ, तो भी उसकी आंख तुम्हें देखती रहेगी। और वह तुम से उदास नहीं है और निराश नहीं है। अन्यथा तुम्हें अभी मिटा दे। तुम कितने ही बुरे हो जाओ, तो भी उसकी आशा का दीया नहीं बुझता। तुम कितने ही दूर चले जाओ, तुम बिल्कुल उसकी तरफ पीठ कर लो, तुम उसे बिल्कुल विस्मरण कर दो, तो भी वह तुम्हें देख रहा है। और जानता है कि आज नहीं कल, तुम वापस लौट आओगे। जो दूर गया है, वह वापस लौटेगा। लौटना सुनिश्चित है। देर-अबेर और बात! क्योंकि जितने तुम दूर जाओगे, उतने तुम दुखी होओगे। उतने तुम भटकोगे। जैसे छोटा-सा बच्चा घर से भाग जाए... ।
एक छोटा बच्चा, ज्यादा नहीं चार साल की उम्र रही होगी; एक छोटा-सा बिस्तर और पोटली बांधे हुए सड़क पर एक कोने से दूसरे कोने आ-जा रहा है। पुलिस वाले ने उससे पूछा, मामला क्या है? बहुत बार--कहां जा रहे हो? उसने कहा, घर से भाग रहा हूं। लेकिन मां ने मना किया है कि चौरस्ते के उस तरफ मत जाना। और न सड़क के उस तरफ जाना। और घर से भाग खड़ा हुआ हूं। इसीलिए चौरस्ते और घर के बीच आ-जा रहा हूं। उस तरफ जा भी नहीं सकता, क्योंकि मां ने मना किया है।
छोटा बच्चा--घर से भागेगा भी कितनी दूर! और मां से नाराज भी हो जाए, तो
भी मां ने मना किया है। उस सीमा का उल्लंघन कैसे करेगा?
तुम परमात्मा से कितने दूर जाओगे? चौरस्ते और घर के बीच में ही घूमोगे। जा भी कितने दूर सकते हो? जाओगे भी कहां? क्योंकि जहां भी जाओगे, वह उसकी ही सीमा है। जहां भी होओगे, उसमें ही होओगे। तुम्हारी नाराजगी छोटे बच्चे की नाराजगी है, जो कि प्रेम का हिस्सा है। तुम्हारी नाराजगी से परमात्मा नाराज नहीं हो जाता।

नानक कहते हैं, वह बनाता है।
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी बडिआई।
और बड़ाई देता है और महिमा देता है। जो उसने बनाया है, वह उसको देखता है। जो कुछ उसे भाता है, वह वही करता है। उसके हुक्म में कोई दखल नहीं दे सकता है। वह बादशाहों का बादशाह है। नानक कहते हैं, उसकी मर्जी के भीतर ही रहना।
हुकमु न करणा जाई।
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई।।
उसकी जो रजा है, उसकी जो आज्ञा है, उसका जो हुक्म है, उसके भीतर रहना। बाहर चले जाने से वह नाराज नहीं हो जाएगा; बाहर चले जाने से तुम अकारण दुख पाओगे। दुख पाना उसके द्वारा दिया गया दंड नहीं है। दुख पाना उससे विपरीत जाने का सहज फल है। जैसे तुम दीवाल से निकलने की कोशिश करो और सिर टूट जाए, तो दीवाल तुम्हारे सिर को तोड़ नहीं रही है। तुम दीवाल से निकलने की कोशिश कर रहे हो। तुम खुद ही अपना सिर तोड़ रहे हो, जब कि दरवाजा उपलब्ध है।
नानक रहणु रजाई।
वह दरवाजा उसकी रजाई है। जब दरवाजा उपलब्ध है तो तुम दीवाल से क्यों निकलना चाह रहे हो? निकलोगे तो सिर टूटेगा। और ध्यान रखना कि परमात्मा नाराज हो कर सिर नहीं तोड़ रहा है। तुम अपनी ही नासमझी से सिर तोड़ रहे हो। और जब तुम सिर तोड़ रहे हो, तब भी अस्तित्व तुम्हारे लिए अनुभव करता करुणा का। इसलिए तुम कितना ही सिर तोड़ो, अस्तित्व बार-बार तुम्हारे सिर को ठीक करता रहता है। तुम कितने ही भटको, हाथ-पैर तोड़ लो, फिर ठीक हो जाते हो। अस्तित्व तुम्हें सम्हालता है अनंत तक। न मालूम तुम कितने-कितने जन्मों से दीवार से सिर टकरा रहे हो! फिर भी तुम हो। और अभी भी साजे हो, पूरे हो। अभी भी कुछ टूट नहीं गया है। आत्मा खंडित नहीं होती। पर व्यर्थ दुख झेलने का अपने हाथ से उपाय हो जाता है।
इसलिए नानक कहते हैं, नानक रहणु रजाई। उसकी आज्ञा में रहना, उसके हुक्म में रहना।
कैसे जानो कि उसका हुक्म क्या है? कैसे पक्का करोगे कि क्या है उसकी रजाई? बड़े-बड़े चिंतक यहां जा कर अटक गए हैं। क्योंकि यह तो ठीक है, मान लिया, उसकी आज्ञा में रहना। क्या है उसकी आज्ञा? कैसे तुम निश्चित करोगे, यही उसकी आज्ञा है? उसकी आवाज उसकी ही है, तुम्हारी नहीं, किसी और की नहीं, कैसे पहचानोगे? इन हजारों आवाजों के मेले में तुम कैसे पकड़ पाओगे? रास्ता है। रास्ता विचार से नहीं खुलता। विचार से तुम कभी तय न कर पाओगे कि उसकी आज्ञा क्या है। रास्ता खुलता है, जैसे-जैसे तुम उसकी धुन में डूबते हो, जैसे-जैसे तुम्हारा अहंकार खोता है, जैसे-जैसे तुम लीन होते हो ध्यान में, समाधि में--तत्क्षण उसकी आवाज सुनायी पड़ने लगती है। तुम्हारा अहंकार भीतर शोरगुल मचा रहा है, इसलिए तुम आवाज नहीं सुन पा रहे हो। तुम्हारा अहंकार शांत हो जाए, विचारों का उपद्रव भीतर न रहे, तत्क्षण उसकी आवाज सुनायी पड़ेगी। वह आवाज सदा दे रहा है। एक क्षण को भी आवाज से तुम टूटे नहीं।
मनुष्य के भीतर अंतःकरण है। जैसे आंख से तुम देखते हो, कान से तुम सुनते हो, ऐसा अंतःकरण तुम्हारे भीतर एक यंत्र है, जो परमात्मा की आवाज को पकड़ता है। आंख रोशनी को पकड़ती है। अभी तक वैज्ञानिक समझ नहीं पाए कि कैसे पकड़ती है? अभी तक वैज्ञानिक हल नहीं कर पाए कि आंख से कैसे खबर जाती है मस्तिष्क तक कि बाहर एक सुंदर स्त्री खड़ी है, या फूल खिला है, या सूरज निकला है? आंख कैसे रोशनी को ले जाती है भीतर? और कैसे रोशनी से चित्र बनाती है? अभी तक रहस्य खुल नहीं सका है। अभी तक रहस्य है और बड़ा तिलिस्म जैसा है।
हाथ छूते हैं। जब तुम किसी को छूते हो तो हाथ तो छू रहा है, लेकिन मन को पता चलता है छूने का, कि चमड़ी खुरदरी है, या चिकनी है, या मुलायम है, या कोमल है, या मखमली है। यह सारी घटना तो अंगुली की चमड़ी पर घट रही है। लेकिन यह सारी सूचना कैसे पहुंच जाती है तुम्हारे मन तक? क्षण भी नहीं लगता।
जैसे ये पांच इंद्रियां हैं इस जगत से संबंधित होने की; एक छठवीं इंद्रिय है, जिसको हमने अंतःकरण कहा है, कान्सियन्स। वह छठवीं इंद्रिय भी

तुम्हारे भीतर है और प्रतिपल काम कर रही है। लेकिन तुम दूसरी चीजों में उलझे हो। तुम विचार में उलझे हो और उसकी धीमी आवाज सुनायी नहीं पड़ती। जब तुम्हारे भीतर सब सन्नाटा हो जाता है, अचानक तुम पाते हो कि उसकी आवाज सदा मिलती रही है।
नानक कह रहे हैं, नानक रहणु रजाई--उसकी आज्ञा में रहना।
लेकिन उसकी आज्ञा को पहले खोजना पड़ेगा। और उस आज्ञा को खोजना कठिन नहीं है। तुम्हारे सोचने से कोई संबंध नहीं है कि क्या ठीक है, क्या गलत है! तुम्हारा सोचना बंद होना चाहिए। जैसे ही सोचना बंद हुआ; क्या ठीक है, वह सुनायी पड़ने लगता है। और तब तुम्हारी सारी चिंता खो जाती है, सारा दायित्व खो जाता है। उसकी जो मर्जी, वही तुम करते हो।
उसकी मर्जी, नानक का मार्ग है। इसलिए उन्होंने जीवन के परम-सूत्र को हुक्म कहा है--उसकी मर्जी। और उससे जुड़ने का तुम्हारे पास उपाय है। वह उपाय जन्म के साथ तुम ले कर पैदा हुए हो। लेकिन तुमने अब तक उसका उपयोग नहीं किया है। ध्यान तुम्हें अंतःकरण तक ले जाएगा, बस! और अंतःकरण तुम्हें परमात्मा से जुड़ाए हुए है। वह जो अंतस में जुड़ा हुआ तार है, वह प्रतिपल कह रहा है क्या करो, क्या न करो।
नानक कहते हैं, जब वह तुम्हें सुनायी पड़ने लगे, तो बस, उसकी सीमा में रहना। फिर तुम्हारे जीवन में कोई दुख नहीं है। फिर तुम्हारे जीवन में उत्सव की घनी वर्षा होगी।
उसी क्षण में कबीर ने कहा है, गरजे गगन बरसे अमी! आनंद का जन्म हुआ है।
आकाश गरज रहा है। पानी नहीं बरस रहा है, अमृत बरस रहा है।
अंतःकरण से जुड़ते ही तुम्हारे और परमात्मा के बीच सीधा संबंध हो गया।
वह अभी भी है। परमात्मा की तरफ से अभी भी है। तुम्हारी तरफ से अभी नहीं है।
चुप होने की कला अंतःकरण से जुड़ जाने का उपाय है। मौन मार्ग है।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
चौदहवां प्रवचन

आदेसु तिसै आदेसु

पउड़ीः 28
मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूती।
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति।।
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीत।।
आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति। जुगु जुगु एको वेसु।।

पउड़ीः 29
भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि बाजहि नाद।
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद।।
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग।।
आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति। जुगु जुगु एको वेसु।।

एक-एक शब्द बहुमूल्य है। और एक-एक शब्द को गहरे में समझने की कोशिश करें।
मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूती।
"हे योगी, संतोष और लज्जा की मुद्रा बनाओ। प्रतिष्ठा की झोली धारण करो। और ध्यान की विभूति लगाओ।"
निरंतर ऐसा हुआ है, और सदा ऐसा होता भी रहेगा; क्योंकि आदमी के मन की कुछ बुनियादी भूलें हैं, जो बार-बार पुनरुक्त होती हैं। जब भी किसी धर्म का जन्म होता है, तो अनेक विधियां, अनेक उपाय, अनेक प्रयोग, परमात्मा तक पहुंचने के खोजे जाते हैं। धर्म के मूल-स्रोत के निकट तो वे केवल प्रतीक होते हैं, सहारे होते हैं। लेकिन जैसे-जैसे मूल-स्रोत दूर होता जाता है और धर्म एक परंपरा बन जाती है, वैसे-वैसे प्रतीक जड़ हो जाते हैं। उनका अर्थ खो जाता है। फिर लोग लाश की तरह उन्हें ढोते रहते हैं। फिर धीरे-धीरे यह भी भूल जाता है कि किसलिए, क्यों प्रथम इन्हें स्वीकार किया था? एक औपचारिकता हो जाती है, जिसे निभाना सामाजिक कृत्य बन जाता है।
समझें। मैंने आपको संन्यास दिया, गैरिक-वस्त्र दिए। थोड़े ही दिनों में गैरिक-वस्त्रों का भीतरी अर्थ खो जाएगा। जैसे-जैसे मुझसे दूर होंगे, वैसे-वैसे गैरिक-वस्त्र एक बाहरी प्रतीक हो जाएगा। लेकिन वस्त्र रंग लेने से कहीं आत्मा रंगी है! वस्त्र रंग लेना तो केवल एक सुरति का उपाय था, कि अब आत्मा को भी रंगना है।
वह तो ऐसे था, जैसे कोई आदमी बाजार जाता है, कुछ खरीद कर लाना है, भूल न जाए, तो अपने कुरते में एक गांठ लगा लेता है। गांठ थोड़े ही बाजार से खरीद कर लानी है! गांठ का कोई अपने आप में थोड़े ही अर्थ है! तुम हजार गांठें लगा लो, इससे क्या होगा? वह तो स्मरण के लिए एक सहारा है। दिन भर बाजार में काम में उलझा रहेगा, बार-बार गांठ पर ध्यान जाएगा, ख्याल आ जाएगा कि कुछ खरीद कर घर ले जाना है। सुरति बनी रहेगी। संभावना कम रहेगी भूलने की। हजार कामों में उलझा हुआ भी, जो चीज खरीद कर लानी थी, उसे खरीद कर ले आएगा। लेकिन गांठ अपने आप में कुछ अर्थ रखती नहीं।
उसका बेटा, हो सकता है यह देख कर कि बाप जब भी बाजार जाता था, तो अक्सर अपने कुरते में गांठ बांध लेता था, जरूर इसमें कुछ राज होगा; जब बेटा भी बाजार जाएगा, तो कुरते में गांठ बांध कर जाएगा। न तो कुछ स्मरण रखने को है, न गांठ का कोई संबंध स्मरण से रहा। अब तो गांठ एक औपचारिक परंपरा हो गयी। उसका बेटा भी ऐसा करेगा। और तब हजारों साल तक यह बात चलती रहेगी। उस घर में गांठ बांधना परंपरा हो जाएगी। जो तोड़ेगा, नहीं मानेगा, वह अधार्मिक समझा जाएगा। जो मानेगा, वह धार्मिक समझा जाएगा। जो मानेगा, वह पुरखों का आदर करता है। जो नहीं मानेगा, वह बगावती है, विद्रोही है। लेकिन न मानने वाला

बता सकेगा कि यह गांठ किसलिए? और न न मानने वाला बता सकेगा कि गांठ किसलिए नहीं?
सभी धर्मों में इस तरह का उपद्रव स्वाभाविक है। क्योंकि मन थोथे को पकड़ लेता है, गहरे को भूल जाता है। मन की कोई गहराई नहीं है। मन गहरे को याद रख ही नहीं सकता।
मैंने तुम्हें गैरिक-वस्त्र दिए हैं। वह तो सिर्फ तुम्हारे भीतर एक याद बनी रहे चौबीस घंटे कि तुम संन्यस्थ हो। और तुम्हें ऐसे उठना, ऐसे बैठना, ऐसे चलना है, जैसे एक संन्यासी को उठना चाहिए, बैठना चाहिए, चलना चाहिए। तुम्हें वही बोलना है, जो एक संन्यासी को बोलना चाहिए। तुम्हारा इस जगत में व्यवहार एक कैदी का न हो, एक मालिक का हो--इसलिए मैंने तुम्हें "स्वामी" कहा--एक बंधे हुए व्यक्ति का न हो, मुक्त आचरण हो। माना कि आज तुम अचानक मुक्त नहीं हो जाओगे, लेकिन कहीं से तो शुरुआत करनी होगी। ये तो कपड़े तुम्हारे शरीर पर एक गांठ की तरह हैं। इनका उपयोग है कि इनके कारण सुरति बनी रहेगी। और सुरति अभी बनाए रखना सब से ज्यादा महत्वपूर्ण है। नानक ये जो वचन कह रहे हैं, ये नाथ-संप्रदाय के साधुओं को संबोधित कर
के कहे हैं। उस समय नाथ-संप्रदाय के साधुओं का बड़ा प्रभाव था। देश के कोने- कोने में उनके मठ थे। और जिससे जन्म हुआ था नाथ-संप्रदाय का, वह आदमी बड़ा अनूठा था--गोरखनाथ। लेकिन जैसे ही गोरखनाथ खोया, वैसे ही साधारण आदमी के हाथ में उसकी विधियां पड़ गयीं। वे सब थोथी हो गयीं।
नाथ-संप्रदाय के साधु अपने कान को छेद लेते हैं, नाथ लेते हैं। अब वह
भी गांठ है। और बड़ी उपयोगी है।
आक्युपंक्चर चीन में एक बहुत पुरानी साइंस है। और अब पश्चिम में भी उसको स्वीकार किया जाता है। आक्युपंक्चर मनुष्य के शरीर में सात सौ बिंदु मानता है जहां जीवन ऊर्जा प्रवाहित होती है। दोनों कानों का लटकता हुआ हिस्सा, एक बड़ा महत्वपूर्ण आक्युपंक्चर का केंद्र है। और इस केंद्र से भीतर की स्मृति का बड़ा गहरा संबंध है। अगर कान छेद दिया जाए, तो उस भीतर की ऊर्जा में चोट लगती है। गहरी चोट लगती है। मस्तिष्क के कुछ विकारों को दूर करने का चीन में एक ही उपाय है कि कान छेद दिया जाए। कान छिदते ही विकार दूर हो जाते हैं।
इस गहरी अनुभूति के कारण नाथ-संप्रदाय के साधु कान छेदते हैं। और उनका एक वर्ग तो कनफटा होता है। वे छेदते ही नहीं, कान को बिल्कुल फाड़ लेते हैं। क्योंकि शरीर की ऊर्जा के बिंदु हैं। और जब कान फट जाता है, तो वहां जो चोट पड़ती थी, वह खो जाती है। वहां से जीवन की विद्युत-धारा, सीधी मस्तिष्क की तरफ बहने लगती है। बीच का एक अवरोध अलग हो जाता है। यह भीतरी स्मृति को जगाने में बड़ा कीमती उपाय है।
तुम कभी थोड़ी कोशिश करना। कान छेदने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन जब
भी तुम्हारा मन उदास हो, चिंतित हो, उद्विग्न हो, क्रोध से भरा हो, तुम दोनों कानों के नीचे हिस्से को पकड़ कर जोर से रगड़ना। सिर्फ रगड़ने से ही तुम पाओगे कि भीतर चित्त की दशा बदलने लगी।
पर इतना तो साफ ही है कि कान फाड़ने से कोई सिद्ध न हो जाएगा। और कान छेद लिया तो सब कुछ हो गया, ऐसा भी नहीं है।
भारत में बहुत पुरानी ग्रामीण परंपरा है। अभी भी कुछ लोग गांव में मिल जाएंगे। अगर तुम्हें कभी कोई आदमी मिले जिसका नाम हो कनछेदी लाल, या जिसका नाम हो नत्थूलाल, तो तुम पूछना कि यह नाम क्यों रखा गया? जिन घरों में बच्चे मर जाते हैं, दो चार बच्चे हुए और मर गए, तो बहुत पुरानी परंपरा है कि फिर जो बच्चा पैदा हो, तत्क्षण या तो उसकी नाक छेद दो या कान छेद दो। अगर नाक छेदा तो उसका नाम नत्थूलाल, कान छेदा तो उसका नाम कनछेदी लाल।
और यह बात बड़ी अनुभव की है कि फिर नाक या कान छेदने के बाद बच्चे नहीं मरते। उनकी जीवन-ऊर्जा में कुछ बुनियादी अंतर आ जाता है। बच्चा बच जाता है। यह हजारों सालों के अनुभव के बाद लोगों ने धीरे-धीरे प्रयोग खोजा है। अब तो इस पर रूस में बड़ी खोज हुई है। और किरलियान फोटोग्राफी ने बड़े महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं, कि मनुष्य के शरीर में जो विद्युत का प्रवाह है, सारा खेल स्वास्थ्य का, बीमारी का, जन्म का, मरण का, उस विद्युत के प्रवाह पर निर्भर है। और उस प्रवाह को कुछ बिंदुओं से बदला जा सकता है।

उस प्रवाह के मार्ग को रूपांतरित किया जा सकता है। उस प्रवाह को एक तरफ जाने से रोका जा सकता है, दूसरी तरफ ले जाया जा सकता है।
आक्युपंक्चर की सारी कला यही है कि जब कोई आदमी बीमार होता है, तो किन्हीं शरीर के खास बिंदुओं पर वे गर्म सुई चुभोते हैं। और जरा सा सुई का चुभन, और भीतर की विद्युत धारा बदल जाती है। उस विद्युत धारा के बदलने से सैकड़ों बीमारियां तिरोहित हो जाती हैं। चीन में तो कोई पांच हजार सालों से वे इसका प्रयोग करते हैं। उन्होंने जो शरीर में माने हैं बिंदु, अब तो विज्ञान ने भी स्वीकृति दे दी है कि वे बिंदु हैं। और यह भी स्वीकार हो गया है--रूस में कम से कम! और रूस के तो अस्पतालों में भी आक्युपंक्चर का प्रयोग शुरू हो गया है। और अब तो उन्होंने यंत्र भी खोज लिए हैं कि मरीज को वे यंत्र में खड़ा कर देते हैं। तो जैसे एक्स-रे से पता चलता है कि भीतर कहां खराबी है, उस यंत्र से पता चलता है कि शरीर में घूमने वाली इलेक्ट्रिक करंट कहां बीमार पड़ गयी है। तो जहां बीमार पड़ गयी है वहां इलेक्ट्रिक का शाक उसे देते हैं। इलेक्ट्रिक का शाक देते ही विद्युतधारा प्रवाहित हो जाती है और बीमारी तिरोहित हो जाती है।
कान छेदना, नाथ-संप्रदाय के योगियों ने बड़े महत्वपूर्ण शाक की तरह खोजा था। वह शाक था। इस तरह के शाक बहुत तरह खोजे गए हैं। तुम्हें पता है कि यहूदी और मुसलमान खतना करते हैं। वह खतना भी इसी तरह का शाक है और बड़ा महत्वपूर्ण है। यहूदी तो, बच्चा पैदा होता है, उसके चौदह दिन के भीतर उसका खतना करते हैं। और जननेंद्रिय के ऊपर की चमड़ी को काट कर अलग कर देते हैं। इस संबंध में बहुत अध्ययन चलता आ रहा है कि इससे क्या लाभ होते होंगे?
और लाभ प्रगाढ़ मालूम होते हैं। क्योंकि यहूदियों से ज्यादा प्रतिभाशाली कौम खोजना कठिन है। उनकी संख्या तो थोड़ी है, लेकिन जितनी नोबल-प्राइज यहूदी ले जाते हैं, उतनी कोई दूसरी जाति नहीं ले जाती। और यहूदी जिस दिशा में भी काम करेगा, हमेशा अग्रणी हो जाएगा। आगे पहुंच जाएगा। दूसरों को पीछे खदेड़ देगा। यहूदी के पास प्रतिभा तो ज्यादा मालूम पड़ती है।
इस सदी में जिन लोगों ने बड़े प्रभाव पैदा किए हैं वे सब यहूदी हैं। कार्ल मार्क्स, सिगमन फ्रायड और अलबर्ट आइंस्टीन, तीनों यहूदी हैं। और इन तीनों ने इस सदी को निर्मित किया है। और यहूदियों ने जितने प्रगाढ़ विचारक पैदा किए हैं, वैज्ञानिक पैदा किए हैं, किसी ने पैदा नहीं किए। उनका कोई मुकाबला नहीं है। और अभी इस संबंध में विचार शुरू हुआ है कि हो सकता है, चौदह दिन के भीतर जो खतना किया जाता है, उसका कुछ न कुछ गहरा संबंध प्रतिभा से है।
मुसलमान वह नहीं कर पाए, क्योंकि वे खतना बड़ी देर से करते हैं। यहूदियों का ख्याल है कि चौदह दिन के भीतर बच्चे को जो पहला शाक मिलता है-- क्योंकि खतना जननेंद्रिय की चमड़ी का किया जाता है--तो पहला शाक जननेंद्रिय के पास जो इकट्ठी ऊर्जा है, जो विद्युत-ऊर्जा है, उसको लगता है। और वह शाक इतना गहरा है कि वह विद्युत-ऊर्जा उस जगह से हट कर सीधी मस्तिष्क पर चोट करती है। और छोटे बच्चे को वह जो चोट है, सदा के लिए महत्वपूर्ण हो जाती है। उसकी जीवन-धारा बदल जाती है।
इस बात की संभावना है। किरलियान भी इससे राजी है रूस में। और आक्युपंक्चर का तो बहुत पुराना ख्याल है कि यह बात सच है। क्योंकि जननेंद्रिय सर्वाधिक संवेदनशील जगह है। उससे ज्यादा संवेदनशील कोई हिस्सा शरीर में नहीं है। और छोटे से बच्चे की चमड़ी काट देना, उसके लिए भारी शाक है। और उस धक्के के लगते ही ऊर्जा छटक कर मस्तिष्क में प्रवेश कर जाती है।
जब कभी ये चीजें खोजी गयीं, तो इनका उपयोग शुरू हुआ। फिर उपयोग का अर्थ खो जाता है। तब ऊपर-ऊपर चीजें लोग ढोते रहते हैं। उन्हें भी पता नहीं होता, वे क्यों कर रहे हैं?
गोरखनाथ ने बहुत-सी चीजें खोजीं। गोरखनाथ अनूठा अन्वेषक था। और उसका प्रभाव पड़ा। और लाखों लोग नाथ-संप्रदाय में सम्मिलित हुए। क्योंकि परिणाम साफ थे। लेकिन नानक के वक्त तक आते-आते चीज धुंधली हो गयी। लोग ढो रहे थे। लेकिन गोरख ने जो अर्थ दिए थे वे खो गए थे।
तो नानक कहते हैं, "हे योगी, संतोष और लज्जा की मुद्रा बनाओ।"

क्योंकि गोरखनाथ ने बहुत सी मुद्राएं खोजीं। मुद्राएं बड़ी महत्वपूर्ण हैं। तुम्हें भी शायद कभी जीवन में अनुभव होता हो कि तुम्हारी मन की दशा तुम्हारी मुद्रा से जुड़ी होती है। जब तुम शांत होते हो तब तुम्हारे चेहरे, तुम्हारे हाथ, तुम्हारे शरीर की मुद्रा अलग होती है। जब तुम क्रुद्ध होते हो, तब अलग होती है। जब तुम किसी के प्रति करुणा से भरे होते हो, तब अलग होती है। तुम करुणा के समय घूंसा तो बांध कर किसी के सिर के सामने खड़े नहीं हो जाओगे। क्योंकि बेतुकी होगी मुद्रा। करुणा के समय तो तुम्हारे हाथ में भी करुणा होगी। हाथ में भी अभय होगा। हाथ में भी दान का भाव होगा। हाथ भी देगा। घूंसा तो किसी को नष्ट करने के लिए है। मुट्ठी बंधी नहीं हो सकती, क्योंकि बंधी मुट्ठी तो कृपण की है। मुट्ठी खुली होगी करुणा के क्षण में। तुमसे कुछ भी दिया जा सकता है।
मन और मन के भाव और शरीर की स्थितियों का गहरा संबंध है। तो गोरखनाथ
ने बहुत सी मुद्राएं खोजीं, जिनको साधने से योगी की भीतर की चित्त दशा बदलती है।
तुम समझो कि तुम बिल्कुल क्रोध की मुद्रा साध कर खड़े हो जाओ। क्रोध बिल्कुल नहीं है, लेकिन तुम क्रोध की मुद्रा साध लो। ठीक वैसी ही लाल आंखें कर लो, घूसा तान लो, जैसे किसी की जान लेने जा रहे हो, तैयार हो जाओ, बिल्कुल हमला करना है। तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे भीतर क्रोध की सरसराहट शुरू हो गयी। सिर्फ मुद्रा तुमने बनायी, और क्रोध पैदा हो गया। अमरीका में इस सदी में दो बड़े मनोवैज्ञानिक हुए, जेम्स और लेंगे। उन दोनों ने मिल कर एक सिद्धांत विकसित किया जो जेम्स-लेंगे सिद्धांत कहलाता है। उन्होंने बड़ी उल्टी बात कही। उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि लोग कहते हैं भय लगता है, इसलिए भयभीत आदमी भागता है। जेम्स और लेंगे ने सिद्ध किया कि आदमी भागता है इसलिए भय लगता है। जेम्स और लेंगे ने कहा कि मुद्रा महत्वपूर्ण है। हम कहते हैं कि आदमी डर गया इसलिए भाग रहा है। और जेम्स और लेंगे कहते हैं, वह भाग रहा है इसलिए डर रहा है। अगर वह भागना रोक दे, तो डर खो जाए। अगर मुद्रा बदल दे, तो भीतर की स्थिति बदल जाए।
चित्त की हर स्थिति के साथ जुड़ी मुद्रा है। इसका यह अर्थ हुआ कि चित्त
और शरीर एक पैरेलल, समानांतर धारा में चलते हैं। जब तुम आनंदित होते हो, तब तुम्हारे शरीर की एक स्थिति होती है। जब तुम दुखी होते हो, तब दूसरी होती है।
तुम अध्ययन करना, जब तुम प्रसन्न हो, प्रफुल्लित हो, खुश हो, तो तुम पाओगे कि जैसे तुम्हारा शरीर फैल रहा है। जैसे तुम बड़े हो गए हो। एक विस्तीर्णता उपलब्ध होती है। तुम फैलते चले जाते हो। जब तुम दुखी हो, परेशान हो, तब तुम सिकुड़ते हो। जैसे भीतर तुम सिकुड़ कर बंद होते जा रहे हो। जैसे वृक्ष बीज में बंद हो जाना चाहे। ऐसे तुम अपने भीतर सिकुड़ते जाते हो। और तुम ध्यान रखना, दुखी आदमी का अगर तुम शरीर देखोगे, तुम उसे भी सिकुड़ा हुआ मुद्रा में पाओगे।
अगर तुम मुद्राओं का अध्ययन करो तो तुम शरीर की स्थिति को देख कर बता सकते हो कि भीतर की स्थिति क्या होगी! जब आदमी प्रसन्न होता है, तो शरीर फैलाव की हालत में होता है। दुखी, तो सिकुड़ा होता है। जब क्रोध होता है तो माथे की अलग अवस्था होती है, रेखाएं बदल जाती हैं। जब तुम चिंतित होते हो, तो माथे पर अलग बल पड़ते हैं। जब तुम निश्चिंत होते हो, बल खो जाते हैं।
इस रहस्य की खोज जेम्स-लेंगे ने नहीं की, इस रहस्य की खोज भारत में बहुत पुरानी है। हठयोग-प्रदीपिका से ले कर गोरखनाथ तक, लाखों-लाखों योगियों ने अनुभव किया। योगियों से ज्यादा किसी ने मनुष्य के शरीर और चित्त पर प्रयोग भी नहीं किए हैं, इतना अन्वेषण भी नहीं किया है, इतना निरीक्षण भी नहीं किया है।
तो उन्होंने पाया कि एक-एक चित्त की दशा के साथ शरीर की मुद्रा का जोड़ है। तब एक सूत्र हाथ लग गया। अगर चित्त को बदलना हो तो मुद्रा के बदलने से चित्त को बदलने में सहायता मिलेगी। तुम मुद्रा बदल लो। जब क्रोध आ रहा हो, तब तुम मुद्रा ऐसी करो जो कि शांत-चित्त की मुद्रा है। तुम अचानक पाओगे कि भीतर की ऊर्जा में रूपांतरण हुआ। वह जो शक्ति क्रोध बनने जा रही थी, वही शक्ति शांति बन गयी।

शक्ति निरपेक्ष है। तुम जैसा ढांचा उसे देते हो, वैसी ही ढल जाती है। शक्ति तो जल की भांति तरल है। तुम गिलास में उसको भर देते हो तो उसका ढंग गिलास का हो जाता है। तुम लोटे में भर देते हो तो उसका रूप लोटे का हो जाता है। मुद्राओं से तुम रूप देते हो। शक्ति तो निरपेक्ष है। जब तुम क्रोध का रूप दे देते हो तो शक्ति क्रोध बन जाती है। मुद्रा ढांचा है। और जब तुम प्रेम का रूप दे देते हो, वही शक्ति प्रेम बन जाती है। यह बड़ी गहरी से गहरी खोज है।
तो अगर तुम शरीर की मुद्राओं को समझ लो, तो तुम पाओगे कि तुमने भीतर के
मन को बदलना शुरू कर दिया। लेकिन खतरा क्या है? खतरा यह है कि तुम भूल ही जाओ और तुम शरीर की मुद्रा के ही अभ्यास में लगे रहो। और तुम यह भूल ही जाओ कि भीतर के मन को बदलने का इससे कोई संबंध है। तो ऐसा हो सकता है कि तुम शरीर की मुद्रा का तो बिल्कुल अभ्यास कर लो और भीतर कुछ भी न हो।
यह तो केवल सहारा है। असली क्रांति तो भीतर करनी है। बाहर से जितने सहारे लिए जा सकें उतना अच्छा है। जैसे कोई आदमी नया मकान बनाता है, तो मकान बनाने के लिए पहले एक स्ट्रक्चर खड़ा करता है। लेकिन अगर स्ट्रक्चर ही खड़ा कर के तुम रह जाओ, ढांचा ही खड़ा करके रह जाओ, मकान कभी बनाओ ही न, तो वह ढांचा मकान नहीं है। उसमें रहा नहीं जा सकता। वह ढांचा सहयोगी था। जब मकान बन जाता तो ढांचा हटा देना था। ढांचा रहने के लिए नहीं है।
मुद्रा तो ढांचा है। नानक के समय आते-आते तक ढांचे को ही लोग मकान समझ
कर रहने लगे। तो योगी बैठा है एक मुद्रा में। उसने मुद्रा तो करुणा की बना रखी है, लेकिन उसे याद ही नहीं कि करुणा के लिए कुछ भीतर भी करना जरूरी है। तो मुद्रा करुणा की है और भीतर क्रोध उबल रहा है। हाथ-पैर तो वह अभय के बनाए हुए हैं और अगर तुम उसके भीतर झांको, तो वह खतरनाक है और तुम्हें नुकसान पहुंचा सकता है। द्वार पर खड़ा मांग तो भीख रहा है... नाथ-योगियों से लोग डरने लगे थे। अगर वह भीख मांगे और न दें तो वे अभिशाप दे दें। तो भिखारी का रूप उसका झूठा है।
बुद्ध ने, गोरख ने, अपने संन्यासियों को भिखारी बनने के लिए कहा है, क्योंकि उससे विनम्रता आएगी। जब तुम मांगोगे तो कैसी अकड़ बचेगी? जब तुम भिक्षापात्र ले कर किसी के द्वार पर खड़े रहोगे, तो कैसा अहंकार? कर्तृत्व से अहंकार मिलता है। भिखारी हो गए, अब कैसा अहंकार? भिखारी का अर्थ है, मैं ना-कुछ हूं। मेरा कोई मूल्य नहीं। यह भिक्षापात्र ही मेरा सब कुछ है। और तुम दे दोगे तो मैं राजी हूं। तुम कहोगे कि चले जाओ, हट जाओ, तो मैं चुपचाप हट जाऊंगा। क्योंकि भिखारी का क्या बल? मांग पर जोर-जबर्दस्ती क्या? देने वाला दे दे, उसकी मर्जी; न दे, उसकी मर्जी।
तो बुद्ध ने तो अपने भिक्षुओं को कहा था कि तुम द्वार पर खड़े हो जाना, मांगना भी मत। क्योंकि मांगने से भी हो सकता है, जोर पड़े। मांगने से हो सकता है कि उस आदमी को इनकार करना मुश्किल हो जाए। लाज, शर्म में दे दे। लेकिन वह तो लेना न हुआ। वह तो हिंसा हो गयी। तो तुम सिर्फ द्वार पर खड़े हो जाना। अगर उसे देना होगा तो दे देगा। अगर नहीं देना होगा तो तुम चुपचाप हट जाना। तुम उसे किसी पशोपेश में मत डालना। अगर तुमने मांगा भी, तो कम से कम उसे न तो कहना पड़ेगा। हो सकता है कि संकोची आदमी हो, न देना चाहता हो, लेकिन "न" कहना मुश्किल पाए, तो उसके संकोच का शोषण मत कर लेना। तुम चुपचाप खड़े रहना, आंख बंद किए। थोड़ी देर प्रतीक्षा करना और हट जाना, ताकि उसे "न" कहने का भी कष्ट न उठाना पड़े। और मजबूरी में देने की स्थिति मत बना देना। और तुम इतने विनम्र रहना कि मेरा क्या मूल्य! दे दिया तो उसकी मर्जी, नहीं दिया तो उसकी मर्जी। और हर हालत में तुम आशीर्वाद देना। उसके देने और न देने से तुम्हारे आशीर्वाद का कोई संबंध न हो।
बुद्ध का एक भिक्षु था, पूर्ण। जब वह निष्णात हो गया, बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया, तो बुद्ध ने कहा, अब तू जा। और दूसरों को दे, जो मैंने तुझे दिया है। बहुत दीए बुझे हैं, उनको जला। अब तेरी मेरे पास रहने की कोई जरूरत नहीं, तू पा गया है। तो पूर्ण ने कहा कि मुझे आज्ञा दें कि--बिहार का एक इलाका था, जिसका नाम सूखा था--मैं वहां जाऊं। बुद्ध ने कहा, वहां न जा तो अच्छा, क्योंकि वहां के लोग बहुत कठिन हैं, कठोर हैं। वे तुझे गालियां देंगे, अपमान करेंगे। पूर्ण ने कहा, लेकिन जहां लोग बीमार हैं, वहीं तो

चिकित्सक की जरूरत है। तो मुझे आज्ञा दें कि मैं वहीं जाऊं। उन लोगों को जरूरत है।
तो बुद्ध ने कहा, मुझे तीन जवाब जाने के पहले दे दे। पहला, अगर वे गालियां देंगे, अपमान करेंगे, तो तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा कि मुझे होगा कि कितने भले लोग हैं! सिर्फ गालियां ही देते हैं, अपमान ही करते हैं, मारते तो नहीं हैं। मार भी सकते थे।
तो बुद्ध ने कहा, और अगर वे मारें, पत्थर फेकें, जूतों से स्वागत करें, फिर तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा, कितने भले लोग हैं! कि सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते। मार डाल भी सकते थे।
तो बुद्ध ने कहा, आखिरी सवाल और। अगर वे मार ही डालें, तो उस मरते क्षण में तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा, यही होगा कि कितने भले लोग हैं! कि उस जीवन से छुटकारा दिला दिया, जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी।
बुद्ध ने कहा, अब तू पूर्ण भिक्षु हुआ। अब तू जा सकता है।
इतनी विनम्रता हो, तो ही कोई भिक्षु है। लेकिन नानक के समय आते-आते, गोरख के भिक्षु दरवाजे पर खड़े हो जाते थे। अभी भी कभी गोरखपंथी साधु खड़ा हो जाए, तो वह खड़ा नहीं रहता, वह आगे-पीछे हटता है। और अपने डंडे को हिलाता है, या अपने चिमटे को बजाता है। चिमटे को बजाता है और आगे-पीछे हटता है। खड़ा नहीं रहता एक जगह पर वह, घबड़ा देता है घर के लोगों को। और उसकी अकड़, उसकी आंख। जैसे अगर "न" कहा, तो भयंकर उत्पात कर देगा।
तो नाथ-संप्रदाय के साधुओं ने ऐसा घबड़ा दिया था लोगों को कि लोग उनको
डर कर देते थे। क्योंकि अभिशाप पक्का था। हालत बिल्कुल उल्टी हो गयी थी। आशीर्वाद तो नाथ-संप्रदाय का योगी देता ही नहीं था। तुमने दिया, इसमें कुछ आशीर्वाद का सवाल ही न था। तुम ही अनुगृहीत हो कि उसने लिया। आशीर्वाद तो देगा ही नहीं। आशीर्वाद क्या? उसका जैसे हक! और अगर न दिया तो अभिशाप देगा। गोरख ने कहा था, कोई दे, कोई न दे, तो आशीर्वाद। लेकिन हालत बिल्कुल उलटी हो गयी थी। और वह मुद्राएं बांध कर खड़ा था।
ऐसे नाथ-योगी अब भी हैं, जो खड़े हैं, तो दस साल से खड़े ही हैं। हिले नहीं हैं। इसका मूल्य तो था कभी। क्योंकि अगर तुम बहुत देर तक बिल्कुल थिर हो कर खड़े रहो और भीतर की याद रहे, तो चेतना भी खड़ी हो जाएगी। अगर तुम्हारा शरीर बिल्कुल थिर हो गया, तो चेतना भी थिर हो जाएगी। लेकिन यह ख्याल रहे! नहीं तो शरीर तो जड़ हो जाएगा और चेतना चलती रहेगी। और खड़े-खड़े तुम जमाने भर की यात्रा करोगे। सपने आएंगे हजार, विचार चलेंगे।
सहारा मिल सकता है मुद्राओं से। लेकिन मुद्राएं अंत नहीं हैं। नानक
के समय में आ कर सब मुद्राएं भ्रष्ट हो गयीं। सब पंथ विकृत हो गए।
तो नानक कह रहे हैं, "हे योगी, संतोष और लज्जा की मुद्रा बनाओ।"
मुद्राओं से न चलेगा। संतोष ही मुद्रा है। लज्जा मुद्रा है।
"प्रतिष्ठा की झोली धारण करो।"
यह झोली जो कंधे पर टांग कर चल रहे हो, यह काम न देगी।
समझें। संतोष बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है, और विकृत हो गया है। कोई आदमी
जब अपने को असहाय पाता है तो संतोष कर लेता है। उसका संतोष कंसोलेशन है, सांत्वना है। उसका संतोष कंटेंटमेंट नहीं है। जब वह असहाय है, जब कुछ भी नहीं किया जा सकता, जब जो भी किया जा सकता था कर चुका और अपने को असफल पाता है, तब वह कहता है, सब ठीक! यह संतोष की मुद्रा न हुई। यह तो मजबूरी की हालत हुई।
यह तो ऐसा हुआ कि रामकृष्ण के पास एक भक्त आता था, जो हमेशा काली के उत्सव में बकरे चढ़ाता था। सैकड़ों बकरे काटता था। फिर अचानक बकरों का काटना बंद कर दिया। और रामकृष्ण ने बहुत बार उसे कहा भी था, पर उसने कभी सुना नहीं। तो रामकृष्ण ने पूछा कि क्या मामला हुआ? अब बकरे कटने बंद हो गए? और मैंने पहले कहा तो तुमने कभी सुना नहीं। उसने कहा कि पहले मैं सुन नहीं सकता था। अब दांत ही न रहे। तो बकरे कोई काली के लिए थोड़े ही काटता है! अपने दांतों के लिए काटता है। अब दांत ही न रहे तो मैंने संतोष कर लिया है। बुढ़ापे में लोग संतोष कर लेते हैं। गरीबी में लोग संतोष कर लेते हैं।
पर वह संतोष झूठा है। क्योंकि संतोष शक्ति है, निर्बलता नहीं। संतोष विधायक, पाजिटिव एनर्जी है, नकारात्मक नहीं। संतोष कोई असहाय,

हेल्पलेसनेस नहीं है। संतोष तो परम सहाय है। वह तो बड़ी ऊंची अवस्था है। संतोष का तो मतलब है कि जितना मुझे चाहिए, उससे ज्यादा मेरे पास है। जो मेरी जरूरत है, उससे ज्यादा मेरे पास है। जो मैंने मांगा था, जो मैंने नहीं मांगा था, वह भी मुझे मिला है। संतोष का अर्थ तो अनुग्रह का भाव है कि परमात्मा तेरी मर्जी बड़ी अदभुत है। तूने इतना दिया है।
वह किसी असहाय अवस्था में, किसी हारी, पराजित चित्त की दिशा में पकड़
ली गयी सांत्वना का स्वर नहीं है। वह तो बड़ी विजय की यात्रा है। वहां तो हार का कोई सवाल ही नहीं। वह तो केवल विजेताओं को उपलब्ध होती है, योद्धाओं को उपलब्ध होती है। महावीर ने कहा है, जिनों को उपलब्ध होती है। जिन यानी जिन्होंने जीत लिया सब, उन्हीं को संतोष उपलब्ध होता है।
नानक कहते हैं, "योगी, संतोष की मुद्रा बनाओ।"
यह हाथ-पैर की मुद्राएं साधते-साधते बहुत समय हो गया। इनसे कुछ हो नहीं रहा है। छोड़ो इन्हें। भीतर की मुद्रा साधो। और सबसे बड़ी मुद्रा है संतोष।
क्यों? क्योंकि जो संतुष्ट हुआ उसकी सब चिंताएं गिर गयीं। सब चिंताएं असंतोष से पैदा होती हैं। सभी चिंताएं इस बात से पैदा होती हैं कि जो मुझे मिलना चाहिए, वह नहीं मिला है। अभाव से पैदा होती हैं। जिस दिन तुम संतुष्ट हुए, उस दिन तुम घोड़े बेच कर सो जाओगे। फिर कोई चिंता नहीं है। फिर रात कोई सपना भी न आएगा, क्योंकि सभी सपने असंतोष से पैदा होते हैं। दिन भर जो असंतोष तुम पालते हो, वह रात सपना बन जाता है।
असंतोष का अर्थ है, भिखारीपन। संतोष का अर्थ है, मालिक हो गए, स्वामी
हो गए। वही संन्यासी का लक्षण है। वह संतुष्ट है हर हाल। तुम ऐसी कोई स्थिति पैदा नहीं कर सकते, जहां तुम उसे असंतुष्ट कर दो। क्योंकि हर स्थिति में वह शुभ को देखेगा। और हर स्थिति में उसके हाथ को पहचान लेगा। दुख की गहरी से गहरी अवस्था में भी, तुम उसकी सुख की किरण न छीन सकोगे। क्योंकि अंधेरे से अंधेरे में भी वह जानता है कि सुबह आ रही है, सुबह करीब है। गहन से गहन जब अंधेरा होता है, तब वह हंसता है, प्रसन्न होता है, कि यह सुबह के करीब आने का लक्षण है। तुम उसे अंधेरे में नहीं डाल सकते। उसे हर अंधेरे बादल में भी चमकती हुई बिजली की शुभ्रता दिखायी पड़ती है। गहरी से गहरी दुख की अवस्था में भी, तुम उसका सूत्र नहीं छीन सकते। उसके संतोष का धागा उसके हाथ में है। वह सभी को स्वीकार करता है। उसने परम स्वीकार धारण किया है।
इसको नानक कहते हैं, मुद्रा बनाओ योगी। हाथ-पैर को साध लेने से कुछ भी
न होगा। शरीर के अभ्यास से कुछ भी न होगा। अभ्यास करो चैतन्य का। और चैतन्य के अभ्यास का पहला सूत्र है, संतोष।
मगर ध्यान रखना, गलत संतोष भी है। गलत संतोष असहाय अवस्था का है।
मजबूरी है, अपनी तरफ से सब कर लिया... ।
मुल्ला नसरुद्दीन एक जंगल से यात्रा कर रहा था। एक मित्र साथ थे।
दोनों अपनी बैलगाड़ी में जा रहे थे कि अचानक डाकुओं ने हमला किया। कोई पचास कदम पर डाकू खड़े थे बंदूकें लिए। और उन्होंने कहा, रुक जाओ। मुल्ला नसरुद्दीन ने तत्क्षण अपने खीसे से पांच सौ रुपए निकाले और मित्र को दिए, कि भाई! तुम से जो कर्ज लिया था, निपटारा कर लें। हिसाब साफ हो गया। तुम्हारा संतोष ऐसी ही अवस्था में होता है। जब तुम पाते हो, अब कुछ करने को बचा नहीं। सब जा रहा है। जब जा ही चुका होता है, तभी तुम छोड़ते हो। असल में तुम छोड़ते नहीं, तुमसे छीना जाता है। और जब तुमसे छीना जाता है, तब कैसा संतोष! जो छोड़ता है, वह संतुष्ट हो सकता है। जिससे छीना जाता है, वह ऊपर से कितनी ही मुद्रा साधे, भीतर तो असंतोष है। वह ऊपर से कितना ही कहे, सब ठीक है! लेकिन उसके सब ठीक में भी तुम स्वर को सुन लोगे कि वह कह रहा है, कुछ भी ठीक नहीं है।
संतोष की सही रूपरेखा है, कि पहला तो यह भाव कि जो मुझे मिला है, वह पहले से ही जरूरत से ज्यादा है। इससे ज्यादा हो भी क्या सकता है? जो सुख मैंने पाया है, उसके लिए मेरा अहोभाव है, धन्यवाद है। जो दुख हैं, उन दुखों के पीछे भी छिपा हुआ सुख है। कांटे हैं, कहीं गुलाब खिल रहे होंगे। कांटे पर नजर न रहे, गुलाब पर नजर रहे। कोई आदमी गाली भी दे जाए, तो संतोषी

व्यक्ति सोचेगा कि या तो उसने ठीक ही कहा, तब मुझे धन्यवाद देना चाहिए कि उसकी गाली सच है। और या सोचेगा कि गाली सच नहीं है, बिचारे ने नाहक मेहनत की, कष्ट उठाया, इतनी दूर तक आया। अगर सच है तो धन्यवाद होगा, अगर झूठ है तो दया का भाव होगा। लेकिन क्रोध किसी स्थिति में संतोषी व्यक्ति को नहीं हो सकता। वह हर हाल में कुछ खोज लेगा।
दो फकीरों की कहानी मुझे बड़ी प्रीतिकर रही है। जापान में हुए। दोनों वर्षा काल के लिए अपने झोपड़े पर वापस लौट रहे थे। आठ महीने घूमते थे, भटकते थे गांव-गांव, उस परमात्मा का गीत गाते थे। वर्षा काल में अपने झोपड़े पर लौट आते थे। गुरु बूढ़ा था। जवान शिष्य था। जैसे ही वे करीब पहुंचे झील के किनारे अपने झोपड़े के, देखा कि छप्पर जमीन पर पड़ा है। जोर की आंधी आयी थी रात, आधा छप्पर उड़ गया है। छोटा सा झोपड़ा! उसका भी आधा छप्पर उड़ गया है। वर्षा सिर पर है। अब कुछ करना भी मुश्किल होगा। दूर जंगल में यह निवास है। युवा संन्यासी शिष्य ने कहा, देखो, हम प्रार्थना कर-कर के मरे जाते हैं, हम उसकी याद कर-कर के मरे जाते हैं, और उसकी तरफ से यह फल! इसलिए तो मैं कहता हूं कि कुछ सार नहीं है। प्रार्थना, पूजा--मिलता क्या है? दुष्टों के महल साबित हैं, हम गरीब फकीरों की झोपड़ी गिरा गयी आंधी। और यह आंधी उसी की है।
जब वह क्रोध से ये बातें कह रहा था, तभी उसने देखा कि उसका गुरु घुटने टेक कर, बड़े आनंदभाव से आकाश की तरफ हाथ जोड़े बैठा है। उसकी आंखों से परम संतोष के आंसू बह रहे हैं। और वह गुनगुना कर कह रहा है कि परमात्मा तेरी कृपा! आंधी का क्या भरोसा! पूरा ही छप्पर ले जाती। जरूर तूने बीच में रोका होगा और आधे को बचाया। आधा छप्पर अभी भी ऊपर है। आंधी का क्या भरोसा? आंधी आंधी है। पूरा ले जाती। जरूर तूने बाधा डाली होगी। और आधा तूने बचाया होगा।
फिर वे दोनों गए। एक ही झोपड़े में वे प्रवेश कर रहे हैं, लेकिन दो भिन्न तरह के लोग हैं। एक असंतुष्ट, एक संतुष्ट। स्थिति एक ही है, लेकिन दोनों के भाव अलग हैं। इसलिए दोनों अलग झोपड़े में जा रहे हैं। ऊपर से तो दिखायी पड़ता है कि एक ही झोपड़े में जा रहे हैं।
रात दोनों सोए। जो असंतुष्ट था, वह तो सो ही न सका। उसने अनेक करवटें बदलीं और बार-बार कहा कि क्या भरोसा, कब वर्षा आ जाए। अभी वर्षा आयी नहीं। लेकिन वह चिंतित और परेशान है। उसने कहा, नींद नहीं आती। नींद आ कैसे सकती है? यह कोई रहने की जगह है? और उसका क्रोध... ।
लेकिन गुरु रात बड़ी गहरी नींद सोया। जब चार बजे उठा तो उसने एक गीत लिखा। क्योंकि आधे झोपड़े में से चांद दिखायी पड़ रहा था। और उसने लिखा कि परमात्मा, अगर हमें पहले से पता होता, तो हम तेरी आंधी को भी इतना कष्ट न देते कि आधा छप्पर अलग करे। हम खुद ही अलग कर देते। अब तक हम नासमझी में रहे। सो भी सकते हैं, चांद भी देख सकते हैं। आधा छप्पर दूर जो हो गया! तेरा आकाश इतने निकट और हम उसे छप्पर से रोके रहे। तेरा चांद इतने निकट, कितनी बार आया और गया, और हम उसे छप्पर से रोके रहे। हमें पता ही न था। तू माफ करना। अन्यथा हम तेरी आंधी को यह कष्ट न देते, हम खुद ही आधा अलग कर देते। यह जो गीत गा सकता है, यह संतोष है। मजबूरी में नहीं, असहाय अवस्था में नहीं। वह तो नपुंसकों का मार्ग है। वे तो हमेशा ही ऐसा करते हैं। जब सब छिन जाता है, तब वे संतोष करते हैं। काश, उन्होंने संतोष पहले कर लिया होता! तो कुछ भी छिन नहीं सकता था। क्योंकि संतोषी से तुम कुछ भी छीन ही नहीं सकते। तुम छीनो, लेकिन तुम संतोषी से कुछ छीन नहीं सकते। तुम उसका संतोष नहीं छीन सकते, तुम क्या छीनोगे उससे कुछ? तुम उससे सब छीन लोगे, लेकिन संतोषी वहीं रहेगा जहां था। क्योंकि उसकी संपदा भीतरी है।
नानक कहते हैं, "संतोष की मुद्रा बना, लज्जा की मुद्रा बना योगी! प्रतिष्ठा की झोली बना।"
वे भीतर के संकेत दे रहे हैं। असल में गोरखनाथ ने भी वही कहा था। बाहर
के संकेत भीतर की याददाश्त के लिए थे। भीतर की बात तो भूल गयी। कमीज में लगी गांठ हाथ में रह गयी। यह भूल ही गए कि बाजार लेने क्या आए थे? यह भी भूल गए कि गांठ इसलिए लगायी थी कि बाजार में कुछ याद रखना है। बस, गांठ हाथ रह गयी। अब गांठ को ढो रहे हैं। गांठ अपने आप में बोझ है।

लज्जा शब्द को समझने की कोशिश करें। क्योंकि शब्द बहुत गहरा है और बहुत पूर्वीय है। पश्चिम की भाषाओं में ऐसा कोई शब्द नहीं है। क्योंकि लज्जा एक पूरब की अपनी अनूठी खोज है। लज्जा को हमने स्त्रैण व्यक्तित्व की आखिरी परम अवस्था माना है।
वेश्या को हम निर्लज्ज कहते हैं, क्योंकि वह शरीर को बेच रही है। शरीर
को बेचना निर्लज्ज दशा है। क्योंकि शरीर परमात्मा का मंदिर है, बेचने के लिए नहीं है। यह तो आराधना के लिए है। यह ठीकरों के लिए गंवाने के लिए नहीं है। यह तो परम-धन के पाने की सीढ़ी है। तो जो भी शरीर को बेच रहे हैं, चाहे वेश्याएं हों, और चाहे दुकानदार हों, और चाहे तुम हो, अगर तुम शरीर को बेच रहे हो और ठीकरे कमा रहे हो, तो निर्लज्ज हो।
निर्लज्ज का एक ही अर्थ होता है कि जो शरीर को परमात्मा के खोजने के अतिरिक्त और किसी तरह से बेच रहा है। उसके जीवन में कोई लज्जा नहीं है। तुम वेश्या की तो निंदा करते हो, लेकिन दूसरे लोगों की क्या हालत है? फर्क क्या है? अगर तुम शरीर को बेच रहे हो धन कमाने के लिए, इस संसार में इज्जत कमाने के लिए, तो वेश्या और तुम में फर्क क्या है? वेश्या भी शरीर को बेच रही है धन कमाने के लिए, तुम भी बेच रहे हो शरीर को धन कमाने के लिए।
लज्जा की अवस्था का अर्थ है, शरीर को धन के लिए नहीं बेचना है। वह परमात्मा का मंदिर है। उसमें परमात्मा कभी अतिथि बनेगा। उसे परमात्मा के लिए प्रतीक्षा सिखानी है। और वह प्रतीक्षा निश्चित ही वैसी ही होगी, जैसी प्रेयसी अपने प्रेमी के लिए करती है। और जब प्रेमी पास आता है तो प्रेयसी घूंघट डाल लेती है। छिपती है। प्रेमी के सामने अपने को प्रगट नहीं करती, क्योंकि प्रगट करना तो निर्लज्ज अवस्था है। छिपाती है, अवगुंठित होती है। प्रेमी के लिए प्रतीक्षा करती है, प्रेमी को निमंत्रण भेजती है, जब प्रेमी पास आता है तो अपने को छिपाती है। क्योंकि प्रेमी के सामने प्रकट करना तो अहंकार होगा। सब प्रकट करने की इच्छा एक्जीबिशन, अहंकार है।
परमात्मा के सामने क्या तुम अपने को प्रगट करना चाहोगे? तुम परमात्मा
के सामने तो छिप जाओगे, जमीन में गड़ जाओगे। तुम तो परमात्मा के सामने घूंघटों में छिप जाओगे। परमात्मा के सामने अपने को प्रकट करने का भाव तो अहंकार है। वहां तो तुम प्रेयसी की भांति जाओगे, पंडित की भांति नहीं। वहां तो तुम ऐसे जाओगे कि पदचाप भी पता न चले। वहां तो तुम छुपे-छुपे जाओगे। क्योंकि तुम्हारे पास है क्या जो दिखाएं? लज्जा का अर्थ है, है क्या हमारे पास जो दिखाएं? कुछ भी तो नहीं है दिखाने को, इसलिए छिपाते हैं।
इसलिए भारत में जो स्त्री का परम गुण हमने माना है, वह लज्जा है। इसलिए भारत की स्त्रियों में जो एक ग्रेस, एक प्रसाद मिल सकता है, वह पश्चिम की स्त्रियों में नहीं मिल सकता। क्योंकि पश्चिम की स्त्री को कभी लज्जा सिखायी नहीं गयी। लज्जा दुर्गुण मालूम होती है। उसे दिखाना है, प्रदर्शन करना है, उसे बताना है, उसे आकर्षित करना है बता कर। जैसे बाजार में खड़ी है।
पूरब में हमने स्त्री को लज्जा सिखायी है। छिपाना है। इससे घूंघट विकसित हुआ। घूंघट लज्जा का हिस्सा था। फिर घूंघट खो गया। और जैसे ही घूंघट खोया, लज्जा भी खोने लगी। क्योंकि घूंघट लज्जा का हिस्सा था। वह उसका बाह्य अंग था। अब हमारी स्त्री भी प्रकट कर के घूम रही है। वह चाहती है लोग देखें। सज-संवर कर घूम रही है। और जब तुम सज-संवर कर घूम रहे हो, लोग देखें यह भीतर आकांक्षा है, तो तुम बाजार में खड़े हो गए।
नानक कहते हैं, परमात्मा के सामने हमारी लज्जा वैसी ही होगी, जैसी प्रेमी के सामने प्रेयसी की होती है। वह अपने को छिपाएगी। दिखाने योग्य क्या है? इसलिए लज्जा। बताने योग्य क्या है? इसलिए लज्जा। इसलिए घूंघट है।
और ध्यान रखना, जितनी स्त्री लज्जावान होगी, उतनी आकर्षक हो जाती है। जितनी प्रगट होगी, उतना आकर्षण खो जाता है। पश्चिम में स्त्री का आकर्षण खो गया है। खो ही जाएगा। क्योंकि जो चीज बाजार में खड़ी है, उसका आकर्षण समाप्त हो जाएगा।

और परमात्मा के सामने तो हम बेचने को नहीं गए हैं अपने को। और परमात्मा के सामने तो हमारे पास क्या है दिखाने को? इसलिए परमात्मा के सामने तो हम प्रेयसी की तरह जाएंगे। कंपते पैरों से, कि पता नहीं स्वीकार होंगे या नहीं! संकोच से, कि पता नहीं उसके योग्य हो पाएंगे कि नहीं! लज्जा से, क्योंकि दिखाने योग्य कुछ भी नहीं है।
लज्जा बड़ी विनम्र दशा है। और उतनी विनम्रता से कोई उसके पास जाएगा तो
ही अंगीकार होगा। और जो भक्त जितना अपने को छिपाता है, उतना आकर्षक हो जाता है परमात्मा के लिए। और जो भक्त अपने को जितना खोलता है और ढोल पीटता है कि देखो मैं पूजा कर रहा हूं, देखो मैं प्रार्थना कर रहा हूं, कि देखो मैं मंदिर जा रहा हूं, कि देखो मैंने कितने जप-तप किए, वह उतना ही दूर हो जाता है। क्योंकि यह कोई अहंकार नहीं है, परमात्मा से मिलन एक निरअहंकार चित्त की बात है।
तो नानक कहते हैं, "संतोष और लज्जा की मुद्रा बनाओ। प्रतिष्ठा की झोली धारण करो।"
किस प्रतिष्ठा की? जैसे ही किसी व्यक्ति को यह एहसास होना शुरू होता
है कि मैं शरीर नहीं, आत्मा हूं; प्रतिष्ठा मिली। आत्म-भाव प्रतिष्ठा है। क्योंकि शरीर में तो तुम प्रतिष्ठित हो ही नहीं सकते। वह रास्ते का पड़ाव है, मंजिल नहीं है। वहां कैसी प्रतिष्ठा? वहां क्षण भर रुक सकते हो, वह घर नहीं बन सकता। प्रतिष्ठित का अर्थ है, जिसने उसको पा लिया जो शाश्वत है। जिसने उसमें अपनी जड़ें जमा लीं जो कभी न मिटेगा। आदि सचु जुगादि सचु--जो सदा सच है। जिसने उसमें जड़ डाल दी, वह प्रतिष्ठित हुआ। और जो सदा झूठ है, जो उसके साथ तिरता रहा, उसकी कैसी प्रतिष्ठा?
तुम जब तक परमात्मा के साथ खड़े न हो जाओ तब तक प्रतिष्ठित नहीं हो। तब
तक तुम राज-सिंहासनों पर बैठ जाओ भला, कोई प्रतिष्ठा न मिलेगी। इस संसार की कोई प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा नहीं है। क्योंकि इस संसार में तो सब लहरों का खेल है। चार दिन बाद कौन तुम्हें याद रखेगा? आज भी जब तुम सिंहासन पर हो, कौन तुम्हारी फिक्र करता है?
सिंहासन पर बैठे लोगों की हालत देखो! जहां जाएं वहां जूते फेंके जाएं, जहां जाएं वहां पत्थरों से स्वागत हो। अगर तुमने फूल चाहे तो पत्थर मिलते हैं। अगर तुमने आदर चाहा तो अपमान मिलता है। तुम जबर्दस्ती पद पर बैठे, तो कोई न कोई तुम्हारी टांग नीचे खींचता ही रहता है। राजनीतिज्ञों से पूछो, अखबारों में भला नाम छपते हों, चर्चा होती हो, लेकिन उसी मात्रा में निंदा चलती है। उसी मात्रा में अपमान चलता है। इस जगत में तुमने अगर जीतना चाहा तो तुम हार ही पाओगे। और तुमने आदर चाहा तो अपमान पाओगे। प्रतिष्ठा तो सिर्फ परमात्मा के साथ होने में है।
तो नानक कहते हैं, "प्रतिष्ठा की झोली धारण करो।"
यह अकड़ और अहंकार की झोली ले कर मत चलो। निरअहंकार, लज्जा और संतोष--और तुम्हारी जड़ें परमात्मा में पहुंचने लगेंगी।
"ध्यान की विभूति बनाओ, योगी। राख लपेटने से कुछ भी न होगा।"
भीतर ध्यान को उपलब्ध करो। वही तुम्हारी राख हो। उसी को तुम लपेटो। "मृत्यु को गुदड़ी बनाओ कि उसकी याद बनी रहे सदा।"
जिसको मृत्यु की याद बनी रहती है, वह परमात्मा को नहीं भूल सकता। और जिसको मृत्यु भूल गयी, वह परमात्मा को भूल जाता है। और हम सब मृत्यु को बिल्कुल भूल कर रहते हैं। हम ऐसा मान कर चलते हैं कि हमें मरना ही नहीं है। इसलिए तो परमात्मा की याद भूल जाती है।
"मृत्यु को गुदड़ी बनाओ, योगी। काया को कुमारी।"
नाथ-संप्रदाय और तांत्रिकों के बहुत से संप्रदाय हैं, जो साधना के लिए किसी कुंवारी स्त्री को खोजते हैं। क्योंकि कुंवारी स्त्री से विशेष तांत्रिक-संभोग के माध्यम से ध्यान की उपलब्धि हो सकती है। यह बात ठीक है। यह हो सकता है। तंत्र ने उसका मार्ग खोजा है।
लेकिन आदमी तो बेईमान है। तंत्र के नाम पर हजारों योगी और तांत्रिक कुंवारियों को ले कर घूम रहे थे। लाखों लोग थे जिनको तंत्र की आड़ मिल गयी। बताने को भी हो गया कि हम तांत्रिक हैं, और यह जो कुंवारी है हमारे साथ है, यह हमारे तंत्र की साथिनी है। और इस नाम से बहुत व्यभिचार चला। बौद्ध उखड़े

इस व्यभिचार के कारण। नाथ-संप्रदाय मिटा इस व्यभिचार के कारण। और तांत्रिकों की एक बड़ी महत्वपूर्ण परंपरा बिल्कुल खो गयी इस व्यभिचार के कारण। आदमी तो बड़ा होशियार है। वह हर चीज में आड़ खोज लेता है। उसने देखा कि यह तो बड़ी गहरी आड़ मिल गयी कि हम तंत्र के साधक हैं। तो हम किसी भी कुंवारी स्त्री को ले कर साथ चल सकते हैं।
नानक कहते हैं, "काया की कुंवारी बनाओ, योगी।"
नानक बड़ी महत्वपूर्ण बात यहां कह रहे हैं। और वह तंत्र का ही गहरे से गहरा सूत्र है। वह यह है कि तुम्हारी काया ही तुम्हारी साथिनी बन जाए। और तुम्हारी आत्मा पुरुष हो और तुम्हारी काया कुमारी हो। इन दोनों के बीच भी संभोग हो सकता है। और वह जो संभोग है, वह परम संभोग है। उससे ही कोई मुक्ति को उपलब्ध होगा। तंत्र का भी सूत्र तो यही था कि बाहर की कुंवारी तो केवल सहारा है। उस सहारे से धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम्हें भीतर की कुंवारी को खोज लेना है।
हर पुरुष के भीतर छिपी स्त्री है। हर स्त्री के भीतर छिपा पुरुष है।
और जब तुम्हारे दोनों स्त्री और पुरुष का भीतर मिलन होता है, तो समाधि की आखिरी अवस्था फलित होती है।
अब आधुनिक मनोविज्ञान भी इसे स्वीकार कर रहा है कि आदमी बाई-सेक्सुअल है। होगा भी। क्योंकि हरेक का जन्म मां और बाप के मिलन से हुआ है। तो तुम्हारे भीतर मां का हिस्सा भी है, और बाप का हिस्सा भी है। तुम्हारे भीतर स्त्री भी है, पुरुष भी है। और अगर दोनों ऊर्जाएं भीतर मिल जाएं, तो बाहर का संभोग तो क्षण भर का है, यह संभोग शाश्वत हो सकता है।
तो नानक तंत्र की बड़ी गहरी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, "योगी, काया
की कुंवारी बनाओ। प्रतीति को युक्ति का डंडा बनाओ। सारी जमात को एक समझना ही नाथ-पंथ है। मन को जीतना ही जगत का जीतना है। यदि प्रणाम ही करना हो, उसको ही प्रणाम करो। वह आदि है, शुद्ध है, अनादि है, अनाहद है, और युग-युग से एक ही वेश वाला है।"
मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूती।
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति।।
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीत।।
आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति। जुगु जुगु एको वेसु।।
जो सदा एक ही वेश में है। जो सदा एक सा है, उसको ही प्रणाम करो। किसी और
को प्रणाम करने से कुछ भी न होगा। मंदिरों में, मस्जिदों में कितने ही प्रणाम करो, लेकिन अगर प्रणाम उस एक की तरफ ही नहीं जा रहे हैं तो व्यर्थ है। कहीं भी प्रणाम करो, प्रणाम उसी को हो। वह याद बनी रहे।
इसे थोड़ा ख्याल रखना। जब गुरु को भी प्रणाम करो, तब भी ध्यान रखना कि गुरु के माध्यम से प्रणाम उसी को है--आदेसु तिसै आदेसु। मंदिर की मूर्ति के सामने झुको, तो भी याद रखना कि प्रणाम उसी को है--आदेसु तिसै आदेसु। उसी को प्रणाम है। तो फिर मूर्ति भी सहयोगी है। फिर गुरु भी सहयोगी है। अन्यथा मूर्ति भी खतरा है और गुरु भी खतरा है। अगर प्रणाम उसको ही नहीं है, तो जिसको भी तुम प्रणाम करोगे, वहीं बंधन पैदा हो जाएगा। वहीं रुकावट खड़ी हो जाएगी। और अगर उसको ही प्रणाम करना तुम जान जाओ, तो हर पत्थर से द्वार है। क्योंकि प्रणाम है उसको, कहां से तुम कर रहे हो इसका क्या मतलब है? कहीं भी तुम झुको; मस्जिद हो, गुरुद्वारा हो, मंदिर हो, चर्च हो; पर एक बात ख्याल रहे कि--आदेसु तिसै आदेसु। प्रणाम उसको ही है।
"उसको, जो आदि है, शुद्ध है, अनादि है, अनाहद है। युग-युग से एक ही वेश वाला है।"
"ज्ञान को भोग बनाओ, योगी! और दया को भंडारी। घट-घट में जो अनाहद नाद बजता है उसे शंख बनाओ। वही नाथ है जिसमें सब नथे-गुथे हैं। ऋद्धि-सिद्धि तो घटिया स्वाद हैं। संयोग और वियोग ये दोनों समस्त कार्य चलाते हैं। और भाग्य-लेख के मुताबिक अपना-अपना दाय प्राप्त होता है। यदि प्रणाम ही करना हो तो उसको ही प्रणाम करो। वह आदि है, शुद्ध है, अनादि है, अनाहद है, और युग-युग से एक ही वेश वाला है।"
"ज्ञान को भोग बनाओ, दया को भंडारी।"

ज्ञान और दया, प्रज्ञा और करुणा, दो पंख हैं। जिसने दोनों साध लिए, वह परमात्मा के आकाश में उड़ने लगा। भीतर ज्ञान, बाहर दया। क्योंकि खतरा है कि भीतर अगर अकेला ज्ञान हो और बाहर दया न हो, तो भी तुम पूर्ण न हो पाओगे। तो भी तुम अधूरे रह जाओगे। एक पंख से कोई कभी उड़ा है? अगर बाहर दया हो और भीतर ज्ञान न हो, तो भी तुम अधूरे रह जाओगे। एक पैर से कोई कभी चला है?
ज्ञान का अर्थ है, स्वयं को जानना; और दया का अर्थ है, दूसरों को पहचानना। तब पूरी घटना घट जाती है। क्योंकि ज्ञान स्वयं को जानता है, जानते ही पाता है कि मैं ही सब के भीतर हूं। जिस ज्ञान ने यह न पाया कि मैं ही सब के भीतर हूं, वह ज्ञान ज्ञान ही नहीं है।
तो जब ज्ञान का वास्तविक दीया जलेगा, तो दया का प्रकाश सब पर पड़ेगा ही। दीया जलेगा, तो दीया कोई अपने को ही थोड़ा प्रकाशित करेगा! दूसरों पर भी रोशनी पड़ेगी। वह जो दीए की रोशनी दूसरों पर पड़ रही है, उसी का नाम दया है। एक अपरंपार करुणा पैदा होगी, जब ज्ञान पैदा होगा। तब तुम लुटाओगे, बांटोगे। तब तुम सब तरह का सहारा दोगे दूसरे को। तब तुमसे जो भी बन सकेगा, दूसरे को भी ले जाने की प्रक्रिया करोगे, उस परमात्मा तक पहुंचाने की। सभी भटक रहे हैं। तब तुम अपने ज्ञान में ही विलीन न हो जाओगे। क्योंकि वह भी स्वार्थ होगा। वह भी होगा कि अभी तुम पुराने से बंधे हो। अभी अहंकार गया नहीं। मगर यह घटना घटती है, इसलिए नानक याद दिलाते हैं।
ऐसे लोग हैं, जो ज्ञान में डूब गए हैं। जैसे जैनों के संन्यासी हैं, मुनि हैं। उनका मतलब अपने से है। उन्हें कोई मतलब नहीं किसी से। क्या हो रहा है बाहर, क्या घट रहा है दूसरों को, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। वे अपने में बंद हैं। वे अपना ही साध रहे हैं, अपनी ही मुक्ति साध रहे हैं। अपना ही उनका घेरा है, बस! इससे बाहर इन्हें रत्ती भर फिक्र नहीं है। और उनकी दया भी अगर है, तो वह भी ज्ञान ही साधने के लिए। दया भी उनकी झूठी है।
अगर जैन मुनि पांव सम्हाल कर चलता है कि चींटी भी न मर जाए, तो तुम यह
मत सोचना कि चींटी पर दया के कारण वह ऐसा कर रहा है। महावीर ने दया के कारण किया था। जैन मुनि नहीं कर रहा है। वह तो इसलिए सम्हाल-सम्हाल कर चल रहा है कि कहीं पाप न हो जाए।
फर्क समझ लेना। उसको डर यह है कि चींटी मर गयी तो पाप होगा। पाप होगा
तो भटकना पड़ेगा। लेकिन नजर अपने पर है, चींटी पर नहीं। अगर चींटी के मरने से पाप न होता हो तो उसको रत्ती भर फिक्र नहीं। लेकिन पाप होता है, इसलिए वह पानी भी छान कर पी रहा है। पानी छान कर इसलिए नहीं पी रहा है कि पानी के कीटाणु मर जाएंगे तो उनको कष्ट होगा। नजर उसकी यह है कि किसी को कष्ट देने से पाप होता है। और पाप होने से आदमी भटकता है। तो ऊपर से वह ठीक वैसे ही कर रहा है जैसा महावीर करते थे; लेकिन भीतर उसकी नजर अलग है, उसका स्वार्थ भिन्न है। वह यही देख रहा है चौबीस घंटे कि वही करो जिससे अपनी मुक्ति हो। वह मत करो, जिससे कि नरक हो जाए।
तो इसमें दया भी उसकी झूठी है, वास्तविक नहीं। क्योंकि दया तो वास्तविक तभी होगी कि अगर तुम्हें पहुंचाने में मुझे नर्क भी जाना पड़े, तो भी तैयार हूं। दया तभी वास्तविक होगी। अभी यह तो अपना ही स्वार्थ का हिसाब है। वह तो गणित बिठा रहा है कि वही करो जिससे अपना आनंद मिले, मोक्ष मिले। ऐसा कोई काम भूल कर मत करना, जिससे मोक्ष खो जाए। तो यह तो ठीक व्यापारी की नजर है।
और इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं कि महावीर के पीछे जो लोग चले, वे सभी व्यापारी हो गए। महावीर खुद तो क्षत्रिय थे। लेकिन उनके पीछे की जमात बनिया हो गयी। थोड़ी हैरानी की बात है! क्या हुआ? जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। और जमात क्यों बनिया हो गयी? क्या कारण हुआ? कौन सी दुर्घटना घटी कि पूरी जमात कायर, डरपोक और दूकान पर सिमट गयी?
इस घटना में घटना छिपी है, कि महावीर की दया तो दया थी, लेकिन होशियार
और पीछे चलने वाले लोगों की दया गणित हो गयी, व्यवसाय हो गयी। उन्होंने व्यवसाय कर लिया। उन्होंने वे सब काम छोड़ दिए जिनसे पाप हो सकता था। खेती छोड़ी दी, क्योंकि उसमें पौधे मरेंगे। पौधे उखाड़ने पड़ेंगे। युद्ध के मैदान पर जाना छोड़ दिया, क्योंकि उसमें हिंसा होगी। तो फिर कुछ बचा नहीं उपाय। एक ही उपाय बचा कि वे व्यवसायी हो जाएं। वे उसमें सिमट गए।

यह बहुत सोचने जैसी बात है कि भारत में जितने ज्ञानी पुरुष हुए, उनमें
से नब्बे प्रतिशत क्षत्रिय हैं। नानक खुद भी क्षत्रिय हैं। नब्बे प्रतिशत! कृष्ण, राम, महावीर, बुद्ध सब क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय में कुछ गुण हैं, जिसके कारण ज्ञान तक पहुंचने में कुछ आसानी मालूम होती है। वह गुण है साहस का, हिम्मत का। वह खतरा मोल ले सकता है, और दांव पर लगा सकता है। इतने ब्राह्मण भी नहीं पहुंचे। इतने कोई जाति के लोग नहीं पहुंचे परम सत्य तक, जितने क्षत्रिय पहुंचे।
कारण इतना ही है कि क्षत्रिय दांव पर लगा सकता है। वह खतरा मोल ले सकता है। और क्षत्रिय को मौत भूलनी संभव नहीं है। क्योंकि मौत हर क्षण द्वार पर खड़ी है। और मौत की जिसे याद है, उसे परमात्मा की याद आनी शुरू हो जाती है। क्षत्रिय का धंधा तो मौत का धंधा है। वहां तो काम ही मौत से है। वह व्यवसाय ही मौत का है। वहां प्रतिपल, किसी भी क्षण मौत हो सकती है। और जिसको मौत की याद है, उसे परमात्मा का विस्मरण नहीं हो सकता। क्योंकि परमात्मा की याद करनी ही पड़ेगी। वह एंटीडोट है। जब मौत की याद गहरी हो तो क्या करोगे? किसको याद करोगे? किसको पुकारोगे? कौन बचाएगा? तब अमृत की स्मृति आनी स्वाभाविक हो जाती है।
"ज्ञान को भोग बनाओ, दया को भंडारी।"
ये ऊपर के भंडार चलाने से कुछ भी न होगा। लेकिन ऊपर के ही भंडार चल रहे हैं। नाथ-संप्रदाय भंडार चलाते थे, सिक्ख लंगर चलाते हैं। बाकी है सब मामला ऊपर का। भंडार को लंगर कहो, क्या फर्क पड़ेगा?
नानक कहते हैं, दया को लंगर बनाओ। तुम्हारे जीवन में दया हो प्रतिपल। तुम दूसरे का भी विचार करो। तुम दूसरे पर भी ध्यान दो। तुम जो भी कर रहे हो, उसमें यह भी ख्याल रखो कि दूसरे का भी हित हो, कल्याण हो, मंगल हो। तुम अपना ज्ञान खोजो, लेकिन दूसरे के ज्ञान खोजने में भी सहयोगी बनो। तुम मोक्ष की तरफ जाओ, लेकिन दूसरों को भी साथ ले चलो।
और ध्यान रखना, जितना ही तुमने दोनों साधे--बाहर दया, भीतर ज्ञान--उतने
ही शीघ्र तुम पहुंच जाओगे। क्योंकि एक पंख से कोई कभी नहीं पहुंचा। और ये दोनों पंख साधने जरूरी हैं।
दूसरी तरफ ईसाई हैं। एक तरफ जैन, दूसरी तरफ ईसाई हैं। वे सेवा में लगे हैं। अस्पताल, स्कूल खोलते चले जाते हैं सारी दुनिया में। उन जैसी सेवा कोई भी नहीं करता। लेकिन ज्ञान की उन्हें फिक्र ही नहीं है। और उन्हें भी फिक्र न होने का कारण है। क्योंकि उनको यह भ्रांति हो गयी है--जैसे जैनों को भ्रांति है कि अपने को सम्हाल लेना काफी है--उनको यह भ्रांति हो गई है कि सेवा कर देना काफी है। जिसने सेवा की, वह मोक्ष पा लेगा। उनको भी फिक्र नहीं है कि जिस कोढ़ी के वे पैर दबा रहे हैं, या जिस बीमार का इलाज कर रहे हैं, या जिस अनाथ बच्चे को पढ़ा रहे हैं, इसको पढ़ाने से कुछ लाभ होने वाला है? उनको भी इसकी फिक्र नहीं है। उनको फिक्र इसकी है कि जितना तुम दूसरों को लाभ दोगे, उतना तुम्हारा मोक्ष निश्चित है। आदमी का स्वार्थ बड़ा अदभुत है। ज्ञान में से स्वार्थ निकाल लेता है। दया में से स्वार्थ निकाल लेता है।
एक बड़ी पुरानी चीनी कथा है। एक गांव में मेला भरा हुआ था। और एक छोटा
सा कुआं था उस मेले में, जिसमें एक आदमी भूल से गिर गया। वह आदमी चिल्लाने लगा कि मुझे बचाओ। लेकिन मेले में बड़ा शोरगुल था, कौन सुने? लोग अपने काम-धंधे में लगे हुए थे। चीजें बेची जा रही थीं, खरीदी जा रही थीं। और सांझ होने के करीब थी। लोग जल्दी में थे। मेला बंद होने को जा रहा था। कौन सुने? लेकिन एक कंफ्यूशियस को मानने वाला संन्यासी कुएं के पास आ कर बैठा। उसे आवाज सुनायी पड़ी।
उसने कहा, भाई, चुप रह! मैं अभी जाता हूं और पूरी कोशिश करूंगा। क्योंकि यह बात कानून के विपरीत है कि बिना दीवाल के और कुआं बनाया जाए। उस पर कोई घाट नहीं था कुएं पर। इसलिए तू गिर गया है। लेकिन पक्का भरोसा रख कि हम क्रांति कर देंगे पूरे मुल्क में, और हर कुएं पर घाट बनवा देंगे।
क्योंकि कंफ्यूशियस नियम को मानने वाला है। समाज, व्यवस्था, नियम-- कंफ्यूशियस रिफार्मर है, रिवोल्यूशनरी है। सुधारक, क्रांतिकारी है। उसने कहा कि तू बिल्कुल फिक्र मत कर।

उस आदमी ने कहा, इससे क्या होगा कि कुओं पर घाट बन जाएंगे! मैं तो मर रहा हूं।
उस कंफ्यूशियस को मानने वाले ने कहा, सवाल तेरा नहीं है। सवाल सब का है। और एक-एक आदमी का सवाल नहीं है, समाज का सवाल है। व्यक्ति को बचाने का कहां उपाय है? समाज को बचाना होगा, तो ही व्यक्ति बचेंगे।
वह गया कि क्रांति फैला दे। और खड़ा हो कर मेले में चिल्लाने लगा कि हर कुएं पर घाट होना चाहिए। उसके पीछे एक बौद्ध-भिक्षु आ कर उस घाट पर बैठा। वह आदमी अभी भी चिल्ला रहा था। बौद्ध-भिक्षु नीचे झुक कर देखा और उसने कहा, भाई, तुमने पिछले जन्मों में कुछ कर्म किए होंगे, जिसका फल भोग रहे हो। और अपना-अपना फल सभी को भोगना पड़ता है। इसमें कुछ किया नहीं जा सकता।
उस आदमी ने कहा, यह तुम पीछे समझा देना। मुझे कुएं के बाहर निकाल लो।
पर उसने कहा, मैं तो कर्मों का त्याग कर चुका हूं। क्योंकि कर्मों से बंधन होता है। बंधन से आदमी संसार में भटकता है। और मैं सब कर्मों का त्याग कर दिया हूं। मैं तो आवागमन से छूटना चाहता हूं। अब तुझे बचा कर मैं और झंझट नहीं लूंगा। और फिर क्या पक्का है कि तू बच कर न मालूम क्या करे! तू किसी की हत्या कर दे तो उसमें मैं भागीदार हो गया। न तुझे बचाता, न तू हत्या करता। किसी के घर में आग लगा दे। तो मैं तेरे पीछे कहां फंसने जाऊं? और तू शांत रह, क्योंकि इस कुएं पर मैं ध्यान करने रुका हूं। और तू व्यर्थ उपद्रव न मचा। तू अपना भोग, मुझे अपना भोगने दे। अपना-अपना! कोई किसी के मार्ग पर न आता है, न आ सकता है।
ज्यादा शोरगुल सुन कर भिक्षु वहां से चला गया। क्योंकि वह ध्यान नहीं करने देगा। और ध्यान बड़ी चीज है। अब ऐसे एक-एक कुएं में बचाने जाने लगोगे तो कितने कुएं हैं! कितने लोग हैं, कितने मेले हैं! तुम क्या कर पाओगे? अपना ध्यान ही सम्हाल लिया कि सब सम्हल गया।
उसके पीछे एक ईसाई मिशनरी आ कर उस कुएं पर रुका। उसने आवाज सुनी और उसने जल्दी अपने झोले से एक रस्सी निकाली, कुएं में डाली। कुएं में उतर कर गया। और उस आदमी को बाहर निकाल कर लाया। उस आदमी ने उसके पैर पकड़ लिए और कहा कि भाई, तू ही एक सच्चा धार्मिक है। बाकी कंफ्यूशियस को मानने वाला गया, बुद्ध को मानने वाला गया, किसी ने हमारी सुनी भी नहीं।
उस ईसाई ने कहा कि भाई, तुमसे एक ही प्रार्थना है कि तू सदा गिरते रहना ताकि हम बचाते रहें। हम हमेशा रस्सी अपने झोली में रखते हैं। क्योंकि न तुम गिरोगे, न हम बचाएंगे, तो मोक्ष कैसे जाएंगे?
किसी को किसी से मतलब नहीं है। आदमी का स्वार्थ बड़ा गहन है। बचाने वाला भी अपने लिए बचा रहा है। नहीं बचाने वाला भी अपने लिए नहीं बचा रहा है। ध्यान करने वाला अपनी फिक्र कर रहा है। सेवा करने वाला भी अपनी फिक्र कर रहा है।
और दया का अर्थ है, दूसरे की फिक्र। केयरिंग फार अदर्स। दूसरा भी जीवंत है। उसका भी मूल्य है। उसका मूल्य उतना ही है, जितना तुम्हारा मूल्य है। रत्ती भर कम नहीं, रत्ती भर ज्यादा नहीं। और दूसरे से परमात्मा प्रकट हुआ है। तो तुम अपने भीतर के परमात्मा को देखना, वह ज्ञान है। और तुम दूसरे के परमात्मा को मत भूलना, वह करुणा, वह दया है।
नानक कहते हैं, "ज्ञान को भोग बना, दया को भंडारी। घट-घट में जो अनाहद नाद बजता है, उसे ही शंख बनाओ, योगी।"
तो शंखों को फूंकने से क्या होगा? वह जो अंतर नाद बज रहा है सतत, जो अनाहद, बिना किसी कारण के, जो सदा भीतर बज ही रहा है, उसी को बजाओ। और शंखों को बजाने से क्या होगा?
"वही नाथ है, जिसमें सब नथे-गुथे हैं। उसकी ही याद करो। ऋद्धि-सिद्धि
तो घटिया स्वाद हैं।"
तुमने कुछ चमत्कार कर लिए, कि हाथ से राख पैदा कर दी, कि सत्य साईं बाबा हो गए, कि ताबीज निकाल कर किसी को दे दिया, इससे क्या होगा? "ऋद्धि-सिद्धि तो घटिया स्वाद हैं।"
क्यों? क्योंकि ऋद्धि-सिद्धि भी अहंकार को ही भरते हैं। उनसे भी तुम्हारी अकड़ मजबूत होती है कि मैं कुछ विशेष हूं, मैं कुछ खास हूं। तो धर्म की सिद्धि तो एक ही है कि मैं ना-कुछ हूं। और जिसने इस ना-कुछ होने को

जान लिया, वह सब कुछ हो गया। जो इधर मिटा, वह परमात्मा हो गया। उससे कम पर राजी मत होना। उससे कम पर राजी हुए तो घटिया स्वाद पर राजी हो गए।
क्या होगा, कितने ही ताबीज हाथ से पैदा कर दो? क्या होगा तुम्हारी मदारीगिरी से? न तुम्हारा कोई हित है, न किसी दूसरे का कोई हित है। हां, इस बाजार में थोड़ी-बहुत प्रतिष्ठा मिल जाएगी। लेकिन इस बाजार की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा ही कहां है? और उस परमात्मा के सामने तुम्हारे हाथ से निकली हुई ताबीजों का क्या मूल्य होगा? तुम्हारे हाथ से पैदा हुई राख का क्या मूल्य है? जिस परमात्मा से सारी सृष्टि पैदा हो रही है, वहां तुम अपनी राख पैदा करके सोचते हो परमात्मा में तुम्हारी प्रतिष्ठा हो जाएगी? तुम्हारी तरकीबें मनुष्य को भला धोखा देने में समर्थ हो जाएं और तुम्हारे अहंकार को थोड़ी तृप्ति मिल जाए, लेकिन इससे कुछ आत्मज्ञान नहीं होगा।
इसलिए नानक कहते हैं, "ऋद्धि-सिद्धि तो घटिया स्वाद हैं। संयोग और वियोग, ये दोनों समस्त कार्य चलाते हैं।"
तो एक ही सिद्धि है कि संयोग और वियोग से मुक्त हो जाना। जो चीजें जुड़ती हैं, वे अलग होंगी। जो चीजें बनती हैं, वे मिटेंगी। जिसका जन्म हुआ है, वह मरेगा। जो पाया है, वह खो जाएगा। जो आज संपत्ति है, वह कल विपत्ति हो जाएगी। जो आज सुख है, कल दुख हो जाएगा। हर चीज अपने विपरीत में चली जाती है। संयोग और वियोग से यह चाक चलता है। जिससे आज मिलन हुआ है, कल वह छूट जाएगा। जो इस सत्य को समझ लेता है कि संसार का चाक संयोग और वियोग से चलता है, विपरीत से चलता है, अपोजिट से। और दोनों के पार अपने को संभाल लेता है-- न तो संयोग में सुखी होता है और न वियोग में दुखी होता है--यही एक सिद्धि है। इसको ही साध लो।
"और भाग्य के लेख के मुताबिक अपना-अपना दाय प्राप्त होता है।"
इसलिए जो मिले, जो घटे, उसमें शांत रहो। वह तुम्हारे भाग्य का हिस्सा है। ऐसा होना था, इसलिए हुआ है। जो होना था, वही हुआ है, इसलिए क्या असंतोष? इसलिए कैसा रोना-धोना? इसलिए किससे शिकायत? कैसी शिकायत? इसलिए जो भाग्य में हो, उसे चुपचाप स्वीकार कर लो। और संयोग और वियोग से अपने को मुक्त करते चले जाओ। यही सिद्धि है। बाकी सब घटिया स्वाद हैं।
"यदि प्रणाम ही करना हो तो उसको ही प्रणाम करो। वह आदि है, शुद्ध है, अनादि है, अनाहद है, और युग-युग से एक ही वेश वाला है।"
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
पंद्रहवां प्रवचन

जुग जुग एको वेसु

पउड़ीः 30
एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीवाणु।।
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु।।
आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहतु जुग जुग एको वेसु।।

पउड़ीः 31
आसणु लोइ लोइ भंडार। जो किछु पाइआ सु एका वार।।
करि करि वेखै सिरजनहार। नानक सचे की साची कार।।
आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनील अनादि अनाहतु जुग जुग एको वेसु।।

परमात्मा की खोज में, उसी मार्ग से वापस जाना होगा, जिस मार्ग से परमात्मा संसार तक आया है। परमात्मा जिस भांति सृष्टि बन गया है, ठीक उससे विपरीत यात्रा करनी होगी। मार्ग तो वही होगा, दिशा बिल्कुल बदल जाएगी।
आप अपने घर से यहां तक आए हैं। लौटते समय भी उसी रास्ते से लौटेंगे। रास्ता वही होगा, आप वही होंगे, पैर वही होंगे, चलने की शक्ति वही होगी, सिर्फ दिशा भिन्न होगी। यहां आते वक्त घर की तरफ पीठ थी, जाते समय घर की तरफ मुंह होगा।
सृष्टि तक परमात्मा जिस भांति उतरा है, उसी भांति तुम्हें वापस लौटना होगा। आते समय परमात्मा की तरफ पीठ थी, जाते समय मुंह होगा। इसलिए विमुखता संसार में उतरने का मार्ग है, और परमात्मा की तरफ उन्मुखता उस तक पहुंचने का मार्ग है। सीढ़ी वही, राह वही, सभी कुछ वही है, सिर्फ दिशा बदल जाती है। कैसे परमात्मा सृष्टि हुआ है, इस संबंध में नानक का यह सूत्र है। यह सूत्र, जिन्होंने भी उसकी खोज की है, ऐसा ही पाया है। न केवल धार्मिकों ने, बल्कि वैज्ञानिकों ने भी। इस संबंध में धर्म और विज्ञान की सहमति है। होगी भी। क्योंकि धर्म तो स्रष्टा को खोजता है, विज्ञान सृष्टि को खोजता है। एक छोर से धर्म खोजता है, दूसरी छोर से विज्ञान खोजता है। विज्ञान वहां से खोजता है जहां तुम हो, और धर्म वहां से खोजता है जहां से तुम आए हो और जहां तुम जाओगे। तुम्हारा प्रारंभ और तुम्हारा अंत धर्म खोजता है, तुम्हारा मध्य विज्ञान खोजता है।
वैज्ञानिक उपलब्धियों में सबसे कीमती उपलब्धि है कि जगत एक ही तत्व
से बना है। उस तत्व को वैज्ञानिक कहते हैं, विद्युत, इलेक्ट्रिसिटी। वही ऊर्जा सारे जगत की आधारभूत शिला है। विद्युत के कणों से ही सब कुछ निर्मित हुआ है। एक से सब बना है। इस संबंध में धर्म से विज्ञान राजी है। धर्म उस एक को कहता है, परमात्मा। विज्ञान उसे कहता है, ऊर्जा, एनर्जी।
शब्द का ही भेद है। लेकिन शब्द के भेद से तुम्हारे लिए बहुत फर्क पड़ जाएगा। क्योंकि विद्युत की तो तुम कैसे पूजा करोगे? और विद्युत से तो तुम कैसे प्रेम लगाओगे? और विद्युत को तो तुम कैसे पुकारोगे? विद्युत की तो कैसे प्रार्थना होगी? कैसे अर्चना होगी? विद्युत का तो तुम कैसे मंदिर बनाओगे?
विद्युत तो मस्तिष्क में रह जाएगी। हृदय से उसका कोई नाता न जुड़ेगा। लेकिन परमात्मा उसी ऊर्जा का नाम है। नाम से ही सब फर्क पड़ जाता है। परमात्मा कहते ही बात मस्तिष्क की नहीं रह जाती, हृदय की हो जाती है। और जहां हृदय आया, वहां जुड़ने की संभावना है। मस्तिष्क तोड़ता है, हृदय जोड़ता है। मस्तिष्क से हम अलग होते हैं, क्योंकि मस्तिष्क भेद खड़े करता है। और

हृदय से हम एक होते हैं, क्योंकि हृदय के पास अभेद है। वहां सीमाएं मिटती हैं, निर्मित नहीं होतीं। वहां परिभाषाएं बिखरती हैं।
जैसे ही धर्म उस एक को परमात्मा कहता है, वैसे ही हमने ऊर्जा को व्यक्तित्व दे दिया। हमने ऊर्जा को व्यक्ति बना दिया। और अब नाता-रिश्ता हो सकता है। और नाते-रिश्ते पर सब कुछ निर्भर करेगा। क्योंकि जिससे तुम जुड़ ही नहीं सकोगे, उससे तुम्हारे जीवन में रूपांतरण न होगा। विज्ञान उपयोग कर सकेगा ऊर्जा का, पूजा न कर सकेगा। और धर्म उसी ऊर्जा की पूजा कर सकता है। तो विज्ञान गांव-गांव में विद्युत पहुंचा देगा, एटामिक एनर्जी निर्माण कर लेगा, विध्वंस के बड़े उपाय खोज लेगा, लेकिन वैज्ञानिक अछूता रह जाएगा। उसके जीवन में कोई फूल न खिलेंगे।
धार्मिक न तो गांव-गांव में रोशनी कर पाएगा, न अणु-बम बना सकेगा, लेकिन हृदय-हृदय में रोशनी कर सकेगा। और वह रोशनी बड़ी है। और हृदय-हृदय में एक गीत, एक नृत्य भर सकेगा, और वह प्रकाश बड़ा है। पर एक संबंध में सहमति है कि एक से ही सब हुआ।
दूसरी बात में भी सहमति है कि जब एक विघटित होता है तो तीन में विघटित होता है। विज्ञान कहता है, इलेक्ट्रिसिटी तीन में टूटती है--इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और प्रोट्रान। फिर इन तीन कणों से सारा जगत निर्मित होता है। धर्म भी कहता है कि वह एक, त्रिमूर्ति हो जाता है। क्रिश्चियन कहते हैं, वह एक, ट्रिनिटी हो जाता है।
हिंदुओं ने त्रिमूर्ति बनायी। उसके चेहरे तीन हैं, लेकिन भीतर एक व्यक्ति है। चेहरे तीन हैं। अगर चेहरों से हम प्रवेश करें तो हम एक में पहुंच जाएंगे--ब्रह्मा, विष्णु, महेश। हिंदुओं ने तीन नाम दिए हैं। जब वह एक विघटित होता है, सृष्टि तक आता है, तो तीन हो जाता है।
और बड़ी हैरानी की बात तो यह है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश को हिंदुओं ने
जो अर्थ दिया है, वही अर्थ इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और प्रोट्रान को विज्ञान ने दिया है। वही अर्थ! क्योंकि सृष्टि की पूरी प्रक्रिया के लिए जन्म चाहिए, जन्म देने वाला चाहिए; फिर जिसका जन्म होगा उसकी मृत्यु होगी, तो मृत्यु चाहिए, मारने वाला चाहिए; और जन्म और मृत्यु के बीच में समय बीतेगा, तो कोई संभालने वाला चाहिए। तो ब्रह्मा जन्म का सूत्र, विष्णु संभालने का सूत्र, और शिव विनाश का सूत्र। और ये ही तीन गुण इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और प्रोट्रान के हैं। उसमें एक संभालता है; एक आधारभूत है, जिससे जन्म होता है; और एक विघटन में ले जाता है, जिससे विनाश होता है।
एक तीन में हुआ और फिर तीन अनंत में हो गया है। अब परमात्मा तक जाना हो
तो अनंत को पहले तीन में लाना पड़े, और तीन को फिर एक से जोड़ना पड़े, और एक हो जाना पड़े। यह उलटी यात्रा होगी। गंगा को गंगोत्री की तरफ ले जाना पड़ेगा, मूल स्रोत की तरफ। तो अनेक से दृष्टि तीन पर रोकनी पड़ेगी। तीन बीच की मंजिल होगी। और तीन के बाद एक रह जाएगा।
साधारण सांसारिक आदमी अनेक में भटका हुआ है। कितनी वासनाएं हैं, कितनी आकांक्षाएं हैं, कोई हिसाब? हर वासना में कितनी-कितनी और वासनाएं लग जाती हैं। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। कोई अंत नहीं। कितनी चाहें हैं। पूरी होने का कोई उपाय नहीं दिखता। और कितना साधन, कितनी सामग्री, सब भी तुम पा लो, तो भी कुछ हल न होगा। क्योंकि पाने वाला अतृप्त ही रहेगा। और जितना तुम पाते जाओगे उतना तुम अनेक में भटकते जाओगे। उतना एक से दूरी होने लगेगी। जितने तुम एक से दूर होते हो उतने ही दुखी हो जाओगे। जितना फासला बढ़ेगा उतने दुखी हो जाओगे। जैसे कोई प्रकाश के स्रोत से जितना दूर होता जाए, उतना अंधेरे में पड़ता जाएगा; बहुत दूर हो जाए, तो गहन अंधकार में हो जाएगा।
अनेक में जाने का अर्थ है, एक से बहुत फासला हो गया। और हम सब अनेक में हैं। इसी को हम सांसारिक कहते हैं, जो अनेक में है। जो अनेक से तीन में आ गया, उसको हम साधक कहते हैं। वह दोनों के मध्य में है। और जो तीन से एक में आ गया, उसको हम सिद्ध कहते हैं। वह वापस वहां पहुंच गया है, जहां परमात्मा मूल में था।
अब इसे हम थोड़ा सा समझें। अनेक से तीन को तुम कैसे पैदा करोगे? अनेक से तीन को पैदा करने की विधि का नाम ही साक्षी-भाव है, विटनेसिंग है। अगर तुम

अपनी वासनाओं को देखो, उनके साक्षी बन जाओ, भोक्ता नहीं। भोक्ता अनेक होने की विधि है। भोक्ता और कर्ता, मैं कर रहा हूं, और मैं भोग रहा हूं; तो फिर तुम अनेक में बिखर जाओगे। इस अनेक को तीन में लाने की विधि है, साक्षी-भाव। तुम जो भी कर रहे हो, उसे करने वाले की तरह नहीं, दर्शक की तरह, देखने वाले की तरह। तुम्हारे जीवन में जो भी सुख-दुख घट रहे हैं, उनको भी तुम द्रष्टा की तरह। तब तुम अचानक पाओगे कि तीन आ गए। एक है द्रष्टा, और एक वह जो अनेक का जगत है, वह पूरा का पूरा दृश्य हो गया। अब उसमें अनेकता न रही। वह सभी दृश्य हो गया। और दोनों के बीच में जो संबंध है, वह दर्शन। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य--तुम तीन पर वापस आ गए।
जैसे ही साक्षी-भाव सधता है, तुम साधक हो जाते हो। वही संन्यासी की दशा है। अनेक से तीन पर आ जाना, संन्यास। तुम जो भी करो, उसको द्रष्टा-भाव से--रास्ते पर चलो, भोजन करो, कपड़े पहनो, पैर टूट जाएं, दर्द हो, बीमारी आए, सुख हो, लाटरी मिल जाए--कुछ भी हो, तुम देखते रहना। और एक ही बात संभालने की है कि तुम अपने साक्षी-भाव को मत खोना।
और उसको खोने के दो ढंग हैं। अगर तुम भोक्ता बन गए, तो खो गया। अगर तुम कर्ता बन गए, तो खो गया। अगर तुमने कहा, यह मैंने किया, तो उस क्षण में तुम साक्षी न रह सकोगे। नशा पकड़ गया। अकड़ आ गयी। और जैसे ही नशा पकड़ता है, तुम वही न रहे, जो गैर-नशे के थे।
मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा कि रोज सुबह देखता हूं कि तुम्हारा नौकर थाली में सजा कर दो गिलास शराब के ले जाता है। कमरे में तो तुम अकेले ही हो। लगता ऐसे है, जैसे कोई और भी है। नसरुद्दीन ने कहा कि जब मैं एक गिलास पी लेता हूं तो दूसरा ही आदमी हो जाता हूं। और उस दूसरे की भी खातिर करना मेरा फर्ज है।
जैसे ही तुम नशे में गए कि तुम दूसरे आदमी हो गए। वही तो तुम नहीं हो। बस, नशे में होने का फासला ही तो संन्यासी और संसारी का फासला है।
और नशा क्या है बड़ा से बड़ा? बड़े से बड़ा नशा अहंकार का है। और सब नशे टूट जाते हैं, और सब नशे ऊपर-ऊपर हैं। घड़ी रहते हैं, चले जाते हैं। अहंकार का नशा बड़े से बड़ा है, क्योंकि जन्मों-जन्मों तक चलता है। छोड़-छोड़ कर भी तुम पाते हो कि वह खड़ा है। भाग-भाग कर भी तुम पाते हो कि छाया की तरह साथ चला आया है। हजार बचने के उपाय करते हो, फिर भी तुम पाते हो कि वह तुम्हारे साथ ही बच गया है। विनम्रता की कितनी साधना करते हो, फिर भी पाते हो, वह भीतर मौजूद है।
अहंकार सूक्ष्मतम नशा है। साक्षी जागना है और अहंकार सो जाना है। जैसे ही तुम कर्ता बने, तुम सो गए, नींद आ गयी। जैसे ही तुम भोक्ता बने, कि मैं भोग रहा हूं, तुम सो गए, नींद आ गयी। जैसे ही तुम साक्षी बने, जागरण उठा, होश आया।
होश आते ही अनेक खो जाते हैं, तीन रह जाते हैं। जिसका होश है वह, जिसको होश है वह, और दोनों के बीच जो नाता है। इसको हिंदुओं ने त्रिपुटी कहा है। और यह त्रिपुटी जिसकी लग गयी, वह संन्यासी। वह साधना में डूबने लगा। जैसे-जैसे ये तीन में तुम रमोगे और अनेक का भटकाव कम होने लगेगा, धीरे- धीरे एक ऐसी स्थिति सध जाएगी कि अनेक पैदा ही न होगा, तीन ही रहेंगे। जब अनेक के पैदा होने की सभी संभावना नष्ट हो जाएगी, जब तुम सदा ही साक्षी बने रहोगे, तब अचानक एक दिन तुम पाओगे, तीन भी खो गए। क्योंकि साक्षी जिसको देख रहा है वह, और जो देख रहा है वह, और दोनों के बीच का जो नाता है, जब तुम थिर हो जाओगे, तब तुम अचानक पाओगे कि वे तीनों तो एक हैं।
इसलिए कृष्णमूर्ति बार-बार कहते हैं, दि आब्जर्वर इज दि आब्जर्व्ड।
वह जो देख रहा है, वह वही है, जिसे देख रहा है।
लेकिन यह तो आखिरी क्षण में जब तीनों की स्थिति भी एक हो जाती है। सधते, सधते, सधते अनेक का उपाय बंद हो जाता है, संसार विलीन हो जाता है, तीन ही रह जाते हैं। तब धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम पाते हो कि ये तीनों तो एक हैं। अचानक एक दिन जाग कर तुम्हें दिखायी पड़ता है कि ये तीन तो तीन नहीं हैं। जो देख रहा है, वह वही है, जिसको देख रहा है। और जब दृश्य और द्रष्टा एक हो गए तो बीच का संबंध खो गया। क्योंकि संबंध तो तभी तक था जब तक दो थे। जहां दो हैं, वहां तीन होंगे, क्योंकि दो के बीच संबंध होगा। और जहां एक

बचा, वहां कैसे संबंध होगा? कौन किससे संबंधित होगा? इसलिए बीच का संबंध खो जाता है।
यह है यात्रा वापस लौटने की। जहां तुम एक हो गए, वहां तुम परमात्मा।
जहां तुम अनेक हो गए, वहां तुम संसार। और वह त्रिमूर्ति बीच में खड़ी है।
यही नानक इन सूत्रों में कह रहे हैं। इन्हें समझने की कोशिश करें।
एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीवाणु।।
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।
"एक माया ने युक्तिपूर्वक तीन चेलों को जन्म दिया। उसमें एक संसारी ब्रह्मा हैं, एक भंडारी विष्णु हैं, और एक दीवान प्रलयंकर महेश हैं। लेकिन परमात्मा अपनी इच्छा के अनुसार, फरमान के मुताबिक उन्हें भी संचालित करता है।"
एक से तीन, तीन से अनेक। लेकिन कितने ही दूर तुम हो जाओ, उसके फरमान के बाहर नहीं हो पाते। कितने ही बिखर जाओ, कितने ही टूट जाओ अनेक में, वह फिर भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। क्योंकि उसके खोते तो तुम बचोगे ही न। तुम भटक सकते हो, तुम दूर जा सकते हो, लेकिन इतने दूर नहीं जा सकते जहां कि लौटने का उपाय न रह जाए। क्योंकि ऐसी कोई जगह ही नहीं, जहां तुम जा सको, जहां से लौटना संभव न हो।
इसलिए कोई भी व्यक्ति असाध्य नहीं है। गहन से गहन पाप में पड़ा हुआ, गहन से गहन अंधकार में पड़ा हुआ भी, असाध्य नहीं है। आध्यात्मिक अर्थों में असाध्य रोग होता ही नहीं। सभी रोग साध्य हैं। आध्यात्मिक अर्थों में तुम इतने दूर जा ही नहीं सकते जहां से लौटना असंभव हो जाए।
क्योंकि जहां भी तुम जाओगे, वह मौजूद है। जितने दूर भी जाओगे, वही तुम्हें ले जाएगा। उसके सहारे ही तुम दूर भी जाओगे। पाप भी करोगे, तो उसका ही सहारा चाहिए। क्योंकि पापी में भी वही सांस ले रहा है। पापी के हृदय में भी वही धड़क रहा है। दूर हम जा सकते हैं, विस्मरण हम कर सकते हैं, लेकिन परमात्मा को खोने का कोई उपाय नहीं।
तो तुम जब पूछते हो कि परमात्मा को कैसे खोजें? तुम्हारा प्रश्न ठीक नहीं है। क्योंकि तुमने उसे खोया नहीं। तुम चाहो तो भी उसे खो नहीं सकते। क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है। वह तुम ही हो, तुम उसे खोओगे कैसे? वह तुमसे भिन्न होता, तो खो देते, कहीं भूल आते, कहीं रख आते। तुम भूल कर भी उसे कहीं रख कर नहीं आ सकते हो, क्योंकि वह तुम ही हो। तुम उसे भूल नहीं सकते। तुम उसे खो नहीं सकते। फिर क्या हो जाता है? तुम सिर्फ विस्मरण कर सकते हो। अपने को भी भूलने का उपाय है। अपने को भी आदमी भूल सकता है। स्वभाव को भूल सकता है, फिर भी स्वभाव भीतर मौजूद रहेगा।
मेरे एक मित्र हैं, वकील हैं। भुलक्कड़, बहुत भुलक्कड़ स्वभाव के हैं। कुछ भी भूल जाते हैं। अदालत में किस पक्ष की तरफ से बोल रहे हैं, वह भी भूल जाते हैं। किसने उनको वकील किया है, यह भी भूल जाते हैं। पर बड़े वकील हैं। तो एक बार दूसरे गांव किसी अदालत, किसी मामले के लिए गए। वहां जा कर वे मुवक्किल का नाम भूल गए। तो स्टेशन से उन्होंने तार किया अपने मुंशी को कि नाम क्या है? तो मुंशी ने तार किया, उन्हीं का नाम लिख भेजा-- लक्ष्मीनारायण। मुंशी समझा कि शायद अब अपना ही नाम भूल गए!
अपने को भी भूलने की संभावना है। तुम सभी उसके सबूत हो। सारा संसार इसका प्रमाण है कि अपने को भूलने की संभावना है। और भूलने का उपाय क्या है? जो भूलने का उपाय है वही याददाश्त का उपाय होगा। जिस ढंग से भूले हो, उसी ढंग से याद आएगी।
भूलने का उपाय क्या है? भूलने का उपाय है, तुम्हारा ध्यान, वस्तुओं पर बहुत ज्यादा अटक जाए, तो तुम अपने को भूल जाओगे। क्योंकि ध्यान से ही स्मरण आता है, ध्यान से ही विस्मरण होता है। जिस तरफ तुम ध्यान देते हो, उसकी याद आ जाती है। जिस तरफ से ध्यान हट जाता है, उसकी याद खो जाती है। जब तुम किसी वस्तु के पीछे लग जाते हो, तब तुम्हारा ध्यान वस्तु की तरफ जाता है, और ध्यान के पीछे अंधेरा हो जाता है--दीया तले अंधेरा। तुम देखने लगते हो संसार को और अपने को भूल जाते हो। देखने में इतने लीन हो जाते हो, इसलिए अपने को भूल जाते हो। जागने का एक ही उपाय है कि देखने की लीनता को तोड़ो।

देखते वक्त भी याद रखो कि मैं देख रहा हूं। देखते वक्त भी देखने वाले को मत भूलो। दृश्य कितना ही सुंदर हो, तुम झकझोर कर अपने को याद रखो। दृश्य कितना ही मनमोहक हो, दृश्य कितना ही पकड़ लेने को हो, तो भी तुम झकझोर कर अपने को याद रखो।
लेकिन असली में तो तुम भूलोगे ही। तुम तो एक फिल्म भी देखते हो, वहां
भी अपने को भूल जाते हो। तुम भूल ही जाते हो कि यह पर्दा है। तुम भूल ही जाते हो कि धूप-छांव का खेल है। वहां भी लोग रोते हैं, आंसू बहते हैं। वहां भी लोग हंसते हैं। वहां भी लोग उदास हो जाते हैं। उदास चित्र हो, कोई ट्रेजेडी हो, तो तुम हाल के बाहर निकलते लोगों को देखो। जैसे कोई मर गया है, बड़ा मातम है। फिल्म अगर बहुत सनसनीखेज हो, तो तुम देखो हाल में बैठे लोगों को; लोग उठ-उठ कर सजग हो जाते हैं, रीढ़ सीधी कर लेते हैं। फिर विश्राम करने लगते हैं। भूल ही जाते हैं कि सामने सिर्फ खाली पर्दा है, और धूप-छांव का खेल है। और ऐसा नहीं कि छोटे-छोटे लोग भूल जाते हैं कि नासमझ भूल जाते हैं, बड़े समझदार भी भूल जाते हैं।
ईश्वरचंद्र के जीवन में एक उल्लेख है। बड़े विद्वान थे, विद्यासागर की उन्हें उपाधि थी, वे एक नाटक देखने गए थे। और उस नाटक में एक आदमी है, जो व्यभिचारी है, पापी है, चोर है, गुंडा है, लफंगा है। वह हर तरह से सता रहा है लोगों को। और अंततः उसने एक स्त्री को, रात के अंधकार में, एक जंगल में पकड़ लिया है। ईश्वरचंद्र सामने ही बैठे थे। ख्यातिनाम विद्वान थे, समादृत अतिथि की तरह वहां आए थे। उनको इतना गुस्सा चढ़ गया कि वे यह भूल ही गए कि यह नाटक है। छलांग लगा कर मंच पर चढ़ गए, जूता निकाल कर उस आदमी की पिटाई कर दी। वह आदमी विद्यासागर से ज्यादा समझदार साबित हुआ। उसने जूते को ले लिया और कहा कि यह जूता न लौटाऊंगा। क्योंकि यह मेरा सब से बड़ा पुरस्कार है। मेरे अभिनय से कोई इतना अभिभूत कभी भी नहीं हुआ था। यह जूता मैं आपको न दूंगा। जूता उसने लौटाया नहीं। विद्यासागर बहुत पछताए कि कैसी यह भूल हो गयी।
लेकिन अगर ध्यान बहुत लग जाए, तो रोज यह भूल हो रही है। देखते-देखते द्रष्टा भूल ही जाता है। दृश्य सब कुछ हो जाता है। और जब दृश्य सब हो जाता है, तब तुम मृगमरीचिका में चले। अब तुम भटके। और यह आदत अगर मजबूत हो जाए, तो जो भी तुम देखोगे, वही सच हो जाएगा।
इसलिए तो रात में सपना भी सच मालूम पड़ता है। क्योंकि यह आदत बहुत मजबूत हो गयी है। जो भी दिखायी पड़ता है, वही सच है। तो रात तुम सपना देखते हो, रोज तुम देखते हो और सुबह उठ कर तुम जानते हो कि झूठ था, फिर तुम देखोगे और फिर भूल जाओगे। और जब रात सपना देखते हो तो बिल्कुल सच हो जाता है। अगर सपने में कोई तुम्हें मार ही डाल रहा है, तो तुम चीखते हो। सपना भी टूट जाता है, तब भी थोड़ी देर तक छाती धड़कती रहती है। सपने में कोई मर गया है तो तुम रोते हो। सुबह उठ कर देखते हो कि आंसू बहे होंगे, क्योंकि तकिया गीला है। और तुमने कितनी बार सपना देखा! और हर बार सुबह तुमने पाया है कि सपना झूठा है। सपना सपना है। लेकिन दस-बारह घंटे बाद फिर भूल हो जाती है।
क्या कारण होगा कि सपना सच मालूम होता है? इतनी बार देखने के बाद भी सपना सच मालूम होता है। क्या कारण है? क्योंकि तुम जो भी देखते हो, उसको तुमने सच मानने की आदत बना ली है। जब तक यह आदत न टूटे तब तक बड़ी कठिनाई होगी।
तंत्र में एक बहुत पुरानी प्रक्रिया है। और वह प्रक्रिया यह है कि तुम जब तक सपने में यह न जान लो कि यह झूठा है, तब तक तुम संसार को झूठा न जान सकोगे।
यह उलटा हुआ। अभी तुमने संसार को सच माना है, इसलिए सपना तक सच मालूम होता है। तंत्र कहता है, सपने में जब तक तुम न जान लो कि सपना झूठा है, तब तक तुम संसार को माया न समझ सकोगे। और बड़ी सूक्ष्म विधियां तंत्र ने विकसित की हैं--सपने में कैसे जानना?
तुम थोड़े प्रयोग करना। कुछ भी एक बात तय कर लो। रात सोते समय उसको तय किए जाओ। यह तय कर लो कि जब भी मुझे सपना आएगा, तभी मैं अपना बायां हाथ जोर से ऊपर उठा दूंगा। या अपनी हथेली को अपनी आंख के सामने ले आऊंगा--सपने में। इसको रोज याद करते हुए सोओ। इसकी गूंज तुम्हारे भीतर बनी रहे। कोई तीन

महीने लगेंगे। अगर तुम इसको रोज दोहराते रहे, तो तीन महीने के भीतर, या तीन महीने के करीब, एक दिन अचानक तुम सपने में पाओगे, वह याददाश्त इतनी गहरी हो गयी है, अचेतन में उतर गयी कि जैसे ही सपना शुरू होता है, तुम्हारी हथेली सामने आ जाती है। और जैसे ही तुम्हारी हथेली सामने आयी, तुम्हें समझ में आ जाएगा, यह सपना है। क्योंकि वे दोनों संयुक्त हैं। सपने में हथेली सामने आ जाए।
तंत्र में एक प्रक्रिया है कि सपने में तुम जो भी देखो--अगर तुम एक रास्ते से गुजर रहे हो, बाजार भरा है, दूकानें लगी हैं--तो तुम किसी भी एक चीज को ध्यान से देखो, दूकान को ध्यान से देखो। और तुम हैरान होगे कि जैसे ही तुम ध्यान देते हो, दूकान खो जाती है। क्योंकि है तो है नहीं; सपना है। फिर तुम और चीजें ध्यान से देखो। रास्ते से लोग गुजर रहे हैं। जो भी दिखायी पड़े, उसको गौर से देखते रहो, एकटक। तुम पाओगे, वह खो गया। अगर तुम सपने को पूरा गौर से देख लो, तुम पाओगे, पूरा सपना खो गया। जैसे ही सपना खोता है, नींद में भी ध्यान लग गया। समाधि आ गयी।
सपने से शुरू करे कोई जागना, तो यह सारा संसार सपना मालूम होगा। यह खुली आंख का सपना है। लेकिन हमारी आदत गहन है। दृश्य में हम खो जाते हैं। और जब दृश्य में खो जाते हैं, तो द्रष्टा विस्मरण हो जाता है। हमारी चेतना का तीर एकतरफा है।
गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था कि जिस दिन तुम्हारी चेतना का तीर दुतरफा हो जाएगा, तीर में दोनों तरफ फल लग जाएंगे, उसी दिन तुम सिद्ध हो जाओगे। तो सारी चेष्टा गुरजिएफ करवाता था कि जब तुम किसी को देखो, तब उसको भी देखो और अपने को भी देखने की कोशिश जारी रखो कि मैं देख रहा हूं। मैं द्रष्टा हूं। तो तुम तीर में एक नया फल पैदा कर रहे हो, तीर तुम्हारी तरफ भी और दूसरे की तरफ भी।
मुझे तुम सुन रहे हो, सुनते वक्त तुम मुझ में खो जाओगे। तुम सुनने वाले को भूल ही जाओगे। तुम सुनने वाले को भूल गए, तो भूल हो गयी। सुनते समय सुनने वाला भी याद रहे। तो मैं यहां बोल रहा हूं, तुम वहां सुन रहे हो, और तुम यह भी साथ जान रहे हो कि मैं सुन रहा हूं। तब तुम सुनने वाले से पार हो गए। एक ट्रांसनडेन्स, एक अतिक्रमण हो गया, साक्षी का जन्म हुआ।
और जैसे ही साक्षी पैदा होता है, वैसे ही मनुष्य अनेक से तीन में आ गया। त्रिवेणी आ गयी। त्रिवेणी के बाद एक तक पहुंचना बहुत आसान है। क्योंकि एक कदम और! और जैसे-जैसे त्रिवेणी सघन होती जाती है, वैसे-वैसे एक ही रह जाता है। क्योंकि त्रिवेणी, तीनों नदियां एक में खो जाती हैं।
हम प्रयाग को तीर्थराज कहते हैं। और तीर्थराज इसीलिए कहते हैं कि वह त्रिवेणी है। और त्रिवेणी भी बड़ी अदभुत है। उसमें दो तो दिखायी पड़ती हैं और एक दिखायी नहीं पड़ती। सरस्वती दिखायी नहीं पड़ती। वह अदृश्य है। गंगा और यमुना दिखायी पड़ती हैं।
तुम जब भी किसी चीज पर ध्यान दोगे, तो ध्यान देने वाला और जिस पर तुमने ध्यान दिया-- सब्जेक्ट और आब्जेक्ट--दो तो दिखायी पड़ने लगेंगे। उन दोनों के बीच का जो संबंध है, वह सरस्वती है, वह दिखायी नहीं पड़ता। लेकिन तीनों वहां मिल रहे हैं। दो दृश्य नदियां, और एक अदृश्य नदी। और जब तीनों मिल जाते हैं, एक अपने आप घटित हो जाता है।
नानक कहते हैं, एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।
एक मां से, एक माया से, तीन प्रामाणिक चेलों का जन्म हुआ। उसमें एक संसारी ब्रह्मा है, एक भंडारी विष्णु है, एक दीवान प्रलयंकर महेश है। तुमने कभी ब्रह्मा का कोई मंदिर देखा? सिर्फ एक मंदिर है भारत में। लोगों ने ब्रह्मा के मंदिर बनाए नहीं। क्योंकि ब्रह्मा संसारी है। उनसे संसार का जन्म होता है, उनकी क्या पूजा करनी है!
शिव के मंदिर संसार में सर्वाधिक हैं। गांव-गांव, गली-गली, कहीं भी पत्थर रख दिया, और झाड़ के नीचे शिव का मंदिर हो गया। क्योंकि शिव के साथ संसार का अंत होता है। वे मृत्यु के देवता हैं। वे पूजा-योग्य हैं। ब्रह्मा संसार को जन्म देते हैं, शिव मिटाते हैं। और भारत की बड़ी आकांक्षा, किस भांति संसार मिट जाए, वही है। कैसे मुक्ति हो जाए। इसलिए शिव के मंदिर जगह-जगह हैं।

विष्णु के भी मंदिर हैं। क्योंकि हममें से बहुत से लोग हैं, जो मिटने
से भयभीत हैं, डरे हुए हैं। वे विष्णु के पूजक हैं। इसलिए दूकानदार विष्णु के पूजक हैं। वे भयभीत हैं, वे संसार को पकड़ना चाहते हैं। विष्णु भंडारी हैं। वे मध्य हैं, वे सम्हाले हुए हैं। इसलिए वे लक्ष्मी-पति हैं। इसलिए उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मी है। वे धन के देवता हैं। तो जिनको धन की पकड़ है, वे लक्ष्मी की पूजा कर रहे हैं।
यह भी बड़ा सोचने जैसा है। क्योंकि अगर पति को पकड़ना हो, तो पत्नी की तरफ से पकड़ने के सिवाय और कोई उपाय नहीं। छोटी-मोटी रिश्वत में भी वही करना पड़ता है, बड़ी से बड़ी रिश्वत में भी वही करना पड़ता है। अगर पत्नी को प्रसन्न कर लिया तो साहब प्रसन्न हैं। अगर पत्नी को प्रसन्न कर लिया तो मंत्री राजी है। अगर लक्ष्मी को प्रसन्न कर लिया तो विष्णु राजी हैं। आदमी के मन का विस्तार तो एक ही जैसा है।
विष्णु संसार को सम्हाले हुए हैं। इसलिए जिनको संसार में रहने की आकांक्षा है, वे विष्णु की पूजा कर रहे हैं। शिव अंत हैं। वह महामृत्यु हैं। संन्यासी के देवता शिव हैं। इसलिए शिव के बड़े मंदिर हैं, गांव-गांव, कूचे-कूचे। और सस्ते में बनने चाहिए, क्योंकि संन्यासी के देवता हैं। तो विष्णु के मंदिर तो बिड़ला बना देंगे। शिव का मंदिर कौन बनाएगा? इसलिए शिव का मंदिर बड़ा सस्ता है। उसमें कुछ खर्च होता ही नहीं। एक पत्थर तुमने रख दिया गोल ढूंढ कर कहीं से, वह शिव-लिंग हो गया। दो पत्ते चढ़ा दिए--फूल तक की भी जरूरत नहीं है। बेलपत्र चढ़ा दिए, पूजा हो गयी।
ये तीन देवता, जीवन के तीन सूत्र हैं। जन्म, जीवन, मृत्यु। और ध्यान रखना, जन्म तो हो चुका है, इसलिए ब्रह्मा की क्या पूजा? जो हो ही चुका है, उसकी बात खत्म हो गयी। जीवन अभी है, इसलिए कुछ विष्णु की पूजा में लीन हैं। लेकिन वे बहुत समझदार नहीं हैं, क्योंकि जीवन हाथ से जा रहा है। और जब तक तुम्हारे जीवन में मृत्यु का बोध न आए, तब तक तुम संन्यस्त न हो सकोगे। तुम संसारी बने रहोगे।
संसारी और संन्यस्त का फर्क क्या है? संन्यस्त को यह समझ में आ गया कि
सब जीवन मृत्यु में समाप्त होगा। सब होना अंततः न होना हो जाएगा। जो बना है, वह मिटेगा। जो सजाया है, संवारा है, वह उजड़ेगा। जो भवन निर्मित हुआ है, वह गिरेगा। जिसको मृत्यु दिखायी पड़ गयी। जिसको मृत्यु का स्मरण आ गया। और जिसे लगने लगा कि यह तो खंडहर है जिसमें हम थोड़ी देर रुके हैं। यह ज्यादा से ज्यादा पड़ाव है, मंजिल नहीं है। जिसको मृत्यु का बोध आ गया, उसके जीवन में क्रांति घट जाती है।
देखो, मनुष्य को छोड़ कर, पशु हैं, पौधे हैं, पक्षी हैं, उनमें कोई धर्म नहीं है। क्योंकि उनको मृत्यु का कोई बोध नहीं है। मरेंगे वे भी, लेकिन उन्हें कुछ पता नहीं कि मृत्यु आ रही है। क्योंकि मृत्यु को देखने के लिए जो चेतना चाहिए, वह उनके पास नहीं है।
मनुष्यों में भी तुम तब तक पशु ही हो, जब तक तुम्हें मृत्यु साफ-साफ न दिखायी पड़ने लगे। जब तुम्हें साफ दिखायी पड़ने लगे कि यह अंत आ रहा है, जैसे ही तुम्हें अंत दिखायी पड़ेगा, तुम्हारे जीवन-मूल्य बदल जाएंगे। कल तक जो महत्वपूर्ण मालूम पड़ता था, वह व्यर्थ मालूम पड़ने लगेगा। कल तक जो बड़ा सार्थक लगता था, मृत्यु के दिखायी पड़ते ही व्यर्थ हो जाएगा। कल तक बड़े सपने संजोए थे, बड़े इंद्रधनुष बांधे थे वासनाओं के, और मृत्यु ने द्वार पर दस्तक दी, सब गिर जाएंगे।
दस्तक तो मृत्यु ने उसी दिन दे दी जिस दिन तुम पैदा हुए। जिस दिन ब्रह्मा ने काम शुरू किया, शिव का काम उसी दिन हो गया। लेकिन तुम्हें होश नहीं है। होश आ जाए मृत्यु का, तो मृत्यु के होश के साथ ही परावर्तन होता है, कनवर्शन होता है। जैसे ही मृत्यु का होश आता है, तुम लौटते हो स्रोत की तरफ। तुम्हारा मुख बदलता है। तुम फिर संसार की तरफ नहीं जाते। क्योंकि वहां सिवाय मृत्यु के कुछ भी नहीं है। तब तुम अपनी तरफ आते हो। और अपनी तरफ आना परमात्मा की तरफ आना है। जिसने जान लिया मृत्यु को, मृत्यु की चोट तुम्हें ईश्वर का स्मरण दिलाएगी। इससे कम में कुछ भी न होगा। और जिसने भुला दिया मृत्यु को, वह ईश्वर को विस्मरण रखे रहेगा। बहुत बार तुम मरे हो, बहुत बार तुम जन्मे हो, लेकिन अब तक तुम मृत्यु को भुलाए हुए रहे हो।

मृत्यु को याद करो। मृत्यु को जीवन का केंद्रीय तथ्य बना लो। क्योंकि जीवन में और कुछ भी निश्चित नहीं है, एक मृत्यु ही सिर्फ निश्चित है। और सब तो अनिश्चित है। होगा, न होगा। लेकिन मृत्यु तो निश्चित ही होगी। उस निश्चित को तुम केंद्रीय तत्व बना लो। और उस निश्चित के आधार पर तुम जीवन की यात्रा करो। तो तुम पाओगे कि तुम अनेक से तीन की तरफ आने लगे। और जो तीन के पास आ गया, उसका एक की तरफ का द्वार खुल जाता है।
नानक कहते हैं, "लेकिन परमात्मा अपनी इच्छा के अनुसार, अपने फरमान के मुताबिक ही, उन्हें भी संचालित करता है।"
इसे तुम ध्यान में रखना। कुछ भी तुम करो, पाप या पुण्य, अच्छा या बुरा, पास जाओ, दूर भटको, या मार्ग पकड़ो; एक बात याद रखना, तुम उसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकते हो। और अगर यह याद बनी रहे, तो पाप से भी बाहर आने का उपाय है। क्योंकि इसी याद के सहारे तुम वापस बाहर आ जाओगे। यह याद बनी रहे तो पुण्य से भी बाहर आ जाओगे। क्योंकि इस याद का अर्थ है, कर्ता मैं नहीं हूं। कर्ता वह है। मैं सिर्फ उपकरण हूं। एक निमित्त हूं, एक माध्यम हूं। वह जो करवा रहा है, मैं कर रहा हूं। मेरा किया कुछ भी नहीं। तो फिर मैं की अकड़ कैसी? तो फिर अहंकार का उपाय क्या? वही जन्म देता, वही जीवन देता, वही ले लेता है। तो मैं क्यों अकडूं? मैं बीच में व्यर्थ ही क्यों परेशान हो जाऊं?
तुमने उस मक्खी की कहानी सुनी होगी, जो एक रथ के पहिए पर बैठी थी। बड़ी धूल उड़ रही थी रथ की। क्योंकि अनेक घोड़े जुते थे। उस मक्खी ने चारों तरफ देख कर कहा कि आज मैं बड़ी धूल उड़ा रही हूं! मक्खी भी रथ के पहिए पर बैठ कर सोचती है कि आज मैं बड़ी धूल उड़ा रही हूं।
तुम भी रथ के पहिए पर हो। यह विराट रथ है। और जो धूल उड़ रही है, वह तुम्हारे कारण नहीं उड़ रही है। जिस दिन तुम समझ लोगे, उस समझ के साथ ही परमशांति अनुभव होगी। क्योंकि सब अशांति अहंकार की है। और अहंकार व्यर्थ ही बीच में चीजों को ले लेता है। जिन्हें तुम कर ही नहीं रहे हो, उन्हें भी अपने कंधे पर ले लेता है।
जैसे ही तुम्हारी समझ साफ हो जाएगी कि तुम मक्खी से ज्यादा नहीं हो रथ
के पहिए पर। और विराट रथ है, धूल तुम नहीं उड़ा रहे हो, धूल रथ से ही उड़ रही है, उसी दिन तुम शांत हो जाओगे। उसी दिन तुम्हें लगेगा, जब मैं ही नहीं हूं तो अशांत क्या होना? अशांत होने को कौन बचा? जब तक तुम हो, तुम अशांत रहोगे।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, हम कैसे शांत हो जाएं? मैं उनसे कहता हूं, जब तक "हम" हैं, तब तक कैसे शांत होओगे? लोग पूछते हैं कि मुझे कोई शांति नहीं मिल रही, मुझे शांति दें। मैं उनको कहता हूं, तुम जब तक हो, तब तक शांति दी भी नहीं जा सकती। तुम्हारे न होने का नाम ही शांति है। तुम अपने को हटाओ। तुम एक झूठ हो। तुम एक सपना हो। अगर ठीक से समझो, तो तुम सपने में देखे गए सपने हो।
तुम सपने भी नहीं हो। तुम्हें कभी ख्याल है कि कभी-कभी सपने में भी सपना आता है; कि तुम सपने में देखते हो कि तुम सोने जा रहे हो, कि तुम बिस्तर पर सो गए, और फिर तुम देखते हो कि अब तुम सपना देख रहे हो। सपने में सपना आ सकता है। सपने में सपना और उसमें भी सपना आ सकता है।
चीन में एक बहुत प्राचीन कथा है कि एक लकड़हारा जंगल में लकड़ी काट रहा था। थक गया था। तो नीचे उतर कर लेट गया। उसे एक सपना आया। सपना आया कि पास ही एक खजाना गड़ा है। और वह गया और उसने उघाड़ कर देखा तो निश्चित हंडे गड़े थे। और जरा सी ही धूल ऊपर पड़ी थी। हंडों में हीरे-जवाहरात थे। तो उसने सोचा कि रात आ कर, चुपचाप निकाल कर ले जाऊंगा। अभी निकालूंगा तो फंस जाऊंगा। लकड़हारा, गरीब आदमी! और वह तो करोड़ों की संपदा थी। तो उसने वहां एक लकड़ी गड़ा दी, निशान के लिए। घर लौट आया। रात जब हो गयी, तो वह गया। तो देखा लकड़ी तो गड़ी है, लेकिन हंडे कोई निकाल चुका है। तो वह बड़ा हैरान हुआ। वह लौट आया। और उसने अपनी पत्नी से कहा कि मेरी समझ में नहीं आ रहा है, मैंने सपना देखा या सच है! क्योंकि लकड़ी गड़ी है। इससे सबूत मिलता है कि मैंने सपना नहीं देखा। मैं सच में ही... और हंडे भी थे, क्योंकि अब खड्डे खाली पड़े हैं। वह भी प्रमाण है कि मैंने सपना नहीं देखा। लेकिन हंडे कोई निकाल कर ले गया है।

उसकी पत्नी ने कहा कि तुमने सपना ही देखा होगा। तुमने यह भी सपना देखा होगा कि तुम रात गए, और तुमने लकड़ी गड़ी देखी, और लोग हंडे ले गए। शांति से सो जाओ।
लेकिन एक दूसरे आदमी ने उसी रात सपना देखा था। सपने में उसने भी इन हंडों को गड़े देखा, और एक लकड़हारा लकड़ी गड़ा रहा है। जब उसकी नींद खुली--उस आदमी की--तो वह भागा हुआ जंगल की तरफ गया। सच में वहां लकड़ी गड़ी थी। उसने हंडे निकाल लिए। और वह घर आ गया। घर आ कर उसने भी अपनी पत्नी से कहा, मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने सपना देखा या सच में मुझे ऐसा अंतर-दर्शन हुआ। कुछ भी हो, हंडे मैं ले आया हूं। हंडे ये रहे। इसलिए ऐसा लगता है कि मैंने सपना नहीं देखा, सच में ही मैंने इस लकड़हारे को लकड़ी गड़ाते देखा, तभी तो मैं हंडे ले आया।
पत्नी ने कहा कि हंडे तो साफ हैं। और अगर तुमने लकड़हारे को लकड़ी गड़ाते देखा, तो यह उचित नहीं है कि हम इन हंडों को रखें। ये सम्राट को पहुंचा दो। वह जो निर्णय करे।
आदमी भला था, हंडे सम्राट को पहुंचा दिए। तब तक शिकायत लकड़हारे की भी
आ गयी थी। सम्राट बड़ा परेशान हुआ। उसने कहा, कुछ भी हो, तुमने दोनों ने सपना देखा है या असलियत में देखा, अब इसका निर्णय कौन करे? एक बात पक्की है कि हंडे हैं। तब इस झंझट में तुम न पड़ो, हंडे मैं आधे-आधे कर देता हूं। उसने हंडे आधे-आधे करके बांट दिए।
रात अपनी पत्नी से कहा कि आज एक बड़ी अदभुत बात हुई। इस तरह के दो आदमियों ने सपने देखे। अब सपने देखे, कि सच, कि झूठ? मगर हंडे थे, तो मैंने बांट दिए। पत्नी ने कहा, तुम चुपचाप सो जाओ। तुमने सपना देखा होगा।
चीन में हजारों साल से इस पर विचार चलता है कि सच में सपना किसने देखा?
पर जिंदगी के आखिर में ऐसा ही होता है। जो भी हुआ, सब सपने जैसा हो जाता है। पक्का करना मुश्किल हो जाता है कि असलियत में हंडे थे? कि असलियत में लकड़ी गाड़ी थी? कि असलियत में पति-पत्नी थे, बच्चे थे, मित्र थे, परिवार थे, सुख-संपदा थी, दुख थे, अपने थे, पराए थे, संघर्ष हुआ, प्रतियोगिताएं हुईं? जीते- हारे, सफल-असफल हुए? मरते वक्त हर आदमी के सामने ये सब सपने दोहरते हैं। और उसे तय करना मुश्किल हो जाता है कि ये मैंने सपने देखे, या सच में ऐसा हुआ? जिन्होंने जाना है, वे कहते हैं, यह खुली आंख का सपना है। आंख खुली है जरूर, लेकिन है सपना। सपना इसलिए है कि इसका उससे कोई भी संबंध नहीं, जो सदा रहता है। यह बीच की भावदशा है। यह बीच का ख्याल है। और तुमने जाग कर देखा है या सो कर देखा है, इसमें क्या फर्क पड़ता है? सपने का लक्षण यह है कि अभी है और अभी नहीं है। तो यह जिंदगी भी अभी है और अभी नहीं है। मरते वक्त यह सब खो जाता है।
और इस सपने के भीतर एक और सपना तुम देख रहे हो, जिसका नाम अहंकार है।
इन सब सपनों के भीतर तुम अपने को कर्ता मान रहे हो। और तुम बड़े अकड़े हुए हो। और सारी दुनिया को तुम्हारा अहंकार दिखायी पड़ता है, सिर्फ तुम को दिखायी नहीं पड़ता। और उस सारी दुनिया को भी अपने-अपने अहंकार नहीं दिखायी पड़ते। तुम्हारा अहंकार सभी को दिखायी पड़ता है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, फलां आदमी बड़ा अहंकारी है। वह आदमी भी आता है। वह भी दूसरों को अहंकारी देखता है।
मुल्ला नसरुद्दीन हमेशा कहा करता था कि मैं एक सौ निन्यानबे कचौड़ी खा सकता हूं। तो मैंने उससे कहा, बड़े मियां, एक खा कर दो सौ पूरी क्यों नहीं कर लेते? एक और खा लो! उसने कहा, क्या समझा है आपने मुझे? पेट है मेरा कि मालगोदाम?
एक सौ निन्यानबे तक मालगोदाम नहीं है! अपना तो दिखायी ही नहीं पड़ता। लेकिन दूसरा एक भी जोड़ दे तो फौरन दिखायी पड़ जाता है। हम अपने तरफ बिल्कुल अंधे हैं। अगर दूसरा न हो, तो हमें पता ही न चले। इसलिए दूसरों की बड़ी कृपा है। और साधक समझ लेता है कि दूसरे न हों, तो तुम्हें न अपने अहंकार का पता चलेगा, न अपने रोग का पता चलेगा। इसलिए साधक आखिरी क्षणों में सभी को धन्यवाद देता है, जिन-जिन ने याद दिलायी। जिन-जिन ने सपना तोड़ा।

इसलिए तो कबीर कहते हैं, निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय। वह जो तुम्हारी निंदा करता हो, उसको तो अपने घर ही ले आना। आंगन-कुटी बना कर, छवा कर उसको तो अपने पास ही रखना। क्योंकि वह तो देख लेगा, तुम न देख पाओगे। जब तक कि तुम्हारा अपना साक्षी न जग जाए तब तक तुम बिल्कुल अंधे हो। सपने के भीतर एक सपना है कि मैं हूं। संसार माया है और माया के भीतर एक कर्ता का भाव है कि मैं हूं। सपने का भी सपना है। और वही अड़चन है। और जिस दिन तुम मृत्यु को देखोगे, सब से पहले मैं गिरता है।
क्या करोगे मृत्यु के मुकाबले तुम? कैसे बचाओगे अपने को? नहीं आएगी श्वास तो तुम क्या करोगे? मृत्यु के मुकाबले तुम्हारी सामर्थ्य टूट जाती है। और इसीलिए तो हम मृत्यु को भूले रखते हैं। क्योंकि अगर मृत्यु को याद रखेंगे तो अकड़ टूटती है। क्योंकि मृत्यु के सामने हम बिल्कुल असहाय हैं।
और अकड़ हमारी कहती है कि हम और असहाय? मैं और असहाय? मुझ जैसा बली, शक्तिशाली, मैं और असहाय? तो बेहतर यह है कि मृत्यु के तथ्य को ही भुला दो। न रहेगी याद मृत्यु की, न अपने अहंकार को चोट लगेगी।
ज्ञानी मृत्यु को याद रखता है। क्योंकि मृत्यु अहंकार को काटती है। जिस दिन तुम मृत्यु को पूरा समझ पाओगे, कैसे अहंकार को बचाओगे? क्या है बचाने योग्य फिर? मृत्यु के सामने तो पराजय है। वहां तो कभी कोई विजेता नहीं हुआ। न कोई सिकंदर, न कोई नेपोलियन, न कोई हिटलर। वहां तो सभी पराजित हैं। मृत्यु के सामने सभी हारे हुए हैं, सर्वहारा हैं। इसलिए हम छुपाते हैं। हम अहंकार को तो पकड़ते हैं, जो झूठ है। और मृत्यु को भूलते हैं, जो सच है। अगर तुम्हें निश्चित ही एक की तरफ जाना हो, तो मृत्यु को याद रखो। क्योंकि वह बड़ा सत्य है। और उस सत्य का सबसे बड़ा परिणाम यह है कि अहंकार गिर जाता है।
च्वांगत्सू लौट रहा था एक रात अपने घर। एक मरघट से निकलता था, एक खोपड़ी पर उसकी लात लग गयी। रात का अंधेरा था। और वह मरघट भी कोई छोटा मरघट न था। बड़े लोगों का मरघट था। रायल फैमिली! और बड़े से बड़े धनी और बड़े से बड़े संपन्न लोग ही सिर्फ वहां गड़ाए जाते थे। तो खोपड़ी कोई छोटी-मोटी न थी। उसने खोपड़ी को उठा लिया और कहा, माफ करना। वह तो जरा समय की देर हो गयी, अगर आज तुम जिंदा होते तो मेरी क्या गति होती! खोपड़ी को साथ ले आया। शिष्यों ने बहुत कहा, इसको फेंकिए। खोपड़ी को कोई घर में थोड़े ही रखता है।
क्यों नहीं रखते घर में खोपड़ी को? रखनी चाहिए सजा कर। उससे ज्यादा एंटीक, कीमती और क्या होगा? और उससे ज्यादा स्मरण दिलाने वाला और क्या होगा? ठीक अपने ड्रेसिंग-टेबल पर रखनी चाहिए कि अपनी शक्ल भी देख ली आइने में, और अपनी खोपड़ी भी देख ली बगल में रखी।
च्वांगत्सू ने रख ली थी। वह अपने बगल में ही रखता उसको। सब भूल जाता लेकिन खोपड़ी अपनी साथ ले कर चलता। लोग उससे पूछते कि इसको हटाइए। यह क्या कर रहे हैं आप?
च्वांगत्सू कहता, आप इतने नाराज क्यों हैं? इस खोपड़ी ने आपका क्या बिगाड़ा? और मैं इसे अपने साथ रखता हूं कि यह मेरी याददाश्त है, कि आज नहीं कल इसी खोपड़ी की तरह मेरी खोपड़ी कहीं पड़ी होगी। भिखारियों के पैर लगेंगे। कोई क्षमा भी नहीं मांगेगा। और मैं कुछ भी न कर सकूंगा। यह खोपड़ी वही रही, अभी भी वही है। च्वांगत्सू कहता, यह खोपड़ी मेरे पास रखी है तो तुम मेरे सिर पर जूता मार जाओ तो मैं तुम्हारी तरफ न देखूंगा, मैं इस खोपड़ी की तरफ देखूंगा। और तब मैं मुस्कुराऊंगा कि यह तो होना ही है। यह तो सदा होगा। कितनी देर बचाऊंगा?
जब मौत बिल्कुल तथ्य की तरह दिखायी पड़ने लगती है तो अहंकार विसर्जित
हो जाता है। मौत का स्मरण अहंकार के लिए जहर है। इसलिए हम मौत को भूले हुए हैं। और जब तक अहंकार है, तब तक तुम जाग न सकोगे। जैसे ही मौत दिखाई पड़ी, अहंकार टूटा, कि तुम समझोगे कि सब परमात्मा की आज्ञा से हो रहा है। मैं करने वाला नहीं हूं।
"वह प्रभु तो उन्हें देखता रहता है, परंतु वह उनकी नजर में नहीं आता।"
यह बहुत आश्चर्य की बात है। इसे थोड़ा समझो।
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु।।

यह बड़े आश्चर्य की बात है। नानक कहते हैं कि वह प्रभु तो यह सब देखता रहता है। इन तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेश को देखता है। लेकिन ये तीनों उसे नहीं देख पाते।
इसे थोड़ा समझें। यह बड़ी कीमती और बड़ी बहुमूल्य बात है। और साधक इसे याद रखे। तुम अपनी आंख से सारे संसार को देखते हो, और तुम्हारे भीतर छिपा हुआ द्रष्टा तुम्हारी आंख को भी देखता है, लेकिन तुम्हारी आंख उसे नहीं देख सकती। तुम अपने हाथ से सारे जगत को छू सकते हो, और तुम्हारे भीतर बैठा हुआ द्रष्टा तुम्हारे हाथ को भी देखता है, लेकिन तुम्हारा हाथ उस द्रष्टा को नहीं छू सकता।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश परमात्मा की तीन आंखें हैं, या तीन चेहरे हैं।
ये चेहरे संसार को तो देखते हैं, लेकिन लौट कर परमात्मा को नहीं देख सकते। क्योंकि जो भीतर छुपा है, वह इनकी पहुंच के बाहर है। इसलिए तो तुम तभी उसे देख पाओगे जब तुम्हारी बाहर की आंख बिल्कुल बंद हो जाए। इस आंख से तुम उसे न देख सकोगे। इस चेहरे से तुम उसे न पहचान सकोगे। यह चेहरा तो बिल्कुल भूल जाए, तभी तुम उसे पहचान सकोगे। क्योंकि भीतर जाना हो तो बाहर जाने के जो-जो उपाय हैं, वे सब छोड़ देने होंगे। वे कोई काम के नहीं हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तो बाहर जाने के उपाय हैं। वह त्रिमूर्ति तो बाहर की तरफ है। उन तीनों के भीतर जो छिपा है, उस तक उन तीनों की कोई पहुंच नहीं है।
बड़ी मीठी कथाएं हैं, भारत में। अनेक कथाएं हैं, जिनमें यह कहा गया है
कि जब भी कोई बुद्ध-पुरुष होता है, जैसे गौतम हुए, तो ब्रह्मा स्वयं उनके चरणों में आया। और ब्रह्मा ने उनके चरणों में सिर रखा और कहा कि मुझे ज्ञान दें।
यह बड़ी मीठी कहानी है। नानक उसी की तरफ इशारा कर रहे हैं। क्योंकि बुद्ध-पुरुष ब्रह्मा से ऊंचा हो गया। बुद्ध-पुरुष समस्त देवताओं के पार हो गया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश पीछे छूट गए। क्योंकि वे तो चेहरे थे तीन के। इसने एक को जान लिया। और जिसने एक को जान लिया, वह तीन को जानने वालों से ऊपर हो गया। तीन के बनाने वालों से ऊपर हो गया। खुद ब्रह्मा भी उसकी शरण आते हैं और कहते हैं कि मुझे बताएं, कैसे मैं अपने को जानूं और कैसे उसको पहचानूं?
यह बात मूल्यवान है। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन हैं अभी भी।
और तीन से एक को नहीं जाना जा सकता। तीन छोड़ कर एक को जाना जाता है। हिंदुओं ने बड़ी अदभुत कथाएं लिखी हैं। और सारे जगत में वैसी कथाएं नहीं हैं। और जगत में उन कथाओं को समझना भी बड़ा कठिन है।
कथा है कि ब्रह्मा ने पृथ्वी को पैदा किया। तो पृथ्वी तो उनकी बेटी है। और जैसे यह पृथ्वी पैदा हुई कि ब्रह्मा उस पर आसक्त हो गए। और उसके पीछे भागने लगे। अपने को बचाने के लिए बेटी ने बहुत रूप रखे। और जो-जो रूप बेटी ने रखे, बाप ने भी वही रूप ले कर उसका पीछा किया। बेटी गाय हो गयी, तो बाप सांड हो गया।
पश्चिम में जब पहली दफा पूरब की ये कथाएं पहुंचीं तो उन्होंने कहा, ये किस तरह के देवता! ये तो देवता जैसे मालूम भी नहीं होते। लेकिन भारत की कथाएं मूल्यवान हैं। क्योंकि भारत यह कहता है कि देवता भी सांसारिक है। उनका मुख भी बाहर की तरफ है। और ब्रह्मा भी अपनी बेटी के प्रति आसक्त हो सकता है। बेटी से मतलब यह है कि जो उससे पैदा हुआ है, उसी के प्रति आसक्त हो जाता है।
हम भी तो वही कर रहे हैं। जो हमसे पैदा हुआ है, जो हमारा ही सृजन है, जो हमारा ही सपना है, उसी में हम आसक्त हो जाते हैं। उसी के पीछे हम भागते फिरते हैं। जो वासना हमसे पैदा हुई उसी का हम पीछा करते हैं। यही उस कथा का अर्थ है। जो वासना हमारे ही चित्त का खेल है, जिसे हमने ही जन्माया, जो हमारी पुत्री है, हम उसके पीछे जीवन लगा देते हैं। और अनेक-अनेक रूपों में उसी का पीछा करते हैं, कि किसी तरह वह पूरी हो जाए। देवता उतने ही बंधे हैं, जैसा आदमी बंधा है। तो ब्रह्मा को भी आना पड़ता है बुद्ध-पुरुषों के चरणों में पूछने राज--एक का।
नानक कहते हैं, यह आश्चर्यों का आश्चर्य है कि वह प्रभु तो उन्हें देखता है, उन तीनों को, परंतु वह उनकी नजर में नहीं आता। यह बहुत आश्चर्य

की बात है। आश्चर्य की है भी, और नहीं भी। आश्चर्य की इसलिए कि उनमें से एक तो देख रहा है। लेकिन ये तीन क्यों नहीं देख पाते? और आश्चर्य की इसलिए नहीं भी है कि ये तीन देख कैसे पाएंगे? क्योंकि ये पीछे अगर लौटे तो एक हो जाते हैं, तीन नहीं रहते।
इसको तुम ऐसा समझो, आसान हो जाएगा। मैं निरंतर कहता हूं कि तुम कभी परमात्मा से न मिल सकोगे। क्योंकि जिस दिन तुम मिलोगे, तुम न रह जाओगे। मिलने के पहले तुम्हें खो जाना होगा। और जब तक तुम हो तब तक मिलन न होगा। तो तुम्हारा मिलन तो कभी भी न होगा। तुम जब तक हो तब तक परमात्मा नहीं है। और तुम जब न रहे तब परमात्मा है। मिलना कैसे होगा?
वही घटना ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ घटेगी। अगर वे पीछे मुड़ें तो
एक हो जाएं। एक होते ही वे नहीं रहे। और जब तक वे हैं, तब तक वे पीछे नहीं मुड़े हैं। इसलिए आश्चर्य भी, और आश्चर्य नहीं भी। और ध्यान रखना, यह कोई ब्रह्मा, विष्णु, महेश की बात नहीं है। तुम्हारी ही बात हो रही है, ये तो सिर्फ प्रतीक हैं।
"यदि प्रणाम करना हो तो उसको ही प्रणाम करो।"
तो नानक कहते हैं, क्या ब्रह्मा, विष्णु, महेश को तुम प्रणाम कर रहे हो? ये तो उसे देख भी नहीं पाते। वही इन्हें देख रहा है। इसलिए अगर प्रणाम ही करना हो तो उसको ही प्रणाम करो।
"वह आदि, शुद्ध, अनादि, अनाहद, और युग-युग से एक ही वेश वाला है।"
आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहतु जुग जुग एको वेसु।।
जो सदा एक है, उसको ही प्रणाम करो। उसको ही खोजो, जो आदि भी है, अनादि
भी है। जो प्रारंभ भी सबका है और जिसका कोई प्रारंभ नहीं। जो सबके पहले है और जिसके पहले कोई और नहीं। और जो सबके अंत में होगा और जिसके अंत में और कोई नहीं। उस एक को ही प्रणाम करो। उस एक से कम को प्रणाम किए, तो तुम भटकोगे।
लेकिन उस एक को प्रणाम करने की हमारी हिम्मत नहीं जुटती। क्योंकि हम
तो प्रणाम भी मतलब से करते हैं। और उस एक को प्रणाम करना हो तो सब मतलब छोड़ना पड़े। हम तो मतलब से प्रणाम करते हैं।
अगर मतलब से प्रणाम करते हो तो देवताओं के पास जाओ। क्योंकि वे तुम्हीं जैसे हैं। तुम्हारी भी वासनाएं हैं, उनकी भी वासनाएं हैं। उनसे तुम मांग करो, तो वे तुम्हारी मांग पूरी कर देंगे। क्योंकि तुम्हारे और उनके बीच एक तारतम्य है। वे तुमसे ज्यादा शक्तिशाली होंगे, लेकिन तुमसे भिन्न नहीं हैं। और जैसी तुम्हारी आकांक्षाएं हैं वैसी उनकी आकांक्षाएं हैं। तो उनकी तुम स्तुति करो, उनकी तुम प्रार्थना-पूजा करो, लेकिन तुम मांगोगे संसार ही। इसलिए विष्णु की पूजा करो, संसार चाहिए तो।
उस एक को तो तभी मांग सकोगे जब संसार को छोड़ने की तैयारी हो। और ध्यान रखना, उस एक को पा कर ही कुछ पाया। जिन्होंने भी पाया, उस एक को पा कर ही पाया है, बाकी तो सब भटकाव है। इस संसार में कितने लोग श्रम करते हैं, कुछ भी तो मिलता नहीं। फिर भी तुम आंख खोल कर नहीं देखते। फिर भी तुम में बुद्धिमत्ता का जरा-सा भी जागरण नहीं होता। इतने लोग खोजते हैं, पा भी लेते हैं, कुछ भी तो नहीं मिलता। यहां हारे हुए भी हारे हुए हैं, यहां जीते हुए भी हारे हुए हैं।
दो मित्र एक होटल में बैठे थे। एक थोड़ा प्रौढ़ और एक जवान। और एक सुंदर स्त्री द्वार से प्रविष्ट हुई। तो जवान ने कहा--एक गहरी सांस उसके भीतर से निकल गयी और कहा--कि यह स्त्री जब तक मुझे न मिल जाए मैं सुखी न हो सकूंगा। और इसके पीछे मैं पागल हूं। और मेरी नींद खो गयी है इसके लिए। और मेरी शांति खो गयी है। मेरा सारा चैन खो गया है। और कोई रास्ता नहीं सूझता, मैं क्या करूं? और जब तक यह मुझे न मिलेगी, मेरे लिए न कोई शांति है, न कोई आनंद है।
उस दूसरे प्रौढ़ आदमी ने कहा कि जब तुम इस स्त्री को फुसलाने में राजी
हो जाओ, तो मुझे खबर कर देना। उसने कहा, क्या मतलब! आपको किसलिए खबर? उसने कहा, यह मेरी पत्नी है। और मेरा जबसे इससे सत्संग हुआ, मेरी सब शांति खो गयी है। मेरा आनंद वापस मिल जाएगा, अगर तुम इसे राजी करके किसी तरह... ।

यहां जिनको मिल जाता है वे रो रहे हैं, यहां जिनको नहीं मिला है वे रो रहे हैं। यहां होने का ढंग ही रोना है। यहां तुम सबको रोते पाओगे, गरीब को और अमीर को, सफल को और असफल को, पराजित को, विजेता को, सबको रोते पाओगे।
यहां एक संबंध में बड़ी समानता है कि सभी दुखी हैं।
उस एक को पा कर ही कुछ पाया जा सकता है। उस एक का कोई मंदिर नहीं है। ब्रह्मा का भी एक मंदिर है, विष्णु के बहुत हैं, शिव के अनंत हैं। उसका एक भी मंदिर नहीं है। उसका मंदिर हो भी नहीं सकता।
इसलिए नानक ने अपने मंदिर को जो नाम दिया वह बड़ा प्यारा है-- गुरुद्वारा। वह परमात्मा का मंदिर नहीं, वह सिर्फ गुरु का द्वार है। उससे उस एक की तरफ पहुंचोगे, लेकिन वह सिर्फ दरवाजा है। वहां कुछ अंदर है नहीं। नाम बड़ा प्यारा है। तो वह सिर्फ द्वार है, जिससे तुम गुजरोगे। वह कोई रुकने की जगह नहीं है। जो गुरुद्वारे में रुक गया वह नासमझ है। वह दरवाजे में बैठा है। दरवाजे में बैठने में कोई सार है! वहां से गुजरना है, वहां से पार जाना है। गुरु द्वार है। उस पर रुक नहीं जाना है। उससे गुजर जाना है। उसके पार हो जाना है। उसके पार वह एक है। उस एक का कोई मंदिर नहीं हो सकता। और नानक कहते हैं, अगर प्रणाम ही करने का भाव उठा है, अगर सच में ही प्रणाम करने की भावना जग गयी है, हृदय राजी है प्रणाम करने को--आदेसु तिसै आदेसु--तो उस एक को ही प्रणाम करो।
"लोक-लोक उसका आसन है।"
इसलिए उसका कोई मंदिर हो नहीं सकता।
"लोक-लोक उसका भंडार है। उसने एक बार ही सदा के लिए पाने लायक सब कुछ उसमें धर दिया है। वह सर्जनहार रचना करके उसे देखता रहता है। नानक कहते हैं, सच्चे का काम सच्चा है। प्रणाम करना हो तो उसे ही प्रणाम करो। वह आदि, शुद्ध, अनादि, अनाहद और युग-युग से एक वेश वाला है।"
नानक कहते हैं, "सच्चे का काम सच्चा है।"
नानक सचे की साची कार।।
उस परमात्मा का जो कुछ भी है, वह सत्य है। तुम्हारा जो कुछ भी है, वह असत्य है। क्योंकि तुम्हारा होना ही असत्य है। असत्य से सत्य का कोई जन्म नहीं हो सकता। तुम जो भी बनाओगे वे ताश के पत्तों के घर होंगे। हवा का जरा सा झोंका भी उन्हें गिरा देगा। तुम जो भी बनाओगे वह कागज की नाव होगी। छूटते ही डूबने लगेगी। उसमें यात्रा नहीं हो सकती। अहंकार से निर्मित सभी कुछ असत्य होगा, क्योंकि अहंकार असत्य है। उस परमात्मा का जो भी है वह सत्य है। तुम्हारा जो भी है वह असत्य है।
यह जिस दिन तुम्हें समझ में आ जाएगा, उस दिन तुम असत्य को पैदा करने में श्रम न लगाओगे। उस दिन तुम असत्य को जानने में श्रम लगाओगे। संसारी का अर्थ है, जो असत्य को पैदा करने में लगा है। तुम्हारे संसार की असत्यता का तुम्हें ख्याल नहीं आता, क्योंकि उसमें तुम इतने लीन हो। तुम कभी जरा दूर खड़े हो कर नहीं देखे कि असत्यता कितनी भयंकर है।
एक आदमी नोट इकट्ठे करते जा रहा है। वह कभी नहीं सोचता कि नोट सिर्फ
एक मान्यता है। कल सरकार बदल जाए, कानून बदल जाए, सरकार तय कर ले कि ये नोट रद्द हुए, काम के न रहे, तो कागज हो गए। एक मान्यता को इकट्ठा कर रहा है यह आदमी। और मान्यता ऐसी कि जिसका कोई भरोसा नहीं।
अमरीका में एक होटल है। उन्नीस सौ तीस के जमाने में, जब कि अमरीका में बहुत बड़ी आर्थिक गिरावट आयी, जिस आदमी का यह होटल है, उसके करोड़ों रुपए के बांड व्यर्थ हो गए। तो उसने सारी दीवाल पर बांड चिपका दिए। वे जो करा.ेडों रुपए के बांड थे, पूरी दीवालें उस होटल की उसने बांड से बना दीं। वे किसी काम के न रहे, वे दीवाल पर चिपकाने लायक हो गए। उनका कोई उपयोग न रहा।
और एक आदमी नोट पर जिंदगी लगा रहा है। बस, उसका काम ही इतना है कि कितने नोट बढ़ते जाते हैं, उनकी वह गिनती कर रहा है। तिजोड़ी में भरता जाता है नोट। उसे पता नहीं कि हर नोट के बदले में जिंदगी बेच रहा है। क्योंकि एक-एक पल कीमती है। और जिस ऊर्जा से परमात्मा से मिलन होता है, उस ऊर्जा को वह नोटों में लगा रहा है। और नोट सिर्फ मान्यता है। हजारों तरह की मान्यताएं रहीं दुनिया में, हजारों तरह के सिक्के रहे।

मैक्सिको में लोग, इस सदी के प्रारंभ तक, कंकड़-पत्थरों को सिक्के की तरह उपयोग करते थे। कंकड़-पत्थर ही से काम हो जाता था, क्योंकि मान्यता की बात है। तुम कागज का उपयोग कर रहे हो। कंकड़-पत्थर कागज से तो ज्यादा कीमती हैं। सोना मान्यता के कारण सोना है। अगर दुनिया की हवा बदल जाए--कभी भी बदल सकती है--लोग सोने को कीमत न दें, लोहे को कीमत देने लगें, तो तुम लोहे केशृंगार कर लोगे।
कौमें हैं अफ्रीका में, जो हड्डियों की कीमत करती हैं, सोने की कीमत नहीं करतीं, तो हड्डियों को गले में लटकाए हुए हैं। सोना फिजूल है। तुम उनसे कहो कि सोने को लटका लो, वे राजी नहीं हैं।
मान्यता का खेल है। और उस मान्यता के लिए तुम जीवन गंवा देते हो। लोग प्रतिष्ठा दें, इसके लिए तुम जीवन गंवा देते हो। लोगों की प्रतिष्ठा का क्या अर्थ है? कौन हैं ये लोग जिनकी प्रतिष्ठा के लिए तुम दीवाने हो? ये वे ही लोग हैं जो तुम्हारी प्रतिष्ठा के लिए दीवाने हैं। इनकी कीमत क्या है? नासमझों से अगर प्रतिष्ठा मिल जाए तो इससे तुम्हें क्या मिलेगा? और नासमझ भीड़ का कोई हिसाब है!
विंसटन चर्चिल अमरीका गया। एक सभा में बोला। बड़ी भीड़ थी, हाल खचाखच भरा था। सभा के बाद एक महिला ने उससे कहा कि आप जरूर प्रसन्न होते होंगे। जब भी आप बोलते हैं, हाल खचाखच भरा होता है।
विंसटन चर्चिल ने कहा, जब भी मैं हाल को खचाखच भरा देखता हूं, तब मैं सोचता हूं कि अगर मुझे फांसी लग रही होती तो कम से कम पचास गुना ज्यादा लोग मुझे देखने आए होते। इन लोगों का क्या भरोसा? ये मुझे ताली बजाने आए हैं, ये मेरी फांसी देखते, वहां भी ताली बजाते। तो जब भी मैं देखता हूं कि हाल खचाखच भरा है, तो पहले मैं सोच लेता हूं कि ये वे ही लोग हैं कि अगर मुझे फांसी लग रही हो, तो भी देखने आएंगे और मजा लूटेंगे। और अपने बच्चों को भी लाएंगे कि चलो, देख आओ। ऐसा अवसर फिर आए, न आए। इनका कोई भरोसा नहीं।
वे ही चेहरे, जब तुम गिर रहे होओगे तब भी ताली बजाएंगे। वे ही चेहरे,
जब तुम उठ रहे होओगे तब भी ताली बजाएंगे। इन चेहरों को देख कर, इनकी गिनती करके, इनका मत मान कर, तुम कहां पहुंच जाओगे? ये तुम्हारे साथ हैं, इससे क्या साथ मिलता है? ये तुम्हें सिर पर भी उठा लें, तो इनका मूल्य क्या? इनकी ऊंचाई कितनी है? इनके कंधे पर बैठ कर तुम कितने ऊंचे हो जाओगे? लेकिन आदमी जीवन लगा देता है, कैसे प्रतिष्ठा मिले! कैसे पद मिले! कैसे लोगों का आदर मिले!
नानक कहते हैं कि अहंकार से तो जो भी पैदा होगा वह झूठ ही होगा। यह सब अहंकार की ही खोज है। और यह पारस्परिक है।
नेता तुम्हारे दरवाजे पर आता है। सिर झुका कर प्रणाम करता है, कि मत देना। तुम उसे मत देते हो, वह पद पर पहुंच जाता है। एक म्युचुअल, एक पारस्परिक अहंकार की तृप्ति कर रहे हो।
मैंने सुना है कि एक गांव में ऐसा हुआ कि एक आदमी, जो गांव का घंटाघर था, वह उसमें घंटे बजाता था। और गांव में छोटा एक टेलीफोन एक्सचेंज था। रोज टेलीफोन एक्सचेंज नौ बजे सुबह, किसी का फोन आता था कि कितना समय है? तो टेलीफोन एक्सचेंज उसको समय बता देता था। वह नौ के घंटे बजा देता था। और नौ बजे टेलीफोन एक्सचेंज जब घंटे बजते घंटाघर के तो अपनी घड़ी ठीक कर लेता था। यह सालों तक चला। यह तो अचानक एक दिन उस टेलीफोन एक्सचेंज वाले ने पूछा कि भाई, तुम हो कौन? रोज ही पूछते हो ठीक नौ बजे! उसने कहा कि मैं घंटाघर का रख वाला हूं। घंटे बजाने के लिए पूछता हूं कि कितना समय? उन्होंने कहा कि हद हो गयी! अब पता ही नहीं कि क्या हालत होगी समय की। क्योंकि हम तुम पर भरोसा कर रहे हैं, तुम हम पर भरोसा कर रहे हो।
एक पारस्परिक स्थिति है। मैं आपकी तरफ देखता हूं, आप मेरी तरफ देखते हैं। मैं आपका सम्मान करता हूं, आप मेरा सम्मान करते हैं। मैं आपके अहंकार को सहारा देता हूं, आप मेरे अहंकार को सहारा देते हैं। ऐसे यह सारा का सारा झूठ का बड़ा जाल है।
नानक कहते हैं, "उस मालिक का काम सच्चा। सच्चे का काम सच्चा।"
तुम पहले सत्य को खोजो। उसके पहले कुछ भी मत करो। क्योंकि उसके पहले तुम जो भी करोगे वह असत्य हो जाएगा। एक ही बात करने योग्य है कि सत्य को

पहचानो। और फिर तुम कुछ करना। क्योंकि फिर सत्य तुम्हारे भीतर से कुछ करेगा।
"प्रणाम करना हो तो उसे ही प्रणाम करो। वह आदि, शुद्ध, अनादि, अनाहद है। और युग-युग से एक ही वेश वाला है।"
यह "एक ही वेश वाला है", इसे याद रखना। जो चीज भी बदलती हो, वह माया है,
वह संसार है, वह असत्य है, सपना है। और जो चीज सदा शाश्वत रहती हो और कभी न बदलती हो, वही परमात्मा है। तो तुम इस सूत्र को अगर ठीक से पकड़ लो, तो तुम्हारे भीतर तुम आज नहीं कल, उसको खोज लोगे जो कभी नहीं बदलता है।
शायद निरीक्षण किया हो, न किया हो, तुम्हारे भीतर कोई ऐसा तत्व है जो कभी नहीं बदलता है। कभी क्रोध आता है, लेकिन चौबीस घंटे नहीं रहता। इसलिए क्रोध माया है। कभी प्रेम आता है, लेकिन प्रेम चौबीस घंटे नहीं रहता, प्रेम माया है। कभी तुम प्रसन्न होते हो, लेकिन प्रसन्नता टिकती नहीं, माया है। कभी तुम उदास होते हो, उदासी चौबीस घंटे नहीं रहती, सदा नहीं रहती, इसलिए माया है।
फिर क्या है तुम्हारे भीतर कुछ, जो चौबीस घंटे टिकता है? वह साक्षी का भाव है जो चौबीस घंटे टिकता है। जो चौबीस घंटे है। चाहे तुम जानो, चाहे न जानो। कौन देखता है क्रोध को? कौन देखता है लोभ को? कौन देखता है प्रेम को, घृणा को? कौन पहचानता है कि मैं उदास हूं? कौन कहता है कि प्रसन्न हूं? कौन कहता है बीमार हूं, स्वस्थ हूं? कौन कहता है कि रात नींद अच्छी हुई? कौन कहता है कि रात सपने बहुत आए? कि नींद हो ही न सकी?
चौबीस घंटे तुम्हारे भीतर एक जानने वाला है। जाग रहा है। वही चौबीस घंटे है। बाकी सब आता है, जाता है। तुम उसी को पकड़ो। क्योंकि उसी में थोड़ी परमात्मा की झलक है।
इसलिए नानक कहते हैं कि प्रणाम करना हो तो उसे ही। क्योंकि वह अनाहद है। युग-युग से एक ही वेश वाला है।
आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहतु जुग जुग एको वेसु।।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
सोलहवां प्रवचन

नानक उतमु नीचु न कोइ

पउड़ीः 32
इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख बीस।
लखु लखु गेड़ा अखिअहि एक नामु जगदीस।।
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीए होइ इकीस।
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस।।
"नानक" नदरी पाईए कूड़ी कूड़ै ठीस।।

पउड़ीः 33
आखणि जोरु चुपै नह जोरू। जोरु न मंगणि देणि न जोरू।।
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरू। जोरु न राजि मालि मनि सोरू।।
जोरु न सुरति गिआनु वीचारि। जोरु न जुगती छुटै संसारू।।
जिसु हथि जोरू करि वेखै सोइ। "नानक" उतमु नीचु न कोइ।।

सूत्र के पूर्व कुछ बातें समझ लें।
परमात्मा की खोज में हजारों हजार उपाय किए गए हैं। लेकिन जब भी किसी
ने उसे पाया है, तो साथ में यह भी पाया कि उपाय से वह नहीं मिलता है, मिलता तो प्रसाद से है। उसकी अनुकंपा से मिलता है।
लेकिन बात बहुत जटिल हो जाती है, क्योंकि उसकी अनुकंपा बिना प्रयास
के नहीं मिलती। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। कि जिन्हें भी उस मार्ग पर जाना है, इस विवाद, उलझन की स्थिति को बिना समझे वे न जा सकेंगे।
कुछ उदाहरण लें। कोई शब्द भूल गया, किसी का नाम भूल गया है। लाख उपाय करते हैं याद करने का। लगता है जीभ पर रखा है। अब आया, अब आया, फिर भी आता नहीं। सब तरफ से सिर मारते हैं। हजार तरकीबों से खोजने की कोशिश करते हैं। और भीतर बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है, क्योंकि यह भी लगता है कि बिल्कुल जीभ पर रखा है। इतने पास है, और फिर भी इतने दूर मालूम होता है। आखिर थक जाते हैं। क्योंकि आदमी क्या करेगा? उपाय कर लेगा, बेचैन हो लेगा, फिर थक जाएगा। थक कर दूसरे काम में लग जाते हैं। अखबार पढ़ते हैं, बाहर मकान के घूमने निकल जाते हैं, मित्र से गपशप करते हैं, चाय पीते हैं। और अचानक, अनायास, जब कि कोई भी प्रयास नहीं कर रहे थे, वह नाम उठ कर याद में आ जाता है।
जब हम बहुत चेष्टा करते हैं, तब हमारी चेष्टा भी बाधा बन जाती है। क्योंकि बहुत चेष्टा का अर्थ है कि मन में बड़ा तनाव हो जाता है। जब हम अति आग्रह से खोज करते हैं, तब हमारा आग्रह भी अड़चन हो जाता है, क्योंकि उतने आग्रह से हम खुले नहीं रह जाते, बंद हो जाते हैं। और मन जब बहुत एकाग्र होता है, तब एकाग्रता के कारण संकीर्णता पैदा हो जाती है। चित्त का आकाश छोटा हो जाता है। और संकीर्णता इतनी छोटी हो सकती है कि एक छोटा सा शब्द भी उसमें से पार न हो सके।
एकाग्रता का अर्थ ही संकीर्णता है। जब तुम चित्त को एकाग्र करते हो
तो उसका अर्थ है, सब जगह से बंद और केवल एक तरफ खुला हुआ। एक छेद भर खुला है, जिससे तुम देखते हो। बाकी सब बंद कर लिया। तभी तो एकाग्रता होगी।
जैसे किसी आदमी के घर में आग लगी है, तो उसका मन घर की आग पर एकाग्र हो जाता है। उस समय पैर में जूता काट रहा है, इसका पता न चलेगा। उस समय किसी ने उसकी जेब में हाथ डाल कर रुपए निकाल लिए, इसका पता न चलेगा। उस समय कुछ भी पता न चलेगा। उस समय वह आग बुझाने में लगा है। हाथ जल जाएगा, तो भी पीछे पता चलेगा। चित्त एकाग्र है। सारी शक्ति आग पर लगी है। सब भूल गया।
एकाग्रता का अर्थ संकीर्णता है। जब तुम प्रयास करते हो किसी एक चीज
को पाने का, एक नाम ही याद नहीं आ रहा है, तब तुम्हारा चित्त एकाग्र हो जाता है। एकाग्र होते ही संकीर्ण हो जाता है।

और जटिलता यही है। परमात्मा विराट है। संकीर्ण चित्त से उसे पाया नहीं जा सकता। एक छोटा शब्द याद नहीं आता, तो उस परमात्मा का नाम तो कैसे याद आएगा? और जीभ पर ही नहीं रखा है, हृदय पर रखा है; याद नहीं आता। फिर अनायास जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे होते, चित्त शिथिल हो जाता है। द्वार-दरवाजे खुल जाते हैं। एकाग्रता की संकीर्णता विलीन हो जाती है। फिर तुम खुल गए। उस क्षण में परमात्मा प्रवेश कर जाता है।
लेकिन मजा यही है कि अगर तुमने पहले प्रयास किया हो, तो ही यह दूसरी घटना घटेगी। अगर पहले प्रयास ही न किया हो, तो यह दूसरी घटना न घटेगी। वह तुमने जो पहले जद्दोजहद की नाम को याद करने की, उस जद्दोजहद का ही यह अंतिम हिस्सा है। तुम इतने जोर से कोशिश किए कि हार गए। फिर कोशिश छोड़ दी। लेकिन वह जो जोर की तुमने कोशिश की थी, चित्त से सरक कर अचेतन में चली गयी। वह कोशिश अब भी जारी है भीतर। अब ऊपर से तो कोशिश बंद हो गयी, लेकिन अब भीतर कोशिश जारी है। इसलिए चाय पीते वक्त, अखबार पढ़ते वक्त, वह नाम याद आ गया। तो कोशिश दो तरह की है। एक तो तुम जो करते हो। तुम्हारी की गयी कोशिश
से परमात्मा न मिलेगा। फिर तुम हार गए, थक गए, फिर तुमने कोशिश छोड़ दी। लेकिन तुमने जो कोशिश की, वह तुम्हारे रोएं-रोएं में समा गयी। तुम्हारी धड़कन-धड़कन में व्याप्त हो गयी। वह कोशिश तुम्हारे होने का ढंग हो गया। अब तुम उसे छोड़ भी नहीं सकते। अब तुम कुछ भी करो, वह भीतर चल रही है। उसकी एक अंतर्धारा बह रही है। उसी अंतर्धारा में परमात्मा का उदय होगा। क्योंकि अब वह कोशिश अचेतन की है, जिसको मनोवैज्ञानिक अनकांशस कहते हैं।
कांशस बहुत छोटा है। चेतन मन एक हिस्सा है। अचेतन मन नौ गुना बड़ा है।
तो चेतन मन का एक दरवाजा है, अचेतन के नौ दरवाजे हैं। ऐसा ही जैसे बर्फ का एक टुकड़ा पानी में तैर रहा हो, तो एक हिस्सा ऊपर होता है, नौ हिस्सा नीचे डूबा होता है।
जब तुम चेतन से कोशिश करते हो, तब तुम्हें कुछ लाभ न होगा। लाभ यही होगा, परोक्ष, कि चेतन की कोशिश जब आखिरी सीमा पर आ जाएगी, और तुम थक जाओगे, तब तुम तो कोशिश बंद कर दोगे, लेकिन कोशिश अचेतन में जारी रहेगी। तुम तो छोड़ दोगे, अचेतन अब छोड़ने वाला नहीं है।
इसका अर्थ यह हुआ कि चेतन की कोशिश धीरे-धीरे अचेतन की कोशिश बन जाती है। और जब अचेतन की कोशिश बन जाती है, तब जप अजपा हो गया। अब तुम्हें जप करना नहीं पड़ता। अब हो रहा है। अब भीतर चल रहा है। तुम बाजार जाओ, दूकान पर बैठो, काम-धंधा करो, सोओ, तो भी जप चल रहा है। क्योंकि अब अचेतन में प्रविष्ट हो गया। अब तुम्हारे राई-रत्ती, तुम्हारे कण-कण में वही धुन बज रही है। तुम्हें भी सुनायी न पड़े, लेकिन बज रही है।
चेतन का इतना ही उपाय है कि वह अचेतन तक पहुंचा दे। किसी दिन विस्फोट होगा। और अचानक परमात्मा सामने तुम पाओगे। तब तुम्हें लगेगा, उसकी अनुकंपा से मिला। क्योंकि तुमने तो खोज भी छोड़ दी थी। तुमने तो प्रयास भी न किया था। तुम तो थक कर हार भी चुके थे। तुम तो कभी के रुक गए थे। और मंजिल आ गयी। तो तुम्हारे चलने से तो नहीं आयी। क्योंकि जब तक तुम चलते रहे तब तक तो आयी ही नहीं। फिर तुम तो रुक गए। तुमने तो यात्रा ही बंद कर दी। और अचानक तीर्थ सामने आ गया! यात्रा बंद करते ही सामने आ गया। तो स्वभावतः तुम्हें लगेगा कि उसकी अनुकंपा से हुआ। सभी पहुंचने वालों को लगा है कि उसकी अनुकंपा से हुआ। तो एक तो कारण यह है।
लेकिन पहले चेतन से पूरी कोशिश कर लेनी है। तुम यह मत सोचना कि जब उसकी अनुकंपा से होना है, तो हम क्यों कुछ करें? जब होना ही उसकी कृपा से है, तो जब होना होगा हो जाएगा। हम क्यों झंझट में पड़ें?
तब कभी भी न होगा। और अगर तुमने सोचा कि हमारी ही चेष्टा से होना है, इसलिए हम चेष्टा से कभी भी बंद न होंगे, हम चेष्टा जारी रखेंगे, तब भी न होगा। तुम्हारी चेष्टा और उसकी अनुकंपा का जहां मिलन होता है, वहां तुम्हारी चेष्टा तो शांत हो गयी होती है, उसकी अनुकंपा ही रह जाती है। तुम तुम्हारे चेतन तक सीमित हो, अचेतन में वही छिपा है। तुम तुम्हारे चेतन मन और विचार की सीमा में बंद हो, उससे गहरे में वही बैठा है। वह मिला ही हुआ है। लेकिन चेतन और अचेतन के बीच का दरवाजा तोड़ना तुम्हारी चेष्टा से होगा। और मिलने की प्रतीति उसकी अनुकंपा से होगी।

जिन्हें खोजना है, उन्हें पूरी खोज करनी पड़ेगी, और खोज छोड़नी भी पड़ेगी। लेकिन पूरी करके ही छोड़ना, बीच में छोड़ा तो व्यर्थ है। क्योंकि जब तुम्हारी खोज पूरी हो जाती है, और तुमने अपने को दांव पर पूरा लगा दिया, कुछ भी बचाया नहीं, उसी क्षण में जो चेतन की खोज थी वह अचेतन में प्रवेश कर जाती है। वही सीमा है। वहां तुम्हारे होश की दुनिया समाप्त हुई। वहां तुम समाप्त हुए, तुम्हारा अहंकार समाप्त हुआ।
नींद में तुम्हारा कोई अहंकार होता है? नींद में तुम्हारी कोई भी तो अकड़ नहीं रह जाती। नींद में कोई यह भी तो कहने वाला नहीं रह जाता कि मैं हूं। सम्राट हूं, धनपति हूं। नींद में मैं बिल्कुल खो जाता है। ठीक ऐसे ही, अचेतन में तुम्हारे मैं का कोई स्वर नहीं रह जाता। मैं चेतन मन के बीच बनी हुई घटना है। प्रयास से मैं टूटेगा, क्योंकि जब तुम थकोगे तब अहंकार विसर्जित हो जाएगा। अहंकार विसर्जित होते ही अचेतन के द्वार खुल गए। और अचेतन के द्वार ही परमात्मा के द्वार हैं। वहीं से कोई पहुंचा है। लेकिन तब वहां तुम तो हो ही नहीं कहने को कि मैं। इसलिए जब भी उपलब्धि होगी, तुम कहोगे उसकी कृपा, उसकी अनुकंपा।
इससे एक और भ्रांति पैदा होती है। इससे यह भ्रांति पैदा होती है कि क्या किसी पर उसकी ज्यादा कृपा और किसी पर उसकी कम कृपा है? क्योंकि अगर उसी की कृपा से होता है, तो किसी को हो रहा है और इतनों को नहीं हो रहा है। तब तो ब.ड़ा अन्याय है। ध्यान रखना, तुम्हारे प्रयास से तुम उसकी कृपा के योग्य बनते हो। उसकी कृपा तो बरस ही रही है, लेकिन तुम योग्य नहीं होते। इसलिए जो मिल रहा है उसे भी तुम स्वीकार नहीं कर पाते। उसकी कृपा में कोई अंतर नहीं है।
नानक कहते हैं, उसके सामने न तो कोई ऊंच, न कोई नीच; उसके सामने न तो कोई योग्य, न कोई अयोग्य; वह बांटे जा रहा है। लेकिन अगर तुम लेने को तैयार नहीं हो, तो तुम चूके चले जाओगे। तुम्हारी तैयारी के कारण वह तुम्हें नहीं देता है। वह तो दिए ही चला जाता है। तुम्हारी तैयारी के कारण तुम लेने में समर्थ होते हो।
जैसे एक जौहरी आए, और एक हीरा पड़ा हो और उठा ले। और तुम भी गुजरे थे उसके पास से। हीरा तुम्हारे लिए भी उतना ही उपलब्ध था, हीरे ने जरा भी फासला नहीं किया है कि जौहरी के हाथ जाऊंगा, और तुम्हारे हाथ न जाऊंगा। तुमने उठाया होता तो हीरा मना न करता। हीरा तुम्हारे लिए भी उतना ही प्राप्त था। लेकिन तुम्हारे पास आंख न थी कि तुम पहचान सको कि हीरा है। और तुम्हारे पास वह परख न थी कि तुम हीरे को उठा लो। जौहरी के पास परख थी। जौहरी के पास आंख थी, तैयारी थी।
परमात्मा तो तुम्हारे पास सामने ही पड़ा है। जहां भी तुम नजर उठाते हो, वही है। लेकिन तुम्हारे पास नजर नहीं है। तुम्हारी आंखें उसे देख नहीं पातीं। तुम्हारे हाथ उसे छू नहीं पाते। तुम्हारे कान उसे सुनते नहीं हैं। तुम बधिर हो, अंधे हो, लंगड़े हो। वह बुलाता है तो भी तुम दौड़ नहीं पाते। तुम उसे सुन ही नहीं पा रहे हो। और वह चारों तरफ मौजूद है। उसकी उपलब्धि में किसी को कोई अंतर नहीं है। उसके सामने सब बराबर हैं। होंगे ही। क्योंकि सभी उसी से आते हैं। सभी उसी में लीन हो जाते हैं। भेद कैसे होगा?
तुम क्या अपने दाएं हाथ और बाएं हाथ में भेद करते हो? कि दाएं हाथ में चोट लगे तो ज्यादा दर्द होता है, बाएं में लगे तो कम होता है? दोनों तुम्हारे हैं। बाएं और दाएं का फर्क तो ऊपरी है, भीतर तो तुम एक ही हो।
तो क्या गरीब और अमीर में परमात्मा अंतर करता है? क्या ज्ञानी और अज्ञानी में अंतर करता है? क्या अच्छे और बुरे में अंतर करता है? पापी और पुण्यात्मा में अंतर करता है? तब तो उसका दान भी सशर्त हो गया, कंडीशनल हो गया। तब तो वह भी कहता है कि तुम ऐसे होओगे तो मैं दूंगा। तब तो वह तुम्हें नहीं देता, अपनी शर्त को ही देता है। यह एक सौदा हो गया।
नहीं, परमात्मा तो दे ही रहा है बेशर्त; अनकंडीशनल उसकी वर्षा है। अगर तुम नहीं ले पा रहे हो तो कहीं तुम ही चूक रहे हो। वह तो द्वार पर दस्तक देता है, लेकिन तुम सोचते हो, शायद हवा का झोंका आया होगा। उसके पद-चिह्न तुम्हें दिखाई पड़ते हैं, लेकिन तुम व्याख्या करते हो। और व्याख्या में ही

तुम चूक जाते हो। तुम व्याख्या ऐसी कर लेते हो, जो कि तुम्हारे अंधेपन को बढ़ाती है।
बहुत तरह से तुम्हारी तरफ परमात्मा आता है। उसके आने में जरा भी कमी नहीं है। जितना वह बुद्ध के पास आया, जितना नानक के पास आया, उतना ही तुम्हारे पास आता है। उसके लिए कोई भी फर्क नहीं है, तुम में और नानक में। लेकिन नानक उसे पहचान लेते हैं, जौहरी हैं। बुद्ध उसका दामन पकड़ लेते हैं। तुम चूकते चले जाते हो।
तुम्हारे प्रयास से तुम योग्य बनोगे, परख के लायक बनोगे और तुम्हारे प्रयास से तुम्हारा अंधापन टूटेगा। तुम्हारे प्रयास से तुम्हारा अहंकार गिरेगा। हारोगे, थकोगे, गिर जाओगे। और जैसे ही तुम न रहोगे, वैसे ही तुम पाओगे कि वह सदा सामने था, नाक के बिल्कुल सीध में था, जहां नाक घूमती थी वहीं था। और वह सदा उपलब्ध था। अगर चूक रहे थे, तो तुम चूक रहे थे अपने कारण।
इसे ठीक से हृदय में समा लेना। अगर चूक रहे हो तो तुम चूक रहे हो अपने कारण। अगर पाओगे तो अपने कारण नहीं पाओगे, उसके प्रसाद से पाओगे। यह बात बेबूझ लगती है, जिन्होंने नहीं जाना। क्योंकि तब हमें लगता है कि जब हम अपने कारण चूक रहे हैं, तो हम पाएंगे भी अपने ही कारण। यह ज्यादा साफ तर्क मालूम पड़ता है कि जिस चीज को मैं अपने कारण चूक रहा हूं, अपने ही कारण पाऊंगा। बस, वहीं तर्क की भूल हो जाती है। चूक तुम अपने कारण रहे हो, पाओगे तुम उसकी कृपा से।
इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि तुम जब तक हो, तब तक तो तुम उसे पा ही न सकोगे। इसलिए तुम अपने कारण कैसे पाओगे? तुम ही तो बाधा हो। तुम्हारे कारण ही तो तुम चूक रहे हो। तुम्हारे होने के कारण ही तुम चूक रहे हो। तो जिस कारण से तुम चूक रहे हो, उसी से तुम कैसे पाओगे? वही तो कारण है चूकने का। तुम जितने समझते हो कि मैं हूं, उतनी ही बाधा है। उतनी ही मजबूत दीवाल है। यह दीवाल हट जाए, वह मौजूद है। चेतन प्रयास से दीवाल टूटेगी, द्वार खुलेगा। लेकिन परमात्मा की रोशनी सदा बाहर मौजूद थी।
जब तुम उसे पाओगे तो बहुत बातें साफ हो जाएंगी। एक बात साफ होगी कि अपने कारण चूका और तेरे कारण पाया। दूसरी बात साफ हो जाएगी कि तू पास था लेकिन मैं तुझे दूर खोज रहा था। तू जहां था वहां न खोज कर, मैं वहां खोज रहा था जहां तू था ही नहीं। इसलिए भटक रहा था। मैं एक ऐसी चीज के सहारे खोज रहा था, जिसके सहारे खोज हो ही नहीं सकती थी।
हर जीवन के आयाम में यात्रा के वाहन होते हैं। तुम नाव पर सवार हो कर समुद्र की यात्रा कर सकते हो, लेकिन नाव पर सवार हो कर तुम पृथ्वी की यात्रा न कर सकोगे। और तुम कितने ही कुशल नाविक हो, और तुमने कितने ही दूर के सागर पार किए हों, और तुम्हें कितना ही अनुभव हो सागरों का, अपनी नाव को उठा कर सड़क पर मत रख लेना। क्योंकि उसमें बैठ कर यात्रा नहीं हो सकती पृथ्वी पर। उसके कारण चल भी न सकोगे। उसके कारण, पैदल भी चल सकते थे, वह भी न हो सकेगा। वह नाव तुम्हारे गले से बंध गयी, और तुम्हारे अनुभव के कारण। क्योंकि तुमने बड़े-बड़े सागर पार किए हैं, क्या यह छोटी सी पृथ्वी का टुकड़ा? इतने खतरनाक सागर पार किए! तो क्या इस छोटी सी जमीन को तुम पार न कर सकोगे? लेकिन नाव यहां वाहन नहीं बन सकती।
यही हो रहा है। अहंकार की नाव संसार में तो वाहन है। वहां तो उसके बिना कोई चल ही नहीं सकता। वहां तो जो उसके बिना चलेगा, गिरेगा। वहां तो अहंकार की ही प्रतिस्पर्धा है। वहां तो सारा संघर्ष मैं का है। और जो जितने बड़े अहंकार से चलेगा उतना सफल होगा वहां। भला वह सफलता अंत में असफलता सिद्ध हो, वह दूसरी बात! लेकिन वहां अकड़ जीतती है। वहां अकड़ का पागलपन जीतता है। क्योंकि वह दुनिया पागलों की है।
लेकिन अगर इसी अहंकार को ले कर तुम परमात्मा की तरफ जाने लगे, तब भूल
हो जाएगी। तुम चाहे कितने ही सफल हुए हो, सिकंदर रहे हो, नेपोलियन रहे हो, संसार में तुमने कितनी ही सफलता पायी हो, इसी नाव को ले कर तुम परमात्मा की तरफ मत जाना। क्योंकि यही बाधा हो जाएगी। इसी की वजह से तुम जकड़ जाओगे।
नाव को रख कर उसी में बैठे रह जाओगे। यात्रा तो असंभव होगी।

जिस दिन कोई उसकी झलक पाता है, उस दिन पाता है, अपने कारण खो रहा था। तेरे प्रसाद से तू मिला। और यह भी समझ में आता है कि हमने जो प्रयास किए वे इतने छोटे थे, जो मिलता है वह इतना बड़ा है कि उन दोनों के बीच कोई संगति नहीं हो सकती। जैसे कोई सुई से तो यात्रा कर रहा हो, सुई को पकड़ कर, और सागरों की उपलब्धि हो जाए। तो तुम भी नहीं सोच पाओगे कि सुई से और सागर की उपलब्धि का क्या लेना-देना?
आदमी के सभी प्रयास सुई के जैसे हैं। छोटे हैं, बहुत छोटे हैं। जब तक तुम्हें मिला नहीं परमात्मा, तब तक तुम तौल नहीं सकते कि तुम जो कर रहे हो उसका मतलब क्या है? कोई आदमी कह रहा है कि मैं मंदिर में पूजा कर रहा हूं। क्या कर रहे हो तुम पूजा में? घंटा बजा रहे हो, फूल चढ़ा रहे हो। माना कि बड़ा अच्छा कृत्य कर रहे हो, लेकिन इसकी क्या संगति है परमात्मा को पाने से? कि तुम कहो कि मैं रोज घंटे भर बैठ कर तेरा जप करता हूं। तुम पागल हो गए हो! तुम बार-बार नाम ले लेते हो परमात्मा का घंटे भर तक, इससे तुम सोचते हो कि परमात्मा के मिलने की कोई संगति है? तुमने किया क्या है? तुम कहते हो, मैं चिल्लाता था, आवाज लगाता था। तुम्हारा कंठ और तुम्हारी आवाज, उनका मूल्य कितना है? तुम्हारे चिल्लाने की पहुंच कितनी है?
और जो तुम पाओगे, पाते ही तुम्हें लगेगा कि मेरे प्रयास तो बिल्कुल बचकाने थे। जिनका कोई भी मूल्य नहीं है। चाहे मंदिर जाओ, तीर्थ जाओ, काबा- काशी जाओ, पूजा करो, प्रार्थना करो, जप-तप करो, शीर्षासन करो, उलटे-सीधे आसनों में लगो, चिल्लाओ, पुकारो, नाम जपो, तुम जो भी कर रहे हो, तुम्हीं कर रहे हो। तुम्हारे करने का मूल्य कितना है? उस निर्मूल्य को पाने के लिए तुम ये क्षुद्र प्रयास कर रहे हो, जिनकी बाजार में कीमत है। तुम अगर एक घंटे बाजार में जा कर काम करो, तो तुम्हें एक रुपया मिल जाता है। तुम एक घंटे पूजा करते हो, परमात्मा पाना चाहते हो? एक रुपया समझ में आता है, कि तुम घंटे भर काम करते हो। अगर घंटे भर श्रम करोगे तो कुछ कमा लोगे, उसकी कुछ संगति है। लेकिन ध्यान से तुम कैसे कमा लोगे, उसकी क्या संगति है?
जो मिलता है वह अपरंपार है। जो हमने किया था वह ना-कुछ है। जैसे ही तुम पाओगे, यह भेद दिखाई पड़ेगा कि हम तो चम्मच ले कर चले थे और यह सागर उतर आया। उस क्षण तुम निश्चित ही कहोगे कि तेरी कृपा है, तेरी अनुकंपा है।
इसलिए सभी संतों ने प्रयास किए हैं और सभी संतों ने अंतिम वक्तव्य प्रयास के विपरीत दिए हैं। और फिर भी अपने भक्तों को कहा कि प्रयास करते रहना। प्रयास मत छोड़ देना। इसलिए संतों की वाणी अतर्क्य मालूम पड़ती है, इल्लॉजिकल मालूम पड़ती है। हमारा सीधा-साफ गणित है कि अगर प्रयास से मिलता हो तो करते रहें।
मैं कभी बोलता हूं कि नहीं, प्रयास से नहीं मिलेगा। उसी सांझ मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, फिर हम प्रयास क्यों करें? तो हम सब छोड़ दें? तो ध्यान इत्यादि का जो हम श्रम कर रहे हैं, क्यों करें अगर वह बिना प्रयास के मिलेगा? और आप ही ने कहा कि प्रयास से नहीं मिलता, तो फिर प्रयास का क्या सार?
इन पागलों को... इनका जो तर्क है, वह जीवन की आत्यंतिक व्यवस्था से भी मेल खाना चाहिए, ऐसी इनकी धारणा है। जीवन का आत्यंतिक रूप तुम्हारे तर्क को मान कर नहीं चलता। तुम्हें अपने तर्क को ही उसके हिसाब से जमाना पड़ता है। वह तुम्हारी फिक्र नहीं करता। सत्य तुम्हारे मन की धारणाओं की चिंता नहीं करता। तुम्हें अपने मन की धारणाएं ही उसके अनुरूप जमानी पड़ती हैं। ऐसा हुआ। इस सदी के प्रारंभ में भौतिकशास्त्रियों ने, फिजिसिस्ट ने
एक खोज की। और वह खोज बड़ी तर्क के बाहर थी। वह खोज यह थी कि जो पदार्थ का अंतिम कण है इलेक्ट्रान, उसका व्यवहार बड़ा बेबूझ है। वह संतों की वाणी से तो मेल खाता है, विज्ञान की परीक्षण और विज्ञान की प्रयोगशाला में उसकी कोई संगति नहीं है। उससे ज्यादा पहेली की और कोई घटना कभी वैज्ञानिक के समझ में नहीं आयी थी। वह जो इलेक्ट्रान है, वह एक साथ दोहरा व्यवहार करता है; जो कि बिल्कुल गणित के बाहर है। एक साथ वह कण की तरह भी व्यवहार करता है और तरंग की तरह भी। यह असंभव है।
अगर ज्यामिति तुम ने पढ़ी है, तो लकीर लकीर है और बिंदु बिंदु है।
बिंदु कभी लकीर जैसा नहीं हो सकता और लकीर कभी बिंदु जैसी नहीं हो सकती।

क्योंकि बिंदु तो एक बिंदु है। लकीर बहुत से बिंदुओं का जोड़ है। अनंत बिंदुओं का जोड़ है। अगर तुम किसी एक ऐसे बिंदु को बना सको अपनी पुस्तक में, जिसको तुम देखते रहो तो कभी तो वह लकीर हो जाए और कभी बिंदु हो जाए, तो तुम खुद ही घबड़ा जाओगे। कि या तो तुम पागल हो गए हो, या कोई मजाक कर रहा है, कोई जादू कर रहा है। क्योंकि बिंदु या तो बिंदु है, या लकीर। दोनों एक साथ, एक ही चीज के रूप नहीं हो सकते।
और ऐसे ही कण और तरंग हैं। कण एक बात है, बिंदु है; और तरंग है लहर। लेकिन फिजिसिस्ट इस सदी के प्रारंभ में इस नतीजे पर पहुंचे कि इलेक्ट्रान दोनों व्यवहार एक साथ कर रहा है। एक साथ, एक ही समय में वह तरंग भी है और कण भी। बड़ी मुसीबत हो गयी--सारा तर्क!
और विज्ञान तो तर्कनिष्ठ है। वह कोई रहस्यवादियों का खेल तो नहीं है।
वह कोई काव्य तो नहीं है। वह तो गणित है। तो क्या करना? जितना खोजा उतनी ही मुसीबत बढ़ती गयी। और आखिर में यह स्वीकार कर लेना पड़ा कि यह दोनों ही उसका एक साथ व्यवहार हो रहा है।
लोगों ने पूछा खोजियों से कि आपको कहते शर्म नहीं आती? ये दोनों चीजें
एक साथ कैसे हो सकती हैं? यह तो बिल्कुल गणित के विपरीत है। और इससे यूक्लिड की पूरी ज्यामेट्री गलत हो जाती है। तो वैज्ञानिकों ने जो उत्तर दिए, उन्होंने कहा, हम करें भी क्या? अगर वह कण ज्यामेट्री को नहीं मानता और यूक्लिड को नहीं मानता, तो हम क्या करें? हमने सब तरफ से खोज कर देख लिया। वह जो व्यवहार कर रहा है, हम तो वही कहेंगे। अगर वह तर्क के बाहर है, तो तर्क के बाहर है। तर्क को तुम सुधार लो। लेकिन उस कण को कौन समझाने जाए कि तू तर्क के हिसाब से चल?
इसलिए नयी ज्यामेट्री का जन्म हुआ--नान यूक्लिडियन ज्यामेट्री। बदलनी पड़ी ज्यामेट्री। वह कण तो मानेगा नहीं। इलेक्ट्रान, वह तो किसी की सुनेगा नहीं। वह तो जैसा कर रहा है, कर रहा है। तुम अपना गणित ठीक जमा लो। तुम अपने तर्क में फर्क कर लो।
पहली दफा इलेक्ट्रान के अध्ययन से यूक्लिड व्यर्थ हो गया। यूक्लिड की
सब परिभाषाएं खराब हो गयीं। और अरिस्टोटल के सब तर्क के सिद्धांत व्यर्थ हो गए!
यही मुसीबत संतों की है। वे वैज्ञानिकों से पहले उसके दरवाजे पर दस्तक दिए हैं। और वहां उन्होंने पाया कि प्रयास के बिना नहीं मिलता और प्रयास से भी नहीं मिलता। यह स्थिति है। इसमें कुछ किया नहीं जा सकता। प्रयास भी करना पड़ता है और मिलता बिना प्रयास के है। लेकिन अगर तुम समझो, तो भीतर एक गहरी संगति है। वह ख्याल में आ जाए।
तो अपनी तरफ से तुम पूरा दांव पर लगा देना। मिलेगा तो वह उसकी अनुकंपा से। लेकिन उसकी अनुकंपा पाने के योग्य तुम तभी बनोगे, जब तुमने अपने को पूरा दांव पर लगा दिया। यही इस सूत्र का सार है। अब इसको समझने की कोशिश करें।
इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख बीस।
लखु लखु गेड़ा अखिअहि एक नामु जगदीस।।
यदि एक जीभ से लाख जीभ हो जाएं, और लाख से भी बीस लाख हो जाएं, तो मैं प्रत्येक जीभ से लाख-लाख बार एक जगदीश का नाम जपूंगा।
तब तुम थकोगे, उसके पहले न थकोगे। तुमने अभी जपा ही क्या है? तुमने अभी ध्यान ही कितना किया है? तुमने अभी पुकारा ही क्या है? तुम चिल्लाए ही कहां? तुमने पूरी ताकत ही नहीं लगायी है। अगर तुम्हारे घर में आग लगी हो तो तुम जितनी तेजी से बाहर भागते हो, इतनी तेजी से भी तुम परमात्मा की तरफ नहीं भागे हो। कि तुम्हारी पत्नी मर जाए तो जैसे जार-जार हो कर तुम रोते हो, ऐसा तुम उसके वियोग के लिए अभी तक नहीं रोए। कि तुम्हारा बच्चा भटक जाए तो तुम जैसे पागल हो कर बेतहाशा खोजने निकल पड़ते हो, ऐसी तुमने अभी तक उसकी खोज नहीं की। तुम्हारी खोज कुनकुनी है। अभी तुम उबले नहीं।
नानक उस उबलने की बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि एक जीभ से लाख जीभ हो जाएं, और लाख से बीस लाख हो जाएं, तो मैं प्रत्येक जीभ से लाख-लाख बार एक जगदीश का नाम जपूंगा।

रोआं-रोआं उसी के नाम से भर जाए। और रोआं-रोआं उसी की प्यास अनुभव करे। और रोएं-रोएं में एक ही पुकार गूंजने लगे कि तुझे पाना है। और जीवन में सब व्यर्थ हो जाए। बस, एक परमात्मा की सार्थकता बचे। और सब गौण हो जाए। और सब छोड़ने को तुम तैयार हो जाओ। एक उसको पाना ही लक्ष्य बचे, तब तुम एकाग्र होओगे।
स्वामी के नाम की यही सीढ़ियां हैं कि एक जीभ से लाख जीभ हो जाएं, लाख जीभ से बीस लाख हो जाएं। और फिर एक-एक जीभ लाखों बार उसका ही नाम जपे।
स्वामी के नाम की यही सीढ़ियां हैं, जिन पर चल कर साधक इक्कीस हो जाता है। अर्थात भगवतस्वरूप को प्राप्त हो जाता है।
इक्कीस शब्द आता है सांख्यों की गणना से। क्योंकि सांख्य कहते हैं,
दो तरह से इक्कीस हो सकते हैं। सांख्यों की गणना बड़ी कीमती है। सांख्य शब्द का अर्थ भी होता है, गणना, संख्या। उसी से सांख्य बना है। क्योंकि उन्होंने पहली गणना की है मनुष्य के अस्तित्व की, इसलिए उस दर्शन का नाम ही सांख्य हो गया।
सांख्य कहते हैं कि पांच महाभूत उस एक से पैदा होते हैं। ये जो पृथ्वी, जल, आकाश... ये पांच महाभूत उससे पैदा होते हैं। लेकिन ये महाभूत तो स्थूल हैं। इन महाभूतों को बनाने वाली पांच तन्मात्राएं हैं, जो सूक्ष्म हैं। जो आंख से दिखाई नहीं पड़तीं। वैज्ञानिक भी राजी हैं कि तुम्हें जो दीवाल दिखाई पड़ती है, यह तो तुम्हें दिखाई पड़ती है। यह तो स्थूल रूप है। जैसी दीवाल है--तन्मात्रा--वह तो तुमने कभी देखी नहीं। वह तो वैज्ञानिक को थोड़ी सी उसकी झलक मिलती है। क्योंकि यह दीवाल तुम्हें तो थिर मालूम होती है, यह थिर नहीं है। यहां बड़ी गति है, और बड़ा जीवन है। एक-एक कण प्रकाश की गति से घूम रहा है। लेकिन गति इतनी ज्यादा है कि तुम उसे पकड़ नहीं पाते। वह इतनी सूक्ष्म है और इतनी तीव्र है... ।
प्रकाश की किरण चलती है एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील। एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील प्रकाश की गति है। प्रकाश की गति से दीवाल के अतिसूक्ष्म कण-- इलेक्ट्रान--घूम रहे हैं। उनकी गति इतनी तीव्र है कि तुम देख नहीं पाते। इसलिए दीवाल थिर मालूम पड़ती है। लेकिन दीवाल महान सक्रियता से गुजर रही है। हर चीज, पत्थर भी सक्रिय है और जीवंत है। और बड़ा कारोबार चल रहा है। इसलिए तो यह दीवाल एक दिन गिर जाएगी और खंडहर होगी। क्योंकि अगर यह बिल्कुल थिर होती तो खंडहर कैसे होती? अगर कोई चीज बिल्कुल थिर हो, तो नष्ट ही नहीं हो सकती। क्योंकि क्रिया न चल रही हो, तो भीतर संघर्षण नहीं होगा। संघर्षण नहीं होगा तो विनाश कैसे होगा?
इसलिए वैज्ञानिक सोचते हैं कि अगर किसी आदमी को बचाना हो लंबी उम्र तक, तो उसको शून्य डिग्री से नीचे ठंडा कर के बर्फ में रख देना चाहिए। तो फिर उसको अनंतकाल तक बचाया जा सकता है। क्योंकि गति कम हो जाती है। इसलिए तो हम फल को फ्रिज में रखते हैं। वह ठंडा रहता है, तो देर तक सड़ता नहीं। क्योंकि जितनी ठंडक होती है, उतनी गति क्षीण हो जाती है। इसलिए तो ठंडे मुल्कों के लोग ज्यादा उम्र पाते हैं, गर्म मुल्कों के लोगों की बजाय। क्योंकि जितनी गर्मी होती है, उतनी गति होती है। जितनी गति होती है, उतनी जल्दी क्षीणता हो जाती है। इसलिए तो तुम गर्मी में बेचैनी अनुभव करते हो। ठंड में अच्छा लगता है। सर्दी के दिनों में स्वस्थ मालूम पड़ते हो, गर्मी के दिनों में थोड़ा अस्वास्थ्य पकड़ने लगता है।
यह दीवाल परम-गति में लीन है। इसलिए गिरेगी। क्योंकि इसके भीतर संघर्षण हो रहा है। और संघर्षण होते-होते शक्ति क्षीण होगी। यह बिखर जाएगी, खंडहर हो जाएगा।
सांख्य कहते हैं कि पांच तन्मात्राएं हैं। वे सूक्ष्म रूप हैं। और उन पांच तन्मात्राओं के पांच महाभूत हैं, जो उनका स्थूल रूप हैं--दस। फिर पांच ज्ञानेंद्रियां हैं जो सूक्ष्म रूप हैं, और पांच कर्मेंद्रियां हैं जो स्थूल रूप हैं। आंख तुम्हारी कर्मेंद्रिय है, और देखने की क्षमता तुम्हारी सूक्ष्मेंद्रिय है। देखने की क्षमता न हो, तो आंख खो जाएगी, आंख रहे तो भी! कभी-कभी ऐसा होता है कि तुम आंख होते हुए अंधे हो जाते हो। क्योंकि तुम्हारा ध्यान कहीं और चला गया। और जब ध्यान कहीं और चला गया तो

देखने की क्षमता कहीं और चली गयी। कान है, वह स्थूल इंद्रिय है-- कर्मेंद्रिय, सुनने की क्षमता सूक्ष्म इंद्रिय है।
इसलिए तो नानक बार-बार कहते हैं, कि सुनिए। तो वे तुम्हारे इस कान के लिए नहीं कह रहे हैं। क्योंकि यह कान तो सुन ही रहा है। यह कान तो बंद ही नहीं होता। आंख तो कम से कम झपकती है, कान तो झपकता भी नहीं। तो क्या बार-बार कहना, सुनिए! वे भीतर की सूक्ष्म इंद्रिय को इशारा कर रहे हैं। जब वे कहते हैं सुनिए, तो वे यह कह रहे हैं कि कान के पास आ जाओ, इधर-उधर मत भटकना। नहीं तो कान तो सुन लेगा, तुम सुनने से वंचित रह जाओगे।
तो पांच सूक्ष्म इंद्रियां हैं, जिनका नाम ज्ञानेंद्रियां। और पांच स्थूल इंद्रियां हैं, जिनका नाम कर्मेंद्रियां। ऐसे बीस।
नानक कहते हैं कि जो अपना सब कुछ दांव पर लगा देगा, वह इक्कीस हो जाता है। वह इक्कीसवां परमात्मा है। और अगर तुमने दांव पर न लगाया और उसे न खोजा, तो भी तुम इक्कीस हो जाते हो, वह तुम्हारा अहंकार है।
इसलिए इक्कीस होने के दो ढंग हैं। बीस तो स्थिति है; इक्कीस होने के
दो ढंग हैं। या तो तुम परमात्मा को पा लो अर्थात असली आत्मा को पा लो, अपने स्वरूप को पा लो, तो इक्कीस हो जाओगे। और या फिर एक झूठे स्वरूप की कल्पना कर लो कि मैं यह हूं। धनी हूं, ज्ञानी हूं, शक्तिशाली हूं, त्यागी हूं, राजा हूं, कुछ अकड़ बना लो। तो भी इक्कीस हो जाओगे। लेकिन यह इक्कीसवां झूठ है। तो या तो बीस में एक झूठ जोड़ दो; बीस धन झूठ। या बीस में सत्य जोड़ दो; बीस धन सत्य। तुम इक्कीस हो जाओगे। हम सब भी इक्कीस हैं और नानक भी इक्कीस हैं। इससे ज्यादा तो कोई हो नहीं सकता। मगर हम झूठ को जोड़े हुए हैं। हमने बिना खोजे जोड़ लिया है। यह बड़े मजे की बात है।
तुमने कभी अपने को खोजा नहीं और तुम्हें ख्याल है कि तुम अपने को जानते हो। इससे बड़ा झूठ जगत में दूसरा नहीं है। तुमने न कभी अपने को खोजा और न झलक पायी अपनी कभी। फिर भी तुम कहते हो, मैं हूं। और तुम्हें कुछ भी पता नहीं कि तुम कौन हो? तुम्हें उतना ही पता है कि जितना दर्पण बताता है। दर्पण क्या खाक बताएगा? दर्पण में तुम थोड़े ही दिखाई पड़ते हो, तुम्हारी चमड़ी का बाहरी हिस्सा दिखाई पड़ता है। दर्पण में तो तुम्हारे वस्त्र दिखाई पड़ते हैं, देह दिखाई पड़ती है, तुम थोड़े ही दिखाई पड़ते हो। तुम्हारी आत्मा दर्पण में थोड़े ही झलकती है। तुम्हारा स्वरूप थोड़े ही दर्पण में झलकता है। दर्पण जितना बताता है, उसको तुम समझते हो, मैं हूं।
और इस मैं को तुम इक्कीस माने हुए हो। यही दुख है। यही नर्क है। अगर तुमने इक्कीसवां झूठ जोड़ लिया, तो तुम दुख में पड़ोगे ही। बीस तो वही रहेंगे, यह इक्कीसवां झूठ रहेगा, इसलिए तुम नर्क में पड़ जाओगे। बीस तो जो हैं, तब भी वही रहेंगे। अगर यह इक्कीसवां सच हो जाए, तो सच होते ही तुम परम मुक्ति को अनुभव करोगे। क्योंकि उन बीस के कारण उपद्रव नहीं है। वह तो जीवन की व्यवस्था है। यह इक्कीसवां उपद्रव है। अगर झूठ है तो पीड़ा लाएगा। इसलिए अहंकार जितना दुख देता है, और कोई चीज दुख नहीं देती। अहंकार के अतिरिक्त दुख का कोई सूत्र ही नहीं है। जितना दुख चाहिए हो उतना अहंकार बढ़ाओ। जितना अहंकार बढ़ाओगे, नर्क तुम्हारी मुट्ठी में होगा। जब चाहो, पैदा कर लो।
जितना आनंद चाहिए हो, उतना अहंकार घटाओ। जिस दिन अहंकार बिल्कुल न होगा, स्वर्ग तुम्हारी मुट्ठी में होगा। तुम्हारी छाया बन जाएगा। तुम जहां जाओगे, वहां स्वर्ग होगा। फिर तुम्हें नर्क नहीं भेजा जा सकता। अगर तुम्हें नर्क में भी पटक दिया जाए तो तुम पाओगे कि वहां भी स्वर्ग है। क्योंकि जिसके पास अहंकार नहीं, उसे सब जगह स्वर्ग है। और जिसके पास अहंकार है, उसे कोई जबर्दस्ती स्वर्ग में भी डाल दे, तो वहां भी दुख ही पाएगा। क्योंकि दुख का संबंध या सुख का संबंध स्थितियों से नहीं है। वह भीतर का इक्कीस सच है या झूठ... !
नानक कहते हैं कि जिसने सब दांव पर लगा दिया--स्वामी के नाम की यही सीढ़ियां हैं--दांव पर लगाना। लगाते जाना। ऐसी घड़ी आ जाए कि कुछ बचे ही न दांव पर लगाने को, सब लगा दिया... ।

जिन पर चल कर साधक इक्कीस हो जाता है, अर्थात भगवतस्वरूप को प्राप्त करता है। आकाश की, उच्च पद की चर्चा सुन कर, कीट के समान क्षुद्र लोगों को भी स्पर्धा हो जाती है।
यहां एक बड़ी महत्वपूर्ण बात वे कह रहे हैं, कैसे धर्म विकृत होता है!
नानक कहते हैं, उसकी कृपा-दृष्टि से ही कोई उसको प्राप्त करता है। झूठे लोग तो झूठी डींगें हांकते रहते हैं।
जब किसी के जीवन में उसका प्रकाश आता है, तो वह रुक नहीं सकता उसकी चर्चा करने से। जैसे फूल जब खिलेगा तो कैसे रुकेगा सुगंध देने से! और दीया जब जलेगा तो कैसे रुकेगा प्रकाश देने से? जब किसी के भी जीवन में भगवत्ता का अवतरण होता है, तो वह उसकी चर्चा करेगा। उसकी महिमा के गीत गाएगा। जो उसने पाया है, वह उसके रोएं-रोएं से प्रकट होने लगेगा, सुगंध की तरह, प्रकाश की तरह। वह बोलेगा तो उसे बोलेगा। वह चुप रहेगा तो उसमें ही चुप रहेगा। उसका सब होना उसी की खबर देगा।
नानक कहते हैं, इसे देख कर, आकाश की उच्च पद की चर्चा सुन कर, कीट के समान क्षुद्र लोगों को भी स्पर्धा हो जाती है।
जो बहुत छोटे-छोटे लोग हैं, उनके मन में भी बड़ी प्रतिस्पर्धा और बड़ी ईर्ष्या जगती है, कि अच्छा, तुमने पा लिया! तो पहला तो काम यह है कि वे इनकार करेंगे कि पाया नहीं है, सब बातचीत है।
इसलिए जब भी कोई परमात्मा को अनुभव करेगा, तो पहली घटना तो यह घटेगी
कि चारों तरफ लोग इनकार करने लगेंगे कि इस आदमी ने पाया-वाया नहीं है। यह सब बातचीत है। अब कहां कलियुग में कोई पा सकता है? वे हो गयीं सतयुग की बातें। वे हजार तरह के छिद्रान्वेषण करेंगे। वे हजार तरह के उपाय निकालेंगे कि सिद्ध कर दें कि इसने कुछ पाया नहीं।
अगर वे असफल हुए--जो कि वे असफल होंगे--अगर पाया है, तो कोई सिद्ध करने
का उपाय नहीं। न आचरण से तुम सिद्ध कर सकते हो कि नहीं पाया। न व्यवहार से तुम सिद्ध कर सकते हो कि नहीं पाया। न कपड़े-लत्तों से, न खाने-पीने से, फिर कोई चीज से तुम सिद्ध नहीं कर सकते कि नहीं पाया। जिसने पा लिया है, उसकी रोशनी सब तरफ से दिखाई पड़ेगी।
तब क्या करोगे? तब दूसरा उपाय है कि तुम्हारे बीच जो सचमुच सर्वाधिक अहंकार और स्पर्धा से भरे लोग हैं, वे घोषणा करेंगे कि हमने भी पा लिया है। अहंकार पहले तो इनकार करेगा, कि तुम कैसे पा सकते हो मुझ से पहले, जब मैं मौजूद हूं? जब देखेगा कि कोई उपाय असिद्ध करने का नहीं है, तो अहंकार दूसरी घोषणा करेगा कि मैंने भी पा लिया है।
तो नानक कहते हैं कि क्षुद्र लोग भी--सब से बड़ी क्षुद्रता अहंकार है,
और कोई क्षुद्रता नहीं है--कीड़ों की तरह क्षुद्र लोग भी स्पर्धा से भर जाते हैं। और तब वे झूठी डींगें हांकने लगते हैं।
तो दुनिया में अगर एक सदगुरु होता है, तो कम से कम निन्यान्नबे असदगुरु होते हैं। इसी अनुपात में घटना घटती है। और मजा यह है कि असदगुरु तुम्हें ज्यादा आसानी से आकर्षित कर सकता है, बजाय सदगुरु के। क्योंकि असदगुरु तुम्हारी ही भाषा बोलता है। और असदगुरु तुम्हें भलीभांति पहचानता है। और वही सब करता है जो तुम चाहते हो, जो तुम्हारी भीतरी मनोकांक्षा है। अगर तुम चाहते हो कि हाथ से राख प्रकट हो, तो राख प्रकट करवा देता है। अगर तुम चाहते हो कि ताबीज हाथ में आ जाए आकाश से, तो ताबीज ला देता है।
यही धंधा तुम मदारी का सड़क पर देखते हो, लेकिन जरा भी प्रभावित नहीं होते हो। यही धंधा जब कोई साधु-संत करता है, तब तुम दीवाने हो जाते हो। कि बस, मिल गया सदगुरु! तुम जो चाहते हो; तुम चाहते हो कि बीमारी मिट जाए, तो आशीर्वाद देता है। तुम चाहते हो बेटा पैदा हो जाए, तो आशीर्वाद देता है। तुम चाहते हो मुकदमा जीत जाएं, तो आशीर्वाद देता है। तुम्हारी वासनाओं को तृप्त करने की कोशिश करता है। इसलिए तुम असदगुरु के पास लाखों की संख्या में इकट्ठे हो जाओगे। क्योंकि वह तुम्हारी ही जिंदगी का हिस्सा है। सदगुरु को पहचानना तुम्हें मुश्किल है। क्योंकि उसकी पहचान का तो मतलब ही है, जीवन में रूपांतरण! तुम बदलो। असदगुरु तुम्हें कुछ देगा।

सदगुरु तो तुमसे सब छीन लेगा। असदगुरु तो तुम्हारी वासनाओं को तृप्त करने की कोशिश करेगा।
और मजा यह है जिंदगी का--और गणित बड़ा महत्वपूर्ण है--अगर तुम भी बैठ जाओ धूनी रमा कर, और जो भी आएं सब को आशीर्वाद देते जाओ, तो कम से कम पचास प्रतिशत आशीर्वाद तो सही होंगे ही। यह तो सीधा गणित है। इसमें कुछ करने जाने की जरूरत नहीं है। तुम सिर्फ आशीर्वाद देते जाओ। जो भी मुकदमे वाला आए, कहो कि जीतोगे। पचास प्रतिशत तो जीतेंगे ही। वे तुम्हारे बिना आशीर्वाद के भी जीतते। लेकिन अब तुम्हारी तरफ ध्यान रखेंगे कि तुम्हारे आशीर्वाद के कारण जीते हैं। जो पचास हार जाएंगे, वे किसी दूसरे बाबा को, किसी दूसरे गुरु को खोजेंगे। क्योंकि यह उनके काम का नहीं है। लेकिन जो पचास जीत जाएंगे, वे तुम्हारे पास आते रहेंगे। और इन पचास की जो भीड़ तुम्हारे पास इकट्ठी होगी, जब नया कोई ग्राहक आएगा, तो यह सारी भीड़ उसको प्रभावित करेगी। कि इतने लोगों की घटनाएं घट चुकी हैं--कोई मुकदमा जीत गया, किसी की खोयी पत्नी मिल गयी, किसी का प्रेम सफल हुआ, किसी की बीमारी चली गयी, किसी का बच्चा बच गया, किसी का कुछ हुआ। इनकी भीड़ तुम पाओगे। क्योंकि जो हार गए हैं, वे तो कहीं और जा चुके हैं। वे तो वहां रुकेंगे जहां जीतेंगे। वे भी किसी के पास कभी न कभी रुक जाएंगे। संयोग कहीं न कहीं घटेगा। कहीं न कहीं उनकी भी वासना पूरी होगी, वहां रुकेंगे।
तुम वासना से गुरु को पहचानते हो। तब तुम भटकोगे। क्योंकि गुरु का वासना से क्या लेना-देना है? गुरु तुम्हारी वासनाएं पूरी करने को नहीं है, तुम्हें जगाने को है। और जगाने का मतलब है, तुम्हारी वासनाएं जितनी टूट जाएं उतना बेहतर। उसकी उत्सुकता तुम्हारी बीमारी, तुम्हारी अदालत, तुम्हारी पत्नी और बच्चों में नहीं है। उसकी उत्सुकता तुम में और तुम्हारे परमात्मा में है। और वह रास्ता वासना का नहीं है, वह रास्ता तो निर्वासना का है। वह तुम्हें इसलिए आकर्षित कर भी नहीं पाएगा।
इसलिए अक्सर तुम भीड़ पाओगे। जहां भीड़ पाओ, वहां जरा सावधान हो जाना। क्योंकि भीड़ अक्सर गलत जगह होती है। सही जगह तो तुम बहुत थोड़े लोगों को पाओगे। क्योंकि थोड़े लोगों को भी होना वहां मुश्किल है। वहां तुम चुने हुओं को पाओगे कि जिनकी आकांक्षा परमात्मा की है। वहां तुम भीड़ न पाओगे।
क्योंकि भीड़ तो वासनाग्रस्त लोगों की है।
नानक कहते हैं, फिर झूठे लोग झूठी डींगें हांकने लगते हैं।
और मजा यह है कि उनकी डींगें भी सिद्ध होती मालूम पड़ती हैं। क्योंकि जीवन का ढंग ऐसा है। पचास प्रतिशत तो सभी सही हो जाएंगे। और जो गलत सिद्ध होते हैं, वे कहीं और चले जाते हैं। उन्हें तुम पाओगे न। जो साईं बाबा के पास गलत हुआ, वह किसी और साईं बाबा के पास होगा। जो सही हुआ, वह वहां रुकेगा। वही तुम को मिलेगा। वह खबर देगा कि मेरा यह हो गया है। मुझे यह लाभ हुआ, मुझे यह लाभ हुआ। उनकी भीड़ बढ़ती जाएगी। एक भीतरी गणित से चीजें फैलने लगती हैं। और जब तुम देखोगे हजारों लोगों को लाभ हुआ है... और तुम भी वासना के ही प्रेरित वहां तक आए हो। तुम भी श्रद्धा करते हो। और बहुत बार तुम्हारी श्रद्धा के कारण भी परिणाम होते हैं। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि सौ बीमारियों में से सत्तर बीमारियां मानसिक हैं। अगर तुम्हें पूरा भरोसा आ जाए कि ठीक हो जाएंगे, तो ठीक हो जाती हैं।
बहुत से अस्पतालों में प्रयोग किए गए हैं। वैज्ञानिक उस प्रयोग को प्लस्बो कहते हैं, झूठी दवा। तो अगर एक ही बीमारी के दस मरीज हों, तो पांच को असली दवा देते हैं, पांच को सिर्फ पानी देते हैं। और मजा यह है कि तीन दवा वालों में से भी ठीक हो जाते हैं, तीन पानी पीने वालों में से भी ठीक हो जाते हैं। करो क्या? इसलिए तो इतनी पैथी चलती हैं दुनिया में। एलोपैथी है, आयुर्वेदिक है, हकीमी है, नैचरोपैथी है। हजार चीजें चलती हैं। और सभी से लोगों को लाभ होता है; नहीं तो चलेंगी कैसे?
ऐसा लगता है, दवा से आदमी कम ठीक होते हैं, श्रद्धा से ज्यादा ठीक होते हैं। वही दवा छोटा डाक्टर तुम्हें दे, जिस पर तुम्हें भरोसा नहीं, अभी-अभी मेडिकल कालेज से आया है, काम न करेगी। अगर तुम्हारा ही बेटा हो मेडिकल कालेज से लौटा, तो बिल्कुल काम न करेगी। क्योंकि बाप बेटे पर कभी भरोसा कर सकता है? वही दवा बड़ा डाक्टर दे, और बड़ा डाक्टर यानी बड़ी फीस ले। जितनी

ज्यादा फीस ले, उतना भरोसा आता है, क्योंकि उतना बड़ा डाक्टर है। ठीक होना ही पड़ेगा अब। अब इसके आगे जाने का कोई उपाय नहीं। आधा इलाज तो डाक्टर पर भरोसे से होता है। जिस डाक्टर पर तुम्हें भरोसा है, उस डाक्टर का इलाज काम करता है। जिस पर भरोसा नहीं, काम नहीं करता।
इसलिए डाक्टर अपने आफिस में अपने सर्टिफिकेट लटका कर रखता है। बीमारों के लिए वह भी दवा है। जितने ज्यादा सर्टिफिकेट--लंदन से कोई सर्टिफिकेट है तो बात ही और! सर्टिफिकेट लटका कर रखता है। उनको देख कर मरीज की काफी बीमारी तो ठीक हो जाती है।
तुमने कभी ख्याल किया है कि जब डाक्टर तुम्हें परीक्षण करता है, तभी तुम्हारी आधी बीमारी ठीक हो जाती है। परीक्षण करते-करते। अभी उसने कोई दवा नहीं दी। नाड़ी देखी, स्टेथोस्कोप लगाया, ब्लडप्रेशर लिया, अगर तुम गौर करोगे तो तुम पाओगे कि काफी तो तुम ठीक ही हो गए। दर्द कम है, बुखार उतर रहा है।
भीड़ भरोसा दिलाती है। भरोसे से परिणाम होते हैं। और बीच में जो झूठा आदमी बैठा है, वह मुफ्त लाभ ले रहा है। तुम अपने ही मन के खेल में पड़े हो।
नानक कहते हैं, झूठे लोग झूठी डींगें हांकते रहते हैं।
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस।।
उस आकाश की बात सुन कर, कीड़ों को भी ईर्ष्या पैदा हो जाती है।
कीड़ा यानी अहंकार। अहंकारी भी रोष से भर जाते हैं। यह कैसे संभव है?
यह नानक--नानक शब्द का अर्थ होता है, छोटा, नन्हा। यह छोटा सा आदमी पहुंच गया और हम न पहुंच पाए? हम, जो कि जिंदगी में इससे बहुत आगे हैं, और यह कतार में कहीं भी नहीं, यह पहुंच गया? गैर पढ़ा-लिखा, धन न संपत्ति, पद न प्रतिष्ठा, परिवार नहीं, कुछ भी नहीं। कोई जानता है कि नानक के परिवार में पहले और कौन-कौन महान पुरुष हुए? कोई भी नहीं हुए। कौन सी कुलीनता? कौन सा घर-द्वार? क्या पता-ठिकाना है इस आदमी का? पहुंच गए। और हम न पहुंच पाए! यह नहीं हो सकता। तो नानक कहते हैं--
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस।।
कीड़े को भी ईर्ष्या पैदा होती है।
नानक नदरी पाईए कूड़ी कूड़ै ठीस।।
मिलता तो परमात्मा उसकी कृपा से है, तुम्हारी अकड़ से नहीं। तुम कौन हो, इससे नहीं मिलता। तुम क्या हो, इससे नहीं मिलता। परमात्मा तो अनुकंपा से मिलता है। उसकी कृपा से मिलता है। और तुम्हारे पास जितनी अकड़ है कि मैं यह हूं, उतना ही मिलना मुश्किल है।
लेकिन फिर झूठे लोग झूठी डींगें हांकते हैं। और धर्म के जगत में झूठी डींग हांकना सब से आसान है। इसलिए तो धर्म के जगत में जितना पाखंड चलता है, उतना किसी जगत में नहीं चल सकता। कोई दूसरी दिशा में इतना झूठ नहीं चल सकता जितना धर्म में चल सकता है। क्योंकि बात आकाश की है। बात इतनी बड़ी है, इतने दूर की है, इतनी अलौकिक है, इतनी रहस्यपूर्ण है, कि झूठ चल सकता है। अगर बाजार में तुम ऐसा कपड़ा बेचो जो किसी को दिखाई न पड़ता हो, कितनी देर बेच पाओगे? पहला ग्राहक ही मिलना मुश्किल होगा। तुम्हारे पास हो ही न सामान, तो बाजार में कितनी देर दूकान चला पाओगे? आखिर बाजार का सामान दिखाई पड़ने वाला सामान है। कितनों को तुम धोखा दोगे? कैसे धोखा दोगे? मैंने सुना है कि अमरीका में उन्होंने स्त्रियों के बाल में लगाने की
एक आलपिन खोज ली। यह भविष्य की घटना समझो। अदृश्य आलपिन स्त्रियां चाहेंगी कि उनकी आलपिन दिखाई ही न पड़े। अदृश्य आलपिन खोज ली। एक औरत एक दूकान पर गयी और उसने कहा कि अदृश्य आलपिनों का एक डब्बा चाहिए। उसे एक डब्बा दिया गया। उस स्त्री ने पूछा कि इनकी बिक्री भी हो रही है या नहीं? उस दूकानदार ने कहा, बिक्री का तो पूछो ही मत। अदृश्य आलपिन तीन दिन से हमारे स्टाक में नहीं हैं, और हजारों लोग ले जा चुके हैं। अब अदृश्य आलपिन हो, तो बिक्री हो सकती है। हो, या न हो। क्योंकि उसका पहला ही तो मामला है कि वह दिखाई नहीं पड़ती। तुम डब्बा खोल कर देखोगे तो कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं। हो, या न हो।

यह परमात्मा का धंधा अदृश्य आलपिनों का धंधा है। कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं। इसलिए बड़ा पाखंड यहां है। इसलिए तुम हैरान होगे कि जितना धार्मिक मुल्क हो, उतना पाखंडी हो जाता है।
यह हमारा मुल्क इसका सबूत है। इससे ज्यादा पाखंडी मुल्क दुनिया में कहीं भी नहीं। उसका कारण यह है कि इस मुल्क ने धर्म के संबंध में इतना चिंतन किया है, और इस मुल्क ने धर्म के इतने सदगुरु पैदा किए हैं, कि हर गुरु के साथ निन्यान्नबे असदगुरु पैदा होते हैं। सदगुरु तो मर जाते हैं, असदगुरु चलते रहते हैं। उनकी जमात बढ़ती जाती है। और तय करना बिल्कुल मुश्किल है। और मनुष्य को नास्तिक बनाने में जितने असदगुरु सहयोगी होते हैं, उतना कोई भी सहयोगी नहीं होता। तुम इतने थक जाते हो, धोखे, बेईमानी, उपद्रव से कि तुम धीरे-धीरे सोच लेते हो कि परमात्मा का धंधा ही धोखाधड़ी है। धीरे-धीरे तुम सोच लेते हो कि इस उपद्रव में पड़ना ही नहीं, इससे बाहर ही रहना बेहतर है।
नानक कहते हैं, झूठे लोग झूठी डींगें मारते रहते हैं।
और तुम्हारा जितना भरोसा बढ़ता जाता है, उतनी उनकी डींग बढ़ती जाती है। मुल्ला नसरुद्दीन अपने भतीजे को कह रहा था एक संस्मरण कि मैं जंगल से निकल रहा था। दस लकड़बग्घों ने मुझे घेर लिया। पांच मैंने उसी वक्त मार डाले। उस भतीजे ने बीच में टोक कर कहा कि चाचाजी, तीन महीने पहले तो आप कह रहे थे कि पांच लकड़बग्घों ने घेरा, और अब कहने लगे दस ने। मुल्ला नसरुद्दीन ने सहज भाव से कहा, तब तू बहुत छोटा था। इतनी खतरनाक बात सुनने की तेरी योग्यता भी न थी, और तू समझ भी न पाता, और घबड़ा जाता।
तो तुम्हारी जितनी योग्यता बढ़ने लगती है झूठ को सुनने की, वैसे-वैसे झूठ बोलने वाले के दावे बढ़ते जाते हैं। वह देखता रहता है कि कितनी श्रद्धा बढ़ रही है, उतने दावे बढ़ते जाते हैं। तुम्हारी श्रद्धा न मालूम कितने झूठे गुरुओं को पालती-पोसती है। और जब तुम्हें भरोसा आ जाता है, तब तुम बिल्कुल अंधे हो जाते हो। कुछ भी मान लेते हो।
कल रात ही मैं एक किताब पढ़ रहा था। एक ईसाई पादरी के वक्तव्य हैं। किताब के पहले ही जो लिखा है, वह ऐसा सरासर झूठ है, कि उसे कोई कैसे मानेगा? लेकिन उसको मानने वाले बहुत लोग हैं। और वह पादरी काफी ख्यातिनाम है। पश्चिम में उसके हजारों भक्त हैं। भूमिका में जो उसने लिखा है, वह बड़ा पढ़ने जैसा है। भूमिका में उसने लिखा है कि शीघ्र ही जीसस का आगमन होने वाला है। तारीख, दिन, सब तय हो गया है। और ज्यादा देर नहीं है। किसी भी दिन, रात, कभी भी जीसस का आगमन हो जाएगा। और जीसस अपने करोड़ों भक्तों को ले कर विलीन हो जाएंगे। तो पृथ्वी से करोड़ों ईसाई एकदम से विलीन हो जाएंगे। और पीछे सारी दुनिया चकित खड़ी रह जाएगी कि क्या हुआ? और जैसे ही ईसा अपने भक्तों को ले जाएंगे, फिर दुनिया पर मुसीबतें आनी शुरू होंगी। फिर महानर्क पैदा होगा। इसलिए देर मत करो। जल्दी से भरोसा लाओ ईसा पर, और ईसा के पीछे सम्मिलित हो जाओ। और भूमिका के अंत में लिखा है कि इस किताब को पढ़ने वाले लोगों के लिए केवल दो विकल्प हैं। एक विकल्प, अगर तुम पापी हो, तो इसमें जो भी कहा है उस पर तुम्हें भरोसा न आएगा। और अगर तुम पुण्यात्मा हो, तो तुम शीघ्र, देर मत करो, और जीसस के अनुयायी हो जाओ।
दो ही विकल्प छोड़े हैं। या तुम महापापी हो, तब तो तुमको किताब जंचेगी
ही नहीं। अगर तुममें जरा भी बुद्धि है, पुण्य का भाव है, धार्मिकता है, किताब जंचेगी। जीसस के साथ खड़े हो जाओ।
जीसस के साथ खड़े होने में कोई बुराई नहीं है। लेकिन यह आदमी जीसस के नाम का शोषण कर रहा है। जीसस प्यारे हैं। लेकिन यह आदमी! और यह जो कह रहा है, सरासर झूठ है। लेकिन इसको सिद्ध कैसे करो? ऐसी हजारों घटनाएं घट चुकी हैं।
उन्नीस सौ तीस में एक ईसाई पादरी ने घोषणा कर दी कि बस, एक जनवरी को जगत का विनाश हो जाएगा। वक्त आ गया, कयामत का दिन आ गया। उसके मानने वाले कोई पचास हजार लोग सब कुछ बेच-बाच डाले। क्योंकि जब आखिरी दिन आ गया तो अब क्या करना है रख कर? मकान बेच दिए, सामान बेच दिए, उत्सव मना लिया, धन-पैसा बांट दिया। क्योंकि आखिरी दिन आ रहा है। जो मानेंगे वे पुण्यात्मा, और जो नहीं मानते हैं वे पापी हैं।

वे सब पहाड़ पर चले गए। क्योंकि आखिरी दिन! एक जनवरी को जब सुबह का सूरज उगेगा, जगत का विनाश होगा, उस वक्त वे सब पहाड़ पर प्रार्थना करते रहेंगे। उन्हें ईश्वर उठा लेगा। एक जनवरी आ गयी, सूरज निकल आया, कुछ भी नहीं हुआ। गांव और आसपास के हजारों लोग पहाड़ की तरफ चले कि अब उनसे पूछें कि क्या हुआ? वे लोग वहां से उतर रहे थे। उन्होंने पूछा कि कहो, अब अक्ल आयी? उन्होंने कहा कि अक्ल? हमारी प्रार्थना के कारण उसने दिन बदल दिया। वह जो हम पहाड़ पर प्रार्थना कर रहे थे परमात्मा से कि दया कर! उसने सुन ली।
वह पंथ अभी भी चलता है। अब यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि अंधापन कैसा हो सकता है! तुम उन्हें गलत भी सिद्ध नहीं कर सकते। लोगों ने सोचा था कि अब तो इनको अक्ल आ जाएगी, नासमझों को। तो पहाड़ पर लोग चढ़ कर गए देखने, कि अब तो वे रो रहे होंगे, कि हमसे भूल हो गयी। बरबाद हो गए। वे लोग प्रसन्न थे। उनके पादरी ने समझा दिया कि देखो हमारी प्रार्थना का परिणाम!
मुल्ला नसरुद्दीन रोज अपने घर के बाहर नमक छिड़कता है। किसी ने पूछा
कि यह तुम क्या करते हो रोज-रोज? उसने कहा कि जंगली जानवरों को भगाने के लिए। लोगों ने कहा कि जंगली जानवर यहां कहां बस्ती में? तो उसने कहा, यह नमक का परिणाम है।
अब ऐसे आदमी के साथ करोगे क्या? वह तुम्हें उपाय नहीं छोड़ता। कहता है
कि देख लो प्रत्यक्ष प्रमाण है। मेरे घर के पास तो दूर, गांव में भी नहीं आ पा रहे हैं। यह नमक छिड़कने से हो रहा है।
आदमी धोखे में पड़ने को तैयार है, क्योंकि धोखे के भी तर्क हैं। और धोखा भी प्रचार करता है। धोखा ही प्रचार करता है, और धोखा ही तर्क देता है, और धोखा तुम्हारी वासनाओं को रिझाता है। वह तुम्हें परसुएड करता है। नानक कहते हैं, झूठे लोग झूठी डींगें हांकते रहते हैं।
नानक नदरी पाईए कूड़ी कूड़ै ठीस।।
और वह तो मिलता है उसको, जिसने सब डींग छोड़ दी। वह तो मिलता है उसको, जिसका मैं का भाव भी चला गया। वह तो उसको मिलता है, जिस पर उसकी अनुकंपा हो जाए।
न बोलने में शक्ति है, न मौन में शक्ति है, न मांगने में शक्ति है, न दान में शक्ति है, न जीवन में शक्ति है और न मरण में शक्ति है। न राज्य-संपत्ति में, न मन के संकल्प-विकल्प में, न स्मृति में, न ज्ञान में, न विचार में, न संसार से छुटकारा पाने की युक्ति में शक्ति है। वास्तविक शक्ति तो उस परमात्मा के हाथ में है, जो सृष्टि रचता है और उसे देखता रहता है। नानक कहते हैं, वहां न कोई ऊंच है, न नीच।
ये शब्द बड़े गहरे हैं--
आखणि जोरु चुपै नह जोरू। जोरु न मंगणि देणि न जोरू।।
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरू। जोरु न राजि मालि मनि सोरू।।
जोरु न सुरति गिआनु वीचारि। जोरु न जुगती छुटै संसारू।।
जिसु हथि जोरू करि वेखै सोइ। नानक उतमु नीचु न कोइ।।
बड़े क्रांतिकारी वचन हैं। क्योंकि नानक पूरे जपुजी में एक ही बात पर जोर दे रहे हैं--उसके नाम का स्मरण, सुरति। और यहां वे कहते हैं, सुरति में भी जोर नहीं। यह आखिरी चरण करीब आ रहा है। नानक यहां पर तुम्हारे हाथ से सब छीन लेना चाहते हैं। क्योंकि तुम्हें अगर जरा भी ऐसा लगे कि किसी चीज में जोर है, तो तुम बचोगे, मजबूत रहोगे। सब जोर अंततः तुम्हारे अहंकार का जोर है।
तो नानक कहते हैं कि न बोलने में शक्ति है, न तुम बोल कर उसे पा सकते हो। तो अनेक लोगों ने सोचा कि जब बोल कर उसे नहीं पा सकते, तो मौन रह कर पा लेंगे। नानक कहते हैं कि न मौन में शक्ति है। वह तुम्हारे हाथ से सब छीन ले रहे हैं। अभी तक तुमने सोचा होगा कि बोलने में नहीं है, तो चलो ठीक, बोलना बकवास है। लेकिन चुप हो गए, ध्यान में बैठ गए। फिर? नानक कहते हैं, उसमें भी शक्ति नहीं है। तुम्हीं तो मौन बैठोगे, जो बोल रहा था। गुणधर्म तो वही रहेगा। बोलने में अगर तुम पापी थे, तो चुप होने में कैसे तुम पुण्यात्मा हो जाओगे? इसे थोड़ा समझो। तुम्हारी क्वालिटी... ।
एक शैतान आदमी चुप बैठा है; शैतान ही रहेगा। कैसे फर्क हो जाएगा चुप होने से? चुप बैठने से क्या हो जाएगा? क्या अंतर पड़ेगा? अच्छा आदमी चुप

बैठे, अच्छा आदमी रहेगा। बोले, अच्छा आदमी ही रहेगा। बुरा आदमी बोले, बुरा। चुप बैठे, तो बुरा रहेगा। बुरा आदमी चुप में से भी कोई तरकीब निकाल लेगा कि कैसे दूसरों को नुकसान पहुंचाए। बुरा आदमी मौन में से भी शैतानी खोज लेगा। तुम्हारा गुणधर्म कैसे बदल जाएगा?
तुम सोचते हो, सिर्फ तुम चुप हो गए तो सब हो जाएगा, बड़ी शक्ति आ जाएगी। तुम्हीं तो चुप होओगे! क्या फर्क पड़ेगा? चुप्पी तुम्हारी, वचन तुम्हारे। वचन में तुम मौजूद थे, चुप्पी में तुम मौजूद रहोगे। तुम तो रहोगे। तुम कहोगे, अब मैं मौन हो गया। मैं ध्यान में हो गया। मैं ध्यानी हूं। यही अकड़ पहले थी कि मैं वक्ता हूं। बड़ा वक्ता हूं। अकड़ अंधी है। बोलने में भी तुम अंधे हो।
मैंने सुना है कि बहती गंगा देख कर मुल्ला नसरुद्दीन ने भी सोचा कि मैं भी हाथ धो लूं। तो वह एक राज्य में मिनिस्ट्री का बढ़ाव हो रहा था, मिनिस्टर हो गया। ख्याल उसे सदा से था कि मैं बड़ा बोलने वाला हूं। इसलिए नेता होने में और तो कोई कमी है नहीं। बड़ा वक्ता हूं। लेकिन उसने इतने लंबे भाषण दिए कि लोग बहुत बोर हुए। पुलिस को रखना पड़ता था चारों तरफ, जैसा कि सभी नेताओं की सभा में रखना पड़ता है। वह लोगों को बाहर जाने से रोकने के लिए। नहीं तो व्याख्यान चले, और लोग बाहर भाग जाएं। तो उसने सख्त पहरा लगा दिया। लेकिन फिर भी लोग बोर तो होते ही हैं। जम्हाई लेते हैं, उसके ही सामने।
तो उसने अपने पी.ए. को कहा कि भाषण थो.ड़े छोटे लिखा कर। इतने-इतने बड़े भाषण लिखता है कि लोग बोर हो रहे हैं। हमारी प्रतिष्ठा खो रही है। पी.ए. ने छोटा भाषण लिखा। मुल्ला नसरुद्दीन बड़ी खुशी में बोला, लेकिन लोग फिर भी बोर हुए। लौट कर उसने कहा कि मैंने हजार बार तुम्हें कहा कि भाषण छोटा लिख। लोग बोर हो रहे हैं, ऊब रहे हैं। फिर भी तूने बड़ा लिखा? उस पी.ए. ने कहा, महाराज, मैंने तो छोटा ही लिखा। आपने तीनों कापी पढ़ दीं।
बुद्धि तो उधार नहीं मिल सकती। भाषण आप लिखवा सकते हैं। गुण तो उधार नहीं मिल सकता। व्यक्तित्व का जो गुण है, उसे तो पाने के कोई सस्ते उपाय नहीं हैं। कोई दूसरा नहीं दे सकता।
तुम शैतान अगर हो, तो तुम चुप हो कर बैठ जाओगे तो भीतर तो तुम शैतान ही रहोगे। और तुम्हारी अकड़ कल तक बोलने की तरफ से पकड़ती थी, अब शून्य की तरफ से, चुप होने की तरफ से पकड़ लेगी।
झेन फकीर बोकोजू अपने गुरु के पास गया। और उसने कहा कि अब मैं बिल्कुल चुप हो गया हूं। शून्य आ गया। अब बोलें। उसके गुरु ने कहा कि पहले तू बाहर जा और यह शून्य फेंक आ। फिर भीतर आ। बोकोजू ने कहा, शून्य फेंक आऊं? और अब तक आप यही समझाते रहे कि शून्य हो जा। बोकोजू के गुरु ने कहा, वह पहली सीढ़ी थी, अब यह दूसरी। पहले मौन हो जाओ, फिर मौन फेंक दो। नहीं तो मौन से भी अकड़ जाओगे। अब यह कौन कह रहा है कि मैं शून्य हो गया? इसी को तो गिराना है।
तो नानक कहते हैं, आखणि जोरु चुपै नह जोरू। न बोलने में ताकत, न चुप होने में ताकत। जोरु न मंगणि देणि न जोरू। न मांगने में शक्ति और न दान में शक्ति।
क्या दोगे तुम? तुम्हारे पास है क्या? एक आदमी मांग रहा है, एक आदमी दे रहा है। मांगने वाला भी वही मांगता है, देने वाला भी वही देता है। क्या दोगे तुम? एक आदमी धन मांग रहा है परमात्मा से। तुम धन बांट रहे हो, धन से मंदिर बना रहे हो, दान कर रहे हो। लेकिन दोनों की नजर तो धन पर है। मांगने वाले की भी और देने वाले की भी। और यह तो हो भी सकता है कि मांगने वाला विनम्र हो, दान देने वाला कैसे विनम्र होगा? वह तो कहेगा, मैं दाता हूं। और दाता केवल एक है। तुम कैसे दाता हो सकते हो? दोगे तुम क्या? जो तुम्हारे पास है वही दोगे न! तुम्हारे पास क्या है? कंकड़-पत्थर, चांदी-सोने के ठीकरे, कागज के नोट, सब आदमी की मान्यताएं हैं। तुम दोगे क्या?
नानक कहते हैं, न मांगने में शक्ति, न दान में शक्ति। न जीवन में शक्ति, न मरण में शक्ति।
तुम जी कर उसे नहीं पा रहे हो, कई लोग सोचते हैं कि मर जाएं। उनको तुम पाओगे जगह-जगह आश्रमों में बैठे हुए। एकदम से मरने की हिम्मत नहीं है, तो

वे धीरे-धीरे मरते हैं। धीरे-धीरे मरने का नाम लोगों ने संन्यास बना रखा है। क्रमशः मरते हैं। ग्रेजुअल स्यूसाइड।
पहले संसार से भाग गए, तो नब्बे परसेंट जिंदगी तो खतम ही हो गयी। क्योंकि जिंदगी नब्बे परसेंट वहां थी। फिर आश्रम में बैठ गए। दो दफे खाना न खाया, एक दफा खाया--और पचास परसेंट मरे। ऐसे रोज काटते जाते हैं। ऐसे धीरे-धीरे अपने को काट कर पंगु करते हैं। फिर जीते हैं। वह जीना करीब-करीब मरने के जैसा है।
नानक कहते हैं, न तुम्हारे जीने में शक्ति है, न तुम्हारे मरने में।
तुम जी कर उसे नहीं पा सके, मर कर कैसे पा लोगे? तुम्हीं तो मरोगे न? तुम फिर पैदा हो जाओगे। तुम यहां से हटोगे, वहां हो जाओगे। स्थान बदलेगा, तुम कैसे बदलोगे?
नानक बड़ी महत्वपूर्ण बातें कह रहे हैं। ख्याल रखना। हृदय में उनको गूंजने देना।
न जीवन में शक्ति है, न मरण में।
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरू। जोरु न राजि मालि मनि सोरू।।
न राज्य-संपत्ति में शक्ति है, न मन के संकल्प-विकल्प में शक्ति है।
कुछ लोग धन जोड़ते हैं, कुछ लोग योग जोड़ते हैं। वे बैठ कर संकल्प करते हैं। मन को एकाग्र करते हैं। बड़ी तपश्चर्या करते हैं। लेकिन नानक कहते हैं, न धन-संपत्ति में जोर है, न मन के संकल्प-विकल्प में जोर है। और सब से महत्वपूर्ण बात कहते हैं कि न स्मृति में, न ज्ञान में, न विचार में।
जोरु न सुरति गिआनु वीचारि।
विचार में तो जोर नहीं है, बहुत लोगों ने कहा है। क्योंकि विचार तो सतह की हलचल है। ज्ञान में जोर नहीं है, बहुत लोगों ने कहा है। क्योंकि शास्त्र से पढ़ कर, संसार से सुन कर, गुरु के पास से, तुम जो भी इकट्ठा कर लेते हो, उसमें क्या जोर है? सब उधार और बासा है। लेकिन नानक आखिरी चोट करते हैं। वे कहते हैं, जोरु न सुरति। तुम्हारी स्मृति में, तुम्हारी स्मरण करने की क्षमता में, उसमें भी कोई जोर नहीं है। तुम ही तो स्मरण करोगे न?
अब यह बड़े मजे की बात है। यहीं सारे रहस्य का जो विवादास्पद रूप है, जो पैराडाक्स है, वह प्रकट होता है। पूरे समय नानक कहते हैं, सुरति, उसकी याद। और यहां वे कहते हैं, उसकी याद में भी कोई जोर नहीं।
एक चरण है उसकी याद, और दूसरा चरण है यह अनुभव कि उसकी याद से भी क्या होगा? मैं ही तो याद करूंगा न? वह याद भी तो मेरी ही होगी! मैं ही तो पुकारूंगा? वह पुकार भी मेरी होगी! और मेरा ही गुणधर्म उसमें समाया रहेगा। उसमें भी क्या जोर हो सकता है!
यह दूसरी घड़ी करीब आ रही है, जहां साधक सब छोड़ देता है--सब कर के, ध्यान रखना! जल्दी मत करना छोड़ने की। अगर जरा भी बाकी रह गया, कोई फल न होगा। यह तो आखिरी है। जब करने को कुछ भी नहीं बचता। सच तो यह है कि तुम छोड़ते भी नहीं, छूट जाता है। क्योंकि तुम छोड़ोगे, तो भी कुछ बाकी था। तुम कर लेते हो, कर लेते हो, थक जाते हो, थक जाते हो। आखिरी घड़ी आ जाती है कि तुम गिर पड़ते हो। गिरते भी नहीं अपनी तरफ से। तुम अचानक पाते हो कि गिर गए, अब कोई हिलने का भी उपाय न रहा, कोई जाने का भी उपाय न रहा। इसको वे कह रहे हैं, किसी चीज में जोर नहीं। क्योंकि जोर अगर थोड़ा बचा है, तो और चलोगे। नानक कहते हैं-- जोरु न सुरति गिआनु वीचारि। जोरु न जुगती छुटै संसारू।।
और संसार के छोड़ने की जितनी जुगतियां हैं, युक्तियां हैं, साधन हैं, विधियां हैं, मेथड्स हैं, उनमें भी कोई जोर नहीं।
वास्तविक शक्ति तो उस परमात्मा के हाथ में है, जो सृष्टि रचता और उसे देखता है।
जिसु हथि जोरू करि वेखै सोइ। नानक उतमु नीचु न कोइ।।
उसके हाथ में है। परमात्मा के हाथ में सारा जोर, सारी ताकत। तुम निर्बल हो जाओ, उसका सहारा मिल जाएगा। तुम सबल रहे, सहारे की कोई जरूरत ही नहीं है। निर्बल के बल राम! तुम यहां निर्बल हुए और वहां राम तुम्हें उपलब्ध हो गए।

पर वे निर्बल के हैं, बलशाली के लिए नहीं। क्योंकि बलशाली को कोई जरूरत ही नहीं। वह कहता है, चुप बैठो, तुम अपना काम करो। मैं खुद ही कर लूंगा। वह राम को बाद देता है। वह खुद अपनी अकड़ पर जिंदा है। वह राम का सहारा भी नहीं लेना चाहता। उसकी अकड़ अभी मिटी नहीं। अभी वह यह नहीं सोचता कि मुझे उसकी कोई जरूरत है। मैं खुद ही कर लूंगा।
ऐसा हुआ। एक ईसाई फकीर औरत हुई--सेंट थेरेसा। बड़ी बहुमूल्य स्त्री थी। उसने एक दिन गांव के चर्च में जा कर घोषणा की कि मैं एक बहुत बड़ा परमात्मा का मंदिर बनाना चाहती हूं। गांव छोटा था; चर्च भी बहुत छोटा था। लोगों ने कहा, हम कहां से पैसा इकट्ठा करेंगे? कहां से बड़ा मंदिर बनाएंगे यहां? कौन देगा? कहां से आएगा?
एक आदमी ने उससे पूछा कि थेरेसा, यह तो ठीक है कि तुम बनाना चाहती हो,
हम भी चाहेंगे। लेकिन तुम्हारे पास पैसे कितने हैं? थेरेसा ने अपने खीसे में हाथ डाला; दो पैसे थे उसके पास। उसने कहा कि दो मेरे पास हैं, इनसे काम शुरुआत का हो जाएगा।
तो लोग हंसने लगे। लोगों ने कहा कि हमको पहले ही शक था कि तेरा दिमाग खराब है। दो पैसे से महान मंदिर बनाने की योजना बना रही है? करोड़ों रुपयों की जरूरत पड़ेगी!
सेंट थेरेसा ने कहा कि तुम्हें ये दो दिखाई पड़ते हैं, यह तो ठीक है। मेरे पास दो हैं। लेकिन उसके पास? वह भी मेरे साथ है। दो पैसा धन परमात्मा, कितना होता है हिसाब? उसने कहा। और दो पैसे तो सिर्फ शुरुआत के लिए हैं, आखिर में तो उसी को करना है। हम कर ही क्या सकते हैं? हमारी शक्ति क्या है? उसने कहा, दो ही पैसे की हमारी शक्ति है, बाकी तो उसी की है। और दो पैसे हमारे पास हैं। उतने तक हम जाएंगे, फिर उससे कहेंगे, अब तेरी मर्जी।
और वह मंदिर बना। वह मंदिर आज भी खड़ा है। विराट मंदिर बना है। वह मंदिर तुम्हारी शक्ति से नहीं बनता। तुम्हारे पास तो दो ही पैसे हैं। उससे तो तुम कल्पना ही नहीं कर सकते बनाने की। क्या बनेगा? तुम हो क्या? तुमसे होगा क्या? तुम क्या पा सकोगे? बड़े मंदिर को बनाने चले हो! लेकिन दो पैसे धन परमात्मा, तब अपार संपत्ति तुम्हारे पास है। फिर कोई हर्जा नहीं। फिर तुम जो भी बनाना चाहोगे, बनेगा। लेकिन तुम दो ही पैसा रहना।
जैसे ही तुम निर्बल हुए, परम शक्ति का स्रोत उपलब्ध हो जाता है। जब तक तुम सबल हो, तब दो पैसे से ज्यादा तुम्हारी शक्ति नहीं।
इसलिए नानक दोहरा रहे हैं, न इसमें शक्ति है, न उसमें शक्ति। वे तुमसे शक्ति छीन रहे हैं। इसलिए मैं कहता हूं, सदगुरु तुमसे छीन लेता है, तुम्हें देता नहीं। सदगुरु तुमसे छीन लेता है, तुम्हें निर्बल बना देता है, तुम्हें असहाय कर देता है। तुम्हें उस हालत में छोड़ देता है, जैसे मरुस्थल में कोई पड़ा हो और प्यासा हो, और जल के कोई स्रोत करीब न हों। उस क्षण जो प्यास प्रार्थना की तरह उठेगी, वहीं तुम पाओगे, निर्बल के बल राम! वहीं तुम पाओगे कि परमात्मा उपलब्ध है। मरुस्थल से उठी प्यास जब तुम्हारे जीवन से उठेगी, उसी क्षण। जब तुम पूर्ण असहाय हो, तभी उस परम का सहारा मिलता है।
इसलिए नानक कहते हैं, और ध्यान रखना, वहां न कोई ऊंच है, न कोई नीच।
नानक उतमु नीचु न कोइ।।
इसलिए तुम यह फिक्र मत करना। वहां सब बराबर हैं। इसलिए डरना मत कि शक्तिशाली पहले पहुंच जाएंगे, कि ज्ञानी पहले पहुंच जाएंगे, कि जिन्होंने अच्छे कृत्य किए हैं वे पहले पहुंच जाएंगे, कि दानी पहले पहुंच जाएंगे, फिक्र मत करना। कि ध्यानी पहले पहुंच जाएंगे, फिक्र मत करना। वहां कोई ऊंच-नीच नहीं है।
अगर ऊंच-नीच हो तो तुम अपने कारण हो, उसके कारण नहीं। उसकी आंखों के कारण नहीं। अगर तुमने अपने को बिल्कुल खोया, तुम ऊंच हो जाओगे। अगर तुमने अपने को बचाया, तुम नीच हो जाओगे।
जीसस का वचन है कि जो अपने को खोएगा, वह पा लेगा; और जो अपने को बचाएगा,
वह सदा के लिए खो देगा।
तुम अपने को बचाना मत। वही एकमात्र भूल है जो आदमी कर सकता है। तब दो
ही पैसे पास रह जाते हैं। तब जीवन दारिद्य्र का हो जाता है। तुम अपने को

बचाना मत। और तब तुम पाते हो, दो पैसे तो कुछ भी न रहे, पूरे परमात्मा की ऊर्जा तुम्हें मिल गयी। तब जीवन सम्राट का हो जाता है। भिखारी तुम अपने हाथ से हो, सम्राट तुम उसकी कृपा से हो सकते हो।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
सत्रहवां प्रवचन

करमी करमी होइ वीचारु

पउड़ीः 34

राती रुति थिति वार। पवन पानी अगनी पाताल।।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
तिसु विचि जीअ जुगुति के रंग। तिन के नाम अनेक अनंत।।
करमी करमी होइ वीचारु। साचा आप साचा दरबारु।।
तिथै सोहनि पंच परवाणु। नदरी करमी पवै नीसाणु।।
कच पकाई ओथै पाइ। "नानक" गइआ जापै जाइ।।

नानक के सूत्र के पहले कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बात, कि जीवन को जो लक्ष्य मान लेता है, वह भटक जाता है। जीवन केवल एक अवसर है, लक्ष्य नहीं। मार्ग है, गंतव्य नहीं। उससे कहीं पहुंचना है। जीवित होने से ही मत समझ लेना कि पहुंच गए। जीवन कोई सिद्धि नहीं है, केवल एक प्रक्रिया है। उससे ठीक से गुजरे, तो पहुंच जाओगे। ठीक से न गुजरे, तो भटक जाओगे।
जीवन को ही जो सब कुछ मान लेता है, वही नास्तिक है। और जीवन के पार जिसके लिए पहुंचने को कोई मंजिल है, वही आस्तिक है। आस्तिक के लिए जीवन एक पड़ाव है। नानक कहते हैं, धर्मशाला। वहां रुकना है थोड़ी देर, लेकिन सदा के लिए उसे घर नहीं बना लेना। जिसने उसे ही घर बना लिया, वह असली घर से वंचित रह जाएगा। चले थे कुछ पाने, मार्ग में ही घर समझ लिया, तो फिर मंजिल तक कैसे पहुंचेंगे? कौन चलेगा?
संसार घर नहीं है। और जिन्होंने संसार को घर बना लिया है, उन्हीं को
हम गृहस्थ कहते हैं। गृहस्थ का अर्थ यह नहीं है कि आप घर में रहते हैं। गृहस्थ का अर्थ है कि संसार को घर बना लिया है।
संन्यासी का अर्थ है कि संसार धर्मशाला है, घर नहीं। रहता तो वह भी वहीं है, जाएगा कहां? रहना तो घर में ही पड़ेगा, लेकिन घर को देखने का ढंग बदल जाता है। तुम घर को समझते हो यही मंजिल है, पहुंच गए। और संन्यासी समझता है धर्मशाला है, सराय है, कहीं और जाना है। और भूलता नहीं मंजिल को। रुके कहीं, हजारों धर्मशालाओं में रुकना पड़े, तो भी मंजिल की याद रखता है। वही सुरति है। उस याद को जिसने रखा, जिसने उस याद के धागे को न खोया, वह सभी धर्मशालाओं में रुकेगा और पार होता जाएगा। कोई धर्मशाला उसे पकड़ न पाएगी। रहेगा संसार में, लेकिन संसार के बाहर रहेगा। तुम्हारी मंजिल जहां है, वहीं तुम हो। जहां तुम जा रहे हो, वहीं तुम हो। वहां तुम नहीं होते, जहां तुम हो। जहां तुम पहुंचना चाहते हो, जहां तुम्हारा ध्यान होता है, वहीं तुम हो। यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है।
अधिक लोग, करीब-करीब सभी, करोड़ों में एकाध को छोड़ कर, जो मिला है, समझते हैं यही अंत है। जो मिला है, यह तो प्रारंभ भी नहीं है। यह तो भवन का द्वार भी नहीं है। ये तो भवन की सीढ़ियां भी नहीं हैं। तुम तो मार्ग पर हो, अभी सीढ़ियां आएंगी। जिसके जीवन में सीढ़ियां आ गयीं, धर्म आ गया। जो मार्ग पर है, वह संसारी है। जिसके जीवन में सीढ़ियां आ गयीं, वह साधक। और जो भवन में प्रतिष्ठित हो गया, वह सिद्ध। तुम्हारे जीवन में अभी सीढ़ियां भी नहीं आयी हैं। अभी तुमने साधना भी शुरू नहीं की है।
और इस भ्रांति का गहरे से गहरा कारण यही है कि तुम्हें जो मिल गया है, तुम उससे संतुष्ट हो गए हो। ध्यान रखना, धार्मिक आदमी एक अर्थ में तो बिल्कुल संतुष्ट होता है, और एक दूसरे अर्थ में उससे ज्यादा असंतुष्ट आदमी खोजना कठिन है। संतुष्ट होता है इस अर्थ में कि परमात्मा से उसकी कोई शिकायत नहीं। और असंतुष्ट होता है इस अर्थ में कि अपने से उसकी बड़ी शिकायत है।

अधार्मिक आदमी की परमात्मा से तो शिकायत होती है--तूने यह नहीं दिया, तूने यह नहीं दिया, अपने से कोई शिकायत नहीं होती। अपने से अधार्मिक आदमी संतुष्ट होता है। वही संतोष कब्र बन जाती है। क्योंकि अगर तुम अपने से संतुष्ट हो, तो विकसित कैसे होओगे? बढ़ोगे कैसे? आकाश को छूने के लिए पंख कैसे खोलोगे? तुम अपने घोंसले में ही कैद हो जाओगे। तुम अपने पिंजड़े में ही मर जाओगे।
परमात्मा से तो संतोष चाहिए, अपने से असंतोष। हालत उलटी है। अपने से
तो हम संतुष्ट हैं, परमात्मा से असंतोष है। सारे जगत के प्रति हमारा असंतोष है। कुछ भी ठीक नहीं मालूम होता, सिर्फ हम ठीक मालूम होते हैं। और वही ठीक नहीं है, शेष सब ठीक है। तुम्हारे अतिरिक्त कहीं कोई भूल-चूक नहीं है। सारा जगत बड़ी शांति और आनंदमग्नता से प्रवाहित है। कहीं कोई बाधा नहीं है। सिर्फ तुम्हारे भीतर कहीं अवरोध है।
तो धार्मिक आदमी एक गहरा असंतोष है अपने प्रति कि मैं जैसा हूं, परमात्मा के योग्य नहीं हूं। मैं जैसा हूं, अभी अर्चना न कर सकूंगा, अभी पूजा न कर सकूंगा। अभी मैं जैसा हूं, कैसे स्वीकार हो सकूंगा? अभी मैं जैसा हूं, वह उसके योग्य नहीं हूं। उसके योग्य बनना है। उसके स्वीकार के योग्य पात्र बनना है। अपने को इस योग्य बनाना है कि वह मेहमान बनने को राजी हो जाए। मेरे हृदय में उसके लायक सिंहासन बनाना है।
तो धार्मिक व्यक्ति अपने से तो असंतुष्ट होता है। इसलिए एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि वह अपने को बढ़ाते-बढ़ाते, निखारते-निखारते, स्वर्ण-सिंहासन बन जाता है। वह परमात्मा के विराजने योग्य हो जाता है। उसके द्वार पर परमात्मा आज नहीं कल दस्तक देता है। एक क्षण की देरी भी न होगी। जिस क्षण तुम तैयार हो, उसी क्षण तुम्हारे द्वार पर दस्तक पड़ जाएगी। देर तभी तक है, जब तक तुम तैयार नहीं हो। रोने से कुछ न होगा। चीखने-पुकारने से कुछ न होगा। तैयारी चाहिए।
और तैयारी का अर्थ है, रूपांतरण, ट्रांसफार्मेशन। तुम्हें अपने को बदलना होगा, बहुत-बहुत रूपों में। अगर तुम गौर से अपने को देखोगे, तो तुम खुद ही पाओगे कि परमात्मा तो दूर, अगर तुमको भी इस घर में रहने के लिए पूछा गया होता, जो तुम हो, तो शायद तुम भी राजी न होते। तुम जैसे हो, अगर ऐसे ही व्यक्ति से तुम्हें प्रेम करना पड़े, तो तुम इनकार कर दोगे।
इसलिए तो कोई अपने को प्रेम नहीं करता। तुम अपने प्रेम के पात्र होने
के योग्य भी नहीं हो। इसलिए तो लोग अकेले में परेशान होते हैं। अपने साथ रहने को कोई राजी नहीं है। अगर तुम्हें घड़ी दो घड़ी अकेले बैठना पड़े, तो तुम बेचैन होते हो। कहते हो मित्र चाहिए, क्लब, सिनेमा, बाजार, रेडियो, टेलीविजन, अखबार, कुछ चाहिए। ऐसा अपने साथ कैसे बैठे रहें? बड़ी ऊब पैदा होती है। तुम अपने से ऊबे हुए हो। तुम अपने सत्संग में जरा भी नहीं रह सकते और तुम परमात्मा की आकांक्षा करते हो! जब तुम खुद ही अपने साथ रहने को राजी नहीं, तो इतना तो पक्का समझना कि तुम्हारे साथ कौन रहने को राजी होगा?
और परमात्मा तो फिर बहुत दूर है। परमात्मा का अर्थ है, अस्तित्व का गहनतम शिखर तुम्हारे हृदय में उतरे। लेकिन फिर उसके लिए गहराई बनाओ। वहां उतनी गहराई तो चाहिए। तुम इतने छिछले हो कि जरा सी बात तुम्हारे भीतर तूफान ले आती है। जरा से कंपन से तुम कंप जाते हो। जरा सा अपमान, और तुम आग हो जाते हो। जरा सा दुख, और तुम समझते हो नर्क टूट पड़ा। तुम छोटे-छोटे से इतने व्याकुल हो जाते हो कि तुम्हारी कोई गहराई तो नहीं है। कोई एक छोटा सा पत्थर फेंक दे तो तुम्हारे भीतर तूफान आ जाए, तो जाहिर है कि तुम कोई गहरे सागर नहीं हो।
सागर में तो हिमालय भी डूब जाए तो भी लहरों को कोई खबर न आएगी, कोई फर्क न पड़ेगा। इतनी नदियां गिरती हैं सागर में, इंच भर सागर ऊंचा नहीं उठता। जैसा है वैसा ही बना रहता है।
तुम परमात्मा की आकांक्षा कर रहे हो। कभी तुमने सोचा कि अगर परमात्मा
आ जाए, तो तुम्हारी क्या गति होगी? तुम तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कहां बिठाओगे उसे? तुम कैसे उसका स्वागत करोगे? तुम तो भाग खड़े होओगे अपने घर से।

तुम्हारे पास न सिंहासन है, क्योंकि सिंहासन कोई सोने का बनाना होता
तो तुम बना भी लेते। सिंहासन हृदय का बनाना है। सिंहासन प्रेम का बनाना है। सोना तो बाजार में मिल जाएगा, प्रेम कहां पाओगे? महल बनाना होता, तो बहुत महल हैं, बन जाते, मिल जाते। फिर तो सम्राटों के घर परमात्मा उतर आता। लेकिन भीतर महल को बनाना है। शून्य का महल बनाना है, ध्यान का महल बनाना है। बड़ा कठिन है। लंबी यात्रा है।
तुम जहां हो, अगर तुमने समझ लिया कि यही घर है, तो तुम गृहस्थ। और अगर तुमने समझा कि धर्मशाला है, थोड़ी देर टिके हैं, विश्राम करते ही आगे जाना है... ।
एक बहुत पुरानी सूफी कहानी है। एक सूफी फकीर से किसी ने पूछा कि परमात्मा को पाने का राज क्या है? तो उसने कहा कि मैं तुझसे एक कहानी कहता हूं। और उसने कहा कि एक लकड़हारा था और वह लकड़ियां काटता रोज, जंगल से शहर लाता। वह रोज यही करता रहा पूरे जीवन। इतना भी न कमा पाता कि दो जून रोटी मिल जाए। एक बार कभी रोटी मिल जाती, तो रात कभी भूखा सोता।
एक फकीर जंगल में रहता था। वह इसे रोज देखता था। उसे दया आ गयी। उसने कहा कि तू बहुत नासमझ है। जरा जंगल में और आगे क्यों नहीं जाता? उस लकड़हारे ने कहा, आगे जाने से क्या होगा? फकीर ने कहा, तू जरा आगे जा। तू यहीं से लकड़ियां काट कर लौट जाता है। नाहक दरिद्र है। जो जरा और आगे गया, समृद्ध हो गया! क्योंकि और आगे तांबे की खदान है।
वह आदमी थोड़ा और आगे गया। तांबे की खदान मिल गयी। वह तांबा बेचने लगा
ला कर। फिर कुछ दिन बाद वह फकीर मिला। और उसने कहा कि नासमझ, अब भी तुझे ख्याल नहीं आया? अब लकड़ियों से तुझे तांबा मिल गया। तो थोड़ा और आगे क्यों नहीं जाता? चांदी की खदान है।
जरा और आगे गया, चांदी की खदान मिल गयी। वह संपन्न होने लगा।
वह फकीर फिर एक दिन गुजरता था। और उसने कहा कि तुझे अक्ल है या नहीं?
तू मंत्र को समझ ही नहीं रहा। और आगे जा! सोने की खदान है।
वह आदमी और आगे गया, लेकिन सोने में उलझ गया। हमारे जैसा ही लकड़हारा होगा! जहां पहुंच जाते हैं, वहीं उलझ जाते हैं। जहां बैठ गए, वहां से उठने का नाम ही नहीं लेते। उस फकीर ने कहा कि नासमझ, तुझे कितनी बार मैंने कहा कि और आगे! आगे सोने की खदान है। वह और आगे गया और सोने की खदान में उलझ गया, जहां कि बहुत लोग उलझ गए हैं।
फकीर ने एक दिन उसके पास से गुजरते हुए कहा, तुझे कभी भी अक्ल न आएगी।
तू जड़-बुद्धि का जड़-बुद्धि रहा। तू बाहर से अब संपन्न हो गया, लेकिन भीतर अब भी दरिद्र है। मुझे तुझ पर दया आती है। तुझसे कितनी बार कहा है, और आगे। आगे हीरों की खदान है। वह और आगे गया।
फिर कई वर्षों के बाद फकीर वहां से गुजर रहा था। तब वह हीरों में उलझा था। उसने बड़े महल खड़े कर लिए थे। उसके पास बड़ा धन था, अंबार थे। फकीर ने कहा, तू एक दया का पात्र, दया का पात्र ही बना हुआ है। तू भीतर गरीब का गरीब है। जैसा तू लकड़हारा था, वैसा ही अब है। क्योंकि सोना, संपत्ति, हीरे, जवाहरात सब बाहर हैं। तू और आगे क्यों नहीं जाता?
उस आदमी ने कहा, क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हो? तुम मुझे चैन से क्यों नहीं रहने देते? तुम क्यों और आगे, और आगे, लगाए हुए हो? अब क्या और आगे मिल सकता है? अब हीरे मिल गए!
उस फकीर ने कहा, और आगे मेरा आश्रम है। और असली हीरे तुझे मैं दे सकता हूं। वे ध्यान के हीरे हैं। अभी तक तू बाहर की खदानें ही खोजता रहा। और आगे भीतर की खदान शुरू होती है।
उसने तब तक तो सुना था, लेकिन अब उसने कहा कि यह जरा ज्यादा... । मेरी समझ के बाहर है। मुझे तो यहीं रुक जाने दें।
फकीर ने कहा, तेरी मर्जी। लेकिन यह खदान जो और आगे है, सदा नहीं रहेगी।
क्योंकि मैं आज हूं, कल नहीं हो जाऊंगा। जो खदानें तूने अब तक पायी हैं, वे सदा रहेंगी। हम रहें या न रहें। हमसे पहले थीं, हमसे बाद भी रहेंगी।
ध्यान की खदान कभी-कभी प्रकट होती है। हजारों वर्षों में कभी-कभी प्रकट होती है। कभी कोई आदमी उस खदान को खोज लेता है और द्वार बन जाता है।
उसी को नानक गुरु कहते हैं। और उसी के द्वार को नानक गुरुद्वारा कहते हैं।

जिस आदमी के जीवन में ध्यान की खदान आ जाती है, वह द्वार बन जाता है। लेकिन वह सदा नहीं रहता। और तुम ऐसे अंधे हो कि तुम उस द्वार के पास से भी निकल जाओगे, वह तुम्हें दिखायी न पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी नजर तो दृश्य धन पर लगी है, अदृश्य धन की तो तुम्हें कोई खबर नहीं है।
यह और आगे का सूत्र जिस आदमी को ख्याल में बना रहता है... तब तक तुम इस मंत्र को मत भूलना जब तक परमात्मा ही न मिल जाए। उसके पहले जो राजी हो गया, वह भटक गया, वह गृहस्थ हो गया। इसलिए संन्यासी की अतृप्ति का कोई अंत नहीं है। परमात्मा को ही पी लेगा तभी प्यास को बुझाएगा। उससे छोटे पानी उसके काम के नहीं हैं।
नानक इसलिए इस संसार को धर्मशाला कहते हैं। उनका सूत्र समझें।
राती रुति थिति वार। पवन पानी अगनी पाताल।।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
परमात्मा ने रात, ऋतु, तिथि, वार, हवा, पानी, आग और पाताल रच कर, उस सब के बीच धरती को धर्मशाला के रूप में स्थापित किया। उसके बीच उसने रंग-रंग के जीवों का विधान किया, जिनके नाम अनेक और अनंत हैं। वहां अपने-अपने कर्म के अनुसार उनका विचार होता है।
तो पहली तो बात, यह संसार धर्मशाला है, सराय है। इसे तुम जितने गहरे अपने भीतर ले जा सको, उतना ही उपयोगी है। क्योंकि जितनी यह बात तुम्हारे भीतर उतर जाए कि तुम जहां हो वहीं रुके रहना मौत है--और आगे, और आगे, और आगे--जब तक कि परमात्मा का ही द्वार न आ जाए, तब तक यात्रा जारी रखना। तब तक यात्रा बंद मत करना। तब तक थको तो विश्राम कर लेना, लेकिन विश्रामगृह को घर मत बनाना।
थकान होगी, क्योंकि यात्रा बड़ी है, मंजिल दूर है। हजारों बार तुम भटकोगे। क्योंकि कोई बंधा-बंधाया रास्ता नहीं है। कोई राजपथ नहीं है। कोई हाई-वे नहीं है कि तुम चले जाओ। आदमी चल कर ही अपना रास्ता बनाता है। परमात्मा का मार्ग इसलिए दूर है। जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं और उनके पैरों के कोई चिह्न नहीं छूटते; ऐसे ही परमात्मा के आकाश में सिद्ध-पुरुष चलते हैं, पहुंच जाते हैं, पर उनके पैरों के कोई चिह्न नहीं छूटते। आकाश फिर खाली का खाली होता है।
तुम जब चलोगे, तब तुम किसी के चरण-चिह्नों पर नहीं चल सकते। उधारी सत्य के जगत में संभव नहीं है। सत्य कोई दूसरा तुम्हें दे नहीं सकता। इशारे मिल सकते हैं। प्रेम मिल सकता है। गुरु की कृपा मिल सकती है। लेकिन सत्य तुम्हें ही खोजना पड़ेगा। उसकी कृपा तुम्हारे पैरों को मजबूती दे सकती है, मार्ग नहीं दे सकती है। उसकी कृपा तुम्हें आश्वासन दे सकती है, रास्ता नहीं दे सकती। उसकी कृपा तुम्हें, डगमगाओ न, डरो मत, इसके लिए हिम्मत दे सकती है, लेकिन मार्ग पर तुम्हीं को चलना पड़े। और मार्ग कुछ ऐसा है कि तुम चलो तो बनता है; चलने से ही बनता है। बंधा-बंधाया, तैयार मार्ग नहीं है। रेडी मेड, परमात्मा की तरफ जाने का कोई उपाय नहीं है। हर मनुष्य को अपना मार्ग खोजना पड़ता है। यही कठिनाई है, लेकिन यही गरिमा भी है। क्योंकि अगर बंधा-बंधाया मार्ग होता, बासा मार्ग होता, जिस पर लाखों लोग चल चुके होते, और तुम भी चलते, तो परमात्मा को पाने का कुछ मजा न रह जाता। परमात्मा जब भी मिलता है किसी व्यक्ति को, तो ताजा और नया, मौलिक। जैसे तुम्हें ही पहली बार मिल रहा है। इसके पहले यह मिलन की घटना कभी घटी ही नहीं। बासा नहीं, कि दूसरे भी उससे मिल गए हैं तुमसे पहले, कि दूसरे भी उसके द्वार पर अपने चरण-चिह्न छोड़ गए हैं, कि दूसरों ने भी उसके दरवाजे पर अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं।
नहीं, तुम जैसे बिल्कुल नए आए हो, पहली दफा आए हो। जैसे वह कुंवारा तुम्हारे लिए प्रतीक्षा कर रहा हो। परमात्मा सदा कुंवारा है। अगर बहुत लोगों से उसका विवाह पहले रच गया होता, तो जानने योग्य भी न रह जाता। उसका कुंवारापन शाश्वत है। जो भी पहुंचेगा, उसे कुंवारा पाएगा, ताजा और नया पाएगा। ऐसे जैसे सुबह की ओस ताजी होती है, जैसे सुबह की पहली किरण ताजी होती है, ठीक ऐसा ही ताजा तुम पाओगे। बंधे-बंधाए रास्ते नहीं हैं।
और न कोई नक्शा है, जो तुम्हें दे दिया जाए, कि इस नक्शे के अनुसार चलना। क्योंकि जीवन सतत परिवर्तन है। वहां सब प्रतिपल बदल रहा है। जिस

ढंग से मैं पहुंचा, वह ढंग तुम्हारे काम न आएगा। वह ढंग मेरे काम आया। वह ढंग तुम्हारे काम न आएगा।
क्योंकि नानक कहते हैं, परमात्मा ने अनेक-अनेक जीव, अनेक-अनेक आत्माएं भिन्न-भिन्न रंगों और रूपों में बनायी हैं।
एक-एक व्यक्ति अनूठा है। अगर एक-एक व्यक्ति अनूठा है, तो जो मेरे काम पड़ा, वह तुम्हारे काम न पड़ेगा। मेरी समझ तुम्हारे काम पड़ सकती है, मेरा मार्ग नहीं। मेरी समझ तुम्हें मार्ग खोजने में सहयोगी हो सकती है, लेकिन तुम जो मार्ग खोजोगे वह बिल्कुल तुम्हारा होगा। वह तुम्हारा निजी होगा। उस पर तुम्हारी छाप होगी। जैसे तुम्हारे अंगूठे का निशान बस तुम्हारा है। अरबों-खरबों लोग हुए हैं पृथ्वी पर, और अरबों-खरबों लोग आज हैं, और अरबों- खरबों लोग आगे होंगे, लेकिन तुम्हारे अंगूठे का निशान कभी फिर नहीं दोहरेगा। जब तुम्हारे अंगूठे का निशान तक अस्तित्व इतना मौलिक बनाता है, तो तुम्हारी आत्मा को कितनी मौलिक बनाता होगा, तुम सोच सकते हो!
नयी चिकित्सा-शास्त्र की खोजें बड़ी गहरी बातों में उलझ गयी हैं। उनमें एक गहरी बात यह है कि तुम अगर चिकित्सा-शास्त्र की किताबें पढ़ो, तो तुम हृदय का चित्र बना हुआ पाओगे। किडनी का, फुप्फस का, फेफड़ों का चित्र तुम बना पाओगे। वे चित्र केवल औसत हैं। हर आदमी का फेफड़ा अलग रंग, आकार का है। किसी दूसरे आदमी का फेफड़ा वैसा नहीं है। नवीनतम खोजें कहती हैं कि शरीर का हर अंग, हर आदमी का अनूठा है। दो आदमियों के हृदय एक जैसे नहीं हैं। अंगूठे की छाप ही नहीं, शरीर का कण-कण तुम्हारा, बस तुम्हारे जैसा है। और परमात्मा तुम्हें दुबारा पैदा नहीं करता। तुम जैसा फिर वह किसी को नहीं बनाएगा। तुम अनूठे हो। तुम्हारे पहुंचने का मार्ग भी अनूठा होगा। तुम अद्वितीय हो। तुम्हारे पहुंचने का मार्ग भी अद्वितीय होगा। मजबूरी और कठिनाई भी है, गरिमा भी यही है, गौरव भी यही है कि तुम नवीनतम, एकदम नूतन मार्ग से उस तक पहुंचोगे। वह तुम्हारे लिए बासा नहीं होगा।
यह जो बात है, अगर ठीक से समझ में आ जाए, तो इसी का अर्थ आत्मा है। मशीनें हम एक जैसी हजारों बना सकते हैं। फोर्ड की एक कार जैसी लाख कारें हो सकती हैं, दस लाख कारें हो सकती हैं। एक का कल-पुर्जा दूसरे में फिट हो जाएगा। एक कार और दूसरी कार में फर्क करना मुश्किल होगा कि क्या फर्क है? लेकिन दो आत्माएं एक जैसी नहीं होतीं। प्रत्येक आत्मा अद्वितीय होती है। इसका अर्थ यह है--अगर इसे हम कवि और संत या भक्तों की भाषा में कहें--तो इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा किन्हीं यंत्रों में ढाल कर नहीं बनायी जा सकती। परमात्मा जैसे एक-एक आत्मा को अपने हाथ से रचता है। यही उसके स्रष्टा होने का अर्थ है। जैसे चित्रकार एक चित्र बनाता है। तुम उससे कहो कि दुबारा इसी को बनाओ, तो वह ठीक वैसा चित्र दुबारा न बना सकेगा। खुद वही चित्रकार भी न बना सकेगा। भेद हो जाएंगे। क्योंकि समय बीत गया। चित्रकार भी भिन्न हो गया। उसकी भावदशाएं भिन्न हो गयीं। जिस भावदशा में पहला चित्र बनाया था, अब वह भावदशा न रही।
पिकासो एक बार चित्र बना रहा था। और एक मित्र उसके पास आया। उसने देखा उसको चित्र बनाते, लेकिन वह इतना तल्लीन था। कि वापस लौट गया। फिर वह चित्र बाजार में बिका तो उस आदमी ने खरीद लिया। क्योंकि पिकासो के झूठे चित्र बाजार में बिक रहे हैं। लेकिन यह चित्र तो वह अपनी आंख से पिकासो को बनाते देख कर आया था। तो उसने खरीद लिया। लाखों रुपए उसमें लगे। चित्रकार से मिलने आया था--पिकासो से--वह मित्र। तो उसने एक बार पूछा--वह चित्र साथ ले आया--और उसने कहा कि यह चित्र प्रामाणिक तो है न? क्योंकि मैंने तुम्हें बनाते देखा था। पिकासो ने कहा कि बनाया तो मैंने ही है, लेकिन प्रामाणिक नहीं है। वह मित्र तो हैरान हुआ! क्योंकि प्रामाणिक का तो एक ही अर्थ होता है कि चित्रकार ने स्वयं बनाया है। किसी ने नकल और कापी नहीं की। आथेंटिक है, पिकासो ने कहा, इस अर्थ में कि मैंने बनाया है। और आथेंटिक नहीं है, क्योंकि मैंने केवल अपने पहले बनाए हुए चित्रों की प्रतिकृति की है। बनाते वक्त मैं रचनाकार नहीं था। बनाते वक्त मैं सिर्फ कापी कर रहा था--अपने ही चित्रों की--लेकिन बनाते वक्त मेरा स्रष्टा मौजूद नहीं था। उस मित्र ने पूछा, स्रष्टा का तुम्हारा क्या अर्थ है? तो पिकासो ने कहा,

स्रष्टा मैं तभी होता हूं जब मैं अद्वितीय बनाता हूं, यूनीक, बेजोड़! और जब मैं नकल करता हूं तब कैसा स्रष्टा!
इसलिए कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, जब वस्तुतः कोई मौलिक चीज बनाते हैं,
तब परमात्मा के निकटतम होते हैं। उतने ही निकट जितने भक्त, जितने संत। जितना ध्यान में बुद्ध निकट होते हैं परमात्मा के, उतना ही अजंता की मूर्तियों को, एलोरा के चित्रों को खोदता हुआ चित्रकार भी होता है। ये दूसरे मार्ग से।
जब भी तुम किसी चीज का सृजन करते हो, और अगर सृजन मौलिक है, तुम नकल नहीं कर रहे हो, इमिटेशन नहीं है, तो इससे बड़ी कोई प्रार्थना नहीं हो सकती। क्योंकि परमात्मा के तुम निकटतम हो। तुम उसके ही जैसे हो उस क्षण में। तुम भी स्रष्टा हो। इसलिए सृजन का इतना आनंद है। तुम छोटी सी भी चीज बना लेते हो तो कितने प्रसन्न होते हो।
एक छोटा सा बच्चा ताश का घर बना लेता है, तो खबर करता है आस-पड़ोस में कि मैंने एक घर बना लिया। एक रेत में घर बना लेता है, जो अभी गिर जाएगा क्षण भर बाद। लेकिन बच्चे की खुशी देखो! वह नाच रहा है।
जीवन में आनंद के क्षण सृजन के क्षण हैं। जब तुम बनाते हो, तब तुम आनंदित होते हो। और जिनके जीवन बिना सृजन के बीत जाते हैं, उनके जीवन में सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं होता।
क्यों ऐसा है? जब तुम कुछ बनाते हो तो क्यों आनंदित होते हो? क्योंकि बनाने के क्षण में एक झलक स्रष्टा की मिलती है। वह स्रष्टा है, तुम भी उस क्षण में छोटे-मोटे स्रष्टा हो जाते हो। तुम एक बगीचे में पौधा लगाओ, और जब पौधे में फूल आए तब तुम्हें एक आनंद होगा। वह आनंद वही है। बड़ी छोटी मात्रा में, निश्चित ही बूंद की तरह है, लेकिन आनंद वही है जो परमात्मा को सारे जगत को खिलता हुआ देख कर होता है। मात्रा का भेद हो, गुण का भेद नहीं है।
नानक कहते हैं, उसने रंग-रंग के जीवों का विधान किया, जिनके नाम अनेक हैं और अनंत हैं।
यह जो परमात्मा का फैलाव है, जो सृजन है, क्रिएटिविटी है, अगर तुम इसे पहचान लो-- परमात्मा को पहचानना तो मुश्किल है, क्योंकि वह तो छिपा हुआ है--लेकिन अगर तुम उसकी दृश्य-कृति को पहचान लो, तो पहली पहचान हो गयी। एक कदम उठ गया। देखो जगत को! एक गहन व्यवस्था से आपूरित है। चांद उगता है, सूरज उगता है, तारे घूमते हैं। ऋतु आती है, फूल खिल जाते हैं। सुबह होती है, पक्षी चहचहाते हैं। झरने बह-बह कर सागर पहुंचते रहते हैं। सागर बादलों में उमड़-घुमड़ कर वापस झरनों में बरसता रहता है। एक व्यवस्था है। जगत एक कासमास है, केयास नहीं। एक अराजकता नहीं है। एक सुसंबद्ध व्यवस्था है। इस महत व्यवस्था को अगर तुम पहचानने लगो... ।
जितना तुम इस व्यवस्था को पहचानोगे और जितना तुम्हें जगत में चलते हुए नियम की धारा दिखायी पड़ेगी, उतना ही तुम्हें परमात्मा का हाथ स्मरण आने लगेगा। क्योंकि व्यवस्था बिना हाथों के नहीं हो सकती। और जहां इतनी विराट व्यवस्था है वहां इतने ही विराट हाथ होंगे। इसलिए तो हिंदू कहते हैं कि उसके हजार हाथ हैं। हजार का मतलब अनंत हाथ हैं। क्योंकि दो हाथों से यह कृत्य नहीं हो सकता। यह जो अनंत अस्तित्व है, यह अनंत हाथों से ही संभाला जा सकता है।
नानक कहते हैं, उसी ने बनायी रात, उसी ने बनायी ऋतु, उसी ने बनायी तिथि, उसी ने बनायी हवा, पानी, आग, पाताल। सब उसने बनाया है। और इन सब के बीच में उसने बनायी पृथ्वी, कि तुम इस अनंत की यात्रा में विश्राम कर सको।
लेकिन वह धर्मशाला है। वहां तुम घर बना कर मत बैठ जाना। लोग अनेक-अनेक तरह के घर बना-बना कर बैठ गए हैं। भूल ही गए हैं। जैसे कोई आदमी रात धर्मशाला में ठहरे और सुबह भूल ही जाए कि धर्मशाला है। और फिर वहीं रहने लगे। और धर्मशाला की ही उलझन को अपनी उलझन बना ले। धर्मशाला की चिंता को अपनी चिंता समझ ले। फिर परेशान हो, पीड़ित हो, दुखी हो और पूछता फिरे शांति का मार्ग। और जब भी कोई उससे कहे कि धर्मशाला को तुम घर क्यों बनाए हुए हो? तभी वह कहे कि अभी छोड़ना बहुत मुश्किल है। अभी जरा कठिनाई है। समझ में तो मुझे भी आता है। लेकिन जरा वक्त की जरूरत है। धीरे-धीरे छोडूंगा।

सवाल धीरे-धीरे छोड़ने का नहीं है। सवाल छोड़ने का है ही नहीं। सवाल देखने का है। देखने के लिए क्या समय लगाने की जरूरत पड़ती है! एक क्षण में दिखायी पड़ जाता है। देखने के लिए समय बिल्कुल ही गैर जरूरी है। अगर तुम देखने को राजी हो, तो तुम्हें बिल्कुल साफ दिखायी पड़ सकता है कि जहां तुम हो वह धर्मशाला है। क्योंकि तुम सदा तो वहां न थे।
जन्म के पहले तुम कहां थे? मरने के बाद तुम कहां होओगे? थोड़े से दिन का मेला है। और इन थोड़े से दिन में तुम इतने जड़ हो कर चिपक गए हो! जो है, उसको भी पकड़ लिया है। जो नहीं है, उस तक को तुम पकड़े हुए हो। आदमी के पास जो संपत्ति है, उसको तो वह पकड़ता ही है; भविष्य की जो वासनाएं हैं और सपने हैं, उनको भी पकड़े हुए है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक घर बनाया। वह मुझे दिखाने ले गया। उसने बड़ा बगीचा लगाया था। उसमें स्नान के लिए तालाब बनाए। उसने कहा कि यह गर्म पानी का तालाब है। यह सर्दियों में स्नान के लिए बनाया है। फिर उसने कहा कि यह ठंडे पानी का तालाब है। यह दूसरा तालाब है। यह हमने गर्मियों में स्नान के लिए बनाया है। फिर उसने तीसरा तालाब बताया कि यह बिना पानी का तालाब है। मैंने उससे पूछा कि यह किसलिए बनाया है? उसने कहा कि यह उन समयों के लिए जब न नहाना हो, उस मौके के लिए।
आदमी नहाने का भी इंतजाम करता है और न नहाने का भी इंतजाम करता है। जो तुम्हारे पास है उसका भी तुम इंतजाम करते हो; जो तुम्हारे पास नहीं है उसका भी तुम इंतजाम करते हो। तुम जो है उसकी तो पीड़ा से भरे ही हो, जो कभी होगा वह चिंता भी तुम्हें घेरती है। तुम कभी अपने मन को गौर से देखो, तो तुम पाओगे कि वह अतीत की चिंताओं से भरा है, जो अब हैं ही नहीं। कोई घटना जो बीस साल पहले घटी थी, वह तुम्हारे मन में चलती है। वह बची ही नहीं है। अब कुछ भी नहीं बचा है। और कोई बात जो बीस साल बाद होगी, उसका तुम विचार कर रहे हो। तुम अपनी चिंताओं को हजार गुना कर लेते हो।
और किसके लिए तुम चिंतित हो रहे हो? रास्ते पर बने हुए एक सराय के लिए।
और इस सराय में जिनसे तुम्हारा मिलना हो गया है, तुम उनके लिए बड़े परेशान हो रहे हो। पति है, पत्नी है, बेटा है, मां है, पिता है, और सब की मुलाकात सराय में हुई है। रास्ते के किनारे मिलना हो गया है। और तुम भारी परेशान हो। तुम्हें एक भर चिंता नहीं है कि तुम घर को खोजो। और सब चिंताएं तुम्हारे पास हैं।
नानक कहते हैं, इस पृथ्वी को उसने धर्मशाला की तरह बनाया।
इस प्रतीक को ठीक से समझ लेना।
और वहां अपने-अपने कर्म के अनुसार उनका विचार होता है।
और इस जगत में तुम जो भी कर रहे हो, वह बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि अंततः तुम्हारे जीवन की नियति उसी से निर्धारित होगी। जगत है धर्मशाला, जहां रुक कर आगे बढ़ जाने की जरूरत है। लेकिन तुम वहां बहुत से कामों में लगे हो। धर्मशाला तो छीन ली जाएगी, काम का जाल तुम्हारे पास रह जाएगा। मरोगे तुम, धर्मशाला तो छूट जाएगी पीछे, लेकिन तुम ने धर्मशाला में जो किया, वह तुम्हारा अनुगमन करेगा। वह तुम्हारी छाया हो जाएगी। वह तुम्हारा जन्मों-जन्मों तक पीछा करेगा। और अंतिम निर्णय, तुमने क्या किया, क्या तुम्हारे कर्म थे, उन पर निर्धारित होगा।
अब यह थोड़ा सोच लेने जैसा है। अगर तुम्हें याद आ जाए कि तुम धर्मशाला में हो और यह याद बनी रहे, तो बहुत से कर्म तो तत्क्षण विलीन हो जाएंगे। तुम क्या पत्नी पर क्रोध करोगे? क्रोध का प्रयोजन क्या है? दो क्षण का मिलना है, फिर छूट जाना है। इस दो क्षण में तुम पत्नी को अपना मान लेते हो, इसीलिए क्रोध भी करते हो। अपना मान लेते हो, इसलिए झगड़ते भी हो। पत्नी तो छूट जाएगी। क्योंकि मौत के समय तुम पत्नी को अपने साथ न ले जा सकोगे। लेकिन तुमने जो क्रोध किया, तुमने जो नाराजगी की, तुमने जो दुख पहुंचाया, वह सब कृत्य तुम्हारे साथ चले जाएंगे। सपने तो टूट जाएंगे, लेकिन सपनों में तुमने जो किया, वह तुम्हारा पीछा करेगा। यह सौदा महंगा है। यह सौदा बिल्कुल ही महंगा है। इससे मिलता तो कुछ नहीं सिवाय खोने के। संसार में आदमी पाता कुछ नहीं, सिर्फ खोता है।

नानक कहते हैं, इस धर्मशाला में अगर तुम स्मरण रख सको कि यह धर्मशाला है, तो तुम्हारे निन्यानबे प्रतिशत कृत्य तो बंद हो जाएंगे। तुम रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर बैठे हुए हो, या विश्रामगृह में बैठे हुए हो, वेटिंग रूम में, वहां तुम कैसा व्यवहार करते हो? वहां किसी आदमी का चलते वक्त अगर तुम्हारे पैर पर जूता भी पड़ जाता है, तो भी तुम कहते हो स्टेशन है, भीड़-भड़क्का है। तुम नाराज नहीं होते।
मुल्ला नसरुद्दीन ने बहुत जीवन के देरी तक शादी नहीं की। जब वह पचास साल का हो गया तो मित्रों ने उससे पूछा कि तुम रुके क्यों हो? शादी क्यों नहीं कर लेते? उसने कहा कि ऐसा हुआ कि मैं एक सिनेमागृह के बाहर निकल रहा था। और एक स्त्री के पैर पर मेरा पैर पड़ गया। वह झपट कर लौटी! और जैसे रण-चंडिका हो, काली का अवतार हो। और उसकी आंखों से आग! और ऐसा लगा कि वह या तो मुझे मारेगी, या मेरी गर्दन दबा देगी, या झपट पड़ेगी। लेकिन तभी वह एकदम शांत हो गयी मुझे देख कर। और उसने कहा, कोई बात नहीं। मैं समझी कि मेरा पति है। तभी मैंने तय कर लिया कि शादी की झंझट में नहीं पड़ना है।
पराया आदमी है, क्या झंझट लेनी है! हो गयी भूल उससे, पैर पर पैर पड़ गया।
हम परायों को माफ कर देते हैं, लेकिन अपनों को माफ नहीं कर पाते। बड़ी हैरानी है, अजनबी को हम क्षमा कर देते हैं। निकट जो है, उसे क्षमा नहीं कर पाते। क्यों? क्या कारण है? अजनबी और निकट में फर्क क्या है? अजनबी अजनबी है, उससे संबंध धर्मशाला का है। निकट जो है, वह अजनबी नहीं रहा है, ऐसी हमारी भ्रांति है। उससे संबंध घर का है।
जो आदमी इस पूरे संसार को धर्मशाला समझ लेगा, उसके लिए सभी अजनबी हैं, स्टें्रजर्स हैं--हैं भी! पत्नी चाहे तीस साल तुम्हारे पास रहे, क्या तुम सोचते हो, अजनबी नहीं रही? क्या तुम सोचते हो, तीस साल साथ रहने से जो पराया है वह अपना हो जाता है? भ्रांति होती है। अपना तो हो ही नहीं सकता कोई इस जगत में। अपना होने का यहां उपाय नहीं है। अपना तो सिर्फ परमात्मा हो सकता है। लेकिन उसकी तुम्हें कोई खोज नहीं है। तुम अजनबियों को अपना मान कर बैठे हो।
एक बेटा तुम्हारे घर पैदा हुआ। तो तुम सोचते हो कि तुमसे पैदा हुआ, इसलिए अजनबी नहीं है। तो जिंदगी तुम्हें गलत सिद्ध करेगी। बाप भी तो बेटे के जीवन के संबंध में कुछ तय नहीं कर पाता। बाप कुछ बनाना चाहता है, बेटा कुछ बनता है। बाप कुछ और चाहता था, बेटा कुछ और होता है। बाप की आकांक्षा कुछ और थी, बेटे की अभीप्सा कुछ और है। कौन बाप अपने बेटे से तृप्त होता है? तुमने कोई बाप देखा जो बेटे से तृप्त हो? तुमसे पैदा हुआ, लेकिन अजनबी है। बाप भी तो प्रेडिक्ट नहीं कर सकता बेटे को कि क्या इसका भविष्य होगा। बाप भी तो तय नहीं कर सकता कि बेटे को वही बना ले जो बनाना चाहता है। बड़े से बड़े बाप हार जाते हैं। कोई उपाय नहीं है। पति लाख चेष्टा करता है पत्नी को सुधारने की। पत्नी कितनी चेष्टाएं करती है पति को सुधारने की। कौन किसको सुधार पाता है? सुधारने में बिगाड़ हो जाता है भला, सुधार तो नहीं हो पाता। क्योंकि हम सब अजनबी हैं। हम सब अपने-अपने कर्मों से जी रहे हैं। हमें कोई दूसरा न सुधार सकता है, न बदल सकता है। हमारी अपनी-अपनी अलग-अलग यात्रा है। थोड़ी देर को चौराहे पर मिल गए हैं। और इस मिलने को हमने इतना ज्यादा मान लिया है।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम एक स्त्री के साथ सात चक्कर लगा लिए अग्नि के? सात चक्कर लगाने से कोई स्त्री तुम्हारी हो जाएगी? सात क्या, तुम सात हजार चक्कर लगाओ। सात तो शुरुआत है, जिंदगी में कितने लाख चक्कर लगाने पड़ते हैं! कुछ हल नहीं होता। तुम जहां थे वहीं हो।
यहां इस संसार में परायापन मिट ही नहीं सकता। यहां तुम कितने ही निकट
आ जाओ तो भी दूरी रहेगी। यही तो पीड़ा है सभी प्रेमियों की। प्रेमी चाहता है कि इतने निकट आ जाए कि दूरी न रहे। लेकिन जितने ही तुम निकट आते हो, उतने ही तुम पाते हो, दूरी है। दूर थे, तो यह भी ख्याल था कि शायद पास आएंगे तो दूरी मिट जाएगी। पास आ-आ कर पता चलता है कि दूरी के मिटने का उपाय ही नहीं है। दूरी का मिटना असंभव है। तुम बिल्कुल पास-पास बैठ सकते हो। शरीर ही पास-पास होंगे, तुम्हारी भीतरी दूरी तो बनी ही रहेगी। तुम अपने ख्याल में, तुम्हारी प्रेयसी अपने ख्याल में। तुम्हारे पास तुम्हारा मन है,

तुम्हारी प्रेयसी के पास उसका मन है। इन दोनों का कैसे मिलना होगा! इस जगत में मिलन झूठा है। बिछोह सच है। मिलन सपना है। मिलन तो सिर्फ परमात्मा से हो सकता है। एक ही मिलन है।
इसलिए तो कबीर, नानक और दादू गाए चले जाते हैं कि हम राम की दुलहनियां हैं। कबीर कहते हैं कि बस, हम समझ गए कि दुल्हन तो सिर्फ राम की ही हुआ जा सकता है। वहीं मिलना पूरा होगा। जहां सब बाहर-भीतर की दूरी गिर जाएगी। वहीं प्यास तृप्त होगी। वहीं हम उससे मिलेंगे जो हमारा है। वहीं हम बिछोह को समाप्त कर पाएंगे।
उसके पहले तो व्याकुलता रहेगी। कितने ही कुओं से पानी पीयो, प्यास न बुझेगी। कितने ही घाटों पर भटको, भटकाव ही रहेगा। सिर्फ उस एक के घाट पर भटकाव मिटता है। और उसकी हमें चिंता नहीं है। और तुम जो कर रहे हो इस भटकाव की अवस्था में, वे सब कर्म तुम्हारे साथ इकट्ठे हो रहे हैं। वे सब संगृहीत हो रहे हैं। और उन सब संगृहीत कर्मों से तुम्हारा आगे का जीवन तय होगा। इसे थोड़ा समझो। तुम जो भी करते हो, उससे तुम्हारा भविष्य रोज तय होता है। अगर तुमने आज सुबह उठ कर क्रोध किया, तो तुम एक संस्कार पैदा कर रहे हो। अगर तुमने कल सुबह भी उठ कर क्रोध किया था, तो संस्कार और भी गहरा है। अगर परसों सुबह उठ कर भी तुमने क्रोध किया था, तो संस्कार की मजबूत लकीर बन गयी। अब कल सुबह जब तुम उठोगे, तो बहुत संभावना है कि तुम फिर क्रोध करो। क्योंकि आदमी संस्कार से जीता है, जब तक कि आदमी प्रबुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाए। सिर्फ बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति संस्कार से नहीं जीता। वह आदत से नहीं जीता। वह होश से जीता है। तुम तो आदत से जीते हो। जो कल हुआ था, वही आज हो रहा है। जो आज होता है, वही कल होगा। तो
तुम जो भी कर रहे हो उससे तुम आदतें निर्मित करते हो। कर्म का सिद्धांत बहुत वैज्ञानिक है। उसका फलसफा से कुछ लेना-देना नहीं है। बस सीधी-साधी बात है। वह मनोविज्ञान का सीधा सा तथ्य है कि तुम जो करते हो उसको करने की वृत्ति बढ़ती जाती है। तो जो तुम नहीं करते हो, उसको न करने की वृत्ति बढ़ती चली जाती है। करना एक आदत हो जाती है। तुम यंत्रवत उसे करते रहते हो। लौट कर अपने जीवन को विचार करो, तो तुम पाओगे कि तुम एक पुनरुक्ति हो, रिपिटीशन। तुम वही-वही रोज करते हो।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि हम क्रोध नहीं करना चाहते, लेकिन हो जाता है। फिर मैं उनसे पूछता हूं कि जब हो जाता है, तब तुम क्या करते हो? तो वे कहते हैं कि जब हो जाता है, तब फिर हम पछताते हैं। फिर हम दुखी होते हैं। तो मैं उनसे कहता हूं कि तुम एक काम करो। क्रोध की तो फिक्र छोड़ो, तुम पछताना छोड़ दो कम से कम। वह तो कर सकते हो! वे कहते हैं, आप कैसी उलटी शिक्षा दे रहे हैं! पछता-पछता कर हम क्रोध छोड़ नहीं पाए! और अगर पछताना छोड़ देंगे, फिर क्रोध कैसे छूटेगा? मैंने कहा कि तुम अपनी ही जिंदगी को देखो। पछता-पछता कर तुम छोड़ नहीं पाए, अब मैं तुमसे कहता हूं कि तुम बिना पछता कर प्रयोग करके देख लो। कम से कम आदत का आधा हिस्सा तो तोड़ो। क्रोध करते हो फिर पछताते हो, यह पूरी आदत है तुम्हारी। क्रोध छोड़-छोड़ कर तुम कोशिश कर लिए, वह नहीं छूटा। दूसरे हिस्से से कोशिश करो। कम से कम पछताना तो छोड़ दो, उसमें तो कुछ महंगा नहीं है। क्रोध में तो समझो कि महंगा है। लगता है कई दफा करना जरूरी है। लेकिन पछताना तो तुम्हारा व्यक्तिगत है। इसमें तो किसी का कोई लेना-देना नहीं है।
क्रोध में तो दूसरा आदमी भी सम्मिलित है। किसी ने गाली दी, अब कैसे क्रोध न करें! और न करें तो लोग क्या कहेंगे? और इस तरह अगर जाने दिया एक आदमी को गाली देते, और गांव में खबर लग गयी तो हर कोई गाली देगा। तो क्रोध तो सामूहिक है, पछतावा तो अकेला है। उसमें तो किसी का कुछ लेना-देना नहीं है। उसमें तो दूसरे का कोई भी संबंध नहीं है। अकेले में बैठ कर पछताते हो। कृपा कर के उसको छोड़ो। वह आदमी कुछ दिन बाद आता है और कहता है कि जितनी मुसीबत क्रोध छोड़ने में है, उतनी ही मुसीबत पछतावा छोड़ने में है।
एक महिला मेरे पास आती है। उनके पति शराबी हैं। आज बीस साल से वह उनके पीछे पड़ी है। जब से वह ब्याही है तब से वह यही काम कर रही है कि शराब न पीयो। वे शराब पीए जाते हैं, वह पीछे पड़ी है। उसने मुझ से कहा कि इनकी आदत नहीं छूटती, हद हो गयी। इनको किसी तरह समझाएं। मैंने कहा कि तू एक काम कर।

तीन महीने तू इनके पीछे मत पड़। इनको तो शराब की आदत है। शराब तो जरा केमिकल मामला है। क्योंकि बीस साल से जो आदमी शराब पी रहा है, उसके शरीर के रोएं- रोएं में शराब चली गयी है। उसके खून में शराब है। और अभी यह उसके एकदम बस की बात नहीं है कि एकदम से शराब छोड़ देना। खैर, इनकी मैं पीछे फिक्र कर लूंगा। पहले तू सबूत दे एक बात का कि तू तीन महीने इनके पीछे न रहेगी। तीसरे दिन आ कर उसने कहा कि यह मुझ से नहीं हो सकता। मेरी भी आदत पड़ गयी है। तो मैंने उसको कहा कि अब तू समझ कि इस तेरे पति की कितनी मुसीबत है। तू कहना तक नहीं छोड़ सकती। कहने का कौन सा नशा है? कहने का कोई केमिकल! कोई भी तो नहीं है। कहना ही छोड़ देना है। पीने दे। बीस साल कह कर भी शराब बंद नहीं हुई है, सिर्फ तीन महीने की बात है। तू तीन महीने इनसे मत कह। तो तू एक सबूत देगी कि तू आदत छोड़ सकती है। तो फिर मैं इनके भी पीछे पडूं, कि जब तेरी पत्नी आदत छोड़ सकती है... । मगर वह तीन महीने पूरे नहीं कर पाती। मैंने कहा, जब तक तू तीन महीने पूरे न करे, तब तक तेरे पति से मैं कुछ कहने वाला नहीं।
अब तो वह समझ गयी कि मुश्किल है। क्योंकि वह कहती है, दिन भर भी बीतना मुश्किल हो जाता है। दिन में कम से कम आठ-दस दफा की आदत है टोकने की। पति दिन में दो दफे शराब पीते हैं। वह दस दफे टोकती है, वह भी शराब है। सब आदतें शराब हैं। और जब तुम पुनरुक्ति करते हो, तुम उनको मजबूत करते हो।
कर्म का सिद्धांत सिर्फ इतना ही कहता है कि जो तुम करते हो, उसको करने
की संभावना बढ़ जाती है। जो तुम नहीं करते, उसको न करने की संभावना बढ़ जाती है। ठहरे हो धर्मशाला में और व्यवहार ऐसा कर रहे हो जैसे घर में हो। यह गलत आदत बना रहे हो। धर्मशाला तो छूटेगी, वह तुम्हारी है ही नहीं। लेकिन जो तुमने धर्मशाला में किया, वह साथ चला जाएगा, वह तुम्हारा है। कर्म के अतिरिक्त तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं जा रहा है। इसलिए सोच-समझ कर करना। हीरा तुमने उठा लिया किसी का। वह हीरा तो पड़ा रह जाएगा जब तुम मरोगे। लेकिन तुमने उठाया था, यह कृत्य तुम्हारे साथ चला जाएगा। तुम जो कर रहे हो, वही तुम्हारी संपदा बन जाएगी।
अगर तुम गलत कर रहे हो, तो तुम अपने भविष्य को गलत दिशा में मोड़ने के उपाय कर रहे हो। अगर तुम ठीक कर रहे हो, तो ठीक दिशा में मोड़ने के उपाय कर रहे हो। और अगर तुम सजग हो कर जी रहे हो, तो तुम मुक्त होने का उपाय कर रहे हो। क्योंकि जितना आदमी सजग होता है, उतनी आदत टूटती है। तब वह आदत से नहीं जीता। तब वह होश से जीता है। तब वह प्रत्येक परिस्थिति में होश से निर्णय लेता है, अतीत की आदत से नहीं। किसी ने गाली दी; तुम्हारी पुरानी आदत है कि जब भी कोई गाली दे, बस खड़े हो जाओ झगड़ने को।
एक हवाई जहाज में पाइलट और एक यात्री का झगड़ा हो गया। गाली-गलौज की स्थिति आ गयी। पाइलट बड़े बेहूदे शब्द बोलने लगा। वह यात्री भी बोलने लगा। एक दूसरे यात्री ने कहा कि भाइयो, यह भी तो ख्याल रखो कि सभ्य महिलाएं बैठी हैं। उस यात्री ने कहा कि सभ्य महिलाएं भला नीचे उतर जाएं, मगर यह लड़ाई हो कर रहेगी।
उड़ते हवाई जहाज में, आकाश में, वह आदमी कह रहा है कि सभ्य महिलाएं भला
ही नीचे उतर जाएं... । वह अपने होश में नहीं है। वह क्या कह रहा है, उसे कुछ पता नहीं है। लेकिन लड़ाई हो कर रहेगी। वह अपने बस में नहीं है। कोई भी अपने बस में नहीं है। जो बेहोश है, वह अपने बस में नहीं है। तुम जो भी कर रहे हो, बेबस कर रहे हो, किए जा रहे हो। तुम्हें साफ नहीं है, तुम क्या कर रहे हो! क्यों कर रहे हो!
थोड़ा जगो। पहला जागरण इस बात का कि यह संसार इतना मूल्यवान ही नहीं है
कि इसमें तुम इतने परेशान हो। कोई आदमी तुम्हें गाली देता है; न तो वह आदमी इतना मूल्यवान है, न उसकी गाली इतनी मूल्यवान है कि तुम परेशान होओ। न तुम्हारा अहंकार इतना मूल्यवान है कि उसके लिए तुम उपद्रव खड़ा करो। यह धर्मशाला है। किसी का पैर तुम्हारे पैर पर पड़ गया, परेशान मत हो।
मुल्ला नसरुद्दीन एक सिनेमा से बाहर आ रहा था इंटरवल में। एक आदमी के पैर पर उसका पैर पड़ा। वह आदमी तिलमिला गया। लेकिन उसने सोचा कि अंधेरा है, अभी-अभी प्रकाश हुआ है, एकदम से लोगों को दिखायी भी नहीं पड़ता अंधेरे में रहने के बाद, हो गयी होगी भूल। फिर लौट कर नसरुद्दीन आया। उस आदमी के पास आ

कर पूछा कि क्या भाई साहब, आपके पैर पर मेरा पैर पड़ गया था? उस आदमी ने सोचा कि यह क्षमा मांगने आया है। उसने कहा कि हां। मुल्ला ने पीछे लौट कर अपनी पत्नी से कहा, आ जाओ, यही अपनी लाइन है। वे लाइन बनाने के लिए पैर पर पैर रख गए थे!
तो जो आदमी तुम्हें गाली दे रहा है, उसके अपने प्रयोजन होंगे। तुम्हें उसमें परेशान हो जाने की कोई जरूरत नहीं है। भीड़-भड़क्का है यहां। काफी लोग हैं। सब अपना-अपना खोज रहे हैं। किसी से तुम्हें न प्रयोजन है, न तुम्हें किसी से प्रयोजन है। किसी का किसी से कुछ लेना-देना नहीं है। यहां हर आदमी अपना खेल खेल रहा है। और थोड़े धक्के-मुक्के होंगे ही। क्योंकि इतनी भीड़ है, रास्ता है, इतना ट्रैफिक है।
अगर तुम थोड़ा सा इसे देख पाओ और तुम इस बोध को रख सको, क्रोध गिरेगा, घृणा गिरेगी, ईर्ष्या गिरेगी, जलन... और उनसे पैदा होने वाले कृत्य विदा हो जाएंगे। जिस दिन तुम्हारे घृणा से संबंधित कृत्य गिर जाएंगे, उसी दिन तुम्हें लोगों पर दया आने लगेगी। क्योंकि हर आदमी मूर्च्छित है। कल क्रोध आता था, अब दया आएगी। और तुम्हें लगेगा हर आदमी भटका हुआ है। लोग अंधेरे में जी रहे हैं। किसी का कोई कसूर नहीं है। लोग सोए हुए हैं। सोया हुआ आदमी बड़बड़ा रहा हो, गाली बक रहा हो, तो भी तुम कुछ न कहोगे। नींद में है, तुम कहोगे। लेकिन यही हालत सब की है।
एक शराबी गाली दे रहा हो, तो तुम कहते हो शराबी है, पी गया है। लेकिन यही हालत सब की है। जन्मों-जन्मों के कर्मों की शराब है। गहरी नींद है। तुम्हें दया आएगी। अगर तुम थोड़े भी जगोगे, तो तुम्हें दया आएगी कि चारों तरफ इतने लोग कितनी परेशानी उठा रहे हैं। धर्मशाला को घर समझे हुए हैं। अदालतों में मुकदमे लड़ रहे हैं कि धर्मशाला किसकी है।
तुम्हें दया आनी शुरू होगी। और तुम्हारी दया के साथ ही, तुम्हारे कृत्यों का रूप बदलेगा। जहां कृत्य पाप थे, वहां पुण्य होने लगेंगे। जहां तुम दूसरे को नुकसान पहुंचाने को तत्पर हो जाते थे, वहां दूसरे को सहारा देने को तत्पर हो जाओगे। जो तुम्हें गाली देगा, उसको भी सहारा देने की दया तुम्हारे भीतर होगी।
इसलिए तो नानक कहते हैं, ज्ञान और दया। ज्ञान यानी जागरण, और दया यानी तुम्हारे कृत्यों में जागरण के कारण हुआ परिवर्तन। अज्ञान भीतर, हिंसा बाहर। उन दोनों का संग है। ज्ञान भीतर, करुणा बाहर। उन दोनों का संग है। कर्म के अनुसार विचार होगा।
अब यह बहुत मजे की बात है कि तुम अच्छी-अच्छी बातें सोचते हो और बुरी- बुरी बातें करते हो। करते तुम बुरा हो, सोचते बड़ा अच्छा हो। लेकिन तुम्हारे सोचने का कोई विचार होने वाला नहीं है। तुमने क्या सोचा, इससे कुछ हिसाब नहीं है। तुमने क्या किया, वही तुम्हारा प्रमाण है। कृत्य तुम्हारा प्रमाण है, तुम्हारा विचार नहीं। विचार तो पापी भी बड़े अच्छे- अच्छे करते हैं। कारागृहों में जा कर अपराधियों को देखो, वे भी बड़े ऊंचे विचार करते हैं। ऊंचा विचार करना तो एक तरकीब है। बुरा काम करने की तरकीब है, ऊंचा विचार करना।
इसे थोड़ा समझना। यह थोड़ा बारीक है। जब आदमी बुरा काम करता है तो उसके भीतर पछतावा होता है। जब आदमी किसी पर कठोर हो जाता है, क्रोध करता है, अपमान कर देता है, तो भीतर पछतावा होता है। भीतर लगता है, यह उचित नहीं हुआ। तो भीतर अच्छे-अच्छे विचार करता है, करुणा के, दया के, कि दुबारा मौका आने पर दया करूंगा। पछताता है कि जो किया, वह बुरा किया। इस भांति जो बैलेंस खो गया है भीतर, जो संतुलन खो गया है बुरा कर के, उस पलड़े को वह भारी कर देता है विचार के, शुभ धारणाओं के कारण। तुम अच्छा-अच्छा सोचते हो, ताकि तुम्हारी नजर में जो तुमने बुरा किया है, वह ढंक जाए। बुरे आदमी हमेशा अच्छे विचार करते हैं।
और इससे उलटा भी सही है। अच्छे कृत्य करने वाले लोग अक्सर बुरा विचार करते हैं। और अगर तुम जाग जाओगे तो तुम पाओगे कि ये दोनों स्थितियां ही भ्रांत हैं। चोर अक्सर सोचता है कि दान करूं। इसलिए तुम चोरों को दान करते पाओगे भी। चोर अक्सर सोचता है कि मंदिर बना दूं, कि गरीबों को भोजन करवा दूं, कि सर्दी आ गयी कंबल बंटवा दूं। और तुम चोरों को कंबल बंटवाते पाओगे

भी। क्योंकि चोरी का दंश ऊपर होता है। लाख रुपए की चोरी की तो हजार रुपए का दान तो करने का मन होता ही है। उससे आदमी सोचता है कि संतुलन हो जाएगा। पापी गंगा स्नान करने जाता है। वहां थोड़ी दान-दक्षिणा करता है, सोचता है, सब निपट गया। घर हलका हो कर लौटता है। हलके हो कर लेकिन तुम करोगे क्या? करोगे तुम वही, जो तुमने कल किया था। अब तुम हलके मन से करोगे। यह और खतरा है। अब तुम निश्चिंत भाव से करोगे।
एक महिला एक डाक्टर के पास जा रही थी। एक मनस्विद के पास। उसके हाथ से बर्तन छूट जाने की उसे बीमारी थी। बर्तन टूट जाते, गिर जाते। और उससे वह बहुत ज्यादा नर्वस, और बहुत बेचैन, व्याकुल, कंप जाती थी। बड़ी दुखी होती थी। छः महीने की मनसचिकित्सा के बाद उसके मनोवैज्ञानिक ने पूछा कि अब तो सब ठीक है? अब घबड़ाहट तो नहीं होती? बर्तन तो नहीं गिरते? उस स्त्री ने कहा कि बर्तन तो अभी भी गिरते हैं, लेकिन बाकी सब ठीक है। चिकित्सक ने कहा कि फिर बाकी सब ठीक का क्या अर्थ है? उसने कहा कि अब आपके समझाने से घबड़ाहट बिल्कुल नहीं होती।

जो आदमी थोड़ा पुण्य कर लेता है, पुण्य के कारण अब घबड़ाहट बिल्कुल नहीं होती। और सोचता है कि पुण्य कर के निपट गए। पाप तो खतम हो गया, अब फिर किया जा सकता है। और एक तरकीब भी हाथ में लग गयी; जब भी पाप करो, पुण्य कर लेना। इसलिए तो यह मुल्क इतना पापी हुआ है। क्योंकि इस मुल्क को पुण्य की तरकीब हाथ में लग गयी। आज भारत जैसा पापी मुल्क खोजना कठिन है। और उसका कारण यह है कि गंगा यहां बहती है। गए, स्नान कर के आ गए। पाप किया, मंदिर में जा कर प्रसाद चढ़ा आए। पाप किया, हनुमान जी को एक नारियल फोड़ दिया। हनुमान जी का कोई संबंध भी नहीं है, कोई उनका कसूर भी नहीं है। तुम्हारे पाप में कुछ लेना-देना नहीं है। और तुम उनको भी भागीदार बना रहे हो। इधर भूल की, उधर जा कर सुधार आए। फिर भूल करने को तैयार हो कर वापस आ गए। जब भी तुम बुरा करते हो, तब तुम भले विचार करते हो। ताकि भूल का जो तुम्हारे भीतर दंश, कांटा लग गया, वह निकल जाए। और तुम्हारी जो प्रतिमा भीतर अच्छे आदमी की खंडित हो गयी, वह फिर अखंड हो जाए।
लेकिन तुम्हारे विचारों का कोई हिसाब होने वाला नहीं है। तुम क्या करते हो, वही तुम बनते हो। तुम क्या सोचते हो, इससे कोई संबंध नहीं है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जब भी कोई शुभ कृत्य करना हो तब तुम टालते हो, पोस्टपोन करते हो। तुम कहते हो, कल करेंगे, जल्दी क्या है? और जब भी कोई बुरा कृत्य करना होता है, तो तुम कभी नहीं कहते कि कल करेंगे। तुम कहते हो, अभी हो जाए, इसी वक्त। जब तुम्हें किसी की हत्या करनी है, तब तुम उसी वक्त करते हो। क्यों? क्योंकि तुम भी भलीभांति जानते हो, जो टाला, वह सदा के लिए टल जाएगा, वह कभी नहीं होगा। क्रोध करना हो तो उसी वक्त करते हो। तुमने कोई आदमी देखा जो कहे कि अच्छा भाई, अभी हम जरा काम में हैं, कल आ कर क्रोध करेंगे। तुमने गाली दी, वह हजार काम छोड़ देता है। पत्नी मर रही हो, वह दवा लेने जा रहा था। वह कहता है, मर जाए कल की मरने वाली आज, लेकिन पहले यह निपटारा करना है। क्योंकि तुम भी भलीभांति जानते हो कि तुमने टाला कि सदा के लिए टल जाएगा। फिर कभी न कर पाओगे।
गुरजिएफ का पिता मरा। और उसने उससे कहा कि सिर्फ एक बात तू ख्याल रखना
कि जब भी क्रोध करना हो चौबीस घंटे रुक कर करना। कोई गाली दे, उससे कह आना कि भई चौबीस घंटे बाद आ कर कहूंगा उत्तर। क्योंकि क्या करूं, बाप मरते वक्त यह वचन ले गया है। नौ साल का था गुरजिएफ। कुछ समझता भी न था। वचन दे दिया।
गुरजिएफ ने लिखा है बाद में कि मेरी पूरी जिंदगी उस वचन के कारण बदल गयी। क्योंकि चौबीस घंटे में कहीं किसी ने क्रोध किया है लौट कर? चौबीस घंटे में तो मूर्खता समझ में आ जाती है कि यह बात ही फिजूल है। चौबीस घंटे में निन्यानबे मौकों पर तो यह भी समझ में आता है कि उस आदमी ने जो कहा था, वह ठीक ही कहा है। वह गाली नहीं है, ठीक मेरा वर्णन है। अगर उसने कहा, चोर! तो चौबीस घंटे में खुद ही समझ में आ जाता है कि बात तो ठीक ही कह रहा है कि मैं चोर हूं। उसने कहा, बेईमान! चौबीस घंटे में खुद ही समझ में आ जाता है कि बात तो ठीक ही है, हूं तो बेईमान। यह तो वर्णन हुआ, गाली कहां हुई!

तो गुरजिएफ बहुत दफा जा कर तो धन्यवाद दे आया कि तुमने जो कहा था बिल्कुल ठीक कहा था। क्रोध का तो कोई सवाल ही नहीं है। तुम्हारी बड़ी कृपा कि तुमने बताया। जो मुझे नहीं दिखता था, तुमने समझाया। बीमारी जो बता दे वह चिकित्सक है, दुश्मन थोड़े ही है। निदान कर दिया तुमने। डायग्नोसिस हो गयी।
या चौबीस घंटे बाद वह जा कर कह आता कि भाई, मैंने बहुत सोचा, लेकिन तुम्हारी बात बिल्कुल ही गलत मालूम पड़ती है। मुझ पर लागू नहीं होती। और जब लागू ही नहीं होती तो हम किसलिए क्रोध करें? हम से उसका कुछ लेना-देना नहीं, तुम किसी और के संबंध में कह रहे होओगे। इसकी कोई संगति ही नहीं है। या तो संगति पायी, तब धन्यवाद दे आता। या जब असंगति पायी तो झूठ के लिए कोई क्रोधित होता है?
तुमने कभी ख्याल किया? तुम जब भी क्रोधित होते हो, तो कोई सच बात कह रहा होता है, तभी क्रोधित होते हो। तुम चोर हो, और कोई कह देता है चोर। तुम अगर चोर नहीं हो, तो कोई कितना ही चोर कहे, क्रोध पैदा नहीं होता। क्योंकि क्या क्रोध करना! वह आदमी बात ही झूठ कह रहा है। वह किसी और के संबंध में कह रहा होगा। उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं। उसकी चोट ही नहीं पड़ती।
लेकिन तुम छिपाए थे कि तुम चोर हो। तुम सब तरफ साधु का वेश बनाए थे, मंदिर जाते थे, माला जपते थे। तुम्हारा वेश धोखे का था। और इस आदमी ने असली बात पकड़ ली, इसने कह दिया चोर; चोट लगती है। ध्यान रखना, सत्य से चोट लगती है; झूठ से कैसे चोट लगेगी? झूठ की कोई ताकत है? झूठ में कोई बल है? लेकिन हम बुराई को उसी वक्त करते हैं। और भलाई को हम कहते हैं, कल आना।
एक मारवाड़ी गर्मी के दिनों में अपनी खस की टट्टी के पीछे बैठा हुआ हिसाब-किताब कर रहा है। एक भिखारी मांगने आया। वह कहता है, मिल जाएं चार पैसे। उस मारवाड़ी ने कहा कि जाओ, पैसे-वैसे यहां नहीं हैं। उसने कहा, तो दो रोटी मिल जाएं। उस मारवाड़ी ने कहा, भागो यहां से, यहां कोई रोटी-वोटी नहीं है। उसने कहा, कुछ कपड़ा-लत्ता? जैसे कि भिखारी अड़ियल होते हैं। लेकिन मारवाड़ियों से कोई जीता है? और उस मारवाड़ी ने कहा कि यहां कुछ नहीं है, आगे बढ़ो। उस भिखारी ने कहा, फिर भीतर बैठे क्या कर रहे हो? चलो हमारे साथ ही हो जाओ। जो भी मिलेगा आधा-आधा कर लेंगे।
कोई दो पैसे भी मांगे तो तुम टालते हो। कोई दो रोटी भी मांगने आ जाए तो तुम पूरे प्राणपण से लग जाते हो कि कैसे हटे। अच्छा करने की हिम्मत ही नहीं होती। और बुरा करने को तुम बिल्कुल ही कमर बांध कर तैयार खड़े हो। जैसे कि प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि आओ।
बुरे को स्थगित करना और भले को स्थगित मत करना, तुम्हारा जीवन बदल जाएगा। बुरे को कहना, कल करेंगे। भले को अभी कर लेना। क्योंकि कल का क्या भरोसा है? अगर तुम्हारे जीवन का यह सूत्र हो जाए कि बुरे को स्थगित करना, बुरा होगा ही नहीं। भले को तत्क्षण करना, बहुत भला होगा। अभी भी तुम वही कर रहे हो, उलटे ढंग से। अभी तुम बुरा करते हो, भले को टालते हो। भला फिर कभी नहीं होता, बुरा रोज होता है। तुम्हारे सारे कृत्यों कीशृंखला कांटों की हो जाती है। उसमें फूल फिर आते नहीं।
नानक कहते हैं, लेकिन विचार होगा कर्म का। वह परमात्मा सच्चा है और उसका दरबार भी सच्चा है।
और ध्यान रखना कि तुम सच्चे हुए तो ही उसके दरबार में प्रवेश पा सकोगे। तुम किसे धोखा दे रहे हो? तुम सारे संसार को धोखा दे सकते हो, लेकिन क्या तुम स्वयं को धोखा दे सकते हो? तुम तो जानते ही हो कि तुम क्या हो! सारी दुनिया तुम्हें पूजे, कहे कि तुम साधु हो, लेकिन तुम तो भीतर जानते ही हो कि तुम कौन हो? उस भीतर छिपे को कैसे धोखा दोगे? वह जो तुम्हारा भीतर छिपा हुआ अस्तित्व है, वही तो परमात्मा है। परमात्मा के सामने तुम कैसे वंचना करोगे? वहां तो तुम नग्न हो। वहां तो सब खुला है। वहां तो कुछ ढंका नहीं हो सकता। उस दरबार में तो सच्चे ही तुम हो सकोगे तो ही प्रवेश पा सकोगे।
लोग पूछते हैं, परमात्मा कैसे पाएं? लोगों को पूछना चाहिए, सच्चे कैसे हों? परमात्मा को पाने की बात ही छोड़ देनी चाहिए। जैसे लोग पूछते हैं,

परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता। उन्हें पूछना चाहिए, मुझे परमात्मा क्यों दिखायी नहीं पड़ता?
झूठी आंखें उसे नहीं देख सकतीं। सत्य को देखना हो तो सच्ची आंखें चाहिए। सत्य को अनुभव करना हो तो सच्चा हृदय चाहिए। सत्य को पहचानना हो तो तुम्हें भी सच्चा होना पड़े। क्योंकि समान ही समान को पहचान सकता है। तुम अभी जहां खड़े हो, जैसे खड़े हो, बिल्कुल झूठ हो।
झूठ का मतलब इतना नहीं है कि तुम जो बोलते हो वह झूठ है। तुम्हारा होना ही झूठ है। तुम्हारे चेहरे झूठ हैं। तुम्हारा व्यवहार झूठ है। तुम कहते कुछ हो, तुम सोचते कुछ हो, तुम करते कुछ हो। तुम्हारी बात का, तुम्हारे होने का कोई भी भरोसा नहीं है। तुम्हें खुद ही भरोसा नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। क्या तुम यही करना चाहते हो? तुम क्या कह रहे हो? क्या तुम यही सोचते हो जो तुम कह रहे हो?
लेकिन तुम डरोगे बहुत। क्योंकि अगर तुम सच्चे होने लगे तो तुमने धर्मशाला में जो घर बनाया है, वह गिरने लगेगा। क्योंकि इस धर्मशाला में-- धर्मशाला का अर्थ है, वह पड़ाव है, घर नहीं है--बड़े से बड़ा झूठ तो तुमने यह खड़ा किया है कि तुमने घर बना लिया है। अब तुम कागज की नाव में बैठे हो और यात्रा कर रहे हो। तुम यात्रा करोगे कैसे? किनारे पर ही बैठे रहोगे। नाव को पानी में भी उतारना खतरनाक है। क्योंकि कागज की नाव है, उतरी कि डूबी। उतरी कि गली।
लोग मेरे पास आते हैं। और वे कहते हैं कि अगर हम सच्चे हो जाएं तो जीवन बहुत मुश्किल हो जाएगा। हो ही जाएगा। क्योंकि झूठ से तुमने जीवन को बनाया है, इसलिए। शुरू में तो बहुत मुश्किल होगा। न बदलो तो भी मुश्किल है। कौन सा सुख तुमने जाना है? कौन से आनंद का फूल तुम्हारे जीवन में खिला है? कौन सी सुगंध आयी है? क्या है कि जिसके कारण तुम कह सको कि जीना सार्थक हुआ? कुछ भी तो दिखायी नहीं पड़ता।
कठिन तो अभी भी है। लेकिन इस कठिनाई के तुम आदी हो गए हो। जब तुम सच में बदलने की कोशिश करोगे तो आदतें टूटेंगी। जिस आदमी से तुम्हें कुछ प्रेम नहीं है, उससे तुम कहते हो, आप आए, बड़ा सौभाग्य है। और भीतर सोचते हो कि इस दुष्ट का चेहरा कैसे दिखायी पड़ गया सुबह-सुबह! आज का दिन खराब हो गया।
अगर वह आदमी भी थोड़ा समझदार हो, थोड़ा सजग हो, तो वह तुम्हारे झूठ को देख लेगा। क्योंकि तुम कहो कुछ भी, तुम्हारी आंखें खबर देंगी। तुम्हारा चेहरा, तुम्हारा हाव-भाव प्रसन्नता प्रकट नहीं करेगा। तुम्हारे शब्द और होंगे, तुम्हारे ओंठ और होंगे। उन दोनों में कोई संगति न होगी।
क्योंकि जब कोई आदमी सच ही प्रसन्न होता है, तो प्रसन्नता की बात कहता थोड़े ही है! उसका रोआं-रोआं गदगद हो उठता है। जब कोई आदमी सच ही प्रसन्न होता है, तो उसको तुम पहचान सकते हो। लेकिन दूसरा भी सोया हुआ है। वह भी सोचता है कि तुम ठीक कह रहे हो। इसलिए तो खुशामद दुनिया में सफल होती है। सब झूठी है। और सुनने वाला भी अगर गौर से सुने तो समझेगा कि तुम बिल्कुल गलत बात कह रहे हो। यह है ही नहीं।
इंग्लैंड में कवि हुआ ईट्स। उसे नोबल प्राइज मिली। उसका स्वागत किया गया। वह बहुत सच्चा आदमी था। बहुत सरल आदमी था। उसके काव्य में भी वैसी सच्चाई है। जब उसका स्वागत किया गया तो स्वागत में तो जैसा होता है, लोग स्तुति करते हैं। जो सदा गाली देते थे, वे भी वहां खड़े हो कर स्तुति करते हैं। वह बड़ा हैरान हुआ। और उसे बड़ा संकोच होने लगा कि ये सब झूठी बातें मेरे संबंध में कही जा रही हैं। वह अपनी कुर्सी में सिकुड़ता गया--दो घंटे! जब स्तुति खतम हुई तो लोगों ने देखा कि वह कुर्सी में बिल्कुल ऐसा दबा बैठा है कि जैसे अब उसके बर्दाश्त के बाहर है। उसे हिलाया सभापति ने और उससे कहा, आप सो तो नहीं गए हैं? उसने कहा कि मैं सो नहीं गया हूं, लेकिन अगर मुझे यह पता होता तो मैं न आता। कुछ समझा नहीं सभापति। उसने खड़े हो कर घोषणा की कि पच्चीस हजार पौंड हमने पूरे मित्रों ने इकट्ठे किए हैं तुम्हारी भेंट के लिए। सोचा सभी ने कि वह बड़ा प्रसन्न होगा। उसने खड़े हो कर कहा कि अगर मुझे पता होता कि सिर्फ पच्चीस हजार पौंड के लिए इतना झूठ

मुझे सुनना पड़ता तो मैं आता ही नहीं। सिर्फ पच्चीस हजार पौंड के लिए इतना झूठ! महंगा सौदा रहा। दो घंटे!
अगर तुम था.ेडे सजग हो तो तुम्हारी कोई खुशामद न कर सकेगा। क्योंकि तुम पाओगे कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। लेकिन तुम सजग नहीं हो, लोग झूठ बोल रहे हैं चारों तरफ, तुम्हारे ख्याल में नहीं आता। तुम खुद झूठ बोल रहे हो, वह तक तुम्हारे ख्याल में नहीं आता कि तुम क्या कह रहे हो? और तब तुम फंसते हो बड़ी झंझटों में। किसी स्त्री से कह बैठते हो कि तू बड़ी सुंदर है। तुझसे मुझे बड़ा प्रेम है। फिर तुम उलझन में पड़े। तुम शायद झूठ ही कह रहे थे। अब यह सिलसिला शुरू हुआ। कल तुम पछताओगे।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने कहा उससे एक दिन सुबह चाय पीते वक्त कि तुम ही मेरे पीछे पड़े थे। मैं तुम्हारे पीछे कभी नहीं पड़ी थी। और अब तुम्हारे ये ढंग! अगर यही व्यवहार करना था तो मेरे पीछे क्यों पड़े थे? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, तू बिल्कुल ठीक कह रही है। कभी किसी चूहादानी को चूहे को पकड़ने के लिए दौड़ते देखा है? चूहा खुद ही फंसता है। यह बात सच है तेरा कहना कि हम खुद ही तेरे पीछे पड़े थे।
स्त्रियां होशियार हैं इस मामले में। इसलिए कोई पति कभी उनको यह नहीं
कह सकता कि तू मेरे पीछे पड़ी थी। कोई स्त्री ऐसी भूल नहीं करती। क्योंकि यह झंझट आज नहीं कल तो आने ही वाली है। हमेशा पुरुष ही फंसता है। क्योंकि स्त्री चुपचाप देखती है। वह सुनती है, वह राजी होती है, सिर हिलाती है। बाकी कभी इनिशिएटिव नहीं लेती। पहल नहीं करती। वह नसरुद्दीन ठीक कहता है कि कोई पिंजड़ा चूहे के पीछे नहीं भागता। स्त्रियां ज्यादा होशियार हैं। वे अपने आप ही... ।
जब नसरुद्दीन मरने लगा तो उसके बेटे ने पूछा कि कोई सूत्र जीवन के अनुभव के? तो उसने कहा, तीन बातें सीखी हैं पूरे जीवन में। एक यह कि अगर लोग थोड़ा धैर्य रखें तो फल अपने आप ही पक जाते हैं और गिरते हैं। उनको तोड़ने के लिए झाड़ पर चढ़ने की कोई जरूरत नहीं। और दूसरी बात कि लोग अगर धैर्य रखें तो लोग अपने आप ही मर जाते हैं। उनको मारने के लिए युद्ध वगैरह करने की कोई जरूरत नहीं। और तीसरी बात, अगर लोग सच में धैर्य रखें तो स्त्रियां खुद पुरुषों के पीछे भागेंगी। उनके पीछे भागने की कोई जरूरत नहीं है। उसने कहा, ये तीन चीजें मैंने जीवन का सार अनुभव की हैं। लेकिन कोई सार से तो चलता नहीं। न कोई अनुभव से चलता है।
क्या तुम बोलते हो? क्या तुम करते हो? होशपूर्वक करोगे तो तुम पाओगे निन्यानबे तो गिर गया। निन्यानबे प्रतिशत तो गिर गया। एक प्रतिशत बचेगा। वह एक प्रतिशत धर्मशाला के लिए काफी है। वह निन्यानबे प्रतिशत से घर बना रहे थे तुम। वह जो एक प्रतिशत बचेगा, वही संन्यासी का जीवन है। जो अनिवार्य है वही बचेगा। जो अपरिहार्य है वही तुम करोगे। जो अनावश्यक है वह कट जाएगा। अनावश्यक ही तो गृहस्थ का उपद्रव है। कितनी अनावश्यक चीजें तुम घर में खरीद कर ले आए हो।
एक घर में मैं मेहमान हुआ। तो वहां इतनी चीजें थीं कि उस घर में चलना- फिरना तक मुश्किल था। वे अमीर हैं, लेकिन वे इस भांति रह रहे हैं कि गरीब के झोपड़ों में भी ज्यादा जगह होती है। जो मिलता है बाजार से वह खरीद कर चला आता है। जो भी चीज अखबार में एडवरटाइज होती है, वह उनके घर होनी ही चाहिए। घर भर गया है चीजों से। वहां रहना ही मुश्किल है। वहां चलना मुश्किल है। मैंने उनसे कहा कि यह अजायबघर है कि घर? यहां तुम रहते हो कि यह कोई प्रदर्शनी है? इनमें से सभी चीजें करीब-करीब बेकार हैं। इनसे तुम छुटकारा पाओ। घर में थोड़ी जगह होनी चाहिए, जगह का नाम घर है। यहां तो रहना ही मुश्किल है। थोड़े दिन में तुम को बाहर रहना पड़ेगा, अगर यही सिलसिला रहा। तुम घर में भी कबाड़ इकट्ठा करते हो। चीजें व्यर्थ हो जाती हैं तो भी रखे रहते हैं लोग कि शायद कभी काम पड़ें। खराब हो गयी चीजों को भी रखे रहते हैं कि शायद कभी काम पड़ें।
एस्कीमोज एक नियम मानते हैं। और उनका नियम अगर सारी दुनिया माने तो दुनिया में बड़ी शांति और बड़ा आनंद हो जाए। हर वर्ष, वर्ष के प्रथम दिन वे अपने घर की सब चीजें बांट देते हैं। फिर से अ, ब, स, से शुरू करते हैं। तो एस्कीमो का छोटा सा घर जितना साफ-सुथरा होता है, दुनिया में किसी का नहीं

होता। ऐसे भी उसके पास ज्यादा नहीं होता; लेकिन पहली तारीख को हर वर्ष की सब बांट देना है। फिर सब चीजें शुरू करनी हैं। एक ताजगी! और व्यर्थ इकट्ठी ही नहीं करता वह, क्योंकि पता है कि एक तारीख को सब बांट देना है। तुम्हीं सोचो! अगर हर साल की एक तारीख को बांट देना हो, तो कितनी चीजें तुम ले आए हो जो कभी न लाए होते।
तुम व्यर्थ की चीजें ही घर में इकट्ठी नहीं करते, उसी तरह तुम व्यर्थ
के विचार भी इकट्ठे करते हो। कोई आदमी तुम्हें सुना रहा है कुछ भी, तुम सुनते जाते हो। अखबार में तुम कुछ भी पढ़ते जाते हो। तुम यह भी नहीं पूछते कि ये विचार इकट्ठे करने हैं? तुमने कभी किसी आदमी से कहा कि भाई इन बातों की मुझे कोई भी जरूरत नहीं? कोई आदमी किसी की निंदा कर रहा है, कोई अफवाह सुना रहा है, तुमने कभी बीच में टोका कि इसकी मुझे कोई भी जरूरत नहीं? क्यों कचरा मेरी खोपड़ी में डाल रहे हो? डाल देना आसान है, निकालना मुश्किल है। ध्यान करने वालों से पूछो! जब वे निकालने बैठते हैं तब वह निकलता नहीं। वह जड़ें जमा ली हैं उसने। और इकट्ठा करते वक्त होश नहीं रखा।
कृत्य भी तुम गलत करते हो, व्यर्थ का सामान इकट्ठा करते हो, व्यर्थ के विचार इकट्ठे कर लेते हो। तुम धीरे-धीरे एक कबाड़खाना हो जाते हो। कबाड़ी की दुकान में और तुम्हारे जीवन में कोई अंतर नहीं है। थोड़ा सजग होओ।
नानक कहते हैं कि तुम्हारे एक-एक कृत्य से तुम्हारा जीवन निर्मित हो रहा है। तो एक-एक कृत्य को बहुत विचार कर करो।
उसके दरबार में सच्चा ही पहुंच पाएगा। उसमें प्रामाणिक पंच शोभा पाते हैं। जो श्रेष्ठ हैं, जो प्रामाणिक हैं, केवल वे ही वहां पहुंच पाते हैं।
उसकी कृपा-दृष्टि से उन्हें प्रतीक की प्राप्ति होती है।
और जैसे-जैसे तुम्हारे जीवन में सच्चाई आएगी, तुम्हें उसकी कृपा- दृष्टि के प्रतीक मिलने शुरू हो जाएंगे। तुम जगह-जगह पाओगे उसका इशारा। अभी तुम्हें उसका कोई इशारा दिखायी नहीं पड़ता। अभी तुम्हें उसकी कोई पहचान ही नहीं है। लेकिन तुम इधर सच्चे होने शुरू हुए और तुम पाओगे भीतर तुम्हारे अंतःकरण में उसके आदेश आने शुरू हो गए। इधर तुम सच्चे हुए, तुम पाओगे रत्ती-रत्ती, पत्ती-पत्ती पर तुम्हें उसकी पहचान आने लगी।
वह तुम्हें चलाना चाहता है। वह तुम्हें खबर देना चाहता है कि क्या करो, क्या न करो। लेकिन उस खबर को सुनने योग्य तुम्हारे भीतर खालीपन नहीं है। तुम्हारा अपना शोरगुल इतना ज्यादा है कि उसकी आवाज सुनायी नहीं पड़ती। रोज तुम्हें प्रतीक मिलने लगेंगे उसकी कृपा-दृष्टि के।
अभी तुम्हें कोई प्रतीक नहीं मिलता। अभी तुम अपने ही सहारे जी रहे हो। और अपना सहारा भी कोई सहारा है? जैसे ही तुम सच्चे होने शुरू होओगे, उसके सहारे जीना शुरू हो जाएगा। तब जीवन की एक नयी गति, और एक नया आयाम उपलब्ध होता है।
वहां ही कच्चे और पक्के का निर्णय होता है।
नानक कहते हैं, वहां पहुंचने पर ही लोगों की परख होती है।
राती रुति थिति वार। पवन पानी अगनी पाताल।।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
तिसु विचि जीअ जुगुति के रंग। तिन के नाम अनेक अनंत।।
करमी करमी होइ वीचारु। साचा आप साचा दरबारु।।
तिथै सोहनि पंच परवाणु। नदरी करमी पवै नीसाणु।।
कच पकाई ओथै पाइ। नानक गइआ जापै जाइ।।
सिर्फ परमात्मा के सामने ही परख होती है, कौन कच्चा है, कौन पक्का है।
क्या अर्थ है कच्चे और पक्के का? परमात्मा के सामने जो गल जाए वह कच्चा।
उसके सामने जो बच जाए वह पक्का। तुम इसे कसौटी बना लो कि तुम जो भी करो यह सोच कर करना कि क्या इस कृत्य को मैं परमात्मा के सामने प्रकट कर सकूंगा? या कि डरूंगा? या कि छिपाना चाहूंगा? या कि चाहूंगा कि परमात्मा इसे न देख ले?
अगर तुम डरो, छिपाना चाहो, मत करना। क्योंकि उसके सामने कुछ भी छिपाया
न जा सकेगा। वह तुम्हें आर-पार देख लेगा। उस दर्पण से कुछ भी छिप नहीं सकता।

अगर तुम इसे संभाल लो अपने मन में कि जो भी करो, जो भी सोचो, जो भी बोलो,
एक कसौटी पर पहले कस लो। जैसे स्वर्णकार, सुनार खरीदता है सोना, तो पत्थर पास रखे रहता है। पहले कसता है। जब पत्थर कह देता है, ठीक! तभी आगे बढ़ता है। तुम इसको पत्थर बना लो कसने का कि क्या इसे मैं परमात्मा के सामने प्रकट कर सकूंगा जो भी मैं कर रहा हूं? फिर निश्चिंत भाव से करो। अगर भीतर मन डरे, कंपे, और कहे कि यह तो कैसे जाहिर कर सकोगे? तो मत करना।
तुम पक्के होने लगोगे। कुम्हार घड़े पकाता है। कच्चे वर्षा में गल जाएंगे। पक्के जल को भर लेंगे। तुम बाजार जाते हो, दो पैसे का घड़ा खरीदते हो तो ठोंक कर देखते हो कि कच्चा है या पक्का। क्योंकि पक्के की ध्वनि और है।
जैसे-जैसे तुम पकने लगोगे, तुम्हारे जीवन की ध्वनि बदलने लगेगी। तुम पाओगे अंतर-नाद अपने भीतर। और उसके इशारे और उसके प्रतीक तुम्हें मिलने लगेंगे। उसके इशारे हैं--तुम ज्यादा शांत होने लगोगे, तुम ज्यादा सुखी होने लगोगे, तुम ज्यादा आनंदित अपने को पाओगे। एक गहन संतोष की छाया तुम्हें सब तरफ से घेरे रहेगी। और तुम पाओगे एक अनुग्रह का भाव, एक अहोभाव--अकारण! कुछ भी कारण न होगा और तुम पाओगे कि भीतर एक आनंद थिरक रहा है।
सहजोबाई ने कहा है, बिन घन परत फुहार! कोई बादल दिखायी नहीं पड़ता और वर्षा हो रही है। कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता, अकारण तुम प्रफुल्लित हो। अकारण तुम्हारा रोआं-रोआं मुस्कुरा रहा है, आनंदित हो रहा है। कुछ मिल नहीं गया खजाना, लेकिन फिर भी हृदय धन्यवाद दे रहा है। ये प्रतीक हैं। जैसे-जैसे तुम पक्के होने लगोगे, वैसे-वैसे तुममें वर्षा का जल भरने लगेगा। उसका आनंद तो बरस रहा है। वह फुहार तो हर वक्त पड़ रही है। लेकिन तुम कच्चे हो। उसी में तो गल जाते हो। तृप्ति तो हो नहीं पाती, उलटे गल जाते हो, उलटे मिट जाते हो। परमात्मा का आशीर्वाद तुम्हारे कच्चे होने के कारण अभिशाप हो जाता है। तुम पक्के हो जाओगे तो जिन्हें तुमने कल तक अभिशाप जाना था, तुम अचानक पाओगे, वे सभी आशीर्वाद हैं।
वहां पहुंचने पर ही लोगों की परख है।
लेकिन उस समय तक प्रतीक्षा मत करो। क्योंकि तुम प्रतिक्षण बन रहे हो, निर्मित हो रहे हो। आज शुरू करो तो ही तुम उसके सामने प्रकट हो सकोगे। आज से तैयारी करो। ऐसे भी बहुत समय गंवाया है। ऐसे भी बहुत देर हो चुकी है। एक क्षण भी मत गंवाओ अब। परमात्मा को ध्यान में रख कर जीयो। क्योंकि वह घर है। और संसार धर्मशाला है।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
अठारहवां प्रवचन

नानक अंतु न अंतु

पउड़ीः 35
धरम खंड का एहो धरमु। गिआन खंड का आखहु करमु।।
केते पवन पाणि वैसंतर केते कान महेस। केते बरमे घाड़ति घड़िअहि रूप रंग
के वेस।।
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस। केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस।।
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस। केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद।।
केतीआ खाणी केतीआ वाणी केते पात नरिंद। केतीआ सुरती सेवक केते "नानक" अंतु न अंतु।।

पउड़ीः 36
गिआन खंड महि गिआनु परचंड। तिथै नाद विनोद कोड अनंदु।।
सरम खंड की वाणी रूपु। तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु।।
ता कीआ गला कथीआ ना जाहि। जे को कहै पिछै पछुताइ।।
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि। तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि।।

नानक ने अस्तित्व और उसकी खोज को चार खंडों में बांटा है। उन चार खंडों को थोड़ा समझ लें। उनका विभाजन बहुत वैज्ञानिक है। पहले खंड को वे धर्म-खंड कहते हैं, दूसरे को ज्ञान, तीसरे को लज्जा और चौथे को कृपा।
धर्म से अर्थ है, दि ला, नियम; जिससे अस्तित्व चलता है। जिसको वेद ने
ऋत कहा है। ऋत के कारण ही तो हम बदलाहट को मौसम की ऋतु कहते हैं। उन दिनों जब वेद लिखे गए तो ऋतुएं बिल्कुल निश्चित थीं। रत्ती-पल फर्क न पड़ता था। हर वर्ष वसंत उसी दिन आता था जिस दिन सदा आता रहा था। हर वर्ष वर्षा उसी दिन शुरू होती थी जिस दिन सदा होती रही थी। आदमी ने प्रकृति को अस्तव्यस्त कर दिया है। इसलिए ऋतुएं भी अब ऋतुएं नहीं हैं। क्योंकि ऋतु शब्द ही हमने इसलिए दिया था कि अपरिवर्तित नियम के अनुसार जो चलती थीं। एक अनुशासन था। आदमी की तथाकथित समझदारी के कारण सब अस्तव्यस्त हो गया है। ऋतुओं ने भी अपनी पटरी छोड़ दी।
अब पश्चिम में इस पर बहुत चिंता पैदा हुई है। एक नया आंदोलन चलता है, इकॉलाजी। वे कहते हैं कि प्रकृति को मत छुओ। हमने बहुत नुकसान कर दिया है। और प्रकृति को उस पर ही छोड़ दो। उसमें किसी तरह का मानवीय हस्तक्षेप खतरनाक है। उससे न केवल प्रकृति, बल्कि अब मनुष्य का भी अंत करीब है।
वेद ने जब मौसम के परिवर्तन को ऋतु कहा, तो ऋत शब्द के कारण कहा। ऋत का अर्थ होता है, अपरिवर्तित नियम, अनचेंजिंग ला; जिसको लाओत्से ने ताओ कहा है।
उस नियम को जानने की जो विधि है, वह धर्म है। जीवन का जो परम नियम है,
जो उसका गहनतम अनुशासन है, डिसिप्लिन है, उसे पहचान लेने की कला का नाम धर्म है। बुद्ध ने तो धम्म या धर्म शब्द का अर्थ नियम की ही तरह उपयोग किया है। तो जब बौद्ध-भिक्षु कहते हैं, धम्मं शरणं गच्छामि, तब वे ये कह रहे हैं कि अब हम नियम की शरण जाते हैं। अब हम अपने को छोड़ते हैं। और हम उस परम नियम की शरण गहते हैं, जिससे हम पैदा हुए और जिसमें हम लीन हो जाएंगे। अब हम उसी के सहारे चलेंगे। सत्य को जान लेना, उस नियम को जान लेना ही है।
जीवन का जो मूल आधार है, उसको पहचान लेने को नानक कहते हैं, धर्म-खंड।
हम जीते हैं; लेकिन हम विचार से जीते हैं। हम सोच-सोच कर कदम रखते हैं।
और जितना सोच-सोच कर हम कदम रखते हैं, उतने ही हमारे कदम गलत पड़ते हैं। जो- जो हम बिना सोचे करते हैं, वही-वही ठीक कदम पर ले जाता है।
तुम खाना खाते हो। फिर उसे पचाने के लिए तो तुम नहीं सोचते। फिर तो नियम उसे पचाता है। किसी दिन कोशिश कर के देखो। भोजन कर लो, फिर सोचो कि अब

कैसे शरीर पचाएगा? फिर चौबीस घंटे पेट का ख्याल रखो कि पच रहा है कि नहीं पच रहा है? अपच हो जाएगी उसी दिन। क्योंकि जैसे ही विचार अचेतन नियम में बाधा डालता है, वैसे ही उपद्रव हो जाता है। तुम रोज सोते हो सांझ, एक दिन सोते वक्त सोच कर सोओ कि किस तरह सोता हूं? किस तरह नींद आती है? विचार करो। उस रात नींद खो जाएगी। इसलिए ज्यादा विचार करने वाले लोगों को अगर अनिद्रा का रोग हो जाता है तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
जीवन तो चल रहा है। वृक्ष फूल को खिलाते वक्त सोचता थोड़े ही है कि कब खिलाऊं? कि समय पक गया या नहीं? मौसम आ गया है या नहीं? वृक्ष जानता है अपनी जड़ों से, सोच कर नहीं। यह उसमें अंतर्भावित है। नदियां सागर की तरफ बहती हैं। उन्हें कुछ दिशा का बोध है? उनके पास कोई नक्शा है कि सागर कहां है? लेकिन एक अचेतन नियम उन्हें सागर की तरफ ले जाता है।
यह इतना विराट जगत चल रहा है बिना विचार के। और इस विराट जगत में कहीं
भी कोई गलती नहीं हो रही है। कहीं कोई भूल-चूक नहीं हो रही, सब बिल्कुल ठीक है। सिर्फ आदमी गलत हो गया है। क्योंकि आदमी नियम से नहीं चल रहा है, विचार से चल रहा है। आदमी सोचता है, करूं या न करूं? ठीक है या गलत? उचित होगा कि अनुचित? परिणाम क्या होंगे? फल मिलेगा या नहीं मिलेगा? लाभ होगा या हानि? लोग क्या कहेंगे? हजार विचार करता है। और इस हजार विचार के धुएं में ही जीवन के नियम की सीधी रेखा उलझ जाती है और खो जाती है। निर्विचार से जो चलने लगा, वही सिद्ध है। निर्विचार से जो जीने लगा, वही आ गया शरण धर्म की। तो धर्म कोई बुद्धिमानी नहीं है और न तुम्हारी बुद्धि का कोई निर्णय है। धर्म तो बुद्धि से थक गए आदमी की--जो बुद्धि से परेशान हो गया है, जिसने अपनी तरफ से सभी हाथ-पैर मार लिए और कुछ परिणाम न हुआ, जो सब तरफ से थक गया और असहाय हो गया--उस आदमी की खोज है धर्म। वह छोड़ देता है बुद्धि को। वह कहता है, अब तू जैसा चलाए। उसको ही नानक हुक्म कहते हैं। वे कहते हैं, अब उसके हुक्म से चलूंगा।
इससे तुम यह न समझना कि वहां बैठा हुआ कोई महापुरुष, कोई परमपिता, कोई परमात्मा हुक्म दे रहा है। वहां कोई बैठा हुआ नहीं है। हुक्म चल रहा है बिना हुक्मी के। नियम चल रहा है। नियम ही परमात्मा है। हमें भाषा ऐसी उपयोग करनी पड़ती है जिसे आदमी समझ ले। तो हमें प्रतीक बनाने पड़ते हैं। कई बार नासमझ आदमी प्रतीकों को जकड़ कर बैठ जाता है। वह सोचता है कि परमात्मा का कोई मुंह है, या हाथ-पैर हैं। वह किसी सिंहासन पर बैठ कर हुक्म चला रहा है। हम हुक्म को मानें या न मानें! न मानें तो अधार्मिक, मान लें तो धार्मिक। नहीं मानेंगे तो परमात्मा नाराज होगा, क्रुद्ध होगा, दंड देगा। मानेंगे तो पुरस्कृत करेगा।
ये सब व्यर्थ की बातें हैं। यह तुम प्रतीक को जरूरत से ज्यादा खींच लिए। नियम है। कोई व्यक्ति वहां बैठा हुआ नहीं है। उस नियम की शरण जब तुम चले जाते हो तो तुमसे गलत होना बंद हो जाता है। क्योंकि वह नियम गलत करना जानता ही नहीं। और जब तुमसे ठीक होने लगता है तो सुख का संगीत बजने लगता है। ठीक का अर्थ ही यही है कि जब सब ठीक होगा तो तुम्हारे चारों तरफ सुख की सुगंध होगी। वह ठीक होने की खबर है। जब कुछ गलत होगा, तब तुम्हारे पास दुख की छाया होगी। जितना गलत होता जाएगा, उतनी चिंता गहन होगी। दुख, पीड़ा होगी। तुम दुख को दंड मत समझना। कोई दंड नहीं दे रहा है। तुम दुख को तो सिर्फ गलत होने का सूचन समझना।
जैसे कोई आदमी सीधे-सादे रास्ते को छोड़ कर जंगल में भटक जाए, कांटे चुभने लगें, तो समझ लेता है कि यह रास्ता रास्ता नहीं है। इस पर कभी कोई चला नहीं। कांटे कोई दंड नहीं हैं। जहां कभी कोई नहीं चला है, वहां चलने से कांटे स्वभावतः गड़ेंगे। वह आदमी रास्ता खोज कर ठीक जगह लौट आता है। जैसे ही ठीक जगह लौटता है, कांटे चुभने बंद हो जाते हैं। वहां कांटे नहीं हैं। तुम जब दीवाल से टकराते हो तो सिर में चोट लगती है। कोई दीवाल तुम्हें दंड नहीं दे रही है। दीवाल को तुम से प्रयोजन क्या है? जब तुम दरवाजा खोज लेते हो, चोट नहीं लगती, तुम बाहर निकल जाते हो।
बस ऐसा ही है। जिस दिन तुम नियम को पहचानने लगते हो, तुम्हें दरवाजा मिल गया। और जब तक तुम नियम को नहीं पहचानते तब तक तुम दीवाल से टकराते रहते हो। कितनी चोटें हैं तुम्हारे सिर पर! कितने घाव जन्मों-जन्मों में

तुमने इकट्ठे कर लिए हैं! और सभी घाव रिसते हैं। सभी घाव पीड़ा देते हैं। और तुम सोचते हो, कोई तुम्हें दंड दे रहा है।
कोई तुम्हें दंड नहीं दे रहा है। तुम अपना किया ही, तुम अपना बोया ही काटते हो। और अगर यह तुम्हें समझ में आ जाए कि जब भी दुख हो तो समझ लेना कि कहीं तुम प्रकृति से हटे। जब भी कोई बीमारी तुम्हें पकड़े तो उसका अर्थ यह है कि तुम प्रकृति से कुछ यहां-वहां गए। बीमारी केवल सूचक है। और सूचक होने के कारण हितकर है, कल्याणदायी है। क्योंकि अगर तुम्हें बीमारी ही न हो, तो तुम जान ही न पाओगे कि तुम नियम से हट गए हो। और अगर तुम्हें दुख न हो तो तुम जान ही न पाओगे कि तुम जीवन की शाश्वत-व्यवस्था से विपरीत जा रहे हो। तब तो तुम भटकते ही चले जाओगे। तुम्हारे लौटने का कोई उपाय नहीं होगा। दुख तुम्हें लौटाता है। इसलिए तो दुख में परमात्मा की याद आती है। सुख में तुम भूल जाते हो।
संत प्रार्थना करते रहे हैं कि हे परमात्मा, थोड़ा दुख तो हमेशा ही देते रहना। ताकि याद बनी रहे। और हम तुझे भूल न जाएं। और प्रार्थना जारी रहे। हम तुझे पुकारते रहें। अगर दुख न हुआ, तो हम तुझे पुकारेंगे कैसे? सुख में हम भूल जाएंगे और खो जाएंगे।
दुख का एक ही अर्थ है कि तुम धर्म से कहीं डगमगा गए हो। न तो दूसरे पर दोष देना, न भाग्य को दोष देना, न परमात्मा पर नाराज होना। इसको तुम सूचक समझना और खोज करना कि तुम प्रकृति से कहां विपरीत चले गए हो? और अनुकूल आने की कोशिश करना। प्रकृति के अनुकूल आना धर्म है।
नानक पहले खंड को धर्म-खंड कहते हैं। दूसरे खंड को ज्ञान-खंड कहते हैं।
धर्म तो है। जिस दिन तुम उसे पहचान लेते हो, उस दिन ज्ञान। धर्म तो मौजूद है, लेकिन तुम आंख बंद किए हो। सूरज तो निकला है, लेकिन तुम द्वार बंद किए बैठे हो। दीया तो जल रहा है, लेकिन तुमने पीठ कर ली है दीए की तरफ। वर्षा तो हो रही है, लेकिन तुम भीगने से वंचित हो। तुम किसी अंधेरी गुहा में छिपे बैठे हो। धर्म तो चल रहा है, लेकिन तुम कहीं दूर हट गए हो।
वापस लौट आने का नाम ज्ञान है। और हर मनुष्य को वापस लौटना पड़ेगा। क्योंकि मनुष्य की यह क्षमता है कि वह दूर जा सकता है। पशुओं में कोई धर्म नहीं है। पौधों में, पक्षियों में कोई धर्म नहीं है। क्योंकि वे दूर जा ही नहीं सकते। वे कुछ भी अप्राकृतिक करने में असमर्थ हैं। वे जो भी करते हैं वही प्राकृतिक है। उनमें इतना भी बोध नहीं है कि वे भटक सकें। भटकने के लिए भी थोड़ी समझ चाहिए। गलत जाने के लिए भी थोड़ी हिम्मत चाहिए। मार्ग से उतरने के लिए भी थोड़ा होश चाहिए। उतना होश तुम में है। पर मार्ग पर आने के लिए वापस फिर, और भी ज्यादा होश चाहिए।
तो पशु हैं, वे भटक नहीं सकते, इसलिए ठीक जगह हैं। वह कोई बहुत गौरव की स्थिति नहीं है। वह मजबूरी है। फिर सामान्य मनुष्य है; उसमें थोड़ा बोध है, वह भटक सकता है, इसलिए भटक गया है। फिर बुद्धपुरुष हैं। नानक और कबीर हैं। उनके पास परम होश है। वे वापस लौट आए हैं।
पशुओं को जो सहज उपलब्ध है वह तुम्हें साधना से उपलब्ध करना पड़ेगा। बुद्ध वहीं लौट आते हैं जहां पौधे सदा से हैं। वही परम आनंद जो साधारण पौधे को उपलब्ध है, बुद्ध को भी उपलब्ध होता है। लेकिन एक बुनियादी फर्क होता है। वह फर्क यह है कि बुद्ध को वह आनंद परम बोधपूर्वक होता है। वे होश से भरे हुए उस आनंद को भोगते हैं। पौधे पर वह आनंद बरस रहा है। वह भटक भी नहीं सकता, लेकिन उसके पास बोध भी नहीं है।
तो प्रकृति अचेतन है। और बुद्धपुरुष सचेतन रूप से प्राकृतिक हैं। और दोनों के बीच में हम हैं। प्रकृति अचेतन है। वहां सुख सहज है। वहां सुख हो ही रहा है। लेकिन वहां कोई जानने वाला नहीं। उस सुख की प्रतीति और साक्षात करने वाला कोई भी नहीं है। जैसे तुम बेहोश पड़े हो और तुम्हारे चारों तरफ रत्नों की वर्षा हो रही है। पत्थर बरस रहे हैं या रत्न, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि तुम बेहोश पड़े हो। फिर तुम आंख खोलते हो। फिर तुम होश से भरते हो। और तब तुम पहचान पाते हो कि कैसी अपरंपार वर्षा तुम्हारे चारों तरफ हो रही थी।

बुद्ध वही पाते हैं जो प्रकृति में सहज ही उपलब्ध है, पत्थरों को मिला हुआ है। वहीं लौट आते हैं। लेकिन लौट आना बड़ा नया है। जगह तो वही है जहां चट्टानें खड़ी हैं। जिस वृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञान हुआ, वह वृक्ष भी वहीं है जहां बुद्ध हैं। होगा ही, क्योंकि परमात्मा कण-कण में छिपा है। लेकिन उस बोधिवृक्ष में और बुद्ध में क्या फर्क है? फर्क महान है। जगह तो एक है और अंतर अनंत है। अंतर यह है कि बुद्ध सजग हो कर, होशपूर्वक उस आनंद का, उस अपरंपार महिमा का अनुभव कर रहे हैं। वह महिमा वृक्ष पर भी बरस रही है, लेकिन उसे कुछ पता नहीं। वह महिमा तुम पर भी बरस रही है, लेकिन तुम पीठ किए खड़े हो। वृक्ष का मुंह है उसकी तरफ, लेकिन वृक्ष उसे जान नहीं सकता। तुम जान सकते हो, लेकिन तुम पीठ किए खड़े हो। जिस दिन तुम सम्मुख हो जाओगे, जिस दिन तुम्हारी आंखें उस महिमा की तरफ उठेंगी और तुम पहचानोगे, उसे नानक ज्ञान कहते हैं।
ज्ञान-खंड मनुष्य की उपलब्धि है। अगर मनुष्य न हो तो धर्म तो होगा, ज्ञान नहीं होगा। जगत धर्म से चलता रहेगा। लेकिन ज्ञान नहीं होगा। इसका यह अर्थ हुआ कि अस्तित्व ने मनुष्य के भीतर से ज्ञान को खोजने की कोशिश की है। इसलिए मनुष्य बड़े शिखर पर है। तुम्हें पता ही नहीं कि तुम्हें कितनी महिमा सहज उपलब्ध होने की संभावना है। तुम्हारे द्वारा परमात्मा सजग होना चाहता है। तुम्हारे माध्यम से जागना चाहता है।
प्रकृति में परमात्मा सोया है। मनुष्य में उसने करवट बदली है। वह मनुष्य में होश में आना चाहता है। प्रकृति में आधी अंधेरी रात है, गहन नींद है। मनुष्य में सुबह होने के करीब का क्षण है। तुम अगर चूको तो तुम अंधेरी रात में रहे आओगे। तुम आंख खोल कर देख लो तो तुम भी बुद्ध, नानक और कबीर हो जाओगे। और जब तक तुम हो न जाओ, तब तक पीड़ा बनी रहेगी। इसको तुम शाश्वत नियम समझना कि जो तुम हो सकते हो अगर न हुए, तो दुख में रहोगे। तुम जो हो सकते हो अगर हो गए, तो तुम्हारे जीवन में आनंद हो जाएगा।
आनंद का अर्थ है, फुलफिलमेंट। वह उसे पा लेना है, जो पाने की तुम्हारी क्षमता थी। जो तुम्हारे बीज में छिपा था, वह जब तक फूल तक न पहुंच जाएगा, तब तक भीतर एक तनाव बना रहेगा। जिस गीत को गाने के लिए तुम पैदा हुए हो, अगर बिना गाए मर गए, तो तुम दुख में मरोगे। और उस गीत को गाने के लिए तुम्हें बार-बार जन्म लेना पड़ेगा। क्योंकि प्रकृति अधूरे को स्वीकार नहीं करती। जिस दिन तुम पूरे हो जाओगे उसी दिन स्वीकार हो जाओगे।
इसलिए हिंदू कहते हैं कि जो पूर्ण हो गया, उसका कोई आवागमन नहीं है। आवागमन इसलिए नहीं कि उसने वह गीत गा लिया जो गाना था। उसने वह आनंद पा लिया जो पाना था। उसकी सरिता सागर में पहुंच गयी। अब लौटने की कोई वजह न रही। तुम लौटते हो बार-बार क्योंकि तुम बार-बार असफल हो रहे हो। तुम्हारी असफलता के कारण तुम्हें वापस लौटना पड़ता है। और प्रकृति तुम्हें भेजती जाएगी। उसे कोई जल्दी नहीं है। प्रकृति को कोई भी जल्दी नहीं है। अनंत समय है उसके पास। तुम कितने ही टकराते रहो, वह तुम्हें वापस भेजती रहेगी। मैंने सुना है, एक ट्रेन में एक बंबई के सज्जन और एक बिहारी सज्जन की मुलाकात हुई। पूछा बिहारी ने, आपका नाम? तो बंबई के सज्जन ने कहा, वीनू। पूछा बिहारी से, आपका नाम? उन्होंने कहा, श्री श्री सत्यदेव नारायण प्रसाद सिन्हा। बंबईया की तो आंखें खुली रह गयीं। उसने कहा, इतना बड़ा नाम! बिहारी ने कहा, हम बंबई के रहने वाले नहीं हैं। हमारे पास एक-दूसरे का नाम बुलाने के लिए काफी समय है।
परमात्मा बंबई का निवासी नहीं है। वहां काफी समय है। प्रकृति को कोई जल्दी नहीं है। तुम हजार बार व्यर्थ हो जाओ, असफल हो जाओ, वापस भेज दिए जाओगे। लेकिन तुम अनंत दुख भोगोगे, जितनी देर तुम असफल लौटोगे। जब तक तुम्हें जो गीत गाना है तुमने नहीं गा लिया, जब तक तुमने अपनी नियति को पूरा नहीं कर लिया, तब तक तुम अंगीकार न होओगे। और एक ही तो दुख है। एक ही दुख है, एक पीड़ा है कि यह अस्तित्व तुम्हें अंगीकार नहीं करता, वापस लौटा देता है। जब यह अंगीकार कर लेता है, तब उसमें लीन हो जाते हो। फिर कोई वापसी नहीं है।
नानक दूसरे खंड को ज्ञान-खंड कहते हैं। जाग कर जान लेना, जो है। दैट व्हिच इज, जो है चारों तरफ मौजूद, उसे होशपूर्वक जान लेने का नाम ज्ञान है।

तीसरे खंड को नानक लज्जा-खंड कहते हैं। क्योंकि जो जान लेता है, उसे
ही पता चलता है कि कितना मैं अज्ञानी हूं! इसलिए लज्जा-खंड। अज्ञानी तो अकड़े फिरते हैं। उन्हें तो कोई लज्जा ही नहीं है। उन्हें तो पता ही नहीं है कि वे कैसे अज्ञान से भरे हैं। अज्ञानी तो अपने को ज्ञानी समझ कर जीता है। सिर्फ ज्ञानी ही जान पाता है कि कैसा महान अज्ञान है! क्या मैं जानता हूं? कुछ भी तो नहीं।
सुकरात ने कहा है कि जब मैंने जाना तो एक ही बात जानी कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। जब ज्ञान पूरा होता है, तब तुम यही जानते हो कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। न केवल यही, बल्कि मैं कुछ भी नहीं हूं। मैं ना-कुछ हूं। तुम एक शून्य हो जाते हो। उस शून्य को नानक कहते हैं, लज्जा-खंड। तब तुम बड़ी शर्म से भर जाते हो कि मैं कुछ भी तो नहीं हूं। कितना अकड़ा फिरता था! पानी का बबूला कितना फूला-फूला फिरता था! कितनी अतिशयोक्ति कर रखी थी तुमने अपने संबंध में! और अतिशयोक्ति करने के लिए हम हजार-हजार उपाय खोज लेते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बाप से कह रहा था। नदी से यात्रा कर के लौटा था। और कहने लगा कि सुनो, ऐसा तूफान आया कि नदी में पचास-पचास फीट लहरें उठने लगीं। नसरुद्दीन के बाप ने कहा, थोड़ी अतिशयोक्ति इतनी ज्यादा मत कर! मैं भी उस नदी से परिचित हूं। पचास साल मैंने भी उस नदी में यात्रा की है। ऐसी लहरें उठती मैंने कभी नहीं देखीं। और पचास फीट लहरें नदी में उठती भी नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, अजी, होश की बात करो! हर चीज बढ़ती जा रही है। अनाज के ही दाम देखो कितने बढ़ गए हैं!
आदमी अपनी अतिशयोक्ति को सब तरह के सहारे खोजता रहता है। और इन सहारों के आधार पर सबसे बड़ी अतिशयोक्ति खड़ी होती है और वह है कि मैं हूं। मेरा होना इस जगत में सबसे बड़ा झूठ है। परमात्मा का होना अगर सबसे बड़ा सच है, तो मेरा होना सबसे बड़ा झूठ है। क्योंकि यहां दो मैं तो हो ही नहीं सकते। अस्तित्व तो एक है। एक ही मैं हो सकता है। पूरा अस्तित्व अगर एक है तो इसका एक ही केंद्र हो सकता है। लेकिन हर व्यक्ति, हर बूंद घोषणा करती है अपने मैं की।
ज्ञानी को यही शर्म आती है। वह लज्जा से भर जाता है। कितनी अतिशयोक्ति की! कितनी अपनी घोषणा की, जहां कुछ भी न था। पानी का बबूला था, जरा सा छुआ कि टूट गया। कागज की नाव थी, बही नहीं कि डूब गयी। ताश के पत्तों का घर था, हवा आयी नहीं कि गिर गया। पर कितने-कितने दावे किए! कितनी घोषणाएं कीं!
एक अदालत में मुल्ला नसरुद्दीन को पकड़ कर लाया गया। क्योंकि गांव के नेता को उसने अपशब्द बोल दिए थे। कह दिया था कि तुम महा गधे हो। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि यह उचित नहीं है। गांव के सम्मानित आदमी को, जो नेता है, जिसको हजारों लोग वोट देते हैं, उसको तुमने इस तरह के अपमानजनक शब्द बोले? नसरुद्दीन ने कहा, मैं क्या करूं! मेरा कोई कसूर नहीं। इसी आदमी ने मुझ से कहा था कि जानते हो मैं कौन हूं? जब इसी ने पूछा, तो हमें कहना पड़ा।
तुम्हारी नजर पूछती है लोगों से, जानते हो मैं कौन हूं? देखा, जरा किसी
के पैर पर चोट पड़ जाए, किसी को जरा धक्का लग जाए, वह लौट कर कहता है कि जानते हो मैं कौन हूं? खुद भी नहीं जानता। कौन जानता है! जो जानते हैं उनका तो मैं मिट जाता है। जब तक नहीं जानते तभी तक तो मैं है। तुम उससे यह पूछना कि तुम जानते हो कि तुम कौन हो?
लेकिन वह अकड़ की बात कर रहा है। वह यह कह रहा है कि मेरा पद पता है? मेरा धन पता है? मेरी प्रतिष्ठा पता है? वह यह कह रहा है कि मैं तुम्हें नुकसान पहुंचा सकता हूं। वह यह कह रहा है कि मैं खतरनाक सिद्ध हो सकता हूं। पता है? तुम्हारा होना सिर्फ नुकसान पहुंचाने का दावा है। वह हिंसा की एक घोषणा है। तुम उसी वक्त कहते हो--कि मैं कौन हूं जानते हो--जब तुम दावा करना चाहते हो कि मैं चाहूं तो विध्वंस कर सकता हूं।
तुम्हारी सारी अकड़ हिंसा है। अहंकार हिंसा का सूत्र है। जानने वाला
तो कहता है, मैं कहां हूं! पता ही नहीं चलता। मैं कौन हूं! कुछ पता नहीं

चलता। जानने वाला तो खो जाता है। अज्ञानी अकड़ा रहता है। जो नहीं है वह तो कहता है, मैं हूं। और जो हो जाता है, वह यह भाषा बोलना बंद कर देता है।
तो नानक इस तीसरे खंड को लज्जा-खंड कहते हैं। वे कहते हैं कि ज्ञानी
को लज्जा आती है बड़ी कि क्या कहूं? किससे कहूं? कुछ कहने को नहीं, कोई दावा नहीं। वह परमात्मा के सामने भी लज्जा से भर जाता है कि कितने झूठे दावे किए मैंने जन्मों-जन्मों में। तेरे सामने भी अकड़ कर खड़ा रहा। तेरे सामने भी मेरी अकड़ यह थी कि तू भी मुझे स्वीकार कर। अगर मैंने तेरी प्रार्थना भी की तो इसीलिए कि तू भी मुझे स्वीकार कर। अगर मैंने पुण्य किया तो भी इसीलिए, दान दिया तो भी इसीलिए, मंदिर बनाए, मस्जिद खड़ी की, गुरुद्वारे बनाए, तो भी इसीलिए कि तू भी जान ले कि मैं कौन हूं।
बड़ी लज्जा से ज्ञानी भर जाता है। बड़ी शर्म आती है। कैसे मुंह दिखाएं! परमात्मा जब सामने आता है तो कौन सा मुंह दिखाएं? तुम्हारे सभी मुंह तो झूठे हैं। तुम्हारे सभी चेहरे झूठे हैं। दूसरों को दिखाने के लिए तुमने रंग-रोगन लगा कर खड़ा कर रखा था।
थोड़ा सोचो! अगर आज परमात्मा मिलता हो तो तुम कौन सा चेहरा उसके पास ले
कर जाओगे? वह, जो तुम अपनी पत्नी को दिखाते हो? कि वह, जो तुम अपने मालिक को दिखाते हो? या वह, जो तुम अपने नौकर के सामने ओढ़ लेते हो? या वह, जो तुम प्रेयसी को प्रकट करते हो? या वह, जो तुम दीन, दरिद्र, गरीब के सामने दिखाते हो? या वह, जो तुम शक्तिशाली के सामने दिखाते हो? कौन सा चेहरा तुम परमात्मा को दिखाओगे?
शक्तिशाली के सामने तुम्हारी पूंछ हिलती रहती है। तुम उसकी खुशामद करते रहते हो। तुम्हारे चेहरे पर बड़ी खुशामद का भाव होता है। गरीब के सामने तुम ऐसे अकड़ कर खड़े हो जाते हो। क्योंकि गरीब से तुम वही खुशामद की अपेक्षा करते हो जो तुम अमीर के सामने प्रकट करते हो। तुम चाहते हो वह पूंछ हिलाए। जो आदमी किसी की खुशामद चाहता है, वह आदमी खुशामदी होगा। जो किसी की स्तुति मांगता है, वह आदमी कहीं न कहीं स्तुति कर ही रहा होगा। वह असल में बदला चाहता है। लेकिन जिस आदमी ने ठीक से अपने को देखा, न वह स्तुति करता है किसी की, न स्तुति चाहता है। एक ही परमात्मा है, उसी की स्तुति हो जाए तो काफी है। वह किससे स्तुति मांगे? क्योंकि वही चारों तरफ है।
नानक कहते हैं, बड़ी लज्जा आती है। सत्य के सामने जब आदमी खड़ा होता है,
तो पाता है, अपने कोई भी चेहरे तो काम के नहीं। सभी गंदे हैं और सभी झूठे हैं।
झेन फकीर कहते हैं अपने शिष्यों को कि अगर तुमने अपना ओरिजनल फेस, मौलिक चेहरा खोज लिया, तो खोज पूरी हो गयी। वे कहते हैं कि खोजो उस चेहरे को, जो जन्म के पहले तुम्हारे पास था। खोजो उस चेहरे को, जो मरने के बाद तुम्हारे साथ होगा। बीच के सब चेहरे तो झूठे हैं।
छोटे-छोटे बच्चे तक झूठे चेहरे ओढ़ लेते हैं, छोटे-छोटे बच्चे भी! मनस्विद कहते हैं कि आदमी अगर लौट कर याददाश्त को जगाए तो चार साल या तीन साल के करीब याददाश्त रुक जाती है। तुम भी याद करोगे तो बस, पांच साल, चार साल, या तीन साल--वहां जा कर रुक जाओगे। तीन साल तक की कोई याददाश्त नहीं होती, जन्म से ले कर तीन साल तक की। क्यों? क्योंकि उस समय तुम इतने सरल होते हो कि तुम्हारे पास कोई चेहरा नहीं होता है। याददाश्त किसकी बनानी है? कोई दावा ही नहीं होता।
अहंकार याददाश्त बनाता है। सब याददाश्त अहंकार की है। वह स्मरण रखता है, वह हिसाब-किताब रखता है। तीन साल तक तुम भोले-भाले होते हो। तुम्हें पता ही नहीं होता है कि तुम कौन हो! दावा क्या? तुम्हारा कोई दावा ही नहीं होता है। तीन साल का बच्चा स्कूल से प्रसन्न भी लौट आता है, किंडर गार्डन स्कूल से, हंसता हुआ, चिल्लाता हुआ आता है, कि मैं क्लास में सबसे आखिरी आया। उसको कुछ पता ही नहीं है कि आखिरी का क्या मतलब है? अभी अहंकार निर्मित नहीं हुआ है। अभी जाति-पांति का पता नहीं है, घर-द्वार का पता नहीं है, कुलीनता-अकुलीनता का पता नहीं है। ब्राह्मण है कि शूद्र, पता नहीं है। अभी कुछ भी पता नहीं है। अभी चेहरा साफ है। यही चेहरा तुम परमात्मा के सामने ले जा सकोगे।

लेकिन मां-बाप झूठ को ओढ़ाना शुरू कर देते हैं पहले ही दिन से। पहले ही दिन से मां चाहती है कि जब वह बच्चे की तरफ देखे, तो वह मुस्कुराए। बच्चे को अगर मुस्कुराहट नहीं आ रही है तो भी मुस्कुराए। अगर बच्चा नहीं मुस्कुरा रहा है तो मां नाराज होती है, मुस्कुरा रहा हो तो प्रसन्न होती है। थोड़े ही दिनों में बच्चा समझने लगता है कि चाहे मुस्कुराहट भीतर हो या न हो, जब मां देखे तो मुस्कुराओ। झूठ शुरू हो गया। चेहरा ओढ़ना शुरू हो गया। फिर झूठ पर झूठ इकट्ठी होती जाती है।
इन झूठे चेहरों को ले कर तुम परमात्मा के सामने जाओगे? नानक कहते हैं, बड़ी शर्म आती है। जब कोई जानता है तब लज्जा से भर जाता है। तब वह खोजता है, खोजता है और पाता भी नहीं कि कौन सा चेहरा असली है। और जितना वह खोजता है उतना ही पाता है, जैसे कोई प्याज को छीलता जाए, जैसे-जैसे पर्त उतरती है, नयी पर्त सामने आ जाती है। एक झूठ को निकालो, दूसरा झूठ; क्योंकि पर्त दर पर्त झूठ जमा है। जन्मों-जन्मों का झूठ जमा है। तुमने इकट्ठा ही झूठ किया है, कुछ और तो इकट्ठा किया नहीं है। लेकिन जब तुम पर्त-पर्त निकालते जाते हो, तब आखिर में तुम पाते हो कि कुछ बचता ही नहीं, प्याज की सब पर्तें निकल जाती हैं, शून्य हाथ आता है। नानक कहते हैं, वह जो शून्य हाथ आता है तो बड़ी लज्जा आती है। कि ना-कुछ था और सब कुछ होने के दावे किए। इसे वे तीसरा खंड कहते हैं।
और चौथा खंड वे कहते हैं, कृपा-खंड! वे कहते हैं कि जब तुम लज्जा से भर जाते हो तब उसकी कृपा बरसती है। जब तुम शून्य हो जाते हो तब पूर्ण उतरता है; उसके पहले नहीं। तुम्हारी अकड़ उसकी कृपा में बाधा है। तुम जब तक अकड़े हो, तब तक तुम उसकी कृपा न पा सकोगे। वह तुम्हें जरूरत ही नहीं है। तुम अपने ही पैरों पर खड़े हो। तुम्हें सहारे की जरूरत ही नहीं है। तुम प्रार्थना भी कर रहे हो और अपने पैरों पर खड़े हो। तुम मांग भी उससे रहे हो, लेकिन वह भी तुम्हारी और बहुत सी चेष्टाओं में एक चेष्टा है, कि शायद कौन जाने, कुछ सहारा उधर से भी मिल जाए। और जब कुछ मिल जाएगा, तब तुम दावा यही करोगे कि मैंने पाया।
मुल्ला एक वृक्ष पर चढ़ रहा था। बेर पक गए थे। और जैसे-जैसे मुल्ला ऊपर चढ़ने लगा उसे डर लगने लगा। क्योंकि बेर बिल्कुल ऊपर की शाखा पर थे। तो उसने परमात्मा से कहा कि देख, अगर मैं बिना गिरे इन बेरों को तोड़ पाया, तो एक पैसा मस्जिद में चढ़ाऊंगा। तू बिल्कुल पक्का भरोसा रख। जैसे-जैसे करीब पहुंचने लगा डाल के, उसने सोचा कि इतने से बेरों के लिए एक पैसा जरा ज्यादा है। और मैं अपनी ही चेष्टा से पहुंचा जा रहा हूं। नाहक मैं परमात्मा को बीच में लाया। जब बेरों पर उसका हाथ ही पड़ गया तो उसने कहा, एक पैसे में तो इससे ज्यादा बेर मैं बजार में खरीद लूंगा। और तूने तो कुछ किया ही नहीं है। कुछ बेर ही चढ़ा दूंगा। जब वह ऐसा सोच ही रहा था--सोचने में हाथ चूक गया, पैर सरक गया और धड़ाम से नीचे गिर गया। वे बेर हाथ आए नहीं। नीचे गिर कर उसने ऊपर चिल्ला कर कहा, क्या मामला है? क्या तू जरा सी मजाक भी नहीं समझ सकता? जरा धैर्य रखता तो मैं एक पैसा चढ़ाता ही।
तुम प्रार्थना भी करो, तुम पूजा भी करो, तो भी तुम्हारी अकड़ का हीशृंगार है तुम्हारी पूजा। तुम्हारे अहंकार का ही आभूषण है। और पूजा तो तब ही होती है, जब तुम नहीं हो। जब पुजारी मिट जाता है, तभी पूजा शुरू होती है। नानक कहते हैं, लज्जा में तुम तो पिघल जाते हो, लज्जा में तुम तो मिट जाते हो, तुम तो बचते नहीं। और तब अचानक, जैसे ही तुम यहां खोते हो, तुम पाते हो कि वहां से वर्षा हो रही है आनंद की। वह सदा ही हो रही थी। तुम अपनी अकड़ से इतने भरे थे कि तुम्हारे भीतर कोई जगह नहीं थी कि वह प्रवेश पा सके। कोई ऐसा नहीं है कि तुम जब लज्जा से भरते हो तब उसकी कृपा तुम पर बरसती है। कृपा तो बरस ही रही है। तुम जब लज्जा से भरते हो तब तुम खाली होते हो और तुम्हारे भीतर प्रवेश हो सकता है।
ये चार खंड हैं नानक के। और यह चारों का विभाजन बड़ा बहुमूल्य है। आज दूसरे खंड की बात है।
धरम खंड का एहो धरमु। गिआन खंड का आखहु करमु।।
केते पवन पाणि वैसंतर केते कान महेस। केते बरमे घाड़ित घड़िअहि रूप रंग
के वेस।।

केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस। केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस।।
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस। केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद।।
केतीआ खाणी केतीआ वाणी केते पात नरिंद। केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु।।
जैसे ही कोई व्यक्ति जागता है अस्तित्व के प्रति, परम विस्मय से भर जाता है। महान आश्चर्य घेर लेता है। तुम्हें तो कोई विस्मय पकड़ता ही नहीं। तुम तो ऐसे चलते हो जैसे तुम जानते हो। पंडित को विस्मय होता ही नहीं। वह सभी चीजों के उत्तर जानता है, विस्मय कैसा? विस्मय तो बालक को होता है। चलता है तो हर चीज के संबंध में सवाल पूछता है। तुम यह मत समझना कि वह जवाब पाने के लिए सवाल पूछता है। सवाल तो केवल उसके विस्मय को प्रगट करने का ढंग है। इसलिए तुम्हारे जवाब के लिए रुकता भी नहीं। दूसरा सवाल खड़ा कर देता है। तुम्हारे जवाब की फिक्र भी नहीं करता। क्योंकि जवाब की उत्सुकता ही नहीं है।
तितली निकल जाती है। और वह पूछता है कि तितली पर इतने रंग क्यों? वह यह नहीं कह रहा कि तुम जवाब दो। तितली पर इतने रंग क्यों? वह सिर्फ इतना कह रहा है कि मैं अवाक हूं। मैं विस्मय से भर गया हूं। ये वृक्ष हरे क्यों? फूल रंगीन क्यों? आकाश में बादल क्यों? सूरज सुबह रोज क्यों निकल आता है समय पर? यह बच्चा पूछ रहा है। यह सिर्फ विस्मय खड़े कर रहा है। इसके प्रश्न उत्तर की मांग नहीं रखते। यह तो पूछ रहा है इसलिए, क्योंकि हर चीज इसे आश्चर्य से भर देती है।
पंडित कोई नहीं पूछता प्रश्न, क्योंकि उसके पास सभी चीज के उत्तर हैं। पंडित का अर्थ है, जिसके पास प्रश्न हैं ही नहीं, उत्तर हैं। और ज्ञानी का अर्थ है, जिसके पास प्रश्न हैं और उत्तर नहीं हैं।
इसे थोड़ा ख्याल से समझ लेना। ज्ञानी बच्चों जैसा अवाक रह जाता है। और
भी ज्यादा अवाक। क्योंकि बच्चे क्या! तितली देख सकते हैं, फूल देख सकते हैं! ज्ञानी देखता है पूरे अस्तित्व को। बच्चों की नजर कितनी दूर जाती है! ज्ञानी की नजर जाती है आर-पार। और वह जो देखता है, वह उसे विस्मय-विमुग्ध कर देता है।
नानक के ये वचन उनके विस्मय के सूचक हैं। वे कहते हैं, "कितने पवन, कितने पानी, कितने अग्नि के देवता, कितने कृष्ण, कितने महेश, कितने ब्रह्मा, कितनी उनकी रचनाएं, कितने रंग-रूप-वेश, कितनी कर्म-भूमियां, कितने सुमेरु पर्वत, कितने ध्रुव, कितने उपदेश, कितने इंद्र, चंद्र, सूर्य, कितने मंडल, कितने देश, कितने ही सिद्ध, कितने ही बुद्ध, कितने ही नाथ, कितने ही देवियों के वेश, कितने ही देवता, कितने ही दानव, कितने ही मुनि, कितने ही रत्न, कितने समुद्र, कितनी योनियां, कितनी वाणियां, कितने बादशाह, कितने बादशाहों के बादशाह, शहंशाह, कितनी ही सुरतियां, कितने ही सेवक; नानक कहते हैं, इसका अंत नहीं है, इसका अंत नहीं है।"
यह विस्मय-बोध है। नानक कहते हैं, इसका उत्तर मेरे पास नहीं है। यह ज्ञानी का लक्षण है। तुम तो ज्ञानी का लक्षण तब समझोगे जब तुम्हें नानक उत्तर दें। तुम तो लौट ही गए होते नानक के पास से कि इसको कुछ आता ही नहीं। कितने-कितने का क्या राग लगा रखा है? कुछ उत्तर दो! तुम पूछने आए हो, क्यों है? और वे गिना रहे हैं, कितने हैं!
तुम उत्तर चाहते हो, तुम जानकारी चाहते हो, क्योंकि जानकारी के तुम मालिक हो सकते हो। विस्मय के तुम मालिक नहीं हो सकते हो। आश्चर्य से तो तुम भर जाओगे। आश्चर्य तो तुम्हारा मालिक हो जाएगा। आश्चर्य में तुम घिर जाओगे, आश्चर्य तुम्हें डुबो लेगा। आश्चर्य में तुम बचोगे न, मिट जाओगे। उत्तर चाहते हो तुम, क्योंकि उत्तर को तुम अपनी मुट्ठी में रख सकते हो। उत्तर का तुम उपयोग कर सकते हो। उत्तर से तुम दूसरों को हरा सकते हो, पराजित कर सकते हो। उत्तर से तुम दूसरों के प्रश्न चुप कर सकते हो। उत्तर से तुम्हारी अकड़ बढ़ेगी। लोग ज्ञान की खोज में नहीं हैं, लोग उत्तरों की खोज में हैं। लोग चाहते हैं कि सब उत्तर हमें पता चल जाएं, तो हम ज्ञानी हो जाएं।

और ध्यान रखना, ज्ञानी उत्तरों की खोज से होता ही नहीं कोई कभी। ज्ञानी तो प्रश्न में गहरे उतरने से होता है। और जितना ही कोई प्रश्न में गहरा उतरता है, उतने ही विस्मय के द्वार खुलते जाते हैं। एक द्वार तुम प्रवेश करते हो और हजार द्वार खुल जाते हैं। नानक उसी विस्मय की बात कर रहे हैं।
नानक तो ग्रामीण हैं। वे तो गांव के अपढ़ आदमी हैं। इसलिए उनकी भाषा की चिंता मत करना। मगर ग्रामीण भी जब उस विस्मय के जगत में जाता है, तो मुखर हो जाता है। इतने विस्मय में वे यही कह रहे हैं--
केते पवन पाणि वैसंतर केते कान महेस।
कितने कृष्ण! जब तुम्हें दिखायी पड़ेगा, तब तुम पाओगे कितनी बांसुरियां बज रही हैं! कितनी गोपियों का रास चल रहा है। अनंत है यह अस्तित्व। तुम्हारी पृथ्वी पर यह सीमित नहीं है। और तुम तो इस अकड़ में भरे हो कि शायद यह तुम पर ही सीमित है। तुम तो सोचते हो, शायद सारा नाच तुम्हारे लिए चल रहा है।
ऐसा हुआ कि एक ट्रेन में एक देहाती पकड़ लिया गया बिना टिकट के। और वह
जो टिकट-चैकर था, अड़ियल था। बहुत गिड़गिड़ाया ग्रामीण, मुझ पर कुछ है नहीं, अपनी पोटली खोल कर बता दी। तब टिकट-चैकर ने वहीं चेन खींच दी बीच जंगल में और कहा, फिर तुम यहीं उतर जाओ। उसने बहुत हाथ-पैर जोड़े कि मुझे स्टेशन पर उतार देना आगे। जो भी स्टेशन आए, उतार देना। यहां बीच जंगल में तो मत उतारो। लेकिन वह अड़ियल था। उसने कहा, उतरना ही पड़ेगा। अपनी पोटली संभाल कर, कंधे पर रख कर ग्रामीण उतर गया और जिस तरफ ट्रेन को जाना था, उसी पटरी पर चलने लगा। ड्राइवर ने देखा कि एक आदमी पोटली लिए और पटरी पर ही चला जा रहा है, तो वह सीटियां बजाने लगा। ग्रामीण ने पीछे लौट कर जोर से कहा, अब कितनी ही सीटियां बजाओ, मैं चढूंगा नहीं। पहले ही क्यों उतारा था? ग्रामीण सोच रहा है कि शायद सीटियां उसे चढ़ने के लिए बजायी जा रही हैं! सीटियां हटने के लिए बजायी जा रही हैं। ग्रामीण सोच रहा है कि चढ़ने के लिए बजायी जा रही हैं। तुम हटो, लेकिन तुम सोच रहे हो कि जमे रहो और चढ़ जाओ। तुम मिटो, इसलिए सीटियां बजायी जा रही हैं। तुम मार्ग में न आओ, इसलिए सीटियां बजायी जा रही हैं।
लेकिन हर आदमी यही सोचता है कि सभी गीत उसके लिए चल रहे हैं। हर आदमी सोचता है, मैं केंद्र हूं और पूरा अस्तित्व मेरे आसपास घूम रहा है। इसलिए तो पुराने दिनों में लोगों को पसंद था कि पृथ्वी केंद्र है और सूरज आस-पास घूम रहा है।
बर्नार्ड शा ने पीछे एक मजाक किया। और उसने कहा कि मैं यह सिद्धांत मान नहीं सकता कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। मान ही नहीं सकता! यह सिद्धांत गलत है। किसी ने सभा में खड़े हो कर पूछा कि बीसवीं सदी में छोटे- छोटे बच्चे भी जानते हैं कि पृथ्वी चक्कर लगा रही है। और आपके पास क्या प्रमाण है? विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है। बर्नार्ड शा ने कहा, प्रमाण की कौन फिक्र करता है? प्रमाण यह है कि बर्नार्ड शा जहां रहता है, वह पृथ्वी किसी चीज के चक्कर नहीं लगा सकती। सूरज ही चक्कर लगा रहा है।
वह मजाक हम सभी के अहंकार की तरफ कर रहा है। तुम भी मान नहीं पाते कि तुम्हारी पृथ्वी और चक्कर लगा सकती है! इसलिए आदमी ने बड़ा उपद्रव मचाया, चर्चों ने बड़ा विरोध किया, पादरी बड़े खिलाफ हुए, पोपों ने बड़ा इनकार किया कि नहीं! यह सिद्धांत हम मान नहीं सकते। गैलेलियो से कहा कि क्षमा मांगो। गैलेलियो की क्षमा भी बड़ी अदभुत है। उसने क्षमा मांगी। वह बड़ा होशियार आदमी था। बड़ा सच्चा आदमी था। और शहीद होने की व्यर्थ उसे कोई चिंता नहीं थी। न शहीद होना चाहता था और न डरता था कि शहीद हो जाऊं तो कोई हर्जा है। उसने कहा, अगर आप कहते हैं, तो मैं कहे देता हूं कि पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती, सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। लेकिन मेरे कहने से कुछ भी न होगा। चक्कर तो पृथ्वी ही सूरज का लगाती है। मेरे कहने से क्या होने वाला है? इससे क्या! तुम कहो तो मैं कहे देता हूं, लिख कर दस्तखत किए देता हूं। लेकिन मेरी कोई चलती है? और यह कोई सिद्धांत मैंने गढ़ा थोड़े ही है कि मैं इनकार कर दूं कि सिद्धांत टूट जाएगा। ऐसा हो रहा है। इसमें हजार गैलेलियो भी कह दें कि नहीं हो रहा, तो कोई फर्क न पड़ेगा।

कारण यही था कि आदमी ने सदा यही सोचा है। और क्रिश्चिएनिटी इस संबंध में हिंदू-विचार से बहुत दीन-दरिद्र है। हिंदुओं की बड़ी पुरानी धारणा यही है कि अनंत पृथ्वियां हैं। कोई हमारी पृथ्वी ने ठेका नहीं ले रखा है। अब तो विज्ञान भी कहता है कि कम से कम पचास हजार पृथ्वियां हैं, जिन पर जीवन की संभावना है। पर हिंदू सदा से कहते रहे हैं, अनंत पृथ्वियां हैं, अनंत योनियां हैं। और यहीं सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता है। यह पृथ्वी तो ना कुछ है। सूरज इससे साठ हजार गुना बड़ा है। और सूरज और दूसरे सूरजों के सामने न कुछ है। उससे करोड़ों-करोड़ों गुने बड़े सूरज हैं। अब तो विज्ञान भी स्वीकृति देता है कि हमारा सूरज बहुत मीडियाकर है। बहुत मध्यमवर्गीय है। कोई बहुत बड़ा सूरज नहीं है। तो हमारी पृथ्वी की क्या गणना!
रसेल ने एक छोटी सी कहानी लिखी है कि एक पादरी ने रात सपना देखा कि वह
मर गया है। तो उसने जा कर स्वर्ग के द्वार पर दस्तक दी। लेकिन वह बड़ा चकित हुआ। उसने सोचा था कि वह इतना धर्मात्मा, इतनी सेवा की उसने अस्पतालों में, स्कूलों में, हजार तरह के मरीजों के पैर दबाए, तो परमात्मा दरवाजे पर खड़ा होगा स्वागत के लिए। वहां कोई भी नहीं था। दरवाजा बंद था और दरवाजा इतना बड़ा था कि उसने बहुत देखने की कोशिश की तो उसका ओर-छोर न दिखायी पड़े। वह बहुत चिल्लाया। लेकिन दरवाजा इतना बड़ा था कि उसको साफ हो गया कि मेरी आवाज भीतर पहुंच नहीं सकती, इतना बड़ा दरवाजा है! खुद को ही उसकी आवाज लौटती हुई मालूम न पड़े, प्रतिध्वनि वापस ही न लौटे। सिर मार-मार कर थक गया। जैसे कोई चींटी तुम्हारे दरवाजे पर सिर मार कर थक जाए, कहीं आवाज पहुंचती है? सब अहंकार धूल में मिल गया। सोचा था, स्वर्ग के द्वार पर परमात्मा स्वागत के लिए मिलेगा। इतना मैंने दान किया, पुण्य किया, सेवा की, धर्म किया, पूजा- प्रार्थना की, हजारों लोगों को ईसाई बनाया और इधर कोई पूछताछ ही नहीं है! यह क्या गजब हो रहा है!
बामुश्किल, अनंत वर्ष बीत जाने के बाद--तब तक तो वह भूल ही चुका था, सिकुड़ा-मुकड़ा वहीं बैठा रहा--दरवाजा खुला। और एक हजार आंख वाला आदमी बड़े गौर से उसे देखने लगा, जैसे कोई दूरबीन से किसी कीड़े-मकोड़े को देखे। वह और भी सिकुड़ गया। उसने समझा कि यही परमात्मा है। और कहा कि हे परमात्मा, इतने जोर से मत देखो। और आंखें तुम्हारी मुझे डराती हैं। क्योंकि एक-एक आंख सूरज की भांति थी। देखना मुश्किल था। वह आदमी हंसा और उसने कहा, मैं परमात्मा नहीं, यहां का पहरेदार हूं। और तुम यहां क्या कर रहे हो?
उसकी तो हिम्मत ही टूट गयी। यह पहरेदार है! वह तो समझा कि परमात्मा है। अब परमात्मा का सामना करना तो मुश्किल ही मामला है। हजार सूरज आंखों वाला आदमी, हजार आंखों वाला आदमी यह पहरेदार है! उसने कहा कि मैं पृथ्वी से आया हूं। और पृथ्वी पर मेरे चर्च की बड़ी महिमा है। मैं जीसस का मानने वाला हूं, भक्त हूं। हिम्मत टूटी जा रही थी उसकी, क्योंकि उसके चेहरे पर कोई भाव ही नहीं आ रहा था। वह कह रहा था, जीसस, पृथ्वी... ?
उसने कहा, तुम किस पृथ्वी की बात कर रहे हो? इंडेक्स नंबर? पृथ्वियां अनंत हैं। किस पृथ्वी से आ रहे हो? और किस जीसस की बात कर रहे हो? हर पृथ्वियों के अपने-अपने जीसस हैं।
सोचो तुम, उस पादरी की गति कैसी हो गयी होगी! उसने कहा कि मैं उसी जीसस
की बात कर रहा हूं जो एकलौता बेटा है परमात्मा का। उसने कहा कि तुम पागल हुए हो? सभी पृथ्वियों पर ऐसे अनंत जीसस पैदा होते हैं। और उनके भक्त सभी जगह ऐसा दावा करते हैं। लेकिन हिसाब मिल जाएगा, तुम पहले नंबर बताओ। उसने कहा, हम तो कभी सोचे ही नहीं नंबर। हम तो समझते रहे कि एक ही पृथ्वी है। "तो तुम अपने सूरज का नंबर बताओ कि तुम किस सौरमंडल से आ रहे हो?"
उसने कहा कि हम तो एक ही सूरज को जानते रहे हैं।
उसने कहा, बड़ी कठिनाई है। लेकिन फिर भी तुम रुको। खोज-बीन करने से पता
चल सकेगा।
फिर कहते हैं अनंत काल बीत गया, वह आदमी लौटा ही नहीं। क्योंकि खोज-बीन कोई छोटी है! वह पता लगाएगा, जा कर लाइब्रेरियन को मिलेगा, इंडेक्स नंबर खोजेगा। और इसको कुछ भी पता नहीं, यह आदमी आया है। पर इसकी आशा तो धूमिल हो गयी कि अब यहां कुछ प्रवेश वगैरह, स्वागत, बैंड-बाजा जो उसने सब सोच रखा था, और परमात्मा के बिल्कुल बगल में बैठूंगा, सब जा चुका। इसी

घबड़ाहट में और पसीने से बहता हुआ, उसकी नींद खुल गयी। सपना था यह तो। पर उस दिन के बाद उसकी हिम्मत टूट गयी।
और यह सपना सच है। इसी सपने की सचाई की बात नानक कर रहे हैं।
नानक कहते हैं, "कितने पवन, कितने पानी, कितनी अग्नियां, कितने उनके देवता, कितने कृष्ण, कितने महेश।"
अगर नानक से पूछा होता उस पादरी ने, तो वे कहते, कितने जीसस!
"कितने कृष्ण, कितने महेश, कितने ब्रह्मा, कितनी रचनाएं, कितने रंग-रूप-वेश, कितनी कर्म-भूमियां, कितने सुमेरु पर्वत, कितने ध्रुव, कितने उपदेश, कितने चंद्र, कितने सूर्य, कितने इंद्र, कितने मंडल, कितने देश! कितने सिद्ध-बुद्ध, कितने नाथ, कितनी देवियों के वेश! कितने देवता-दानव, कितने मुनि, कितने रत्न, समुद्र! कितनी ही योनियां। कितनी ही वाणियां। कितने बादशाह, कितने सम्राट, कितनी श्रुतियां, कितने ही सेवक! नानक कहते हैं, इसका अंत नहीं है, अंत नहीं है।"
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु।।
नानक सिर्फ अपने विस्मय को प्रकट कर रहे हैं। इसी विस्मय में से लज्जा पैदा होगी, दावे मिट जाएंगे। क्या दावा करो?
बड़ी प्रसिद्ध घटना है कि एक अमीर आदमी, बहुत अमीर आदमी, यूनान का सबसे बड़ा अमीर आदमी, सुकरात से मिलने गया। तो वही अकड़! स्वाभाविक थी उसकी अकड़ तो। जिनके पास कुछ नहीं है, वे अकड़ते हैं, उसके पास तो बहुत कुछ था। एथेन्स में वह सबसे बड़ा अमीर था। सुकरात ने जैसे कुछ ध्यान ही न दिया। तो उसने कहा, जानते हो मैं कौन हूं? सुकरात ने कहा, बैठो, समझने की कोशिश करें। उसने सारी दुनिया का नक्शा सामने रखवा लिया।
और उस अमीर से कहा, एथेन्स कहां है? तो एथेन्स तो एक बिंदु है दुनिया
के नक्शे पर। अमीर ने खोज-बीन करके एथेन्स के बिंदु पर अंगुली रखी और कहा, यह रहा एथेन्स!
इस एथेन्स में तुम्हारा महल कहां है?
वह तो बिंदु ही था, उसमें महल कहां बताए! उसने कहा, इसमें कहां महल बताऊं? सुकरात ने कहा, इस महल में तुम कहां हो? और यह नक्शा केवल पृथ्वी का है। अनंत पृथ्वियां हैं, अनंत सूर्य हैं, तुम हो कौन? कहते हैं जब वह जाने लगा, तो सुकरात ने वह नक्शा उसे भेंट कर दिया कि इसे सदा अपने पास रखो। और जब भी अकड़ पकड़े कि मैं कौन हूं, नक्शा खोल कर देख लेना--कहां एथेन्स? कहां मेरा महल? मैं कौन हूं? अपने से पूछ लेना।
हम ना कुछ हैं। सब कुछ होने की अकड़ हमें पकड़े है। वही हमारा दुख है, वही हमारी नरक है। जिस दिन तुम जगोगे और देखोगे चारों तरफ, क्या कह सकोगे कौन हो तुम? तुम खोते जाओगे, खोते जाओगे। तुम इधर छोटे होओगे, उधर परमात्मा की विराटता प्रकट होगी। उधर उसका विराट रूप प्रकट होगा, इधर तुम शून्य होते जाओगे। वह तभी प्रगट होगा, जब तुम बिल्कुल शून्य हो जाओगे।
और विस्मय तुम्हें मिटाएगा। विस्मय आत्मघात है। शरीर का ही नहीं, पूरा ही आत्मघात है। पूरी अस्मिता की मृत्यु हो जाती है। इसलिए तुम उत्तर चाहते हो। और ज्ञानी तुम्हें प्रश्न देते हैं। और ज्ञानी तुम्हें ऐसे प्रश्न देते हैं, जिनके उत्तर हो ही नहीं सकते। ताकि तुम कभी अकड़ न उठा सको।
थोड़ा जाग कर, आंखों की धूल झाड़ कर देखो चारों तरफ, क्या उत्तर आदमी के पास हैं? विज्ञान ने इतने उत्तर खोजे हैं, लेकिन कौन सा उत्तर उत्तर है? कोई उत्तर उत्तर नहीं है। सब उत्तर प्रश्न को एक कदम और पीछे हटा देते हैं और कुछ भी नहीं होता।
एक बच्चे ने पूछा डी.एच.लारेन्स से बगीचे में घूमते वक्त, व्हाय दीज ट्रीज आर ग्रीन? ये वृक्ष हरे क्यों हैं? डी.एच.लारेन्स को उत्तर नहीं पता था, ऐसा नहीं है। उत्तर साधारण है। विज्ञान से पूछो तो वह कहता है, क्लोरोफिल के कारण हरे हैं। लेकिन यह कोई उत्तर है? सवाल तो वहीं का वहीं खड़ा है। पूछा जा सकता है कि क्लोरोफिल क्यों है वृक्षों में? क्या जरूरत है क्लोरोफिल को वहां होने की? तुम जो भी उत्तर दोगे, प्रश्न उसके पीछे हट जाता है। कुछ फर्क नहीं पड़ता है। डी.एच.लारेन्स निश्चित ही बहुत बुद्धिमान आदमी था। नानक से उसकी बैठ जाती। उसने कहा कि अगर तुम सही उत्तर

चाहते हो तो--ट्रीज आर ग्रीन, बिकाज दे आर ग्रीन। वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं। ज्यादा बकवास में मैं नहीं पड़ता।
यह एक कवि का उत्तर है। यह एक ऋषि का उत्तर है। जो तुम्हारे विस्मय को नष्ट नहीं करता, सिर्फ विस्मय को बढ़ाता है। यह कोई उत्तर है! यह उत्तर है ही नहीं। लारेन्स यह कह रहा है कि मैं खुद ही विस्मय-विमुग्ध हूं कि ये हरे क्यों हैं? इतना ही कह सकते हैं कि हरे हैं क्योंकि हरे हैं। और ज्यादा क्या कहें? और कोई उपाय भी तो नहीं है जानने का कि हरे क्यों हैं?
जिस दिन तुम उत्तर की खोज छोड़ दोगे... क्योंकि सभी उत्तर की खोज सिर्फ प्रश्न को पीछे हटाती है। इसीलिए तो दर्शनशास्त्र कहीं भी नहीं पहुंचता। पूछता जाता है, उत्तर खोजता जाता है, हर उत्तर नए प्रश्न खड़े कर देता है। बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि जब मैं बच्चा था, तो मैं विश्वविद्यालय में पढ़ने गया, तो मैंने दर्शनशास्त्र, फिलासफी चुनी। सिर्फ इसलिए, ताकि मुझे जीवन के सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाएं। और अब मरते वक्त इतना ही कह सकता हूं कि उत्तर तो मुझे एक न मिला, प्रश्न मेरे हजार गुने हो गए।
तो एक तो दर्शनशास्त्री है, वह उत्तर की खोज में जाता है। हर उत्तर नए प्रश्न खड़े करता है। उनमें जो बहुत कमजोर होते हैं, वे यात्रा रोक देते हैं। उत्तरों को पकड़ कर बैठ जाते हैं। जो सच में हिम्मतवर होते हैं, वे आखिरी तक पीछे जाते हैं। और अगर कोई भी व्यक्ति दर्शनशास्त्र में अंत तक पीछे जाए, तो एक न एक दिन उसे यह भूल दिखायी पड़ जाएगी कि यह यात्रा व्यर्थ है। और तभी धर्म का जन्म होता है। और तभी रहस्य पकड़ता है। यह नानक रहस्य-अभिभूत हो कर कह रहे हैं कि इसका कोई अंत नहीं है।
नानक कहते हैं, "इसका अंत नहीं है, इसका अंत नहीं है।"
गिआन खंड महि गिआनु परचंड। तिथै नाद विनोद कोड अनंदु।।
सरम खंड की वाणी रूपु। तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु।।
ताकी आ गला कथीआ ना जाहि। जे को कहै पिछै पछुताइ।।
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि। तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि।।
"ज्ञान के जगत में जागरण की प्रचंडता है।"
गिआन खंड महि गिआनु परचंड।
वह जो ज्ञान का आयाम है, वहां होश, जागरण की प्रचंडता है। उसका बाहुल्य है। उत्तर का नहीं, शास्त्र का नहीं, सिद्धांत का नहीं, होश का। ज्ञान का अर्थ ही होश है। ज्ञान का अर्थ शास्त्रीय ज्ञान नहीं, सूचनाएं नहीं, शब्द नहीं। ज्ञान का अर्थ है, होश।
"ज्ञान के खंड में ज्ञान की प्रचंडता है। वहां नाद है, विनोद है, कौतुक है, आनंद है।"
शास्त्र की तो बात ही नहीं उठाते। सिद्धांत की तो बात ही नहीं है वहां। वहां उत्तर नहीं है। क्या है वहां? नाद है। नाद एक अनुभव है। जैसे- जैसे तुम जागते हो, जैसे सुबह तुम सोए थे गहरे निद्रा में, पक्षी गीत गाते रहे, और तुम्हें सुनायी न पड़े। और फिर तुम जागने लगे, नींद टूटने लगी और होश आने लगा और तुमने करवट बदली--आंखें अभी भी बंद हैं--लेकिन पक्षियों के गीत सुनायी पड़ने लगे। सुबह की ताजी हवाएं तुम्हें छूने लगीं। चारों तरफ जो नाद है, वह तुम्हें स्मरण आने लगा। जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे-वैसे ही अस्तित्व का एक नाद है, जो तुम्हें दिखायी पड़ेगा।
ठीक ऐसे ही एक और सुबह है। और एक और जागरण है। अभी तो तुम्हारा सारा जीवन सोया हुआ है। अभी तो तुम नींद में चल रहे हो। अभी तो तुम जो भी कर रहे हो वह बेहोशी में है। लड़ रहे हो बेहोशी में, प्रेम कर रहे हो बेहोशी में। मिलन, जुदाई सब बेहोशी में हो रहा है।
ऐसा हुआ, एक गांव के अखबार के संपादक ने शराबियों के खिलाफ एक लेख लिख दिया। शराबी बहुत नाराज हो गए। एक लठैत शराबी लट्ठ ले कर चला संपादक की तलाश करने। वह जा कर अंदर संपादक के कमरे में घुस गया। दुबला-पतला संपादक और यह मुस्टंड लठैत शराबी! डोल रहा है। उसने कहा, कहां है संपादक का बच्चा? उस संपादक ने कहा, आप बैठिए, अभी आते हैं। वह बाहर आया, देखा कि दूसरा लठैत चला आ रहा है। उसने पूछा, कहां हैं वह संपादक जी? उसने कहा, अंदर बैठे हैं, आप अंदर चले जाइए। फिर जो अंदर हुआ, आप जानते हैं।

वही हो रहा है। कोई होश में नहीं है। क्या तुम कर रहे हो, इसका तुम्हें ठीक-ठीक पता नहीं है। क्यों कर रहे हो, करने वाले का ही तुम्हें कोई बोध नहीं है। पर तुम किए जा रहे हो। एक निद्रा में चलते हुए लोगों की भीड़ है। इस भीड़ में दुख न हो तो और क्या होगा? इस भीड़ के अंतर-संबंधों में नरक न आ जाए तो और क्या होगा?
नानक कहते हैं, "ज्ञान के खंड में होश की प्रचंडता है।"
तुम अभी अज्ञान के खंड में हो। वहां बेहोशी की प्रचंडता है। वहां नींद असली तत्व है।
वहां नाद है। जो पहली घटना घटती है ज्ञानी को, वह नाद है। जिसको ओंकार कहा उन्होंने। जिसको नानक कहते हैं, एक ओंकार सतनाम। वह नाद का नाम है। यह ओंकार तो सिर्फ प्रतीक है उसको बताने के लिए। क्योंकि अस्तित्व एक गहन संगीत से निर्मित है। अस्तित्व संगीत है। और बड़ा गहन संगीत है। अनाहत संगीत है। कोई उसे पैदा नहीं कर रहा है। किसी चीज से पैदा नहीं हो रहा है। उसका कोई कारण नहीं है। अस्तित्व के होने का ढंग संगीत है। इसलिए तो संगीत में तुम लीन हो जाते हो। और अगर संगीत में तुम लीन होते हो, तो उसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि उस संगीत में कहीं नाद की थोड़ी सी ध्वनि, कहीं नाद की थोड़ी परछाईं है।
महान संगीतज्ञ का एक ही अर्थ है कि वह उस नाद को वाद्य में पकड़ ले। उस ओंकार को थोड़ा सा तुम्हारे लिए, तुम्हारी नींद की दुनिया में उतार लाए। संगीत का अर्थ तुम्हारी वासनाओं को उत्तेजित करना नहीं है।
दुनिया में दो तरह के संगीत हैं। एक पूर्वीय संगीत है, जिसकी गहरी से गहरी खोज हिंदुओं ने की है। उन्होंने नाद पर उसको आधारित किया। जब संगीत नाद की तरफ ले जाता है, तो संगीत को सुनते-सुनते ध्यान निर्मित होने लगता है।
और फर्क समझ लेना। ध्यान का अर्थ है, तुम ज्यादा जागने लगोगे। तुम परिपूर्ण होश से भर जाओगे। जैसे एक दीया अचानक भीतर जल जाए। तुमने सुना है कि संगीतज्ञ अपने संगीत से बुझे दीए जला सकता है। तुम बाहर के दीयों का ख्याल मत करना। बाहर के दीयों से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। तुम बुझे हुए दीए हो। और अगर संगीतज्ञ खुद भी समाधिस्थ है तो ही! क्योंकि वह समाधिस्थ हो, तो ही ओंकार की ध्वनि को संगीत में पिरो पाएगा और तुम्हारे जगत में ला पाएगा। थोड़ी सी भी झलक ले आए, एक बूंद ले आए उस अमृत की तो तुम पाओगे कि तुम जाग गए हो, तुम होश से भरे हो, तुम्हारी नींद से किसी ने तुम्हें झकझोर दिया है। और यह संगीत ध्यान बन जाएगा।
फिर एक दूसरा संगीत है ठीक इसके विपरीत, जो सुलाता है। जो तुम्हें और तंद्रा में ले जाता है। उस संगीत को सुन कर तुम्हारी वासना जगेगी। इस्लाम ने उसी संगीत के कारण संगीत को वर्जित कर दिया। क्योंकि इस्लाम को पता ही न था कि हिंदुओं ने एक और संगीत खोज लिया है, जो सहस्रार से संबंधित है। दो संगीत हैं। एक तो कामवासना से, सेक्स सेंटर से संबंधित है। और एक संगीत है, जो सहस्रार से संबंधित है। सहस्रार से संबंधित संगीत तो नाद है। सेक्स सेंटर से, कामवासना से संबंधित संगीत तो केवल वासना को फुसलाना है। इस्लाम को वही पता था। जहां इस्लाम पैदा हुआ, वहां एक ही संगीत का बोध था कि संगीत लोगों को वासना में ले जाता है, कामवासना में ले जाता है, राग-रंग में ले जाता है। इसलिए इस्लाम ने तो बिल्कुल इनकार ही कर दिया कि संगीत को जगह ही नहीं है। मस्जिद के सामने बैंड-बाजा तक मत बजाना।
और यह भी ठीक है। क्योंकि दुनिया में चल रहा निन्यानबे प्रतिशत संगीत
तो ऐसा ही है, जो तुम्हें मंदिर में नहीं ले जा सकता। मंदिर से दूर ले जाएगा। पश्चिम में संगीत की हजारों नयी धाराएं हैं। वे सब की सब विकृत हैं। उस संगीत में तुम अपना होश खो दोगे। वह शराब जैसा है। उससे तुम जागोगे नहीं, तुम उससे और वासना में लीन हो जाओगे। वेश्या उस संगीत का उपयोग करती है। संतों ने भी उस संगीत का उपयोग किया है। संगीत वही है। लेकिन वही व्यक्ति उसको नाद बना सकता है, जिसको नाद का अनुभव हुआ हो। नानक तो संगीतज्ञ हैं। वे तो बोलते नहीं, गाते हैं। वे तो उत्तर भी देते हैं, तो गीत गा कर देते हैं। और ये गीत कोई बनाए हुए गीत नहीं हैं। ये सहज हैं। किसी ने कुछ पूछा और नानक मरदाना को इशारा करेंगे, और वह बजाने

लगता है। और नानक गीत गाने लगते हैं। गा कर ही उन्होंने कहा है। क्योंकि पूरा अस्तित्व गीत की भाषा को समझता है। और जब कोई व्यक्ति खुद समाधिस्थ हो, तो उसके संगीत में नाद उतर आता है।
नाद का अर्थ है, वह परम ध्वनि, जो अस्तित्व में चुपचाप पैदा हो रही है। जैसे कभी रात के सन्नाटे में तुम्हें सुनायी पड़ती है सन्नाटे की आवाज। ठीक वैसा ही चौबीस घंटे एक नाद चल रहा है। एक रिदम अस्तित्व का है। जब कुछ भी नहीं हो रहा है, तब भी वह चल रहा है। पर उसके लिए तुम्हें बड़ा शांत हो जाना पड़े, तब तुम समझ पाओगे। तुम्हारी भीतर की सब आवाज बंद हो जाए, तब तुम समझ पाओगे। अभी तो तुम हजार तरह के बाजार से भरे हो। अभी तुम्हारे भीतर बड़ा शोरगुल है। इसी शोरगुल में तुम्हें जो पसंद पड़ता है संगीत, वह भी शोरगुल को बढ़ाने वाला ही हो, तो ही पसंद पड़ता है। वह भी अराजक हो, उपद्रव हो, तुम्हारी विक्षिप्तता को प्रकट करता हो, तो ही पता चलता है।
मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोस में एक आदमी आलाप भर रहा था। आधी रात को नसरुद्दीन उसके पास गया और उसने कहा कि आपको तो अपने संगीत का कार्यक्रम लंदन, मास्को, पेकिंग, वहां देना चाहिए। उस आदमी ने कहा कि नसरुद्दीन, मैंने कभी सोचा भी नहीं कि तुम संगीत के इतने प्रेमी हो। क्या तुम्हें मेरा संगीत इतना पसंद आता है? उसने कहा कि नहीं, कम से कम वहां से तुम्हारी आवाज हमें सुनायी न पड़ेगी।
तुम्हारे चारों तरफ जो चल रहा है संगीत के नाम से, वह विसंगीत है। उसकी आवाज तुम्हें सुनायी ही न पड़े तो अच्छा है। तुम वैसे ही विसंगीत से भरे हो। काफी वैसे ही जहर तुममें भरा है। और उस जहर को उठाने की सब चेष्टाएं चल रही हैं। नाच रहे हैं लोग, तो वासना को जगाने के लिए। गा रहे हैं लोग, तो वासना को जगाने के लिए।
पर जिस चीज से भी वासना जग सकती है, उसी चीज से वासना सो भी सकती है। इसको याद रखना। जो चीज जहर है, वही अमृत हो सकती है, इसको याद रखना। उपयोग पर निर्भर है। उपयोग पर ही परिणाम निर्भर है। जहर औषधि बन जाती है। और जहर मृत्यु भी बन जाती है। जहर मौत से बचाता भी है, मौत में ले भी जा सकता है। नानक कहते हैं, जो पहला अनुभव होता है ज्ञान-खंड में वह नाद है। दूसरा अनुभव विनोद है। यह बड़ी समझ लेने की बात है। क्योंकि तुम सोच ही नहीं सकते कि संत और विनोद का क्या संबंध? विनोद का मतलब है कि जिंदगी गंभीर नहीं रह जाती है। एक हंसी-खुशी हो जाती है। विनोद का अर्थ है, जिंदगी एक हल्का आनंद हो जाती है। निर्भार, जिसमें कोई वजन नहीं। तुम साधु-संतों को देखते हो, जो गंभीर हैं, बड़े चेहरे वाले हैं। जिनके चेहरे पर ऐसा लगता है कि जैसे दुनिया भर की मुसीबत इन्हीं के ऊपर आ पड़ी है।
नानक कहते हैं, जिसने नाद सुन लिया, वह कैसे उदास होगा? उसके जीवन में उदासी नहीं होगी, विनोद होगा। वह हंसेगा। वह हंस सकेगा। वही हंस सकता है। तुम तो हंसोगे कैसे? तुम्हारी तो हंसी भी झूठी है। तुम्हारे प्राणों में प्रफुल्लता नहीं है। तुम्हारे होठों पर हंसी कैसे होगी? जिसने जाना, वह हंस सकता है। वह ही हंस सकता है।
और नानक कहते हैं, जिसने नाद को पहचान लिया उसके जीवन का ढंग विनोद का होगा। उसके जीवन में तुम गंभीरता न पाओगे। प्रामाणिकता पाओगे, गंभीरता न पाओगे। उसके जीवन में तुम हंसी-खुशी पाओगे, उदासी न पाओगे। उसकी आंखों में कालिमा न होगी। उसकी आंखों में एक उत्सव होगा।

तीसरी चीज है कौतुक। उसके जीवन में विस्मय होगा, उत्तर नहीं। उत्तर
वह जानता नहीं। जो उत्तर दूसरे भी जानते हैं, वह भी उसके लिए उत्तर न रहे। उसका कौतुक जग गया है। वह आश्चर्य से भरा है। वह छोटे बच्चे कि भांति पुलकता है। हर चीज रहस्य बताती है। वह जहां भी देखता है, पाता है अनंत रहस्य है। कहीं कोई उत्तर नहीं है। कहीं भी उत्तर मिल जाए, अहंकार को पैर रखने की जगह मिल गयी। और जब कहीं भी कोई उत्तर नहीं मिलता तो अहंकार अपने आप विसर्जित हो जाता है। जगह न बची खड़े होने की।
रहस्य है! रहस्य का अर्थ हुआ कि तुम्हारे हाथ के भीतर, तुम्हारी मुट्ठी के भीतर कुछ भी नहीं आ सकता है। हां, तुम चाहो तो रहस्य के भीतर जा सकते हो। रहस्य को तुम मुट्ठी में कब्जा नहीं कर सकते। तिजोड़ी में बंद

नहीं कर सकते। शास्त्र में कैद नहीं कर सकते। रहस्य मुट्ठी में नहीं आता।
उस पर कोई नियंत्रण नहीं हो सकता। हां, तुम चाहो तो उसमें जा सकते हो। जैसे कोई सागर में उतर जाए, ऐसा कोई रहस्य में उतर सकता है। लेकिन मुट्ठी में बंद नहीं होता रहस्य। रहस्य आकाश जैसा है।
तो नानक कहते हैं, पहला तो नाद, विनोद, कौतुक और आनंद।
विनोद आनंद की सतह है। और आनंद विनोद की गहराई है। विनोद सतह है, जैसे लहरें उठती हैं सागर में। और आनंद सागर की गहराई है। मुस्कुराहट, प्रसन्नता, उस आनंद की पुलकें हैं जो तुम्हारे ओंठों तक आ जाती हैं। तुम हंस सकते हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर परम आनंद भरा है। विनोद सतह है; आनंद गहराई है। और जब आनंद विनोद से जुड़ता है तो जीवन में परम धन्यता आ जाती है। तुम्हारा विनोद भी रुग्ण है। जब तक कोई गंदी मजाक न करे, तुम हंस भी नहीं सकते। तुम्हें हंसने के लिए भी कोई गंदगी चाहिए। इसलिए तो दुनिया में नब्बे, बल्कि निन्यानबे प्रतिशत मजाक सेक्स से संबंधित होती हैं, गंदी होती हैं, अश्लील होती हैं। जब तक कोई अश्लील बात न कहे, तुम हंस भी नहीं सकते। तुम्हारी हंसी भी रुग्ण है। जब तक कोई आदमी रास्ते पर गिर ही नहीं पड़े, पैर न फिसल जाए केले के छिलके पर, तब तक तुम हंस ही नहीं सकते। जहां करुणा चाहिए थी, वहां तुम्हें हंसी आती है। जहां उस आदमी को सहारा देना था, वहां तुम व्यंग करते हो। तुम्हारा हंसना रुग्ण है। तुम्हारा हंसना स्वस्थ नहीं है।
एक आदमी अगर गिर पड़ा है तो हंसने जैसा क्या है? उसको सहारा चाहिए, लेकिन तुम हंस रहे हो। क्यों? क्योंकि तुम्हारे भीतर तुम दूसरों को गिराना चाहते हो हर हालत में। और जिनको तुम ज्यादा गिराना चाहते हो, अगर वे गिरेंगे तो तुम ज्यादा हंसोगे। समझो कि एक भिखारी गिर जाए, तुम ज्यादा न हंसोगे। इंदिरा गांधी गिर जाए तो तुम बहुत खिलखिला कर हंसोगे। एक भिखारी गिरा, इसमें क्या हंसने की बात है? गिरा ही हुआ था। उसको तुमने गिराने का कभी सोचा ही न था। लेकिन एक अचेतन वासना है कि इंदिरा गिर जाए; तो तुम्हें हंसी आएगी। नौकर गिरे तो ज्यादा न हंसोगे, मालिक गिर जाए तो हंसोगे।
तुम्हारी अचेतन हिंसा ही तुम्हारी हंसी तक में भरी है। तुम्हारा हंसना तक जहर है। इसलिए तुम्हारा विनोद विनोद नहीं है, व्यंग है। और व्यंग और विनोद का वही फर्क है। कडुवा है तुम्हारा विनोद। उसमें दंश है। कांटे हैं, फूल नहीं हैं।
एक संत भी हंसता है। उसकी हंसी में दंश नहीं है, कांटे नहीं हैं। और अक्सर तो वह अपने पर हंसता है। क्योंकि वह अपनी ही हालत को देखता है। जब वह तुम पर भी हंसता है तब भी वह अपने पर ही हंसता है। क्योंकि तुममें भी वह अपनी ही झलक देखता है। जब एक आदमी गिरता है, तब वह आदमियत को गिरते देखता है, आदमी को गिरते नहीं। तब वह जानता है कि आदमी असहाय है, हंसी योग्य है, रिडिक्युलस है। कितनी अकड़ कर चला जा रहा था, टाई-वाई लगायी हुई थी। सब तरह सजा-बजा था। और एक छिलके ने गिरा दिया! एक केले के छिलके ने मजाक कर दी! अगर वह इस आदमी को देखता है, तो उसे दिखायी पड़ती है आदमी की असहाय, हेल्पलेसनेस की अवस्था। कि कितना कमजोर है आदमी और अकड़ कितनी! एक केले का छिलका गिरा देता है, और हिमालय पर चढ़ने की अकड़ ले कर चलता है आदमी। परमात्मा को पराजित करने का ख्याल रखता है, केले का छिलका गिरा देता है। वह अगर हंसता है, तो मनुष्यता की असहाय अवस्था पर हंसता है। अपनी असहाय अवस्था पर हंसता है, लज्जा से। लेकिन किसी की निंदा से, किसी को गिराने के भाव से नहीं। उसका विनोद है। वह भीतर आनंदित है। और उसके आनंद की लहरें, उसके ओठों तक आ जाती हैं।
"लज्जा या शील, ज्ञान-खंड की वाणी रूप है।"
जितना-जितना ज्ञान गहन होता है, जागरूकता बढ़ती है, उतनी-उतनी लज्जा।
नानक कहते हैं, सरम खंड की वाणी रूपु। और वह जो लज्जा है, वही वाणी है। बुद्धपुरुष झिझक कर बोलते हैं। बुद्धू टेबल ठोंक कर बोलते हैं। इसलिए बुद्धू बहुत से अनुयायी इकट्ठे कर लेते हैं। क्योंकि ये अनुयायी तो देखते हैं कि कौन कितने जोर से बोल रहा है। अगर कोई आदमी झिझक कर बोल रहा है, तो तुम उसके पीछे जाओगे ही नहीं। कि यह आदमी अभी खुद ही संदिग्ध है, तुम

समझोगे। वह संदेह के कारण नहीं झिझक रहा है, वह लज्जा के कारण झिझक रहा है। वह इसलिए झिझक रहा है कि कहना कितना मुश्किल है!
बुद्ध के पास बहुत लोग आते थे नए-नए सवाल, अलग-अलग सवाल ले कर। बुद्ध जवाब तो कम देते थे। बहुत थोड़े सवालों के जवाब देते थे। खास सवालों के तो जवाब देते ही नहीं थे। क्योंकि खास सवालों का कोई जवाब ही नहीं। सिर्फ गैर-खास सवालों का जवाब हो सकता है। जो मुसीबत आदमी ने खुद पैदा की है, उसका जवाब हो सकता है। लेकिन जो रहस्य परमात्मा का है, उसका कोई जवाब नहीं।
तो बुद्ध चुप रह जाते। बहुत लोग यही सोच कर लौट जाते कि अभी इसे ही पता नहीं है, पता होता तो बोलता। तुम चुप्पी को समझ ही न पाओगे। वह लज्जा जो बुद्ध में है, बहुत कम लोगों में रही है। तो बुद्ध के समय भी बहुत से मतवादी थे, जो अकड़ कर जवाब देते थे। लोग उनके पीछे इकट्ठे हो जाते। वे भी समझाते थे लोगों को कि पूछ लो यह सवाल जा कर। अगर ज्ञान हो गया है तो जवाब चाहिए। तुम भी सोचते हो यही कि जिसको ज्ञान हो गया, उसके पास सब जवाब होने चाहिए।
जिसको ज्ञान हो जाता है, उसके सब जवाब खो जाते हैं। उसके पास कोई जवाब नहीं बचता। उसे बड़ी लज्जा जाती है कि क्या तुमसे कहे? उसे लज्जा आती है कि क्या तुम पूछ रहे हो, इसका भी तुम्हें पता नहीं।
रास्ते पर चलते आदमी ने मुझे पकड़ लिया है कई बार, और कहा कि ईश्वर है? रास्ते पर मैं चला जा रहा हूं। ट्रेन पकड़ने के लिए प्लेटफार्म पर हूं। कोई आदमी बीच में रोक लेता है, जरा एक मिनट। ध्यान क्या है?
इनको क्या कहा जाए? ये क्या पूछ रहे हैं, इसका इन्हें पता नहीं है! ये उत्तर चाहते हैं। अगर इन्हें उत्तर दे दिया जाए तो उत्तर ये ऐसा चाहते हैं, जैसे दो और दो चार।
काश, जिंदगी गणित होती! बड़ा आसान हो जाता। जिंदगी गणित नहीं है। जिंदगी एक काव्य है, जिसको समझने की क्षमता चाहिए। जिसे मौन में सुनने की योग्यता चाहिए। और काव्य के उत्तर गणित जैसे दो और दो चार जैसे नहीं हैं। काव्य तो विस्मय जगाता है। वह तुम्हें उठाता है तुम जहां हो वहां से। वह तुम्हें उत्तर दे कर वहीं स्थापित नहीं करता। वह तुम्हारी जड़ों को उखाड़ता है और तुम्हें नयी यात्रा पर ले जाता है। विस्मय से और विस्मय की ओर। नानक कहते हैं, "इसका अंत ही नहीं, अंत ही नहीं है।"
"लज्जा या शील वाणी रूप हैं।"
बुद्ध चुप रह जाते हैं। जब कोई पूछता है, ईश्वर है? तो बुद्ध चुप रह जाते हैं। इस कारण दो भ्रांतियां पैदा हुईं। हिंदुओं ने तो समझा कि इस आदमी को पता ही नहीं है। क्योंकि पता होता... गांव के साधारण पंडित से पूछो, वह कहता है कि हां, ईश्वर है। और प्रमाण देता है। जब हमारा पंडित प्रमाण दे देता है, तो यह आदमी? गांव का साधारण पंडित जानता है!
मैंने सुना कि ऐसा हुआ कि एक मूढ़ देश में एक महामूढ़ नेता हो गया। वह प्रधानमंत्री बन गया। वह बोल लेता था। भाषण करने में तेज था। नेता होने के लिए उतनी ही जरूरत है। और कोई योग्यता चाहिए भी नहीं। वह काफी चिल्ला- चिल्ला कर बोलता था और प्रभावित कर देता था आवाज से। और जब कोई इतना चिल्ला कर बोलता है, तो लोगों को भरोसा आ जाता है कि इतना चिल्ला कर बोल रहा है, तो कुछ पता ही होगा। पढ़ा-लिखा बिल्कुल नहीं था।
मुसीबत तो तब आयी जब वह प्रधानमंत्री हो गया। क्योंकि नियम यह था कि प्रधानमंत्री भाषण न दे, पढ़ कर बोले। तो पढ़ तो सकता ही नहीं था, और आदमी होशियार था, और नेता होने के लिए चालाकी तो चाहिए ही। तो उसने सोचा, कोई हर्जा नहीं! तो वह कोई भी कागज रख लेता था। अखबार की कटिंग काट ली, रख ली। भाषण तो जो उसे देना था वही देता था, लेकिन वह उसमें से पढ़ कर देता था। पढ़ा- लिखा तो था नहीं, तो अक्सर कभी उलटा भी पकड़ लेता था।
ऐसा हुआ कि कोई परदेश से आदमी आया था, किसी का मेहमान, उसने इसका व्याख्यान सुना। वह हैरान हुआ। क्योंकि एक तो अखबार की कटिंग रखे हुए था पुरानी कोई। और वह भी उलटी पकड़े था। तो उसने खड़े हो कर कहा कि यह तो हद हो गयी! यह आदमी, उसमें जो लिखा है, वह तो पढ़ ही नहीं रहा है। और पढ़ भी नहीं सकता, क्योंकि उसको उलटी रखे हुए है।

पर नेता, जैसे कि नेता चालाक होते हैं। गांव के लोगों को बात जंची। उन मूढ़ों को बात जंची कि अरे! यह बिल्कुल बेपढ़ा-लिखा आदमी है। इसको यह भी पता नहीं कि सीधा... नेता ने कागज नीचे रख कर कहा कि सुनो, जिसको पढ़ना आता है उसको क्या सीधा और क्या उलटा? यह गांव के लोगों को बिल्कुल जंची कि बात बिल्कुल ठीक है, जिसको पढ़ना ही आता है। उस नेता ने कहा, तुमने सुनी है कहावत--नाच न आवै आंगन टेढ़ा। अरे आंगन टेढ़ा होने से क्या होता है? नाच आना चाहिए। पढ़ना आना चाहिए, कागज कैसा ही हो! मैं उसको किसी भी तरह रखूं, हर हालत में पढ़ सकता हूं। यह आदमी गैर पढ़ा-लिखा है। और वह आदमी अब भी नेता है। गांव के लोगों को जंच गयी बात।
बुद्ध से लोग पूछते, ईश्वर है? वह चुप रह जाते। तो एक तो यह भ्रांति पैदा हुई कि इन्हें पता नहीं है। और दूसरी यह भ्रांति पैदा हुई कि ईश्वर है, नहीं इसलिए बुद्ध चुप हैं। हिंदुओं ने समझा, इस आदमी को पता नहीं है। और बौद्धों ने समझा, जो बुद्ध के अनुयायी थे, कि ईश्वर है नहीं, इसलिए बुद्ध चुप हैं। नहीं तो क्यों चुप रहें? इसलिए बुद्ध को लोग नास्तिक समझते हैं। खुद उनके मानने वाले बुद्ध को नास्तिक समझते हैं। और इससे महान आस्तिक कभी जमीन पर हुआ नहीं।
नानक की बात से तुम्हें समझ में आ जाएगाः लज्जा वाणी है। जब तुम पूछते हो, ईश्वर है? तो बुद्ध चुप रह जाते हैं। चुप रह जाते हैं कि कैसे कहें? किस मुंह से कहें? कौन कहे? रहस्य इतना बड़ा है कि कहा नहीं जा सकता है। बुद्ध चुप रह कर कुछ कह रहे हैं और तुम समझ ही नहीं पा रहे हो। या तुम जो भी समझ पा रहे हो, वह गलत है।
नानक कहते हैं, "उसमें जो रचना होती है, वह अत्यंत अनूप और अनुपम है।"
उस लज्जा में जो बोध की नयी-नयी रचनाएं होती हैं, नयी-नयी तरंगें आती हैं, वे अनुपम हैं। अत्यंत अनूठी हैं। उनका कोई जोड़ नहीं, अद्वितीय हैं। "उसकी चर्चा शब्दों में नहीं की जा सकती। और जो ऐसा करने का प्रयास करता है, वह पीछे पछताता है।"
क्यों पीछे पछताता है, जो प्रयास करता है? क्योंकि जैसे ही शब्द में कोई बात बोली जाती है, वैसे ही लगता है कि जो कहना था वह तो कहा नहीं गया, यह तो कुछ और हो गया। जो कहना था वह तो पीछे छूट गया। और जब वह सुनने वाले की आंखों को देखता है, तब उसे लगता है, जो कहना था वह तो पहुंचा ही नहीं। नब्बे प्रतिशत तो पहले ही छूट गया, शब्द जब बनाया। और दस प्रतिशत जो थोड़ा बहुत शब्द में था, वह भी सुनने वाले को नहीं पहुंचा। उसने कुछ और ही सुना है। तुमने कुछ और ही कहा था। बुद्ध कुछ और ही कहते हैं, अज्ञानी कुछ और ही सुनते हैं। और जो अज्ञानी सुनते हैं, उस पर संप्रदाय निर्मित होते हैं। इसलिए बुद्धों से उन संप्रदायों का बिल्कुल संबंध टूट जाता है। कोई संबंध नहीं रह जाता।
इसलिए पीछे पछताता है। कि जो कहेगा, वह पछताएगा। इसलिए जिन्होंने कहने की भी कोशिश की है, उन्होंने भी निरंतर साथ में यह कहा है कि तुम शब्द को मत पकड़ लेना।
अब नानक ने ही यह कहा, अब वे पछता रहे होंगे। सिक्खों को देखेंगे, पछताएंगे। यह कभी सोचा भी न होगा कि यह जमात खड़ी होगी। बुद्ध पछता रहे हैं कि जो बौद्धों की जमात खड़ी हुई है, यह कभी सोचा ही न होगा। महावीर पछता रहे हैं। ये लोग सब मोक्ष में मिलते होंगे और अपना-अपना रोना रोते होंगे। रोएंगे ही।
क्योंकि सुन कर वह बात समझी नहीं जा सकती। सुनने वाला शब्द पकड़ लेता है। फिर शब्द को ढोता है। फिर शब्द के आसपास संप्रदाय खड़ा होता है। फिर वह संप्रदाय चलता है हजारों-हजारों साल तक। और हजारों तरह की भूलें उस संप्रदाय के कारण पैदा होती हैं और हजारों तरह की विकृतियां। वह जमीन पर एक घाव की तरह छूट जाता है, मनुष्य की चेतना पर एक बीमारी की तरह।
"जो ऐसा कहने का प्रयास करता है, वह पीछे पछताता है। वहीं स्मृति, मति,
मन और बुद्धि की रचना होती है।"
उस ज्ञान-खंड में, जहां होश जगता है, वहीं से स्मृति की धाराएं, मति, मन
और बुद्धि की रचना होती है। वहीं चेतना के सभी रूप ढलते हैं।
"वहीं देवता और सिद्ध की सुधि या मनीषा गढ़ी जाती है।"

उस होश में यह सब दिखायी पड़ता है। ये सारे रूप। जैसे मिट्टी से कोई हजारों चीजें बनाए, मूर्तियां बनाए, ऐसे ही चेतना के सब रूप हैं। बुद्धि, मन, सुधि, स्मृति, मनीषा, प्रतिभा सब चेतना के रूप हैं।
लेकिन जब तुम जाग कर इनके ऊपर उठते हो, तब तुम्हें पता चलता है कि ये
सब तो चेतना के ही रूप हैं। और इनसे जो भी जाना जाता है, वह सीमित होगा। क्योंकि रूप से तुम अरूप को नहीं जान सकते। मति, बुद्धि, सुधि, प्रतिभा इन सब के पीछे जो अरूप छिपा है, वह है जागरण। वह है बोध। वह है होश। वह है चेतना।
उस अरूप को तुम पकड़ो और इन रूपों को भीतर छोड़ दो। जैसे ही तुम उस अरूप
का धागा भीतर पकड़ लेते हो, वैसे ही सारे जगत में निराकार की पहचान शुरू हो जाती है। बुद्धि से तुम जो भी जानोगे, वह सीमित होगा। साकार होगा। बुद्धि तो ऐसे ही है जैसे कोई घर की खिड़की पर खड़ा हो कर आकाश को देखे। तो खिड़की का जो चौखटा है, आकाश उतना ही दिखायी पड़ेगा, जितना चौखटा है।
चेतना बहुत रूप लेती है। जैसे पदार्थ ने बहुत रूप लिए हैं, कहीं चट्टान है, कहीं बादल है, कहीं बर्फ है, कहीं आकाश है। जैसे पदार्थ ने अनंत रूप लिए हैं, ऐसे ही चेतना ने भी अनंत रूप लिए हैं। कहीं बुद्धि है, कहीं सुधि है। बुद्धिमान में बुद्धि है, पंडित में बुद्धि है। सुधिमान में, साधु में सुधि है। स्मरण है, सुरति है। जो लोग बड़ी याददाश्त रखते हैं, चाहे उनमें बुद्धि न हो, स्मृति होती है।
अक्सर ऐसा होता है कि बहुत बुद्धिमान लोगों में स्मृति नहीं होती। और बहुत स्मृतिवान लोगों में बुद्धि नहीं होती। ऐसे बहुत से प्रमाण हैं, जहां बड़ी स्मृति के लोग बड़े बुद्धू पाए गए। क्योंकि स्मृति का काम अलग है। जो है उसे जान लिया, उसकी याददाश्त। बुद्धि का काम दूसरा है। जो नहीं जाना है, जिससे कोई पहचान नहीं, उसमें से रास्ता बनाना। दोनों अलग-अलग हैं। स्मृति अतीत है, और बुद्धि की खोज भविष्य में है।
और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि बहुत स्मृति हो तो सारी चेतना उसी में जकड़ जाती है। तो बुद्धि ज्यादा नहीं हो पाती। और अभी सारी शिक्षण-संस्थाएं स्मृति पर ही बल देती हैं। इसलिए अगर दुनिया में बड़ा बुद्धूपन है तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि स्मृति का शिक्षण होता है। बुद्धिमत्ता का कोई शिक्षण नहीं होता। तो एक बच्चा पढ़-लिख कर लौट आता है, बिल्कुल जड़ हो कर लौट आता है। सौभाग्यशाली हैं वे लोग, जो विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धि बचा कर लौट आते हैं। नहीं तो नष्ट हो ही जाती है। याद करते-करते, करते-करते याद ही पकड़ जाती है।
स्मृति अलग है, बुद्धि अलग है। प्रतिभा और ही अलग बात है। प्रतिभा का अर्थ है, सहज जीवन को जानने और पहचानने की क्षमता। बिना किसी तर्क के जीवन के उत्तर की झलक पा लेने की क्षमता का नाम प्रतिभा है। अगर तुम बड़े से बड़े वैज्ञानिक आइंस्टीन से पूछो तो वह यही कहेगा, जो भी मैंने जाना वह बुद्धि से नहीं जाना; प्रतिभा से। उसके लिए कोई उत्तर नहीं है। अनेक-अनेक रूपों में वह प्रतिभा घटित होती है।
मैडम क्यूरी खोज कर रही थी--जिसके लिए उसको नोबेल प्राइज मिला--वह थक गयी वर्षों तक खोज करते, कुछ न हुआ। और एक रात नींद में उठ कर टेबल पर जा कर नींद में ही उसने उत्तर लिख दिया। फिर वापस सो गयी। सुबह तो वह हैरान ही हुई कि उत्तर आया कहां से? क्योंकि जब तक उसे याद है, शाम तक वह परेशान थी, उत्तर नहीं था। तब उसे धीरे-धीरे याद आया कि जैसे उसने रात एक सपना देखा। वह उठी और सपने में उसने कुछ लिखा था। तब उसे अपने अक्षर भी पहचान आ गए। और रात में उसने उत्तर लिख दिया, जो दिन में खोज-खोज कर थक गयी थी। यह प्रतिभा है। सभी कवियों का यह ख्याल है कि जब तक तुम कोशिश करो, कुछ नहीं होता। गीत उतरता है। वह प्रतिभा का हिस्सा है।
लेकिन नानक कहते हैं, ये सब--मति, स्मृति, मन, बुद्धि, प्रतिभा, सुधि--
सब खेल हैं चेतना के। अलग-अलग ढांचे हैं। इन ढांचों से तुम जो भी जानोगे, वह सीमित होगा। इन ढांचों के भी ऊपर जाना है। एक को ही जानना है बाहर, एक को ही जानना है भीतर। और जब तुम एक को भीतर पहचानोगे, तभी तुम एक को बाहर पहचानोगे। क्योंकि भीतर जब तुम एक होओगे, तभी बाहर की एक की पहचान आ सकती है।

और जब तुम एक भीतर, एक बाहर को पहचान लेते हो, तो दो नहीं बनते। अचानक तुम पाते हो कि जो भीतर है, वही बाहर है। तुम अचानक पाते हो कि बाहर भीतर भी फासला हमारा निर्मित किया हुआ है। जो आकाश बाहर है तुम्हारे घर के, वही भीतर है। दीवालें तुमने बना रखी हैं। द्वार-दरवाजे तुमने लगा रखे हैं। आकाश को तुम खंडित नहीं कर पाते। तुम सोचते हो कि आकाश खंडित हो गया? कि तुमने दीवाल खड़ी कर ली तो आकाश दो टुकड़ों में हो गया? आकाश अखंड है। तुम्हारी दीवाल बने न बने; आज है, कल गिर जाएगी, आकाश जैसा है वैसा ही रहेगा।
जैसे ही तुम एक को भीतर, एक को बाहर पहचानते हो, दोनों गिर जाते हैं।
अद्वैत का जन्म होता है। ज्ञान-खंड की जो आखिरी ऊंचाई है, वह अद्वैत का अनुभव है। एक का अनुभव है।
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
उन्नीसवां प्रवचन

सच खंडि वसै निरंकारु

पउड़ीः 37
करम खंड की वाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु।।
तिथै जोध महाबल सूर। तिन महि राम रहिआ भरपूर।।
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि।।
न ओहि मरहि न ठागे जाहि। जिनकै राम बसै मन माहि।।
तिथै भगत वसहि के लोअ। करहि अनंदु सचा मनि सोइ।।
सच खंडि वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल।।
तिथै खंड मंडल बरमंड। जे को कथै त अंत न अंत।।
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार।।
वेखै विगसे करि वीचारु। "नानक" कथना करड़ा सारु।।

मनुष्य असहाय है। लेकिन तभी तक, जब तक परमात्मा से दूर है। मनुष्य दुर्बल है, दरिद्र है, दीन है, लेकिन तभी तक, जब तक परमात्मा से दूर है।
उससे हमारी दूरी ही हमारी दरिद्रता है। और जितने हम उससे दूर होते जाते हैं, उतना ही जीवन अर्थहीन होता जाता है।
पश्चिम में इस सदी में बहुत से विचारक हुए, जिनकी ऐसी प्रतीति है कि जीवन में न कोई अर्थ है, न कोई प्रयोजन है, न कोई नियति है। जीवन एक व्यर्थ की कथा है। ए टेल टोल्ड बाई एन ईडियट, फुल आफ फ्यूरी एंड न्वायज सिग्नीफाइंग नथिंग--जैसे कोई मूढ़ कहे एक कहानी, शोरगुल बहुत मचाए लेकिन अर्थ उसमें बिल्कुल न हो।
ऐसा लगेगा ही। ऐसी प्रतीति होगी। तुम अपने ही जीवन को देखो, शोरगुल बहुत है। बड़े काम में तुम संलग्न हो। चल ही नहीं रहे, दौड़ रहे हो। लेकिन कभी पूछा अपने से, कहां पहुंच रहे हो? दौड़-दौड़ कर भी वहीं खड़े हो जहां जन्म के बाद तुमने अपने को पाया था। रत्ती भर तो उपलब्धि नहीं हुई। पाया क्या है? अगर हाथ देखोगे तो खाली है। तिजोड़ी भर गयी हो भला। लेकिन तिजोड़ी यहीं पड़ी रह जाएगी। तुम खाली हो। और तुम जितने भी भरेपन के सपने देख रहे हो, उनमें सच्चाई जरा भी नहीं है।
तुम कितना ही इकट्ठा कर लो संसार का, लेकिन मरते क्षण संसार छूट जाएगा। और जो छूट ही जाना है, वह तुम्हारा हो कर भी तुम्हारा नहीं हो पाता। जिन्होंने इस जगत की संपदा को अपना आधार बनाया उन्होंने रेत पर महल खड़े किए हैं, वे गिरेंगे। और तुम कितनी देर अपने को धोखा दे पाओगे? कभी तो जागोगे, कभी तो होश आएगा, कभी तो तुम विचार करोगे कि चला इतना, पहुंचा कहीं भी नहीं। तुम्हारी अवस्था कोल्हू के बैल जैसी है। चलता बहुत है। चलता ही रहता है। दिन-भर शोरगुल भी बहुत होता है उसके आसपास। क्योंकि तेल पिरता है, घानी चलती है। पहुंचता कहां है? सांझ वहीं पाता है जहां सुबह अपने को पाया था। फिर कल सुबह वहीं से यात्रा होगी।
तुम्हारा जीवन भी कोल्हू के बैल जैसा है। तुम कितना ही सजाओ, तुम कितना ही छिपाओ, तुम कितने ही ऊपर से रंग-रोगन करो, भीतर तुम्हें भी पता है कि भिखारी का पात्र है तुम्हारा हृदय। मांगता है और खाली है। और भरता कभी भी नहीं। जितना दूर आदमी होता जाता है परमात्मा से, उतना ही दरिद्र होता जाता है। स्वामित्व तो उसके साथ है।
और हम केवल दूर ही होते तो भी ठीक था, हम उसके विपरीत हैं। दूर होना भी इतना बुरा नहीं जितना विपरीत होना है। हम जो भी कर रहे हैं, उससे विपरीत है। दूर हो कर भी अगर हम उसके साथ हों, तो तत्क्षण क्रांति हो जाए।
जैसे कोई आदमी नदी में उलटी धार में बह रहा हो, स्रोत की तरफ तैरने की कोशिश कर रहा हो--लड़ रहा है; नदी से दूर ही नहीं है, दुश्मन है। और मजा यह है कि तुम जितना लड़ोगे, उतना ही तुम पाओगे कि नदी तुम्हारी दुश्मन है। नदी को क्या लेना-देना? तुम पहुंचो या न पहुंचो, नदी को क्या प्रयोजन है? नदी दुश्मन नहीं है। नदी तो अपनी धार में बही जा रही है, अपनी मस्ती में। उसे

अपना सागर खोजना है। तुम उससे उलटे बह रहे हो। तुम्हारे कारण ही नदी तुम्हें दुश्मन मालूम होती है। तुम्हारे कारण ही तुम्हें संसार में सब तरफ शत्रु दिखायी पड़ते हैं। और जीने का मौका कहां मिले? शत्रुओं से सुरक्षा करने में ही समय व्यतीत हो जाता है। कैसे अपने को बचाएं, इसी में अवसर खो जाता है।
परमात्मा से दूर तो जीवन अर्थहीन होगा ही। परमात्मा से विपरीत न केवल अर्थहीन होगा, बल्कि एक दुःस्वप्न भी होगा। दूर, सपना होगा; विपरीत, दुख का सपना हो जाएगा। और तुम जिसे जीवन कहते हो, वह एक नाइटमेयर है, एक दुःस्वप्न है।
तुमने कभी दुःस्वप्न का विचार किया? दुःस्वप्न का अर्थ होता है, तुम जागना चाहते हो, जाग नहीं सकते। दुःस्वप्न का अर्थ होता है, छाती पर कोई चढ़ा है। तुम हटाना चाहते हो, लेकिन हाथ नहीं हिलते। तुम उसे हटाना चाहते हो, लेकिन कोई शक्ति नहीं है। सब शक्ति खो गई। तुम पाते हो कि कोई तुम्हें पहाड़ों से गिरा रहा है। लेकिन तुम्हारे पास कुछ भी उपाय नहीं कि तुम अपने को बचा सको। तुम आंख खोलना चाहते हो और आंख नहीं खुलती है। तुम हाथ हिलाना चाहते हो कि रोक दो, लेकिन हाथ नहीं उठता है। तुम चीखना चाहते हो और कंठ से आवाज नहीं निकलती है। ऐसी जो स्वप्न की दशा है, वह दुःस्वप्न है, नाइटमेयर है।
परमात्मा से दूर जो है, वह सपने में है; विपरीत जो है, वह दुख के सपने में है। तुम अपने जीवन को देखोगे, तो ऐसा ही पाओगे। न आंख खोले खुलती है, न हाथ हिलाए हिलता है, न छाती से वजन हटता है। और फिर भी जी रहे हो। तो फिर तुम्हारा जीवन सिवाय संताप के और कुछ भी नहीं हो सकता।
कीर्कगार्ड, सार्त्र, मार्सेल, हायडेगर, पश्चिम के बड़े विचारक कहते हैं कि जीवन संताप है, एंग्विश है। इसमें चिंता से मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। उनकी बात बहुत दूर तक सच है। जैसा तुम्हारा जीवन है, अगर उसका ही अध्ययन किया जाए तो जीवन एक संताप है।
लेकिन एक और जीवन भी हमने जाना है, नानक का, कबीर का, बुद्ध का, कृष्ण का, क्राइस्ट का। हमसे बिल्कुल विपरीत। जहां हम संताप से दबे हैं, वहां उनके जीवन में एक नृत्य है। और जहां हमारे भीतर सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं गूंजता, वहां उनके जीवन में एक संगीत है, एक नाद है। जहां हम ऐसे चलते हैं जैसे पैरों में भयंकर भारी जंजीरें बंधी हों, वहां उनके पैरों में नृत्य है और पुलक है। जहां हमें देख कर ऐसा लगता है कि होना एक महापाप का फल है, वहां उन्हें देख कर लगता है कि होना एक आशीर्वाद है।
एक और भी ढंग है जीने का। उस ढंग की कुंजी है, ईश्वर से दूर नहीं, ईश्वर
के पास। और ईश्वर के विपरीत नहीं, ईश्वर के अनुकूल। जो धर्म के अनुकूल बहने लगता है, उसके जीवन में रूपांतरण हो जाता है। जरूरत भी नहीं है कि तुम विपरीत लड़ो। लेकिन अहंकार लड़ाता है। क्योंकि अहंकार मानता है, जितना तुम जीतोगे उतने ही तुम बड़े हो जाओगे।
और मजा यही है कि हो उलटा रहा है। जितने तुम जीतते हो उतने तुम छोटे होते जाते हो। गरीब आदमी के पास तुम बड़ा हृदय भी पा लो, अमीर आदमी के पास उतना बड़ा हृदय भी नहीं रह जाता। और छोटा हो गया है। दरिद्र दान भी दे दे, अमीर की देने की हिम्मत ही खो जाती है। गरीब थोड़ा प्रेम भी कर ले, अमीरों के जीवन से प्रेम की धुन भी खो जाती है। प्रार्थना तो बहुत दूर, परमात्मा तो बहुत दूर, साधारण प्राकृतिक प्रेम की धुन भी खो जाती है।
जितना तुम इस संसार में इकट्ठा करते हो, लगता है उतने ही सिकुड़ते जाते हो, छोटे होते जाते हो। यह बड़ा विरोधाभास है। जितना तुम्हारे पास होता है, उतने ही तुम छोटे होते हो। तुम्हारे भीतर का आकाश सिकुड़ जाता है। और जो तुम्हारे पास है, तुम उसी के लिए डरे होते हो। तुम उसी से परेशान होते हो। नानक कहते हैं कि शक्ति का सूत्र है, उसकी कृपा। और उसकी कृपा तब उपलब्ध होती है, जब तुम अपने को बिल्कुल असहाय समझ लेते हो। बिल्कुल! टोटल! रत्ती भर भी चालाकी वहां न चलेगी। तुम ऐसा ऊपर-ऊपर से कहो कि मैं असहाय हूं, इससे कुछ न होगा।
यह प्रतीति गहरे में प्रविष्ट हो जाए। यह प्रतीति तुम्हारे हृदय के गहनतम में पहुंच जाए। यह प्रतीति तुम्हारे रोएं-रोएं में गूंजे। यह ओंठों

की प्रार्थना न हो, यह कंठ का उदगार न हो, यह हृदय की प्रतीति हो। यह तुम्हारे आंसुओं से जाहिर हो। यह तुम्हारे शब्द-शब्द में समा जाए, यह तुम्हारे निःशब्द में भी गूंजती रहे। तुम उठो, बैठो, और तुम ऐसे जैसे कि तुम परम असहाय हो।
तुम कर क्या सकते हो? तुम्हारा किया कुछ भी तो नहीं होता। तुम्हारे किए अनकिया ही होता है। तुम जो करते हो, उससे जो नहीं घटना चाहिए, वही घटता है। तुम्हारे किए कुछ भी नहीं होता।
बड़ी प्रसिद्ध कहावत है। और उस तरह की कहावतें सारी दुनिया की अलग-अलग भाषाओं में हैं। लोग कहते हैं, मैन प्र्रपोजेज एंड गाड डिस्पोजेज। इससे गलत कोई कहावत नहीं हो सकती कि मनुष्य प्रस्तावना करता है और ईश्वर इनकार कर देता है। हालत बिल्कुल उलटी है। गाड प्रपोजेज एंड मैन डिस्पोजेज। परमात्मा प्रस्ताव करता है और आदमी इनकार करता रहता है। परमात्मा तुम्हें सभी कुछ दे डालना चाहता है।
यह अस्तित्व लुट जाना चाहता है तुम्हारे लिए। लेकिन तुम्हारे द्वार बंद हैं। यह अस्तित्व तुम पर बरसना चाहता है। लेकिन तुम्हारा घड़ा उलटा रखा है। यह अस्तित्व सब तरफ से तुम्हारे भीतर आना चाहता है। लेकिन भय के कारण तुमने संध भी नहीं छोड़ी कि कोई भीतर प्रवेश कर सके। और भीतर तुमने इतना कूड़ा-करकट और कबाड़ इकट्ठा कर रखा है कि वहां भी जगह नहीं है कि कोई प्रवेश भी करे तो बैठ सके। परमात्मा के बैठने लायक स्थान भी तुम्हारे भीतर नहीं।
उसकी कृपा तो तब उपलब्ध होती है जब तुम बिल्कुल असहाय हो जाते हो। और असहाय अवस्था की परिपूर्ण प्रतीति ही लज्जा है। तब तुम शर्माते हो। तुम मैं कहने तक में शर्माते हो। तुम कहते हो, किस आधार पर कहूं कि मैं हूं? किस बुनियाद पर कहूं कि मेरे किए कुछ होता है?
सारा जीवन तो उलटी ही बात कह रहा है। तुमने जो किया सब असफल हुआ। तुमने जो किया सब हार गया, सब मिट गया। तुम्हारे बनाए सब महल गिर गए। फिर भी तुम चेतते नहीं, फिर भी तुम कर्ता को पकड़े चले जाते हो। फिर भी तुम कहते हो, मैं करने वाला हूं। जब तक तुम कहते हो, मैं करने वाला हूं, तब तक तुम लज्जा से न भरोगे। और नानक कहते हैं, लज्जा प्रार्थना है। तुम कहते हो, मैं जानने वाला हूं, तब तक तुम झुकोगे नहीं। पंडित कहीं झुक सकता है? उसका माथा झुक नहीं सकता। शरीर को भला ही झुका ले, माथा अकड़ कर खड़ा रहता है। बड़ी प्रसिद्ध घटना है। सूफी उस कहानी का उपयोग किए हैं। कि दो मित्र
एक स्कूल में साथ ही साथ पढ़े और बड़े हुए। फिर संयोग और भाग्य, और जीवन की यात्रा उन्हें अलग-अलग ले गयी। एक तो बड़ा सम्राट हो गया और दूसरा एक बड़ा फकीर हो गया। सम्राट राजमहल में रहने लगा और फकीर नग्न गांव-गांव भटकने लगा। सम्राट की भी बड़ी ख्याति थी, फकीर की भी कुछ कम न थी। आखिर एक बार फकीर राजधानी आया तो सम्राट ने बड़ा आयोजन किया। उसने गांव भर को दीयों से सजा दिया, फूल बरसा दिए। उसका मित्र आ रहा है!
फकीर जब आ रहा था, तो रास्ते में कुछ यात्रियों ने उससे कहा कि तुम्हें कुछ पता है? वह सम्राट अपना वैभव दिखाना चाहता है; अहंकारी है। उसने सारे रास्ते फूलों से भर दिए हैं। घर-घर पर, इंच-इंच पर दीए लगा दिए हैं। सारा गांव दीवाली मना रहा है। वह तुम्हें दिखाना चाहता है। जिन सीढ़ियों से तुम महल में जाओगे, उन सीढ़ियों को उसने स्वर्ण से मढ़ दिया है।
और उन पर बहुमूल्य हीरे-जवाहरात जड़ दिए हैं। वह अपनी अकड़ दिखाना चाहता है।
वह तुम्हें दिखाना चाहता है कि देखो तुम क्या हो? एक नंगे फकीर! और मैं क्या हूं! उस फकीर ने कहा, देख लेंगे उसकी अकड़।
फिर दिन आया, फकीर गांव में पहुंचा। सारी राजधानी उसे लेने पहुंची। लेकिन सम्राट चकित हुआ। वर्षा के दिन नहीं हैं, और फकीर के घुटने तक कीचड़ लगी है! यहां तो पूछना अशोभन मालूम होता है, इतने लोगों के सामने। जब वे सीढ़ियां पार करके महल के एकांत में पहुंच गए, और जो बहुमूल्य गद्दे-गलीचे बिछाए गए थे वे सब उस फकीर ने अपने पैर की कीचड़ से गंदे कर दिए, तब सम्राट ने पूछा कि मैं बहुत हैरान हूं! क्योंकि वर्षा का कोई समय नहीं, रास्ते सूखे पड़े हैं। और तुम्हारे पैर में इतनी कीचड़ कैसे लग गयी? क्या हुआ? उस

फकीर ने कहा कि अगर तुम अपनी अकड़ दिखाना चाहते हो, तो हम भी अपनी फकीरी दिखाना चाहते हैं।
तो सम्राट खिलखिला कर हंसने लगा और उसने कहा कि फिर आओ हम गले लग जाएं। क्योंकि न मैं कहीं पहुंचा, न तुम कहीं पहुंचे। हम दोनों वहीं के वहीं हैं, जैसे हम स्कूल से विदा हुए थे। मैं भी कहीं नहीं पहुंचा, तुम भी कहीं नहीं पहुंचे।
और ध्यान रखो, यह सम्राट तो कहीं पहुंच जाएगा किसी दिन, इस फकीर का पहुंचना बहुत मुश्किल है। क्योंकि सम्राट को यह साफ हो रहा है कि मैं कहीं नहीं पहुंचा।
तुम धन से भी अकड़ से भरते हो। तुम त्याग से भी अकड़ से भर जाते हो। और अकड़ ही बाधा है। अकड़ मिट जाए, उसका नाम लज्जा है।
तो नानक कहते हैं, जो लज्जा से भर गया उस पर परमात्मा की अनुकंपा बरसने लगती है। लज्जा पात्रता है। जब तक तुम अकड़ से भरे हो तब तक तुम्हें परमात्मा की जरूरत ही नहीं। और जिसकी तुम्हें जरूरत नहीं, वह तुम्हें कैसे मिल सकेगा? उसे कभी तुमने बुलाया नहीं, तुमने कभी उसे मांगा नहीं, तुमने कभी उसे चाहा नहीं। और कभी तुमने उसे बुलाया भी तो कुछ और चाहने के लिए--कि बच्चा बीमार है, कि अदालत में मुकदमा है। तुमने उसे कभी नहीं मांगा, कि हम तुझे ही चाहते हैं। न अदालत, न बाजार, न दूकान, न बीमारी, न शरीर, हम किसी और कारण से नहीं चाहते, हम तुझे ही चाहते हैं।
जब तक तुम उसे ही न पुकारोगे, सिर्फ उसके लिए ही, तब तक तुम्हारी प्रार्थना झूठी है। तुम्हारी प्रार्थना भी संसार के लिए है। उस प्रार्थना का दिव्यता से कोई लेना-देना नहीं है। तुम कुछ मांग रहे हो, जो संसार का है। शायद परमात्मा से मिल जाए।
एक अमीर आदमी मर रहा था। जैसा उसका जिंदगी भर का गणित था कि हर चीज धन
से मिल जाती है, तो उसने अपने पुरोहित को बुलाया और कहा कि मैं अगर दस करोड़ रुपए तुम्हारे मंदिर को दान दूं तो क्या मुझे स्वर्ग में प्रवेश मिल सकेगा?
उस पुरोहित ने कहा, चेष्टा कर लेने में कुछ हर्ज नहीं है, लेकिन भरोसा मैं नहीं दिला सकता। क्योंकि मैंने कभी सुना नहीं कि कोई धन से स्वर्ग में प्रवेश पा सका हो। लेकिन कोशिश कर लेने में कुछ हर्ज नहीं है। धन तो छूट ही जाएगा। एक आखिरी कोशिश कर के देख लो।
तुमने अगर धन से सब पाया है, तो तुम कहीं न कहीं मन में यह भाव संजोए ही बैठे होओगे कि प्रार्थना भी, पूजा भी, ध्यान भी उसी से पा लेंगे। धन तो अहंकार से मिलता है। वह तो महत्वाकांक्षा से मिलता है। और पूजा, प्रार्थना, ध्यान लज्जा से मिलता है। वह मिलता है जहां सब महत्वाकांक्षाएं गिर गयीं, और जहां तुमने अपने को सब भांति व्यर्थ पाया, जहां तुम्हारा किया कुछ भी नहीं होता, जहां तुम बिल्कुल असहाय हो, जहां तुम पाते हो कि मैं क्या कर पाऊंगा! बस, उसी क्षण।
और करने का ही अहंकार नहीं, जानने का अहंकार भी गिर जाना चाहिए। तुम वेद के ज्ञाता हो, तुम चतुर्वेदी हो, तुम चारों वेद जानते हो, कि तुम कुरान को कंठस्थ किए हो, कि बाइबिल का तुमसे बड़ा कोई ज्ञाता नहीं! नहीं, इस ज्ञान से भी तुम उसे न पा सकोगे। क्योंकि ज्ञान भी सूक्ष्म कर्ता का ही भाव है-- मैं जानता हूं। न तुम्हारा जानना, न तुम्हारा कृत्य। वे दोनों ही तुम्हारे अहंकार के पहलू हैं। जहां दोनों गिर जाते हैं... ।
क्या जानते हो तुम? कभी तुमने इसे बहुत होशपूर्वक पूछा कि क्या जानता हूं मैं? द्वार पर पड़े पत्थर को भी तुम ठीक से नहीं पहचानते और दूर परमात्मा को जानने का तुम दावा करते हो। एक फूल को भी कोई जान नहीं सका है अब तक।
अंग्रेज कवि टेनीसन ने बहुत महत्वपूर्ण बात कही है। उसने कहा है कि अगर मैं एक छोटे से फूल को पूरा जान लूं, तो जानने को शेष क्या बचता है? सभी कुछ जान लिया। एक फूल के खिलने को तुमने जान लिया, तो तुमने इस पूरे अस्तित्व की खिलावट पहचान ली। एक फूल के सौंदर्य को तुमने पहचान लिया, तो तुमने इस सारे जगत के सौंदर्य को पहचान लिया। एक फूल के सत्य में तुम उतर गए, तो बचता क्या है? जिसने बूंद जान ली, उसने सागर जान लिया। क्योंकि

गुणधर्म तो दोनों का एक ही है। बूंद में सब कुछ तो समाया हुआ है। वह सागर का ही तो संक्षिप्त संस्करण है। जिसने एक अणु जान लिया, उसने सब जान लिया। लेकिन हम जानते क्या हैं? हमारी जानकारी क्या है? उधार है, बासी है, परायी है। हजारों हाथों से चल कर आयी है। अगर कोई हजारों लोग जूतों को पहन चुके हों तो तुम उन जूतों में पैर डालने को राजी न होओगे। लेकिन तुम्हारा ज्ञान ऐसा ही है। पैर ही नहीं डाले हैं तुमने, उसमें तुमने सिर डाल दिया है। उधार है, बासा है। किन्हीं ने जाना होगा कि नहीं जाना होगा, तुम्हें कुछ पक्का पता नहीं है। बस, तुम किताब से पढ़ते हो। तुम शास्त्र से पढ़ते हो। तुम किसी से सुन लेते हो। जिसने सुना है, उसका भी तुम्हें पक्का पता नहीं है कि वह जान कर कह रहा है, कि उसने खुद जाना है। वह भी हो न हो, उसने भी किसी से सुना हो।
एक फिल्म अभिनेत्री के बाबत मैंने सुना है कि रात जब वह अपने गहने उतार कर रखती--तो बड़ी होशियार थी, चालाक थी--एक चिट गहनों के पास रख देती, कि ये गहने नकली हैं। असली गहने तो बैंक में हैं। लेकिन एक सुबह जागी तो पाया कि गहने नदारद हैं। और टेबिल पर एक दूसरी चिट रखी है, जिस पर लिखा है कि मुझे नकली ही गहनों की जरूरत है। क्योंकि मैं नकली चोर हूं। असली तो जेल में है।
तुम जिससे सुन रहे हो, तुम जिससे समझ रहे हो, तुम जिसके शब्दों को उधार
ले रहे हो, वह भी असली है? तुम्हारे पास कोई भी तो उपाय नहीं जानने का। कोई भी तो कसौटी नहीं जिससे तुम परख लो कि कौन असली है। और कसौटी तो तभी होगी जब तुम्हारा अनुभव होगा। लेकिन जब अनुभव होगा तब तो तुम्हें किसी से सुनने की जरूरत भी न रह जाएगी।
यही तो मुसीबत है। जब हाथ में सोना होता है तो कसौटी नहीं, जब कसौटी आती है तब सोने के कसने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती है। जब तुम्हारे पास अनुभव होता है जिस पर तुम कस सको, तब कोई जरूरत नहीं रह जाती। और जब तक तुम कस नहीं सकते तब तक बड़ी गहन जरूरत है। और तुम अपने अज्ञान को उधार ज्ञान से ढांकते रहते हो। फिर इससे अकड़ पैदा होती है कि मैं जानता हूं। वही अकड़ बाधा है।
ज्ञान भी नहीं, कर्तृत्व भी नहीं; तुम मिट गए। तुम्हारे दोनों आधार गिर गए। भवन भूमिसात हो गया। इस भूमिसात अवस्था को नानक कहते हैं, लज्जा। और जब लज्जा सघन हो जाती है तो उसकी कृपा की वर्षा शुरू हो जाती है। तुम्हारी लज्जा में ही उसकी अनुकंपा उतरेगी। तुम्हारी लज्जा ही उसकी अनुकंपा से मिल सकेगी। उन दोनों का ताल-मेल है। लज्जा गड्ढे की भांति है और उसकी अनुकंपा वर्षा की भांति। वर्षा तो पहाड़ों पर भी होती है लेकिन पहाड़ खाली रह जाते हैं। गड्ढों में पानी भर जाता है। झीलें बन जाती हैं। वर्षा तो सभी पर हो रही है। उसकी वर्षा में कोई भेद-भाव नहीं।
नानक कहते हैं, उसके लिए न कोई नीच है, न कोई ऊंच है। न कोई पात्र है, न अपात्र है। वह तो बरस रहा है सभी पर। लेकिन कुछ गड्ढों की भांति हैं, वे भर जाते हैं। कुछ पहाड़ों के शिखरों की भांति हैं, वे खुद अपने से इतने भरे हैं कि जगह कहां?
तुम गड्ढे की भांति हो जाओ तो नानक की लज्जा को उपलब्ध हुए। इधर लज्जा बनी, गड्ढा तैयार हुआ, वर्षा तो हो ही रही थी। तुम झील बन जाओगे। तुम जानने की झील बन जाओगे, तुम चैतन्य की झील बन जाओगे। तुम्हारे होने का सारा ढंग बदल जाएगा। तुम रहोगे नहीं। गड्ढे का मतलब है तुम मिट गए। तुम्हारे भीतर परमात्मा हो गया। तब तुम असहाय नहीं हो। तब तुमसे ज्यादा शक्तिशाली कोई भी नहीं।
"कृपा-खंड की वाणी शक्ति है।"
करम खंड की वाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु।।
तिथै जोध महाबल सूर। तिन महि राम रहिआ भरपूर।।
"कृपा का जो खंड है, वहां की वाणी शक्ति है। इसको छोड़ कर उसमें दूसरा कुछ भी नहीं है। उसमें महाबली शूरवीर हैं, जिन सब में राम ही भरपूर समाया हुआ है।"
जैसे ही कोई व्यक्ति लज्जा को उपलब्ध हुआ, कृपा शुरू हुई बरसनी, भरनी। दीन जो था वह सम्राट हो जाता है। संतों ने कहा है, उसकी कृपा से लंगड़े पहाड़

पार कर गए। उसकी कृपा से अंधों ने देखा। ये साधारण अंधों और लंगड़ों की बातें नहीं हैं। ये तुम्हारे संबंध में बातें हैं। बहरे सुनने लगे।
जब तक तुम अपने अहंकार से भरे हो, तुम्हारे कान बहरे रहेंगे, आंखें अंधी रहेंगी, तुम्हारा हृदय पथरीला रहेगा--पाषाण। उसमें कुछ भी प्रतीति न होगी। उसमें कोई संवेदना न होगी। तब तक तुम करीब-करीब मृत रहोगे। तुम्हारा जीवन ऐसा रहेगा जैसे दीया बुझा-बुझा जलता हो। आखिरी तेल चुका जाता हो। तुम भभक कर न जीओगे। तुम्हारा जीवन ऐसा न होगा कि जिसमें एक त्वरा हो, जिसमें एक सघनता हो, जिसमें संवेदना की एक गहराई हो। जिसमें हृदय ऐसे मुर्दे की भांति न धड़कता हो। जहां जीवन में एक बाढ़ हो। तुम न केवल भरे-पूरे हो, बल्कि बांट भी सको इतना तुम्हारे पास हो। तुम्हारे भीतर एक आंतरिक वैभव हो, एक सुगंध हो, जो तुम कितना ही बांटो और चुके न। और तुम कितना ही दो, बढ़ती जाए। तुम्हारे पास एक जीवन का अनंत स्रोत हो।
कृपा के साथ यह घटित होता है। यह बड़ी उलटी पहेली है। यह बड़ी उलटबांसी है। और इसलिए संतों के वचन बड़े रहस्यपूर्ण मालूम पड़ते हैं। सीधे-सादे, पर रहस्यपूर्ण। क्योंकि बड़ी उलटी बातें कहते मालूम पड़ते हैं। वे कहते हैं, मिटो! ताकि हो सको। वे कहते हैं, खो दो अपने को! ताकि तुम पाने के हकदार हो जाओ। मर जाओ! ताकि तुम्हें अमृत जीवन उपलब्ध हो सके।
तुम बचाते हो, इसीलिए तुम नहीं हो। तुम जितना अपने को पकड़ते हो, उतने
ही दीन, दरिद्र, उतने ही अर्थहीन। तुम जितना अपने को संभालोगे उतने ही भटकोगे। बड़ी उलटी बातें हैं। एकदम से पकड़ में नहीं आतीं। क्योंकि हमारे तर्क के बिल्कुल विपरीत हैं। हमारा तर्क कहता है, बचना है तो अपने को बचाओ। संतों का तर्क कहता है, बचना है? अपने को खो दो। बचाने वाला कभी अपने को बचा पाया है? हमारा तर्क कहता है, कहीं मौत न आ जाए। इसलिए हम जीवन को जोर से पकड़े हैं। और संत कहते हैं, जिन्होंने जोर से पकड़ा, उनकी मौत तो पहले आ गयी। और भी पहले आ गयी। और जिन्होंने मरने को खुद अपनी स्वीकृति दे दी, जो खुद मौत से मिलने चले गए हैं, उन्होंने अमृत को जाना। उन्होंने पाया, मौत तो केवल चेहरा था, पीछे तो अमृत छिपा है। भय के मारे भागते थे, मौत से भागते थे, अमृत से वंचित रह जाते थे। मौत से जा कर गले मिल गए, अमृत से मिलन हो गया।
कृपा, अनुकंपा का जो जीवन में हिस्सा है, वहां शक्ति लक्षण है।
कार्लोस केस्टिनेडा की चौथी पुस्तक मैं पढ़ रहा हूं। पुस्तक का नाम है, टेल्स आफ पावर। वह इसी चौथे खंड के संबंध में लिखी गयी पुस्तक है। जैसे ही तुम्हारे जीवन में प्रभु की किरण उतरती है, तुम अनंत शक्तिशाली हो जाते हो। तुम्हारे ऊपर अपरंपार शक्ति की क्षमता आ जाती है। तुम मिट्टी छुओ, सोना होने लगता है।
पहले ठीक उलटा था। तुम सोना छूते थे और मिट्टी हो जाता था। क्योंकि तुम थे। अब तुम जिस तरफ देखो, वहीं स्वर्ग नजर आता है। पहले बिल्कुल उलटा था। तुम्हारी नजर जहां जाती थी, वहीं नर्क हो जाता था। जहां तुम्हारे पैर पड़ जाते थे, वहीं अपशगुन हो जाते थे। जो तुम करते थे, वहीं विषाद हाथ में आता था। तुम प्रेम भी करने जाते थे, तो घृणा हो जाती थी। तुम मित्र बनाने जाते थे और शत्रु निर्मित हो जाते थे। तुम जो भी करते थे, क्योंकि तुम गलत थे, इसलिए विपरीत परिणाम होते थे। और तुम परमात्मा के विपरीत चल रहे थे। वहीं शक्ति का स्रोत है। तुम उसकी तरफ पीठ किए थे। तुम्हारे कारण कुछ भी नहीं हो पा रहा था। अब तुम नहीं हो। अब सब हो सकता है। अब तुम्हारी छाया में जादू होगा। तुम्हारी आंख जिस तरफ पड़ेगी वहां स्वर्ग के द्वार खुल जाएंगे। तुम जहां जाओगे, तुम जहां उठोगे-बैठोगे, वहां की सुवास बदल जाएगी। तुम्हारे संग-साथ जो खड़ा हो जाएगा वह भी तुम्हारी महिमा से मंडित हो जाएगा। वह भी थोड़ी सुगंध तुमसे ले जाएगा।
इसलिए तो नानक कहते हैं, साध-संगत। वे कहते हैं, साधुओं के संग रहो। जिनको शक्ति का स्रोत मिल गया है उनके साथ रहो, उनके पास बैठो। उनका सत्संग महिमावान है। क्योंकि उनके पास बैठने से ही... ।
शक्ति संक्रामक है। स्वास्थ्य संक्रामक है। बीमारी ही नहीं पकड़ती, ध्यान रखना, स्वास्थ्य भी पकड़ता है। बुराई ही नहीं पकड़ती दूसरे से, भलाई भी अवतरित होती है तुममें और बह जाती है। ताजे आदमी के पास तुम भी ताजगी

अनुभव करते हो। बासे, उदास, मुर्दा आदमी के पास थोड़ी देर में तुम भी मुर्दा होने लगते हो। दस-पच्चीस लंबी शकल वाले लोग उदास बैठे हों, उनके पास जरा जा कर बैठो। थोड़ी देर में ही तुम पाओगे कि तुम आए कुछ और थे, तुम हो कुछ और गए। तुम भी उदास हो। तुम भी रो रहे हो। जहां लोग हंस रहे हों, जहां लोग खिल रहे हों, उनके पास थोड़ी देर बैठो। तुम शायद उदास आए हो, रोते हुए आए हो, आंसू सूख जाएंगे--मुस्कुराहट आ जाएगी।
आदमी इतना अलग-अलग थोड़े ही है! हम सब भीतर से जुड़े हैं। और हम सब भीतर
से एक-दूसरे में बह रहे हैं।
साध-संगत पर नानक का बड़ा जोर है। वे कहते हैं, तुम्हारे किए क्या होगा? तुम उनके पास रहो जिन्होंने उसका सहारा पा लिया है। उनके माध्यम से उस परमात्मा का हाथ तुमको भी छुएगा। उनके माध्यम से उसकी हवाएं तुम्हारे हृदय तक भी पहुंच जाएंगी। फूल के बगीचे से कोई ऐसे भी गुजर जाए तो भी थोड़ी सी सुगंध उसके वस्त्रों में समा जाती है। बुद्धों के पास से कोई ऐसे भी गुजर जाए, अकारण भी, संयोगवशात भी, तो भी बुद्धत्व की सुगंध कपड़ों को पकड़ जाती है। वह आदमी वही नहीं, कुछ बदल जाता है।
साध-संगत बड़ी कीमती है। परमात्मा से संबंध जोड़ना तो आज मुश्किल है। मुश्किल इसलिए है कि तुम्हें उसका कुछ भी तो पता ठिकाना मालूम नहीं। संत उसके प्रतीक हैं। उनका तुम्हें पता-ठिकाना मालूम हो सकता है। तुम उन्हें आसानी से खोज ले सकते हो। परमात्मा को तुम कहां खोजोगे? और संत का अर्थ है, जिसमें परमात्मा सघन है। जहां परमात्मा की किरणें सघन हो कर पड़ रही हैं। जहां ताप गहन है। संत ने अपने व्यक्तित्व में परमात्मा को इस तरह इकट्ठा किया है, जैसे कांच के एक टुकड़े में से तुम किरणों को पार करो और वे इकट्ठी हो जाएं, एकाग्र हो जाएं।
परमात्मा तुममें भी है, लेकिन विरल है। उससे आग पैदा नहीं होती। बस, कुनकुनापन--तुम किसी तरह जी लेते हो। संत में आग है। वह अग्नि है। उसके पास तुम्हें भी ताप लगेगा। उसके पास तुम्हारे भीतर भी कुछ जलेगा और मिटेगा। जिस दिन उसकी कृपा मिलनी शुरू होती है उसी दिन तुम शक्तिशाली हो जाते हो। लेकिन ध्यान रखना, वह शक्ति तुम्हारी नहीं है। अगर तुम्हें यह अकड़ आ गयी कि वह शक्ति तुम्हारी है, तो मिली हुई कृपा भी खो जाती है।
और अंत तक गिरने का डर है। क्योंकि अंत तक सूक्ष्म अहंकार पीछा करता है। वह आखिरी चीज है, जो मनुष्य का छुटकारा होता है जिससे, वह आखिरी है, अंतिम है। वह छाया की तरह तुम्हारे पीछे आता है। न तो उसकी पग-ध्वनि सुनायी पड़ती है। न कोई आवाज होती है। और वह तुम्हारे पीछे होता है इसलिए तुम्हें दिखायी भी नहीं पड़ता। वह छाया की भांति तुम्हारे पीछे चल रहा है। जैसे शरीर की छाया है, ऐसे ही चेतना की छाया अहंकार है। इसलिए तुमने सुनी होगी यह बात कि जो व्यक्ति परमात्मा को पा लेता है उसकी छाया नहीं बनती। इससे तुम यह मत समझना कि जब वह जमीन पर चलता है और सूरज उगा होता है तो जमीन पर उसकी छाया नहीं बनती। वह छाया तो बनती है, क्योंकि शरीर की छाया बनेगी। लेकिन उसके भीतर की छाया खो जाती है। वह चलता है, उठता है, बैठता है, करता है, बोलता है, सब जीवन की क्रिया चलती रहती है, लेकिन अब कोई छाया नहीं बनती। अब चेतना पारदर्शी हो गयी। अब वह है ही नहीं।
ध्यान रखना, तुम यह मत सोचना कि तुम शक्तिशाली हो जाओगे। उसकी अनुकंपा गिरेगी, बरसेगी--तुम तो होओगे ही नहीं। वही होगा तुम्हारे द्वारा शक्तिशाली। तुम निमित्त हो जाओगे। यह निमित्त शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। जैसे बांसुरी से स्वर निकलता है किसी गायक का; बांसुरी केवल निमित्त है। स्वर बांसुरी का नहीं है। स्वर तो गायक का है। और बांसुरी की खूबी क्या है, कभी तुमने ख्याल किया? बांसुरी की खूबी इतनी है कि वह पोली है। उसका पोलापन, उसकी शून्यता ही उसकी खूबी है। उसी खूबी के कारण स्वर प्रवाहित होता है। जिस दिन भी परमात्मा की अनुकंपा तुम पर बरसती है, तुम बांसुरी की भांति हो जाते हो।
कबीर ने कहा है कि मैं तो बांस की पोंगरी हूं। गीत सब उसके हैं। वही गाता है। मैं तो केवल माध्यम हूं, वाहन हूं। और वाहन की भी खूबी इतनी कि मैं पोला--पोली बांस की पोंगरी हूं।
"कृपा-खंड की वाणी शक्ति है। वहां शक्ति बोलती है।"

वहां परम-ऊर्जा बोलती है। एक बड़ा सघन मैग्नेटिज्म जिस व्यक्ति को उसकी अनुकंपा मिली है, उसको उपलब्ध हो जाता है। तुम उसकी तरफ खींचे जाते हो। तुम अपने को रोको तो भी नहीं रुक पाते हो। तुम उससे बचना चाहो तो बचा नहीं पाते हो। तुम खींचे जाते हो। कोई अलौकिक आकर्षण तुम्हें उस व्यक्ति की तरफ बांधे रखता है। तुम अपनी सारी चेष्टाओं के बावजूद भी पाते हो कि तुम खींचे जाते हो।
शक्ति के बोलने का, शक्ति के वाणी होने का यही अर्थ है।
"इसको छोड़ कर उसमें दूसरा कुछ भी नहीं है।"
परमात्मा की शक्ति को छोड़ कर उसमें दूसरा कुछ भी नहीं है।
"उसमें महाबली शूरवीर हैं, जिन सबमें राम ही भरपूर समाया हुआ है।"
जैसे ही इस घड़ी को कोई उपलब्ध होता है, वह महावीर हो जाता है। वह महायोद्धा हो जाता है। अपने सहारे हम दीन-हीन थे, परमात्मा के सहारे हम महावीर हो जाते हैं। लेकिन वह सारी ऊर्जा उसकी है। वह सभी कुछ उसका है। हम बीच से बिल्कुल हट जाते हैं। हम मार्ग दे देते हैं।
"जिन सब में राम ही भरपूर समाया हुआ है।"
तिथै जोध महाबल सूर। तिन महि राम रहिआ भरपूर।।
"उसमें, उसकी महिमा में सीता ही सीता समायी है।"
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि।।
इस वचन को गहनता से समझना जरूरी है। क्योंकि वैसा व्यक्ति जिसमें उसकी शक्ति उतरती है, एक दोहरी ऊर्जा से आप्लावित हो जाता है, आविष्ट हो जाता है--दोहरी ऊर्जा से। उसमें सिर्फ राम ही नहीं उतर आता, उसमें सीता भी उतर आती है।
ये तो प्रतीक हैं--राम और सीता। लेकिन ये प्रतीक बड़े गहन हैं। क्योंकि अगर सिर्फ राम ही उतरे तो व्यक्ति अधूरा होगा। आधा होगा। तो उसमें पुरुष की शक्ति तो आ जाएगी, लेकिन पुरुष की शक्ति अधूरी हो कर विध्वंसक है। उसमें स्त्री की महिमा न उतरेगी। और स्त्री का सौम्य रूप न उतरेगा। राम अकेले बिल्कुल अधूरे हैं। राम की मूर्ति को अकेली खड़े करके देखना, बहुत अधूरे लगेंगे। राम को सीता के साथ खड़े कर के देखना, तभी वे पूरे लगेंगे। क्यों? क्योंकि स्त्रैण शक्ति एक दूसरा आयाम है शक्ति का, जो संतुलन देता है। पुरुष की शक्ति अकेली हो तो हिटलर पैदा होगा, जिससे विध्वंस होगा। क्योंकि उसे संतुलित करने के लिए विपरीत शक्ति मौजूद नहीं है। सीता मौजूद नहीं है। स्त्री सृजनात्मक शक्ति है। वह मां है, वह जन्मदात्री है। वह जीवन के मूल स्रोत से जुड़ी है और सौम्य है। उसकी शक्ति करुणा है। उसकी शक्ति ममता है। उसकी शक्ति सूरज जैसी नहीं है। उसकी शक्ति चांद जैसी है, शीतल है। शक्ति है, फिर भी शीतल है। और जहां सूरज और चांद दोनों मिल जाते हैं, जहां प्रगाढ़ता और सौम्यता दोनों मिलते हैं, जहां प्रचंडता और विनम्रता दोनों मिल जाते हैं, वहां राम और सीता हैं।
यह बड़ी हिंदू-विचार की गहन खोज है और बहुतों की समझ में नहीं आयी है। ईसाई, मुसलमान, जैन, बौद्ध सभी इस हिंदू-विचार की गहनता को समझने में असमर्थ रहे हैं। जैन तो इसीलिए राम को भगवान नहीं मान सकता क्योंकि सीता खड़ी है। ये कैसे भगवान हैं, जिनके पास स्त्री खड़ी है? उसका तर्क है कि भगवान को अनासक्त होना चाहिए, वीतराग होना चाहिए। तो महावीर तो भगवान हैं, क्योंकि वीतराग हैं। कोई स्त्री आसपास नहीं है, दूर-दूर तक।
यह मामला यहां तक खींचा जैनों ने कि उन्होंने यह भी इनकार कर दिया कि महावीर की कभी कोई पत्नी थी। उन्होंने यह भी इनकार कर दिया कि कभी उनको बच्चे पैदा हुए थे, कि उनका लड़का था, या लड़की थी--सब इनकार कर दिया। उन्होंने इतिहास भी बदल डाला।
महावीर की पत्नी थी। उनको एक लड़की भी हुई। जैन शास्त्रों में उसका उल्लेख भी है। उस लड़की का विवाह भी हुआ। महावीर का दामाद भी था। लेकिन सब पोंछ डाला। सबको इनकार कर दिया। क्योंकि यह बात ही उनके सोचने के बाहर हो गयी कि महावीर और कैसे स्त्री के साथ! कैसे उनको बच्चा पैदा हो! महावीर और संभोग करते हुए! यह सोचना ही कठिन हुआ। कहानी को ही बदल डाला। महावीर को निपट अकेला खड़ा कर दिया।

तो महावीर में प्रचंडता तो मालूम होती है। लेकिन अकेले सौम्यता नहीं
हो सकती। जीवन का एक छोर कम है। इसलिए जैन-विचार बहुत दूरगामी न हो सका। और जैन-विचार के माध्यम से कोई संस्कृति खड़ी न हो सकी। सिर्फ एक आइडियॉलाजी रही। एक कल्चर खड़ा नहीं हुआ। अगर जैनों से कहो कि तुम एक गांव बसा कर बता दो--सिर्फ जैनों का, तो वे नहीं बसा सकते। क्योंकि कौन चमार का काम करेगा? कौन भंगी का काम करेगा? कौन सड़क साफ करेगा? कौन नाई का काम करेगा? संस्कृति नहीं है। एक गांव नहीं बसा सकते अपना। किस तरह की संस्कृति है? दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। सिर्फ आइडियॉलाजी है, एक विचार है। पंगु है।
और वह पंगुता का गहन से गहनतम कारण यह है कि स्त्री अस्वीकार है। उससे पंगुता पैदा हुई है। स्त्री को जैन-विधान में मोक्ष जाने की सुविधा नहीं है। उसे पहले पुरुष होना पड़ेगा एक जन्म में, तब वह स्वर्ग जा सकती है। पहले पुरुष का पर्याय लेना पड़ेगा। स्त्री को समानता नहीं है जैन विचार में, हो नहीं सकती। पुरुष ही पा सकता है।
और तुम हैरान होओगे अगर खोजने जाओगे, तो कारण क्या है? क्योंकि कारण
यह है कि पुरुष तो ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है, लेकिन स्त्री का मासिक-धर्म तो रोका नहीं जा सकता। तो वह ब्रह्मचारिणी भी हो जाए, तो भी मासिक-धर्म तो नहीं रुक सकता। और जब तक संपूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य उपलब्ध न हो जाए, तब तक कोई कैसे मुक्त हो सकता है?
जैन समझ ही न पाए। राम को समझना मुश्किल है, कृष्ण को तो समझना बिल्कुल असंभव है। बौद्ध न समझ पाए। फिर इस्लाम और ईसाइयत तो बहुत दूर है। उनको भी पहचान न हो सकी।
लेकिन हिंदू-विचार की बड़ी गहनता है। हिंदू-विचार यह कह रहा है, शक्ति
के दो रूप हैं। एक रूप स्त्री की तरह प्रकट होता है, एक रूप पुरुष की तरह। स्त्री और पुरुष महत्वपूर्ण नहीं हैं, शक्ति के दो रूप हैं, जो एक-दूसरे का संतुलन करते हैं। पुरुष में प्रचंडता है, सौम्यता नहीं है। इसलिए सभी सौम्य गुण स्त्रैण हैं। शब्द भी स्त्रैण हैं--करुणा, ममता, दया--शब्द भी स्त्रैण हैं। होना भी चाहिए।
इसलिए जब कोई व्यक्ति ठीक परम स्थिति को उपलब्ध होता है, तब उसमें स्त्री और पुरुष दोनों का मिलन हो जाता है। वह प्रचंड होता है। सौम्य भी होता है। वहां सूर्य और चांद दोनों मिल जाते हैं। वहां उत्ताप भी होता है और बड़ी गहन शीतलता भी होती है। और जब ये दोनों रूप संगृहीत हो जाते हैं, एक हो जाते हैं, इंटिग्रेटेड हो जाते हैं, तो परम पुरुष का जन्म होता है। वह परम जो अवस्था है, स्त्री-पुरुष के पार है। क्योंकि उन दोनों की ऊर्जा का मिलन है। वहां एक पैदा होता है, लेकिन जब दो बड़े गहन मिलन में डूब जाते हैं।
इसलिए सूत्र नानक का कहता है कि राम ही अकेले काफी नहीं। राम भरपूर समाया हुआ है उसमें। उसकी महिमा में सीता भी समायी हुई हैं।
तिन महि राम रहिआ भरपूर।।
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि।।
और फिर उसका रूप कहना असंभव है। क्योंकि तुम स्त्री के रूप की चर्चा
कर सकते हो, पुरुष के रूप की चर्चा कर सकते हो, लेकिन जहां राम और सीता का मिलन हो गया, वहां चर्चा मुश्किल हो जाती है। क्योंकि विपरीत गुण मिल गए। अब तुम यह कहो, तो उससे विपरीत भी मौजूद है। तुम वह कहो, उसका भी विपरीत मौजूद है।
जापान में एक मूर्ति है, जिसका आधा चेहरा बुद्ध का है। और उस चेहरे के पास जो हाथ है, उस हाथ में एक जलता हुआ दीया है। उस दीए की रोशनी बुद्ध के आधे चेहरे पर पड़ती है। वह बड़ा सौम्य चेहरा है--स्त्रैण। दूसरे हाथ में एक तलवार है। और उस तलवार की चमक चेहरे पर पड़ती है। चेहरा वही है, लेकिन वह ऐसा है, जैसा अर्जुन का चेहरा रहा हो--योद्धा का।
और इसको जापान में समुराई पूजते हैं। समुराई वहां के योद्धाओं का वर्ग है। वहां के क्षत्रियों का वर्ग है। वे इस मूर्ति को पूजते हैं। आधी बुद्ध की, आधी अर्जुन की। स्त्रैण, पुरुष दोनों मिल रहे हैं।

नीत्से ने आलोचना की है बुद्ध की कि बुद्ध स्त्रैण हैं। उसकी आलोचना में थोड़ी सचाई है। क्योंकि बुद्ध में सारी स्त्री का समग्र रूप प्रकट हुआ है। लेकिन बुद्ध में वह जो पुरुष की ऊर्जा है, उसके लक्षण नहीं मिलते हैं। बिल्कुल शांत हो गए हैं। करुणापूर्ण हैं। चांद हो गए हैं। बड़े शीतल हैं। लेकिन सूर्य खो गया है।
हिंदू, राम और सीता को साथ खड़ा करता है। कृष्ण और राधा को साथ खड़ा करता है। न केवल साथ, बल्कि जब भी वह नाम लेता है, पहले सीता को कहता है-- सीताराम। राधाकृष्ण। क्योंकि स्त्री जननी है। वह प्रथम है। पुरुष द्वितीय है, प्रचंडता द्वितीय है। करुणा प्रथम है। और जब करुणा में आविष्टित प्रचंडता होती है तब उसका सौंदर्य अपरंपार है। और जब ममता में छिपी हुई ऊर्जा होती है तब कैसे उसका वर्णन करें? जैसे ठंडी आग हो, कैसे उसका वर्णन करें? विपरीत जहां मिल जाते हों वहां वर्णन असमर्थ हो जाता है। इसलिए नानक कहते हैं, ताके रूप न कथने जाहि।
"उसके रूप का वर्णन नहीं हो सकता। जिनके मन में राम बसते हैं, न वे मरते हैं और न ठगे जाते हैं। वहां अनेक लोकों के भक्त बसते हैं। सच्चे नाम को मन में बसाए हुए वे आनंद मनाते हैं।"
न ओहि मरहि न ठागे जाहि। जिनकै राम बसै मन माहि।।
तिथै भगत वसहि के लोअ। करहि अनंदु सचा मनि सोइ।।
जिनके मन में राम बस गया, जिनके मन में परमात्मा आ गया, और जिनका हृदय आपूर भर गया उससे, उसकी कोई मृत्यु नहीं है।
इसे थोड़ा समझ लें। तुम्हारी मृत्यु है। परमात्मा की कोई मृत्यु नहीं।
लहरें बनती हैं, मिटती हैं। सागर सदा है। जब तक तुम लहर के साथ अपना तादात्म्य किए हो तब तक मरोगे। इसलिए तो हम इतने भयभीत हैं मृत्यु से। क्योंकि लहर से अपने को एक माने हुए हैं। मृत्यु सुनिश्चित है। लहर तो मरेगी, तुम्हारा तादात्म्य मरेगा, तुम्हारी आइडेंटिटी मरेगी। तुमने गलत संबंध जोड़ रखा है।
लेकिन अगर तुम राम से जुड़ गए, तुम परमात्मा से जुड़ गए, फिर कैसी मौत? इसलिए ज्ञानी मरने के पहले मर जाता है। वह अपना संबंध खुद ही तोड़ लेता है। वह तादात्म्य को अलग कर लेता है। वह जान लेता है कि न मैं शरीर हूं, न मैं मन हूं। ये दोनों मरेंगे। न मैं अहंकार हूं। वह भी मरेगा। वह मरणधर्मा है। वह तो छोटा सा लहरों में उठा हुआ रूप है। और लहर कितनी ही सुंदर मालूम पड़े और कितनी ही ऊंची उठ जाए, एक क्षण में आकाश को छूने का दंभ भरे, दूसरे ही क्षण विघटन शुरू हो जाता है। जवानी में सभी लहरें आकाश को छूने का दंभ भरती हैं। बुढ़ापे में उन्हीं से पूछो।
मैंने सुना है कि एक लोमड़ी सुबह-सुबह उठी। सुबह के नाश्ते की तलाश में निकली। सूरज पीछे उग रहा था। बड़ी लंबी छाया पड़ी। उस लोमड़ी ने अपनी छाया देखी और उसने कहा कि आज तो नाश्ते में कम से कम एक ऊंट की जरूरत पड़ेगी। इतनी लंबी छाया! तो जितनी लंबी छाया, उतना बड़ा मैं। और लोमड़ी के पास और कोई उपाय भी तो अपने को जानने का नहीं है। छाया ही दर्पण है। कि इतना बड़ा मेरा शरीर, एक ऊंट चाहिए नाश्ते में!
खोजती रही। दोपहर हो गयी, सूरज सिर पर आ गया। छाया सिकुड़ कर छोटी हो गयी। बिल्कुल न के बराबर हो गयी। दोपहर तक ऊंट को न खोज पायी। खोजती भी कैसे? लोमड़ी ऊंट को पाती भी कैसे? और पा भी लेती तो कैसे नाश्ता करती? भूख बढ़ गयी। नीचे झुक कर देखा, छाया बड़ी छोटी हो गयी है। उसने कहा कि अब तो एक चींटी भी मिल जाए तो भी काम चल जाएगा।
जवानी में लहर बड़ी ऊपर होती है। इसलिए तो जवानी मूढ़ है। इसलिए पूर्व
ने जवानी पर कभी भरोसा नहीं किया। पश्चिम ने भरोसा किया है। तो मुसीबत है। मुसीबत रोज बढ़ती जाती है। पूर्व ने जवानी पर कभी भरोसा नहीं किया। और जवानी को कोई बहुत महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया। क्या मूढ़ता को स्थान देना है? वह तो लहर की ऊंचाई है। छाया बड़ी पड़ती है उस समय। उस छाया के बड़े पड़ने में बड़े-बड़े सपने उठते हैं। हर आदमी क्या-क्या नहीं होना चाहता है! पूर्व ने बुढ़ापे को आदर दिया है, जब छाया बिल्कुल सिकुड़ जाती है। और अगर बुढ़ापे में भी तुम न जागे अहंकार से, तो फिर तुम कब जागोगे? जवानी में जाग जाओ, तुम

महिमाशाली हो। बुढ़ापे में न जागो, तो तुम महामूढ़ हो। जवानी में क्षम्य है न जाग सको, बुढ़ापे में क्षमा भी नहीं की जा सकती।
जैसे ही कोई जाग कर जीवन को देखना शुरू करता है, वैसे ही पाता है कि मैंने गलत से संबंध जोड़ रखा है--शरीर से। अगर तुम शरीर को देखो तो हर सात साल में बदल जाता है--पूरा का पूरा। तुम तो फिर भी रहते हो। एक दिन मां के पेट में इतना छोटा था कि बड़ी खुर्दबीन से देखते तो ही देख पाते, वह भी तुम्हारा शरीर था। फिर एक दिन जब तुम मर जाओगे, राख की छोटी सी पोटली ले कर तुम्हारे परिवार के लोग गंगा जाएंगे फूल चढ़ाने, वह भी तुम्हारा ही शरीर होगा। फिर बीच में कितने उतार-चढ़ाव देखे! इस शरीर के साथ तुम अपने को एक कर लोगे तो मृत्यु से कंपोगे, डरोगे, भयभीत रहोगे। इसलिए ज्ञानी मरने के पहले मर जाता है। वह खुद ही अपने हाथ मर जाता है।
नानक के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि एक रात वे घर से उठे और मरघट पहुंच गए। खोजते हुए घर के लोग पहुंचे। उन्होंने कहा, यह कोई जगह है? अगर ध्यान ही करना हो तो घर में, मंदिर जाते। मरघट आए! नानक ने कहा कि मैंने सोचा, जहां आखिर में जाना है, किसी के कंधे पर चढ़ कर क्या जाना! अपने हाथ ही चला आया। और जहां अंत में पहुंचना है, उसको पहले ही ठीक से देख लेना चाहिए। यहीं ध्यान करूंगा। क्योंकि मौत ही ध्यान है। और क्या ध्यान है?
अगर तुम मृत्यु पर ध्यान कर लो तो धीरे-धीरे मृत्यु हट जाती है। जैसे- जैसे तुम्हारा ध्यान गहरा घुसता है, वैसे-वैसे मृत्यु की ऊपरी पर्त हट जाती है। भीतर तुम अमृत को छिपा हुआ पाते हो। लहर खो जाती है, सागर मिलता है।
बुद्ध अपने भिक्षुओं को मरघट भेजते थे कि वहां चले जाओ अगर बुद्धत्व पाना है। जलते हुए देखना लोगों को। हड्डियों को राख होते देखना। चमड़ी से धुआं उठते, लपटें उठते देखना। देखना, अपने ही सगे-संबंधी आ कर सिर फोड़ जाते हैं। देखना, जिन पर इतना भरोसा किया था, मरते ही एक क्षण देर नहीं करते। जल्दी अरथी उठाते हैं और भागते हैं। क्योंकि कौन घर में रखेगा मुर्दे को? जिन्होंने कहा था, सदा-सदा साथ रहेंगे, वे भी चार दिन के बाद ऊब जाते हैं, रोने से ऊब जाते हैं। वे फिर अपने काम में संलग्न हो जाते हैं। और जब सब छोड़ कर चले जाएं किसी मुर्दे को, तो तुम शांत उस मुर्दे को जलते हुए देखना। यही तुम्हारी भी स्थिति होगी। आज नहीं कल, समय का फासला है। बुद्ध पहले भिक्षुओं को भेज देते कि पहले तुम मरघट से गुजर जाओ। वे इसलिए भेजते कि पहले तुम मर कर आ जाओ, तो काम एकदम आसान हो जाए।
एक तीन महीने भिक्षु मरघट पर दिन और रात देखता मौत--और मौत--और मौत! मौत सघन हो जाती चारों तरफ। सब तरफ से मौत दिखायी पड़ने लगती। हर चीज जलती हुई मालूम पड़ती। फिर भी वह पाता कि भीतर कोई सजगता है, जिसके जलने का कोई उपाय नहीं। जो जल नहीं सकती। आग चैतन्य को छू भी तो नहीं सकती। चेतना और अग्नि का कोई लेना-देना भी तो नहीं हो सकता। कहीं रास्ता भी तो एक-दूसरे का नहीं कटता। वह ज्यादा सचेतन हो कर लौटता है। वह अपने पुराने तादात्म्य को तोड़ देता है। तब बुद्ध कहते हैं, अब आसान है।
इब्राहिम एक सूफी फकीर हुआ। वह पहले सम्राट था। फिर जब फकीर हो गया,
तो गांव के बाहर ही रहता था अपनी राजधानी के। अक्सर यात्री वहां से आते- जाते पूछते उससे कि बस्ती का रास्ता कहां है? तो वह कहता, बाएं चले जाओ, भूल कर दाएं मत जाना। कई लोग दाएं जा कर भटक जाते हैं। बाएं बस्ती है, दाएं मरघट है। लोग जाते बाएं, उसका मान कर। दो-चार मील चल कर पाते कि मरघट में पहुंच गए। बड़े नाराज हो कर वापस लौटते कि तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? फिर जब दाएं जाते तो बस्ती पाते।
तो इब्राहिम उनसे कहता कि मैं भी उस बस्ती में था। लेकिन यह मुझे समझ में आ गया कि यह मरघट है। यहां सभी मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जहां लोग मरने की प्रतीक्षा कर रहे हों, जो मृत्यु का प्रतीक्षालय हो, उसको बस्ती क्या कहना! जहां सभी उजड़ेंगे, आज नहीं कल, उसको बस्ती क्या कहना! और जहां मरघट है, जहां लोग मरघट कहते हैं, वहां बसा हुआ फिर कभी भी नहीं उजड़ता। वहां जो बस गया, बस गया। उसको मैं बस्ती कहता हूं।
हमारी बस्तियां मरघट हैं, हमारे मरघट आखिरी बस्तियां हैं। ज्ञानी मरने के पहले मर जाता है। और अज्ञानी मरते-मरते तक आखिरी चेष्टा करता है--

बचा रहूं, बचा रहूं, बचा रहूं। ज्ञानी एक ही बार मरता है। अज्ञानी लाखों बार मरता है। क्योंकि जितना तुम बचाते हो, फिर मरना पड़ता है। फिर-फिर मरना पड़ता है। जब तक तुम यह पाठ सीख ही न लो तब तक तुम्हें बार-बार मरना पड़ेगा। मृत्यु एक शिक्षण है। जैसे कोई बच्चा स्कूल जाए और एक ही क्लास में बार-बार अनुत्तीर्ण होता रहे, फेल होता रहे, तो बार-बार उसी क्लास में भेज दिया जाता है। वैसे मृत्यु एक महाशिक्षण है। उसके द्वारा जब तक तुम अमृत को न पहचान लोगे, तब तक बार-बार लौटते रहोगे।
एक संगीतज्ञ गीत गा रहा था। हाल बार-बार कहता, फिर से! वन्स मोर! सारी भीड़ जोर से कहती, फिर से! वह फिर गाता। ऐसा होते-होते आठवीं बार आ गयी। उसका गला तक रुंधने लगा, थक गया। उसने कहा, भाइयो, बहुत-बहुत धन्यवाद कि तुमने इतनी बार मेरे गीत की मांग की। लेकिन अब मैं थक गया हूं। आखिरी बार गाए देता हूं। फिर मत कहना। फिर और दुबारा मत कहना वन्स मोर! एक आदमी ने खड़े हो कर कहा कि कौन तुम्हारे गीत के लिए कह रहा है वन्स मोर। जब तक तुम ठीक से न गाओगे तब तक हम कहते ही रहेंगे। तुम बिल्कुल गलत गा रहे हो। और जब तक तुम रास्ते पर न आओगे तब तक हम बार-बार मांग करते रहेंगे।
आवागमन परमात्मा की बार-बार तुमसे मांग है कि ठीक से गाओ। वह प्रशिक्षण का हिस्सा है। उससे गुजरना जरूरी है। जो समझ जाता है, वह मृत्यु से अपना तादात्म्य तोड़ लेता है।
नानक कहते हैं, "जिनके मन में राम बस गया, न वे मरते हैं और न ठगे जाते हैं।"
मरते नहीं। ठगे भी नहीं जाते हैं। और तुम कितनी ही होशियारी करो, तुम कितनी ही कुशलता करो, तुम ठगे ही जाओगे। क्योंकि कोई दूसरा थोड़े ही तुम्हें ठग रहा है! तुम खुद ही ठग रहे हो। कोई दूसरा थोड़े ही तुम्हें लूट रहा है। कोई दूसरा तुम्हें लूट ही नहीं सकता। तुम गलत से अपने को जोड़े हो, इसलिए दूसरा लूट पाता है। और तुम्हारी दृष्टि ऐसी भ्रांति से भरी है कि उस भ्रांति के कारण तुम्हें चारों तरफ दुश्मन दिखायी पड़ते हैं। हर एक तुम्हें लूटने को तैयार है।
रामकृष्ण कहते थे कि एक चील एक मांस के टुकड़े को ले कर उड़ी। बहुत सी चीलों ने उसका पीछा किया। चीलें उसे चोंच मारने लगीं। उस पर झपट्टे मारने लगीं। वह भी अपने मांस के टुकड़े को बचाने के लिए बड़ी कोशिश करने लगी। लेकिन चीलों की बड़ी भीड़ थी। पंख उसके लहूलुहान हो गए। और सभी उसके मांस को छीन लेने की कोशिश में थीं। अंततः उसने मांस का टुकड़ा छोड़ दिया। मांस का टुकड़ा छोड़ते ही सारी चीलें उसे छोड़ कर चली गयीं। वह अपने वृक्ष पर बैठ कर विश्राम करने लगी। रामकृष्ण कहते थे, जिस दिन मैंने उसे देखा, मैंने भी मांस का टुकड़ा छोड़ दिया। फिर मेरा कोई दुश्मन न रहा। दुश्मन मेरा कोई था नहीं। वह मांस का टुकड़ा ही उपद्रव था।
तुम जब तक धन को पकड़े हो, तब तक कोई दुश्मन होगा। जब तक तुम पद को पकड़े हो, तब तक कोई दुश्मन होगा। दुश्मन नहीं है असली में, तुम्हारी पकड़ में कहीं भूल है। और जब तक तुम कुछ पकड़े हो, तुम्हें हर एक--मित्र भी--दुश्मन जैसा दिखायी पड़ेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बहुत नाराज थी। और अनर्गल बक रही थी। मुल्ला सीधा-सादा, अपने पैंट के दोनों खीसों में हाथ डाले खड़ा था, जैसा कि अक्सर पति खड़े रहते हैं! पत्नी ने अंततः काफी गाली-गलौज करने के बाद कहा कि बंद करो यह! क्यों अपने खीसे में मुट्ठियां ताने मेरी तरफ खड़े हो?
खीसे में मुट्ठियां ताने? वह बेचारा सिर्फ अपने बचाव के लिए चुपचाप खड़ा है। लेकिन अगर तुम नाराज हो तो सभी मुट्ठियां तनी हुई मालूम पड़ती हैं। खीसे में पड़े हुए हाथ भी मुट्ठियों जैसे दिखायी पड़ते हैं। तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारी सृष्टि बनती है। तुम जैसा देखते हो... और मांस का टुकड़ा तुम पकड़े हो, तो तुम ठगे जाओगे। मांस का टुकड़ा यानी शरीर। जब तक तुम शरीर को पकड़े हो, तब तक ठगे जाओगे। तब तक बचने का कोई उपाय नहीं। कितनी ही कुशलता करो।
कबीर कहते हैं, काहे की कुशलात, कर दीपक कुंभे पड़े।
तुम्हारी कुशलता का कोई भी मूल्य नहीं। दो कौड़ी की तुम्हारी कुशलता नहीं है। क्योंकि तुम कहते हो हाथ में दीया है, फिर भी कुएं में गिरते हो।

कर दीपक कुंभे पड़े--कैसी तुम्हारी कुशलता है कि चेतना का दीपक है, गिरते कुएं में हो?
नहीं, ठगे ही जाओगे। क्योंकि तुम ठगे जाने की ही तैयारी कर रहे हो। तुम गलत से संबंध जोड़ते हो। जिसने गलत से संबंध जोड़ा, उसने अपना ही रास्ता बना दिया कि ठगा जाए। मांस के टुकड़े को पकड़ते हो, फिर चीलें झपटेंगी। "जिसके मन में राम बसे हैं, न वह मरता न ठगा जाता। यह जो लोक है--कृपा
का लोक--कृपा का खंड, वहां अनेक लोकों के भक्त बसते हैं। सच्चे नाम को मन में बसाए हुए वे आनंद मनाते हैं।"
सच खंडि वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल।।
तिथै खंड मंडल बरमंड। जे को कथै त अंत न अंत।।
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार।।
वेखै विगसे करि वीचारु। नानक कथना करड़ा सारु।।
ये चार खंड यात्रा के, मार्ग के। धर्म--प्रकृति। ज्ञान--होश, जागरण उस प्रकृति का। जो है, उसके प्रति जागना। लज्जा--अपनी स्थिति समझ कर विनम्र हो जाना, असहाय, शून्य। और कृपा--उसकी अनुकंपा को अपने भीतर उतरने देना।
बाधा न खड़ी करना। ये चार यात्रा के खंड, पांचवां मंजिल है। वह है सत्य। "सत्य-खंड में निराकार परमात्मा का निवास है।"
वह मंजिल है।
"वह सृष्टि रचना कर उसको अपनी दृष्टि से निहाल करता रहता है।"
उसे मार्ग के खंडों में बांटने की कोई जरूरत नहीं है। यहां मार्ग समाप्त हो जाता है। जब अनुकंपा तुममें उसकी पूरी भर जाती है, तुम पूरे धुल जाते हो, तुम्हारे पास अपनी कुछ भी स्थिति नहीं बचती। तुम बह ही जाते हो पूरे। तुम खोजते हो और पाते नहीं कि मैं कहां हूं। तुम्हें कुछ पता नहीं चलता कि मैं कहां खो गया हूं। तुम्हें अपना ही कोई भान नहीं होता है कि मैं कहां हूं। बोध पूरा होता है और अपना कोई पता नहीं चलता है। खोजते हो, खोजते हो, और पाते हो कि वही है, मैं नहीं हूं। ऐसी प्रतीति जहां समग्र हो जाती है। जहां तुम निमित्त मात्र भी नहीं रह जाते। अनुकंपा के खंड में तुम निमित्त मात्र रहोगे--बांसुरी। गीत उसके। अब बांसुरी भी नहीं रह जाती है। अब तुम बिल्कुल नहीं हो, वही है। अब यह कहने वाला भी कोई नहीं बचता है कि तू ही है। क्योंकि जब तक तुम कहते हो तू ही है, तब तक थोड़े-बहुत तुम बचे हो। अन्यथा कौन कहेगा?
"यह सत्य-खंड है। यहां निराकार परमात्मा का निवास है। वह सृष्टि रचना
कर उसको अपनी दृष्टि से निहाल करता है। उसमें खंड, मंडल और ब्रह्मांड हैं, जिनके वर्णन का अंत नहीं है। वहां लोक के बाद लोक हैं। सृष्टि के बाद सृष्टियां हैं। उसका जो हुक्म है, उसके अनुसार सारा काम चलता है। उसका विचार कर वह देखता है और प्रसन्न होता है। नानक कहते हैं, उसका वर्णन करना लोहे के चने चबाने जैसा है।"
एक अति महत्वपूर्ण बात; उसे गांठ बांध कर रख लेना। नानक उस पर बार-बार जोर देते हैं। और वह यह है कि परमात्मा सृष्टि को बना कर पृथक नहीं हो गया है। परमात्मा सृष्टि को बना कर विमुख नहीं हो गया है। परमात्मा सृष्टि को बना कर विश्राम में नहीं चला गया है। परमात्मा सृष्टि को बना कर भूल नहीं गया है। परमात्मा सृष्टि को प्रतिपल बना रहा है। बनाने की घटना कभी घटी और बंद नहीं हो गयी है, सृजन शाश्वत चल रहा है। असल में सृजन परमात्मा के होने का ढंग है। वह प्रतिपल बना रहा है। वह बनाता ही चला जा रहा है। और वह दूर नहीं हो गया है। वह जो बनाता है, उसमें उसका रस है।
अब यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। साधक को हम कहते हैं, तुम अनासक्त हो जाओ तो परमात्मा मिलेगा। लेकिन परमात्मा स्वयं अनासक्त नहीं है। अनासक्त हो तो सृष्टि का क्रम टूट जाए। सब रुक जाए। क्यों जीवन चले? हम साधक को कहते हैं, तुम अनासक्त हो जाओ। क्योंकि जब तक तुम आसक्त हो, तुम परमात्मा को न जान सकोगे। जैसे ही तुम परमात्मा के साथ एक हो जाते हो, तब एक नयी आसक्ति, एक नए रस का उदय होता है। जहां विराग और राग में कोई भेद नहीं है। जहां अनासक्ति और आसक्ति में कोई भेद नहीं है, जहां सारे भेद गिर जाते हैं।

परमात्मा बनाता है। परिपूर्ण आसक्त, फिर भी अनासक्त। इसे तुम कैसे समझोगे? क्योंकि यह कठिन है। इसलिए नानक कहते हैं, लोहे के चने चबाने जैसा है। परमात्मा बना रहा है, इसलिए उसका लगाव तो है ही। लेकिन उस लगाव में वैसा अंधापन नहीं है जैसा हमारे लगाव में होता है। उस लगाव में पजेसिवनेस नहीं है। उस लगाव में मालकियत का दावा नहीं है। वह बनाता है और तुम्हें स्वतंत्र छोड़ता है। इसलिए तो तुम भटक सकते हो, पाप कर सकते हो, बुराई की तरफ जा सकते हो। वह तुम्हें खींच नहीं लेता बुराई की तरफ से। उसका लगाव है, लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता में वह बाधा नहीं डालता है। तुम परम स्वतंत्र हो। ऐसा भी नहीं है कि वह तुम्हारी तरफ विमुख है। यही जरा कठिनाई है। समझो! एक मां है जो अपने बेटे में लगाव रखती है। लगाव रखती है तो स्वतंत्रता को मार डालती है। क्योंकि वह कहती है, वहां मत जाओ, यह मत करो, ऐसे उठो, ऐसे बैठो, क्योंकि उसका लगाव है। वह उसकी गर्दन दबाती जाएगी। प्रेम में वह उसको मिटा डालेगी। वह उसे इतनी भी स्वतंत्रता न देगी कि वह अपने पैरों पर खड़ा होना सीख जाए। वह इसे इतने भी दूर न जाने देगी जहां वह जीवन का खुद अनुभव ले सके। वह उस बच्चे को पंगु कर देगी। इस मां के रहते वह युवक कभी भी प्रौढ़ न हो पाएगा। और अगर यह मां चली भी जाए दुनिया से, तो भी उस युवक की प्रौढ़ता में बड़ी कठिनाइयां होंगी। वह किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में न गिर पाएगा। कठिन होगा। क्योंकि मां उसको पीछे से खींचेगी। वह मां के अतिरिक्त किसी को भी प्रेम करने में अपराध अनुभव करेगा।
इस मां में लगाव तो था, लेकिन लगाव अंधा था, आंख वाला न था। क्योंकि आंख वाला लगाव तुम्हारी सुरक्षा भी करता है, लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता का अंत नहीं करेगा। सुरक्षा ही इसलिए करता है ताकि तुम स्वतंत्र हो सको। और ये दोनों बड़ी विपरीत बातें हैं। तुम्हें रोकता भी इसलिए है ताकि तुम जाने के योग्य हो सको। तुम्हें मजबूत करता है। तुम्हें धीरे-धीरे सहारा देता है। लेकिन सहारा इसीलिए देता है ताकि कल तुम अपने सहारे खड़े हो सको। सहारे को पंगुता नहीं बनाता।
फिर एक दूसरी मां है। जिसको अगर हम समझाएं कि यह तो खतरनाक है तुम्हारा लगाव, तो वह लगाव अलग कर लेती है। लेकिन लगाव अलग करते ही वह स्वच्छंदता दे देती है। स्वतंत्रता नहीं, स्वच्छंदता। अब लड़का जहां जाए, जो करे। शराब पीए तो क्या कर सकते हैं? स्वतंत्रता देनी है। वेश्या के घर जाए, तो स्वतंत्रता देनी है। जुआ खेले, चोरी करे, हत्या करे; स्वतंत्रता देनी है। यह मां विमुख हो गयी। इसने पीठ फेर ली। पहले लगाव था, वह अंधा था। अब उपेक्षा है, जो अंधी है। और संतुलन दोनों के बीच में है।
वही संतुलन परमात्मा का स्वभाव है। उसकी सृष्टि की तरफ वही उसकी दृष्टि है। तुम्हारी सुरक्षा करता है ताकि तुम स्वतंत्र हो सको। तुम्हें स्वतंत्रता देता है ताकि तुम एक दिन समर्पण कर सको। ये बड़ी विपरीत बातें हैं। तुम्हें मौका देता है ताकि तुम दूर जाओ। क्योंकि तुम दूर न जाओगे तो तुम पास कैसे आ सकोगे? तुम्हें मौका देता है ताकि तुम थोड़ा भटको। क्योंकि तुम भटकोगे नहीं तो तुम प्रौढ़ कैसे होओगे? तुम्हें मौका देता है ताकि तुम गिरो। क्योंकि तुम गिरोगे नहीं तो तुम सम्हलोगे कैसे?
और फिर भी तुम्हारी सुरक्षा करता है। और फिर भी तुम्हारा पीछा करता है। सब तरफ उसकी नजर है। सब तरफ उसकी छाया है। सब तरफ से वह तुम्हें घेरे हुए है। तुम कितने ही दूर चले जाओ तो भी वह तुम्हारे पास बना रहता है। ताकि जब भी तुम्हें जरूरत हो, तुम मुड़ो, और तुम उसे उपलब्ध कर लो। जब जरा गर्दन झुकाई... जब भी तुमको जरा सी गर्दन झुकाने की याद आ जाए, तभी तुम उसे देख ले सकते हो।
दिल के आईने में है तस्वीरे-यार
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।
तुम कितने ही दूर जाओ, वह तुम्हारे पीछे-पीछे चलता है। तुम्हें बाधा
भी नहीं डालता, तुम्हें रोकता भी नहीं। तुमसे कहता भी नहीं कि यह गलत है, यहां मत जाओ। तुम्हें गलत तक होने देता है। फिर भी अपनी ऊर्जा को तुमसे खींच नहीं लेता। और प्रतीक्षा करता है, और बाट जोहता है, कि तुम लौट आओगे।
जब तुम लौट आते हो, तब प्रसन्न होता है।

नानक कहते हैं, "उसका विचार कर वह देखता है और प्रसन्न होता है। उसका वर्णन करना लोहे के चने चबाने जैसा है।"
निश्चित ही! क्योंकि वहां सभी विपरीत विश्राम पाते हैं। वहां सभी कंट्राडिक्शंस एक हो जाते हैं। हम एक में से कुछ भी कर सकते हैं। मैंने बहुत लोगों के जीवन को अध्ययन कर के नतीजा पाया कि हम कोई भी एक अति कर सकते हैं। और हर अति खतरनाक है।
एक पति है; वह अतिशय पजेसिव है। अपनी पत्नी के पीछे वह छाया की तरह नहीं, भूत-प्रेत की तरह लगे हैं। पत्नी किससे बोलती है? हंसती तो नहीं है किसी से? कहीं जाती तो नहीं? दफ्तर में भी वह यही सोच रहे हैं। बीच-बीच में घर आ जाते हैं। पत्नी अगर किसी के साथ हंस भी ले, तो उनके लिए भारी कष्ट हो जाता है। वह यह सोच ही नहीं सकते कि मेरी पत्नी और मेरे बिना कैसे हंस सकती है? यह असंभव है। वह तो मान कर यही चलते हैं--जैसे कालिदास वर्णन करते हैं-- अगर वे गए पंद्रह दिन के लिए बाहर, पत्नी को सूख कर हड्डी हो जाना चाहिए उनकी याद में। और मेघों से संदेश भिजवाना चाहिए।
उनका पत्नी के चारों तरफ यह जो घेराव है, इस घेराव ने पत्नी को उनके प्रेम से नहीं भरा है, बल्कि बड़ी तीव्र ऊब और सूक्ष्म घृणा से भर दिया है। और पत्नी उनके प्रेम में थी। लेकिन प्रेम मर जाता है, जब स्वतंत्रता मरती है। उन दोनों का प्रेम-विवाह हुआ था। मैं उन्हें भलीभांति अध्ययन करता रहा हूं। दोनों बड़े प्रेम में थे एक-दूसरे के। लेकिन जब प्रेम पति का इतना अतिशय हो गया कि गले का हार न रहा और फंदा बनने लगा। कभी भी हार फंदा बन सकता है, ध्यान रखना। हीरे-जवाहरात का हार भी फंदा बन सकता है, फांसी लग सकती है। जब फंदा सिकुड़ कर फांसी बनने लगा, तो पत्नी का प्रेम शून्य होता गया। पत्नी स्वतंत्र होने की आकांक्षा करने लगी। जितनी पत्नी ने स्वतंत्र होने की आकांक्षा की, पति उतना पागल हो कर चारों तरफ से घेरे बांधने लगा।
मैंने पति को बहुत समझाया कि यह पागलपन है। तुम प्रेम को मार ही डाल रहे हो। प्रेम को भी स्वतंत्रता चाहिए, श्वास लेने का मौका चाहिए। प्रेम को भी थोड़ी दूरी चाहिए। थोड़ा अकेलापन चाहिए। प्रेम को भी थोड़ी निजता चाहिए। तुम इतने ज्यादा पीछे मत पड़ो। तुम अपने ही हाथ से आत्मघात कर रहे हो।
बहुत समझाने से समझ में आया। जब से उनकी समझ में आया, तब से उन्होंने उपेक्षा शुरू कर दी। अब पत्नी अगर किसी दूसरे पुरुष के साथ सो भी रही है, तो उन्हें मतलब नहीं। अब वे कहते हैं कि मैंने पजेसन का भाव ही छोड़ दिया। अब मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। अब जो उसे करना हो, करे। अब मेरा कोई नाता ही नहीं है उससे। वे एक ही नाता जानते हैं--फंदे का।
स्वाभाविक है मनुष्य के लिए यही। या तो हम पूरी स्वतंत्रता दे देते हैं, जो स्वच्छंदता बन जाए; जैसा पश्चिम में हो रहा है। या हम पूरी परतंत्रता खड़ी कर देते हैं, जो कि मौत बन जाए; जैसा कि पूर्व में हुआ है। परमात्मा के संबंध में कहना लोहे के चने चबाने जैसा ही कठिन है। क्योंकि वह दोनों है। वह तुम्हें पूरी स्वतंत्रता देता है। और प्रेम इस स्वतंत्रता के कारण रत्ती भर कम नहीं होता। वह तुम्हें मुक्त करता है। और प्रेम वही, जो मुक्त करे। उसके प्रेम में और उसकी स्वतंत्रता में, तुम्हें स्वतंत्रता देने के भाव में, कहीं कोई विरोधाभास नहीं है। वह तुम्हें रोकता भी नहीं। तुम बुरे की तरफ जाते हो तब भी वह प्रतीक्षा करता है कि तुम लौट आओगे। जब तुम लौट आते हो, तब वह प्रसन्न होता है।
नानक कहते हैं, वेखै विगसे करि वीचारु।
वह तुम्हारे संबंध में चिंता करता है। तुम्हारे संबंध में विचार करता है। वह तुम्हारे जीवन में जब फूल खिलते हैं तो प्रसन्न होता है। वह निरपेक्ष नहीं खड़ा है। उसकी अनासक्ति उसके बड़े गहरे आसक्त-रस से भरी है। वह दूर है और फिर भी पास है। उसने तुम्हें छोड़ा है स्वतंत्रता के लिए, फिर भी कभी छोड़ा नहीं है। फिर भी वह सदा साथ खड़ा है। तुम्हारा दुख, तुम्हारी पीड़ा, उसे छूती है। तुम्हारी प्रसन्नता, तुम्हारा आनंद भी उसे आह्लादित करता है। तुम इस जगत में अजनबी नहीं हो। यह तुम्हारा घर है। इस जगत में तुम अकेले नहीं हो। परमात्मा तुम्हारे साथ है।

भक्त के लिए यह आश्वासन बड़ा गहरा है। नहीं तो कुछ भी तो पता नहीं चलता। अगर तुम परमात्मा के ख्याल को छोड़ दो, तो जगत तटस्थ हो जाता है। तुम क्या करते हो, जगत को कुछ लेना-देना नहीं। जिंदा हो कि मरते हो, कुछ मतलब नहीं। तूफान आए, मिट जाओ, कुछ मतलब नहीं। कोई है ही नहीं वहां। तो तुम एक संयोग हो।
लेकिन भक्त के लिए बड़ा आश्वासन है। वह संयोग नहीं है। परमात्मा प्रसन्न होगा। घर लौट कर कोई है, जो उसकी प्रतीक्षा करता है। घर को खाली नहीं पाया जाएगा। जब तुम लौटोगे स्वभाव में, तो तुम परमात्मा को वहां प्रतीक्षा करते पाओगे। न केवल प्रतीक्षा करते, बल्कि तुम्हारे लौट आने से समारोह, उत्सव होगा।
जीसस की कहानी समझ लेने जैसी है। जीसस ने बार-बार कहानी दोहराई है कि
एक धनी बाप के दो बेटे थे। एक बेटा बिगड़ गया। जवान हुआ, तो उसने अपनी आधी संपत्ति मांग ली। संपत्ति ले कर वह शहर चला गया। क्योंकि गांव में खर्च करने के उपाय भी न थे। न जुआघर थे, न शराबगृह था, न वेश्याएं थीं। शहर में उसने सब बरबाद कर दिया। सड़क का भिखारी हो गया। बाप को खबर मिलती रही। बाप दुखी और पीड़ित भी हुआ, क्योंकि यह नहीं सोचा था। लेकिन बाप जानता था कि जबर्दस्ती तो की भी नहीं जा सकती। जब वह समझेगा तब लौट आएगा। उसकी समझ ही लौटा सकती है। बाप प्रतीक्षा कर सकता है, आग्रह नहीं कर सकता है। आग्रह खतरनाक है। आग्रह और दूर ले जाएगा।
बड़ा बेटा घर पर रहा। जो संपत्ति उसे मिली थी उसने दुगुनी कर दी। वह खेत में काम करता, बगीचों में अंगूर लगाता, बड़ी मेहनत करता। सुबह से सांझ तक जुटा रहता।
फिर एक दिन भिखारी बेटे को ख्याल आया कि ऐसे तो मैं भीख मांग-मांग कर
मर जाऊंगा। मैं घर लौट सकता हूं। मेरा पिता अभी भी जिंदा है। और पिता के प्रेम पर मैं भरोसा कर सकता हूं। और जिसने मुझे इतनी स्वतंत्रता दी, और जिसने कभी यह भी न कहा, यह गलत है मत करो; जिसने मुझे मौका दिया ताकि मैं खुद ही जान लूं कि क्या गलत है, उसकी करुणा मुझे इनकार न करेगी, स्वीकार कर लेगी। उसे अपने बाप पर भरोसा है।
उसने एक दिन खबर दी कि मैं वापस आ रहा हूं। बाप ने समारोह आयोजन किया।
जो स्वस्थ से स्वस्थ भेड़ें थीं, उसने कटवायीं। सुंदर सुस्वादु भोजन बनवाए। बेटा घर आ रहा है! गांव में फूल-वंदनवार लगवाए। सारे गांव के मित्रों को आमंत्रित किया कि मेरा बेटा घर आ रहा है।
बड़े बेटे को खेत में खबर लगी। किसी ने बताया कि हद हो गयी। तुम तो जीवन
भर इस बूढ़े की सेवा करते रहे, कभी उसके विपरीत न गए, कभी तुमने उसकी आज्ञा का उल्लंघन न किया, धन को तुमने दुगुना कर दिया, लेकिन तुम्हारे स्वागत में कभी भी कोई समारोह न हुआ। कभी भेड़ें न काटी गयीं, कभी सुस्वादु भोजन न बने, कभी गांव निमंत्रित न किया गया। और आज वह भ्रष्ट लड़का वापस लौट रहा है, जिसने सब बरबाद कर दिया वेश्याओं में, शराबगृह में, जुआघरों में, उसके स्वागत का आयोजन हो रहा है! यह अन्याय है।
बड़े बेटे को भी लगा कि यह अन्याय है। वह उदास और दुखी घर वापस लौटा। यह स्वागत-समारोह देख कर, जलते दीए देख कर, फूल लगे देख कर, उसकी छाती पर बड़ा भारी बोझ हो गया। वह जा कर अपने बाप के पास पहुंचा। और उसने कहा, यह अन्याय है। मैं तुम्हारी सेवा कर रहा हूं। मेरे लिए कभी कोई वंदनवार न लगे, बैंड-बाजे न बजे। और वह भ्रष्ट वापस लौट रहा है, उसके स्वागत की ये तैयारियां हैं! मैं अपनी आंखों पर भरोसा नहीं कर सकता।
बाप ने कहा, तुम मेरे पास ही हो। तुम कभी बिगड़े ही न। तुम कभी गलत रास्ते पर न गए। तुम्हारे स्वागत का कोई सवाल नहीं उठता। तुम मेरे पास ही हो। हर घड़ी तुम्हारा स्वागत है। तुम मेरे हृदय के करीब हो। लेकिन जो बिगड़ गया, भ्रष्ट हो गया, जिसके लिए मैंने बहुत चिंताएं कीं--तुम्हारे लिए कभी चिंता का कोई कारण न रहा, तुमसे मैं सदा प्रसन्न हूं, इसलिए अतिरिक्त प्रसन्नता की कोई भी जरूरत नहीं है--और जिसके लिए मैं चिंतित हुआ, रात सो न सका, वह वापस लौट रहा है। उसको स्वागत की जरूरत है।
जब भूला-भटका वापस आता है तो समारोह की जरूरत होती है। जीसस कहते थे, पुण्यात्मा, साधु और संत बड़े बेटे की भांति हैं। जो भटक गए हैं, दूर निकल

गए हैं, पापी हैं, अपराधी हैं, वे छोटे बेटे की तरह। और जीसस ने एक बड़ा अदभुत सूत्रपात किया। और यहीं यहूदी धर्म से उनका विरोध हो गया। क्योंकि यहूदी मानते थे, जिसने गलती की है, परमात्मा उसे दंड देगा। और जीसस ने कहा, वह उसका स्वागत करेगा, क्योंकि उसका प्रेम है। तुम कितना ही गलत करो, तुम उसके प्रेम को नष्ट नहीं कर सकते हो। तुम कितने ही दूर जाओ, तुम उसके हृदय से दूर नहीं जा सकते हो। तुम पीठ कर सकते हो, वह पीठ नहीं करेगा। वह पिता है।
अस्तित्व से हमारा एक गहन संबंध है। और अस्तित्व प्रसन्न होगा। हिंदू
इस बात को बहुत प्राचीन समय से जानते रहे। हमने तो कहा है, जब बुद्धत्व को कोई उपलब्ध होता है, तो असमय में फूल खिल जाते हैं। जहां से बुद्ध निकलते हैं, वहां असमय में--अभी फूल खिलने का मौका न था--और फूल खिल जाते हैं। क्योंकि अस्तित्व प्रसन्न होता है।
नानक वही कह रहे हैं, वेखै विगसे करि वीचारु।
और बड़ा प्रसन्न होता है परमात्मा, जब कोई लौटता है। स्वतंत्रता और प्रेम का संयोग! तुम कुछ भी करो, तुम उसे नाराज न कर सकोगे। उसका लगाव तुम्हारे सब करने से गहरा है। लेकिन उसकी आसक्ति हमारी आसक्ति नहीं है, कि तुम्हारी गर्दन को पकड़ ले, कि तुम्हारे लिए बंधन बन जाए। परमात्मा कारागृह नहीं है, परमात्मा प्रेम है। प्रेम धन स्वतंत्रता। बड़ी कठिन बात है कहनी, क्योंकि दोनों विपरीत बातें हैं। या तो तुम प्रेम करते हो तो तुम स्वतंत्रता छीन लेते हो, तुम स्वतंत्रता देते हो तो तुम प्रेम को विदा कर देते हो। आसक्त और अनासक्त दोनों; राग और विराग दोनों; जहां सभी विपरीत संयुक्त हो जाते हैं, वह महासंगम है।
इसलिए नानक कहते हैं, नानक कथना करड़ा सारु।
"उसके संबंध में कुछ भी कहना लोहे के चने चबाने जैसा है।"
आज इतना ही।

एक ओंकार सतनाम
बीसवां प्रवचन

नानक नदरी नदरि निहाल

पउड़ीः 38
जतु पहारा धीरजु सुनिआरु। अहरणि मति वेदु हथीआरु।।
भउ खला अगनि तपताउ। भांडा भाउ अमृत तितु ढालि।।
घड़ीए सबदु सची टकसालु। जिन कउ नदरि करमु तिन कार।।
"नानक" नदरी नदरि निहाल।।

सलोकुः
पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।
दिवस राति दुइ दाई दाइआ खेले सगलु जगतु।।
चंगिआइआ बुरिआइआ वाचै धरमु हदूरि।
करमी आपा आपणी के नेड़े के दूरि।।
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि।
"नानक" ते मुख उजले केती छूटी नालि।।

जतु पहारा धीरजु सुनिआरु। अहरणि मति वेदु हथीआरु।।
भउ खला अगनि तपताउ। भांडा भाउ अमृत तितु ढालि।।
घड़ीए सबदु सची टकसालु। जिन कउ नदरि करमु तिन कार।।
"नानक" नदरी नदरि निहाल।।
एक-एक शब्द समझने जैसा हैः "संयम भट्टी है, धीरज सुनार है, बुद्धि निहाई है, और ज्ञान हथौड़ा है। भय ही धौंकनी है और तपस्या अग्नि है। भाव ही पात्र है, जिसमें अमृत ढलता है। सत्य के टकसाल में शब्द का सिक्का गढ़ा जाता है। जिन पर उसकी कृपा-दृष्टि होती, वे ही यह कर पाते हैं। नानक कहते हैं, वे उस कृपा-दृष्टि से निहाल हो उठते हैं।"
संयम का अर्थ है, जीवन को दिशा देना, जीवन को मार्ग देना, जीवन को लक्ष्य देना, मंजिल देना। बिना संयम के आदमी ऐसा है, जो सभी दिशाओं में भाग रहा हो। जिसे ठीक पता न हो कहां जाना है, जिसे ठीक पता न हो क्या पाना है, जिसका कोई लक्ष्य न हो। बिना संयम का जीवन ऐसा है, जैसे अंधेरे में अंधा आदमी तीर को चला दे। संयम का जीवन है लक्ष्य का ठीक बोध, निशाना और तीर को उसी दिशा में छोड़ना है जहां लक्ष्य है। अगर तुम कहीं भी तीर को छोड़ दोगे, अगर किसी भी दिशा में छोड़ दोगे अंधेरे में और अंधे की भांति, कोई संभावना नहीं है कि तुम किसी स्थिति को उपलब्ध हो पाओ। कोई सिद्धि संभव नहीं है बिना संयम के।
तो संयम का पहला अर्थ तो यह है, एक दिशा, एक गंतव्य। गंतव्य जैसे ही तुमने पकड़ा, उस गंतव्य के विपरीत जो भी है, उसे छोड़ने की सामर्थ्य इकट्ठी करनी पड़ेगी। जीवन में सभी कुछ नहीं पाया जा सकता। अगर तुम एक चीज पाना चाहते हो, तो हजार चीज छोड़नी पड़ेंगी। जिसने सभी को पाने की कोशिश की, वह बिना कुछ पाए समाप्त हो जाता है। पाने का अर्थ ही है कि तुमने चुनाव किया। तुम मुझे सुनने चले आए हो। तुम्हें बहुत कुछ संयम करना पड़ा है, इस चुनाव के लिए भी। कुछ काम अधूरा है, जो तुम घर पर छोड़ आए हो। इस समय का दूसरा उपयोग भी हो सकता था। तुम बाजार में धन कमा सकते थे। इस समय की उपयोगिता बहुत थी, लेकिन तुमने एक निश्चय किया है। तुम यहां चले आए हो। इसका अर्थ है, तुमने कुछ छोड़ा है। इस समय से जो-जो संभावनाएं थीं, वे सब तुमने छोड़ी हैं और एक संभावना को चुना है।
प्रत्येक क्षण की अनंत संभावनाएं हैं। एक-एक पल हजारों दिशाओं में ले
जा सकता है। जो आदमी वेश्या के घर गया है, वह मंदिर का त्याग कर के गया है।
वह मंदिर में भी जा सकता था। उसने संयम रखा है मंदिर न जाने का। जो मंदिर गया है, वह भी वेश्या के घर जा सकता था। उसने भी संयम रखा है, वेश्या के घर न जाने का। और हजार संभावनाएं थीं।

एक-एक कदम तुम उठाते हो, तब तुम हजारों कदम छोड़ते हो। जो चलता ही नहीं है, उसे ही संयम की जरूरत नहीं है। जो भी चलेगा, उसे तो बोधपूर्वक चुनाव करना होगा एक-एक कदम।
तो दिशा, मार्ग, लक्ष्य; और जब इन तीनों का तालमेल बैठ जाता है, तब तुम्हारे जीवन में संयम की उपलब्धि होती है। नानक कहते हैं, संयम भट्टी है, जिससे सोना निखरता है, कचरा जल जाता है। सचेतन रूप से लक्ष्य को चुन लेना; तुम्हारा जीवन तब तीर बन जाता है। तब तुम कहीं जा रहे हो। तुम ऐसे ही ठोकरें खा कर इस कोने से उस कोने नहीं गिर रहे हो। तुम ऐसे ही भीड़ के धक्के में कहीं नहीं चले जा रहे हो। तुम ऐसे ही वासनाओं के द्वारा कहीं भी नहीं ले जाए जा रहे हो।
और वासनाग्रस्त आदमी और संयमी आदमी का यही बुनियादी भेद है। वासनाग्रस्त हजार दिशाओं में एक साथ दौड़ता है। इसलिए वासनाग्रस्त धीरे- धीरे विक्षिप्त हो जाता है। हो ही जाएगा। जिसके जीवन में दिशा न हो वह पागल हो ही जाएगा। क्योंकि वह हजार काम साथ-साथ करना चाहता है। इधर बैठ कर भोजन करता है, वह भी पूरा नहीं कर पाता, तब इसके मन में दूकान चलती रहती है। दूकान पर बैठ कर वह हजार दूसरे काम मन में करता रहता है। उसके हजार हाथ होते, हजार पैर होते, हजार शरीर होते, तो तुम उसकी असली स्थिति देख पाते। वह हजार तरफ एक साथ चला गया होता। दुबारा उन हजार आदमियों का कभी मिलना भी नहीं होता।
पर यही भीतर स्थिति है। तुम्हारा मन तो बिना हाथ, बिना पैर के हजार दिशाओं में एक साथ चला जाता है। तुम इसलिए तो खंडित हो, टुकड़े-टुकड़े हो। और जब तक तुम अखंड न हो जाओ, तब तक प्रभु के चरणों में चढ़ने के योग्य न हो सकोगे। वहां तो अखंड ही चढ़ेगा।
इस अखंडता के कारण ही बहुत पुरानी प्रचलित धारणाएं हैं। इस्लाम में
एक धारणा है कि अगर कोई आदमी मर जाए, और मरने के पहले उसका हाथ टूट गया हो, या अंगुली कट गयी हो, या कोई आपरेशन हुआ हो, तो वह परमात्मा के चरणों में पहुंचने के योग्य न रह जाएगा। इसलिए मुसलमान डरता है आपरेशन कराने से। कराता भी है तो भी अपराध-भाव अनुभव करता है। क्योंकि वह परमात्मा के अयोग्य हुआ जा रहा है। पख्तूनिस्तान में पख्तून आपरेशन भी कराते हैं, तो अगर उनका हाथ कट गया तो हाथ को सम्हाल कर रखते हैं। मरते वक्त उनकी कब्र में उनके साथ वह हाथ रख दिया जाता है। ताकि परमात्मा के सामने जब वे जाएं तो अधूरे न हों।
यह बात तो बड़ी महत्वपूर्ण है। लेकिन इसका अर्थ बड़ा गलत ले लिया गया है। परमात्मा के सामने तुम अखंड ही पहुंच सकोगे। ऐसी धारणा हिंदुओं में भी है। तुमने कहानियां सुनी होंगी कि अगर यज्ञ में जब आदमी कि बलि दी जाती थी, तो सर्वांग आदमी खोजा जाता था। अगर जरा-सी अंगुली भी कटी हो तो यज्ञ में आहुति के योग्य न था।
एक राजकुमार का हाथ दब गया दरवाजे में। अंगुली टूट गयी। वह एक भक्त था। उसने अपने नौकर को पीछे मुड़ कर कहा, परमात्मा की कृपा है। अंगुली ही टूटी। फांसी भी लग सकती थी। उस नौकर ने कहा, यह जरा भक्ति मेरी समझ में नहीं आती। नौकर तर्कनिष्ठ था। बुद्धिशाली था। उसने कहा, यह जरा अतिशय है। यह आस्था मेरी पकड़ में नहीं आती। अंगुली कट गयी, चोट लगी है, खून बह रहा है। और तुम धन्यवाद दे रहे हो! यह धोखा है। यह तुम अपने को समझा रहे हो।
उस राजकुमार ने कहा, रुको, समय ही बताएगा। क्योंकि आस्था के लिए कोई
भी तर्क नहीं दिया जा सकता है। सिर्फ समय ही बताएगा। समय ही बता सकता है कि आस्थावान सही था या गलत था। कोई और दूसरा प्रमाण नहीं हो सकता।
शिकार को दोनों गए थे, मार्ग भटक गया। और जंगल में कुछ अवधूतों ने उन्हें पकड़ लिया, जो आदमी की बलि देना चाहते थे। जब उन्होंने राजकुमार को बलि के लिए खड़ा किया, तो देखा कि उसकी एक अंगुली कटी है। तो उन्होंने कहा, यह आदमी बेकार है, यह हमारे किसी काम का नहीं। नौकर सर्वांग था। उन्होंने उसकी बलि दे दी। जब उसकी बलि दी जा रही थी तब राजकुमार ने कहा, याद करो, मैंने कहा था कि परमात्मा की कृपा है, मेरी अंगुली टूट गयी। फांसी भी हो सकती थी। और समय ही बता सकता है कि मैं सही था या गलत था। और समय अब बता रहा है।

यज्ञ में भी पूरे आदमी की बलि दी जाती थी। मगर यह बात भी नासमझी की हो गयी। मतलब सिर्फ इतना है कि परमात्मा में वही आदमी प्रवेश पा सकता है जो अखंड हो। जिसका कोई भी टुक.ड़ा यहां-वहां न पड़ा हो। जो पूरा हो, इंटीग्रेटेड हो। पूरे तुम तभी होओगे... । अंगुली कटने से कोई अधूरा नहीं होता। सिर भी कट जाए तो भी कोई अधूरा नहीं होता। लेकिन चेतना जब कट जाती है, तब आदमी अधूरा होता है। तुम्हारा मन जब बिखर जाता है। और तुम्हारा मन ऐसे है जैसे पारा हो। पारे को छोड़ दो, हजार टुकड़े हो जाते हैं तत्क्षण। उन्हें पकड़ना मुश्किल हो जाएगा। तुम पकड़ने जाओगे, जिस पारे के बिंदु को पकड़ोगे, वही दस बिंदुओं में टूट जाएगा। तुम्हारा मन पारे की भांति है। कितने टुकड़े उसके हो गए हैं! और सब टुकड़े अलग-अलग जा रहे हैं। अगर तुम ठीक से अपने भीतर जागरूक हो जाओ, तो तुम देखोगे, एक मन उत्तर जा रहा है, एक पूरब जा रहा है, एक पश्चिम जा रहा है, एक दक्षिण जा रहा है। एक धन पाना चाहता है, एक धर्म पाना चाहता है। सब तरफ जा रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन पत्नी की तलाश में था। चाहता था, बहुत सुंदर स्त्री मिल जाए। लेकिन जब शादी कर के लौटा तो एक बहुत कुरूप स्त्री ले आया। तो मित्रों ने उससे पूछा कि यह तुमने क्या किया? उसने कहा, बड़ी मुसीबत हो गयी। जिस आदमी के घर में ल.ड़की को देखने गया था, उस आदमी ने मुझसे कहा कि मेरी चार लड़कियां हैं। पहली लड़की की उम्र पच्चीस साल है। और उसके लिए मैंने पच्चीस हजार रुपए की दहेज की व्यवस्था कर रखी है। वह लड़की बड़ी सुंदर थी। लेकिन मैंने उस आदमी से पूछा कि तुम्हारी और लड़कियों के संबंध में क्या खबर है? तो कहा, दूसरी लड़की की उम्र तीस साल है। उसके लिए मैंने तीस हजार की व्यवस्था कर रखी है। तीसरी की उम्र पैंतीस साल है, उसके लिए मैंने पैंतीस की व्यवस्था कर रखी है। और वह आदमी डरा चौथी की उम्र बताने में। लेकिन मैंने पूछा, तुम चौथी के संबंध में भी निःसंकोच कहो। उसने कहा, उसकी उम्र पचास साल है। और मैंने उसके लिए पचास हजार की व्यवस्था कर रखी है। तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे पता ही नहीं कैसे मेरे मुंह से निकल गया! मैंने उनसे पूछा, और लड़की नहीं है तुम्हारी, जिसकी उम्र साठ साल हो? और मैं पचास वर्ष की औरत से शादी कर के घर लौट आया। यह तो रास्ते में ही मुझे पता चला कि यह मैंने क्या कर लिया।
लेकिन मन बहुत खंड है। एक खंड सौंदर्य को मांगता है, एक खंड धन को मांगता है। इसलिए तुम अपने मन पर भरोसा मत करना। तुम कुछ लेने जाओगे, कुछ ले कर लौट आओगे। और तुम्हें बहुत बार ऐसा हुआ है कि बाजार तुम लेने कुछ गए थे और ले कर तुम कुछ लौट आए। इस पृथ्वी पर भी तुम कुछ और ही लेने आते हो, और कुछ और ही ले कर लौट जाते हो। तुम अपने मन पर भरोसा मत करना। तुमने अगर अपने मन का भरोसा किया, तो तुम कहीं के न रह जाओगे। मन का भरोसा अगर तुमने किया, तो तुम खंड-खंड हो जाओगे, पारे की तरह टूट जाओगे।
संयम का अर्थ है, मन का भरोसा छोड़ देना। मन की मत सुनना। मन के पीछे जो साक्षी छिपा है, उसकी सुनना। और साक्षी की तुम सुनोगे, तो तुम याद रख सकोगे कि तुम क्या पाने इस संसार में आए हो। क्या खरीदने आए हो बाजार में। वह याद तुम्हारा लक्ष्य बनेगी। तब तुम बहुत से रास्ते, जो टूटते हैं अलग-अलग दिशाओं में, उनको छोड़ने की सामर्थ्य रख सकोगे। संयम का अर्थ है, सार के लिए असार को छोड़ने की क्षमता। व्यर्थ के लिए, जिसका कोई मूल्य नहीं है, जिससे अंतिम कोई सिद्धि पूरी न होगी, जिससे जीवन में कोई आनंद, कोई शांति, कोई सत्य फलित न होगा।
उसका भी टेम्प्टेशन है, उसकी भी बड़ी उत्तेजना है। वह भी आकर्षित करता है। और तुम कई बार कहते हो कि क्या हर्जा है? रास्ते से उतर कर इस फूल को थोड़ा तोड़ लें, फिर रास्ते पर आ जाएंगे। लेकिन फूल को तोड़ने जब तुम उतरते हो, और चार कदम तुम फूल की तरफ चलते हो, तब और भी फूल हैं आगे। और तुम्हारी यात्रा बदल गयी। तुम जरा इंच भर यहां-वहां हटे, तुमने जरा-सा क्षणभंगुर का मोह अपने भीतर बचाया, तुम जरा झुके, कि तुम गए।
तुम्हारे भटकने के लिए हजार मार्ग हैं, और पहुंचने के लिए एक मार्ग है। इसलिए बड़ी याददाश्त की जरूरत है। निरंतर स्मरण की जरूरत है कि भटकने के लिए हजार उपाय हैं, पहुंचने के लिए एक उपाय है। भटकाने वाले करोड़ हैं, पहुंचाने वाला एक है। भटकना चाहो तो कोई अंत नहीं है। जन्मों-जन्मों तक

भटकते रहो। वही तुमने किया है, वही तुम अभी भी कर रहे हो। पहुंचना हो तो एक मार्ग है।
स्मरण रखना, सत्य अनंत नहीं हैं, सत्य एक है। असत्य अनंत हैं। उनकी कोई गिनती करनी संभव नहीं है। पाने योग्य एक है, छोड़ने योग्य अनंत हैं। तुमने अगर कभी बच्चों की पहेलियां देखी हैं--पजल्स, जिनमें बच्चों के लिए बहुत से रास्ते होते हैं। द्वार एक होता है निकलने का, या जाने का, भटकाने के लिए बहुत से रास्ते होते हैं। जो लगते बिल्कुल रास्ते जैसे हैं, लेकिन जब तुम चलते हो उन पर तो तुम पाते हो कि आगे आ कर दरवाजा बंद हो गया। कहीं निकल नहीं पाते।
जिंदगी भी वैसी ही एक पहेली है। और बच्चों की पहेलियां तो बहुत छोटी होती हैं। एक कागज पर बनी होती हैं। जिंदगी की पहेली अंतहीन है। न उसका आदि है, न कोई अंत है। बड़ी पहेली है। इसलिए तो गुरु का मूल्य है। क्योंकि पहेली इतनी बड़ी है, अगर तुम अपने ही सहारे खोजने की कोशिश किए और अगर तुम अपने ही हाथ से चलते रहे, तो तुम हजारों बार भटकोगे।
और तब खतरा यह है कि कहीं हजारों बार भटक कर तुम यह न समझ लो कि निकलने
का कोई रास्ता ही नहीं है। कहीं तुम निराश न हो जाओ, कहीं तुम हताश हो कर बैठ ही न जाओ। खतरा यह भी है कि कहीं भटकते-भटकते भटकना तुम्हारी आदत न हो जाए। क्योंकि जिस काम को हम बहुत बार करते हैं, उसे हम करने में कुशल हो जाते हैं। वह काम कोई भी हो। अगर तुम बहुत बार भटकते हो, तो तुम भटकने में कुशल हो जाते हो। तुम इतने कुशल हो जाओगे भटकने में कि ठीक रास्ता तुम्हारे सामने पड़ेगा तो तुम उससे बच ही जाओगे।
गुरु का अर्थ केवल इतना ही है कि जिसने द्वार पा लिया हो, और जो तुम्हें भटकने से रोके। और जो तुम से कहे कि वह रास्ता कितना ही प्रलोभन वाला दिखायी पड़ता हो, कहीं पहुंचाता नहीं है। आखिर में तुम दीवाल पाओगे, वहां कोई द्वार नहीं है। तुम धन को कितना ही पा लो, क्या पाओगे? आखिर में पाओगे, दीवाल खड़ी हो गयी। तुम पद को पा कर क्या पाओगे? आखिर में पाओगे, मार्ग खो गया। तुम कितनी ही प्रतिष्ठा इकट्ठी कर लो, क्या मिलेगा? जिनसे तुमने प्रतिष्ठा पायी उनके पास ही कुछ नहीं है। वे तुम्हें क्या दे सकेंगे? जिनका खुद का कोई मूल्य नहीं है, उनके मंतव्य का क्या मूल्य होगा? तुम किससे पूछते फिर रहे हो? तुम किसकी आंखों में प्रतिष्ठा पाने के लिए उत्सुक हो? जिनके पास अपनी आंखें नहीं हैं, जो अंधे हैं, उन्होंने अगर तुम्हारा सम्मान भी किया, तो सम्मान में क्या मूल्य होगा? वह पानी का बबूला है। मिलेगा भी नहीं और फूट जाएगा।
नानक कहते हैं, "संयम भट्टी है।"
भट्टी भी बड़ा विचार कर कहते हैं। क्योंकि संयम कोई फूलों की सेज नहीं
है, आग है। मन तो चाहेगा फूलों की सेज। और संयम तो आग है। इसलिए मन संयम से बचता है। मन असंयम के लिए सब तर्क खोजता है। और संयम के विरोध में तर्क खोजता है। मन असंयम को कहता है, भोग; संयम को कहता है, दुख। जब कि स्थिति बिल्कुल उलटी है।
भोग दुख है, क्योंकि जितना तुम भोगते हो, उतना ही तुम सड़ते हो। हर भोग तुम्हें विषाद में छोड़ जाता है। हर भोग के बाद तुम पाते हो कि तुम और भी टूट गए। तुम और भी विकृत हो गए। पहले ही तुम्हारे पास कुछ न था। जो था वह भी अब छीन लिया गया। हर भोग तुम्हें भिखारी बना जाता है। फिर भी मन कहता है, भोग लो, समय भागा जा रहा है। कौन जाने फिर समय मिले या न मिले! मन कहता है, भोग लो, यह जीवन का अवसर फिर आए न आए! लेकिन मन यह नहीं कहता कि संयम कर लो, यह जीवन का अवसर फिर आए न आए! संयम कर लो, जीवन भागा जा रहा है, समय प्रतिपल चुकता जा रहा है। नहीं, मन समझाता है संयम के विपरीत। क्योंकि मन हमेशा सुख की आकांक्षा करता है।
इसे थोड़ा गहरा समझ लें। मन सदा सुख की आकांक्षा करता है, लेकिन पाता सदा दुख है। ऐसा लगता है कि हर जगह दुख के दरवाजे पर सुख लिखा है। सुख देख कर मन प्रवेश कर जाता है और भीतर दुख पाता है। और ऐसा लगता है, हर दुख के दरवाजे पर जैसा सुख लिखा है, ऐसे ही हर सुख के दरवाजे पर दुख लिखा है। जिब्रान की एक बड़ी प्रीतिकर कहानी है कि संसार के जन्म के समय परमात्मा ने जब सब बनाया, तब उसने एक सौंदर्य की देवी और एक कुरूपता की

देवी भी बनायी। उन दोनों को उसने पृथ्वी पर भेजा। मार्ग लंबा है आकाश से पृथ्वी तक आने का। धूल से भर गए उनके वस्त्र, उनके शरीर--लंबी यात्रा थी।
तो वे दोनों एक झील के किनारे उतरीं, और स्नान करने को झील में उतरीं। दोनों ने अपने कपड़े बाहर रख दिए, झील के किनारे। कोई था भी नहीं आसपास। दोनों नग्न हो कर झील में स्नान किए। सौंदर्य की देवी तैरती हुई दूर तक निकल गयी। तभी कुरूपता की देवी बाहर निकली। उसने सौंदर्य की देवी के कपड़े पहन लिए और भाग खड़ी हुई। जब सौंदर्य की देवी ने पीछे लौट कर देखा तो वह बड़ी हैरान हुई। देखा कि कपड़े तो जा चुके। सुबह हुई जा रही थी, गांव के लोग जगने लगे। और आसपास लोगों के आने-जाने की चहलकदमी शुरू हो गयी। मजबूरी में सौंदर्य की देवी को कुरूपता के वस्त्र पहन लेने पड़े। और जिब्रान ने कहा है, तब से सौंदर्य की देवी कुरूपता की देवी के वस्त्र पहने घूम रही है। और कुरूपता की देवी सौंदर्य के वस्त्र पहने घूम रही है।
ऐसा ही कुछ हुआ है। दुख सुख के वस्त्र पहने हुए घूम रहा है। असत्य सत्य के वस्त्र पहने हुए घूम रहा है। और मन वहीं धोखा खा जाता है। वस्त्रों के भीतर विपरीत है।
संयम का अर्थ है, पहले तो तुम्हें दुख मालूम पड़ेगा। संयम का अर्थ है, पहले तो बड़ी कठिनाई मालूम पड़ेगी। सुबह पांच बजे ही उठना चाहो तो कितनी कठिनाई हो जाती है! सारा शरीर बगावत करता है, सारा मन इनकार करता है। कहता है, उठ लेना कल, जल्दी क्या है? आज बहुत सर्दी है, और सोना कितना सुखद है। सोने से कुछ मिला भी नहीं है। और सोना कितना सुखद है, मन समझाता है। तुम्हें उस सुख का कोई भी पता नहीं है, जो बाहर उग रहा है सूरज के रूप में। तुम्हें उस सुख का भी कोई पता नहीं है, जो बाहर पक्षी गीत गा रहे हैं, जो फूलों के खिलने में छिपा है, जो सुबह की ओस में छिपा है, जो सुबह के होने में छिपा है। क्योंकि सुबह से ज्यादा सुंदर फिर कोई क्षण नहीं है। क्योंकि उतना ताजा क्षण फिर कहां से पाओगे? जो सुबह को चूक गया, वह दिनभर ताजगी की तलाश करेगा लेकिन पा न सकेगा। लेकिन मन कहता है, थोड़ी देर और सो लो। थोड़ी देर और मूर्च्छित रह लो। थोड़ी देर और विश्राम कर लो, एक करवट और। और यह हर तरह की नींद के संबंध में मन की दलील है। जागना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है। सोना सुखद मालूम पड़ता है। और जागने से ही सुख मिलता है, महासुख मिलता है। सोने से आदमी सिर्फ खोता है।
इसलिए नानक कहते हैं, "संयम भट्टी है।"
सोना उससे निखरेगा। लेकिन आग से गुजरने की सामर्थ्य, तैयारी चाहिए। कष्ट से गुजर कर ही कोई महासुख तक पहुंचता है। दुख से तो तुम भी गुजरते हो, लेकिन बेमन से गुजरते हो। तब वह संयम नहीं है। जब तुम दुख के साथ होशपूर्वक गुजरते हो, जब तुम दुख को अंगीकार कर लेते हो, मार्ग मान लेते हो, और दुख को समझ लेते हो कि यह अनिवार्य भट्टी है जीवन की, जिससे गुजर कर मैं निखरूंगा, साफ होऊंगा, शुद्ध होऊंगा, तब दुख की पूरी कीमिया बदल जाती है।
दुख से तो सभी गुजरते हैं, संसारी भी और संन्यासी भी। संसारी बेमन से गुजरता है, रोता हुआ गुजरता है, चूक जाता है इसीलिए। जो जाग कर गुजरता है, स्वीकार के भाव से गुजरता है, दुख को अंगीकार कर लेता है, वह दुख को सीढ़ी बना लेता है। वह दुख के पार चला जाता है। संयम का अर्थ है, दुख को मार्ग बना लेना, साधन बना लेना। दुख से अभिभूत न होना, बल्कि दुख को सीढ़ी बना कर उसके पार उठ जाना। भट्टी जैसा है।
"और धीरज सुनार है।"
भट्टी में जब सोने को डाला जाता है, तो बड़ा धीरज रखना पड़ता है। जल्दबाजी वहां न चलेगी। जिसने जल्दी की, वह चूका। और जिसने जल्दी न की, वह हमेशा पहुंच गया है। जल्दी का अर्थ ही यह है कि तुमने दुख को स्वीकार नहीं किया। इसलिए तुम जल्दी कर रहे हो। तुमने दुख की महिमा नहीं जानी, कि दुख निखारता है, कि दुख संवारता है, कि दुख व्यर्थ से छुटकारा देता है। तुमने अभी दुख का मैत्रीभाव नहीं पहचाना। जिसने दुख में मित्र को देख लिया, वह संयमी है। और जिसने मित्र को देख लिया, जल्दी क्या है? वह धैर्य रख पाता है। और परमात्मा की उपलब्धि धैर्य से होती है। अनंत प्रतीक्षा चाहिए। यह कोई क्षुद्र नहीं है कि तुम अभी पा लो।

तुम बीज बोते हो। मौसमी फूलों के बीज दो सप्ताह, तीन सप्ताह में अंकुरित हो जाते हैं। छठवें सप्ताह में तो फूल लग जाते हैं। लेकिन बारहवां सप्ताह पूरे होते-होते पौधे नष्ट हो जाते हैं। फिर तुम देवदार के वृक्ष लगाते हो। जो सौ साल जीएंगे, दो सौ साल जीएंगे, चार सौ साल जीएंगे। फिर अमेरिका में ऐसे वृक्ष हैं, जो पांच हजार साल पुराने हैं। उनको बढ़ने में बड़ा वक्त लगता है। सालों बीज दबा रहता है, तब कहीं अंकुरण होता है। मौसमी फूल जल्दी खिल जाते हैं।
इस जीवन के जो क्षुद्र सुख हैं, वे जल्दी मिल जाते हैं। मगर उतने ही जल्दी खो भी जाते हैं। ध्यान रखना इस गणित को, जितनी जल्दी मिलेगा, उतनी ही जल्दी खो जाएगा। अगर परमात्मा को ही पाना है, जो सदा रहेगा, तो अनंत धैर्य की जरूरत है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि अनंत काल बीतेगा तब तुम्हें मिलेगा। मिल तो
एक भी क्षण में सकता है। लेकिन तुम्हें धैर्य रखने की अनंत क्षमता चाहिए। और इस बात को भी ठीक से समझ लो। जितना तुम धैर्य रख सकोगे, उतना जल्दी मिल जाएगा। और जितनी तुम जल्दबाजी करोगे, उतनी देर लग जाएगी। क्यों? क्योंकि जितना तुम धैर्य रखते हो, उतने ही तुम गहरे हो जाते हो। जल्दबाजी उथले आदमी का लक्षण है। जल्दबाजी बचकाने स्वभाव का लक्षण है। छोटे बच्चे आम के बीज बो देते हैं। घड़ी भर बाद फिर निकाल कर देखते हैं, अभी तक अंकुर आया या नहीं आया? यह अंकुर कभी भी नहीं आएगा। तुम बार-बार उघाड़ोगे, अंकुर कैसे आएगा। धीरज तो रखो थोड़ा।
तुमने देखा, गांव में किसान है, उसमें धैर्य ज्यादा होता है। उसमें शांति भी भिन्न होती है। शहर का दुकानदार है, उसमें धैर्य कम होता है। शांति भी उतनी ही मात्रा में कम होती है। जितने तुम गहरे प्रवेश करोगे देहात में, उतना ही तुम लोगों को शांत पाओगे। उसका कारण है कि प्रकृति के साथ उन्हें धीरज रखना पड़ता है। तुमने आज बो दिया तो कल ही फसल नहीं काट लोगे। तुम्हें धैर्य रखना पड़ेगा। वे धैर्य के मार्ग से गुजर-गुजर कर शांत हो जाते हैं। लेकिन जिसको परमात्मा के फूल पाने हों, उसने तो अनंत की खेती करने का विचार किया है।
नानक से उनके पिता बार-बार कहते थे कि कुछ काम करो। कुछ न बन सके तो तुम खेती-बाड़ी शुरू कर दो। नानक ने कहा, खेती-बाड़ी तो मैं करता हूं। बाप ने कहा, अब तुम्हारा दिमाग बिल्कुल खराब हो गया है। तुमने कब खेती-बाड़ी की? कहां है फसल? क्या कमाया? मैं तो तुम्हें बैठे देखता हूं घर में। नानक ने कहा, वह आप ठीक ही देखते हैं। मैं जरा दूसरे ढंग की खेती-बाड़ी करता हूं। और जो मैंने कमाया है, वह मेरे भीतर है। और परमात्मा की कृपा हो और आपको आंखें मिलें, तो वह दिखायी पड़ सकता है। कमाया तो मैंने बहुत है, फसल भी बहुत काटी है। लेकिन फसल भीतरी है, जरा सूक्ष्म है। साधारण आंखों से दिखायी नहीं पड़ेगी।
जो व्यक्ति धर्म के मार्ग पर गया है, उसने अनंत की फसल काटनी चाही है। उतना ही धैर्य भी चाहिए। धैर्य का अर्थ यह है कि तुम अपेक्षा मत करना। धैर्य का अर्थ यह है, कब होगा यह मत पूछना। जब होगा, उसकी मर्जी। जब हो जाएगा तब स्वीकार है। अनंत काल व्यतीत हो जाएगा तो भी तुम यह मत कहना कि मैं इतनी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूं, अभी तक नहीं हुआ!
एक बड़ी पुरानी हिंदू कहानी मुझे बहुत प्रीतिकर रही है कि नारद स्वर्ग
जा रहे हैं। और उन्होंने एक बूढ़े संन्यासी को पूछा, कुछ खबर-वबर तो नहीं पूछनी है? तो उस बूढ़े संन्यासी ने कहा कि परमात्मा से मिलना हो तो जरा पूछ लेना कि कितनी देर और है? क्योंकि मैं तीन जन्मों से साधना कर रहा हूं। वह बड़ा पुराना तपस्वी था। नारद ने कहा, जरूर पूछ लूंगा।
उसके ही पास एक दूसरे वृक्ष के नीचे एक जवान युवक बैठा हुआ अपना एकतारा बजा रहा था। गीत गा रहा था। नारद ने सिर्फ मजाक में उससे पूछा कि क्यों भाई, तुम्हें भी तो कोई बात नहीं पुछवानी है भगवान से? मैं जा रहा हूं स्वर्ग। वह अपना गीत ही गाता रहा। उसने नारद की तरह आंख उठा कर भी न देखा। नारद ने उसको हिलाया तो उसने कहा कि नहीं, उसकी कृपा अपरंपार है। जो चाहिए वह मुझे हमेशा मिला ही हुआ है। कुछ पूछना नहीं है। मेरी तरफ से उसे

कोई तकलीफ मत देना। मेरी बात ही मत उठाना, मैं राजी हूं। और सभी मिला हुआ है। बन सके तो मेरी तरफ से धन्यवाद दे देना।
नारद वापस लौटे। उस बूढ़े संन्यासी को जा कर कहा कि क्षमा करना भाई! मैंने पूछा था वह। उन्होंने कहा कि वह बूढ़ा संन्यासी जिस वृक्ष के नीचे बैठा है, उसमें जितने पत्ते हैं, उतने ही जन्म अभी और लगेंगे। बूढ़ा तो बहुत नाराज हो गया। वह जो पोथी पढ़ रहा था फेंक दी, माला तोड़ दी, गुस्से में चिल्लाया कि हद हो गयी! अन्याय है। यह कैसा न्याय? तीन जन्म से तप रहा हूं, कष्ट पा रहा हूं, उपवास कर रहा हूं, अभी और इतने? यह नहीं हो सकता।
उस युवक के पास भी जा कर नारद ने कहा कि मैंने पूछा था, तुमने नहीं चाहा था फिर भी मैंने पूछा था। उन्होंने कहा कि वह जिस वृक्ष के नीचे बैठा है, उसमें जितने पत्ते हैं--वह युवक तत्क्षण उठा, अपना एकतारा ले कर नाचने लगा और उसने कहा, गजब हो गया। मेरी इतनी पात्रता कहां? इतने जल्दी? जमीन पर कितने वृक्ष हैं! उन वृक्षों में कितने पत्ते हैं! सिर्फ इस वृक्ष के पत्ते? इतने ही जन्मों में हो जाएगा? यह तो बहुत जल्दी हो गया, यह मेरी पात्रता से मुझे ज्यादा देना है। इसको मैं कैसे झेल पाऊंगा? इस अनुग्रह को मैं कैसे प्रगट कर पाऊंगा?
वह नाचने लगा खुशी में। और कहानी कहती है, वह उसी तरह नाचते-नाचते समाधि को उपलब्ध हो गया। उसका शरीर छूट गया। जो अनंत जन्मों में होने को था, वह उसी क्षण हो गया। जिसकी इतनी प्रतीक्षा हो, उसी क्षण हो ही जाएगा। नानक कहते हैं, "धीरज सुनार, बुद्धि निहाई, ज्ञान हथौड़ा।"
बुद्धि के साथ हम दो काम कर सकते हैं। और एक काम हमने किया है। हम बुद्धि का झोले की तरह उपयोग करते हैं, निहाई की तरह नहीं। बुद्धि का हम झोले की तरह उपयोग करते हैं। और ज्ञान की जगह हम सूचनाएं इस झोले में भरते हैं। शास्त्र पढ़ते हैं, सदगुरुओं को सुनते हैं। जो भी मिलता है जहां से, सब उसमें भरते जाते हैं--एक झोले की तरह। और वह झोला भी भिखारी का। उसमें सब कूड़ा-कबाड़ भी, अखबार भी उसी में है, वेद भी उसी में है, रेडियो भी उसी में पड़ा हुआ है। किसी ने गाली दी, वह भी उसी में है; और किसी ने मंत्र दिया, वह भी उसी में है। वह झोला है। उसमें सब खिचड़ी है। उसमें मंत्र गाली के साथ मिल गया है। उसमें वेद अखबार में खो गए हैं। इस झोले को हम ढोते हैं।
इसको हम स्मृति कहते हैं। यह ज्ञान नहीं है। यह सिर्फ कचरा कूड़ा-कबाड़ है। क्योंकि ज्ञान तो वही है जो अपने अनुभव से मिलता है। इसमें कुछ भी तुम्हारा अनुभव नहीं है। सब बासा है, उधार है। तुमने बुद्धि का उपयोग झोले की तरह किया।
और नानक कहते हैं, "बुद्धि निहाई है और ज्ञान हथौड़ा है।"
नानक कहते हैं कि ज्ञान तो चोट है, हथौड़ा है। और जब भी तुम्हें ज्ञान होगा, कोई भी छोटा सा भी ज्ञान होगा, तो तुम्हारा रोआं-रोआं कंप जाएगा उस चोट से। इसलिए तो हम ज्ञान से बचते हैं, क्योंकि वह शॉक है। उस धक्के को हम नहीं सहना चाहते। हम तो सूचनाएं इकट्ठी करते हैं। सूचनाएं इकट्ठी करने में कोई भी धक्का नहीं है। तुम शास्त्र में पढ़ लेते हो कि परमात्मा परम सत्य है। इसमें कौन सा धक्का है? तुम शास्त्र में पढ़ लेते हो, ध्यान मार्ग है। इसमें कौन सा धक्का है? पढ़ लिया, याद कर लिया, दूसरे को बता दिया।
एक छोटी बच्ची; मां उसकी ऊपर से बुला रही थी सीढ़ियों पर खड़ी और वह ऊपर नहीं जा रही थी। वह नीचे आंगन में खेल रही थी। तो बच्ची की दादी भी नीचे धूप ले रही थी। उसने कई बार कहा कि खेलने भी दो, स्नान बाद में करवा देना। लेकिन मां जिद पर अड़ी थी। उसने बार-बार कहा कि चल ऊपर और स्नान कर। मजबूरी में बच्ची ने अपना खिलौना छोड़ा और ऊपर चढ़ी। चढ़ते वक्त उसने कहा कि यह कैसा आश्चर्य है कि तुम सदा मुझे कहती हो कि अपनी मां की सुनो; और तुम अपनी मां की जरा भी नहीं सुन रहीं!
तुम जिस ज्ञान को दूसरे को देते हो, उसकी तुमने कभी खुद सुनी है? तुम
जो सलाह दूसरे को देते हो, वह तुम्हारे जीवन में कभी आयी है? नहीं, तुमने भी बासी पायी है। और तुम दूसरे को भी दिए दे रहे हो। देने से तुम्हारा छुटकारा होता है, झंझट मिटती है। वह तुम्हारे लिए न तो धक्का थी और न दूसरे के लिए धक्का होगी।

इसलिए सलाह दुनिया में सब से ज्यादा दी जाती है और सबसे कम ली जाती है। ज्ञान लोग मुफ्त बांटते हैं, कौन लेता है? ऐसे ज्ञानियों से लोग बच कर भागते हैं। क्योंकि ऐसा ज्ञानी आपको उबाता है। आप नहीं भी चाहते, वह अपना झोला आप में उंडेलता है। वह बोझ ढो रहा है, वह बांटना चाहता है। वह कचरा सम्हाले हुए है। उसने खुद भी उसका कोई उपयोग नहीं किया है।
ज्ञान तो चोट है। क्योंकि वास्तविक ज्ञान जीवन के अनुभव से पैदा होता है, जीवन के घर्षण से। अस्तित्व में जब तुम छलांग लेते हो, तब ज्ञान उत्पन्न होता है। शास्त्रों से नहीं, शब्दों से नहीं--अनुभव से। अनुभव चोट है। इसलिए हम अनुभव से तो बचते हैं।
गुरजिएफ कहता था, जैसे रेलगाड़ियों में बफर लगे होते हैं। हर दो डब्बे
के बीच में तुमने देखे होंगे, बफर लगे हैं। बफर लगाते हैं इसलिए, ताकि अगर धक्का लगे तो दोनों डब्बे टकरा न जाएं। या जैसा कि कार के नीचे स्प्रिंग लगे होते हैं, शॉक एब्जार्वर्स लगे होते हैं। ऐसा, गुरजिएफ कहता था, कि हमारा ज्ञान शॉक एब्जार्वर का काम करता है। जब कि वास्तविक ज्ञान शॉक का काम करता है।
तुम्हारे घर में कोई मर गया है, तो तुम कहते हो, आत्मा तो अमर है। इस ज्ञान का तुम्हारे जीवन में कभी कोई धक्का नहीं लगा। इसका तुम उपयोग शॉक एब्जार्वर की तरह कर रहे हो।
जिन ज्ञानियों ने यह कहा है कि आत्मा अमर है, उन्होंने बड़े संयम, बड़ी तपश्चर्या, बड़ी भट्टियों से गुजर कर कहा है, बड़ी अग्नियों से गुजर कर कहा है। उनके लिए यह ज्ञान तो हथौड़ी की तरह निहाई पर पड़ा है। इस ज्ञान में तो वे चकनाचूर हो गए हैं। इस ज्ञान ने तो उनकी खोपड़ी तोड़ दी है। उनके अहंकार को मिट्टी में गिरा दिया है। इस ज्ञान ने तो उनके सारे शरीर से सब संबंध विच्छिन्न कर दिए हैं। इस ज्ञान से उनका सारा संसार डगमगा कर टूट गया है, बिखर गया है। इस ज्ञान से तो वे संन्यस्त हुए हैं। इस ज्ञान ने तो उन्हें इस संसार में कहीं का न रखा। इस ज्ञान ने तो उनकी यहां से जड़ें उखाड़ दी हैं। यह ज्ञान उनके लिए तो झंझावात की तरह आया था।
और तुम्हारे लिए? तुम्हारे लिए लोरी की तरह। जब भी तुम्हें नींद नहीं आती तब तुम यह ज्ञान गुनगुना लेते हो और सो जाते हो। घर में कोई मर गया, तुम कहते हो, आत्मा तो अमर है। तुम मृत्यु और अपने बीच इसका उपयोग शॉक एब्जार्वर की तरह कर रहे हो। मौत तुम्हें घबड़ा देगी।
यह हो भी सकता था कि तुम्हारे घर में कोई मरता और तुम उसकी मौत को पूरा अनुभव करते तो ज्ञान उपलब्ध होता। क्योंकि वह मौत की घटना हथौड़ी बन जाती और तुम निहाई बन जाते। और वह चोट तुम पर पड़ती तो उस चोट में तुम जागते। दुनिया में कोई बिना चोट के नहीं जागता है। और तुम सब चोटों से बचने का उपाय कर लिए हो। तुमने चारों तरफ शॉक एब्जार्वर लगा लिए हैं। कोई भी चोट तुम्हें लग नहीं सकती। तुम भीतर सुरक्षित हो।
कोई मरता है, तुम कहते हो, आत्मा अमर है। सड़क पर कोई भीख मांगता है, तुम कहते हो, बेचारा! अपने कर्मों के फल भोग रहा है। तुम दो पैसा देना नहीं चाहते। क्योंकि अगर वह कर्मों का फल नहीं भोग रहा है तो तुम भी जिम्मेवार मालूम पड़ोगे। तो तुम उस समाज के हिस्से हो, जो उसे दरिद्र बना रहा है। भिखमंगा बना रहा है। तुम उस समाज के भागीदार हो, जिसने इसे इस दीनता में पटक दिया है। तुम पर भी थोड़ी जिम्मेवारी है। वह जिम्मेवारी चोट करती है। तुम ने एक शॉक एब्जार्वर बना लिया। तुम कहते हो, बेचारा! अपने कर्मों का फल भोग रहा है। अपने रास्ते पर चले जाते हो। तुम्हारे मन में इससे कोई चिंता पैदा नहीं होती।
तुम बड़े कुशल हो। तुम्हारी चालाकी की कोई सीमा नहीं है। ज्ञानियों को ज्ञान धक्के से मिलता है। तुम उसी धक्के का उपयोग शॉक एब्जार्वर की तरह करते हो। कुछ भी हो जाए तुम अपने को सम्हाल लेते हो। तुम गिरते नहीं। तुम अपने अहंकार को बचा लेते हो। और वही अहंकार है, जो टूटना चाहिए।
"बुद्धि निहाई है और ज्ञान हथौड़ा है।"
पड़ेगा किस पर? इस निहाई और हथौड़े के बीच में अगर तुम आ जाओ, तो ही तुम्हारे जीवन में ज्ञान उत्पन्न होगा। अगर तुम बिखर जाओ, तो ही! लेकिन तुम बिखरते नहीं। तुम तो बहुत तरह से अपने को सम्हालते हो।

एक दिन सुबह-सुबह मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर गया। खांस रहा था।
डाक्टर हजारों बार कह चुके कि सिगरेट पीना बंद करो। वह बंद करता नहीं।
उससे मैंने कहा, इतनी तकलीफ पाते हो, बंद भी कर दो। उसने कहा कि जब आपने पूछ ही लिया, और आपने कहा, तो असलियत बता दूं। बंद तो मैं भी करना चाहता हूं।
लेकिन डरता हूं। मैंने कहा, क्या कारण है डरने का? इतना कष्ट भोगते हो, इतनी तकलीफ, रात सो नहीं सकते हो, रात भर खांसते-खंखारते हो! उसने कहा, पहली दफा जब मैंने बंद की थी, तो उसी दिन दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ था।
इनकी सिगरेट बंद करने की वजह से दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया था, उसी दिन! इस डर से अब वे सिगरेट पीना बंद नहीं करते। कि कहीं फिर युद्ध हो जाए! तुम अपने अहंकार के लिए बड़ी अनूठी तरकीबें खोजते हो। तुम ऐसा सोच कर चलते हो कि सारा जगत तुम्हारे लिए चलता रहा है, और तुम नियंता हो। तुम बिखर जाओगे तो सब बिखर जाएगा। तुम मरोगे तो सब मर जाएगा। तुम नहीं रहोगे तो दुनिया कैसे चलेगी? तुम्हारे सिगरेट पीने या न पीने से युद्ध हो जाते हैं। तुम पर सब कुछ निर्भर है। तुम अगर गौर करोगे तो इस तरह की ही हास्यास्पद बातें तुम्हारे आसपास तुम इकट्ठी पाओगे।
"बुद्धि निहाई है और ज्ञान हथौड़ा है।"
तुम बुद्धि का उपयोग झोले की तरह मत करो। अन्यथा झोला बड़ा होता जाएगा
और तुम छोटे होते जाओगे। और एक दिन ऐसा आ जाएगा कि तुम अपने ही झोले में खो जाओगे। तुम उसी के नीचे दब कर मरोगे। पंडित ऐसे ही मरते हैं। अपने ही ज्ञान के नीचे दब कर समाप्त हो जाते हैं। बुद्धि को निहाई बनाओ। बुद्धि उतनी ही चमकती है जितने ही जीवन के अनुभव उस पर पड़ते हैं। हर चोट उसे निखार जाती है।
और तुमने कभी ख्याल किया! नहीं तो जाओ लोहार के यहां और सुनार के यहां, जहां निहाई होती है, तुम बड़े हैरान होओगे। हथौड़ा चोट मारता है। सैकड़ों हथौड़े टूट जाते हैं, एक निहाई चलती रहती है। तुम हैरान होओगे। टूट जाते हैं हथौड़े, जो चोट मारते हैं। निहाई बची रहती है। और निहाई निखरती जाती है। निहाई में एक चमक आ जाती है।
लाओत्से ने कहा है कि निहाई क्यों नहीं टूटती? क्योंकि वह झेल लेती है। हथौड़ा टूट जाता है, क्योंकि वह आक्रमण करता है।
आक्रामक टूट जाएगा अपने आप। तुम उसकी चिंता मत करो, तुम सिर्फ झेलने में समर्थ हो जाओ। और हर आक्रामक स्थिति, हर घटना जो तुम्हें हिला जाती है, तुम्हें और मजबूत कर जाएगी। पूछो सुनार से कि एक निहाई और कितने हथौड़े? तो वह कहेगा, सैकड़ों हथौड़े टूट गए, निहाई एक टिकी है। टूटना था निहाई को, क्योंकि कितने आक्रमण हुए। लेकिन तोड़ने वाले टूट जाते हैं, सहने वाले बच जाते हैं। निहाई में पूरा राज छिपा है।
नानक कहते हैं, "बुद्धि निहाई है।"
बुद्धि टूटेगी नहीं, डरो मत। खोलो अनुभव के लिए, पड़ने दो चोटें। जितनी चोटें पड़ेंगी तुम्हारे जीवन चेतना पर, उतने ही तुम निखरोगे। जीवन को एक अभियान बनाओ, एक एडवेंचर।
और जहां भी चोट पड़ सकती हो, वहां से भागो मत। जिसने पलायन किया, वह हारने के पहले ही हार गया। उसने चुनौती स्वीकार ही न की। वह भाग खड़ा हुआ। भगोड़े मत बनो। जीवन के संघर्षण से भागो मत।
इसलिए मैं उसको संन्यासी नहीं कहता, जो भाग गया। क्योंकि वह तो हथौड़ों से ही भाग गया। उसकी निहाई पर जंग लगेगी हिमालय में, और कुछ नहीं हो सकता। तुम देखो अपने संन्यासियों को, जाओ हिमालय। तुम उनमें बुद्धि का प्रखार न पाओगे। तुम उनमें चमक न पाओगे। तुम उन पर पाओगे जंग लग गयी। अगर तुम्हारे पास आंखें हैं, तो तुम देखोगे, उनकी प्रतिभा दीन हो गयी, क्षीण हो गयी। वे मरे हुए से हैं। उनके भीतर जीवन की ज्योति प्रगाढ़ता से नहीं जलती है। उनके भीतर सब फीका-फीका, उदास-उदास हो गया है। क्योंकि जीवन की ज्योति के जलने के लिए संघर्षण चाहिए। संघर्षण भोजन है। उससे भागो मत।
नानक कहते हैं, "बुद्धि निहाई है और ज्ञान हथौड़ा है।"
और जब भी तुम्हारे जीवन में चोट पड़े तभी ज्ञान का एक क्षण उत्पन्न होता है। उसको तुम चूको मत। जैसे रात, कभी अंधेरी रात में बिजली चमकती है।

ऐसे तो तुम कंप जाते हो। लेकिन उसी कंपन में एक प्रकाश होता है और सब अंधेरा खो जाता है। एक क्षण को सब रास्ते साफ हो जाते हैं।
ज्ञान की हर चोट बिजली की चमक है। बादलों में घर्षण होता है तब चमक पैदा होती है। और जब जीवन में घर्षण होता है, तब चमक पैदा होती है। तो जीवन की किसी भी स्थिति से भागो मत। रुको, और उससे गुजरो। उसी से प्रौढ़ता और मैच्योरिटी आएगी। उसी से समझ का जन्म होगा, अंडरस्टैंडिंग पैदा होगी। इसलिए नानक ने अपने शिष्यों को संसार से भागने को नहीं कहा। क्योंकि
वह हथौड़ियों से भागना है। यहीं तो सारा ज्ञान उत्पन्न होगा। तुम भाग जाओगे पत्नी से, तुम बचकाने रह जाओगे। क्योंकि पत्नी के साथ संघर्षण में एक प्रौढ़ता है। तुम भाग जाओगे अपने बच्चों से, लेकिन तुम बचकाने रह जाओगे। क्योंकि बच्चों के साथ, जीवन को बड़ा करने में तुम्हारी एक प्रौढ़ता है जो विकसित होती है।
तुमने कभी ख्याल किया? जैसे ही एक बच्चा पैदा होता है किसी स्त्री को,
वह स्त्री वही नहीं रह जाती जो बच्चे के पहले थी। क्योंकि बच्चा ही पैदा नहीं होता, मां भी पैदा होती है उसी के साथ। उसके पहले वह साधारण स्त्री थी, अब वह मां है। और मां होना एक अलग गुणधर्म है, जिसका साधारण स्त्री को कोई भी पता नहीं। जब एक बच्चा पैदा होता है, अब तक जो जवान आदमी था, अब जो बाप बन गया वह दूसरा आदमी है। क्योंकि बाप होना एक प्रौढ़ता है। बाप होने का ख्याल, बाप होने की स्थिति, एक नए अनुभव की शुरुआत है। तुम भागो मत। जीवन ने जितने द्वार खोले हैं, तुम उन सबका उपयोग करो।
इसलिए नानक ने अपने भक्तों को जंगल भाग जाने को नहीं कहा। कहा कि जीवन में रुकना। पड़ने देना हथौड़ियां, डरना मत। क्योंकि बुद्धि निहाई है और ज्ञान हथौड़ा है।
"भय धौंकनी है और तपस्या अग्नि है।"
भय का उपयोग भी तुम दो तरह से कर सकते हो। एक तो तुम कर ही रहे हो। वह उपयोग है कि जहां-जहां तुम भयभीत हो जाते हो, वहीं-वहीं से तुम भाग खड़े होते हो। तुम शुतुरमुर्ग का तर्क मानते हो। देखता है दुश्मन को, रेत में सिर गड़ा कर खड़ा हो जाता है। न दिखायी पड़ता है दुश्मन, सोचता है नहीं रहा। जो दिखायी नहीं पड़ता वह होगा कैसे? तुम जहां-जहां भय पाते हो वहीं से हट जाते हो। तो तुम कैसे बढ़ोगे? भय अवसर है। भय क्या है? भय एक ही है कि तुम मिट न जाओ। जहां-जहां तुम भय पाते हो वहीं से तुम हट जाते हो। और अगर तुम मिटने को राजी नहीं हो, तो परमात्मा होगा कैसे? भय क्या है? एक ही भय है कि मैं मर न जाऊं, समाप्त न हो जाऊं। मृत्यु के अतिरिक्त कोई भी भय नहीं। और जो मरने को राजी नहीं है, वह परमात्मा में लीन होने को कैसे राजी होगा? जो मरने को राजी नहीं है, वह प्रेम में जाने को कैसे राजी होगा? जो मरने को राजी नहीं है, वह प्रार्थना में कैसे प्रवेश करेगा?
तो भय की दो संभावनाएं हैं। या तो तुम पलायन कर जाओ, या तुम समर्पण कर दो। या तो तुम भाग जाओ, या तुम समर्पण कर दो। तुम राजी हो जाओ कि ठीक है, मौत है। स्वीकार कर लो, आंख मत छिपाओ। और जिस दिन तुम मौत को खुली आंख से देखोगे, स्वीकार कर के देखोगे, उसी दिन तुम पाओगे कि मौत तिरोहित हो जाती है। तुमने उसे कभी खुली आंख से देखा नहीं था। तुमने कभी आमना-सामना न किया था, इसलिए मौत थी। जीवन के सब भय धीरे-धीरे तिरोहित हो जाते हैं, अगर तुम जाग कर देखना शुरू करो।
नानक कहते हैं, "भय धौंकनी है।"
तुम भय से डरो मत। क्योंकि तुम भय से जितने भागोगे, डरोगे, उतनी ही तुम्हारे जीवन की तपश्चर्या और अग्नि क्षीण हो जाएगी। क्योंकि भय तो धौंकनी है। उससे तो अग्नि प्रज्वलित होती है। जहां-जहां भय हो, वहीं चुनौती को स्वीकार कर के प्रवेश करो। उसी से तो योद्धा पैदा होता है। जहां भय है, वहीं प्रवेश करता है। जहां मौत है, उसी को निमंत्रण मान लेता है। जहां खतरा है, वहां सजग हो कर चलता है, लेकिन चलता है। भीतर जाता है। और जितने भीतर तुम भय के जाओगे, उतना ही अभय उत्पन्न होता है। जितना भागोगे, उतना भय संगृहीत होता है।
जो भय का उपयोग करना सीख लेता है, नानक कहते हैं, उसके लिए भय धौंकनी
हो जाता है। और हर भय की अवस्था तपस्या की अग्नि को प्रज्वलित करती है।

भक्त में भय है। लेकिन उसने अपने भय को भक्ति में रूपांतरित कर दिया।
अब वह सिर्फ परमात्मा से भयभीत है और किसी से भी नहीं। और परमात्मा से क्यों भयभीत है? परमात्मा से सिर्फ इसलिए भयभीत है कि उस भय के द्वारा वह अपने जीवन में संयम रख सकेगा। उस भय के द्वारा वह अपने जीवन को गलत जाने से बचा सकेगा।
यह भय साधारण भय नहीं है। तुम जिससे भी डरते हो उसके दुश्मन हो जाते हो। परमात्मा का भय बहुत अनूठा है। तुम उससे डरते हो, उतने ही उसके प्रेम में गिरते जाते हो। क्योंकि डरने का कुल इतना ही अर्थ है कि कहीं मैं तुझ से चूक न जाऊं। कहीं ऐसा न हो कि मैं भटक जाऊं। तुम्हारा भय केवल इतना ही बताता है कि मेरे भटकने की भी संभावना है। तू मुझे भटकने मत देना। तेरी याद कहीं मुझे भूल न जाए। क्योंकि तेरी अनुकंपा न हो तो मैं तेरी याद भी तो सतत न रख सकूंगा। मैं तुझे खोजता हूं, लेकिन तेरा सहारा न हो तो मैं तुझे खोज भी तो न सकूंगा। भय का अर्थ है, मेरी दीनता। मेरी असहाय अवस्था।
भक्त भय को प्रार्थना बना लेता है। वह भागता नहीं। वह हर भय को प्रार्थना बना लेता है। जहां-जहां भय उसे पकड़ता है, वहां-वहां वह उसकी प्रार्थना का अवसर पाता है।
"भय धौंकनी है, तपस्या अग्नि है।"
जब भी तुम छोटा सा भी कृत्य संकल्पपूर्वक करते हो, तो तुम्हारे भीतर
एक अनूठा ताप पैदा होता है। इसे तुमने शायद कभी निरीक्षण न किया हो। लेकिन तुम छोटा सा भी कृत्य अगर संकल्पपूर्वक करो--तपश्चर्या का वही अर्थ है। समझो कि तुम आज उपवास कर लो। उपवास किसी स्वर्ग को पाने के लिए नहीं। क्योंकि भूखे रहने से अगर स्वर्ग मिलता होता, तो बड़ी आसान बात थी। उपवास किसी पुण्य के लिए भी नहीं। क्योंकि भूखे रहने से कैसे पुण्य का संबंध है? कोई संबंध नहीं। उपवास तो संकल्प की तपश्चर्या की एक प्रक्रिया है। तुमने एक संकल्प किया कि आज मैं भूखा रहूंगा। शरीर मांग करेगा रोज की आदत के अनुसार, भोजन चाहिए। वक्त भोजन का आएगा, शरीर कहेगा, भूख लगी है। तुम यह सब सुनोगे। तुम इसे झुठलाओगे नहीं। तुम यह नहीं कहोगे कि भूख नहीं लगी है। तुम शरीर को कहोगे, भूख लगी है, बिल्कुल ठीक है। समय भी हुआ है, यह भी ठीक है। लेकिन मैंने निर्णय किया है कि आज भूखा रहूंगा। तो आज भूखा रहना पड़ेगा। मैं अपने निर्णय को शरीर के लिए नहीं झुकाऊंगा। लेकिन इसको सजगता से। शरीर की मांग सही है। लेकिन आज मैं अपने निर्णय से जीऊंगा।
इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि तुम अपने को शरीर के ऊपर उठा रहे हो। तुम शरीर से बड़े हो रहे हो। तुम शरीर को अनुगामी बना रहे हो। मन भोजन की याद करेगा, उसे करने देना। तुम उसको भी कहोगे कि ठीक है, तुझे सोचना है सोच। मैं साक्षी रहूंगा, मैं साथी नहीं हूं। मैं अपने निर्णय से जीऊंगा। मेरा संकल्प है। और तब तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर एक ताप, एक अग्नि, एक ऊर्जा पैदा हो रही है। एक अनूठी ऊर्जा, जो तुमने कभी नहीं जानी थी। वह ऊर्जा संकल्प की मालकियत से आती है। तुम अपने मालिक हो।
कल तुम सुबह उठोगे, और ही तरह से उठोगे। कल सुबह तुम पाओगे कि मैं शरीर
के ऊपर उठ सकता हूं। एक नया अनुभव हुआ कि मैं मन के भी ऊपर उठ सकता हूं। एक नयी प्र्रतीति हुई, एक साक्षात्कार हुआ कि मैं शरीर और मन से भिन्न हूं, इसकी एक छोटी झलक मिली।
यही तपश्चर्या है। तपश्चर्या न तो पुण्य के लिए है, न मोक्ष जाने के लिए है। तपश्चर्या तो स्वयं के जीवन-चेतना को शरीर और मन के ऊपर जानने के लिए है। लेकिन जिसने उसे ऊपर कर लिया, उसके लिए मोक्ष के द्वार अनायास ही खुल जाते हैं।
नानक कहते हैं, "तपस्या अग्नि है। भय धौंकनी है।"
नानक यह कह रहे हैं कि तुम किसी भी चीज से भागो मत; उसका उपयोग खोजो।
और हर चीज का सदुपयोग है। ऐसी कोई भी चीज जीवन में नहीं है जिसका उपयोग न हो सके। कामवासना ब्रह्मचर्य बन जाती है। क्रोध करुणा हो जाता है। भय प्रार्थना बन जाता है। दुख तपश्चर्या हो जाती है। कलाकार चाहिए, कुशलता चाहिए। और नहीं तो जीवन जो महल बन सकता था, वही तुम्हारे लिए कारागृह बन जाता है। तुम पर सब निर्भर है।

तुम्हारे पास सभी कुछ मौजूद है। उसका ठीक संयोजन चाहिए। उस संयोजन का नाम संयम है। तुम्हारे भीतर सब मौजूद है। लेकिन तुमने उसे कभी संजोया नहीं। उसको ठीक व्यवस्था, लय और संगीत नहीं दिया। चीजें पड़ी हैं। तुम जानते नहीं क्या करें। तुम्हारे घर के सामने एक पत्थर पड़ा है। तुम सोचते हो, यह बाधा है। दूसरा आदमी उसी पर चढ़ कर आगे निकल जाता है। वह सीढ़ी बन जाती है। सब मौजूद है। परमात्मा मनुष्य को पूरा ही बनाता है, अधूरा नहीं। लेकिन संयोजन की सुविधा है, स्वतंत्रता है।
तुम अगर गौर करोगे, अध्ययन करोगे, तो जिनको तुम अपराधी कहते हो और जिनको तुम पापी या पुण्यात्मा कहते हो, जिनको बुरे और अच्छे लोग कहते हो, तुम उनमें वे ही चीजें पाओगे। वे ही चीजें, सिर्फ संयोजन का फर्क है।
एक चोर है, वह रात दूसरे के घर में प्रवेश करता है। आसान काम नहीं है। उसने भी अपने भय को बदला है। दूसरे के घर में वह ऐसे प्रवेश करता है रात, जैसे कोई भय नहीं। दीवाल में छेद करता है, सेंध लगाता है। इतने ढंग से और शांति से करता है, जरा भी खटर-पटर नहीं होती। फिर इस तरह से प्रवेश करता है, और इतनी सजगता रखता है--दूसरे के घर में अंधेरे में घुसना--कि कोई चीज गिर न जाए, किसी चीज से टकरा न जाए। बड़ी एकाग्रता से, बड़े होश से।
झेन फकीर कहते हैं कि परमात्मा के घर में जाना हो तो चोर की कला सीखनी पड़ती है। क्योंकि वहां भी इतना ही होश चाहिए, जैसा चोर घुसता है दूसरे के घर में कि टकरा न जाए। और भय को वहां भी रूपांतरित करना जरूरी है। जैसे अपना ही घर है, ऐसे चोर घुसता है।
झेन कथा है, एक बहुत बड़ा चोर था। जब वह बूढ़ा हुआ तो उसके बेटे ने कहा कि
अब मुझे भी अपनी कला सिखा दें। क्योंकि अब क्या भरोसा?
वह चोर इतना बड़ा चोर था कि कभी पकड़ा नहीं गया। और सारी दुनिया जानती
थी कि वह चोर है। उसकी खबर सम्राट तक को थी। सम्राट ने उसे एक बार बुला कर सम्मानित भी किया था कि तू अदभुत आदमी है। दुनिया जानती है, हम भी जानते हैं, कि तू चोर है। तूने कभी इसे छिपाया भी नहीं, लेकिन तू कभी पकड़ाया भी नहीं। तेरी कला अदभुत है।
तो बूढ़े बाप ने कहा कि यह कला तू जानना चाहता है, तो सिखा दूंगा। कल रात तू मेरे साथ चल। वह कल अपने लड़के को ले कर गया। उसने सेंध लगायी। लड़का खड़ा देखता रहा।
वह इस तरह सेंध लगा रहा है, इतनी तन्मयता से, कि कोई चित्रकार जैसे चित्र बनाता हो, कि कोई मूर्तिकार मूर्ति बनाता हो, कि कोई भक्त मंदिर में पूजा करता हो, ऐसी तन्मयता, ऐसा लीन। इससे कम में काम भी नहीं चलेगा। वह मास्टर थीफ था। वह कोई साधारण चोर नहीं था। सैकड़ों चोरों का गुरु था। लड़का कंप रहा है खड़ा हुआ। रात ठंडी नहीं है, लेकिन कंपकंपी छूट रही है। उसकी रीढ़ में बार-बार घबड़ाहट पकड़ रही है। वह चारों तरफ चौंक-चौंक कर देखता है। लेकिन बाप अपने काम में लीन है। उसने एक बार भी आंख उठा कर यहां- वहां नहीं देखा। चोरी की सेंध तैयार हो गयी, बाप बेटे को ले कर अंदर गया। बेटे के तो हाथ-पैर कंप रहे हैं। जिंदगी में ऐसी घबड़ाहट उसने कभी नहीं जानी। और बाप ऐसे चल रहा है, जैसे अपना घर हो। वह बेटे को अंदर ले गया, उसने दरवाजे के ताले तोड़े। फिर एक बहुत बड़ी अलमारी में, वस्त्रों की अलमारी में, उसका ताला खोला और बेटे को कहा कि तू अंदर जा। बेटा अलमारी में अंदर गया। बहुमूल्य वस्त्र हैं, हीरे-जवाहरात जड़े वस्त्र हैं।
और जैसे ही वह अंदर गया, बाप ने ताला लगा कर चाबी अपने खीसे में डाली। लड़का अंदर! चाबी खीसे में डाली, बाहर गया, दीवाल के पास जा कर जोर से शोरगुल मचाया, चोर! चोर! और सेंध से निकल कर अपने घर चला गया।
सारा घर जाग गया, पड़ोसी जाग गए। लड़के ने तो अपना सिर पीट लिया अंदर कि
यह क्या सिखाना हुआ? मारे गए! कोई उपाय भी नहीं छोड़ गया बाप निकलने का। चाबी भी साथ ले गया। ताला भी लगा गया। घर भर में लोग घूम रहे हैं। सेंध लग गयी है और लोग देख रहे हैं, पैर के चिह्न हैं। नौकरानी उस जगह तक आयी जहां अलमारी में चोर बंद है।
उसे कुछ नहीं सूझ रहा, क्या करें। बुद्धि काम नहीं देती। बुद्धि तो वहीं काम देती है अगर जाना-माना हो, किया हुआ हो। बुद्धि तो हमेशा बासी है। ताजे से बुद्धि का कोई संबंध नहीं। यह घटना ऐसी है, इतनी नयी है, कि न तो

कभी की, न कभी सुनी, न कभी पढ़ी, न कभी किसी चोर ने पहले कभी की है कि शास्त्रों में उल्लेख हो। कुछ सूझ नहीं रहा। बुद्धि बिल्कुल बेकाम हो गयी। जहां बुद्धि बेकाम हो जाती है, वहां भीतर की अंतस-चेतना जागती है। अचानक जैसे किसी ऊर्जा ने उसे पकड़ लिया। और उसने इस तरह आवाज की जैसे चूहा कपड़े को कुतरता हो। यह उसने कभी की भी नहीं थी जिंदगी में, वह खुद भी हैरान हुआ अपने पर। नौकरानी चाबियां खोज कर लायी, उसने दरवाजा खोला, और दीया ले कर उसने भीतर झांका कि चूहा है शायद!
जैसे उसने दीया ले कर झांका, उसने दीए को फूंक मार कर बुझाया, धक्का दे
कर भागा। सेंध से निकला। दस-बीस आदमी उसके पीछे हो लिए। बड़ा शोरगुल मच गया। सारा पड़ोस जग गया। वह जान छोड़ कर भागा। ऐसा वह कभी भागा नहीं था। उसे यह समझ में नहीं आया कि भागने वाला मैं हूं। जैसे कोई और ही भाग रहा है। एक कुएं के पास पहुंचा, एक चट्टान को उठा कर उसने कुएं में पटका। उसे यह भी पता नहीं कि यह मैं कर रहा हूं। जैसे कोई और करवा रहा है। चट्टान कुएं में गिरी, सारी भीड़ कुएं के पास इकट्ठी हो गयी। समझा कि चोर कुएं में कूद गया। वह झाड़ के पीछे खड़े हो कर सुस्ताया। फिर घर गया। दरवाजे पर दस्तक दी। उसने कहा, आज इस बाप को ठीक करना ही पड़ेगा। यह सिखाना हुआ? अंदर गया। बाप कंबल ओढ़े आराम से सो रहा है। उसने कंबल खींचा और कहा कि क्या कर रहे हो? वह तो घुर्राटे ले रहा था। उसने जगाया। उसने कहा कि यह क्या है? मुझे मार डालना चाहते हैं? बाप ने कहा, तू आ गया, बाकी कहानी सुबह सुन लेंगे। मगर तू सीख गया। अब सिखाने की कोई जरूरत नहीं। बेटे ने कहा, कुछ तो कहो। कुछ तो पूछो मेरा हाल। क्योंकि मैं सो न पाऊंगा। तो बेटे ने सब हाल बताया कि ऐसा- ऐसा हुआ।
बाप ने कहा, बस! तुझे कला आ गयी। तुझे आ गयी कला, यह सिखायी नहीं जा सकती। लेकिन तू आखिर मेरा ही बेटा है। मेरा खून तेरे शरीर में दौड़ता है। बस, हो गया। तुझे राज मिल गया। क्योंकि चोर अगर बुद्धि से चले तो फंसेगा। वहां तो बुद्धि छोड़ देनी पड़ती है। क्योंकि हर घड़ी नयी है। हर बार नए लोगों की चोरी है। हर मकान नए ढंग का है। पुराना अनुभव कुछ काम नहीं आता। वहां तो बुद्धि से चले कि उपद्रव में पड़ जाओगे। वहां तो अंतस-चेतना से चलना पड़ता है।
झेन फकीर इस कहानी का उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं, ध्यान की कला भी चोरी जैसी है। वहां इतना ही होश चाहिए। बुद्धि अलग हो जाए, सजगता हो जाए। जहां भय होगा, वहां सजगता हो सकती है। जहां खतरा होता है, वहां तुम जाग जाते हो। जहां खतरा होता है, वहां विचार अपने-आप बंद हो जाते हैं।
इसलिए नानक कहते हैं, "भय धौंकनी है।"
भय का उपयोग करो। भय है तो जागो। भय से सुरक्षा मत करो। हम क्या करते हैं? जहां भय होता है, वहां सुरक्षा करते हैं। अगर भय है कहीं, तो हम तलवार ले कर जाते हैं। बंदूक साथ रख लेते हैं, कि चार नौकर रख लेते हैं कि जो हमारी रक्षा करें। अगर भय है, तो हम बड़ी दीवाल बनाते हैं; पहाड़ खड़ा कर देते हैं दीवाल का कि कोई भीतर न आ सके। हम भय से सुरक्षा करते हैं।
नहीं, भय से सुरक्षा करने में तो हमारी चेतना और भी क्षीण हो जाएगी।
हम तो और भी बेहोश हो जाएंगे। इसलिए जितने सुरक्षित लोग तुम पाओगे, उतने ही निर्बुद्धि पाओगे। धनी आदमी में बुद्धि पाना जरा मुश्किल है। उसके पास सुरक्षा का इंतजाम है, इसलिए बुद्धि की जरूरत नहीं। दूसरे लोग उसकी सेवा कर रहे हैं। बुद्धि का काम वे कर रहे हैं। उसे क्या जरूरत है।
इसलिए धनी घरों में जब बेटे पैदा होते हैं, तब तुम उन्हें हमेशा मंदबुद्धि पाओगे। वे मिडियाकर होंगे। उनमें कभी तुम चेतना की झलक न पाओगे। तुम ऐसा न पाओगे कि उनके भीतर प्रतिभा जलती है। कोई जरूरत ही नहीं प्रतिभा की। नौकर-चाकर में प्रतिभा चाहिए, उनमें प्रतिभा की क्या जरूरत है?
नानक कहते हैं, भय को धौंकनी बना लो। भय से जागो। भय बड़ी अदभुत स्थिति है। कंपन आएगा, रोआं-रोआं थर-थर हो जाएगा। वहीं तो मौका है कि जब सारा शरीर कंपता हो तब भी तुम्हारी चेतना न कंपे। तब चेतना अकंप रहे। तो भय धौंकनी हो गयी।
"तपस्या अग्नि है।"

और जीवन में जहां-जहां दुख है, वहां-वहां दुख को तुम तपश्चर्या समझना।
और संकल्पपूर्वक उसे स्वीकार कर लेना। जब तुम बीमार पड़ो, बीमारी को स्वीकार कर लेना, लड़ना मत। और तब तुम पाओगे, बीमारी के बाद शरीर ही स्वस्थ नहीं हुआ, चेतना भी एक नए स्वास्थ्य को उपलब्ध हुई है। जब बीमारी आए तो तुम उसे देखना और स्वीकार करना कि ठीक है। लड़ना मत, घबड़ाना मत। मन को यहां-वहां मत लगाना। अन्यथा तुम बीमारी के अवसर से चूक गए। ये सारे जीवन की सभी स्थितियां परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग बन सकती हैं, याद रखना। हर घटना उसके द्वार की सीढ़ी है। अगर तुम जानते हो, अगर तुम समझते हो, तो उसका उपयोग कर लोगे।
"भाव ही पात्र है जिसमें अमृत ढलता है।"
और नानक कहते हैं, विचार से नहीं, भाव से। भाव का अर्थ है, जो विचार के पार तुम्हारी चेतना है। विचार तो मस्तिष्क में है, भाव तुम्हारे हृदय में है। भाव तर्क नहीं है, प्रेम है। उससे तुम गणित नहीं बिठा सकते। लेकिन भाव एक उद्रेक की अवस्था है। एक हर्षोन्माद की अवस्था है। और जब तुम भावित होते हो, तब तुम जगत से उसकी गहराई से संयुक्त होते हो।
विचार तो तुम्हारी सब से ऊपरी सतह है। अगर ठीक से समझो, तो वह तो घर के चारों तरफ लगायी हुई फेंसिंग है। वह घर थोड़े ही है। वह घर का आंतरिक कक्ष थोड़े ही है। विचार तो फेंसिंग है। वह तो हमने पड़ोसियों से रक्षा के लिए लगा रखी है। वह तो सीमा बनाती है। तुम नहीं हो वह, तुम तो तुम्हारा भाव हो। लेकिन भाव से हम डर गए हैं। और हमने धीरे-धीरे भाव अवरुद्ध कर दिया है। काट ही डाला है अपने को भाव से। हम हृदय की बात ही नहीं सुनते। हम तो बुद्धि की बात सुनते हैं। हम तो बुद्धि के तर्क से चलते हैं। बुद्धि जहां ले जाती है वहां हम जाते हैं। और बुद्धि कहां ले जा सकती है? बुद्धि सब से उथली चीज है तुम्हारे भीतर, इसलिए उथले तक ले जाती है। इसलिए तुम धन इकट्ठा करते हो। इसलिए तुम कचरा इकट्ठा करते हो। इसलिए तुम पद-प्रतिष्ठा की चिंता करते हो।
नानक कहते हैं, "भाव पात्र है जिसमें अमृत ढलता है।"
तुम विचार से थोड़े हटो और भाव में थोड़े डूबो। बड़ा मुश्किल है। क्या करोगे जिससे तुम भाव में डूब जाओ? सुबह तुम उठे हो, हिंदू उठते थे पुराने दिनों में, सूरज के उगते ही वे सूर्य-नमस्कार करेंगे। वे झुकेंगे सूरज के सामने। वे सूर्य का अनुग्रह स्वीकार करेंगे। वे धन्यवाद देंगे कि तुम फिर आ गए, एक दिन और मिला। फिर तुमने प्रकाश किया। फिर फूल खिलेंगे, फिर पक्षी गीत गाएंगे, फिर जीवन की कथा चलेगी। तुम्हारा धन्यवाद है। तुम्हारा अनुग्रह है। वे सूर्य के सामने हाथ जोड़े सूर्य का प्रकाश पीते थे। और वह जो भाव, अनुग्रह का भाव था, वह उनके हृदय में एक पुलक भर देता था।
नदी जाएंगे तो स्नान करने के पहले प्रणाम करेंगे। एक भाव का संबंध जोड़ेंगे नदी से। तब शरीर को भी नदी धोएगी ही, वह तो तुम्हारा शरीर भी धोती है, लेकिन भीतर भी कुछ धुल जाएगा। क्योंकि वे स्नान करते समय सिर्फ स्नान ही नहीं कर रहे हैं, नदी पवित्र है, वह परमात्मा की है, एक भीतर-भाव सघन हो रहा है। वे भोजन करेंगे तो भी पहले परमात्मा को स्मरण करेंगे, पहले भोग लगाएंगे। पहले उसे, पीछे स्वयं को।
अन्न को हिंदुओं ने ब्रह्म कहा है। वह है भी। क्योंकि तुम्हें जीवन देता है। हिंदुओं ने हर चीज को परमात्मा की स्मृति बना ली। हर जगह से उसके भाव की चोट पड़नी चाहिए। उठते, बैठते, सोते, हर जगह उसकी याद।
हमने सब इनकार कर दिया। हमने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? नदी में नहा रहे हो, नदी सिर्फ पानी है। और पानी में क्या है? एच टू ओ। कहां का भगवान? सूरज को प्रणाम कर रहे हो! सूरज कुछ भी नहीं है। आग का गोला। किसको प्रणाम कर रहे हो? अगर यह बात सच है, सूरज आग का गोला है, नदी सिर्फ एच टू ओ है, तो फिर कहां तुम भगवान को पाओगे? फिर पत्नी क्या है? पत्नी भी कुछ नहीं है, हाड़-मांस। फिर बेटा क्या है? मांस-मज्जा। फिर तुम कहां भाव को जगाओगे? भाव को जगाने का अर्थ है कि जगत सचेतन है। जो दिखायी पड़ता है, वहां समाप्त नहीं है, उससे भीतर है। बहुत गहरा है। भाव का अर्थ है कि जगत में एक व्यक्तित्व है, एक आत्मा है। माना कि बच्चा हाड़-मांस है। वह हाड़-मांस ही

नहीं है उसके भीतर कुछ अवतरित हुआ है। उसके भीतर भगवान आए हैं। वह अतिथि है हमारे घर में।
वृक्ष, माना कि वृक्ष है; लेकिन वृक्ष ही नहीं है, उसके भीतर भी कोई बढ़ रहा है। उसके भीतर भी कोई आनंदित होता है, दुखी होता है। उसके भीतर भी मूड, भाव, संवेग आते हैं। उसके भीतर भी जागरण, तंद्रा आती है।
अभी वैज्ञानिकों ने बड़ी खोज-बीन की है कि वृक्ष भी उतना ही अनुभव करता है, जितना मनुष्य। और वृक्ष की अनुभूति बड़ी गहरी है। उसकी प्रतीति गहरी है। वह उतना ही संवेदनशील है, जितने हम। चट्टानें भी संवेदनशील हैं।
हर जगह संवेदना है। और तुम संवेदना खो दिए हो। भाव खो दिए हो। इसलिए जगत बिल्कुल उदास, रौनकहीन, अर्थहीन मालूम पड़ता है। जैसे ही तुम्हारा भाव जगेगा, वैसे ही जगत रूपांतरित हो जाता है। जगत तो यही रहता है, सब कुछ यही रहता है, फिर भी सब बदल जाता है। क्योंकि तुम बदल जाते हो।
"भाव ही पात्र है जिसमें अमृत ढलता है।"
और नानक कहते हैं, तुम्हारा भाव ही पात्र बनेगा जिसमें परमात्मा का अमृत ढलेगा। अगर तुम्हारे पास भाव नहीं तो तुम परमात्मा से वंचित रह जाओगे। भाव को जगाओ।
लेकिन भाव को जगाने में एक ही बाधा है कि भाव बुद्धि से विपरीत है। बुद्धि से भिन्न है। संसार में बुद्धि कारगर है, भाव कारगर नहीं है। धन कमाना हो तो भाव से न कमा सकोगे। लुट जाओगे। बुद्धि कहेगी, कोई भी लूट लेगा। अगर राजनीति के शिखर पर चढ़ना हो, तो भाव से न चढ़ सकोगे। वहां तो कठोरता चाहिए। वहां तो प्रगाढ़ आक्रामक विचार चाहिए। वहां शांति और मौन काम न देंगे। वहां हृदय को तो भूल ही जाना कि जैसे वह है ही नहीं।
मैंने सुनी है भविष्य की एक कहानी कि ऐसा हुआ--भविष्य में--कि आदमी के सभी शरीर के अंग, हृदय, सिर, फेफड़े, गुर्दे, सभी स्पेयर पार्ट्स की तरह मिलने लगे। मिलने ही लगेंगे एक दिन। कि तुम्हारा गुर्दा खराब हो गया, तुम गए वर्कशाप में, और तुमने अपना गुर्दा बदलवा लिया, और चल पड़े। जैसे कि मोटर को ले जाते हो। चीज बिगड़ गयी, बदल ली, चल पड़े।
एक आदमी का हृदय खराब हो गया। तो गया दुकान पर जहां हृदय बिकते थे। कई तरह के हृदय थे वहां। तो उसने पूछा कि इनके दाम? और इनमें भेद क्या है? तो उस आदमी ने कई तरह के हृदय बताए। कि यह एक मजदूर का हृदय है, यह एक किसान का हृदय है, यह एक गणितज्ञ का हृदय है, यह एक राजनीतिज्ञ का हृदय है और इसके दाम सबसे ज्यादा हैं। आदमी ने कहा, इसका क्या मतलब? तो उसने कहा, इसका उपयोग कभी नहीं हुआ है। ब्रांड न्यू। राजनीतिज्ञ का हृदय है, इसका कभी उपयोग नहीं हुआ। यह बिल्कुल बिना उपयोग का पड़ा है। इसलिए इसके दाम ज्यादा हैं। यह एक कवि का हृदय है, इसका दाम सब से कम है। इसका बहुत उपयोग हो गया है, बिल्कुल सेकेंड हैंड है। राजनीतिज्ञ को हृदय की जरूरत क्या है? उसका उपयोग खतरनाक है वहां।
तुम अपने हृदय का उपयोग धीरे-धीरे शुरू करो। धीरे-धीरे ही हो सकता है।
एक ही बात याद रखो, कि विचार को थोड़ा हटाओ, भाव को थोड़ा लाओ। वृक्ष के पास बैठो। फूल के पास बैठो। विचार मत करो कि यह गुलाब है। नाम से क्या लेना- देना। यह विचार मत करो कि बड़ा गुलाब है। बड़े-छोटे से क्या लेना-देना। उसमें एक अदृश्य सौंदर्य है, तुम उसे पीओ। सोचो मत उसके संबंध में। तुम फूल के पास बैठ कर मौन, फूल के साथ रहो।
जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम्हारे हृदय में जो क्रिया चल रही है, उसने तुम्हारे मस्तिष्क की क्रिया को बंद कर दिया है। क्योंकि दो में से एक ही जगह जीवन-ऊर्जा चल सकती है। जैसे ही तुम्हारे हृदय में पुलक आएगी--और वह पुलक अनुभव से ही जानी जा सकती है। कोई नहीं कह सकता, क्या है वह पुलक! वह गूंगे का गुड़ है। क्योंकि हृदय के पास कोई भाषा नहीं है।
तुम बैठो फूल के पास, तुम सुनो पक्षी का गीत। तुम वृक्ष से पीठ टेक कर बैठ जाओ, आंख बंद कर लो, उसकी खुरदरी देह को अनुभव करो। तुम रेत पर लेट जाओ, आंख बंद कर लो, रेत के शीतल स्पर्श को अनुभव करो। तुम झरने में बैठ जाओ, बहने दो पानी को तुम्हारे सिर पर से, और तुम उसका प्रीतिकर स्पर्श अपने में डूबने दो। तुम सूरज के सामने खड़े हो जाओ आंख बंद कर के, छूने दो उसकी किरणों को तुम्हें।

और तुम सिर्फ अनुभव करो, सोचो मत कि क्या हो रहा है। तुम सिर्फ अनुभव करो। जो हो रहा है उसे होने दो और हृदय को पुलकित होने दो। तुम जल्दी ही पाओगे कि एक नयी गतिविधि शुरू होती है हृदय में। जैसे एक नया यंत्र, जो अब तक बंद पड़ा था, सक्रिय हो गया। एक नयी धुन बजती है तुम्हारे जीवन में। तुम्हारे जीवन का केंद्र बदल जाता है। और उसी बदले हुए केंद्र पर अमृत की वर्षा होती है।
"सत्य के टकसाल में शब्द का सिक्का गढ़ा जाता है।"
नानक जिसको शब्द कहते हैं, वह ओंकार; तुम्हारे शब्द नहीं। सत्य के टकसाल में--और तुम्हारे जीवन में जितनी सचाई आती जाएगी उतना ओंकार ढलेगा। उतना ही तुम ओंकार के रूप में लीन होते जाओगे। झूठ से तुम दूसरे को नुकसान पहुंचाते हो, वह बड़ा नुकसान नहीं है। झूठ से तुम सत्य की टकसाल नहीं बन पाते। जहां कि जीवन का परम अनुभव ढलेगा, जहां ओंकार की धुन बजेगी। वही असली नुकसान है।
"जिन पर उसकी कृपा-दृष्टि होती है, वे ही यह काम कर पाते हैं।"
लेकिन नानक हर पद के बाद यह बात भूलते नहीं हैं दोहराना कि याद रखना, तुम्हारी वजह से यह न होगा। तुम कहीं मत अकड़ जाना, कि मैं बड़ा भक्त, कि मैं बड़ा भावुक, कि मेरा हृदय बड़ा तरंगित, कि मैं बड़ा तपस्वी, कि मैं बड़ा संयमी।
नहीं, नानक कहते हैं, यह तो तुम याद ही रखना कि जिस पर उसकी कृपा-दृष्टि होती है, वे ही यह काम कर पाते हैं।
जिन कउ नदरि करमु तिन कार।।
नानक नदरी नदरि निहाल।।
"नानक कहते हैं, वे उस कृपा-दृष्टि से निहाल हो उठते हैं।"
"पवन गुरु है, पानी पिता है और महान धरती माता है। रात और दिन दाई और सेवक। उनके साथ सारा जगत खेल रहा है। शुभ-अशुभ कर्म उसके दरबार में धर्म के द्वारा बांचे जाते हैं। सब के अपने-अपने कर्म हैं, जिससे कोई उसके निकट है और कोई दूर है। नानक कहते हैं, जिन्होंने उसके नाम का ध्यान किया और सचाई से श्रम किया, उनके मुख उज्ज्वल होते हैं। और उनके साथ अनेकों मुक्त हो जाते हैं।"
पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।
दिवस राति दुइ दाई दाइआ खेले सगलु जगतु।।
चंगिआइआ बुरिआइआ वाचै धरमु हदूरि।
करमी आपा आपणी के नेड़े के दूरि।।
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि।
नानक ते मुख उजले केती छूटी नालि।
नानक के प्रतीक मूल्यवान हैं। बहुत भाव से चुने हैं।
"पवन गुरु।"
कहते हैं, गुरु तो पवन की भांति है। दिखायी नहीं पड़ता, अनुभव किया जा सकता है। जो देखने जाएंगे, वे चूक जाएंगे। पवन दिखायी नहीं पड़ता, अनुभव किया जा सकता है। उसका स्पर्श ही जाना जा सकता है। तुम उसे मुट्ठी में बंद नहीं कर सकते।
गुरु को मुट्ठी में बंद नहीं किया जा सकता। और जो गुरु शिष्यों की मुट्ठी में बंद हो, जान लेना गुरु नहीं। तुम सौ में निन्यानबे गुरु शिष्यों की मुट्ठी में बंद पाओगे। शिष्य उन्हें चला रहे हैं। शिष्य बताते हैं, क्या करना उचित, क्या करना उचित नहीं। शिष्य तय करते हैं कि क्या आचरण, क्या अनाचरण। शिष्यों की पंचायतें हैं, जो साधुओं को चलाती हैं। पंचायत तय करती है कि कौन साधु योग्य, कौन साधु अयोग्य! पंचायत तय करती है, किस साधु को पूजो, किस को बाहर निकाल दो। बड़ी उलटी दुनिया है हमारी। गुरुओं को हम निर्णय करते हैं! कि तुम ऐसे उठो, तुम ऐसे बैठो, ऐसे चलो। और जो गुरु इससे राजी हो जाते हैं, वे गुरु नहीं हैं, इसीलिए राजी हो जाते हैं।
तुम अपने मठों में, आश्रमों में गुरुओं को न पाओगे। गुरुओं के नाम से चलते हुए झूठे सिक्के पाओगे। गुरु को कोई मुट्ठी में बांध नहीं सकता। तुम महावीर को, बुद्ध को, नानक को चला नहीं सकते। वे अपनी मर्जी से चलते हैं।
पवन अपनी मर्जी से बहता है। जब बहता है, बहता है; जब नहीं बहता, नहीं बहता।

और तुम मुट्ठी बांधोगे, तो पवन तुम्हारे हाथ में था वह भी बाहर हो जाएगा। जो मुक्त करने आए हैं, उन्हें बांधा नहीं जा सकता। जिनसे तुम मुक्ति खोज रहे हो, उनको तुम कैसे बांध सकते हो?
इसलिए नानक कहते हैं, "पवन गुरु, पानी पिता, धरती माता।"
धरती के बिना तुम्हारी देह नहीं हो सकती। इसलिए माता अत्यंत जरूरी है। उसके बिना कोई जन्म नहीं है। लेकिन सब से स्थूल है पृथ्वी। इसलिए माता तो पशु-पक्षियों में भी होती है, पिता नहीं होता। पिता के लिए तो बड़ी संस्कार की, सभ्यता की अवस्था चाहिए। पिता मन है, मां देह है। जहां-जहां देह है, वहां-वहां मां है, लेकिन पिता नहीं है। जहां मन का जन्म हुआ, वहां पिता शुरू होता है। तो पिता बड़ी नयी घटना है।
सिर्फ मनुष्यों में पिता है। और वह भी बहुत प्राचीन नहीं है। कोई पांच हजार साल, ज्यादा से ज्यादा। उसके पहले पिता नहीं था। क्योंकि स्त्री सामाजिक संपदा थी। अनेक लोग उसे भोगते थे। पिता का पता चलाना मुश्किल था। वह ठीक पशुओं जैसी ही स्थिति थी। तो यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी कि काका, अंकल पुराना शब्द है पिता से। उन दिनों चाचा तो होता था, काका होता था, अंकल होता था, लेकिन पिता नहीं होता था। क्योंकि जितने ही बड़ी उम्र के लोग होते थे, पिता होने की योग्यता के लोग होते थे, वे सभी काका थे। और पता नहीं उनमें कौन पिता था। इसका कुछ पता नहीं था।
पिता बहुत बाद में आया। क्योंकि पिता मन है, संस्कार है, सभ्यता है। इसलिए पिता एक सामाजिक उपलब्धि है, प्राकृतिक नहीं। प्रकृति में पिता की कोई भी पहचान नहीं है। सिर्फ समाज जब बहुत विकसित होता है तो पिता आता है।
इसलिए नानक कहते हैं, मां तो धरती जैसी है, उसके बिना तो कोई हो नहीं सकता। सब से स्थूल है वह।
"पानी पिता।"
और पिता का संबंध ज्यादा तरल है। मां का संबंध ज्यादा स्थूल है। तरलता की खबर देने के लिए वे कहते हैं, पानी।
"और पवन गुरु।"
ये तीन सीढ़ियां हैं, मां--धरती, बहुत स्थूल, मैटीरीयल, पदार्थ। इसलिए स्त्री को हमने प्रकृति कहा है। उसके बाद की ऊंची एक स्थिति है, जहां पिता का संबंध शुरू होता है, सभ्यता, समाज, संस्कृति। और उससे भी ऊंची एक स्थिति है, जहां गुरु का संबंध शुरू होता है, धर्म, योग, तंत्र।
अगर तुम मां पर ही रुक गए, तो करीब-करीब पशु जैसे रह जाओगे। अगर पिता
पर रुक गए, तो मात्र मनुष्य रह जाओगे। जब तक तुम गुरु तक न पहुंचो तब तक तुम्हारे आत्मवान होने की कोई स्थिति बनती नहीं। तुम्हारे जीवन की तीन सीढ़ियां हैं। मां तक तो सभी पशु पहुंच जाते हैं। पिता तक सभी मनुष्य पहुंच जाते हैं। गुरु तक बहुत थोड़े से लोग पहुंच पाते हैं। और जब तक तुम गुरु तक न पहुंचो, तब तक तुम्हारी पूरी ऊंचाई न आएगी। क्योंकि मां शरीर का संबंध, पिता मन का संबंध, गुरु आत्मा का संबंध है। वह इस जगत में सब से बड़ा संबंध है। उससे न तो गहरा कोई संबंध है, न ऊंचा कोई संबंध है।
इसलिए जो लोग बिना गुरु के हैं, करीब-करीब अधूरे हैं। गुरु के साथ ही तुम पूरे होते हो। इस जगत की यात्रा पूरी होती है और दूसरे जगत की यात्रा शुरू होती है। गुरु इस जगत का अंत और दूसरे जगत का प्रारंभ है। वह द्वार है। इसलिए तो नानक ने अपने मंदिर को गुरुद्वारा कहा। द्वार का मतलब होता है एक दुनिया समाप्त, दूसरी दुनिया शुरू। इस तरफ एक दुनिया, उस तरफ दूसरी दुनिया। गुरु बीच में है।
"रात और दिन दाई और सेवक हैं, उनके साथ सारा जगत खेल रहा है।"
समय के साथ सारा जगत खेल रहा है। खेलने वाले दो तरह के हैं। एक, जिन्होंने नौकर को और सेवक को मालिक बना लिया है। और एक, जिन्होंने नौकर को और सेवक को नौकर ही समझा है।
समय तुम्हारा मालिक नहीं है, तुम्हारा गुलाम है। तुम उसका उपयोग करो। लेकिन समय को तुम अपना उपयोग मत करने दो। हालत बिल्कुल उलटी है। समय तुम्हारा उपयोग कर रहा है।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान करना है, लेकिन समय नहीं है।
ध्यान करने के लिए समय नहीं है? समय तुम्हारा मालिक है? या तुम समय के

मालिक हो? अगर तुम समय के मालिक हो, तो बहुत समय है ध्यान करने के लिए। अगर तुम गुलाम हो, तो कोई समय नहीं है। क्योंकि सिनेमा देखने के लिए तुम्हारे पास समय है, सरकस जाने के लिए समय है। सब चीजों के लिए समय है।
बहुत मजे की बात है। यही आदमी सुबह बैठा अखबार पढ़ रहा हो घर में; इससे पूछो, क्या कर रहे हो? यह कहता है, समय काट रहे हैं। यही आदमी समय काटता है। ज्यादा समय है, काटता है। समय काटे नहीं कटता, लोग कहते हैं। और जब ध्यान की बात आती है, तो वे कहते हैं, समय कहां? वही के वही लोग! ऐसे समय बहुत है, काटे नहीं कटता। टेलीविजन देखो, क्लब जाओ, फिर भी बच रहता है। कहां बिताओ, यह सवाल उठता है।
छुट्टी के दिन लोग बड़ी कठिनाई में होते हैं, क्या करो? छुट्टी के दिन बिल्कुल थक जाते हैं, कुछ न कर-कर के। सोमवार को वे बड़े प्रसन्न होते हैं। जब सुबह वे दफ्तर की तरफ जा रहे हैं, तब बड़े प्रसन्न हैं कि किसी तरह रविवार टल गया। या रविवार को कुछ उपद्रव कर लेते हैं। दस-पचास, सौ मील का चक्कर लगा आएंगे। समुद्र तट पर जा रहे हैं, पहाड़ी पर जा रहे हैं। वह जो एक दिन विश्राम का मिला था उसको भी काम में... । अमरीका में कहावत है कि छुट्टी के दिन लोग इतने थक जाते हैं, जितने कि कभी भी काम के दिन नहीं थकते।
समय तुम्हारा उपयोग कर रहा है। अगर तुम मालिक हो, तो समय बहुत है। अगर तुम गुलाम हो, तो बिल्कुल नहीं। गुलाम के पास क्या हो सकता है? समय भी नहीं है।
नानक कहते हैं, "उनके साथ सारा जगत खेल खेल रहा है।"
खेल दो तरह का चल रहा है। एक, जो मालिक हैं, वे समय का उपयोग कर लेते हैं। वे इस समय में ही उसको जानने के लिए रास्ता बना लेते हैं, जो समय के बाहर है। वही ध्यान है। अन्यथा दूसरे लोग हैं, जो समय के द्वारा उपयोग कर लिए जाते हैं।
मैंने सुना है, एक भिखमंगा अनाज की दुकान पर गया। और उसने कहा कि मेरे पास बिल्कुल पैसे नहीं हैं। और आज तो तुम्हें अनाज उधार ही देना पड़ेगा। दुकानदार को दया आ गयी। उसने कहा, ठीक है, अनाज तो मैं दिए देता हूं। लेकिन एक बात ख्याल रखना। मुझे थोड़ा शक होता है। गांव में सरकस आया हुआ है। तुम इसको बेच कर सरकस मत देख लेना। उस आदमी ने कहा, तुम इसकी बिल्कुल फिक्र मत करो। सरकस देखने के लिए पैसे मैंने पहले से ही बचा लिए हैं।
व्यर्थ के लिए तो तुम पहले ही समय बचाए हुए हो। सार्थक के लिए समय नहीं बचता। समय के मालिक बनो, तो ही समय के पार जा सकोगे।
"शुभ और अशुभ कर्म उसके दरबार में धर्म के द्वारा बांचे जाते हैं।
सबके अपने-अपने कर्म हैं, जिससे कोई उसके निकट है और दूर है।"
परमात्मा सब के पास है। उसकी तरफ से न तो तुम दूर हो और न तुम पास हो।
वह सब के पास एक जैसा है। लेकिन तुम्हारी तरफ से तुम दूर हो या पास हो।
तुम्हारे कर्म के कारण या तो तुम निकट हो या दूर हो।
करमी आपा आपणी के नेड़े के दूरि।
तुमने अगर ऐसे कर्म किए हैं, जो तुम्हें सुलाते हैं, मूर्च्छित करते हैं, तो तुम पीठ किए खड़े हो। सूरज वहीं है, तुम पीठ किए खड़े हो। तुमने अगर ऐसे कर्म किए, जो तुम्हें जगाते हैं, होश से भरते हैं, तो तुमने सूरज की तरफ मुंह कर लिया। खड़े तुम वहीं हो। सूरज भी वहीं है, तुम भी वहीं हो। फर्क सिर्फ पड़ जाता है कि तुम्हारी पीठ सूरज की तरफ है, तो बहुत दूर; मुंह सूरज की तरफ है, तो बहुत पास।
परमात्मा तुम्हारे सदा एक सा ही पास है। उसकी नजर में, नानक कहते हैं,
न कोई ऊंच है, न कोई नीच। न कोई पात्र, न कोई अपात्र। अगर तुम अपात्र हो तो अपने ही कारण। अपने में थोड़ा फर्क करो, और तुम पात्र हो जाओगे। क्योंकि जो पात्र हैं, उनमें और तुम में सिर्फ एक ही फर्क है। वे परमात्मा की तरफ उन्मुख हैं, तुम परमात्मा की तरफ विमुख हो।
नानक कहते हैं, "जिन्होंने उसके नाम का ध्यान किया और सचाई से श्रम किया, उनके मुख उज्ज्वल होते हैं। और उनके साथ अनेकों मुक्त होते हैं।" नानक कहते हैं, जब भी कोई मुक्त होता है, अकेला ही मुक्त नहीं होता। क्योंकि मुक्ति इतनी परम घटना है, और मुक्ति एक ऐसा महान अवसर है--एक व्यक्ति की मुक्ति भी--कि जो भी उसके निकट आते हैं, वे भी उस सुगंध से भर

जाते हैं। उनकी जीवन-यात्रा भी बदल जाती है। जो भी उसके पास आ जाते हैं, वे भी उस ओंकार की धुन से भर जाते हैं। उनको भी मुक्ति का रस लग जाता है। उनको भी स्वाद मिल जाता है थोड़ा सा। और वह स्वाद उनके पूरे जीवन को बदल देता है। "जिन्होंने उसका ध्यान किया, सचाई से उसके लिए श्रम किया, उनके मुख उज्ज्वल होते हैं।"
उनके भीतर एक प्रकाश जलता है। जो अगर तुम प्रेम से देखो, तो तुम्हें दिखायी पड़ सकता है। तुम अगर पूजा के भाव से पहचानो, तो तत्क्षण पहचान आ सकता है। उनके भीतर एक दीया जलता है। और उस दीए की रोशनी उनके चारों तरफ पड़ती है।
इसलिए तो हमने संतपुरुषों, अवतारों के चेहरे के आसपास आभा का मंडल बनाया है। वह आभा का मंडल सभी को दिखायी नहीं पड़ता। वह उन्हीं को दिखायी पड़ता है, जिनके भीतर भाव की पहली किरण उतर आयी है। उन्हीं को दिखायी पड़ता है जिनके पास श्रद्धा है। जिनके पास श्रद्धा की पहचान है।
और जिनको यह दिखायी पड़ता है, वे उस जले हुए दीए से अपना बुझा हुआ दीया
भी जला लेते हैं। जब भी कोई एक मुक्त होता है, तो हजारों उसकी छाया में मुक्त होते हैं। एक व्यक्ति की मुक्ति कभी भी अकेली नहीं घटती। घट ही नहीं सकती। क्योंकि जब इतना परम अवसर मिलता है, तो ऐसा व्यक्ति बहुतों के लिए द्वार बन जाता है।
तुम अपनी श्रद्धा और भाव को जगाए रखना, ताकि तुम्हें गुरु पहचान आ सके। और गुरु को जिसने पहचान लिया, उसने इस जगत में परमात्मा के हाथ को पहचान लिया। गुरु को जिसने पहचान लिया, उसने इस जगत में जगत के जो बाहर है उसको पहचान लिया। उसे द्वार मिल गया।
और द्वार मिल जाए तो सब मिल गया। खोया तो कभी भी कुछ नहीं है। द्वार से गुजर कर तुम्हें अपनी पहचान आ जाती है। जो प्रकाश सदा से तुम्हारा है, उसकी सुरति आ जाती है। जो संपदा सदा से तुम्हारे पास है, आविष्कार हो जाता है। जो तुम सदा से ही थे, जिसे तुमने कभी खोया न था, गुरु तुम्हें उसकी पहचान करा देता है।
कबीर ने कहा है, गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पांव?
किसके छुऊं चरण? अब दोनों सामने खड़े हैं। कबीर बड़ी दुविधा में पड़ गए हैं। किसके छुऊं चरण? अगर परमात्मा के चरण पहले छुऊं, तो गुरु का असम्मान होता है। अगर गुरु के चरण पहले छुऊं, तो परमात्मा का असम्मान होता है। तो कबीर कहते हैं, किस के चरण छुऊं?
फिर वे गुरु के ही चरण छूते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविंद दियो बताय। जब वे दुविधा में पड़े हैं, तब गुरु ने कहा कि तू गोविंद के ही चरण छू। क्योंकि मैं यहीं तक था। यह बड़ी मीठी बात है। जब कबीर दुविधा में पड़े हैं तो गुरु ने कहा, इशारा किया, कि तू गोविंद के चरण छू, मैं यहीं तक था। मेरी बात यहीं समाप्त हो गयी। अब गोविंद सामने खड़े हैं। अब तू उन्हीं के चरण छू।
बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविंद दियो बताय।
लेकिन कबीर ने चरण फिर गुरु के ही छुए। क्योंकि उसकी बलिहारी है, उन्होंने गोविंद बताया।
श्रद्धा हो तुम्हारे पास, तो तुम पहचान लोगे। बस! श्रद्धा चाहिए, भाव चाहिए। विचार से न कोई कभी पहुंचा है, न कोई कभी पहुंच सकता है। तुम वह असफल चेष्टा मत करना। वह असंभव है। वह कभी नहीं हुआ। और तुम भी अपवाद नहीं हो सकते।
और गुरु सदा मौजूद है। क्योंकि ऐसा कभी नहीं होता कि संसार के इन अनंत लोगों में कुछ लोग उसे न पा लेते हों। कुछ लोग हमेशा ही उसे पा लेते हैं। इसलिए कभी भी धरती गुरु से खाली नहीं होती। दुर्भाग्य ऐसा कभी नहीं आता कि धरती गुरुओं से खाली हो। लेकिन ऐसा दुर्भाग्य कभी-कभी आ जाता है कि पहचानने वाले बिल्कुल नहीं होते।
बस इतना ही।